2024

ISSN 2231-1041

स्तोम
STOM

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका
UGC-Care enlisted Peer Reviewed Annual Research Journal
वर्ष-24, विशेषांक-1 / Year-24, Special Issue-1

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

2024

संस्थापक
चन्द्र किशोर सिंह, अधिवक्ता

आदि मुद्रक
श्यामा सिंह

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० कुमार विमल मोहन सिंह
डॉ० कुमार निर्मल मोहन सिंह

प्रकाशक
'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

मुद्रक
कुमार प्रिन्टर्स,
लाह बाजार, छपरा-841301

पत्राचार का पता
प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
फ्लैट नं०- 108
न्यू टीचर्स फ्लैट
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
दरभंगा (बिहार)
मोबाईल नं० : 9835296330
ई-मेल : editor.stomresearchjournal@gmail.com

सहयोग राशि- **425/-**

पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी संगीतसेवी अवैतनिक हैं ।

लेखकों के विचार से सम्पादकीय सहमति आवश्यक नहीं है ।

ISSN 2231-1041

स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

(यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका)

वर्ष-24, विशेषांक-1

प्रधान सम्पादक
प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

सह सम्पादक
डॉ० कुमार विनय मोहन सिंह

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

(यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका)

सलाहकार मण्डल : प्रो० पंकजमाला शर्मा
प्रो० द्वारम वी.जे. लक्ष्मी
विदुषी काजल शर्मा
प्रो० दर्शन पुरोहित
प्रो० के० शशि कुमार

सम्पादक मण्डल : प्रो० संगीता पण्डित
प्रो० बी० राधा
डॉ० विधि नागर
डॉ० अनीता शिवगुलाम
डॉ० हिमांशु द्विवेदी

सहयोगी मण्डल : प्रो० अर्चना अम्भोरे
प्रो० निशा झा
डॉ० राजश्री रामकृष्ण
डॉ० बिन्दु के०
डॉ० आरती एन० राव
डॉ० अरविन्द कुमार
डॉ० ज्योति सिन्हा
डॉ० मधुरानी शुक्ला
डॉ० अवधेश प्रताप सिंह तोमर
डॉ० रवि जोशी
डॉ० शिखा समैया
डॉ० अमित कुमार पाण्डेय

शिवम्-सरगम

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम् ।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्विकं शिवम् ।।

नृत् कला की इस दुनिया में,
है अपना नया कदम ।
जहाँ सुर का संगम होता,
वो सरगम बना शिवम् ।।

लेकर हम चाँद सितारे
आपस में प्रीत सँवारे ।
प्रीत के इस मंदिर में,
नित शीष झुकाते हैं हम ।।

संगीत हो मन्त्र हमारा,
अभिनय हो शस्त्र हमारा ।
हम नेक, एक, जग जीते,
यही नाद सुनाते हैं हम ।।

हो विकसित जग में कलायें,
संस्कृति की अलख जगाएँ ।
यही भावना हमारी,
यही लक्ष्य बनाते हैं, हम ।

मूल रचना : रविभूषण 'हँसमुख'
परिकल्पना : विनय मोहन 'वीनू'
संगीत : लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

सम्पादकीय...

कार्तिक मास का बहुत माहात्म्य है । इस माह में अनेक व्रत, पर्व–त्योहार आते हैं- दीपावली, भाईदूज, गोवर्धन पूजा, सूर्य षष्ठी, एकादशी (देवोत्थान), सामा–चकेवा, गंगा–स्नान आदि । इन पर्वों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूर्य–उपासना का पर्व 'सूर्य षष्ठी' अथवा छठ–पर्व या छठ व्रत है । हमारी संस्कृति में प्रकृति के उपासना की अद्‌भुत विशेषता है । सूर्य–उपासना की यह परम्परा लगभग 4000 वर्ष पहले (पूर्व वैदिक 1500 ई० पूर्व प्राचीन) से है । सूर्य के प्रतिमा–निर्माण की परम्परा पाँचवीं शताब्दी अर्थात् गुप्त काल में आरम्भ हुई । कार्तिक मास के शुक्ल षष्ठी को अस्ताचल और सप्तमी को उदयाचल सूर्य को अर्घ्य देकर आराधना करते हैं । अस्ताचल और उदयस्थ सूर्य–पूजा की परम्परा महाभारत काल से मानी जाती है । अंगराज कर्ण को इस परम्परा के पुरोधा के रूप में पूजा जाता है । सूर्य समस्त ऊर्जा के स्रोत हैं । प्राकृतिक सम्पदाओं, वनस्पतियों को सर्वाधिक नजदीक ले जाने का कार्य करता है सूर्य–षष्ठी का व्रत; यथा–फल, फूल, नदी, वृक्ष, वायु, सूर्य आदि । यह सामूहिकता का मार्ग प्रशस्त करता है जिसमें सभी जाति–धर्म के मानव की सहभागिता होती है । भगवान सूर्य ऋग्वैदिक काल के देवता हैं । वैदिक काल में 'मित्र' संज्ञा सूर्य का ही पर्याय है । पुरातात्विक साक्ष्य बताते हैं कि सूर्य–उपासना का आरंभ प्रागैतिहासिक काल में हुआ । सिन्धु घाटी की सभ्यता में प्राप्त मुहरों को सूर्य का ही प्रतीक माना गया है । वेदों में यज्ञ के प्रसंग में सूर्योपासना का वर्णन मिलता है । मानव–रूप में सूर्य का सर्वाधिक प्राचीन प्रथम अंकन मौर्यकालीन 'मुहर' है । इस पर सूर्य चार घोड़ों वाले रथ पर सवार हैं । द्वितीय मानव–आकृति का अंकन शुंगकालीन (185 ई.पू.–73 ई.पू.) चन्द्रकेतु गढ़ में प्राप्त होता है जिसमें मिट्‌ठी की गाड़ी पर सूर्य स्थापित वा आसीन हैं । एक अन्य प्रमाण यह है कि बोधगया के स्तम्भ पर सूर्य का अंकन किया गया है जिसमें सूर्य एक पहिया वाले रथ पर आरूढ़ हैं जिसे चार घोड़े खींच रहे हैं । इस पर अगल–बगल में उषा और प्रत्युषा भी दृष्टिगोचर होती हैं । सूर्य की शक्ति का मुख्य स्रोत उनकी पत्नी उषा और प्रत्युषा हैं जिसकी संयुक्त आराधना इस व्रत में होती है । सायंकालीन प्रथम अर्घ्य में सूर्य के अन्तिम किरण प्रत्युषा तथा तदुपरान्त उदीयमान सूर्य की किरण उषा को अर्घ्य देकर आराधना करते हैं । मुल्तान (पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का दक्षिणी भाग) में सूर्य–मंदिर सूर्य–उपासना का प्रमुख केन्द्र था । आज यह खण्डहर बन चुका है । चन्द्रभागा नदी के तट पर अवस्थित मुल्तान के इस सूर्य मन्दिर का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग ने किया है । इस मन्दिर का वर्णन स्कन्दपुराण में भी है । ग्रीक एडमिरल स्काईलैक्स ने 515 ई. पू. इसका वर्णन किया है । इस स्थान का प्राचीन नाम कश्यपपुर था । दसवीं सदी में अल्बरूनी ने भी इसका उल्लेख किया है । 1026 ई. में महमूद गजनी ने इस मन्दिर को ध्वस्त कर दिया । इसके अतिरिक्त दो और सूर्य मन्दिर हैं जिनकी प्रामाणिक व्याख्या की गई है । ओडिशा का कोणार्क सूर्य मन्दिर और बिहार का देव सूर्य मन्दिर । जंबूद्वीप में ये तीन ऐसे स्थान हैं जहाँ सूर्य की सर्वप्रथम किरण पहुँचती है । प्राचीन काल में देव को इन्द्रवन, कोणार्क को मित्रवन तथा मुल्तान को मुंडिरवन के रूप में जाना जाता था । देव का सूर्य मन्दिर विश्व का एकमात्र पश्चिमाभिमुख सूर्य मन्दिर है । स्थापत्य कला का बेजोड़ उदाहरण है यह मंदिर, बिहार के औरंगाबाद से 18 कि०मी० दूर और 100 फीट ऊँचा है । ऐसी मान्यता है कि भगवान विश्वकर्मा ने स्वयं इस मंदिर का निर्माण किया था, एक लाख पचास हजार तेइस वर्ष प्राचीन

यह है । मन्दिर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि त्रेता युग के 12 लाख 16 हजार वर्ष बीत जाने के बाद इला–पुत्र पुरूरवा ने इसका निर्माण कराया था । इस मन्दिर के सूर्य उदयाचल, मध्याचल और अस्ताचल इन तीन रूपों में हैं । देवासुर संग्राम में असुरों से देवताओं के पराजय के बाद देव माता अदिति ने तेजस्वी पुत्र की कामना से इस व्रत को किया और भगवान त्रिदेव आदित्य का जन्म हुआ जिन्होंने असुरों से विजय प्राप्त किया । तभी से देव–सेना षष्ठी देवी के नाम पर इसका नामकरण 'देव' हुआ और षष्ठी व्रत का चलन आरम्भ हुआ । अथर्ववेद के अनुसार, भगवान सूर्य की मानस बहन हैं षष्ठी ।

सूर्य के रथ में सात घोड़े का तात्पर्य सप्तवार/दिवस और सप्त रंग से है । यह रथ संवत् से संबंधित है । इसके पहियों में 12 (बारह) सहायक स्तम्भ हैं जो बारह मास से सम्बद्ध हैं । छः पहिए छः ऋतुओं की हैं । दोनों पार्श्व उत्तरायण तथा दक्षिणायन हैं ।

सूर्य षष्ठी का व्रत संध्या और सूर्य की उपासना का महापर्व है, आस्था का पर्व है । ऐसा ब्रह्म वैवर्त महापुराण के प्रकृति खण्ड में नारायण–नारद संवाद में उल्लिखित है । विशुद्ध रूप में चार दिनों तक चलने वाला यह बहुत कठिन व्रत है । नहाय–खाय, खरना, सायंकालीन अर्घ्य, प्रातः कालीन अर्घ्य और पारण इसका मुख्य हिस्सा है । सौभाग्य, सन्तान, विद्या, वैभव, स्वास्थ्य, यश, विजय आदि की कामना से यह पावन पर्व पूरे देश–भर में मनाया जाता है । सूर्य की बहन षष्ठी का 'स्कन्द पुराण' और 'वर्षकृतम' में वर्णन प्राप्त होता है । यह सूर्य देवता ही हैं जिन्हें प्रत्यक्ष देखा जा सका है । हमारे पुराणों, उपनिषदों में इस आरोग्य देव की आराधना का वर्णन प्राप्त होता है । बौद्ध, सिख, ईसाई, जैन सभी सूर्य की आराधना करते हैं ।

पाँच देवताओं की अवधारणा में भगवान विष्णु, शिव, दुर्गा और गणपति के साथ सूर्य भी हैं । वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित है कि भगवान राम ने 'आदित्य हृदय स्तोत्रम्' के पाठ के बाद रावण का वध किया था । संस्कृत में सूर्योपासना पद्धति का ग्रन्थ भी है । 'वीर मित्रोदय' (160 ई. लेखक मित्र मिश्र) में लगभग सौ पृष्ठ भगवान सूर्य से सम्बन्धित हैं । मिथिला के विद्वान निबन्धकार चण्डेश्वर (लगभग 1300 ई.) ने 'कृत्य रत्नाकर' तथा रूद्रधर ने (15वीं सदी) 'वर्ष–कृत्य' में चार दिवसीय सूर्य–षष्ठी व्रत का वृहद् वर्णन किया है ।

वैदिक ऋचाओं से लेकर ग्रीक कथाओं तक सूर्य का जय–गान प्राप्त होता है । यह ऐसा पर्व है जिसमें न कोई कर्मकाण्ड है न हि कोई पुरोहित । यह चार दिनों का पर्व वा व्रत है– कार्तिक शुक्ल चतुर्थी तिथि को स्नान कर सेंधा नमक से तैयार विशुद्ध भोजन के साथ 'नहाय–खाय', पंचमी को सायंकालीन एक बार बिना नमक का 'भोजन–जल', षष्ठी को पूर्ण निराहार 'सांध्य अर्घ्य' और सप्तमी को उदयाचल सूर्य को प्रातः कालीन अर्घ्य आराधना के बाद 'पारण' । इस पारण के दिन से सामा–चकेवा आरम्भ होकर पूर्णिमा के दिन समाप्त होता है । यह व्रत बहुत उल्लास के साथ मनाया जाता है । षष्ठी तिथि को सांध्य अर्घ्य के बाद ईंख को खड़ा कर मिट्टी के कोसी को भरने का सुहाना–मनभावन दृश्य उपस्थापित होता है । सूर्य षष्ठी को 'छठी मैया' भी कहते हैं । निःसंतानों को संतान–सुख, दीर्घायु और रक्षा की इस माता को 'बालदा' भी कहा गया है । मीठे पकवान और फलों से इसमें पूजा की जाती है । इस व्रत में धार्मिक अनुष्ठान के साथ विज्ञान भी है क्योंकि इस व्रत का प्रसाद कैल्शियमयुक्त होता है । यह महापर्व सूर्य की भाँति ही प्रखर है । नारी, नीर और नदी को नारायण के रूप में पूजा जाता है । पूरे बिहार में यह पर्व बहुत धूम–धाम से मनाया जाता

है । यही नहीं, बिहार की जनता जहाँ–जहाँ गई, वहाँ यह पर्व उल्लासपूर्वक देश–भर में आज मनाया जाता है अर्थात् मनुष्य जब विस्थापित होता है, अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भी साथ ले जाता है । इतना ही नहीं, अमेरिका, इंगलैंड, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दुबई, मलेशिया, सिंगापुर सहित लगभग चालीस से अधिक देशों में यह मनाया जा रहा है । उपयोगी कलाओं, यथा– मूर्ति कला (हाथी, दीप, कलश), बुनाई (सूप, दौरा), चित्रकला और साहित्य–संगीत का साथ है इस पर्व में । छठ–पूजा के लोक–शैली के गीत पूरे वाद्य–वृन्द के साथ गाए जाते हैं । यह व्रत सभी में अप्रतिम श्रद्धा का अहसास भर देता है । नाक से लेकर मांग तक सिन्दूर से पवित्र लाल रेखा द्वारा भरा जाना हर नारी को श्रद्धा और पवित्रता से आह्लादित कर देता है । यह एक ऐसा व्रत है जिसमें डूबते सूर्य की भी आराधना की जाती है । सनातन धर्म में प्रकृति की पूजा कर हम उसके प्रति अपना सम्मान और आभार प्रकट करते हैं ।

छठ–व्रतियों की 'पटना कलम शैली' की एक सुन्दर पेंटिंग जिसमें बिहार के गंगा–घाट पर हो रहे छठ व्रत को दिखाया गया है, विक्टोरिया तथा अल्बर्ट संग्रहालय, लंदन के पूर्वी खंड में उपलब्ध था, कला संग्रहकर्त्ता प्रदीप जैन, पटना ने 2014 में नीलामी के बाद इसे प्राप्त किया है । इसे 1830 में सेवक राम ने बनाया था । छठ व्रत के दृश्य अत्यन्त मनभावन होते हैं । खूब सजे हुए छठ–घाटों की शोभा देखते ही बनती है । छठ के गीत भावनात्मक रूप से जुड़े होते हैं, गीतों की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं

सूर्य की आराधना–

कांच ही बांस के बहंगिया, बहंगी लचकत जाय
पहिर ना सुरूजदेव पियरिया, बहंगी घाटे पहुँचाय
बाट जे पूछेला बटोहिया, बहंगी केकरा के जाय
तू त आन्हर होइबे रे बटोहिया, ई त सुरूजदेव के जाय ।

सूर्य महिमा–

नरियरवा जे फरेला घउद से, ओई पर सुगा मंड़राय
ऊ जे खबरी जनइबो अदित से, सुगा दिले जूठियाय
ऊ जे सुगबा के मारबो धनुष से, सुगा गिरे मुरूझाय ।

पुत्र के लिए आराधना–

घोड़ा चढ़न के बेटा मांगीला, गोड़वा लगन के पतोह
छठी मइया, सुन लीजे विनती हमार

पुत्री के लिए आराधना–

चारों पहर राति जल–थल सेइला, सेइला चरण तोहार छठी मइया
रूनुकी झुनुकी बेटी मांगीला, पढ़ल पंडितवा दामाद
छठी मइया, दरशन दिहि ना आपन

भगवान शंकर और षष्ठी माता संवाद-

कोपि-कोपि बोलेली छठीय मैया, सुनी हे महादेव/सुनी ऐ सेवक लोग
हमरा घाटे दुभिया उपजि गइले, मकड़ी बसेरा लिहले
हे हँसी-हँसी बोलेनी महादेव, सुनी ए छठी मैया
ए रउरा घाटे दुभिया छिलाइ देब, मकड़ी बहारि देब
ए रउरा घाटे दूधवे अरग देब, घिउए हुमाद देब
कि/ए रउरा घाटे गोबर लिपाइ देब, चन्दन छिड़िक देब

ऐसे असंख्य गीत हैं छठ व्रत के । सामूहिक गायन छठ-व्रतियों द्वारा किया जाता है । बिहार की स्वरकोकिला 'पद्मश्री' विन्ध्यवासिनी देवी ने असंख्य गीतों की रचना की और गाया, यथा- 'हे चननही काठ केर नइया'...., 'केरवा जे फरेला घउद पर' आदि । आजादी के बाद से अस्सी के दशक तक इनके गीतों की खूब घूम रही । 'पद्मभूषण' शारदा सिन्हा ने भी असंख्य गीतों की रचना कर उनका गान किया- 'पटना के घाट पर...', 'अंगना में पोखरी खनाएब'..., आदि । 'पद्मश्री' मालिनी अवस्थी के लोकगीत सम्पूर्ण लोक में रूचिपूर्वक सुने जाते हैं । उनके सूर्योपासना के गीत भी श्रद्धा-भाव से पूरिपूर्ण हैं- 'काँच ही बाँस के बहंगिया', 'उग ए आदित मल', 'मारबो रे सुगना धनुख से' 'सुन गुँइया हो चल चल' आदि । भरत शर्मा व्यास के गीत भी खूब प्रसिद्ध हैं- 'अहो दीनानाथ..., 'केकरा लागी करेलू छठी बरतिया..., 'राती के अगोरेली' आदि । इसके अतिरिक्त असंख्य गीत और गायक-गायिकाएँ हैं । ये गीत मानव-जीवन की संजीवनी हैं । इन गीतों में भगवान शंकर और माता पार्वती का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त भगवान गणेश, कार्तिकेय, सूर्य देवता के साथ-साथ गौ घृत, गोबर, दूध, नदी, तालाब, फल, सब्जियाँ, अन्न, जल, चन्दन आदि का भी वर्णन मिलता है । यह व्रत अत्यन्त कठिन है तो पावन-मनभावन भी । इन गीतों की स्वरावलियाँ अत्यन्त मधुर और मार्मिक हैं जो हृदय का शीघ्र स्पर्श करती हैं । ढ़ोलक पर मधुर ठेका के साथ पूर्ण भाव से ये गीत गाये जाते हैं । हमारी विरासत हैं ये । जितना भी लिखा जाय कम है । लोक सांस्कृतिक-सांगीतिक परम्परा का अनूठा उदाहरण है यह ।

पारम्परिक कलात्मकताओं से परिपूर्ण विरासत है हमारे देश भारत में । 'स्तोम' का यह विशेषांक ऐसे ही शोध-लेखों से सुशोभित है । पत्रिका की पूरी टीम को सादर आभार के साथ इस अंक के सभी लेखकों को बधाइयाँ प्रेषित हैं ।

नव वर्ष की नव ऊर्जा के साथ नव-नव शुभकामनाएँ,

(लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या')

अनुक्रम

			पृ.सं.
	सम्पादकीय		iv-vii
1.	उत्तराखण्ड के लोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	हिमिका नेगी प्रो0 आशा पाण्डे	01
2.	राग केदार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास	रामभजन बेदी डॉ. हरविंदर सिंह	07
3.	स्थानीय सांस्कृतिक कला और भाषा के संरक्षण में सामुदायिक रेडियो की भूमिका	शिवम् रस्तोगी डॉ. रवि सूर्यवंशी	14
4.	Poetry and Themes of Kadhakali – The art form of Kerala	Krishnendhu S K Dr. Bindu. K	19
5.	A Treatise on the sense and progress of Culture and Civilization	Rajneesh Mishra	23
6.	काशी का रंग विमर्श	मालविका तिवारी प्रो. ऋचा कुमार	27
7.	सोनभद्र परिक्षेत्र की शैल–कला में प्रतिबिम्बित आखेट एवं युद्ध–सम्बन्धी दृश्यों का कलात्मक अध्ययन	अजीत कुमार	32
8.	Ravanhattha, The Ancient Bowed Instrument – Then and Now	Vinayak Seth Dr. Aishwarya Bhatt	41
9.	Vr̄ttanāma as a musical form in Haridāsa literature	Ragini A R	47
10.	नागर शैली में निर्मित उत्तर भारत के मंदिरों में उत्कीर्ण सांगीतिक कलाकृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन	विदुषी जायसवाल डॉ. रंजना उपाध्याय	54
11.	Banjhakri : Shaman of the Himalayas	Subham Peter Gazmer Dr. Samidha Vedabala	62
12.	Symbolism and Philosophy of The Dance of Shiva : An Analysis of Ananda Coomaraswamy's Interpretation	Dr. P. Sakthivel Dr. N.K.Vivekanandhan	68
13.	पेपर कटिंग/स्टेंसिल साँझी कला– समीक्षात्मक अध्ययन (कलात्मक प्रभाव, नवीन प्रयोग एवं संभावनाएँ)	अपराजिता त्रिपाठी	74
14.	शास्त्रीय संगीत–साधना में सॉफ्टवेयर की उपयोगिता	सागर शर्मा	78
15.	डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर द्वारा वाचित अभिलेखों में उल्लिखित प्राचीन भारतीय राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन	उत्कर्ष राय	81
16.	रबाब वाद्य की संरचना एवं विकास	रमा डॉ. अमनदीप सिंह मक्कड़	89
17.	Musical and Choreographical Analysis of Guru K J Govindarajan's Hindolam Tillana	Rashmi Khanna	92

18. पूर्व–मधुमेह में यौगिक आहार और नाद योग की उपयोगिता : एक समीक्षात्मक अध्ययन — कपिल, डॉ. अजय कुमार पाण्डेय, डॉ. कन्चन चौधरी — 99
19. शास्त्रीय संगीत के प्रचार में समाचार–पत्रों की भूमिका — लक्की मल्होत्रा, डॉ. अमिता शर्मा — 106
20. पारसी रंगमंच की रंग युक्तियाँ और नाटकों में इसके प्रयोग की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण — अविनाश तिवारी, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' — 110
21. पं0 राजन–साजन मिश्र : एक वाग्गेयकार — अपर्णा पाण्डेय, डॉ0 श्वेता कुमारी — 113
22. ध्रुपद गायन–शैली में दरभंगा एवं बेतिया घराना : एक विश्लेषण — संगीत मल्लिक, डॉ. ममता रानी ठाकुर — 116
23. गुप्तकालीन उद्योग–धन्धे तथा वास्तुकला : एक अध्ययन — प्रवेश कुमार — 119
24. उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधुनिक नवनिर्मित अप्रचलित तत् वाद्य : एक अध्ययन — वर्षा मिश्रा, डॉ. अंजलि शर्मा — 124
25. बुन्देली लोक वाद्य : एक सर्वेक्षण — सुमिति श्रीवास्तव, डा० संतोष पाठक — 128
26. पटियाला घराना में तान प्रधान बंदिशों का वैशिट्य — राम नारायण झा, डॉ. ममता रानी ठाकुर — 133
27. Evolution of Self Imagery from Self Portrait in Indian Paintings (A Study from Ancient Times to Contemporary Art World) — Ashita Gupta, Dr. Suresh Chandra Jangid — 137
28. वर्तमान युग में तबला के घराने व उनका महत्व — अशेष नारायण मिश्रा, डॉ. चन्दन विश्वकर्मा — 148
29. A Critical Discourse Analysis of selected Digital News Headlines and Cartoons on Covid-19 — Ayush Anand, Dr. Anindya Deb — 152
30. मारवा थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — प्रियांशु घोष — 160
31. Journey of Mrinalini Mukherjee through her textile sculpture : Hemp Fiber Works — Shujat Ali — 163
32. भोजपुरी लोकगीतों में सांगीतिक तत्त्व — अमित कुमार, प्रो0 रेवती साकलकर — 172
33. बिहार के लोक नाटकों में पलायन और उससे उत्पन्न सामस्याओं का चित्रण — अमरजीत कुमार — 177
34. Analysing The Impact Of Hybridization In Kathak — Anukriti Vishwakarma — 180
35. A.K. Ramanujan's Poetic Perceptional Paradigms with Special Reference to Indianness — Sukhwinder Singh, Dr. Yogesh Chander Sood — 188

36.	A Scoping Review of Yoga & Naad Yoga Therapy in Women (with Polycystic Ovary Syndrome)	Shringarika Mishra Manan Agrawal Dr. Mamta Tiwari	195
37.	Effects of Spirituality and Art on Pregnant Women in Covid-19 : A Qualitative Study	Ms. Muskan Bharti Mr. Arun Kumar	199
38.	Craft Cluster : Exploring Kolhapuri Chappal Making in Maharashtra	Dr. Shruti Tiwari Amar Mithapalli Khyati Pawar Avantika Potdar	209
39.	Analysing the Success Factors of TVF Panchayat : The Rural Drama with Portrayal of a Common Man	Rahul Ahuja	217
40.	Hindustani Classical Music : A Harmonious Co-existence of Tradition and Experimentation	Amanneet Kaur Arora Dr. Rishpal Singh Virk	224
41.	The Fractured Self: Exploring Identity in Select Fiction by Amitav Ghosh	R. Amalan Dr. K.Kumar	230
42.	तबला संगति : कथक नृत्य के परिप्रेक्ष्य में	आनंद कुमार मिश्रा डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय	236
43.	Futurism of Martian Science in Kim Stanley Robinson's Mars Trilogy	Aara Mithilee M L Dr. M. Prabha Punniavathi	243
44.	Sartre's View on Aesthetics and Art	Ashutosh Pandey Aditi Mishra	249
45.	सगुण एवं निर्गुण भक्ति का काव्यात्मक विश्लेषण	बलबीर प्रसाद प्रो. निशा कुमारी	254
46.	सूफी–साधना और संगीत का सम्बन्ध	डॉ. शिवि तिवारी प्रो. मंगला कपूर	259
47.	सितार वाद्य की विविध वादन शैलियाँ	शिव नारायण कुशवाहा	265
48.	उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों की पारस्परिक निर्भरता	मनोहर कृष्ण श्रीवास्तव प्रो. संगीता पण्डित	271

49.	राजस्थान का लोकगीत (संस्कार गीतों के विशेष संदर्भ में)	अभिषेक कुमार सोनी प्रो. संगीता सिंह	276
50.	भाषा के अधिग्रहण में संगीत की भूमिका	मृणाल रंजन प्रो. प्रवीण उद्धव	282
51.	संगीत का परिवर्तनशील स्वरूप एवं परिवर्तन के कारण	डॉ. अभिनव नारायण आचार्य डॉ. संगीता पंडित	286
52.	The Dashabatar Tas of Bishnupur : A Form of Visual Art where Religion, Culture, Entertainment Assimilated in Medieval Bengal	Ramyajit Sarkar	291
53.	संगीत शिक्षा के उपागम	विनय कुमार डॉ के.ए. चंचल	296
54.	अवधी लोकगीत एवं मनोविज्ञान	अशोक कुमार डॉ. रामशंकर	299
55.	समकालीन चित्रकला का बढ़ता दायरा	डा. क्षमा द्विवेदी	304
56.	काशी की सांगीतिक वैशिष्ट्य परम्परा	संदीप मुखर्जी डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल	308
57.	भोजपुर प्रान्त के भोजपुरी लोकगीतों के प्रकार : एक अध्ययन	दीपक कुमार यादव डॉ. रश्मिका मिश्रा	311
58.	Helping SDG for health through Social Media : Analysis of Instagram reels	Mayank Bhardwaj Dr. Paramveer Singh	315
59.	अवध की लोक कला एवं लोक संगीत : एक अध्ययन	सविता पाण्डेय डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य	320
60.	मधुमेह टाइप–II के प्रबंधन में यौगिक चिकित्सा और लययोग : एक समीक्षात्मक अध्ययन	सोनिका डॉ. विजय कुमार श्रीवास्तव डॉ. कन्चन चौधरी	324
61.	भारतीय अभिव्यंजनात्मक वास्तु–शिल्पों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनका विकासात्मक स्वरूप	अंकित सोमवंशी	328
62.	भारतीय समकालीन महिला चित्रकार : अर्पणा कौर	राक्षी पासवान प्रो. पाण्डेय राजीव नयन	335
63.	बज्जिकांचल का त्योहार 'फगुआ' और इसके गीत	रणजीत कुमार डॉ. ममता कुमारी	338
64.	Role of Over The Top (Ott) Platforms in The Promotion and Dissemination of North Indian Music	Amandeep Kaur	341
65.	ठुमरी गायकी में प्रयुक्त रागों का सौन्दर्य	सुरभी कुमारी डॉ. ममता कुमारी	345
66.	Rituals and Customs associated with Dev Samaj Culture in Mandi, Himachal Pradesh	Nivedita Gautam Dr. Rohita Sharma	349

67.	Harmonizing Horizons : The Resilient Odyssey of 'Padmashri' Kavita Krishnamurti Subramaniam in Indian Music and Fusion Artistry	Antima Dhupar	355
68.	Aspects of Musical Sadhana through Indian Classical Music : A Yogic Perspective	Saebom Park Dr. Supriya Shah	365
69.	श्री खीमचन्द स्वामी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	चंचल डॉ. अन्जना बंसल	370
70.	हिन्दी सिनेमा में भारतीय संगीत	मनीषा भारती प्रो० पं० प्रेम कुमार मल्लिक	373
71.	भारतीय संस्कृति में संगीत	अद्विता पाण्डेय प्रो. राजेश शाह	376
72.	दुर्लभ अवनद्ध वाद्य 'दुक्कड़'	राजन डॉ. बी. सत्यवर प्रसाद	380
73.	पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा रचित ग्रन्थों का संगीत क्षेत्र में महत्व	पलक सूद	384
74.	ठुमरी गायन–शैली के साथ तबला–संगति	निशांत कुमार सिंह डॉ0 विनायक शर्मा	388
75.	ग़ज़ल गायकी एवं संगीत	श्रुति मिश्रा डॉ. संगीता श्रीवास्तव	384
76.	ग़ज़ल–शैली पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का प्रभाव	अरुण डॉ. शुचिस्मिता शर्मा	399
77.	Naarada – A Bridge between devotion and music	Voleti Chandrika Sailaja	402
78.	The Folk Art Form 'Maruni' (3170 word)	Ms. Kaushila Chettri Dr. Santosh Kumar	409
79.	गणितीय सूत्रों द्वारा फरमाईशी चक्रदार और कमाली चक्रदार बनाने का सिद्धांत	डॉ. संदीप कुमार पटेल	416
80.	तराना गायन–शैली में उस्ताद अमीर खां का योगदान	सुरेश कुमार डॉ. शुचिस्मिता शर्मा	421
81.	नाट्य एवं कला के माध्यम से अधिगम प्रक्रिया में अध्यापकों की भूमिका (राष्ट्रीय शिक्षा–नीति–2020 के संदर्भ में)	वंदना कुमारी डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र	425
82.	शास्त्रीय संगीत का अन्य विषयों से अन्तरानुशासनिक सम्बन्ध	सविता मौर्या डॉ. गौरीप्रिया सोमनाथ	428
83.	संप्रेषण–माध्यम के रुप में चित्रकला रूपों की समाज में भूमिका	धर्मवीर सिंह	432
84.	मैहर घराने के अलाउद्दीन खाँ का संगीतिक योगदान	प्रज्ञा सिंह डा० शोभित कुमार नाहर	436
85.	बिहार में ध्रुवपद–गायन के घरानों के मुख्य कलाकार	रेखा कुमारी डॉ. किरण सिंह	438
86.	बांग्ला रंगमंच के प्रथम निर्देशक	सुब्रत कुमार माजी	441

उत्तराखण्ड के लोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो0 आशा पाण्डे**

हिमिका नेगी*

संक्षेपण

उत्तराखण्ड के लोकसंगीत में अंतर्निहित सांगीतिक विशिष्टता यहाँ की लोकसंस्कृति की झलकियाँ विश्व पटल पर उकेरने में सक्षम रही है। सरलता एवं अकृत्रिमता में निःसृत लोकसंगीत यहाँ के जनमानस के व्यवहार एवं अनुभवों का निष्पक्ष अवलोकन करता है। इन लोकगीतों में उत्तराखण्ड के जनसाधारण के विचारों, भावनाओं, मानसिक क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति है। उत्तराखण्ड के लोकगीतों में उत्तराखण्ड के सुलभ दर्शन उनका एक अभिलाक्षणिक गुण है। ये लोकगीत उत्तराखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य का रसमय गुणगान तो करते हैं अपितु यहाँ के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि की सांगीतिक अनुश्रुति भी हैं। उत्तराखण्डी समाज सामूहिक भावना से अनुबद्ध है। यह सामुदायिकता लोकजीवन में निमग्न उनके सभी उत्सवों, अनुष्ठानों एवं लोकत्यौहारों आदि अवसरों को रेखांकित करती मूल भावना है। लोक संस्कृति को जीवंत एवं गतिशील रखती लोककला संघर्षमय एवं अभावग्रस्त लोक–जीवन में सुन्दर रंग भरने का कार्य करती है। लोकसंस्कृति का नैसर्गिक चित्रण लोकसंगीत और लोककथाओं में जिस सरलता एवं सुपरिष्कृत रूप में प्राप्त होता है वह अन्यत्र अतिदुर्लभ है। अतः उत्तराखण्ड की लोकसंस्कृति को सम्पूर्णता से समझने के लिए उसकी गोद में पनपते लोकसंगीत का उपभोग करना बुनियादी प्रतीत होता है। लोकगीत जनसाधारण का मनोभाव हैं, अतः यह मानव के गूढ़ भावनात्मक पक्ष का साहित्यिक एवं सांगीतिक अनुवाद हैं। अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखण्ड के लोकगीतों के क्षेत्रीय विश्लेषण द्वारा लोक संगीत में लोक की आस्था, विश्वास, ध्येय एवं ध्यान के वस्तुगत दर्शन प्राप्त करना है।

सूत्र शब्द : *लोकगीत, गढ़वाली, कुमाऊँनी, जौनसारी, उत्तराखण्ड।*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों का इस शोध–पत्र में उपयोग किया गया है ।*

उत्तराखण्ड राज्य की भौगोलिक स्थिति 28^{0}43′ उत्तर से 31^{0}28′ उत्तरी अक्षांश तथा 77^{0}32 पूर्व से 81^{0}02′ पूर्व देशान्तर के मध्य में है। राज्य का कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग कि.मी. है जो सम्पूर्ण हिमालय पर्वतीय प्रदेश का 10ः है। उत्तराखण्ड प्रदेश की सीमाएं उत्तर में तिब्बत और पूर्व में नेपाल, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश एवं दक्षिण में उत्तर प्रदेश से मिलती हैं। राज्य को दो कमि नरियों– गढ़वाल और कुमाऊँ, एवं 13 जनपदों में संयोजित किया गया है। पं0 हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, शास्त्रों में भारत वर्ष का उत्तरी हिमालय प्रदेश पाँच खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड नेपाल प्रदेश, दूसरा खण्ड कूर्मांचल (कुमाऊँ), तीसरा खण्ड केदारखण्ड (गढ़वाल), चौथा खण्ड जालंधर अर्थात् पंजाब का पर्वतीय भाग और पाँचवा खण्ड कश्मीर है। उपर्युक्त पाँच खण्डों में से केदारखण्ड एवं कूर्मांचल वर्तमान में उत्तराखण्ड के गढ़वाल और कुमाऊँ क्षेत्र के रूप में जाने जाते हैं। उत्तराखण्ड राज्य के सांस्कृतिक धरोहर की व्यापकता को आविर्भूत करता इस राज्य का पश्चिमी भाग है जो स्वयं में एक सांस्कृतिक क्षेत्र है। इस सांस्कृतिक क्षेत्र के तीन भाग हैं– रवांई, जौनसार–बावर एवं जौनपुर जो मिलकर इस क्षेत्र को रचते हैं। इनमें न सिर्फ भौगोलिक निकटता है अपितु सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों एवं भाषा–परम्परा की भी समानता है।

उत्तराखण्ड के लोकसंगीत के तीन अवयवों– गीत, नृत्य एवं वाद्य में लोकगीतों की मौखिक परम्परा अति प्राचीन है। प्रत्येक गीत एवं नृत्य विभिन्न अवसरों के अनुसार विशेष है, जैसे– संस्कार गीत, ऋतु प्रधान गीत, धार्मिक गीत, खुदेड़ गीत आदि का महत्व अवसर विशेष पर निर्भर करता है। उत्तराखण्ड के लोकसंगीत में प्रयुक्त वाद्य–यंत्र भी यहाँ के संगीत को पृथक कर उसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। ढोल–दमाऊँ, तुरी (तूर्य), रणसिंघा, थाली,

*शोधार्थी, संगीत विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड।
**विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड।

ढोल्की, हुड़का, डौंर, मोछंग, खड़ताल, घुंघरू, घड़ियाल, भाणु, झांझ, मंजीरा आदि यहाँ के मुख्य वाद्य–यंत्र हैं जो गीत एवं नृत्य के साथ संगत में प्रयोग होते हैं।

उत्तराखण्ड राज्य के लोकगीतों का अध्ययन करने से पूर्व विभिन्न शास्त्रकारों द्वारा किए गये वर्गीकरण पर प्रकाश डालना महत्वपूर्ण है। विभिन्न विद्वानों ने इस वर्गीकरण की प्रक्रिया में अपने क्षेत्र विशेष के लोकगीतों का ही वर्गीकरण किया है, डॉ0 गोविन्द चातक ने गढ़वाल क्षेत्र के लोकगीतों को वर्गीकृत किया है। डॉ0 चातक ने गढ़वाली गीतों का शास्त्रीय वर्गीकरण के अन्तर्निहित निम्न वर्गीकरण किया है[1]–

1) धार्मिक लोकगीत, 2) संस्कार गीत, 3) ऋतु गीत, 4) प्रणयगीत, 5) लोकगाथात्मक गीत, 6) विविध गीत

इसी क्रम में डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली लोकगीतों को शैली विशेष एवं रस की दृष्टि से 12 वर्गान्तर्गत विभाजित किया है[2]–

1) माँगल गीत 2) झुमैलो 3) थड़्यागीत 4) बाजूबन्द 5) खुदेड़ 6) चौंफुला 7) कुलाचार 8) बारामासा 9) चौमासा 10) पट 11) सामयिक गीत 12) राष्ट्रीय गीत

डॉ0 त्रिलोचन पाण्डेय ने प्रधानता के अनुरूप विभिन्न कुमाऊँनी लोकगीतों को मुक्तक गीत, संस्कार गीत, ऋतु गीत, कृषि गीत, देवी–देवता व व्रत त्यौहारों के गीत एवं बाल गीत, इन छः वर्गों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है एवं प्रत्येक वर्ग का उपवर्गीकरण भी बताया है।[3]

लोकगीतों के इन सभी वर्गीकरणों में यह समानता है कि ये सभी विषयानुसार वर्गीकृत किए गये हैं। विषयानुसार वर्गीकरण के सम्बन्ध में डॉ. तुष्टि मैठानी का मत है– "लोकगीतों का विषयानुसार वर्गीकरण अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही विषय की सीमा के अन्तर्गत समाविष्ट है।"[4]

उत्तराखड के गढ़वाल, कुमाऊँ एवं जौनसार क्षेत्र बोली–भाषा में भिन्न हैं। गढ़वाल में गढ़वाली, कुमाऊँ में कुमाऊँनी एवं जौनसार में जौनसारी भाषा का प्रचलन है। अतः यह लोकगीत मुख्यतः कुमाऊँनी, गढ़वाली एवं जौनसारी बोली में प्रचलित हैं। इन क्षेत्रों के लोकगीत उनकी पृथक लोकसंस्कृति के होते हुए एकजुटता में उत्तराखंड की अगाध लोकसंस्कृति को दर्शाते हैं। उत्तराखण्ड की लोकसंस्कृति की ये शाखाऐं इस वृक्ष की जड़ों को पोषित भी करती हैं एवं उत्तराखण्डी जनमानस की समान विचारधारा एवं संघर्षों की खाद से ही पल्लवित एवं पुष्पित भी होती हैं। उत्तराखण्ड के लोकगीतों को मुख्यतः तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है–

1. गढ़वाली लोकगीत
2. कुमाऊँनी लोकगीत
3. जौनसारी लोकगीत

गढ़वाली लोकगीत

उत्तराखण्ड का गढ़वाल क्षेत्र न सिर्फ उत्तराखण्ड का अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष की आस्था का धार्मिक केन्द्र है। 'देवभूमि' से अलंकरित यह तीर्थ स्थलों की भूमि अपने वातावरण की भक्ति एवं सौन्दर्य बोध से आद्र सौंधाहट से जन–जन को परितृप्त करती है। प्रकृति के अंचल में, ध्यानाधीन ऋषि–मुनि और योगियों के सानिध्य में देवी–देवताओं के आह्वाहन में एवं जनसाधारण की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में गढ़वाली लोकगीतों का बीज रोपित है। गढ़वाल क्षेत्र के मुख्य लोकगीत इस प्रकार हैं–

मांगल : जीवन के 16 संस्कारों (जन्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, जनेऊ, विवाह, मृत्यु आदि) पर मंगलकामना के लोकगीत मांगल गीत कहलाते हैं। गढ़वाल में देवी–देवताओं के आह्वाहन और शुभेच्छाओं के साथ मंगल कार्यों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न किया जाता है, मांगल लोकगीतों का गायन इसी का अवयव है। मांगल गीतों का गायन कुलवधुओं द्वारा या आवाजी–वादकों की कुल–लक्ष्मियों द्वारा जिन्हें 'मंगल्यानी' कहते हैं, किया जाता है।[5]

जागर : जागर धार्मिक लोकगीत की श्रेणी में आते हैं। इन लोकगीतों का गायन धार्मिक अनुष्ठानों के समय पूर्ण विधि–विधानों का पालन करते हुए सचेतता के साथ, त्रुटिरहित ढंग से जागरियों द्वारा किया जाता है। जागरी को धामी भी कहा जाता है। जागर लोकगीतों में नृसिंह, नागराजा, नारायण, शिवजी, भगवती, हनुमान, रघुनाथजी, भैरों, घंटाकर्ण आदि इष्ट देवी–देवताओं का पूजन किया जाता है। पंवाड़ा (वीर गाथा), रणभूतों के एतिहासिक कथानक, पांडवो से सम्बन्धित लोक गाथाऐं

आदि भी जागर गीतों की विषय–वस्तु हैं एवं इनमें सम्मिलित हैं।[6] जागर में मुख्यतः डौंर, हुड़का, थाली, ढोल्की एवं ढोल–दमौं की संगत होती है।

थड्या : थड्या लोकगीत बसंत पंचमी से विषुवत् संक्रांति तक गाये जाने वाले ऋतु प्रधान गीत हैं। यह एक नृत्य गीत है, जिसमें गायन एवं नृत्य सामूहिक रूप से होता है। नवयुवतियाँ अथवा नर्तक समूह वृत्ताकार में दो–कदम आगे और दो–दो कदम पीछे चलकर नृत्यगीत प्रारम्भ करता है।[7] थड्या लोकगीत प्रकृति, जीव–जन्तु, लोकगाथा, देवी–देवता एवं रीती–रिवाज आश्रित गीत हैं। संगत के लिए हुड़का, घुंघरू, ढोल्की, मोछंग वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।[8]

चौंफुला : चौंफुला का शाब्दिक अर्थ चारों ओर फूलों के समान प्रफुल्लित होना है। पौराणिक मान्यता है कि माता पार्वती हिमालय पर चौंरी चौपाल बनाकर सखियों संग यह नृत्य करती थी। श्रृंगार रस प्रधान यह गीत मुख्यतः दादरा ताल में निबद्ध होता है एवं संगत के लिए रणसिंघा, थाली, डमरू, हुड़का, आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। थड्या के समकक्ष यह समृद्ध लोकगीत भी बसंत पंचमी से विषुवत् संक्रांति तक गाया जाता है।

बसंती : बसंती ऋतुगीत बसंत ऋतु की अतुलनीय शोभा का वर्णन करते गीत हैं। ऋतु बसंत में प्रकृति की अनूठी छटा की आंनदमयी अनुभूति जब मानव के हृदयमें हर्ष एवं उल्लास का संचार करती है तो बसंती लोकगीतों का गायन होता है। इन गीतों में प्रायः बसंत ऋतु के लौट आने और उनमें खिलने वाले फूलों और लता–द्रमों के मुकुलित–पुष्पित होने की बात मुख्य रूप से कही जाती है।[9]

खुदेड़ : खुदेड़ गीत स्मृति के गीत हैं जो विरह की वेदना को दर्शाते हैं। 'खुद' शब्द का तात्पर्य अपने प्रियजनों से विरह होने पर उनसे मिलने की गंभीर भावात्मक उत्कंठा से है। खुदेड़ गीतों में प्रकृति वर्णन के संयोजन में विरह से व्याकुल कुण्ठित हृदयका उद्‌गार है। विवाहित जीवन में वियोग से उपजी मानसिक क्षुधा के दंश, पहाड़ी जीवन से जुड़े कष्ट, पति का प्रवसन, सास के कटुवचन, अभाव का जीवन ये सभी भाव इन गीतों से प्रकट होते हैं।

झुमैलो : थड्या एवं चौंफुला के अतिरिक्त झुमैलो गीत भी बसंत पंचमी से विषुवत् संक्रांति तक गाये जाते हैं। थड्या की भांति यह भी नृत्य गीत हैं परन्तु विषयवस्तु की दृष्टि से यह खुदेड़ गीतों के निकट हैं। अतः झुमैलो लोकगीत भी विवाहित किशोरियों के गीत हैं जो व्याकुल मन एवं कठिन परिस्थितियों के होते हुए जीवन के सुखद क्षणों की अनुभूति को तत्पर रहती हैं।

चैती : चैती लोकगीत चैत्र मास में गाये जाने वाले गीत हैं। आवजी द्वारा ढोल–दमों संग गाये जाने वाले ये गीत विभिन्न गाथाओं एवं वार्ताओं पर आधारित होते हैं। आख्यान गीतों में कुछ प्रमुख गीत चैती पँसारा एवं चैत्वाली नाम से प्रचलित हैं। चैत्र के वासन्ती सौन्दर्य का अभिनन्दन करते ये लोकगीत मन में हर्षोल्लास एवं आनंद का संचार करते हैं।

होली : बसंत ऋतु में होली के त्यौहार में होली गीतों का गायन कर यह त्यौहार मनाया जाता है। मूलतः इन गीतों में ब्रजभाषा का ही समावेश होता है वरन् इनको गढ़वालीकृत कर प्रस्तुत किया जाता है। इन गीतों को ढोल्की, झाँज, करताल, खड़ताल, मंजीरे, खंजड़ी, भाणु आदि साज के साथ नृत्यगीत की तरह निभाया जाता है। गढ़वाल के होली नृत्यगीतों में इस त्यौहार के उमंग, चांचल्य और अठखेलियों का चित्रण मिलता है।

चौमासी : गढ़वाल के वर्षा ऋतु सम्बन्धी लोकगीत चौमासी लोकगीतों के अन्तर्गत आते हैं। वर्षा ऋतु में घनघोर कोहरे का अंधकार मन में उत्साहहीनता एवं विरह के भावों को जागृत करता है एवं घसियारियाँ विरह वेदना के गीत गाकर अपने मन की उदासी को अभिव्यक्त करती है। सावन–भादों में गढ़वाल में प्रकृति हरियाली का आवरण ओढ़ लेती है एवं चतुर्मास में प्रकृति का यह रूपातंरण भी इन गीतों में परिलक्षित है। अतः ये लोकगीत संयोग–वियोग का विशेष उदाहरण हैं।

बारामासा : बारामासा लोकगीतों में गढ़वाली स्त्रियों द्वारा बारह महीनों में छः ऋतुओं एवं उनके लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। इन गीतों में वर्ष के बारह महीनों के ऋतु परिवर्तन एवं इनके निहित प्रकृति से रूपातंरण के साथ गढ़वाली खेतिहर एवं घसियारी का साहचर्य उल्लेखित मिलता है। गढ़वाल के त्यौहारों, मेलों, खेती एवं फसलों आदि का वर्णन भी इन गीतों में सम्मिलित होता है।

छोपती : छोपती गढ़वाल का नृत्यगीत है जिसे नर्तक–नर्तकियाँ सामूहिक रूप से नृत्य करते हुए गीत के माध्यम से संवाद स्थापित करते हुए करते हैं। यह प्रणयगीत संवाद–प्रधान गीत है, जिसमें नर्तक–नर्तकियों के बीच उत्तर–प्रत्युत्तर विशेष रूप से परिलक्षित होता है।

बाजूबन्द : बाजूबन्द भी प्रणय गीत है जिसमें मुख्यतः प्रेमी–जनों का प्रेम–संवाद मुखरित होता है। इन लोकगीतों में परिस्थिति के अनुरूप मानव–प्रेम के विभिन्न आयाम निबद्ध होते हैं, जिनको प्रेमी–प्रेमिका प्रकृति के मनोरम परिवेश में एकान्त में प्रकट करते हैं।

कुमाऊँनी लोकगीत

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण यह मनोरम क्षेत्र अपने सांस्कृतिक वैभव के लिए भी विशिष्ट है। कुमाऊँ की संस्कृति को वर्णित करते हुए डॉ. उर्बादत उपाध्याय लिखते हैं "पर्व, उत्सव तथा त्यौहार एक–दूसरे के साथ इस प्रकार घुले–मिले हैं कि इससे सारा लोकजीवन अपनी लोकसंस्कृति की एक विशिष्टता धारण किए हुए हो यहां का कष्ट साध्य जीवन भी रंगीन है, कठोर होते हुए भी सरस है"।[10] कुमाऊँनी लोकसंगीत भी गढ़वाली लोकसंगीत के समान पर्वतीय खेतीहर के सरल एवं संघर्षपूर्ण जीवन एवं उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, पौराणिक परिवेश को प्रतिबिंबित करता है। कुमाऊँ क्षेत्र के प्रमुख लोकगीत इस प्रकार हैं–

चांचरी : यह प्राचीन लोक विधा पर आधारित नृत्य–गीत है जिसमें गीत के संग नृत्य भी इसका अंग होता है। गढ़वाल में चांछड़ी नाम से प्रचलित यह सामूहिक नृत्य गीत कुमाऊँ में पर्व, उत्सवों एवं स्थानीय मेलों में गाया जाता है। नर्तकों की संख्या 5–6 से 100–200 तक हो सकती है जो वृत्ताकार घेरा बनाकर एक–दूसरे के कमर या कन्धों में हाथ डालकर अपने कदमों को साथ में चलाते हुए गीत गाते हुए लयात्मक ढंग से ताल पर नृत्य करते हैं। भक्ति एवं श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति वाले यह गीत हुड़का वाद्य की संगत में गाये जाते हैं।

झोड़ा : चांचरी के समप्रकृति यह नृत्य गीत भी सामूहिक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। स्त्री–पुरूष वृत्ताकार घेरा बनाकर एक–दूसरे के कमर एवं कन्धों में हाथ रखकर लयात्मक ढंग से पद–संचालन कर इस नृत्य गीत का प्रदर्शन करते हैं। डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय झोड़ा को झटित शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं। द्रुतलय के साथ तीव्रता से पद संचालन इसे आकर्षक बनाता है।[11] ढोल, नगाड़ा, हुड़का, दमामा आदि वाद्य–यंत्रों की संगत झोड़ा नृत्य गीत में होती है। चांचरी एवं झोड़ा के समान 'ढुस्का' भी एक सामूहिक नृत्य गीत है।

छपेली : क्षिप्र अथवा त्वरित गति से व्युत्पन्न छपेली द्रुत गति बद्ध नृत्य गीत है। गीत की बढ़त लय–वैविध्य के साथ होती है। अन्य नृत्य गीतों के भांति यह भी लोकोत्सवों, पर्वों एवं मेलों आदि में कुमाऊँ की संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। हुड़का एवं बांसुरी संगत के वाद्य की तरह प्रयोग होते हैं। गीतों में श्रृंगार रस की प्रधानता से उत्साह एवं प्रेम आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है।

हुड़की बौल : हुड़की–बौल एक कृषि विषयक गीत है, जिसका अर्थ 'हुड़क' अर्थात 'हुड़का' नामक वाद्य एवं 'बौल' अर्थात 'श्रम' से बोधित होता है। 'हुड़किया' यह गीत खेतों में श्रम करते स्त्री–पुरूषों को प्रोत्साहित करने के लिये गाते हैं। वह हुड़की के साथ गीत गाता है, जिसमें वह देवी–देवताओं से अच्छी फसल की कामना करता है।

न्यौली : गढ़वाल के खुदेड़ गीत के समान न्यौली एकाकी मनुष्य के मनोभावों एवं मृदु–कल्पनाओं का भावावेग है। डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय न्यौली का व्युत्पादन नवेली शब्द से मानते हैं।[12] नयी नवेली बहु ससुराल में विरह–वेदना के भार से आक्रान्त, बांझ–बुरांश के जंगलों में अपने ह्रदयोद्गार को अभिव्यक्त करती है। न्यौली कोयल की एक प्रजाति भी है। मान्यता है कि न्यौली अपने प्रियतम की विरह–वेदना में वन–कानन में भटकती फिरती है। न्यौली की गायन शैली विशिष्ट है, जिसमें चौदह वर्णों के मुक्तक छन्दों का आलाप के साथ गायन किया जाता है। विषय–वस्तु की दृष्टि से प्राकृतिक चित्रण एवं मानवीय संवेदना प्रमुख है। बांसुरी की मार्मिक धुन के साथ न्यौली अत्यंत भावपूर्ण प्रतीत होती है।

बैर : 'बैर' शब्द से ही प्रत्यक्ष होता है कि यह एक द्वन्द अथवा संघर्ष का द्योतक है। वस्तुतः यह संघर्ष दो पक्षों के बीच में होता है। यह तर्क प्रधान मुक्तक गीत दो पक्षों के बीच गेय वाक्–युद्ध है, जिसमें प्रश्नोत्तर के

माध्यम से वाद–विवाद करते हैं। बैर गीतों में बैरी किसी सामयिक घटना विशेष, जाति, धर्म, सामाजिक–ऐतिहासिक विषयादि पर आधारित प्रश्न दूसरे पक्ष के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। लोकोत्सवों एवं मेलों में बैरी हुड़का एवं चिमटा वाद्यों की संगत भी करते हैं।

फाग / शकुनाखर : कुमाऊँनी संस्कृति में जीवन के विभिन्न संस्कारों से सम्बन्धित गीतों का विशिष्ट स्थान है। जन्म, नामकरण, विवाह, चूड़ाकर्म आदि संस्कारों में यह मंगल गीत गाये जाते हैं। यह गीत विशेषकर स्त्रियों द्वारा समूह में गाये जाते हैं। इन ताल–रहित गीतों में किसी साज की संगत की प्रथा नहीं है।

रवाँई, जौनपुर, जौनसार–बावर के लोकगीत

महाभारत कालीन समाज के अंशों का पारदर्शी यह समाज आज भी पाण्डवों की जीवन–शैली का अनुकरण करते दिखता है। द्रौपदी प्रथा (बहुपति प्रथा) इसका एक विशिष्ट उदाहरण है। पुरातात्विक दृष्टि से वैभवशाली यह भू–भाग कालसी के अशोक शिलालेख, लाखामण्डल आदि के लिये प्रख्यात है। रवांई, जौनपुर क्षेत्र की भाषा एवं लोकगीतों में जहां गढ़वाल का प्रभाव प्रतिबिंबित होता है वहीं जौनसार–बावर की भाषा एवं लोकगीत हिमाचल प्रदेश से निकटता के परिणामस्वरूप सिरमौरी संस्कृति से अछूते नहीं रहे हैं। रवांई, जौनपुर, जौनसार–बावर के प्रमुख लोकगीतों का वर्णन इस प्रकार है–

हारूल : हारूल इस क्षेत्र का नृत्य–गीत है। यह गीत प्रेम–प्रसंगों, वीर गाथाओं, देव–गाथाओं आदि को मुक्तक छन्द में प्रस्तुत करते हैं। मेले, त्यौहारों व उत्सवों में हारूल गीत हर्षोल्लास का संचार करते हैं। दीपावली के पर्व पर हारूल नृत्य–गीत की विशेष प्रथा है। यह ढोल–दमाऊँ के साथ खुले आँगन में गाया जाता है।

छूड़ा : इन लोकगीतों में लोक गाथाओं के लघु या वृहद, दोनों प्रकार से चित्रण प्राप्त होते हैं। उपदेशात्मक एवं नीतिपरक रीति में रचित ये गीत, रवाँई, जौनपुर एवं जौनसार क्षेत्र के वृहद–दर्शन देते हैं। छूड़ा लोकगीत चरवाहों के गीत हैं। भेड़ चराने गए चरवाहे इन गीतों में प्राकृतिक सौन्दर्य एवं लोकगाथाओं के साथ–साथ अपने घर से विरह, पहाड़ों की कष्टपूर्ण परिस्थितियों एवं पशुचारक समुदाय के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों को प्रतिबिंबित करते हैं।

लामण : लामण गीत मुख्यतः प्रेमाभिव्यक्ति एवं मनोविनोद के साधन मात्र प्रतीत होते हैं परन्तु इन गीतों में व्याप्त प्रज्ञात्मक वैशिष्ठ्य इनको और अधिक गाम्भीर्य प्रदान करता है। वस्तुतः ये गीत स्त्री के सौन्दर्य एवं प्रेम की उत्कंठा को सुन्दर काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं एवं यह इन गीतों की विशेषता भी है। लामण गीत मुख्यतः रवाँई, जौनसार में त्यौहारों के अवसर पर गाये जाते हैं एवं इनके साथ नृत्य भी किया जाता है।

झैंता : झैंता नृत्य–प्रधान लोकगीत है। मुख्यतः स्त्रियों द्वारा वृत्ताकार घेरा बनाकर एक हाथ दूसरे की कमर पे व पद–संचालन करते हुए नृत्य किया जाता है। यह नृत्य नर्तकियों को जीवन की विषमता एवं संघर्षो से विस्मृत कर उन्हें हर्ष एवं आनन्द से ऊर्जित कर देता है। नृत्य–गीत के साथ ढोल–दमों की संगत होती है।

ताँदी : ताँदी इस क्षेत्र का लोकप्रिय नृत्य–गीत है। इसमें स्त्री–पुरूष द्वारा श्रृंखलाबद्ध रूप में एक दूसरे के हाथ पकड़कर वृत्ताकार घेरे में घूमते हुए नृत्य किया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण में यह जोड़ना आवश्यक है कि संस्कार गीतों एवं जागर गीतों का प्रचलन गढ़वाल, कुमाऊँ एवं जौनसार में एकरूपेण ही प्रदर्शित होता है। कुमाऊँ में प्रत्येक संस्कार के लिए विभिन्न गीतों का प्रचलन है, अपितु गढ़वाल में मुख्यतः विवाह–संस्कार में माँगल गीतों का ही प्रचलन है। कुमाऊँ के संस्कार गीतों में विषय की विस्तृत विविधता के अनुरूप कुमाँऊनी लोकसंगीत में अन्तर्निहित संपन्नता का आंकलन किया जा सकता है। यहाँ के होली गीतों में रागचारी का आभरण इन्हें उत्तराखण्ड के अन्य होली लोकगीतों से पृथक् करता है। फूलदेई, होली एवं छपेली लोकगीत गढ़वाल एवं कुमाऊँ में समानरूप से गाये जाते हैं। छोपती एवं बाजूबन्द का प्रचलन गढ़वाल के अतिरिक्त जौनसार में भी प्रचुर है।

निष्कर्ष :

यह कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड के लोक मानस के समान अनुभवों एवं विषमताओं के फलस्वरूप उनके मन

से प्रस्फुटित भाव वस्तुतः समान ही हैं चाहे वह गढ़वाल, कुमाऊँ में हो अथवा जौनसार में। बोली भेद ही इन गीतों को भिन्न बनाता है, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से कुमाऊँ, गढ़वाल एवं जौनसार क्षेत्र में नगण्यभेद है। लोकगीतों में निहित स्वर, लय एवं ताल हृदय को इस प्रकार उद्दीप्त करते हैं, कि वह भावाभिव्यक्ति नृत्य का रूप धारण कर लेती है। इन लोकनृत्यों में लय एवं ताल के अनोखे समावेश से एक विचित्र आत्मिक ऊर्जा का प्रवाह होता है जो मानवीय अभिव्यंजना से सक्रिय कलात्मक प्रदर्शन में परिवर्तित हो जाती है। गीत–नृत्य की धुन एवं लय में वह अपनी सभी मानसिक उत्कण्ठाओं एवं शारीरिक अवसादन से मुक्ति का क्षणिक एहसास लेकर पुनः अपने को जीवन की प्रताड़नाओं के लिए तैयार करता है। सरल कर्मशील जीवन की उसी चित्तवृत्ति का आविर्भाव हैं, उत्तराखण्ड के लोकगीत ।

सन्दर्भ सूची :

1. चातक, डॉ. गोविंद, गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. सं. 13
2. 'शैलेश', डॉ. हरिदत्त भट्ट, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ. सं. 182
3. पाण्डेय, डॉ. त्रिलोचन, कुमाऊँ का लोक साहित्य, पृ. सं. 75
4. मैठानी, डॉ. तुष्टि, भारतीय आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में गढ़वाली लोक संगीत, पृ. सं. 1..
5. चातक, डॉ. गोविंद, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ. सं. 134
6. 'अरूण', डॉ. नन्द किशोर ढौंडियाल, गढ़वाली जागर लोकगीत तथा प्रक्रिया, पृ. सं. 45
7. सहगल, डॉ. सुधा, ममगाईं, डॉ. शिखा, पौड़ी गढ़वाल के लोक संगीत का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. सं. 1.4
8. बड़थ्वाल, डॉ. माधुरी, गढ़वाली लोकगीतों में राग–रागिनियाँ, पृ. सं. 7.
9. चातक, डॉ. गोविंद, गढ़वाली लोकगीत, पृ. सं. 13
10. उपाध्याय, डॉ. उर्बादत्त, कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. सं. 62
11. पाण्डेय, डॉ. त्रिलोचन, कुमाऊँनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि, पृ. सं. 177
12. पूर्वोक्त, पृ. सं. 156

राग केदार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास

डॉ. हरविंदर सिंह** **रामभजन बेदी***

सार

राग केदार भारतीय संगीत परंपरा का एक प्राचीन तथा अद्वितीय राग है। इस राग का नाम भगवान शिव के साथ भी जोड़ा जाता है। वर्तमान समय में शायद ही कोई गायक या वादक होगा जो इस राग से अपरिचित होगा। प्राचीन ग्रंथों में राग केदार के विषय में विभिन्न ग्रंथकारों के अनेक मत हमें प्राप्त होते है। संगीत रत्नमाला (8वीं शताब्दी) में इस राग का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। इसके बाद से कवियों, धर्म ग्रंथों, संगीत शास्त्रियों; हिन्दी से लेकर संस्कृत, पंजाबी, उर्दू, पर्शियन आदि अनेक ग्रंथों में केदार का स्वरूप वर्णन या रचनाएँ प्राप्त होती है। 'गीतगोविंद' के यशस्वी लेखक जयदेव की अष्टपदियों में भी केदार में कुछ रचनाएँ दी गई हैं, सूरदासकृत 'सूरसागर' में भी केदार में अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। धर्मग्रंथों में 'श्रीकलिका पुराण', 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में भी इसका उल्लेख और स्वरूप वर्णन मिलता है। उर्दू और पर्शियन ग्रंथ 'किताब नौरस', 'रिसाला ए मूसिकी', 'मअदन् उल् मूसिकी' आदि में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत रत्नमाला', 'सद्रागचंद्रोदय', 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' आदि इसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं। इन ग्रंथों में व्याप्त राग केदार के प्राचीन स्वरूप से लेकर आधुनिक काल तक के स्वरूप का विकास भी अध्ययन के दृष्टिकोण से एक ज्वलंत विषय सिद्ध हो जाता है। इस शोध पत्र में इसी विषय को केंद्रबिंदु मानकर विभिन्न ग्रंथों में से राग केदार के स्वरूप की विकास–यात्रा का अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द : *राग–रागिनी, मेल, लक्षण, रागांग ।*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लिए द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

राग केदार रागदारी संगीत में प्राचीन काल से विद्यमान है। अनेक ग्रंथों में केदार और इसके अनेक प्रकार हमें दृष्टिगोचर होते है लेकिन बहुत से प्रकार हमें प्राचीन और मध्याकालीन ग्रंथों में ही प्राप्त हो जाते है। इसलिए मैने अपने अध्ययन के लिये संगीत–ग्रंथों को आधार मानकर ही केदार के परवर्ती स्वरूप का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। हर ग्रंथकार ने इस राग और उनके प्रकारों का विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों तथा विचारधाराओं के अंतर्गत किया है। इनमें राग रागिनी वर्गीकरण, मेल राग वर्गीकरण, रागांग राग वर्गीकरण तथा थाट राग वर्गीकरण मुख्य है। हर दृष्टिकोण में कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ है, जिस कारण से यह अध्ययन और भी रोचक हो जाता है। विशेष रूप से उत्तर तथा दक्षिण के ग्रंथकारों के द्वारा केदार का वर्णन कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करता है।

प्राचीन काल

यह तो सर्वविदित है कि 'राग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मतंग मुनि ने अपने ग्रंथ 'बृहदेशी' में किया। इससे पहले जाति गायन की परम्परा का ही प्रचलन हमें दिखाई पड़ता है। राग केदार की प्राचीनता के प्रमाण भी हमें इन्हीं के समकालीन ग्रंथकारों से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं जिन्हें काल–क्रमानुसार रखकर विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किया गया है–

संगीत रत्नमाला

इस ग्रंथ के रचनाकार ममठाचार्य हैं तथा इसका रचनाकाल 8वीं शाताब्दी का माना गया है।[1] इस ग्रंथ की मूल प्रति तो प्राप्त नहीं होती । लेकिन 'संगीत नारायण' ग्रंथ में राग–रागिनी वर्गीकरण में 'संगीत रत्नमाला' का मताधार लिया गया है जिसमें उन्होंने केदार को मालव

*शोधार्थी, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्विद्यालय, कुरुक्षेत्र
**असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्विद्यालय, कुरुक्षेत्र

राग की स्त्री के रूप में माना है अर्थात् केदार को रागिनी का दर्जा दिया गया है। इस ग्रंथ की महत्वता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि राग–रागिनी वर्गीकरण तो स्त्री–पुरूष और नपुंसक रागों के नाम से हमें नारद के 'संगीत मकरंद' प्राप्त होता है, लेकिन 'रागिनी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हमें इसी ग्रंथ में प्राप्त होता है। केदार का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है–

"शिरी केदार संज्ञा च मेघमार्जनिका तथा ।
कन्धूश्चिन्ता चलवणी मालवस्यैव नायिकाः।।"[2]

गीत गोविंद

गीतगोविंद के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत जगत दोनों में ही बड़े आदर के साथ लिया जाता है । इस ग्रंथ का रचनाकाल 12वीं शाताब्दी का माना जाता है। इनके ग्रंथ में कुल 24 अष्टपदियां हैं जिसमें प्रत्येक अष्टपदीं में आठ चरण होते हैं। इसकी रचना उन्होने अलग–अलग राग और तालों में की है। इन अष्टपदियों के लिए जयदेव ने निम्न रागों का चयन किया है–

1. मालव 2. गुर्जरी 3. बसंत 4. रामकरी 5. देशाख 6. वराडी 7. केदार 8. गुणकरी 9. गौड मालव 10. भैरवी 11. देशीवराडी 12. विभास

गीत–गोविंद में भी रागों का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है तथा केदार राग के लक्षण भी प्राप्त नहीं होते। लेकिन पंडित भातखंडे के मतानुसार जयदेव के राग लक्षणों का अवलोकन 'राग तरंगिणी' की सहायता से किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि लोचन और जयदेव दोनों ही मिथिला देश के कवि थे तथा लोचन को जयदेव के रागों के बारे में बिल्कुल जानकारी नहीं थी, ऐसा तो नहीं माना जा सकता। पंडित भातखंडे के अनुसार "लोचन पंडित के लक्षण जयदेव के रागों के अधिक निकट होंगे, इस बात पर विद्वानों का सहमत होना सम्भव है। लोचन ने रागों के थाट स्पष्ट दिये हैं तथा हृदयनारायण देव ने ही थाट लेकर लोचन के रागों के लक्षण कहें है, यह भी अच्छा हुआ है। लोचन मिथिला का कवि तथा पंचगौड़ का होने के कारण उसके मत को मान्यता देना युक्तिसंगत भी होगा। उसके समय में जयदेव के अष्टपद अवश्य प्रचार में होंगें।"[3]

पंडित भातखंडे ने आगे इसका विवेचन निम्न प्रकार से किया है–

"केदार– इस राग का मेल जो लोचन ने कहा है, वह अपना बिलावल है और इसके लक्षण इस प्रकार दिए है–

"गमौ पसौ निधपग मरिसा इति सुस्वराः।
केदारो रागराजन्यः संपूर्णः कथितो बुधैः । कौतुके।।"[4]
'केदारः सम्पूर्णौं गादिमूर्छनाः। प्रकाश।।"[5]

इससे यह माना जा सकता है कि केदार का स्वरूप 12वी शाताब्दी में हमारे आधुनिक बिलावल के स्वरों में था। उपरोक्त श्लोक के अनुसार यह राग सम्पूर्ण जाति का बताया गया है तथा जिसका चलन निम्नांकित हैः–

'ग म प सं नि ध प ग म रे सा।"

संगीत रत्नाकर

यह भारतीय संगीत पद्धति के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। इसका रचनाकाल 1210 से 1247 ई. माना जाता है तथा इसके रचनाकार पंडित शारंगदेव है । राग केदार–सम्बन्धी सामग्री का वर्णन हमें मुख्य रूप से रागविवेकाध्याय तथा वाद्याध्याय में प्राप्त होता है ।

इस ग्रंथ में शारंगदेव ने खुद राग केदार का उल्लेख नहीं किया है लेकिन कल्लिनाथ ने रत्नाकर की टीका में देशवाल गौड को केदार गौड का ही दूसरा नाम कुछ इस प्रकार से बताया है–

"डोम्बक्रीति भूपालीपर्यायः ।
कामोदासिंहलीत्येको रागः, छायानट्टेति च ।
उपांगेषु राम.ति बलिपर्यायः। देशवालः केदार गौलः।।"[6]
"देशवाल गौड एव केदार गौड इति जनैरुच्यते।"[7]

अर्थात् 'देशवाल गौड' का जनरंजक नाम 'केदार गौड' बताया गया है।

इसके पश्चात् इस राग के लक्षण निम्न प्रकार से बताए गये है–

"गेयः कर्णाटगौडस्तु षड्जन्यासग्रहांशकः ।
स एवान्दोलितः षड्जे देशवालो रिपोज्झितः।।
इति देशवाल गौड।।"[8]

यह तो सर्वविदित है कि शारंगदेव का शुद्ध सप्तक दक्षिणी पद्धति का था जिसके स्वर हमारे आधुनिक सप्तक के स्वरों से भिन्न हैं । उपरोक्त श्लोक में ऋषभ और पंचम स्वर को वर्जित करने का निर्देश है तथा षड्ज स्वर को ही ग्रह, अंश और न्यास का स्वर माना है। षड्ज को आंदोलित करने का भी निर्देश है और प्राचीन श्रुति स्वर संख्या विधान, जैसा कि आज भी कर्नाटक संगीत में देखने को मिलता है, अनुसार केदार गौड के स्वर इस प्रकार होने चाहिए थे– स ग म ध नि सं ।
सं नि ध म ग स ।

श्रीकलिका पुराण

इसका रचनाकाल भी 10वीं से 11 वीं शाताब्दी का माना जाता है। इसमें भी एक कथा राग केदार के बारे में कुछ इस प्रकार उल्लेख करती है–

"After singing the Kedara & Raga, with drum accompaniment proper for the lustration at Indra, Pouring from the Jar filled with water mingled with pollens of lotuses, (the following words to be recited) Om! Let the Nagas (The snake Gods) sprinkle Thee with this fifth jar] filled with water fragrant with pollens from lotuses."[9]

मध्यकाल

राग तरंगिणी :

इस ग्रंथ के रचनाकार पंडित लोचन को माना जाता है तथा इन्हीं के ग्रंथ में पहली बार संस्थान पद्धति को प्राथमिक मानकर रागों का वर्णन प्राप्त होता है। इसका रचनाकाल 1375 ई. का माना जाता है। यह भी सर्वविदित है कि लोचन के शुद्ध स्वर आधुनिक काफी के समान ही हैं। इन्होने मेल पद्धति के अंतर्गत के 12 संस्थानों में केदार को भी एक संस्थान माना है जिसके स्वर उन्होने इस प्रकार बताए हैं:

"शुद्धाः सप्तस्वरास्तेषु गांधारो मध्यमस्य चेत्।
गृहाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते तदा।।
एवं सति निषादश्चेत काकली भवति सफुटम।
वीणायां व्यक्तिमाधत्ते केदारसंस्थितिस्तदा।।"[10]

अर्थात् लोचन के शुद्ध सप्तक में जब गांधार मध्यम की दो श्रुतियाँ ग्रहण करेगा जिसे लोचन ने तीव्रतर गांधार कहा है, तब कर्णाट संस्थान होगा तथा निषाद को काकली करने पर केदार संस्थान होगा। काफी थाट में कोमल गांधार को शुद्ध गांधार करने पर तथा कोमल निषाद को शुद्ध निषाद करने पर केदार संस्थान होगा, अर्थात् इसके स्वर हमारे आधुनिक बिलावल थाट जैसे होंगे। लोचन ने केदार के सात प्रकार भी बताए हैं– केदार, शुद्ध केदार, बिहागर केदार, मलारी केदार, पहाड़ी केदार, कामोद केदार, मालव केदार आदि ।

सूरसागर

यह ब्रजभाषा में महाकवि सूरदास द्वारा रचे गए कीर्तनों – पदों का एक सुंदर संकलन है जिसका रचनाकाल 15वीं शाताब्दी माना जाता है। इस ग्रंथ में राग केदार में करीब 140 रचनाएँ है। इस ग्रंथ में केदार के राग लक्षण–सम्बन्धी जानकारी तो प्राप्त नहीं होती लेकिन सूरदास के कुछ पद हैं जिनमें केदार–सम्बन्धी वर्णन प्राप्त होता है जैसे निम्नलिखित काव्य में कहते हैं कि केदार के मधुर स्वरों में भगवान श्रीकृष्ण इतने लीन हो गये कि उन्हे नींद आ गई।

"मधुर सुर गावत केदारो सुनत श्याम चितलाई।।
सूरश्याम प्रभु नंदसुवनको नींदगई तब आई।।"[11]

किताब–ए–नौरस

यह ग्रंथ सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह की रचना है जिसका काल लगभग 1580 ई. से 1628 ई. का माना जाता है। इस किताब में सुल्तान की 59 ध्रुपद रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो 17 रागों में थीं। इनके 4 ध्रुपद राग केदार में भी हमें प्राप्त होते हैं। इन्होंने केदार की रागमाला पेंटिंग में कुछ इस प्रकार से चित्रण किया है :

"Kedari is a beautiful lady robed in crimson red- She is so absorbed in the meditation of Mahadeva that she assumes his form- Her matted locks are massed on the top of her head and from them flows the ganges- With the marks crescent on her forhead and a black serpent coiled round her head] the lady is sitting on the skin of lion."

कुछ ईरानी ग्रंथों के अनुसार केदार की ईरानी मुकामों के साथ तुलना :

दिलोरोम करोमत के अनुसार 16वीं शाताब्दी में

भारतीय रागों से ईरानी मुकामों की तुलना करने का प्रचलन हुआ। आचार्य ब्रहस्पति के अनुसार, अमीर खुसरो ईरानी रागों को भी भारत में प्रचलित करना चाहते थे और भारतीय रागों को मुसलमानो में लोकप्रिय बनाना चाहते थे। इसी दिशा में कई ग्रंथ लिखे गए। कई ग्रंथकारों के रचयिता अज्ञात हैं लेकिन उन्होंने केदार को अपने ग्रंथों में किस–किस मुकाम में जोड़ा है, यह निश्चित ही रोचक तथ्य है। ईरानी मुकामों के विभिन्न ग्रंथकारों द्वारा बताई गए केदार के समान मुकाम निम्निलिखित हैं[12]–

ग्रंथ	शर्–ए–दिवान्–ए–बदर्–ए–चाच्	रिसाला ए मूसिकी	सौत्–अल–नाकुस	मुताला ए हिंद	मअदन्उल् मूसिकी
मुकाम	कीचक	बुजुर्ग	नवा	न्वा	नवा

कीचक मुकाम : स रे ग म प ध ध नि सं

बुजुर्ग मुकाम : स रे ग म प ध नि सं (आधुनिक बिलावल)

नवा मुकाम : स रे ग म प ध नि सं (आधुनिक आसावरी)

इनमें से अधिकतम ग्रंथकारों ने नवा मुकाम को केदार के समान माना है, जिसके स्वर आधुनिक आसावरी के समान हैं। ऐसा मत किसी अन्य मध्यकालीन संस्कृत ग्रंथकार का बिल्कुल प्राप्त नहीं होता और यह तुलना किस आधार पर इन ग्रंथकारों ने की है, इसका कोई युक्तिसंगत आधार भी प्राप्त नहीं होता। बुजुर्ग मुकाम के स्वर फिर भी लोचन, हृदयनारायण देव द्वारा बताए गए केदार के स्वरों से मेल खाते हैं। इसलिए रिसाला–ए–मूसिकी का मत एक ग्रंथाधारित मत मालूम होता है।

श्रीगुरु ग्रंथ साहिब

यह आदर्श जीवन का एक पवित्र धर्म ग्रंथ है जिसमें गुरूओं और संतों की वाणी लिखी गई है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब को पहली बार 1604 ई. में श्री गुरु अर्जुन देव जी के द्वारा अमृतसर (पंजाब) में संकलित किया गया। इसमें मुख्य रूप से 31 रागों में वाणी उच्चारित की गई है जिनमें से केदार भी एक है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में गुरु रामदास जी की केदार में दो, और गुरु अर्जुन देव जी की 16, भगत कबीर की 6 तथा भगत रविदास जी की एक, रचनाएँ प्राप्त होती है। केदार के बारे में वर्णन मिलता है–

''केदाररागविचिजन्याभैसबडेकरपियारु''[13]

अर्थात् जिसे उस शब्द रूपी ईश्वर से प्रेम है उनके लिए केदार राग सर्वोपरि तथा सर्वप्रिय है। केदार का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

धूजाकी फड़फड़ा रही है[14]

इस राग–ध्यान के अनुसार केदार के स्वर सुनकर ऐसा महसूस होता है जैसे कोई किला फतह हो गया हो, और उस पर झंडे फहरा रहे हों, जिसे देखकर आत्मा को परम आनंद की अनुभूति होती है।

राग विबोध

यह ग्रंथ दक्षिण भारतीय संगीत के विद्वान पं सोमनाथ की रचना है जिसका रचनाकाल 1609 ई. का माना जाता है। इनके ग्रंथ में भी जन्य रागों की पद्धति का आधार मेल पद्धति थी और इन्होने अपने मेलों की संख्या कुल 23 मानी है। पं सोमनाथ केदार के 2 प्रकारों का उल्लेख करते है और दोनो के राग लक्षण भी स्पष्ट बताए है।

पहला प्रकार हमीर मेल के अंतर्गत रखा गया है और वह इस प्रकार हैः

"हंम्मीरमेल उज्जवल समपधतीव्रतररि मृदुममृदुसकाः''[15]

इनका भी शुद्ध सप्तक मुखारी मेल है अर्थात् आधुनिक काफी । इस श्लोक के अनुसार षड्ज, मध्यम, पंचम और धैवत शुद्ध बताए हैं जिसमें से स, म और प तो हमारे भी शुद्ध ही होंगे लेकिन सोमनाथ का शुद्ध धैवत हमारे कोमल धैवत के बराबर होगा।[16] तीव्रतर रे हमारा शुद्ध ऋषभ हो जाता है। मृदु म और मृदु स हमारे शुद्ध गांधार और शुद्ध निषाद के समान होंगे।

"केदारोऽल्परिधो निशि सन्यासो गांशगग्रहकः।''[17]

राग केदार में ऋषभ और धैवत अल्प बताए गये है। गाधार को ग्रह और अंश स्वर माना गया है तथा षड्ज को न्यास का स्वर माना गया है। इसका स्वर–प्रस्तार इस प्रकार दिया गया है–

ग रेस सरे समग रेस । गमप म प प गमगरे स।
नि सनिरे स।
गमप संसं निध प गमप गमगरे स।
गमप संनि।।

दूसरा प्रकार मल्लार मेल का है :

"मल्लारिमेल उक्तास्तीव्रतररिमृदुमतीव्रतरधाश्च।।
मृदुसः शुद्धाः समपा अस्मादेते तु मल्लारिः।।"[18]

मल्लार मेल में तीव्रतर रे और तीव्रतर ध यानि हमारा शुद्ध ऋषभ और शुद्ध धैवत लेने का आदेश है। मृदु म और मृदु स हमारे शुद्ध गाधार और शुद्ध निषाद के बराबर होंगे और षड्ज, मध्यम, पंचम तो हमारे समान हैं ही । अर्थात् सभी आधुनिक शुद्ध स्वर होंगे और यह सोमनाथ का मल्लार मेल आधुनिक बिलावल के समान है और उसी मेल के अंतर्गत उन्होंने केदार के स्वर इस प्रकार बताए है–

"न्यंशन्यासग्रहकः पूर्णो निश्येव केदारः"

निषाद को ग्रह, अंश और न्यास माना गया है और गायन समय रात्रि का है। इसका स्वर प्रस्तार इस प्रकार का बताया गया हैः

"ध संनिधप ग म प गमग रे स ।
गम प ध नि सं नि ध प म ग ग गप म ग ।
मगरे स निसनिग रे स ।

संगीत पारिजात

पं अहोबल (1650 ई.) द्वारा रचित 'संगीत पारिजात' मध्ययुग का सबसे महत्वपूर्ण एवं विस्तृत ग्रंथ है। इसका शुद्ध सप्तक वर्तमान काफी के समान था ।

"ग–नी – तीव्रौ तु केदार्य रि–धौ न स्तोऽथ गादिमा ।।
गमपनिसगमगसनिपनिस ।
गपगसनिपममगसगमपमगस।
गमपनिपममसनिसनिसनिसनिमपनिपमगमपमगसनिसस।।
इति केदारी।
तृतीयप्रहरोत्तरम्।।"[19]

इनके गांधार और निषाद को शुद्ध से तीव्र करने से यह हमारे शुद्ध गांधार और शुद्ध निषाद के समान हो जाएंगे; ऋषभ और धैवत को वर्ज्य करने का आदेश है। ऐसा करने से केदारी का जो भी स्वर प्रस्तार होगा वह हमारे बिलावल के सप्तक में ऋषभ और धैवत वर्जित करने से होगा। राग का समय भी अहोबल ने दिन का तृतीय प्रहर बताया है और इसका स्वर–प्रस्तार भी विस्तार पूर्वक उन्होने दिया है–

ग म प नि सं ग म ग स नि प नि स ।
ग प ग स नि प म म ग स ग म प म ग स ।
ग म प नि प म म स नि स नि स नि सनि म पनि प म ग म प म ग स नि स स ।

यह स्वरूप हमारे उत्तर भारतीय केदार से तो काफी अलग है लेकिन दक्षिण भारतीय केदार के बहुत नज़दीक हो जाता है। दक्षिण के संगीतकार इन्हीं स्वरों में आरोह में तो ऋषभ और धैवत वर्जित करते हैं लेकिन अवरोह में ऋषभ का प्रयोग करते हैं ।

आधुनिक ग्रंथाधार

श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्

कल्याणीमेलके प्रोक्तः केदारो बहुसंमतः।
शंकराभरणेऽप्यन्ये केचिदाहुविपश्चितः।।
मद्वंद्वमिह संप्रोक्तं गौणत्वं तीव्रमे यदि।
अंशत्वं शुद्धमेऽभीष्टं व्यस्तत्वं चापि तत्स्वरे।।
रिगोनत्वं रोहणेस्यात् पूर्वांगे संमतं सताम्।
असत्प्रायत्वमारोहे चावरोहे तु गस्यतत्।।
पंगुत्वं यदि गांधारे निषादे नियमेन तत्।।
साधारणो .श्यतेऽयं नियमो लक्ष्यवेदिनाम्।।

अर्थात् केदार राग को अधिकांशतः कल्याण मेल जन्य माना जाता है। कुछ गुणिजन इसे बिलावल मेल का राग भी कहते हैं । इस राग में दोनो मध्यम लगते हैं जिसमें तीव्र मध्यम गौण माना गया है। इसमें शुद्ध मध्यम का वादीत्व एवं उसका मुक्त प्रयोग वांछनीय है। केदार के आरोह में ऋषभ–गांधार वर्ज्य है, तथा अवरोह में गान्धार वक्र है। रात्रि के प्रथम प्रहर में इसका गान रक्तिप्रद लगता है। प्रचलित संगीत में साधारणतः यह नियम परिलक्षित होता है कि जिन रागों में गान्धार दुर्बल होता है, वहाँ निषाद भी दुर्बल ही होता है।

ऐसे ही लक्षण 'राग चंद्रिका', 'राग चंद्रिकासार' और 'अभिनव रागमंजरी' मे भी बताए है–

राग चंद्रिकायाम

द्विमस्तीव्रान्यको मांश आरोहे रिगवर्जितः ।
क्वचित्कोमलनिर्यामे केदारः प्रथम निशि।।

राग चंद्रिकासार

मध्यम द्वै तीवर सबहि आरोहत रिग हान ।
सम–संवादी वादितें केदारा पहिचान।।

अभिनव रागमंजरी

समौ मपौ धौ मश्च पधौ पमौ रिसौ ।
केदारो मांशको रात्यां प्रारोहे रिगदुबलः।।

यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि राग केदार प्राचीन काल से ही अपनी लोकप्रियता बनाए हुए है और आधुनिक काल में भी इसकी गिनती शास्त्रीय संगीत के प्रमुख रागों में की जाती है। पं. भातखण्डे का मानना है कि ऐसे प्रसिद्ध राग के विषय में विशेष मतभेद नहीं है। संस्कृत ग्रंथों में यह राग पाया जाता है; उनमें से किसी ने इस राग का ठाठ शंकराभरण (वर्तमान बिलावल) माना है और वह हमारे प्रचलित स्वरूप के अधिक निकट है। शास्त्रीय ग्रंथों में केदार का प्राचीनकालीन नाम मुख्यतः केदार गौड या देशवाल गौड के नाम से मिलता है। शारंगदेव ने सर्वप्रथम इसका स्वर वर्णन किया है जिसमें ऋषभ और पंचम वर्जित है । अब काफी थाट में ऐसा करने पर यह स्वरूप आधुनिक मालकौंस के अनुरूप दिखाई देने लगता है। कर्नाटक संगीत के विद्वानों ने प्राचीन कालीन लक्षणों के अनुसार ही अपने रागों का रख–रखाव किया है। यही कारण है कि कर्नाटक संगीत में गाए जाने वाले केदार के लक्षणों में ऋषभ और पंचम वर्जित है लेकिन शायद कर्नाटक संगीत के विद्वानों से इसे समझने में गलती हो गई क्योंकि वो बिलावल सप्तक के स्वरों ऋषभ और पंचम वर्जित करके गाने लगे है जो शास्त्र आधारित नहीं है और दूसरा प्राचीनकालीन स्वरूप जो मिथिला के लोचन के ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है और भातखंडे के तर्कानुसार जयदेव के गीतगोविंद में प्रयुक्त किया गया होगा, वह स्वरूप बिलावल सप्तक के समान है तथा उसका स्वरूप प्रचलित शुद्ध केदार के काफी नजदीक है जिसमें तीव्र मध्यम वर्ज्य है। पं रामाश्रय झा के अनुसार प्राचीन स्वरूप में तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं के बराबर या विवादी स्वर के रूप में अल्प प्रमाण में लगाया जाता था और इसे बिलावल थाट का राग माना जाता था जिसका स्वरूप इस प्रकार था :

स रे स म, म रे स, म, म प, प ध प ध म, प प सरे सं, ध प, ध म, प (प) म, स रेस। म म प सं ध स रे स, स नी ध प प ध म, प (प) म, म रे स ।

ध्रुवपद शैली की लगभग सभी पुरानी रचनाएँ उपरोक्त केदार राग के स्वर–समूह के आधार पर बनी है। गांधार का प्रयोग मध्य सप्तक के पूर्वांग में स्पर्श के रूप में और तार सप्तक में यदा–कदा स्पष्ट रूप से किया गया है। आरोह में रिषभ, गांधार, निषाद और अवरोह में गांधार वर्जित है। पंचम और तार षड्ज की संगति में धैवत का भी अल्पत्व है। अभिप्राय यह है संपूर्ण राग स्वरूप बिलावल थाट के ही स्वर दिखते हैं। इसलिये संगीत विद्वानजन इसे बिलावल थाट के अन्तर्गत मानते थे।

वर्तमान समय में केदार के उपरोक्त स्वरूप में तीव्र मध्यम और शुद्ध निषाद का अधिक प्रयोग ख्याल शैली के गायन की देन है। प्रचार में तीव्र मध्यम लगाए जाने से इसे कल्याण थाट के अन्तर्गत माना गया है। पं. भातखंडे की नवनिर्मित श्रुति–संख्या–व्यवस्था के कारण किसी भी राग के प्राचीन रूप को आधुनिक स्वरूप के अनुसार लक्षित करना उचित प्रतीत नहीं होता लेकिन फिर भी हमने इस शोध–पत्र में केदार के प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक रूपों का विश्लेषण आधुनिक श्रुति–संख्या के अनुसार भी किया है।

सन्दर्भ सूची :

1. गांगुली, ओ. सी., राग एंड रागिनीज, पृ.–71
2. गजपति, श्री नारायण देव, संगीत नारायण, पृ.–15
3. भातखंडे, श्री विष्णु नारायण, भातखंडे संगीत शास्त्र भाग–4, पृ–471
4. वही, पृ–472
5. वही, पृ–472
6. संगीतरत्नाकर आफ शारंगदेव विद कलानिधि आफ कल्लीनाथ एंड सुधाकर आफ सिंहभुपाल, पं एस. सुब्रमणयम, पृ– 17
7. वही, पृ–383
8. वही, पृ– 113
9. गांगुली, ओ. सी., राग एंड रागिनीज, पृ–28
10. लोचन, रागतरंगिणी, पृ–4

11. सूरदास, सूरसागर (दशमस्कंध), पृ–128
12. Dilorom, The 12-maqam System and its Similarity with Indian ragas (according to Indian manuscripts), Karomat, page-62
13. सुखवंत, भाई, गुरु नानक संगीत पद्धति ग्रंथ, भाग– 2, पृ–237
14. वही
15. Sastri, Pandit S. Subrahmanya, Raga Vibodha of Somnatha with his own commentary viveka, page-16
16. भातखंडे, पं0 विष्णु नारायण, भातखंडे संगीत शास्त्र भाग – 1, पृ–119
17. Sastri, Pandit S. Subrahmanya, Raga Vibodha of Somnatha with his own commentary viveka, page-18
18. वही
19. गोंधलेकर, रावजी श्रीधर, संगीत पारिजात, पृ– 51

संदर्भ ग्रंथ :

Dilorom Karomat- (2006)- The 12 & maqam System and its Similarity with Indian ragas (according to Indian manuscripts)- Journal of the Indian Musicological Society, 62.

O-C-GANGOLY- (1935)- RAGAS AND RAGINIS CALCUTTA: NALANDA PUBLICATIONS-

Pandit S- Subrahmanya Sastri- (1945)- Raga Vibodha of Somnatha with his own commentary viveka- Madras: Adyar Library.

इब्राहिम आदिल शाह. (1956). किताब–ए–नौरस. पूना : भारतीय कला केंद्र.

गजपति श्री नारायण देव. (1966). संगीत नारायण. भुवनेश्वर : ओडिशा संगीत नाटक एकाडेमी.

गणेश शर्मा. (1912). श्रीपुण्डरीकविट्ठलविरचिता सद्रागचंद्रोदय. मुम्बई : भालचंद्र सीताराम सुकथनर.

डा. रीना सहाय. (2009). प0 लोचन.त रागतरङ्गिणी (रागों एवं रसों का आलोचनात्मक अध्ययन). वाराणसीः पिलग्रिम्स पब्लिशिंग.

पं एस. सुब्रमणयम शास्त्री. (1951). संगीतरत्नाकर आफ शारंगदेव विद कलानिधि आफ कल्लीनाथ एंड सुधाकर आफ सिंहभुपाल. मद्रास : द एडवायर लाइब्रेरी .

पं0 विष्णु नारायण भातखंडे (1975). भातखंडे संगीत शास्त्र भाग– 1. हाथरस, उ. प्र.: संगीत कार्यालय.

पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे (1957). भातखंडे संगीत शास्त्र भाग– 4. हाथरस : संगीत कार्यालय.

पण्डित एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री श्री. पी. एस. सुन्दरार्यै. (1980). द संगीत सुधा ऑफ किंग रघुनाथ ऑफ तंजौर. मद्रासः म्युजिक अकैडमी.

भाई सुखवंत सिंह. (2006). गुरु नानक संगीत पद्धति ग्रंथ भाग–2. लुधियाना (पंजाब): संत ज्ञानी अमीर सिंह, जवद्दी टकसाल.

रावजी श्रीधर गोंधलेकर. (1897). संगीत पारिजात. पूना.

लोचन. (1918). रागतरंगिणी. मालाबार हिल बम्बई : भालचंद्र सीताराम सुकथन

सवाई प्रताप सिंह. (1910). संगीतसार पूनारू बलवंत त्रियंबक सहस्त्रबुद्धे.

सूरदास. (दि.न.). सूरसागर (दशमस्कंध). मुंबईः श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना.

स्थानीय सांस्कृतिक कला और भाषा के संरक्षण में सामुदायिक रेडियो की भूमिका

डॉ. रवि सूर्यवंशी** **शिवम् रस्तोगी***

शोध सारांश

मुख्यधारा के मीडिया ने स्वदेशी भाषा और संस्कृति के महत्व की अनदेखी की है। मुख्यधारा के मीडिया की स्थानीय समुदायों तक पहुंचने और उन्हें शामिल करने में विफलता ने समुदाय आधारित मीडिया की मांग को बढ़ावा दिया है। पिछले कुछ वर्षों में सामुदायिक मीडिया मुख्यधारा के मीडिया के विकल्प के रूप में उभरा है जो समुदाय के साथ अधिक प्रभावी तरीके से जुड़ सकता है। सामुदायिक रेडियो सामुदायिक मीडिया के लोकप्रिय रूपों में से एक है। सामुदायिक रेडियो एक प्रकार का रेडियो है जो एक समुदाय में, समुदाय के सदस्यों द्वारा विशिष्ट समुदाय के लिए संचालित किया जाता है। तमाम चुनौतियों के बावजूद सामुदायिक रेडियो दुनिया भर में फैलने में सफल रहा है। भारत में, 250 से अधिक सामुदायिक रेडियो चालू हैं और उनमें से अधिकांश ग्रामीण समुदायों की सेवा कर रहे हैं। यह पत्र स्वदेशी भाषा और संस्कृति के संरक्षण, विकास और प्रचार में सामुदायिक रेडियो की भूमिका के बारे में अंतर्दृष्टि ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास है। सामुदायिक रेडियो स्टेशन एक सीमित क्षेत्र में सीमित समाज की जरूरतों, इच्छाओं, समस्याओं, सुखों और दुखों को समझने, प्रतिबिंबित करने और व्यक्त करने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में संचार करते हैं।

मुख्य शब्द : *सामुदायिक रेडियो, क्षेत्रीय भाषा, संस्कृति, संरक्षण, प्रचार।*

प्रविधि : *द्वितीयक स्रोतों के सहयोग से सामग्री एकत्र पर शोध–पत्र तैयार किया गया है।*

परिचय

यूएनडीपी द्वारा प्रकाशित ''डीपनिंग डेमोक्रेसी इन ए फ्रैगमेंटेड वर्ल्ड'' शीर्षक वाली मानव विकास रिपोर्ट (2002) कहती है, ''मानव विकास राष्ट्रीय आय में वृद्धि से कहीं अधिक है, मानव विकास के लिए शासन प्रभावी संस्थानों और नियमों से कहीं अधिक है। इसे इस बात से भी सरोकार होना चाहिए कि क्या संस्थाएं और नियम निष्पक्ष हैं और क्या सभी लोगों की अपनी राय है कि वे कैसे काम करते हैं।'' सामुदायिक रेडियो एक ऐसा माध्यम है जिसके केंद्र में वैसे लोग है जिन्हें वाणिज्यिक मीडिया अपने मंच पर या तो जगह नहीं देते या देते भी है तो काफी कम। ''सामुदायिक रेडियो स्थानीय रेडियो का एक रूप है जो खुद को एक स्वायत्त इकाई के रूप में परिभाषित करता है– और बिना किसी व्यावसायिक उद्देश्य के अपने अस्तित्व के लिए समुदाय पर निर्भर करता है"। Myers (2000) सामुदायिक रेडियो को ''छोटे पैमाने पर विकेन्द्रीकृत प्रसारण पहल के रूप में परिभाषित करते है, जो स्थानीय लोगों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है, प्रोग्रामिंग में उनकी भागीदारी को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करता है, और जिसमें सामुदायिक स्वामित्व या सदस्यता के कुछ तत्व शामिल हैं।'' सामुदायिक रेडियो का ऐतिहासिक दर्शन यह है कि इस माध्यम का उपयोग आवाजहीनों की आवाज के रूप में, उत्पीड़ित लोगों के मुखपत्र के रूप में और आम तौर पर विकास के लिए एक उपकरण के रूप में किया जाए। अपने आरंभ के बाद से, सामुदायिक रेडियो स्टेशनों ने कई विकास कार्यक्रमों में सामुदायिक भागीदारी को सशक्त बनाने पर ध्यान केंद्रित किया है, जिससे भेदभाव और हाशिए पर रहने जैसी सामाजिक असमानताओं से निपटने के लिए स्थानीय लोगों की क्षमता में वृद्धि हुई है (Mhagama, 2015)।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने सामुदायिक रेडियो की विशेषताओं को निम्नानुसार परिभाषित किया हैः

i. इसे स्पष्ट रूप से एक 'गैर–लाभकारी' संगठन के रूप में गठित किया जाना चाहिए और स्थानीय समुदाय के लिए कम–से–कम तीन साल की सेवा का एक सिद्ध रिकॉर्ड होना चाहिए।

---

*पीएचडी स्कॉलर, जन संचार और मीडिया अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

**असिस्टेंट प्रोफेसर, जन संचार और मीडिया अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

ii. इसके द्वारा संचालित होने वाले सामुदायिक रेडियो स्टेशन को एक विशिष्ट सुपरिभाषित स्थानीय समुदाय की सेवा के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए।

iii. इसका एक स्वामित्व और प्रबंधन ढांचा होना चाहिए जो उस समुदाय को प्रतिबिंबित करे जिसे सामुदायिक रेडियो स्टेशन सेवा देना चाहता है।

iv. प्रसारण के कार्यक्रम समुदाय की शैक्षिक, विकासात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक होने चाहिए।

v. यह एक कानूनी इकाई होना चाहिए यानी इसे पंजीकृत होना चाहिए (सोसाइटी अधिनियम के पंजीकरण या उद्देश्य से संबंधित किसी अन्य ऐसे अधिनियम के तहत)।

सामुदायिक रेडियो एक सांस्कृतिक प्रसारण तंत्र के रूप में काम करता है जो उस समुदाय के हितों और जरूरतों को प्रतिबिंबित करने के लिए पूरी तरह से अनुकूल होता है और हाशिए के क्षेत्रों के लोगों को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से खुद को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है (Vinod Pavarala, 2007). स्थानीय भाषाएँ और अभिव्यक्तियाँ वह सामग्री हैं जो सामुदायिक रेडियो को बढ़ावा देती हैं।वे विभिन्न सांस्कृतिक विविधताओं के बीच एक जोड़ हैं, जो मानव जाति के सफल मार्ग के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि जैविक विविधता। सामुदायिक मीडिया सूचना प्रदान करने और स्थानीय या क्षेत्रीय संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति के लिए एक स्थान है। यह एक शैक्षिक और सांस्कृतिक उद्देश्य को भी पूरा करता है, क्योंकि यह एक समकालीन संदर्भ में मूल भाषा और संस्कृति की स्थानीय पहचान को संरक्षित करता है (AMARC, 2014)। आमने–सामने की बात–चीत से लेकर जनसंचार माध्यमों के माध्यम से संचार तक, हमारे जीवन के सभी पहलुओं में भाषा महत्वपूर्ण और केंद्रीय है। सामुदायिक रेडियो सार्वजनिक और निजी रेडियो के अलावा एक तृतीय–स्तरीय प्रसारण है, जिसे समुदाय के लाभ के लिए एक समुदाय द्वारा प्रबंधित, चलाया और नियंत्रित किया जाता है और समुदाय के हितों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए माना जाता है (Nirmala, 2015)।

विश्व में स्थानीय सांस्कृतिक कला और भाषाओं बोलियों के संरक्षण और प्रचार में सामुदायिक रेडियो की भूमिका

उजंगबेरुंग में कला आधारित प्रसारण कार्यक्रम, जो इंडोनेशिया में रेडियो कोमुनितास सेनी बुडाया (आरकेएसबी) माजा द्वारा शुरू किया गया है, 107.8 एफएम का उद्देश्य समुदाय की सक्रिय जागरूकता को बढ़ाना है ताकि वे अपनी संस्कृति पर अधिक ध्यान दे सकें और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौजूद सांस्कृतिक विरासत की बेहतर सराहना कर सकें। और युवा पीढ़ियों को स्थानीय सांस्कृतिक कला गतिविधियों में भाग लेने के लिए सशक्त बना सके ताकि वे क्षेत्रों की सामग्री और स्थानीय सांस्कृतिक ज्ञान को एकीकृत कर सकें और समुदाय की अर्थव्यवस्था में सुधार कर सकें और उन्हें अगली पीढ़ियों को विरासत में दे सकें। स्थानीय सामग्री के निर्माण में आरकेएसबी सामुदायिक रेडियो द्वारा की गई गतिविधियां समुदाय के सदस्यों को सशक्त बनाने, स्थानीय सांस्कृतिक कलाओं को संरक्षित करने और आंतरिक और बाहरी दोनों तरह से खुद को बढ़ावा देने में बहुत प्रभावी हैं (Anggraeni, Sarwoprasodjo, Saleh, & Bakti, 2020)। सांस्कृतिक कला प्रसारण कार्यक्रमों के माध्यम से सामुदायिक व्यवहार में परिवर्तन ने स्थानीय सांस्कृतिक कलाओं को संरक्षित और बढ़ावा देने में जागरूकता का नेतृत्व किया है।

सामुदायिक रेडियो और विशेष रूप से सामुदायिक भाषा रेडियो ऑस्ट्रेलिया के बहुसांस्कृतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ऑस्ट्रेलिया में सबसे बड़ी स्वयंसेवी–आधारित सामुदायिक भाषा या जातीय प्रसारक 3zzz है। मेलबर्न में स्थित, 3zzz ने 1989 में नियमित आधार पर प्रसारण शुरू किया और वर्तमान में 60 से अधिक जातीय समूहों के लिए 70 से अधिक भाषाओं में प्रसारण की रिपोर्ट करता है (Krause, Smith, & Hajek, 2020)। लेखकों द्वारा केस स्टडी में ऑस्ट्रेलिया के सबसे बड़े सामुदायिक भाषा रेडियो स्टेशन, 3zzz से प्रस्तुतकर्ताओं की प्रथाओं की जांच करती है, जो साप्ताहिक लगभग 70 भाषाओं में प्रसारण की रिपोर्ट करता है। इस शोध से ये पता लगता है कि कैसे ऑस्ट्रेलिया में सामुदायिक भाषा रेडियो रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक सुलभ और अनुकूलनीय आउटलेट प्रदान करके अपने कलाकारों की भलाई को कैसे बढ़ा सकता है। निष्कर्ष इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे सामुदायिक प्रसारण संदर्भ प्रस्तुतकर्ताओं को उनकी स्वायत्तता, संबंधितता और क्षमता की जरूरतों को पूरा करने की अनुमति देता है, और कैसे सामुदायिक भाषा रेडियो प्रोग्रामिंग तैयार करने और प्रस्तुत

करने की प्रक्रिया प्रकृति में रचनात्मक है। प्रस्तुतकर्ताओं की ये प्रथाएं बड़े पैमाने पर उनके सुनने वाले समुदायों के स्पष्ट विचारों से प्रेरित होती हैं और उनकी प्रथाओं को न केवल प्रस्तुतकर्ताओं के लिए बल्कि श्रोताओं और उनके समुदायों के लिए भी भलाई के लाभ के लिए माना जाता है (Krause, Smith, & Hajek, 2020)।

16 अक्टूबर 2013 को यूरोप और दुनिया भर से कई प्रतिभागी यूरोपीय संसद में 'क्षेत्रीय या अल्पसंख्यक भाषाओं में रेडियो प्रसारण' (आरएमएल) पर चर्चा करने के लिए सम्मेलन मे शामिल हुए औरकई आरएमएल सामुदायिक रेडियो स्टेशनों द्वारा सामना करने वाली चुनौतियों की जांच करने और भविष्य के लिए समाधान का प्रस्ताव देने के लिए एकत्र हुए। सम्मेलन इस संदर्भ में आयोजित किया गया था कि दुनिया की अनुमानित 6,000 से अधिक भाषाओं में से आधी के सदी के अंत तक सामुदायिक भाषाओं के रूप में समाप्त होने की संभावना है, जब तक कि इन समुदायों और उनकी भाषाओं की रक्षा के लिए तत्काल और ठोस प्रयास नहीं किए जाते हैं (Hicks & Irazabalbeitia, 2013)। संयुक्त राष्ट्र के स्वतंत्र विशेषज्ञों का मूल्यांकन है कि "भाषा विशेष रूप से भाषाई अल्पसंख्यक समुदायों के लिए महत्वपूर्ण है जो अपने विशिष्ट समूह और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना चाहते हैं"। कई अल्पसंख्यक भाषाएँ हैं जो यूरोप में बोली जाती हैं और हजारों स्वदेशी भाषाएँ और बोलियाँ अफ्रीका में बोली जाती हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशन महत्वपूर्ण हितधारक हैं और वे स्थानीय भाषाओं और बोलियों को संरक्षित करने के लिए जमीनी स्तर पर एक महत्वपूर्ण साधन है (Hicks & Irazabalbeitia, 2013)। सामुदायिक मीडिया एक ऐसा उपकरण है जो न केवल रेडियो सामग्री के उत्पादन के माध्यम से, बल्कि लोकतांत्रिक और भागीदारी प्रक्रियाओं के माध्यम से बहुलवाद और विविधता को मजबूत करता है जो यूरोप में अल्पसंख्यक भाषाओं के उपयोग और प्रचार के माध्यम से यूरोपीय पहचान और सांस्कृतिक संपदा का समर्थन और सुदृढ़ीकरण करता है (AMARC, 2014)। AMARC का दावा है कि संचार के अधिकार का प्रभावी अभ्यास लोगों की भाषाओं के उपयोग को व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान के अधिकार का अभ्यास बनाता है। इस संदर्भ में AMARC यह भी दावा करता है कि रेडियो और टेलीविजन आवृत्तियों तक पहुँचने का अधिकार अल्पसंख्यक समूहों के लिए एक अधिकार है जो दुनिया के क्षेत्रों और लोगों की सांस्कृतिक और जातीय विविधता बनाते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में स्वदेशी प्रसारण एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामुदायिक–पहुंच भूमिका को पूरा करता है। सामुदायिक प्रसारण ऑस्ट्रेलिया में स्वदेशी मीडिया का सबसे बड़ा घटक है (Forde, Meadows, & Foxwell, 2003)। ऑस्ट्रेलिया में जहां स्थानीय रेडियो कार्यक्रमों का उत्पादन नियमित रूप से किया जा रहा है, वहां स्टेशनों को स्थानीय संस्कृतियों और भाषाओं को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए माना जाता है। सामुदायिक स्टेशन अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं में एक कार्यक्रम प्रसारित कर सकते हैं, वर्तमान मुद्दे पर विभिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं, या दर्शकों को अलग करने या हाशिए पर रखने या रेटिंग खोने के डर के बिना एक विशिष्ट कार्यक्रम प्रसारित कर सकते हैं। ऑस्ट्रेलिया के जातीय सामुदायिक रेडियो स्टेशन के आसपास के 92 सामुदायिक स्टेशनों पर अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं में प्रसारण के एक सप्ताह में 1600 घंटे से अधिक का उत्पादन करते हैं। सन् 2000 के अंत में, जब अल्बानियाई शरणार्थियों के एक समूह को ऑस्ट्रेलिया लाया गया था कोसोवो संघर्ष से बचने के लिए, मेलबर्न में रेडियो 3zzz ने शरणार्थियों को उनके गृह देश में होने वाली घटनाओं के साथ–साथ ऑस्ट्रेलिया में उनकी स्थिति के बारे में सूचित करने के लिए प्रत्येक दिन वितरित करने के लिए एक अल्बानियाई भाषा में कार्यक्रम की व्यवस्था की थी (Forde, Meadows, & Foxwell, 2003)।

1993 में आकाशीय तरंगों तक पहुंच को मुक्त करने के साथ, सात वर्षों के भीतर दक्षिण अफ्रीका में लगभग 150 सामुदायिक रेडियो स्टेशनों को लाइसेंस दिया गया था (Tacchi & Price- Davies, 2001)। सामुदायिक रेडियो के माध्यम से विभिन्न स्थानीय भाषाओं में "नवीन और जीवंत प्रोग्रामिंग" द्वारा प्रदान की जाने वाली संभावनाओं की पहचान दक्षिण अफ्रीका में ग्रामीण विकास पर एक बड़े प्रभाव के रूप में की गई है (Onkaetse Mmusi, 2002)। आमने–सामने की बात–चीत की स्थितियों से लेकर जनसंचार माध्यमों के माध्यम से संचार तक, हमारे जीवन के सभी पहलुओं में भाषा महत्वपूर्ण और केंद्रीय है। इसी कारण, मीडिया के माध्यम से जनता के साथ बातचीत करने के लिए स्वदेशी भाषाओं का उपयोग, विशेष रूप से

सामुदायिक रेडियो में, जनसंचार की प्रभावशीलता को बढ़ाता है (Chikaipa & Gunde, 2020)। स्वदेशी भाषा का रेडियो प्रसारण जनसंचार का एक प्रभावी चौनल है जिसमें यह अन्य मीडिया की तुलना में अधिक परिधीय क्षेत्रों तक पहुंचता है और दर्शकों द्वारा आसानी से समझा जाता है (Manyozo, 2009)। यह देखा गया है कि अल्पसंख्यक भाषा बोलने वाले समुदाय, आमतौर पर कम विशेषाधिकार प्राप्त, अपनी भाषा को बनाए रखने के अवसर से वंचित हैं जो उनकी पहचान और संस्कृति का प्रतीक है। हालांकि, स्थानीय या सामुदायिक विकास पर केंद्रित सामुदायिक रेडियो के उदय ने अल्पसंख्यक भाषाओं और संस्कृतियों के प्रचार के लिए एक अनुकूल परिस्थिति पैदा की है (Chikaipa & Gunde, 2020)। जनसंचार माध्यम, विशेष रूप से सामुदायिक रेडियो प्रसारण, की स्वदेशी अल्पसंख्यक भाषाओं और संस्कृतियों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका है (Chikaipa & Gunde, 2020)।

भारत में स्थानीय सांस्कृतिक कला और भाषाओं / बोलियों के संरक्षण और प्रचार में सामुदायिक रेडियो की भूमिका

सामुदायिक रेडियो स्टेशन सामुदायिक लोगों को उनके घर से बाहर आने के लिए एक मंच प्रदान करता है और समुदाय के लोगों को उनकी भाषा में संचार करता है जिससे वे जुड़ाव महसूस करते हैं (Arora & Singh, 2020)। स्थानीय भाषाओं में कार्यक्रम आम लोगों से जुड़े स्थानीय मुद्दोंपर होते हैं ताकि ग्रामीण और शहर के लोग समझ सकें कि वे किस बारे में हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशन एक सीमित क्षेत्र में सीमित समाज की जरूरतों, इच्छाओं, समस्याओं, खुशियों और दुखों को समझने, प्रोजेक्ट करने और प्रतिबिंबित करने के लिए अपनी क्षेत्रीय भाषा में संवाद करते हैं (Arora & Singh, 2020)। मुख्यधारा का मीडिया समुदाय की वास्तविक सूचना जरूरतों को व्यवस्थित करने में असमर्थ है, क्योंकि यह मुख्य रूप से बाजार संचालित है और अधिकतम–लाभ उद्देश्य के साथ चलाया जाता है। इसलिए, इस जगह वैकल्पिक मीडिया आता है, जिसमें प्रसारण सामग्री के स्थानीयकरण, भागीदारी और अपनी भाषा में समुदाय की भागीदारी के संदर्भ में स्थान होती है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के परिपत्र के अनुसार सामुदायिक रेडियो स्टेशनों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कार्यक्रमों का कम–से–कम 50: स्थानीय स्तर पर, जहाँ तक संभव हो स्थानीय भाषाओं या बोलियों में प्रस्तुत करें। स्थानीय बोली और प्रस्तुति की स्थानीय शैली स्थानीय संस्कृति का पक्ष लेती है जो श्रोताओं के साथ एक बंधन बनाती है (Sharma, Rathore, & Sharma, 2021)। राजस्थान में सामुदायिक रेडियो स्थानीय लोक संगीत, कला और संस्कृति पर आधारित अपने कार्यक्रम सामग्री का 40–50 प्रतिशत उत्पादन और प्रसारण कर रहे हैं जो स्थानीय गायकों और कलाकारों को कार्यक्रमों में प्रदर्शन और भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है (Sharma, Rathore, & Sharma, 2021)। उत्तर–पूर्वी भारत में, ज्ञान तरंग, रेडियो लुइट और रेडियो ब्रह्मपुत्र जैसे सामुदायिक रेडियो समुदायों को अपनी संस्कृति को बनाए रखने के लिए एक अनूठा मंच प्रदान कर रहे हैं, सामुदायिक रेडियो उन्हें विभिन्न कार्यक्रम और एक मंच प्रदान कर रहे हैं जहाँ वे अपने अनूठे रीति–रिवाजों, संगीत, नाटकों को साझा कर सकते हैं (Chakravorty, 2020)।

निष्कर्ष :

यह स्पष्ट है कि सामुदायिक रेडियो ने सामुदायिक समस्याओं को संबोधित करने, स्थानीय भाषा / बोलियों और संस्कृति को पोषित करने और संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जैसा कि इस समीक्षा में दिखाया गया है। साहित्य से पता चलता है कि सामुदायिक रेडियो स्टेशन गैर सरकारी संगठनों, संस्थानों और समुदाय आधारित संगठनों द्वारा स्थापित किए जाते हैं। नतीजतन, यह माना जाता है कि इस तरह का स्वामित्व वाणिज्यिक या सरकारी स्वामित्व वाले रेडियो स्टेशनों की तुलना में समुदाय की जरूरतों को बेहतर ढंग से पूरा करने के लिए अच्छी स्थिति में है। साहित्य से स्पष्ट है कि स्थानीय भाषा / बोली बोलने वाले और स्थानीय संस्कृति का अभ्यास करने वाले समुदाय को मुख्यधारा के मीडिया पर अपनी भाषा / बोलियों और संस्कृति को बनाए रखने के अवसर से वंचित किया जाता है। यहां, सामुदायिक रेडियो स्टेशनों की न केवल स्थानीय भाषा / बोली और संस्कृति का समर्थन करने बल्कि सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से उन्हें संरक्षित करने की बड़ी जिम्मेदारी है।

सन्दर्भ सूची :

Akansha Arora, & Neeraj Karan Singh. (June 2020). Importance of Regional Languages in Community Radio Stations. *Indian Journal of Research, 9*(6), 74-76. doi:10.36106/paripex

Amanda E Krause, Anya Lloyd Smith & John Hajek. (2020). The role of community language radio for understanding creativity and wellbeing in migrant communities in Australia. *International Journal of Wellbeing, 10*(5), 83-99. doi:10.5502/ijw.v10i5.1495

Davyth Hicks, & Inaki Irazabalbeitia. (2013). Radio Broadcasting in Regional or Minority Languages., (पृ. 1-21). Brussels.http://ezkerraberri.eus/uploads/erab_1/2016/04/1460731922-liburuxka_irratiak.pdf से पुनर्प्राप्त

Debahuti Chakravorty. (November 2020). Role of community radio in maintaining cultural diversity in Assam (with special reference to Jnan Taranga and Radio Luit). *Mahratta, 5*(1). http://210.212.169.38/xmlui/bitstream/handle/123456789/9705/6-Nov-Debahuti-Mahratta.org.pdf?sequence=1&isAllowed=y से पुनर्प्राप्त

Diana Anggraeni, Sarwititi Sarwoprasodjo, Amiruddin Saleh,& Andi Faisal Bakti. (2020). Preserving Local Cultural Arts Through A Community Radio With Social And Behavior Change Communication. *Palarch's Journal Of Archaeology Of Egypt/Egyptology, 17*(4), 571-593.

Kanchan K. Malik Vinod Pavarala. (2007). *Other Voices: The Struggle for Community Radio in India*. New Delhi: SAGE Publications.

Linje Manyozo. (2009). Mobilizing Rural and Community Radio in Africa. *Ecquid Novi: African Journalism Studies, 30*(1), 1-23. doi:10.1080/02560054.2009.9653389

Lokesh Sharma, Hitendra Singh Rathore, & Girija Shanker Sharma. (2021). Effectiveness Of Community Radio In Preservation And Promotion Of The Indigenous Culture. *Psychology And Education, 58*(1). doi:10.17762/PAE.V58I1.2202

Susan Forde, Michael Meadows, & Kerrie Foxwell. (01, 2003). Community radio and local culture: An Australian case study. *Communications, 28*. doi:10.1515/comm.2003.015.

Victor Chikaipa,& Anthony Mavuto Gunde. (29 May 2020). The Role of Community Radio in Promotion of Indigenous Minority Languages and Cultures in Malawi. *Journal of Radio & Audio Media*. doi:10.1080/19376529.2020.1751633

Yalala Nirmala. (2015). The role of community radio in empowering women in India.*Media Asia, 42*(1-2), 41-46. doi:10.1080/01296612.2015.1072335

प्रेस इनफार्मेशन ब्युरो. (30 जून 2021). विकास संचार से लेकर सामाजिक परिवर्तन तक, 8वें सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के पुरस्कारों में इन्होंने जगह बनाई. PIB: https://pib-gov-in/Press Release Page-aspx\PRID¾1731808 से पुनर्प्राप्त

भारत मे सामुदायिक रेडियो स्टेशनों को स्थापित करने हेतु नीतिगत दिशा–निर्देश. (2002). सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय : https://mib-gov-in/sites/default/files/crsguidelines 300707-pdf से पुनर्प्राप्त

संयुक्त राष्ट्र. (13 फरवरी 2020). रेडियो : संवाद व विविधता को प्रोत्साहन देने का सशक्त माध्यम. संयुक्त राष्ट्र समाचारः https://news-un-org/hi/story/2020/02/1022581 से पुनर्प्राप्त

Poetry and Themes of Kadhakali – The art form of Kerala

Dr. Bindu. K** **Krishnendhu S K***

Abstract

Kerala has been famous from very early times for arts which are integral part of people's social and religious life. Kadhakali, the unique art form comes from this state.Kadhakali artiste is matrixed himself in poetry, as the play unfolds toPoetry. The term Kadhakali can be splittedup into two i.e. Kadha and Kali means Story and Dance. This dance-drama which has been originated in the 17th century is a unique combination of literature, music, acting and dance.The literature of Kadhakali is called Attakadhas. The Attakadha is composed in Manipravalam language (Malayalam+Sanskrit). The word Atta-Kadha literally means 'story for dancing and acting'. The structure of the Attakadha includes Slokas and Padams. KottarakkaraTampuran was the 1st Attakadha composer. Other poets of this category are KottayathuTampuran, Unnaivariyar, Irayimman Thampi, Kuttykunju Thankachy etc.

Key words: *Kadhakali, Attakadha, padam, sloka, ramanattom, krishnanattom,*

Methodology : *Secondary sources.*

Kerala has always been noted for its richness in art forms, both music as well as dance. One such artform that have had its evolution from this land, is Kadhakali. The term Kadhakali is a combination of two words namely, KADHA and KALI, that is, story and dance respectively. This dance drama originated in the 17th century, is a beautiful blending of dance drama and music. Kadhakali is always appreciated and studied as a progressed form of earlier dance dramas like Chakyarkoothu, Koodiyattam, and Ramanattam. Krishnanattom is still considered as a divine art and is performed even today at the renowned Sree Krishna temple in Guruvayoor as an offering to the deity. The elements of martial arts, ritualistic arts and socio-religious arts have had a huge influence in the making of Kadhakali.

Kadhakali has a unique combination of literature, music, acting and dance. All the five forms of art have a very important place in this combination. Its literature is narrative, poetic and dramatic. Kathakali is a beautiful; multi layered and sophisticated form, carrying effortlesslya series of codes- codes in costumes, colours, and signs and symbols, as well as multiple levels of poetic interpretations. Varied andnumerous streams of imagination operate in a grid of song andpercussion. It is an art that calls on the audience and the actor toparticipate actively in the process of understanding the art.The music of Kadhakali is as beautiful as is the poetry that is rich in similes and metaphors, which permit longdrawn 'sancharis'.

The literature of Kadhakali is called Attakadhas. The Attakadha is composed in Manipravalam language (Malayalam+Sanskrit). The word Atta-Kadha literally means 'story for dancing and acting'. The structure of the Attakadha includes Slokas and Padams. Even though the padams are set to specific raga and tala , it is also rendered by means of gestures and body movements by the actors . An Attakadha is more than a mere literary text; it

*Research Scholar, Dept of Music, University of Kerala
**Professor & Head i/c, Dept of Music, University of Kerala

contains all the literary markers that frame it as a performance. It contains the collective conventions established by tradition and handed down from teacher to a student or from performer to performer. The first set of Attakadhas was written by the Raja of Kottarakara followed by the Raja of Kottayam. However, over the years,there has been a drastic change and development with respect to the learning and performance aspect of kadhakali. Different performance scores may exist for the same play, arising out of the subtle variations introduced by the plays, when treated by different Kadhakali schools.

Themes of Kadhakali

The themes of the Kadhakali are religious in nature. They typicallydeal with the Mahâbarata, the Ramayana, Bhagavatha and the Puranas. Recently, as a part of the attempts to popularize the art, storiesfrom other cultures and mythologies, have been the subject of several Kadhakali plays. Mary Magdalene from the Bible, Homer's Iliad, and William Shakespeare's King Lear and Julius Caesar, Hamlet, and Othello, besides Goethe's Faust too have been adapted into Kadhakali scripts and on to stage. Further Western themes like John the Baptist, Sohrab and Rustum, etc. have also been tried out.Viewed through the prism of human and emotional themes, there arestories of infatuation like that of Urvasi, Soorppanakha, etc.

Some of the Key Attakadha Composers and their works

Râmanâttam is the temple art form of Kerala, which presents the story of rama in a series of eight play via dance drama. This was created under the patronage of veerakeralavarma (AD 1653- 1694) also known as kottarakkarathampuran. Another story on ramanattom is that, it was the immediate forerunner of Kadhakali. It is believed that internecine rivalry between Thampuram and the Zamorin of Calicut resulted in the initiation of a mode of entertainment by the Thampuram, called Râmanâttam to rival the Zamorin's Krishnanâttam form. While the Zamorin of Calicut, Manaveda, composed Krishnattam in Sanskrit, which was the "language of the gods"; Râmanâttam was in Malayalam, the language of the people.Subsequently, the Raja of Kottayam (Kottayathu Thampuran) of northern Kerala (Malabar) refined Râmanâttam into Kadhakali.

KottayathuTampuran:- He belonged to the first part of 18th century and was a poet and preceptor of dramatics who gave ascientific basis to Kathakali and Attakkatha literature. "Bakavadham, Kirmeeravadham, Kalyanasaugandhikamand "Nivathakayacha Kalakeyavadham" are the four perfect Kottayam works. Theseworks are foremost in literary beauty and musical qualityand have substantial acting possibilities. Simple arrangement ofpadams, sweetness of expressions, and depth in conception appearin the works of Thampuran from the beginning to the end. The most important contribution ofTampuran towards refining Ramanattam to Kadhakali was that hestudied the scientific basis of its literature, music and acting.

Unnâyi Warrier -: Composer of the famous Attakadha "Nalacharitam". He was born in the latter part of the 17th century, and there is a temple record stating that an excerpt of it was performed at the Padmanabhaswamy temple festival, in the year 1752. Nalacharitham elevated the literary standards of Kadhakali and is widely recognized as path breaking and pioneering in its approach to make Kadhakali a complete art form. The fundamental influence that Unnayi Variyar has had on Kathakali is that through his attakkadhas, he gave more importance to application of rasa than a bhava oriented approach. That is why, Nalacharitham is considered to be the complete Attakadha.

Mandavapalli Illiaricha Menon (1747-94):- His work Santana Gopalam was a popular household production directed towards gaining the benefit of future progeny in the Attakadha. “Duryodhana Vadham by **Vayashara Aryan Narayan Moosad** (1841-1902) and “Kiratam by **Irralakulanjara Rama Warriar** (1801-1845) were some of the other well known Attakadhas.

Irayimman Thampi:- a carnatic musician cum composer of Travancore whose birth name was Ravi Varman Thampi (1782-1856). He is the creator of the famous Lullaby “Omânathinkal Kidâvo which he wrote for the child Swathi Tirunal. He is also known for his Kathakali plays, “Kçchakavadham “Uttarâswayamvaram" and “Dakshayâgyam.

Kuttykunju Thankachy:-The first women composer who composed Attakadhas. She wasthe daughter of Irayimman Thampi. She composed three Attakadhasnamely Sreemathi Swayamvaram, Mitrasahamôksham and Pârvathi Swayamvaram.

Prince Aswathy Thirunal (1756-1794):- He wrote beautiful Malayalam Attakadhas like Rugmini Swayamvaram, Ambarçsha Charitam, Pôtana Môksham, and Poudraka Vadham.

K. C. Kesava Pillai:- (1868–1914) was the Poet Laureate of Travancore and extensively contributed to Malayalam literature. An avid viewer of Kadhakali plays, he learnt the basics of Kadhakali literature, costumes and mudras. When aged 15, he wrote his first Attakadha, “Prahlâda Charitham later renamed as, “Hiranyâsuravadham but was encouraged to learn Sanskrit so that he could correct his work himself. Later he wrote “Surapadmâsuravadham" and “Sreekrishnavijayam".

V. Madhavan Nair (1914-1994) more popularly known as Mali Madhavan Nair was a lawyer by profession. One of the most successful plays of the 20th century, the karnasapatham was his contribution, which was performed in more than 5000 stages. Compared to other Attakadhas, his play was short which spanned for just 3 hours.

Conclusion

The trend of the adaptation of western stories became ratherpopular and followed two streams. One is the adaptation of Shakespeare for Kathakali. This included Lear, Macbeth, Caesar and Othello. Lear and Othello worked very well. In Othello, the scene of Desdemona;s death, as enacted by Sadanam Bâlakrishna wasmemorable. For Julius Caesar, special Chutti, new costumes andheadgear were created, to resemble what ancient Romans wore. It was in 1989 that Kalâmandalam and the association of Keli in Paris collaborated to present King Lear.The organizers of the European Theatre Festival in Delphi in Greeceapproached the International centre for Kadhakali to choreograph Bacchae, for the European Theatre Festival. This turned out to bevery challenging, with the music being set to different Carnatic ragasto suit the changing moods. The chorus was the biggest challengesince such a concept had never been attempted in Kadhakali. Nontraditional elements were included like the Kombu. Even the visual treatment was adapted to have a larger number of characters on stage, as if to suggest a crowd scene. The costume too was adapted but not radically. For instance, Dionysuswas in Pazhuppa makeup, identifiable by its slightly reddish colourused for heroes.

In the long history of origin and development of Kadhakali, the contribution of the composers to Poetry and Themes are monumental. Their personal participation on individual basis, writing style of the Attakadhas, and maintenance of troupes in the palace paved

way to the encouragement of artistes and composer. All these efforts have helped in removing the stigma of practicing this art and have made it more social. The trend of adapting western Novel stories also helped to increase the popularity of the art form of Kerala, Kadhakali. They also added to the urge of common man in enjoying this art form.

References :

1. David Bolland – "A guide to Kadhakali with stories of 35 plays", sterling publisher's pvt. Ltd, New Delhi -110016
2. V Madhavan Nair – "Kçrala Sangeetham", D.C Books Kottayam. Kerala.
3. Krishna Kaimal Aymanam – "Attakadha Sâhityam", State Institute of Languages, Trivandrum, 1989.
4. Govindan Nair Kizhakkemadathil & Pushpa B – "Charitrathinte Eedukal", Thiruvanathapuram
5. Krishna Kaimal Aymanam – "Attakadha Sâhityam", StateInstitute of Languages, Trivandrum, 1989.
6. Shooranaattu Kunjanpilla – "Irayimman Thampiyude Attakadhakal", Kerala Sahitya Acadamy, Thrissur.
7. Menon. K.P.S - "Kathakali Rangam", Mathrubhumi Publications. Calicut, 1957.
8. Narayanan K.C –"Kathakaliyute Ranga Patha Charitram". Killimangalam Vasudevan Nambudirippad & M.P.S. Nambudiri. Mathrubhumi books, 2007
9. Paramesvara Iyer Ullur –"Kerala sahityacharithram". Department of Publication University of Kerala, 1974.

Glossary

Pazhuppu(Ripe)-A subtle variation of Paccha. This makeup is used for characters known for their wrath in addition to noble qualities.

Minukku – The make-up for gentle characters. Women sages and Brahmanas appear in Minukku

A Treatise on the sense and progress of Culture and Civilization

Rajneesh Mishra*

Abstract

The main objective of this paper is to explain the dichotomy in the notions of culture and civilization and philosophizing these concepts. This debate started in the early nineteenth century Culture is therefore called a value vision because of the process of acquisition of those eternal values cultural process. Perhaps for this reason, many thinkers limit the scope of Culture to the conceptual level of eternal values, separate them from the social-personal process of their acquisition and other life-useful things, and draw the dividing line between civilisation and Culture. In such a situation, Culture remains only a mental thing, and all other physical and social life is understood under the field of civilisation. This division may be helpful to an extent for the convenience of analysis, but it does not have procedural and ultimate significance. Because of considering Culture as absolute, historians limit themselves to religion, philosophy, art and literature while studying Culture. In this way, Culture has no relation with practical and real life, due to which an irreconcilable dissonance develops in thought and conduct. Therefore, before discussing Culture, it is necessary to understand that Culture is not only values. It is also value-loyalty. It is not only thought but also belief and conduct.The author has used an integrative anthropological approach, comparative historical analysis and philosophical hermeneutics

Keywords : *Culture, Civilisation , Society, History, Value*

Methodology : *This research paper is supported by secondary sources.*

It is neither possible nor desirable to arrive at a satisfactory definition of 'Culture' as this concept designates a polymorphous reality, implying complex meanings and significance. Culture has come to be used for distinct intellectual disciplines and several systems of thought. Culture took on the Meaning of cultivation and a process. Raymond Willims described it as 'tending and cultivating natural growth. The Meaning was extended to a process of human development[1].

Bacon called it 'the culture and manure of minds' and Hobbes' a culture their minds'. Culture has also been used in a sense as 'material' as distinct from 'spiritual motions.'[2]

Culture is used in three ways: a whole life of a people, material, intellectual and spiritual, of a given society; Second, a process of intellectual, spiritual and aesthetic development. And finally, a general body of the arts and scholarly works such as music, painting, literature, sculpture, etc. For any cultural discussion, its concept has to be clarified to simplify its issues.

'Culture' can be studied from the humanistic, anthropological, sociological and axiological point of view; in this thesis, I would like to take an axiological standpoint and defines Culture as the tradition of values of self-realisation. Further, values are the objects of valuing, a fundamental human activity. In the same way, Prof. G C Pandey says Culture as Valuing implies seeking, choosing, and approving.[3]

The thoughtfulness and creativity of man separate him from other living beings. These two qualities are not found in any other creature except human beings. It is because of this human

*Research Scholar, Dept of Philosophy and Religion, BHU, Varanasi

thoughtfulness and creativity that a value is found in all aspects of human work, and this value only develops a sense of responsibility in each of his actions; thus, it is proved that Man is a thinking, creative and responsible being. Culture is the set of qualities that a person receives in his society in the form of a world in which education is a significant contribution, so we can conclude that education is vital in forming Culture. Thus, education is a cultural process that refines and amplifies the Culture. Nand Kishore Acharya has called culture "an innate process of value perception at the level of knowledge and values at the level of conduct."[4]

That is, the primary purpose of education is to establish values and values. In the discussion of Culture, it has often been ignored that we discuss those tools in the form of Culture. Through whom only the informal identity of the external structurecan be found, and the essence often remains untouched. The so-called modern society mainly considers Culture as a historical thing. And it is not surprising that, therefore

The departments of ancient history and Culture are the same in the university because history is never present, so why the department of current Culture? And this is why Culture has become a matter of concern for modern society. All the physical and spiritual elements are included in the Culture. There is consensus among all the scholars that Culture has all the internal and external behaviour of human beings. Culture is that by which people develop their attitudes and increase their knowledge about life. Is. All intellectual and non-intellectual elements are included under Culture. Some of its features are expressed, and some must be addressed. Vasudev Sharan Agrawal has called Culture a holistic form of man's life, present and future.[5]

Nand Kishore Devraj has defined Culture in this way: moral-psychological motivation, which determines the qualitative level of the personality and its actions[6].

Thus, it can be said that Culture is related to every aspect of human life. Man is a social animal, and as a member of society, whatever he does, thinks and receives from an organisation all are related to Culture. Culture helps achieve the desired goals of the organisation. Thus Culture is described as a specific way of life. Culture displays and expresses itself in different forms in different creations of man. Where Culture is related to human beings' physical, mental and intellectual powers, the same religion, art, and literature are also different parts.

Culture and Civilization

To clarify the concept of Culture, it is necessary to make a distinction between Culture and civilisation because there has been a difference of opinion among scholars regarding the use of these words. Some scholars have used the terms culture and civilisationassynonymous. At the same time, some scholars have used the word culture with different meanings. Different words are often used for Culture and civilisation. The famous anthropologist Tylor has considered the term culture synonymous with civilisation. On the contrary, some anthropologists use the terms culture and civilisation interchangeably. Malinauski's name is worth mentioning in this class; he is of the opinion that civilisation and Culture should be used in a different sense; according to him, "a subject of high culture is called civilisation."[7]

Bill Durand has called civilisation a social system that develops cultural creation. His opinion is that "It is a great civilization that makes a nation, creates geographical and economic conditions which create various cultures." Nanda Kishor Acharya's opinion is that; there should not be procedural or extreme distortions in Culture and civilization. According to them, "civilization is the spiritual form of Culture.[8]

In fact, Culture is the process of qualitative progress of the whole life, and this process can be considered complete only when it becomes a part of the daily behaviour of human life. His statement is, "Culture is practically not only of civilization but of the whole of life. Therefore, the relation of Culture cannot be limited only to inner experience or mental activity.[9] Assuming this, the relationship of Culture can be established with real life as well; thus, Devraj believes that "the division of culture and civilization should be considered appropriate for the convenience of study."[10]

Devraj advocates that "civilization and Culture are the results of the creative activity of man when this activity moves towards a useful goal, then civilization is born when it moves to enlighten the value-conscious, then Culture is born. And even both are not entirely separate from each other."[11] Culture is an indicator of human physical and mental rituals; that is, the Meaning of Culture is the refinement and improvement of the rituals of human society. It is a continuous process. Western thinker Gairla has shown the mutual relation between Culture and civilization through the comparative study of Culture and civilization.[12]'

Therefore, just as ethics and thoughts are related to each other, in the same way, Culture and civilization are related to each other. Gairla states that "The general Meaning of Culture is to refine the Culture. This sanskara or refinement is civilization."[13] The inner qualities of a person are based on his Sanskar. These qualities are expressed in the behaviour of a person through Culture. The word civilization is derived from the word decent, which means polite. Hence the word civilization means politeness. Politeness is also a social quality, so only a cultured person can be civilized. Gareela believes that "Culture and civilization are different in spite of being related to each other. Culture is related to the inner world, and civilization is related to the outer world.[14]"

Philosophy of Culture

In fact, every subject has some basic beliefs, which it accepts without any logic, and on which its existence and complete development depend, to what extent these basic beliefs of a subject are true and logical. Its importance really depends on the complete answer to this question; philosophy tries to answer this question. Philosophy tells us about which preconceptions are true and which are false. In fact, every subject has some basic beliefs, which it accepts without any logic, and on which its existence and complete development depend to what extent these basic beliefs of a subject are true and logical. Its importance really depends on the complete answer to this question; philosophy tries to answer this question. Philosophy tells us about which preconceptions are true and which are false. Another hand, the nature, form and motion of any culture are determined by those ideals in whose accomplishment a society or a person realizes the significance of its existence.[15] Therefore, all subjects are related to philosophy in one way or the other, which is why since ancient times, philosophy has been called the science of science. And for this reason, every subject is related to philosophy, philosophy of science, philosophy of art, philosophy of religion, political philosophy, and historical philosophy. Similarly, in the philosophy of Culture, we do a metaphysical and logical analysis of the basic elements of Culture and the underlying presuppositions.

Conclusion

Culture is therefore called a value vision because of the process of acquisition of those eternal values cultural process. Perhaps for this reason, many thinkers limit the scope of Culture to the conceptual level of eternal values, separate them from the social-personal process of their acquisition and other life-useful things, and draw the dividing line between civilisation and

Culture. In such a situation, Culture remains only a mental thing, and all other physical and social life is understood under the field of civilisation. This division may be helpful to an extent for the convenience of analysis, but it does not have procedural and ultimate significance. Because of considering Culture as absolute, historians limit themselves to religion, philosophy, art and literature while studying Culture. In this way, Culture has no relation with practical and real life, due to which an irreconcilable dissonance develops in thought and conduct. Therefore, before discussing Culture, it is necessary to understand that Culture is not only values. It is also value-loyalty. It is not only thought but also belief and conduct.

The development of consciousness does not only mean the development of thought; it is also the development of experience, so until our intellectual conclusions and our daily and spontaneous experiences are not united, the process of Culture remains incomplete; therefore, Culture is not only the civilisation but the whole life itself. Takes in scope If life is oriented towards some values and inspired by them, then the inspiration of those values should be reflected in every aspect of it. In this way, Acharya Nanad Kishor says, "culture is the process of qualitative progress of the whole life".[16]

Values of any class, its beliefs and beliefs determine the process and form of this qualitative progress. These beliefs and beliefs have an extreme and attainable form; the other is a relative and instrumental form. That is why I do not differentiate between Culture and civilisation. I do and find myself agreeing with those views which consider civilisation as a constructive form of Culture.

It is necessary that there should be internal and, as far as possible external consistency in both these forms, and the usable form should be equally reflected in the spiritual state. Suppose our social system and conduct do not reflect the eternal values and beliefs central to our Culture. If there is inspiration, it must be accepted that Culture cannot take a holistic form! Instead, it is a bifurcated culture, meaning our mind is bifurcated. In the process, contradictions can develop many times due to various geographical, human and economic political reasons, and they do happen. However, one of the signs of the aliveness or creativity of the Culture is that it continuously identifies its contradictions. Man is a conscious entity, so he can understand these contradictions and work towards destroying them; without this, the Culture rots! If we want to keep the Culture alive, we must keep watching. Where and why have we deviated from our original motivations, and how can we end this conflict? If we do not do this, we will have no moral justification to call ourselves a cultured society.

References :

1. Willims, R. (2017). Society and Culture, Vintage, Londo
2. Bacon, Francis., (1597). Essays of Francis Bacon, Pinnacle Press
3. Pandey, G C (1972). Meaning and process of Culture, shiv lal Agarwal, Agra, p 6
4. Acharya, N K (1997). Sanskriti and Sanatanata, Bagdevi publication, Bikaner, p 7
5. Agrwal, Vasudev, (2007); Kalp Briksh, Sasta sahitya mandal; p 30
6. Devraj, Nand Kishor (1972); Philosophy of culture, kitab mahal publication, p 192
7. Malinowaski, Bronislaw (1990); University of North Carolina Press, p 189
8. Acharya, N K (1997). Sanskriti ka Vyakaran, Bagdevi publication, Bikaner, p 128
9. Ibid, p 127
10. Devraj, N. (1972); Philosophy of Culture, Kitab Mahal Publication, p 192
11. Ibid, p 192
12. Gairola, bachspati (2013); Vaidik sahitya aur sanskriti, p 221
13. Ibid, p 221
14. Ibid, p 222
15. Acharya, N K (1997). Sanskriti and Sanatanata, Bagdevi publication, Bikaner, p 4
16. Acharya, N K (1997). Sanskriti ka vyakaran, Bagdevi publication, Bikaner, p 9

काशी का रंग विमर्श

प्रो. ऋचा कुमार**

मालविका तिवारी*

शोध–सार

काशी भारत की प्रमुख एवं प्राचीनतम नगरियों में से एक है। इसे हम भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक राजधानी के नाम से भी जानते हैं। अनादि काल से ही काशी विभिन्न धर्मों की आस्थाओं व मान्यताओं की केंद्र–बिंदु रही है। काशी का नाट्य, इतिहास की दृष्टि से बहुत ही खास महत्व का है। अत्यंत प्राचीन काल से ही प्रवाहित यहाँ की नाट्यधारा का सतत क्रम दो हजार सालो से भी ज्यादा प्राचीन है। यहाँ का नाट्य इतिहास संस्कृत के शास्त्रीय क्लासिकी युग से भी पहले शुरू होता है। जब आद्य नाट्य का प्रचलन था और उसका धीरे–धीरे शास्त्रीयकरण हो रहा था। संस्कृत शास्त्रीय क्लासिकी नाटक भी काशी में खूब फल–फूलकर गुप्त युग में अपने चरम पर पहुँच गया था। फिर धीरे–धीरे उसका केन्द्रीय संश्लिष्ट रूप बिखरने लगा और आद्य नाट्यरूपों की मूल परंपरा उस पर हावी होने लगी और इस तरह अनेक रूपाकृतियों वाले क्षेत्रीय पारंपरिक नाटकों की विविधता का विस्तार होने लगा। इस परिवर्तन के मूल में भाषागत बदलाव भी था जो सब संस्कृत की जगह नवविकसित क्षेत्रिय भाषाओं को स्थानापन्न कर रहा था।

बीज शब्द : *काशी, नाटक, इतिहास, हिंदी नाटक, रंगमंच, नाट्य परिवेश,*

प्राविधि : *ऐतिहासिक शोध विधि। इस शोध–पत्र हेतु पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं आदि द्वितीयक माध्यमों से सामग्री लेकर अध्ययानोपरान्त विश्लेषण किया है।*

काशी अर्धचंद्राकार मां गंगा के पावन तट और भगवान नटराज के त्रिशूल पर $25^0 18'$ अक्षांश और $83^0 1'$ देशान्तर पर स्थित उत्तर भारत की सांस्कृतिक राजधानी है। यह भारत की विभिन्न संस्कृतियों की संगमस्थली है। इस नगर के एक ओर गंगा दूसरी ओर वरूणा नदी है। जातकों के अनुसार काशी जनपद का विस्तार 300 योजन था। डॉ0 ऑल्टेकर ने इस जनपद की सीमा उत्तर पश्चिम में ढाई सौ मील मानी है। इस जनपद में उत्तर में कोशल, पूर्व में मगध और पश्चिम में वत्स था। काशी और कोशल की सीमाए मिली हुई थी। काशी भारत की प्रमुख एवं प्राचीनतम नगरियों में से एक है। इसे हम भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक राजधानी के नाम से भी जानते हैं।[1] अनादि काल से ही काशी विभिन्न धर्मों की आस्थाओं व मान्यताओं की केंद्रबिंदु रही है। काशी जितनी बहुरंगी व बहुआयामी नगरी सम्पूर्ण विश्व में कहीं नहीं है। इसकी सांस्कृतिक विविधताओं के कारण ही इसे लघु भारत की भी संज्ञा दी जाती है। उदभट्ट विद्वानों की नगरी, बुद्ध, महावीर, कबीर, कीनाराम, रैदास जैसे प्रसिद्ध संतों व विभिन्न सम्प्रदायों, चर्चित मठों–मंदिरों, अखाड़ों व घुमावदार भूलभुलैया जैसी गलियों व घाटों की नगरी इत्यादि विशेषणों से विभूषित यह अद्भुत नगरी है। भारतवर्ष की काशी नगरी का सांस्कृतिक और साहित्यिक अवदान विश्व विश्रुत है। इसकी संस्कृति, धर्म, कला, दर्शन, साहित्य, गुण, चरित्र, विचार एवं सांगीतिक परम्परा का स्वर्णिम इतिहास मिलता है जिसकी महत्ता बढाने में यहाँ के साधक–संगीतज्ञों संत, महात्मा, अवधूत, कापालिक, गुणी, पंडित, साहित्यकार, चित्रकार, कवि, नाटककारों, राजा, रईसों, मंदिरों इत्यादि का विशेष योगदान रहा है। इसी कारण हर युग में अनेक धर्म सम्प्रदाय, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद एवं संगीत के दिग्गज आचार्यों एवं प्रवर्तकों को भी इस नगरी के विद्वानों के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा है। यहाँ प्रत्येक विधा के उदीयमान नक्षत्र रूपी विद्वान रहे हैं जिन्होंने अपनी विचारधारा, स्वाभिमान, देशभक्ति, कवित्व, लेखन शैली, विद्वता, पांडित्य, कलासाधना इत्यादि से जन सामान्य से लेकर विद्वत समूह तक सभी को प्रभावित किया है।

इस नगरी की दैनिक दिनचर्या में कुछ ऐसी विशेष कलात्मक परम्पराएँ हैं जो काशीराज से ले कर

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशिका, संगीत अनुभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जनसामान्य तक में समान रूप से मिलती हैं। यहाँ की दिनचर्या में धार्मिक आस्था, शास्त्रार्थपटुता, वाणी की उदारता, निर्भीक लेखनपटुता, संस्कृति–परम्परा–रक्षण, देशप्रेम, आस्था, निशुल्क विद्यादान, अन्नदान, गोदान, उदारता, धार्मिक, चारित्रिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों से परिपूर्ण गतिशीलता पाई जाती है जो इसे विशेषता प्रदान करती है। यहाँ सादा जीवन उच्च विचार, धार्मिक निष्ठा, स्वभाव में सहजता, अक्खड़पन एवं परम संतोष के साथ एक अद्भुत मस्ती, धार्मिक सहिष्णुता के साथ ही प्रत्येक कलाओं के क्षेत्र के विद्वानों के साथ प्रतिपूर्ण स्नेह, आदर की भावना आदि गुणों से ना सिर्फ स्थानीय बल्कि आगुन्तक विद्वान्–विदेशी यात्रियों व सामान्य पर्यटक तक प्रभावित रहे हैं।[2]

यहाँ के विद्वान् न केवल समस्त कलाओं में अपितु वेदान्त, न्याय–दर्शन, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि के शास्त्रार्थ में न सिर्फ निपुर्ण व पटु थे बल्कि अध्ययन–अध्यापन, साधना, मनन चिंतन उनके मनोरंजन का साधन थी। देश के अनेक प्रान्तों से विद्वानों के काशी आगमन का एकमात्र लक्ष्य शास्त्रों का गवेषणात्मक अध्ययन था । काशीवासियों में शस्त्रविद्या, मल्लविद्या, शास्त्र अध्ययन, काव्य, नाट्य, साहित्य, संगीतकला के प्रति सहज अभिरूचि, गोसेवा, दीन–दुखियों के प्रति मानवीय संवेदना, देवभाषा, राष्ट्रभाषा, देशभक्ति एवं काशी की प्राचीन परम्परा मर्यादा के प्रति पूर्ण समर्पण इत्यादि गुणों के साथ काशीवासियों की विशिष्ट जीवंत पहचान थी। पीतल, हांथीदांत, लकड़ी, स्वर्ण, रजत आदि पर विशिष्ट नक्काशी, बनारसी रेशमी वस्त्रों की विशिष्टता, सुगंधियों, इत्र के निर्माणविधि की परिपक्वता, अनेक कलाओं में पूर्ण पटुता आदि गुणों के साथ सरलता, सौम्यता, विनम्रता, धार्मिक निष्ठा, स्वाभिमान के साथ पुण्यसलिला गंगा में नित्य स्नान, बाबा विश्वनाथ माता अन्नपूर्णा के दर्शन का आकांक्षी, सभी विद्याओं व कलाओं की साधना में निर्लिप्त, मर्यादित प्राचीन आमोद–प्रमोद की कलात्मक परम्पराओं द्वारा सुरुचिपूर्ण आनंदमय जीवन यापन काशी की विशिष्टता रही है। आरंभ से ही यह स्थल देश–विदेश की प्रतिभाओं की साधना भूमि रहा है। साधना के विभिन्न क्षेत्रों में इस नगर ने अपना कीर्तिमान स्थापित किया है। साहित्य के सन्दर्भ में भी यही बात है। साहित्य की प्रत्येक विधा उत्कर्ष को प्राप्त हुई है। अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ ही नाट्य लेखन और मंचन में भी इसने प्रतिनिधित्व किया है। प्राचीनकाल से ही इसके प्रमाण मिलते हैं। काशी का नाट्य, इतिहास की दृष्टि से बहुत ही खास महत्व का है। अत्यंत प्राचीन काल से ही प्रवाहित यहाँ की नाट्यधारा का सतत क्रम दो हजार सालों से भी ज्यादा प्राचीन है।

यहाँ का नाट्य इतिहास संस्कृत के शास्त्रीय क्लासिकी युग से भी पहले शुरू होता है। जब आद्य नाट्य का प्रचलन था और उसका धीरे–धीरे शास्त्रीयकरण हो रहा था। संस्कृत शास्त्रीय क्लासिकी नाटक भी काशी में खूब फल–फूलकर गुप्त युग में अपने चरम पर पहुँच गया था। फिर धीरे–धीरे उसका केन्द्रीय संश्लिष्ट रूप बिखरने लगा और आद्य नाट्यरूपों की मूल परंपरा उस पर हावी होने लगी और इस तरह अनेक रूपाकृतियों वाले क्षेत्रीय पारंपरिक नाटको की विविधता का विस्तार होने लगा। इस परिवर्तन के मूल में भाषागत बदलाव भी था जो सब संस्कृत की जगह नवविकसित क्षेत्रिय भाषाओं को स्थानापन्न कर रहा था। नाट्यपरिवेश की इन तमाम हलचलों के बीच काशी ने कोई खास पहचान बनाया या नहीं इस पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है लेकिन भक्तिकाल में काशी ने रामलीला के रूप में एक ऐसा सर्वथा विलक्षण नाट्य रूप विकसित किया जो संपूर्ण भारत में विलक्षण और अकेला है। रामलीला के प्रवर्तक तुलसीदास थे। रामलीला का आधार तुलसीकृत रामचरितमानस है। रामचरितमानस का रचना–विधान बहुत कुछ मध्य कालीन पारंपरिक हिन्दी नाट्य आलेखों जैसा है परन्तु तुलसीदास जी ने अपने व्यापक भारत भ्रमण व नाट्य शास्त्र के गहरे अनुशीलन से अपने मानस पर आधारित रामलीला का नाट्यविधान पा ही लिया, इसीलिये तुलसी द्वारा काशी के रंग परिवेश में अपनी खास पहचान बना ली गई।

दूसरी बार औपनिवेशिक काल के शुरू में जब भारत ब्रितानी शोषण की क्रोंच–खरोंच से हड़बड़ा कर जागने की कोशिश कर रहा था तब भी काशी के रंगपरिवेश ने अपनी नई पहचान बनाई। इस बार नये परिवेश के सर्जक थे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। भारतेन्दु की नाट्य प्रतिभा ने क्षयप्राप्त नाटक को प्राणदान दिया। उनके नाट्य लेखन–जगत में प्रवेश से पूर्व यहाँ नाट्य–आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका था। इसके सूत्रधार थे काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह बाद में भारतेन्दु ने इसे नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने अनेक नाटक लिखे और अनेक का मंचन किया व कराया तथा गोष्ठियों व क्लबों की स्थापना की काशी के बाहर व काशी में उन्होंने वैभवशाली पारसी

रंगमंच के विरूद्ध आंदोलन चला कर सर्व साधारण के लिए रंगमंच स्थापित किया। उर्दू पारसी रंगमंच की अश्लीलता और हैरत अंगेज कारनामों के विरूद्ध उन्होंने जेहाद छेड़ा। उनका नेतृत्व इतना प्रभावशाली था कि तत्कालीन लेखकों व साहित्यकारों ने अन्य रचनाओं के साथ–साथ नाटकों की रचना भी की व साहित्यकारों का एक वर्ग भारतेन्दु मंडल के नाम से उठ खड़ा हुआ। भारतेन्दु काल में जिस निष्ठा और लगन से जितनी प्रभूत संख्या में नाटक लिखे गये, वह आज तक हिन्दी नाट्य साहित्य का अक्षय कीर्तिमान बना हुआ है।[3]

भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद आये और उन्होंने नेतृत्व संभाला उन्होंने हिन्दी नाटक को नवीन चेतना व आयाम दिये और पूर्व तथा पश्चिम का अपूर्व संयोग किया। उस समय एक परंपरा विशेषकर पारसी रंगमंच की चल पड़ी थी जिसके अनुसार नाटक पूर्वनिर्मित मंच के एक सांचे में फिट कर दिये जाते थे। यह प्रवृत्ति नाटक के विकास में बाधक थी। प्रसाद ने एक नवीन विचार 'नाटक प्रस्तुति के लिए नाटकों के अनुकुल मंच होना चाहिए, दिया। प्रसाद की क्रांतिकारी विचारधारा में नाटककारों को नये सिरे से सोचने के लिए प्रेरित किया। उसी समय पारसी रंगमंच के प्रमुख नाटकार मुहम्मद आगा हश्र 'कश्मीरी' भी वाराणसी के नारियल बाजार में रहकर नाटकों की धूम मचा रहे थे। रौनक बनारसी विनायक प्रसाद 'तालिब', हरिकृष्ण 'जौहर' आदि पारसी नाटककारों ने इस नगर को काफी प्रभावित किया।

प्रसाद के बाद समस्या नाटकों का युग आता है। इस पाश्चात्य नाट्य शैली एवं विचारधारा को हिन्दी नाट्य जगत में पं0 लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्रतिष्ठित किया और उनका भी साधना–पीठ वाराणसी रहा है। आज भी यहाँ डॉ0 शंभूनाथ सिंह, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह आदि लब्धप्रतिष्ठ नाटककार हैं जो यहाँ की प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं । पं0 सीताराम चतुर्वेदी भी इस दिशा में अपना महत्व रखते हैं। उन्होंने जितने नाटक लिखे, अभिनय के लिए लिखे। उनका रंगमंच से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। नागरी नाटक मंडली के न्यासी रहे डॉ0 भानुशंकर मेहता ने काशी रंगमंच के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। आगाथा क्रिस्टी के दो नाटक–'माउस ट्रैप' का हिन्दी अनुवाद 'तीन अन्धे चूहे' और 'सबूत के गवाह', इब्शन के नाटक 'जनता का दुश्मन' (द एनिमी ऑफ पीपुल), 'खड़िया का घेरा' आदि के मंचन डॉ0 मेहता का ही निर्देशन में हुए थे। अन्य नाटक 'शेणी विजानन्द' 'अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा' वैदिक हिंसा, हिंसा न भवित', गरीब की दुनिया' (आगाहश्र) आदि उल्लेखनीय हैं। वरिष्ठ रंगकर्मी नीलकमल चटर्जी परशियन रंगमंच के जमाने से अभी अपने देहावसान से कुछ समय पूर्व तक रंगमंच में सक्रिय थे। उनके निर्देशन में पहली प्रस्तुति 'कृष्णावतार' (राधेश्याम) सन् 1949 में हुई थी। अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं–अमृत पुत्र (सत्सवत सिंन्हा), फन्दी (शंकर शेष), सैनिक, आनंदमठ, चोर, अपनी कमाई, अण्डर सेक्रेटरी आदि। एब्सर्ड शैली में खेला गया नाटक अमृत पुत्र' ट्रीटमेन्ट में इतना सशक्त था कि दर्शकों ने पूरे मनोयोग से देखा। 'फन्दी' भी कथ्य और प्रस्तुति के लिहाज के काफी सराहा गया था। 'आनंदमठ' और 'सैनिक' का नाट्यमंचन तो क्रमशः 22, 25 बार हुए। इनका जुड़ाव 'नाट्य परिषद' और 'बाल रंग मंडल' से रहा। बच्चों के रंगमंच से जुड़कर उनके रंग–रूझान पैदा करने का सार्थक प्रयत्न कर रहे हैं। वाराणसी की नाट्य परंपरा बेहद पुरानी और अटूट सिलसिलों वाली है, बल्कि इसलिए भी कि वाराणसी की नाट्य परंपरा में सामान्य जनता के वृहत्तर कल्याण के प्रति जवाबदेही की भावना भी रही है। तुलसी की रामलीला के जरिए वाराणसी की नाट्य परंपरा ने अपनी एक खास पहचान बना ली। भक्तिकाल की वाराणसी में और भी कई लीलाएं विकसित हुईं जिनमें वामनलीला, नृसिंहलीला और कृष्णलीला प्रमुख हैं। उन्नीसवीं शती में जब आधुनिक युग की शुरूआत हुई तब मध्यकालीन पारंपरिक नाट्य के रूप में इन लीलाओं के अलावा वाराणसी के नाट्य परिवेश में भांड़ों के तमाशे, गौनहारिनों की नकलें, जुगीड़े आदि तथा गायिका नर्तकियों के भावाभिनव नाट्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे थे।[4] काशी में समय के अनुकूल नाट्य प्रस्तुति का इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार हो गया। बीसवीं शताब्दी के तीस के दशक तक नाट्य प्रस्तुतियों का सिलसिला काफी अच्छा और भरा–पूरा था और इसका मॉडल पूरी तरह से पारसी व्यावसायिक रंगमंच था। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात, जो उस समय के रंगमंच के विश्लेषण से ज्ञात होती है, वह यह कि यहां नाट्य की दो समानान्तर धाराएं बनने लग गई थीं एक धारा तो पूरी तरह से पारसी व्यावसायिक रंगमंच का अंधानुकरण और नकल थी जिसमें ज्यादा सफल होने वाले पारसी रंगमंच के नाटकों का थोड़ा हिंदीकरण कर और कुछ बदलकर नाटककार अपना नया नाटक तैयार कर उसे खेलने के स्तर पर भारतेन्दु

की ही परंपरा में गंभीर, सोद्देश्य और सरस ऐसे नाटक लिखने की थी जो हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि कर सके और साथ ही, हिंदी का अपना स्वतंत्र रंगमंच बनाने के लिए प्रेरणा दे सके। दूसरी धारा के रंगकर्मी साहित्यिक नाटक और पारसी व्यावसायिक प्रस्तुति शैली के बीच किसी तरह का समझौता करने की कोशिश के साथ आगे बढ़ रहे थे क्योंकि प्रस्तुति–शैली का दूसरा विकल्प उन्हें मिल नहीं रहा था। काशी को इस बात का गर्व है कि भारतेन्दु के अलावा उसने जयशंकर प्रसाद के रूप में हिंदी के महान साहित्यिक नाटककार और आगा हश्र के रूप में पारसी व्यावसायिक शैली के महान नाटककार को जन्म दिया। इतना ही नहीं, शायद यह काशी के समृद्ध नाट्यपरिवेश की करामात थी कि प्रेमचंद जैसे महान उपन्यासकार और कहानीकार ने भी मौलिक नाटक लिखे और नाटकों के अनुवाद भी किए। काशी के नाट्य परिवेश ने हिंदी के माध्यम से नाट्य के सैद्धांतिक और शास्त्रीय अध्ययन तथा अभिनीत नाटकों की समीक्षा की । सुदृढ़ परंपरा आरंभ की बीसवीं शती के चौथे दशक के शुरू में बोलती फिल्मों का निर्माण आरंभ हो गया। इसने व्यावसायिक सफलता का नया दरवाजा खोल दिया। इस नए व्यवसाय में पूंजी की तुलना में मुनाफा कई गुना ज्यादा होने की संभावना नजर आई। इससे नाट्य व्यावसायियों का दल तुरंत इस ओर झुकने लगा। नाटक कंपनियां बंद होने लगीं और नाट्यशालाएं सिनेमाघरों में रूपांतरित की जाने लगीं। आगा हश्र ने 1933 ई0 में स्पष्ट कह दिया– 'अब थियेटर नहीं चलेगा। उसका स्थान फिल्म लेगी।' इसी समय जयशंकर प्रसाद भी इस बात को लक्ष्य करते है– 'हिंदी का कोई अपना रंगमंच नहीं है। जब उसके पनपने का अवसर था तभी सस्ती भावुकता लेकर वर्तमान सिनेमा में बोलने वाले चित्रों का अभ्युदय हो गया और फलतः अभिनयों का रंगमंच समाप्त–सा हो गया।'[5] इसी चौथे दशक के उत्तरार्थ में आगा हश्र (1935 ई0) और जयशंकर प्रसाद (1937 ई0) दोनों महान नाटककार भी रंगमंच की जगमगाती दुनिया को उजड़ती देखकर दूसरी दुनिया के लिए कूच कर गए। इस तरह ब्रिटिश औपनिवेशिक युग में अंग्रेजी के साथ आने वाले हलचल से भरे एक नाट्य युग का अंत हो गया ।[6]

इनके अतिरिक्त दर्जनों ऐसे नाटककार हुए हैं जिनका रंगमंच से सीधा सम्बन्ध है। रंगमंच के सन्दर्भ में रंगशालाओं का भी महत्त्व होता है। किसी नगर की रंगचर्या वहाँ की रंगशालाओं पर निर्भर करती है। काशी में उन्नीसवीं शताब्दी में एक रंगशाला 'नाचघर' की स्थापना हो चुकी थी। इसी में जानकी मंगल का प्रथम अभिनय हुआ था। इसमें अनेक हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के नाटकों के मंचन के प्रमाण मिलते हैं। पारसी नाटक मण्डलियों के अभिनय भी इसमें होते थे। बाद में इन मण्डलियों का आगमन बढ़ जाने के कारण विश्वाराध्य, विश्वेश्वर आदि रंगशालाओं की स्थापना हुई। सम्प्रति, नागरी नाटक मण्डली की आधुनिक रंगशाला मुरालीलाल स्मारक प्रेक्षागृह निर्मित हुई है। नगरपालिका रुद्राक्ष कन्वेंशन सेंटर, का भी एक प्रेक्षागृह है।

रंग–प्रस्तुति की दृष्टि से यहाँ की संस्थाओं का रंग स्तर उच्चकोटि का है। यहाँ आये दिन अभिनय होते रहते हैं। यहाँ के अभिनीत नाटकों में अत्याधुनिक हिन्दी और हिन्दीत्तर भाषाओं से अनुदित तथा मौलिक नाटक होते हैं। यहाँ कई प्रतिभावान लेखक, निर्देशक और अभिनेता भी हैं। पं0 सीताराम चतुर्वेदी, पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, हरिदास माणिक, गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, पंडित ज्वालाप्रसाद नागर 'विलक्षण', दुर्गाप्रसाद गुप्त, शिवरामदास गुप्त, जयशंकर प्रसाद, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी', शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र काशिकेय', प्रभातकुमार घोष, श्रीकृष्णशंकर श्रीवास्तव, नंदलाल मेहरोत्रा, रामसिंह 'आज़ाद', सोना बाबू, नीलकमल चटर्जी, ज्योतिन्द्र सिंह 'सोहेल', मंगलीप्रसाद अवस्थी, शिवा जी अरोड़ा, पंडित धर्मदत्त वेदशास्त्री, भगवती प्रसाद मिश्र, राम पदारथ राय, विजय बहल, रतिशंकर त्रिपाठी, बेला गांगुली, कमलिनी मेहता, भानुशंकर मेहता, रमेश कृष्णा नागर, कुंवर जी अग्रवाल, प्रतिभा अग्रवाल, राजेश्वर आचार्य, नरेन्द्र आचार्य, डॉ. राजेंद्र उपाध्याय, सुमन पाठक, सुरोजीत चैटर्जी, आनन्दप्रसाद कपूर आदि ऐसे ही हैं। चतुर्वेदी जी ने अपने रंगनिर्देश से हिन्दी रंगमंच को लाभान्वित किया है। यहाँ के अनेक ख्यातनाम निर्देशकों और अभिनेताओं को प्रान्तीय पुरस्कार मिल चुके हैं। यहाँ के रंगकर्मियों में अभिनेत्रियाँ भी हैं। काशी का दर्शक–समाज भी सुशिक्षित और सुसंस्कृत है।[7]

इस समय काशी में कई महत्त्वपूर्ण नाट्य–संस्थाएँ हैं जो उच्च कोटि की रंगप्रस्तुतियाँ करती हैं। सर्वप्रथम सन् 1884 में नेशनल थियेटर की स्थापना हुई। उनके बाद जैन नाटक मण्डली बनी। इसकी स्थापना के बाद नाट्य–संस्थाओं की स्थापना में तेजी आयी। उस समय

की स्थापित नागरी नाटक मण्डली आज भी यहाँ की संस्थाओं में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इसका अपना प्रेक्षागृह है और यह अन्य संस्थाओं की अपेक्षा नाटकों की प्रस्तुति अधिक करती है। यहाँ की संस्थाओं में विक्रम परिषद् भी सक्रिय रही है। इस संस्था ने अनेक छोटे–बड़े नगरों में अभिनय कर काशी को गौरव प्रदान किया है। इस समय यहाँ की संस्थाओं में नागरी नाटक मण्डली, श्रीनाट्यम्, अनुपमा, नाट्य परिषद्, प्रगति, गोकुल आर्ट्स, सेतु, प्रेरणा कला मंच, ललित चक्र, कामायनी, रूपवाणी, ज्ञान प्रवाह, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय वाराणसी केंद्र आदि प्रमुख हैं, जो समय–समय पर अपनी मानक प्रस्तुतियों से हिन्दी रंगमंच को आन्दोलित करती रहती हैं।

बीती सदी के अन्तिम दो दशकों में जो बातें बार–बार कचोटती हैं, उनमें एक है हिन्दी के महत्वपूर्ण नाटककारों के नाटकों का मंचन न होना। साथ ही, काशी के रंगमंच पर परोक्षरूप से पश्चिमी रंगमंच का औपनिवेशिक प्रभाव, कुलीनता या सवर्ण–संस्कृति का वर्चस्व रहा है। लोक–नाटकों की ओर रूझान लगभग नहीं है।

अंत में, काशी के रंगकर्मियों की विडम्बना यह कि ये आत्ममुग्ध अधिक हैं। परस्पर विरोधी दलबन्दी या उपेक्षा के औजार से ये काशी के रंगमंच को नुकसान ही पहुँचाते हैं। इनमें बौद्धिक सुनियोजन का अभाव रहा है। प्रचार काशी को नहीं मिला। यहां सरकारी रंगमंच का न होना चकित करता है। हिन्दी संस्थानों ने भी रंगमंच की उपेक्षा की है। विश्वविद्यालयों में नाटक हाशिए पर है जबकि, रंगमंच भारतीय एकता को एक सूत्र में पिरोने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुनरपि, काशी के रंगमंच की सुदीर्घ यात्रा है।

निष्कर्ष :

समग्रतः काशी का हिन्दी रंगमंच हिन्दी की रंगमंच–परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ उच्च कोटि के निर्देशक और अभिनेता हुए हैं। आधुनिक साज–सज्जा से सम्पन्न रंगशाला है। प्रदर्शन के प्रति निष्ठावान सुशिक्षित दर्शक हैं। नाटककारों की यहाँ की अपनी एक परम्परा है जिसने यहाँ के नाट्य–आन्दोलन को प्रोत्साहित किया है। इसके साथ ही, लोक नाटकों तथा साहित्यिक नाटकों के मंचन भी साथ–साथ होते रहे हैं। इस दृष्टि से काशी के हिन्दी रंगमंच का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

सन्दर्भ सूची :

1. केजरीवाल, ओमप्रकाश, (संपादक), काशी नगरी एकरूप अनेक, वर्ष 2010, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 2
2. मोतीचंद्र, (डॉ.), काशी का इतिहास, चतुर्थ संस्करण, वर्ष 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 1–3
3. अग्रवाल, कुंवर जी, काशी का रंगपरिवेश, प्रथम संस्करण, वर्ष 1986, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 65
4. वही
5. राय, डॉ. नर्वदेश्वर, वाराणसी की अभिनय परम्परा, प्रथम संस्करण, वर्ष 2012, मनीष प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 328
6. वही, पृ. 329
7. मिश्र, श्री नरेन्द्र नाथ मिश्र, (संपादक एवं प्रकाशक), सोच विचार पत्रिका, काशी अंक 1,2, के 67/135 (ए), इश्वरगंगी, वाराणसी, पृ. 94

सोनभद्र परिक्षेत्र की शैल–कला में प्रतिबिम्बित आखेट एवं युद्ध–सम्बन्धी दृश्यों का कलात्मक अध्ययन

अजीत कुमार*

सारांश

आदिम मानव की सतत संघर्षमय जीवन–यात्रा आखेट से ही प्रारम्भ होकर आखेट पर ही अस्त होती थी। मानव अपनी आरम्भिक अवस्था में जंगली जानवरों का शिकार करके अपना जीवनयापन करता था। तत्कालीन मानव अपने बौद्धिक श्रेष्ठता के कारण विभिन्न तरह के पाषाण शस्त्रों, तीर–धनुष, भाला– ढाल आदि द्वारा इन जंगली जानवरों का शिकार कर उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। आखेटक ही आदिम चित्रकार था तथा आखेट–पशु एवं आखेट–दृश्य ही उसकी कला के प्रमुख विषय थे। शैलकलाविदों का मानना है कि आखेट में अभीष्ट सफलता प्राप्ति के विचार से ऐसे चित्रों का निर्माण किया गया। तत्कालीन मानव की दो प्रमुख समस्याएँ थीं– हिंसक पशुओं से आत्मरक्षा एवं उदरपूर्ति हेतु खाद्य–सामग्री की व्यवस्था करना। इन दोनों समस्याओं का मुख्य निदान आखेट में था। अतः जब मानव ने स्वयं के संघर्ष की अभिव्यक्ति हेतु शैल–चित्रण को माध्यम के रूप में अपनाया होगा तो उसने शिकार–सम्बन्धी दृश्यों को प्रमुख विषय–वस्तु के रूप में ग्रहण किया। प्रस्तुत शोध–पत्र में सोनभद्र परिक्षेत्र के शिला–चित्रों में अंकित जीव–जंतुओं के आखेट एवं युद्ध–सम्बन्धी अंकनों का कलात्मक अध्ययन तथा उत्तरी विंध्य क्षेत्र तथा मध्य गंगा घाटी के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त पुराजैविक अवशेषों का इन अंकनों से साम्यता स्थापित करना, प्रागैतिहासिक आखेट एवं युद्ध कला हेतु प्रयुक्त प्रविधि एवं आयुधों का शोध–क्षेत्र की निवासरत जनजातियों के औजारों से तुलना कर शैलचित्रों की निरन्तरता स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

***मुख्य शब्द** : सोनभद्र, शैलकला, आखेट, औजार, पुराजैविक*

***शोध प्रविधि** : प्रस्तुत शोध–पत्र में मुख्य रूप से सर्वेक्षणात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक तथा नृजाति शोध–पद्धति के साथ ही कई द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है।*

परिचय– सोनभद्र परिक्षेत्र की प्रागैतिहासिक शैल–कला के शोध में पाश्चात्य विद्वान ही मुख्यतः अग्रणी रहे हैं। हमारी संस्कृति एवं कला–सम्बन्धी विविध पक्षों को समझने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर उन्होंने यह खोज प्रारम्भ की। इन क्षेत्रों में शैलकला की दृष्टिकोण से हुये पुरातात्त्विक कार्यों की शुरूआत का श्रेय आर्किबाल्ड कार्लाइल को जाता है, जिन्होंने सर्वप्रथम 1867 ईस्वी में तत्कालीन मिर्जापुर के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित सोहागीघाट के निकट चित्रित शैलाश्रयों की खोज की थी। यहाँ समय–समय पर अनेक पुरातत्त्वविदों एवं शैल कला विशेषज्ञों ने कार्य किया है जिसके परिणामस्वरूप नये–नये शैलाश्रय प्रकाश में आते रहे हैं।

शोध क्षेत्र– सोनभद्र ($23^{0}51'54''$से $24^{0}46'18''$ उत्तरी अक्षांश तथा $82^{0}40'24''$से $83^{0}33'15''$ पूर्वी देशांतर) जनपद 4 मार्च 1989 ईस्वी को मिर्जापुर जनपद से पृथक होकर एक स्वतंत्र जिले के रूप में अस्तित्व में आया। लगभग 6788 वर्ग किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में फैला यह उत्तर प्रदेश का दूसरा सबसे बड़ा जिला है।यह भारत का एकमात्र ऐसा जनपद है जिसकी राजनीतिक सीमाएँ चार राज्यों यथा–पूर्व में झारखण्ड तथा बिहार, पश्चिम में मध्य प्रदेश, दक्षिण में छत्तीसगढ़ राज्य से मिलती हैं। (चित्र–1) इसके उत्तर में चंदौली, उत्तर–पश्चिम में मिर्जापुर, उत्तर–पूर्व में कैमूर तथा रोहतास (बिहार) पूर्व में गढ़वा (झारखण्ड), दक्षिण में बलरामपुर (छत्तीसगढ़) तथा पश्चिम में सिंगरौली (मध्य प्रदेश) जनपद स्थित है। यह तीन तहसीलों (राबर्ट्सगंज, घोरावल तथा दुद्धी) तथा आठ विकासखण्डों (बभनी, राबर्ट्सगंज, घोरावल, चतरा, नगवा, चोपन, म्योरपुर तथा दुद्धी) में विभाजित है। (डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक सोनभद्र 2011)

*शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

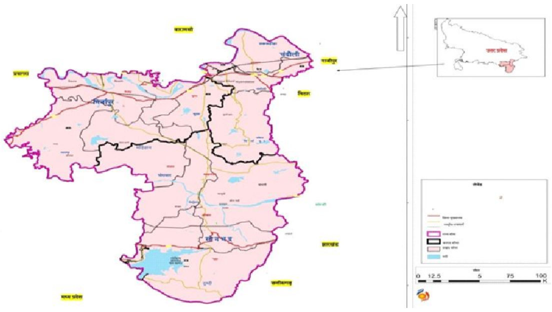

चित्र–1 सोनभद्र परिक्षेत्र की भौगोलिक स्थिति

आखेट सम्बन्धी दृश्य– सोनभद्र परिक्षेत्र के चित्रित शैलाश्रयों में निम्नलिखित जीव–जंतुओं के आखेट–सम्बन्धी दृश्य मिलते हैं–

गैण्डा का आखेट– यहाँ की शिलाओं में एक बड़े पैमाने पर गैंडे का अंकन किया गया है। पंचमुखीशैलाश्रय समूह में गहरे लाल रंग से अर्धपूरक (एक्स–रे) शैली में आखेटको द्वारा तीर–धनुष की सहायता से गैण्डे पर प्रहार का दृश्य अंकित है। यह जानवर गतिमान अवस्था में है, इसके शरीर के आन्तरिक भाग को आड़ी–टेढ़ी रेखाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। (चित्र–2अ) इसी शैलाश्रय में एक अन्य चित्रण अर्धपूरक शैली में गहरे लाल रंग में बनाया गया है, जिसमें भालायुक्त शिकारी सामने से गैण्डे पर प्रहार की मुद्रा में अंकित हैं। (चित्र–2ब) घोड़मंगर शैलाश्रय में गैण्डे के आखेट के अन्य चित्रण मिलते हैं। इन सभी चित्रों को सर्वप्रथम जे० काकबर्न ने देखा था। (काकबर्न 1883 : 56–65, तिवारी 1986: 25–29) केरवाघाट के चित्रित शैलाश्रय से गैण्डे के आखेट का एक बड़ा ही सुंदर दृश्य मिलता है, जिसमें शिकारी समूह गैण्डे का वध करके उसके मांस को किसी पात्र में भरकर ले जा रहे हैं। (न्यूमायर 2013: 134) (चित्र–2स) कौवाखोह शैलाश्रय के एक दृश्य में बहुकांटेदार हारपून/भाले की सहायता से गैण्डे का शिकार किया जा रहा है। सम्पूर्ण चित्रण लाल रंग से अर्धपूरक शैली में निर्मित है। (चित्र–2द)

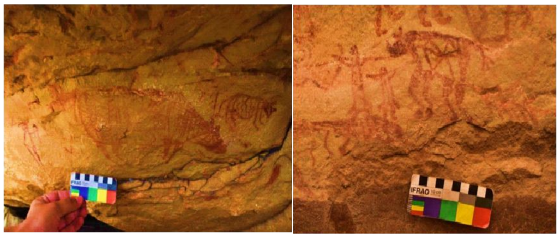

अ ब

स द

चित्र–2 गैण्डे के शिकर के विभिन्न दृश्य (अ) एवं (ब) पंचमुखी, सोनभद्र, (स) केरवाघाट, सोनभद्र (द) कौवाखोह,

सोनभद्र हिरण का आखेट– हिरण का चित्रण यहाँ के शिला–चित्रों में बहुतायत मिलता है। भल्दरिया शैलाश्रय में गेरू रंगे से बारहसिंगा के शिकार का दृश्य अंकित है। इसमें शिकारी भाले/डण्डे लिये सामने से प्रहार की मुद्रा में अंकित है। (चित्र–3 अ) इसी तरह लाल रंगयुक्त अर्धपूरक शैली में अंकित बारहसिंगा के आखेट का एक अन्य दृश्य कौवाखोह शैलाश्रय में मिलता है। इसमें तीर–धनुष एवं भालायुक्त मानव समूह द्वारा बारहसिंगा का शिकार किया जा रहा है। (चित्र–3ब) केरवाघाट शैलाश्रय में हिरण के आखेट के अनेक दृश्य देखने को मिलते हैं। (चित्र–3स) एक विशेष प्रकार का अन्य चित्रण परवनिया शैलाश्रय में अंकित है जहाँ एक विशाल हिरण के सामने शिरस्त्राण धारण किये हुये मानव समूह आखेट अथवा नृत्य मुद्रा में चित्रित हैं। (चित्र–3द) अन्य अंकन पंचमुखी, सीता जी की कोहबर में मिलते हैं।

अ ब

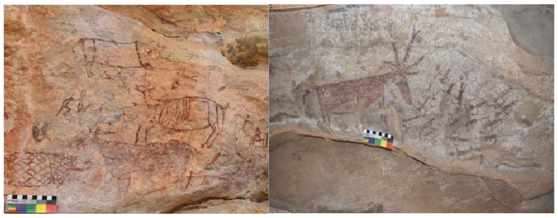

स द

चित्र–3 हिरण के आखेट सम्बन्धी विविध दृश्य (अ) भल्दरिया, मिर्जापुर (ब) कौवाखोह, सोनभद्र (स) केरवाघाट, सोनभद्र (द) परवनिया, सोनभद्र

मगरमच्छ / घड़ियाल का आखेट– मगरमच्छ / घड़ियाल का चित्रण भारतीय शिला–चित्रों में बहुत कम देखने को मिलता है। कौवाखोह शैलाश्रय में लाल गेरू रंग से चित्रित एक्स–रे शैली में भालायुक्त तीन मनुष्यों द्वारा एक बड़े मगरमच्छ के शिकार का बड़ा ही सुंदर दृश्य अंकित है। मगरमच्छ के शरीर के आंतरिक भाग को मोटी रेखाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। इसमें एक आदमी मगरमच्छ के सामने से बहुकांटेदार तीर से हमला करने की स्थिति में चित्रित है, जबकि अन्य दूसरा आखेटक इसके पूंछ वाले भाग पर हमला कर रहा है। तीसरा व्यक्ति अपने दोनों हाथ ऊपर उठा नृत्य मुद्रा में चित्रित हैं। (चित्र–4अ) इसी तरह कागहरे लाल रंग से पूरक शैली में चित्रित एक अन्य दृश्य केरवाघाट के शैलाश्रय में अंकित है। इसमें एक धनुर्धर का अंकन है जो बहुकांटेदार तीर की सहायता से मगरमच्छ अथवा छिपकली को सामनेसे शिकार कर रहा है। (चित्र–4ब) मगरमच्छ के अन्य अंकन बघमा, चत्रामान, गोहमनवा, परवनिया, झंडी पहाड़ी आदि शैलाश्रयों में भी मिलते हैं।

अ ब

चित्र–4 घड़ियाल का आखेट (अ) कौवाखोह, सोनभद्र (ब) केरवाघाट, सोनभद्र

कछुआ का आखेट– केरवाघाट के शैलाश्रय में कछुआ के आखेट का एक सुंदर दृश्य प्राप्त होता है, जिसमें नाव पर सवार चार व्यक्ति चित्रित किये गये हैं। नाव में सबसे आगे बैठै व्यक्ति के द्वारा भाला या लंबे डंडे सदृश्य वस्तु से कछुए पर प्रहार किया जा रहा है। नाव पर पीछे बैठे व्यक्ति पतवार लिये हुये नाव को चला रहा है। नाव पर कुछ कछुए या जलीय जीव को रखा गया है। संभवतः इनका शिकार प्रारंभ में ही कर लिया गया होगा। (चित्र–5अ) मनुष्य और कछुओं को गहरे लाल रंग से पूरक शैली में चित्रित किया गया है तथा नाव अर्द्धपूरक शैली में चित्रित है। इसी शैलाश्रय में एक अन्य दृश्य मिलता है, जिसमें दो नावों का चित्रण किया गया है तथा दोनों विपरीत दिशा में गतिमान हैं। बड़ी नाव पर दो व्यक्ति सवार हैं तथा इनके बीच एक कछुए का अंकन किया गया है। तथा छोटी नाव पर एक महिला (सम्भवतः माँ) दो छोटे–छोटे बच्चों के साथ अंकित है। (चित्र–5ब)

अ ब

चित्र–5 कछुआ का आखेट दृश्य (अ) एवं (ब) केरवाघाट, सोनभद्र

जंगली भैसा (बाइसन) का आखेट– कौवाखोहशैलाश्रय में जंगली महिष के आखेट का बड़ा ही सुन्दर दृश्य अंकित हैं। गहरे लाल रंग से पूरक शैली में निर्मित इस चित्रण में आखेटक एक हाथ में गोल सदृश्य कोई ठोस वस्तु तथा दूसरे हाथ में छोटा भाला (?) लिये अंकित है। (चित्र 6अ) लेखनिया केशिलाश्रयों में बाइसन के आखेट का चित्रण अंकित है। इसमें आखेटक द्वारा भाले की सहायता से सामने से शिकार किया जा रहा है। (चित्र 6ब) बाइसन के अन्य चित्रण सूगापांख, लखमा, हथवानी, मतहवा, गोचरा आदि शैलाश्रयों में प्राप्त होते हैं।

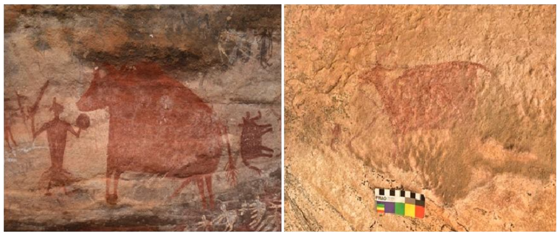

अ ब

चित्र–6 जंगली भैंस का शिकार दृश्य (अ) कौवाखोह, सोनभद्र (ब) लिखनिया, सोनभद्र

जंगली सूअर का आखेट– जंगली सूअर के आखेट का प्रसिद्ध दृश्य भल्दरिया शैलाश्रय में अंकित है, जिसे सर्वप्रथम काकबर्न ने देखा था। इसमें सूअर घायल अवस्था में है तथा उसका मुख खुला है। यह चित्र गेरुए रंग में चित्रित है। (चित्र–7अ) इसी तरह कण्डाकोट शैलाश्रय में बाल खड़ा किये हुये जंगली सूअर का पूरक शैली में चित्रण है, जिसका शिकारियों द्वारा घेरकर शिकार किया जा रहा है। (चित्र–7ब) इसके अतिरिक्त केरवाघाट, झरिया, कौवाखोह,

बजरही पहाड़ी आदि में भी इनका चित्रण विभिन्न मुद्राओं में मिलता है।

अ

ब

चित्र–7 जंगली सूअर का आखेट दृश्य (अ) भल्दरिया, मिर्जापुर (ब) कण्डाकोट, सोनभद्र

हाथी का आखेट– सोन तथा बेलन नदी घाटियों से प्राप्त हाथी दांत पर किये गये प्रारंभिक अध्ययनों के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट होता है कि इन क्षेत्रों में कम से कम हाथी की तीन प्रजातियाँ विचरण करती थीं। (वर्मा 2012: 64) हाथी का एक दृश्य लखनिया दरी शैलाश्रय में चित्रित किया गया है, जहाँ पर गजारोहियों तथा अश्वारोहियों के समूह द्वारा जंगली हाथी को घेरकर उसका शिकार करने का प्रयास किया जा रहा है। (चित्र–8अ) इसी के समान एक अन्य दृश्य कंडाकोटशैलाश्रय में भी मिलता है। (चित्र–8ब) हाथी के अन्य अंकन सीता जी की कोहबर, विजयगढ़ आदि शैलाश्रयों में देखे जा सकते हैं।

अ

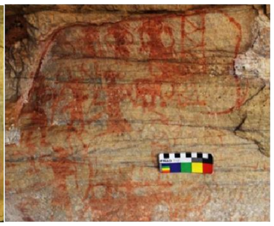

ब

चित्र–8 हाथी का आखेट (अ) लखनिया दरी, मिर्जापुर (ब) कण्डाकोट, सोनभद्र

मछली का आखेट– कौवाखोह शैलाश्रय में मछली के आखेट का एक प्रभावपूर्ण चित्रण मिलता है, जिसमें योद्धाओं के सदृश्य चार मनुष्य एक बड़ी मछली से थोड़ी दूर खड़े हैं। इनके सामने एक बड़ी बिल्ली को मछली की ओर मुख किये हुये दर्शाया गया है। बिल्ली के खुले मुख और उसके घुटने की मुद्रा से पता चलता है कि सम्भवतः यह हमला करने की स्थिति में है। एक अन्य बिल्ली का भी अंकन किया गया है जो मछली की ओर ध्यान से देख रही है। नाव पर सवार एक आखेटक द्वारा लम्बे डंडे या अन्य किसी हथियार से मछली पर सामने से हमला किया जा रहा है। नाव में पीछे सवार एक अन्य व्यक्ति भी हथियार लिये हुये प्रदर्शित है। दो अन्य मछुआरे बाहर खड़े होकर इस पूरे दृश्य को देख रहे हैं। यह सम्पूर्ण चित्रण गहरे लाल रंग में चित्रित है। मछली को एक्स–रे शैली में बनाया गया है। (चित्र–9अ) मछली पकड़ने का यह दृश्य तत्कालीन कलाकार की कला दक्षता को इंगित करता है। केरवा घाट शैलाश्रय में मछली के आखेट का एक अन्य दृश्य अंकित है जहाँ नाव पर सवार दो मछुआरों द्वारा उसका शिकार किया जा रहा है। नाव के सामने मछली का अंकन रहा होगा जो अब धूमिल हो गया है। (उपाध्याय तथा सिंह 2022 : 19–29) (चित्र–9ब)

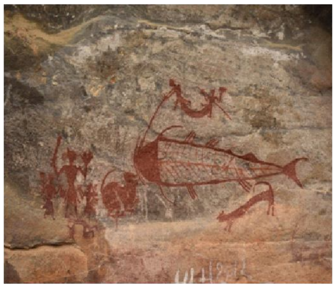

अ

ब

चित्र–9 मछली का आखेट दृश्य (अ) कौवाखोह, सोनभद्र (ब) केरवाघाट, सोनभद्र

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि सोनभद्र परिक्षेत्र का तत्कालीन मानव इन जीवों से परिचित था। इस क्षेत्र के चित्रित शैलाश्रयों में जिन जीवों के चित्रण प्राप्त हुये हैं, उनके अवशेषों की प्राप्ति उत्तरी विंध्य क्षेत्र तथा मध्य गंगा घाटी के उत्खनित पुरास्थलों से हुयी है, जिसका विवरण सारणी–1 के माध्यम से दिया गया है।

सारणी–1 (सोनभद्र परिक्षेत्र के शैलचित्रों में अंकित आखेट–सम्बन्धी पशुओं के पुराजैविक अवशेष प्राप्ति पुरास्थल)

क्रम सं०	जीवों के प्रकार	प्राप्त जीवों के वैज्ञानिक नाम	परिवार	उत्तरी विंध्य क्षेत्र तथा मध्य गंगा घाटी के पुरास्थलों से प्राप्त पुराजैविक अवशेष	कालानुक्रम
1	काला हिरण	एंटिलोप सर्विकेप्रा	बोविडी	सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				महगड़ा, टोकवा, हेतापट्टी, पार, सेनुवार	नवपाषाण
				पार,टोकवा, झूंसी, सेनुवार, खैराडीह, राजा नल का टीला, भूनाडीह	ताम्रपाषाण
				इमलीडीह खुर्द	नरहन
				अगियाबीर,टोकवा	लौहकाल
				कोपिया	ऐतिहासिक
2	चौसिंघा हिरण	टेट्रासेरस क्वाड्रिकॉर्निस	बोविडी	महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, टोकवा, झूंसी	नवपाषाण
				टोकवा, झूंसी, खैराडीह, अगियाबीर, राजा नल का टीला, भूनाडीह	ताम्रपाषाण
				टोकवा, कोपिया	लौहकाल
3	जंगली भैंसा (बाइसन)	बॅास गौरस	बोविडी	केन, बेलन, सोन नदी घाटी	प्रातिनुतन
				सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, टोकवा, सकास	नवपाषाण
				टोकवा, राजा नल का टीला, भूनाडीह, झूंसी	ताम्रपाषाण
				अगियाबीर	लौहकाल
4	चीतल / बारहसिंगा	एक्सिस एक्सिस	सर्विडी	सोन नदी घाटी	प्रातिनुतन
				सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, टोकवा, झूंसी, पार, सकास, चिरांद	नवपाषाण
				पार, झूंसी, टोकवा, राजा नल का टीला, रायपुरा, खैराडीह, भूनाडीह, धुरियापार	ताम्रपाषाण
				इमलीडीह खुर्द	नरहन
				अगियाबीर, टोकवा	लौहकाल

5	सांभर	रुसा यूनिकोलर	सर्विडी	सोन नदी घाटी	प्रातिनुतन
				महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, टोकवा, हेतापट्टी, झूंसी, सकास	नवपाषाण
				सेनुवार, पार, राजा नल का टीला, खैराडीह	ताम्रपाषाण
				अगियाबीर	लौहकाल
				मल्हार	ऐतिहासिक
6	सुअर (जंगली)	सुस स्क्रोफा	राइनोसेरोटिडी	महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, हेतापट्टी, पार, सकास, चिरांद	नवपाषाण
				पार, झूंसी, राजा नल का टीला, अगियाबीर, धुरियापार	ताम्रपाषाण
				इमलीडीह खुर्द	नरहन
				अगियाबीर, टोकवा	लौहकाल
7	गैण्डा	राइनोसेरस यूनिकॉर्निस	एलिफैंटिडी	महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				टोकवा, चिरांद	नवपाषाण
8	हाथी	एलिफस मैक्सिमस	फेलिडी	सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				चिरांद	नवपाषाण
9	घड़ियाल / मगरमच्छ	क्रोकोडाइलस पैलास्ट्रीस	वैरेनिडी	महदहा	मध्यपाषाण
				टोकवा	नवपाषाण
10	गोह	वैरेनस बेंगालेंसिस	ट्रायोनिचिडी	महदहा	मध्यपाषाण
				पार, सकास	नवपाषाण
11	कछुआ	ट्रायोनिक्स गैंगेटिकस	ग्रुइडी	महदहा, दमदमा	मध्यपाषाण
				लहुरादेवा, पार, चिरांद	नवपाषाण
				पार, खैराडीह, भूनाडीह, धुरियापार	ताम्रपाषाण
				इमलीडीह खुर्द	प्रारम्भिक नरहन
12	रोहू	लेबिओ रोहिता	सिप्रीनिडी	लहुरादेवा, झूंसी, पार	नवपाषाण
				पार, भूनाडीह, टोकवा	ताम्रपाषाण
13	कैटफिश	रीता रीता	बैग्रिडी	लहुरादेव, झूंसी	नवपाषाण

(स्रोत–जोगलेकर 2015: 144–198, दत्त 1984:39, नाथ एण्ड बिस्वास 1980:115–124, सिंह 1991–92:120–122, बादाम 2002:209–246, सिंह ऐट ऑल, 2022:92)

युद्ध–सम्बन्धी दृश्य– युद्ध एवं प्रेम मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति है। आदिम मानव भी इससे रहित नहीं था। वह हिंसक जानवरों से संघर्ष करता था और कभी–कभी परिस्थिति ऐसी भी आती थी कि उसे अन्य मानव से भी संघर्ष करना पड़ जाता था। आखेट एवं युद्ध के दृश्य एक–दूसरे के पूरक माने जाते हैं। (केसरी 1995 : 73) सोनभद्र परिक्षेत्र के कुछ शैलाश्रयों में युद्ध के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। दो समूहों के बीच हुये युद्ध का स्पष्ट अंकन कौवाखोह में मिलता है जिसमें एक तरफ तलवार एवं ढाल लिये हुये योद्धा ऊँट पर सवार हैं तथा दूसरी तरफ घोड़े पर आसीन योद्धाओं द्वारा परस्पर युद्ध का एक सुन्दर दृश्य अंकित है। इस दृश्य की साम्यता स्थानीय लोक कहानियों में प्रचलित नायक वीर लोरिक से स्थापित की जाती है। (तिवारी 1990 : 29) (चित्र–10अ) इसी शैलाश्रय में गहरे लाल रंग से निर्मित युद्ध सम्बन्धी एक अन्य दृश्य भी महत्वपूर्ण है, जहाँ विभिन्न योद्धा तलवार एवं ढाल लिये परस्पर युद्ध की मुद्रा में चित्रित हैं। (चित्र–10ब) परवनिया शैलाश्रय में तलवार एवं ढाल लिये घोड़े पर सवार योद्धाओं का समूह चित्रित है। (चित्र–10स)

अ

ब

स

चित्र–10 युद्ध सम्बन्धी विविध दृश्य (अ) एवं (ब) कौवाखोह, सोनभद्र (स) परवनिया, सोनभद्र

आखेट एवं युद्ध हेतु प्रयुक्त औजार– प्रागैतिहासिक मानव को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति, हिंसात्मक वन्य पशुओं से आत्मरक्षा तथा कबीले के ऊपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिये सदैव एकांकी या सामूहिक रूप से कठिन परिस्थितयों का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप उसे विविध प्रकार के हथियारों की आवश्यकता महसूस हुयी होगी। इसी कारण तत्कालीन मानव ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप आयुधों का निर्माण एवं विकास प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक अवस्था में उन्होंने प्रस्तर औजारों का निर्माण किया। जैसे–जैसे उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़ी उन्होंने पत्थरों के साथ–साथ हड्डियों तथा काष्ठ के भी औजार बनाना प्रारम्भ कर दिये। यहाँ के शिला–चित्रों में मानव ज्यादातर आखेट सम्बन्धित गतिविधियों में अंकित हैं। वे तीर– धनुष, भाले या हारपून (सामान्य या बहुकांटेदार) के साथ एकांकी या समूह में चित्रित किये गये हैं। आरम्भिक स्तर के चित्रणों में आखेटकों को धनुष–बाण से सज्जित दर्शाया गया है। धनुष भी विविध प्रकार में अंकित हैं लेकिन वह ज्यादातर छोटे आकार के हैं, जिसे सरलता से संघारित किया जा सके। आरम्भिक ऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक स्तर के चित्रों में विभिन्न प्रकार की तलवारें, ढालें तथा खंजर लिये योद्धाओं का अंकन भिन्न–भिन्न मुद्राओं में मिलता है।वर्तमान समय में भी यहाँ के स्थानीय जनजातियों द्वारा जंगली–जानवरों के शिकार हेतु विभिन्न प्रकार के पारम्परिक औजारों का प्रयोग किया जाता है। अपने सरल उपकरण, यथा–तीर–धनुष, चाकू, भाला, परशु, गोजार, जाल आदि की सहायता से आखेटन करते हैं। ये लोग शिकार के अनुरूप अपने तीरों को निर्मित करते हैं। (चित्र–11 अ,ब,स,द,य) कुछ जनजातीय लोग गड्ढे द्वारा शिकार, विशेषतः जंगली सूअर को गिराने हेतु प्रयोग में लाते हैं।इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के फंदो को लगाने में ये लोग काफी कुशल होते हैं। ये प्रायः सांभर, जंगली सूअर, जलीय जीव, खरगोश, गिलहरी, बन्दर आदि तथा विभिन्न प्रकार के पक्षियों का शिकार विशेष रूप से करते हैं। भारत सरकार द्वारा वन्य जीव–संरक्षण अधिनियम (1972) लागू होने के कारण इन क्षेत्रों की जनजातियाँ स्वतंत्र रूप से शिकार नहीं कर पाती हैं तथा जंगलों की तीव्र गति से कटाई से यहाँ पर जंगली जानवरों की संख्या काफी कम हो गई है। फिर भी, वर्तमान समय में कुछ जनजातीय वर्ग चोरी–छिपे अपने आवश्यकतानुसार छोटे–मोटे जंगली जानवरों का शिकार कर लेते हैं।

अ ब

स

द

य

चित्र–11 सोनभद्र परिक्षेत्र के जनजातियों द्वारा दैनिक प्रयोग हेतु विभिन्न प्रकार के पारम्परिक औजार (अ) तीर–धनुष लिये आखेट मुद्रा में बैगा सदस्य, (ब) तीरों के विविध स्वरूप, (स) भाला, (द) तलवार, (य) गड़ासा

निष्कर्ष : आखेट के दृश्य, आदिम मानव के अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये किये गये संघर्ष के साथ ही उसकी वीरता को भी अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ के प्रागैतिहासिक मानवों के लिये शिकार, जीविका निर्वहन हेतु एक सशक्त माध्यम था। जैसे–जैसे इनकी मानसिक क्षमता विकसित होती गयी वैसे–वैसे शिकार के लिये नई–नई जगहों एवं तकनीकों का ज्ञान हुआ। यहाँ के आखेट–सम्बन्धी प्रारम्भिक स्तर के चित्रों में ज्यादातर शिकार एक या दो मानवों द्वारा ही किया जा रहा है। समूह में आखेट दृश्य बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। लेकिन बाद के स्तर में ज्यादातर शिकार समूह में किया जा रहा है। यह प्रारम्भिक अवस्था थी, जिसने मानवीय रिश्तों की एकता, सम्पूर्णता तथा स्थायित्व के लिये मार्ग प्रशस्त किया। समूह में किये गये शिकार से नेतृत्व की भावना पनपी होगी जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों की स्थापना हुई। केरवा घाट तथा कौवाखोह शैलाश्रय सोन नदी के बहाव क्षेत्र से काफी कम दूरी पर स्थित हैं, सम्भवतः यही कारण है कि इन शैलाश्रयों में जलीय जीवों के आखेट–सम्बन्धी दृश्य देखने को मिलते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. उपाध्याय, प्रभाकर एण्ड सिंह, स्वतंत्र कुमार, 2022, रेयर बोट मोटिफ्स इन रॉक आर्ट ऑफ सोनभद्र डिस्ट्रिक्ट, उत्तर प्रदेश, पूणे, मैन एण्ड एनवायरमेंट 47 (1)।
2. कॉकबर्न, जे०, 1883, ऑन द रीसन्ट इग्जिस्टन्स ऑफ राइनोसेरस इण्डिकसइन द नॉर्थ इस्टर्न प्रोविन्सेस एण्ड ए पेन्टिंग फ्रॉम मिर्जापुर रिपोर्टिंग द हन्टींग ऑफ द एनिमल, जर्नल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल 52 (2)।
3. केसरी, डॉ० अर्जुनदास, 1995, शैलाश्रित गुहाचित्र, रॉबर्ट्सगंज : लोकरुचि प्रकाशन।
4. जोगलेकर, पी०पी०, 2015, ह्यूमन्स एण्ड एनिमल्स (आर्कियोजूलॉजिकल अप्रोच), पूणेःगायत्री साहित्य।
5. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैण्डबुक सोनभद्र, 2011, सीरीज–10, भाग–12 बी, डाइरेक्टरेट ऑफ सेन्सस आपरेशन्स, उत्तर प्रदेश।
6. तिवारी, डॉ० राकेश, 1990, रॉक पेंटिंग्स ऑफ मिर्जापुर, लखनऊ : यूरेका प्रिंटर्स।
7. तिवारी, डॉ० राकेश, 1986, राइनो हंट सीन ऑफ घोड़मंगर रॉक शेल्टरयअ रिप्रेजल, लखनऊ, बुलेटिन ऑफ म्यूजियम्स एण्ड आर्कियोलॉजी 39।
8. दत्त, पी०सी०, 1984, सराय नाहर रायः द फर्स्ट एण्ड ओल्डेस्ट ह्यूमन फोसिल्स रिकॉर्ड इन साउथ एशिया, एंथ्रोपोलॉजी 22(1)।
9. नाथ, भोला एण्ड बिस्वास, एम० के०, 1980, एनिमल रिमेन्स फ्रॉम चिरांद, सारण डिस्ट्रिक्ट (बिहार), कलकत्ता, रिकॉर्ड ऑफ द जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया 76।
10. न्यूमायर, इरविन, 2013, प्रीहिस्टोरिक रॉक आर्ट ऑफ इंडिया, लन्दन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. बादाम. जी० एल०, 2002, क्वाटर्नरी वर्टीब्रेट पैलिओंटोलॉजी इन इंडियाः फिफ्टी ईयर्स ऑफ रिसर्च इन इण्डियन आर्कियोलॉजी इन रेट्रोस्पेक्ट, आर्कियोलॉजी एण्ड इंटरेक्टीव डिसिप्लींस, एस०सेट्टर ऐण्ड रवि कोरिसेट्टर (सम्पा.), नई दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स।
12. वर्मा, राधाकांत, 2012, रॉक आर्ट ऑफ सेंट्रल इंडिया नॉर्थ विंध्यन रीजन (विथ स्पेशल रीफरेंश टू मिर्जापुर एण्ड द एडज्वायनिंग रीजन्स इन उत्तर प्रदेश एण्ड बघेलखण्ड इन मध्य प्रदेश), नई दिल्लीःआर्यन बुक्स इंटरनेशनल।
13. सिंह, पुरुषोत्तम, सिंह, अशोक कुमार, सिंह, इंद्रजीत,1991–92, एक्सक्वेशन ऐट इमलीडीह खुर्द, के०एन० दीक्षित (सम्पा.), नई दिल्ली, पुरातत्त्व 22।
14. सिंह, विकास कुमार ऐट ऑल. 2020, सकासःअ बरिअल साइट इन कैमूर रेंज, सासाराम (रोहतास), बिहार, लखनऊ, इण्डियन जर्नल ऑफ आर्कियोलॉजी 5 (2) ।

Ravanhattha, The Ancient Bowed Instrument – Then and Now

Dr. Aishwarya Bhatt** **Vinayak Seth***

Abstract

The article describes the story of the Ravanhattha , which is considered the earliest bowed instrument, its description and its survival over the centuries and its present status today - as an important folk instrument of some parts of Western India, in particular of Rajasthan. The journey of this amazingly simple instrument, the role it played in the evolution of other bowed instruments, its development as a popular instrument for ritualistic and entertainment purposes - makes it an important part of our precious musical heritage, to be valued and preserved.

Key Words : *Bamboo, Bow, Folk, Rajasthan, Ravana, Ravanhattha.*

Methodology : *Primarily, the descriptive-evaluative method has been used. This study is based upon study of secondary sources of data e.g. Books, articles, Internet and 'YouTube'.*

Introduction:

Ravanhattha is the oldest bowed instrument known to humanity and is based on the concept of the bow and arrow, being used to produce music. The hunting bow, thus, became a musical instrument and this principle led to the emergence of several other bowed instruments all over the world and culminated in the creation of one of the most perfect bowed musical instrument today – the violin.

History and evolution of Ravanhattha:

The exciting history of the Ravanhattha can be traced as back as 5100 BC, when, *according to legend*, King Ravana of Lanka - an accomplished musician himself - used the ligaments of his arms as string, to produce beautiful music, to please his most revered deity Lord Shiva - for obtaining boons! Hence the name 'Ravanhasta' or Ravana's arm was used to designate the instrument.

Ravanhattha has been variously called as 'Ravanastron', or 'Ravanastram' or 'Ravanayantram' or 'Ravanahastam'.

It is in general believed by most scholars that the origin of bowed instruments in India started with the 'Ravanastra Veena'. Ravanhattha's, fascinating journey over the centuries is appearing in early musical texts from 7th century onwards (with varying names).

Being of usage, mainly among the common people, it became largely confined to the folk music of western India (particularly Rajasthan). As a traditional community instrument, it found scant mention and was not usually regarded as being of much significance. Currently, however, it occupies a prominent position, as a well-liked prototypical folk music instrument of Rajasthan. In several texts, it is found connected with Ravana and his extraordinary devotion to Lord Shiva.

The Ravanahastam has been mentioned in the Ramayana as 'Raavaana'. Thus the hunting bow was used by Ravana as a musical instrument for producing melodious sounds by striking the string on the bow with use of the arrow. This instrument is hardly seen anywhere today.

As stated by Prof. Sisirkana Dhar Choudhury, "*It was described as a two-stringed*

*Ph.D. Research Scholar, Department of Performing Arts, Banasthali Vidyapeeth, Rajasthan
**Asst. Prof. & Supervisor, Department of Performing Arts, Banasthali Vidyapeeth, Rajasthan

instrument consisting of a cylinder of hollow wood with a piece of snake-skin stretched over one of the openings on which rested a bridge. The two strings were tuned in fifth."[1]

In the ancient text – 'Sangeet Makaranda' the musicologist and author, Narada has mentioned the name of a musical instrument 'Ravani', played by a bow – which indicates that the earliest creation of Ravana i.e. the Ravanastron, had an influence on the successively created bowed instruments, which may have some structural differences from the original version.

Sharangadeva, in his treatise of the 13th century (Sangeet Ratnakar) has mentioned 'Ravanahastaka', which is stated as being a significant 'veena' type of instrument – accompanying the chanting of Sama Veda hymns. This reference, again indicates, the impact of the original invention of King Ravana - on subsequent musical instruments.

In India, between the 7th and 15th centuries, two types of bowed instruments appear to have existed – one group consisting of all varieties of 'sarangi', with its soundbox positioned downwards while playing; the second group has the soundbox facing upwards, while playing and comprised of Ravanhattha, 'Banam' of Orissa, 'Kingri', 'Pena' etc and other instruments belonging to the 'violin' genre.

Ravanahastam had also been prevalent in Kerala and Tamil Nadu, which is evident from the image at Anadayaar Kovil, in Madurai and other Shaivite temples and texts like "Unnuneeli Sanderam". Two types of Ravanahastam were found in South India – one unsophisticated and fretless similar to the Ravanhattha of Rajasthan; the other, a refined one with frets. However, presently, these instruments are largely extinct in the southern part of the country. In Kerala, the theatre folk and classical dance forms (including "Kathakali" and 'Kunattam") invariably perform themes showing the devotion of Ravana for Lord Shiva and his making a 'Ravanhasta Veena' to please his deity.

Ravanhattha can be proudly stated to be the mother of subsequent bowed instruments. It is believed to have migrated to the middle-east countries through the medium of traders, in early 10th century and accepted by the Arabs – where it began to be called as 'Rebab'. The Rebab similarly reached Europe and took the shape of 'Rebec'. The Rebec was an important instrument contributing to the evolution of the violin.

Ravanhattha's Structure:

The instrument belongs to the 'chordophones' group of musical instruments. It underwent changes with passage of time and is basically a melody instrument. The instrument represents a mixture of old and new features and surprisingly though made of simple and local material, produces a mellifluous sound pleasing to the ear.

The structure of Ravanhattha as appearing at present "*can be described as one made up of a narrow bamboo stick, nearly 72 cms. long. The body or resonator is made up of a coconut shell. The piece of bamboo is used as the finger board. It consists of two strings of which one is believed to be made of horse-hair and the other is a twisted string of two minor strings of lesser thickness. There is a bridge consisting of a piece of wood set on the coconut shell, and the two strings mentioned above, pass over the bridge to the rear part of the instrument and are attached there. On the other end of the piece of wood there are two pegs as the supporting base of the two strings. It is played with a bow which is made up of curved wood. Some tiny bells (called 'Ghungars') are tied with the bow. At the time of playing this instrument the tiny bells produce some accompanying sweet sound. This instrument is said to be used also*

as an accompaniment of vocal music.”[2]

The Ravanhattha of Rajasthan is more vibrant and melodic than its counterparts elsewhere. The Ravanhattha of today consists of a bamboo stick and a coconut shell resonator. Its main body is a 2.5 feet length thick bamboo stick (which has been hollowed out). Bamboo with a broad bore is preferred to create a rich tone from the instrument. There are two main playing strings–one for melody, made from a cluster of horse-hair; and another, made of two-entwined iron strings (locally called ‘Raunda’) which is used as a drone. The Ravanhattha of Rajasthan has 11–15 sympathetic strings (of thin mild steel) which emit a soft resonance, when playing is done upon the main strings. The sympathetic strings are tied on pegs, which are made of ‘Khejadi’ tree wood and fixed on the bamboo stick in two rows–the right row having 5 pegs and the left row having10 pegs. The pegs are less than 1 centimeter in thickness – since very thin steel strings are tied on them.

The bow of the Ravanhattha is made using “Gaigan” (a local wood), which can be bent into any shape, when heated. The unusual shape of the bow is a distinctive feature of the Ravanhattha. The bow strings of horse-hair are kept loose and a piece of leather (locally called ‘Chimotha’) is attached to the bow hair and is utilised for supporting the right hand of the player. A rudimentary aspect of the Ravanhattha is indicated by the fact that it does not have an upper nut.

Ravanhattha can be made and assembled with ease and at low cost. Being made of bamboo, it is also weather proof. It is developing-by itself - as an individual instrument and provider of entertainment. Having adapted to the changing times, it has been strengthened both in structure and technical aspects and thus exhibits its ability to survive on account of its capacity to produce rich music.

Contemporary changes in the structure:

Some changes have been made in the Ravanhattha for convenience in usage and also to make it more melodious. Currently, instead of a horse-hair drone string, the same is an iron-twined string – which improves sound quality. The increase in the number of sympathetic strings to 11 and now 15 – has added more tonal sweetness and sonority.

Aluminum pegs are now being used instead of the wooden ones, as they are more long-lasting and not vulnerable to weather conditions.

The handle of the bow and the plate coverings on the bamboo sticks are being made of aluminum– which adds strength and engthens the life of the instrument and also gives it an appealing look. In some cases, the coconut resonator has been replaced with one made of brass metal. Some prefer to use nylon strings in place of the costly and less available horse-hair strings. However, this is done by the casual players or for selling to tourists. Professional artists continue to opt for horse-hair strings, as they produce better quality sound.

Playing style of Ravanhattha:

The playing techniques used in Ravanhattha are described as under:

The Ravanhattha player uses all 4 fingers of the left hand on the main string, while the thumb continuously vibrates drone string. Long nails help the players for playing on horse-hair strings and for sometimes plucking on the sympathetic strings.

Bowing is done upwards and downwards – as is characteristic of bowing instruments. Normally, bow moves over the melody string; but when it touches the sympathetic strings, a deeper resonance sound is emitted from the instrument.

The tone and volume of the instrument is controlled by loosening or tightening the bow hair strings with the use of the 'chimotha'

The Ravanhattha rhythm control is exercised by the player, through his bowing. Hence an accompanying percussion instrument is rarely used. The 'ghungroo' tied to the bow maintains the bow balance and accentuates the rhythm.

The Ravanhattha players sing while playing the instrument. At the time of singing, the player plays the base note, while bowing in the 'long ascending method.' In addition, often a female accompanist provides the vocals and dance.

When the player is not singing, he plays the tune of the song being sung on the instrument or short pieces of music – which enriches the performance.

Ravanhattha players tune their sympathetic strings in 2 octaves – the lower 'Sa' to upper 'Sa' (the tonic).

For the main strings, there are 3 types of tuning – 'Sa-Sa'; 'Sa-Pa'; 'Ni-Sa'.

For drone (in rare cases), the tuning is done in 'Ma-Sa'.

While holding the instrument for playing, in the sitting position, the resonator rests on the upper abdomen close to the heart and the other portion of the instrument is facing outward horizontally.

While standing and singing, the performer keeps the instrument in position with the help of a belt from his left shoulder.

Geographical presence and popularity of the instrument in India:

The Ravanhattha today is mainly popular as a folk instrument in Rajasthan, followed by Gujarat and then some other parts of India, where the name differs from region to region, depending upon geographical and cultural factors; the structure of the instrument also, shows some minor regional variations

Rajasthan -

Ravanhattha occupies pride of place in Rajasthan, not only because it is the most ancient bowed instrument – which has survived and is wondrously thriving till today, but also due to its affiliation with the epic of 'Pabuji' - which is a tradition around 600 years old. Pabuji was a chivalrous Rathod prince of the early 14th century and is worshipped till today, by all the three castes – 'Rebari', 'Bheel' and 'Rajput'.

The priests of 'Pabuji' are the 'Bhopas' – who are Ravanhattha players and who worshipfully sing the epic, alongwith playing the instrument and showing a 'Phad' i.e. a scroll painting of various scenes related to Pabuji's life. Pabuji's performances are popular because of the belief of the people in Pabuji as a deity – who can solve their problems and invoking whose spirit is auspicious for starting a new activity. An encouraging feature is that 'Phad' paintings, of late, have become a commercial success and have received a new lease of life – being now widely displayed in many offices, museums, airport and private residences (both in India and abroad).

This connection of the Ravanhattha with the Pabuji epic is a distinctive feature – as the instrument has become the foremost accompanying instrument for its presentation and has contributed to the longevity of the Ravanhattha and the resulting employment opportunities. The Ravanhattha players are hereditary Bhopas and the instrument has ritualistic significance; hence, the traditional playing techniques and lyrics have survived (being passed on generation to generation). The role of the patrons is equally important for their

extended social and financial support. Such support has ensured that over the generations, the traditional elements of the presentation are not compromised in any way. As a result, Rajasthan's primeval music is still preserved with very few minor changes.

Ravanhattha has also inspired the development of other folk instruments of Rajasthan. Instruments like the 'Gujari', 'Pabia Sarangi', 'Ravanio' and some 'Chikaras' are structurally and technically very similar to the Ravanhattha and are therefore regarded as its allied instruments.

Gujarat -

The Ravanhattha of Gujarat is called 'Ravanhattho' in the local language and is different from the one in Rajasthan. Its length is smaller and is devoid of sympathetic strings. Its main playing strings are not made of horse hair, but of iron and steel.

The Ravanhattho is mainly associated with the 'Bharatharis' – who are folk singers of Gujarat. The presentation of the Ravana legend is common in Gujarat also.

Manipur -

The 'Pena' is one of the oldest musical instrument of the "Meitei people" of Manipur, which is similar to the Ravanhattha. It is widely used to provide music for various religious festivals, Manipuri dance, weddings etc.

Orissa –

Another resembling instrument is the 'Kendara' of Odisha, which was traditional instrument of the Kond tribe. It was also used by the wandering mendicants associated with the 'Natha Sampradaya'.

Central and Eastern India -

One more similar instrument, is the ancient melodic instrument 'Banam' – venerated by the Santhal clan (major tribe - population wise, in Jharkhand and West Bengal). This is used by the tribe as an accompanying instrument to vocals and dances.

Present contemporary trends and popularity of the instrument:

Dr Suneera Kasliwal writes "*Ravanhattha being a non-fretted instrument has a tremendous musical potential. It can produce any number of notes, (flat and sharp) and melody, which can adopt other musical traditions too, be it Indian classical music or filmy music and so on. Ravanhattha players have been exploring the full potential of the instrument. Not only making the Pabu epic performance a joyful, pleasant and entertaining event, but also elevating the instrument to such heights that it can now be termed as a truly representative instrument of Rajasthan.*"[3]

Ravanhattha is the most prevalent folk instrument of Rajasthan and inevitably changes have crept in. Earlier, the presentations were limited to rural audiences, but now many Ravanhattha players are being invited to perform abroad, leading, naturally, to considerable earnings.

Ravanhattha players now get opportunities to perform in festivals organized by the Government and private institutions. Due to advanced technology, the recordings of 'Bhopa' performances are being commonly circulated – which is giving them greater publicity and weightage.

Sensing the modern development in entertainment modes and changing audience tastes, the players have started singing folk and film songs also. They find a significant presence in programmes meant for tourists, hotels and also in exotic tourist destination locales of Rajasthan. They are also called upon to sing in the various ceremonies in marriage functions.

Ravanhattha instruments are also in demand by tourists, museums and interested buyers. Being light weight and easily portable, it is a favourite purchase of foreign tourists, who buy in ample quantities, as a souvenir and as gifts for friends and relatives back home.

Today, the Ravanhattha has been given a sort of new life by Sri Lankan composer and violinist Sh Dinesh Subasinghe, who has played it in many of his compositions, e.g. 'Rawan Nada' and Buddhist oratorio 'Karuna Nadee' (on the life of Lord Buddha). "*Sri Lanka-based Dinesh Subasinghe brings the legendary Ravana Hatta to AR Rahman's orchestra.... Rahman chose Dinesh to play the violin and 'Ravana Hatta' in his CD of nursery rhymes in which the narrator was Katrina Kaif.*"[4]

The European experimental folk band 'Heilung' has played Ravanhattha in their albums 'Ofnir and 'Futha'.

Conclusion :

While, many traditional instruments are headed towards extinction, the Ravanhattha is an honorable exception.

References :

1. Choudhury, Prof. Sisirkana Dhar. *The Origin and Evolution of Violin as a Musical Instrument*. Page 48
2. Ibid. Page 52
3. Kasliwal, Dr Suneera. *Ravanhattha. Epic Journey of an Instrument in Rajasthan*. Page 140
4. Balachandran, P.K. (7 February 2011). *A musical instrument played by Ravana himself.* New Indian Express. Page 2

Bibliography :

1. Choudhury, Sisirkana Dhar. (2010). *The Origin and Evolution of Violin as Musical Instrument*. (Kolkata). Ramakrishna Vedanta Math
2. Deva, B C. (1977). *Musical Instruments* (New Delhi). National Book Trust, India
3. Deva, B C. (1987). *Musical Instruments of India* (New Delhi). Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.
4. Kasliwal, Dr. Suneera. (2009). *Ravanhattha. Epic Journey of an Instrument in Rajasthan*. (Gurgaon). Shubhi Publications.
5. Kasliwal, Dr. Suneera. (2001). *Classical Musical Instruments.* (New Delhi). Rupa & Co. Ltd.
6. Khuntia, Dr Swarna. (2018). *Violin & Violinists in Hindustani Classical Music*. (New Delhi). Akanksha Publishing House.
7. Satyasheil, Dr Pushpa. (2010). *Journey of Violin from West to East. New Delhi*. (New Delhi). Akanksha Publishing House

Vṝttanāma as a musical form in Haridāsa literature

Ragini A R*

Abstract

In the history of Indian classical music, Haridāsās of Karnataka played a very important role in setting up the Karnātak music pedagogy. They were Vaiṣṇava saints of Karnataka who followed Dvaita philosophy of Śri Madhvācārya and ushered in a cultural renaissance during and post the Bhakti movement. They composed musical compositions that were easily understandable by dextrously weaving musical elements and devotional literature together. During and post the fifteenth century, they were instrumental in reviving and restructuring the ancient and complicated Prabandhās into newer, easier musical forms in vernacular languages like Sulādis, Ugābhōgas, Dēvaranāma/padās, Vṝttanāma among others. Vṝttanāma as a musical form in Haridāsa literature is one single song having both literary and musical theme - mostly composed in Kannada. Perhaps an engaging musical form centuries ago, they do not feature as a popular composition presently. This paper intends to briefly explore the available Vṝttanāma composed by the Haridāsa composers analysing their structure as a musical form.

Keywords: *Haridasās of Karnātaka,Karnātak music forms, Dāsa Sāhitya, Prabandha, Vṝttanāma*

Methodology Employed : *Qualitative approach will be employed. This paper is descriptive by nature.*

Scope and limitations :

Scope:

To analyse Vṝttanāmas composed by Haridasās between the 15th-18th centuries.

One ćarana from each composition has been considered for explanation.

Limitations :

No notations are available.

Analysis has been done only on the Haridāsa literature available in published books.

Analysis

Vṛttanāma as a musical form is one single song having both literary and musical themes. In haridāsa literature[1], *Vṝttanāmās* are first seen in fifteenth century as a composition of Srīpādarāja Tīrtha. They seem to be an adaptation of *Vṝtta Prabandhās*, which were in practice then. *Vṛtta Prabandhās* first find their description in Matanga's Bṛhaddeśī, as metrical structures and have been elaborated later in other treatises. In Śāraṅgadēvā's Saṅgītaratnākara, they have been placed under the *Sālagasū a* category and are composed in any metre, sung with any choice of tāla and solfa notes that are introduced at the end of the composition[2]. Further, several haridāsa saints including Vyāsatīrtha, Purandaradāsa, Vijayadāsa, Gopaladāsa, Jagannathadāsa, Helavanakatte Giriyamma have composed Vṝttanāmas.

Structurally, the metrical form called *Vṛtta*, sometimes referred to as śloka or as an '*anibaddha*', alternates with the pada or nāma or the '*nibaddha*', set to a rāga and any one of the suladi sapta tālas. The anibaddha part is not set to any tāla or metre. *Vṝttanāma* consists of a brief *pallavi*, sometimes an *anupallav*i, and a number of *Vṝttanāma ćaranās*. Each stanza has four lines of both Vṝtta and nāma. The pada lines can be the same as or lengthier than the *Vṛtta*.

*Ph.D. Research Scholar, Deptt. of Performing Arts (Music), Jain University (deemed to be), Bengaluru.

The whole composition seems to be set to the same *Rāga*.

The theme of the composition may be *bhakti, śṛṅgāra*, in praise and supplication to the lord, or metaphysical (based on the Dvaita theology). Characterised as antiphonal, they can be rendered by a single person or more. The literary style is generally simple and straight forward. In most cases, the composer's signature (*ankita*) is present in the last stanza of the composition. Vṛttanāma's have also been called as '*Pārijātha*' depending on their form. Some of them are modelled on the form of Jayadeva's Aśtapadis having eight Vṛttas and nāmās'

Below are some *Vṛttanāma* compositions discussed in brief :

1. ***"Mānanidhi Sri Krishna Madhuregaiduvanante enu pathavamma namage*[3]*"*** composed by Srīpādarāja Tīrtha (1422-80 CE), is based on Srimad Bhāgavatha thematised around Lord Kṛṣṇa leaving to Mathura to participate in the 'bow festival' organised by King Kamsa, leaving behind *gōpīs* in Vrindavana. Showcasing *śṛṅgāra rasa* through gōpīs love, apprehension and yearning for Lord Kṛṣṇa, this composition is known as '*Śṛṅgārapārijātha*'.

This composition is divided into *Pallavi, anupallavi (upapallavi*[4]), and three *ćaranās*. After the third *ćaraṇa*, there are nine *Vṛttas* - each followed by a *nibaddha* form (*nāma*) which is set to Rāga Regupti[5] and Jhampe tāla. The line length varies within both *Vṛtta* and *Nāma*. Since the syllabic count varies in each *Vṛtta*, they cannot be particularly identified by a metrical name.

Pallavi :

1 2 3 4 5 6

Mānanidhi Sri Krishna Madhuregaiduvanante

7 8 9 10

enu pathavamma namage

(Sri Kṛṣṇa's departure to Madhure is causing extreme distress to all of us [gōpīs])

Syllabic count : first line : 15 ; Second line : 10

***Śloka/Vṛtta* and *Pada/Nāma* :**

The *Vṛtta* and *Nāma* have four lines each and are composed in Kannada. The metrical syllables in the *Vṛtta*do not seem to be same as in all the *ćaranās*. Conversational in nature, a responsive alternation between the *gōpis* and Lord Kṛṣṇa is seen. Meanwhile, the *Sāhitya* presents different emotions of the gopis with them extolling the lord's virtues, cajoling him not to leave, chiding his lies, expressing their love towards him, and in turn, his assurance of return. Rāga Regupti[6] paints the picture of dawn as Lord Kṛṣṇa embarks on his journey from Vrindāvana to Mathura.

Vṛtta. #8	Nama . #8 Possible reconstruction with Mishra Jāthi Jhampe Tāḷa (| U O)
Vārichāmbaka vārijārivadana vārāshijāvallabha	*1 2 3 4 5 5 6*
Vārivāhanibhanga Vāsavanuta vākemmadondāliso	*māranembuvanu balu krūra nammagali nī*
Vārijōdbhavanaiyya ninna viraha vārāśiyolu mulugi ha	*7 8 9 10*
nārinichayava pārugānisu kripānāveyalindemannu	*ūrighōdudanu kēli*
	1 2 3 4 5 6
	Vārijāstravanu edegērisemmanu bidade
	7 8 9 10
	hōruvanu ahō rātryiyali tapisuta
Syllable count 21.20.20.18	14.9.14.18
Rhetorics: Alliteration on first syllable (*Prathamākshara Prāsa*) is seen, the word *Vāri*(water) has been used as an *Upamālankara*.	

2. "**Kēlayya enna māta Parthane Gītādarthane**[7]" composed by Vyasatīrtha (1460-1539 CE), it is also referred to as Bhagavadgeetāsāra. The theme of this composition is based on the moments of the Kurukshetra warfield where Lord Kṛṣṇa reminds Arjuna of his duties as a warrior through Bhagavadgeetha. The composition takes on an antiphonal element, with dialogues between Kṛṣṇa and Arjuna on the battlefield, and Sañjaya and King Dhṛtarāṣṭra off the battle field with Sanjaya's commentary. Composed entirely in Kannada, the dialogues between Kṛṣṇa and Arjuna, though straightforward and brief, elucidate the essence of all the chapters of the Bhagavadgītha. The composition has a single line pallavi:

Pallavi :

kēlayya enna māta Pārthane gīthādarthane ||

[O Partha! Listen to my words; the Gita]

Syllable count : 15

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

There are nine units of *Vṛtta* and *nāma*, referred to as *śloka* and *pallavi*. The *śloka* is 4 lines each and the *pallavi* is 8 lines each. The composer concludes the composition by presenting his view of King Dhṛtarāṣṭra reconciling to the fact of the Pāndavas' victory over the Kurus, as it is Kṛṣṇa who is guiding them. The composition is set to Regupti Rāga, Chapu tāḷa.

Vṛtta(Śloka) . #1		Pada (Pallavi). #1
Kurukśētradi ennavaru Pāndạvaru		*kēḷi tā Pārthanu Kuru danda*
Pēlo sanjaya ēnu maduvaru kuḍi |		*ranadali chanda| gāndīva karadanda*
Kelayya arasane noḍi Pāndạvara sēna|		*Achyuta pidiratha naḍe munda*
Mātanāḍida ninna suta ḍronanintu ||		*bahu twaradinda|nōḍuve nētradinda||*
		guru hiriyara kūḍa yākenda
		yuddha sākenda| bhikshavē sukhavenda||
		kunti suta ī mātu uchitavalla
		ninagidu salla | piḍi gāndīva billa |
Syllable count	14.14.16.14	14.9.14.18
Rhetorics : Alliteration on end syllable (antyākshara Prāsa) is seen in the Pallavi.		

3. Śri Kṛṣṇaarāyana tōrise mātanādise[8]" composed by Purandaradāsa (1470-1565 CE) in Kannada, it showcases *Vipralambha śṛngāra*. The composition is set to Ahiri rāga and ēka tāḷa. This has one line of *pallavi* followed by five units of *Śloka* and *pada*.

Pallavi :

Śri Kṛṣṇarāyana tōrise mātanādise

(Talk to me after you bring Lord Kṛṣṇa back to me)

Syllable count : 14

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

The *sāhitya* of the *śloka* expresses the gōpi's displeasure and anguish as *Kṛṣṇa* has left her alone after an argument, and her imploration to her friend to cajole and bring him back, while the *sāhitya* of the *pada* extolls Lord *Kṛṣṇa*. There are five units of *śloka* and *pada*. The *śloka* has a variable syllable quantity, and hence the metrical pattern is not coherent. The language, though expressive, is uncomplicated.

Śloka . #1		Pada . #1
Dheera Ranganu bārade ihanēne| *māranayyage mādida tappu yēne||* *Vārijākśi nīnondu mātādi bāre|* *nīrajākśana nimishadi karedu tāre ||*		*gandha kastūri tārendene| pūsendene ghalige tālendene||* *anda mātige tā munidane | aravindane pūrnēnduvadane||*
Syllable count	12.12.12.14	9.11.9.11
Rhetorics : Alliteration on last syllable (*antyākshara Prāsa*) is seen in the Śloka and the pada.		

4. "Pidi enna kaiyya Mukhyaprāna[9]" composed by Vijayadāsa (1682-1755 CE) is a prayer to Lord Hanumanta as Mukhya Prāna. The composition hilights the importance of his three incarnations as Hanuma-Bheema and Madhva. The composition is set to *chāpu tāḷa*. The composition starts with a single line *Pallavi*. This is also called as *'Śri Prāṇadēvara Pārijātha'* or '*Prānadēvara aṣtaka*'.

Pallavi :

Pidi enna kaiyya Mukhyaprāṇa bhuvana trāṇa sadbhava pravīṇa

(Guide me O Hanumanta, life force and master of all)

Alliteration can be seen on the last syllables.

Syllable count : 21

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

Eight units of *Vṛtta* and *nāma* follow the *pallavi*. *Vṛtta* is set to *Śārdūlavikrīdita*[10] metre with four lines. The *padās* have comparable varied syllable length. Alliteration can be found on all the end syllables of the *padās*. The *Padās* are of variable length, the sixth nāma has only three lines.

Śloka. #1		Pada . #2
hīnāhīna vivēkavilladesevā | *nānā* vidha bha| *gnānā gnānā trikākhiḷa kriyegaḷu| hē nātha ninnindali||* *(considered first two lines)*		*kamsāri charaṇava bhajisade | ninna neneyade|* *durviśayadi baride | samsaktanāgi nā bhramiside buddhisāladē ||* *bahu pāmaranāde | samśaya bittannu tappadē|*
Syllable count	19.19	17.23.16
Rhetorics : Alliteration on first syllable (*Prathamākshara Prāsa*) is seen in the śloka and the word*gnāna*has been used as an *Upamālankara*. Alliteration on the last syllable (*antyākshara Prāsa*) is seen in the Pada.		

5. "**Rakśiso Vēnkatagirirāja Ravishatatēja**" composed by Gopaladāsa (1721-1769 CE) is in praise and supplication of Lord Venkateśwara. Composed primarily in Kannada language, the composition also involves the usage of Samsk[ta words. Set to Dēśi (Nādanāmakriya) Rāga, Triputa tāla. The third *pada* describes the *daśāvatāra* of Lord Viṣṇu. This has one line *pallavi* which is rendered as a refrain.

Pallavi :

Rakśisō Vēnkatagirirājā, Ravishatatējā, Aśrita kalpabhūjā

(Protect me, O lord of Venkatagiri, the one who is 100 times brighter than tthe sun and the one who grants the wishes of all his devotees)

Syllable count : 24

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

Eight units of *Vṛtta* and nāma follow the *pallavi.Vṛtta* is set to *Śārdūlavikrīdita* metre. The *Vṛtta* is divided into two portions and the nāma into three in order to rhyme. Some of the *Vṛtta*'s have been composed in Sanskrit and the nāma is in Kannada.

Śloka. *#1*		Pada . *#1*
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 *Śrīmān Shēśadharādhipasadā, Śrīmān* *14 15 16 17 18 19* *Samsākhyaprada | Śrī māyā-jaya shānti kānta swaratā, Śrīmūrti Siddheshwara* *1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15* *Srimad Padmaja Pārvatīśavinutā, śripāda* *16 17 18 19* *padmadwayā |swāmin dēhi sadā tvadīya bhajanam, srīmantatvam pāhimām||*		*hātaka mukharīsarita tīra krita mandāra vaikunta āgārā|* *kōti manmatha chandra bhāskara dyuti tiraskāra śrītamōhannākāra||* *kūtastha akhila lokakyādhāra santata |* *parāvārātmaja manōhara ||* *kaitabha bhava mukha jalajaladhara|chanda samīradīna jana-mandāra||*
Syllable count	19.19.19.19	22.23.24.25
Rhetorics : Alliteration on first syllable (*Prathamākśara Prāsa*) is seen in the śloka and the word *Śri* has been used as an *Upamālankara*. Alliteration on the last syllable (*antyākśara Prāsa*) is seen in the Pada.		

6. "Kṛṣṇa Pārijātha"[11]

composed by Helavanakatte Giriyamma is based on a theme from Bhāgavatha about the story of a Pārijātha flower fetched by Narada from Indra's court and presented to *Kṛṣṇa*'s first spouse Rukmini. This causes despair to *Kṛṣṇa*'s second spouse Satyabhama. The sāhitya captures this narrative and the emotions Satyabhama expresses through pain, jealousy, anger, despair etc. The composition begins with a śloka and has 9 ślokas and 9 padas. There is no pallavi for this composition. No Rāga or Tāḷa have been mentioned.

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

Both the *Vṛtta* and *nāma* have four lines each, have been composed in Kannada and do not have a fixed syllabic count. There are five units of *Śloka* and *pada*, each. The *Śloka* has a variable syllable quantity, and hence the metrical pattern is not coherent. The language, though expressive, is uncomplicated.

Śloka. # *1*		Pada . *#4*
Dwārāvatiyalli danujadalgaṇa mukunda *sāre Rukminisahita ānandadinda* *vārijāmbaka vālagadoḷu chanda* *Nāradamuni tā Pārijātava tanda*		*yākenna brahma puttisidanō srishtisidanō mātenyāke padedalō* *sākinnu heṇṇu janmada bāḷu yātake hēḷu tākalennaya gōḷu* *kuhaka pēldu nārada siddha embudu baddha mūrulōka prasiddha* *Śri Kṛṣṇange enage bhēdava māḍi hōdanu ōḍi tanagyākidu byāḍi*
Sage Narada brings the Parijata to Dwaraka where Kṛṣṇa is spending time with his spouse Rukmini		Satyabhama curses her fate as a woman, lamenting that Kṛṣṇaa has been unfair to her.
Syllable count	15.13.12.13	23.22.22.24
Rhetorics: Alliteration on second and last syllables are seen in the śloka and Pada		

7. "<u>Pāliso Pandharipurarāya Pāvanakāyā</u>"[12] composed by Jagannāthadāsa (1728-1809 CE)is in praise of Panduranga Vittala of Pandharāpura. It is also called 'Pānduranga Pārijātha' or '*Pandurangāśtaka*'. Set to Rāga Kanada[13] and tāḷa Rūpaka, the composition has a one line pallavi, followed by eight *ćaranās* each consisting of a *ślōka* and a *pada*.

<u>Pallavi</u> :

Pāliso Pandharipurarāya Pāvanakāyā

[Protect me, resident of Pandharipura, one in pure form and always in bliss]

Syllable count :14

Śloka/Vṛtta and Pada/Nāma :

Both the *Vṛtta* and *nāma* have four lines each; the Vṛtta is composed in Sanskrit and set to *Mālini* metre with 15 syllables each. The nāma is composed in Kannada and does not have a fixed syllabic count.

Śloka. #*1*		**Pada . #*1***
taruṇa tulasi<u>māla</u> taptagāngēya <u>chēlā</u> *sharadhi tanaya<u>lōlā</u> shakvarīkāri <u>phālā</u>* *shiri ajabhava <u>mūlā</u> shuddha kāruṇya <u>līlā</u>* *purahara sukha <u>līlā</u> pāhi gōpāla <u>bālā</u>*		*nava jalādharanibha shāmalā vapu* *kōmala vaijayanti mālā* *raviyante poḷeva kunḍala hārā dhṛta* *kēyura kaustubha* *maṇiruchirā divi bhū pātāḷa* *lōkadi vyāptā dōśa sirlipta* *vipaschita janarāpta bhavavanadhige kumbha* *sambhava* *dēvara dēvā dharumādyara bhāvā*
I pray to Kṛṣṇa who looks ever charming as the young Gōpāla with a fresh Tulasi garland on him - the annihilator of all demons		Lord Viṣṇu, magnificently adorned with Vyjayanti, dazzling in brilliance like the Sun, the lord of the three worlds, bestow your kindness on me.
Syllable count	15.15.15.15	13.9.14.6.11.10.19.12
Rhetorics**:** Alliteration on the last syllable (*antyākśara Prāsa*) and second syllable (*dwitīyākśara Prāsa*) is seen in the śloka.		

Inferences drawn

Vṛttanāma as a musical form is an ingenious integration of both the anibaddha and nibaddha styles, pioneered for the first time in Kannada by the Haridāsa saints. Metrical structure to the *Vṛtta* is more pronounced in the later Haridāsās, post the 16th century, and not during the inception. These compositions may be perceived as a multifaceted unit with a theme, music and literature masterly interwoven. Predominantly conversational in nature, these may have been rendered by multiple groups assigned to the different roles in the composition, or rendered by a single artist as a traditional and devotional opus. With the passage of time, these works have faded into relative obscurity. However, a reconstruction of these compositions, in present times, can be performed as composed or alternatively envisaged through *rūpakās* (dramas), *harikathe*, yakśagāna and through classical dance to make them familiar to the masses.

References :

1. Vide Music of the Madhva Monks, P.15
2. Vide Saṅgītaratnākara of Śāraṅgadēvā, P. 287
3. Vide. Sripadaraja Krtigalu (Popular Edition), P. 47
4. Vide. Music of the Madhva Monks, P.15
5. Audavajanya of Mayamalavagowla, Ma and Ni are omitted
6. In some sources as Rāga Mōhana
7. Vide: Śri Vyasarāyara Kritigalu, P.259
8. Vide Purandaradasara kīrtanegalu, P.674
9. Vide Samagra Dasa Sahitya, vol 9, P. 300
10. metre with 19 syllables
11. Vide Samagra Dasa Sahitya, vol 8, P. 44
12. Vide Samagra Dasa Sahitya, vol 14, P. 89
13. Vide Music of the Madhva Monks, P.66

Bibliography :

Gururajacharya, Pavanje, Purandaradasara Keertanegalu, Udupi, Sriman Madhwa Siddhanta Granthalaya, 2010

R,Satyanarayana, Music of Madhva monks of Karnataka, Bangalore, Gnana Jyothi Kala Mandir, 1988

R K Shringy and Prem Latha Sharma, SaEgītaratnākara of ŚāraEgadēvā,Vol II, Munshilal Manoharlal Publishers Pvt Ltd, 1999

Ramanathan, Hema, Rāgalakshanasangraha, Chennai, N Ramanathan, 2004

Rao, Krishna, K M, Sri Vijaya dasara kritigalu,Samagra Dasa Sahithya (Vol 9), Kannada mattu Samskruti Nirdeshanalaya, 2003

Rao, Krishna, K M, Sri Gopala dasara kritigalu,Samagra Dasa Sahithya (Vol 12), Kannada mattu Samskruti Nirdeshanalaya, 2003

Rao, Krishna, K M, Sri Jagannatha dasara kritigalu, Samagra Dasa Sahithya (Vol 14), Kannada mattu Samskruti Nirdeshanalaya, 2003

Rao, Varadaraja, G, SripadarajaKrtigalu(Janapriya avrutti), University Of Mysuru: Kannada Adhyayana Samsthe,1987

T K, Indubai, Helavanakatte Giriyammana hādugalu (Janapriya avrutti), University Of Mysuru: Kannada AdhyayanaSamsthe,1987

T N, Nagartana, Sri Vyasarayara kritagalu (Pandita avrutti), University of Mysuru, Kannada Adhyayana Samsthe, 1987

नागर शैली में निर्मित उत्तर भारत के मंदिरों में उत्कीर्ण सांगीतिक कलाकृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. रंजना उपाध्याय** **विदुषी जायसवाल***

शोध–सार

भारत प्राचीन काल से ही ललित कलाओं की उद्‌गम स्थली रहा है। चौसठ कलाओं ने इसी भारत भूमि पर जन्म लिया तथा विस्तार को प्राप्त किया। इन कलाओं का प्रतिबिम्ब भारत के प्रत्येक मनुष्य के जीवन शैली, निर्माण एवं उसके क्रियाकलापों में दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन काल की नगर निर्माण योजना, भवन निर्माण योजना या मंदिर स्थापत्य कला एवं विशेषकर मंदिर स्थापत्य में इनका प्रयोग विशेष रूप से किया गया। नागर शैली में बने लक्ष्मण मंदिर, सिंह मंदिर ,खजुराहो, दिलवाड़ा का जैन मंदिर आदि अपने कलात्मक चित्रण के कारण विशेष आकर्षण के केंद्र हैं। नागर शैली के मंदिरों में इन कलाओं का विस्तृत प्रयोग किया गया है। इन मंदिरों के निर्माण में एक विशेष पद्धति का प्रयोग किया गया है। जैसे नागर शैली के मंदिरों में चार प्रकार के कक्षों का निर्माण किया जाता था, जैसे गर्भगृह, जगमोहन, भोग मंदिर, नाट्य एवं संगीत इत्यादि के संपादन के लिए विशेष रूप से नाट्य मंदिर। इस मंदिर के 8 प्रमुख अंग होते थे मूल आधार, मसूरक, जंघा, कपोत, शिखर, ग्रीवा, वर्तुलाकार आमलक तथा कलश। कक्ष से लेकर प्रमुख आठ अंगों के निर्माण में ललित कलाओं के प्रयोग का प्रमुखता से ध्यान रखा जाता था। अतः कलाओं के विस्तार, प्रकार एवं उनके प्रभाव के ज्ञान के लिए इन मंदिरों का विवेचनात्मक अध्ययन आवश्यक है। इस शोध–पत्र में इसे ही प्रमुख रूप से दिया गया है।

बीज शब्द : *उत्तर भारतीय मंदिर,नागर शैली, संगीत कला, स्थापत्य कला, मूर्तिकला*

उद्देश्य : *प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत की आध्यात्मिक व धार्मिक धरोहरों को भारतीय शास्त्रीय संगीत के दृष्टिकोण से परिचित कराने का प्रयास मात्र हैं। इस शोध पत्र के द्वारा पाठक भारतीय संगीत कला व भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास तथा दोनों कलाओं के बेजोड़ संगम से परिचित होंगें सयह ललित कलाओं के आपसी सम्बन्ध का भी अप्रतिम उदाहरण हैं।*

शोध प्रविधि : *शोध–पत्र मुख्य रूप सेऐतिहासिक प्रविधि व वर्णनात्मक प्रविधि पर आधारित हैं। मंदिरों की ऐतिहासिकता व निर्माण प्रक्रिया जानने हेतु ऐतिहासिक प्रविधि व मन्दिरों में अंकित संगीत सम्बंधित चित्रों, मूर्तियों व शिल्पों की समीक्षा हेतु वर्णात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया हैं।*

मूल आलेख : नगर में स्थापित होने के कारण इस शैली को 'नागर शैली' कहा गया। पांचवी शताब्दी के बाद उत्तर भारत में नागर शैली विकसित हुई, नागर शैली के अंतर्गत निर्मित मंदिर प्रायः शिखर मंदिर थे तथा मंदिर निर्माण की प्रक्रिया में "पंचायतन शैली" का अनुपालन किया गया था। भारत के उत्तरी व मध्य भाग में स्थित मंदिरों का निर्माण नागर शैली में किया गया, पूर्व में उड़ीसा से लेकर पश्चिम में गुजरात एवं उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विंध्याचल पर्वत के मध्य निर्मित मंदिर शैली मुख्यतः नागर शैली के अंतर्गत ही आती है। इस शैली में निर्मित मंदिरों की मुख्य विशेषताएं मुख्य मंदिर के सापेक्ष "क्रूस आकार" के भूमि विन्यास पर गौर देव मंदिरों की स्थापना, मुख्य देव मंदिर के सामने सभाकक्ष या मंडप स्थित होना तथा गर्भगृह के बाहर गंगा व यमुना देवी की प्रतिमा स्थापित करना इत्यादि थी । नागर शैली में निर्मित मंदिरों के मुख्य आठ अंग थे–

मूल आधार– जिस पर संपूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।

मसूरक– नींव और दीवारों के बीच का भाग

*शोधार्थी, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सहायक आचार्या, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जंघा– दीवारें विशेषकर गर्भ गृह की दीवारें

कपोत– कार्निस

शिखर– मंदिर का शीर्ष भाग या गर्भ गृह का ऊपरी भाग

ग्रीवा– शिखर का ऊपरी भाग

आमलक– शिखर व कलश के बीच का भाग

कलश– शिखर का शीर्ष भाग

मंदिर निर्माण की प्रचलित नागर शैली की मुख्य चार उपशैलियां है, जिनमें ओडिशा, खजुराहो, सोलंकी, राजस्थान आबू पर्वत उपशैलियों का नाम सम्मिलित है। इन उपशैलियों के अंतर्गत अनेकों मंदिरों का निर्माण हुआ है, जिनमें संगीत संबंधित मूर्तियां, शिल्प, चित्रकारी इत्यादि के प्रमाण साक्षात रुप से प्राप्त होते हैं।

नागर शैली की उपशैली ओडिशा शैली–

यह शैली मुख्य रूप से कलिंग साम्राज्य में विकसित हुई। इस शैली के अंतर्गत मंदिर के शिखर को 'रेखा देउल' तथा मंडप को 'जगमोहन' कहा जाता था। कलिंग क्षेत्र के मंदिरों में भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क के नाम विख्यात है, भुनेश्वर में लगभग 500 मंदिरों के अवशेष मिलते हैं, यहां का 'परशुरामेश्वर', 'मुक्तेश्वर', 'वैताल देउल', 'राजा–रानी' तथा संसार प्रसिद्ध 'लिंगराज' मंदिर उल्लेखनीय हैं। भुवनेश्वर के मंदिरों में खंडगिरि तथा उदयगिरी के खदान से प्रस्तर लाकर प्रयोग किया गया था। तिथि–काल–क्रम के अनुसार उड़ीसा के मंदिरों को तीन भागों में बांटा गया हैं, जिनमें प्रधान मंदिरों की तिथियां इस प्रकार हैं–

750 ई. – 900 ई. तक परशुरामेश्वर (भुनेश्वर नगर में)

900 ई. – 1100 ई. तक मुक्तेश्वर (भुवनेश्वर), लिंगराज (भुवनेश्वर), जगन्नाथ (पुरी)

1000ई. – 1250 ई. तक अनंत वासुदेव (भुनेश्वर), राजा–रानी (भुनेश्वर), सूर्य मंदिर (कोणार्क)

1. **लिंगराज मंदिर (900 ई.–1100 ई.)**– लिंगराज मंदिर 520 फुट x 465 फुट के विस्तृत भू–भाग पर निर्मित है स मंदिर को चार भागों में बांटा गया हैं, (1) देवल या श्रीमंदिर या विमान यानी 'गर्भगृह', (2) स्तंभयुक्त मंडप अथवा जगमोहन, (3) नाट्य मंडप या नट मंडप यानी नृत्य का स्थान, (4) भोग मंडप स भोग मंडप और नाट्य मंडप का निर्माण कालांतर में होने के कारण जगमोहन की पूर्व दिशा में प्रवेश द्वार का निर्माण किया गया था। नाट्य मंडप और भोग मंडप यद्यपि बहुत बाद के बने हुए हैं फिर भी जगमोहन की तरह है और समूची वास्तु योजना में अच्छी तरह ढल जाते हैं। नृत्य मंडप और भोग मंडप में नर्तकियों को विभिन्न मुद्राओं में दर्शाया गया हैं। लिंगराज मंदिर में एक अन्य नर्तकी की सुंदर मुद्रा है। इसमें नर्तकी के दोनों हाथ सिर के ऊपर विशेष मुद्रा में दिखाये गए हैं। साथ ही, नर्तकी ने अपना दाहिना पांव भूमि से उठाकर पीछे की ओरमोड़ा है, जैसे कि वह उस पाँव से भूमि पर आघात करने को हो। इस मूर्ति के कर्ण–वलय, मणिबंध तथा कर्धनी बहुत सुन्दर दिखाये गये हैं, सकंठ में पड़ा ग्रैवेयक भी बहुत सुन्दर हैं।

(चित्र सं.1– लिंगराज मंदिर, भुवनेश्वर, ओड़िशा)

(चित्र सं. 2– नर्तकी की प्रतिमा)

2. **पुरी का जगन्नाथ मंदिर (900 ई.–1100 ई.)**– भुवनेश्वर मंदिर 'पुरी' में निर्मित भगवानजगन्नाथ का प्रसिद्ध मंदिर है, जो कि चार भवनों के योग से बनाया गया है– 'देउल', 'जगमोहन', 'योग मंदिर' एवं 'नट मंदिर'। इस मंदिर में तीन मूर्तियां जगन्नाथ, बलराम एवं सुभद्रा की है। इसे पहले 'नीलमाधव' के नाम से जाना जाता था। मंदिर में ओडीसी नर्तकियों की एवं विष्णु के अन्य अवतारों की प्रतिमाएं हैं। विष्णु की प्रतिमा भी वरद मुद्रा में है। नरसिंह मूर्ति के प्रतिमा स्तर पर ऊपरी भाग में पांच ध्यानी बुद्ध मूर्तियां खुदी हैं। इसी प्रकार वराह प्रतिमा की शिरोभाग पर दो ध्यानी बुद्ध दिखाई देते हैं।

(चित्र सं. 3– वरद मुद्रा मे में विष्णु की प्रतिमा) (चित्र सं. 4– विष्णु के वराह अवतार की प्रतिमा)

3. **राजा–रानी मंदिर (1000–1250 ई.)**– 11वीं शताब्दी में निर्मित यह मंदिर ओड़िशा की राजधानी भुवनेश्वर में स्थित हैं, इस मंदिर का निर्माण सोमवंशी राजा इंद्रवर्मन ने वास्तुकला की कलिंग शैली में करवाया था, जो की महिलाओं एवं युगलों के कामुक नक्काशी के कारण स्थानीय रूप से "प्रेम मंदिर" के नाम से विख्यात हैं। यह मंदिर पीले व लाल बालूदार पत्थर का बना है, जिसे 'रज़ानिआ' कहते हैं। इसी कारण यह राजा–रानी नाम से विख्यात हो गया। मंदिर की दीवार प्रचुर मात्रा में सुंदर रीति से अलंकृ त है। मंदिर की बाहरी दीवार 'नागकन्या', 'वृक्षिका', 'शालभंजिका', 'मिथुन' आदि की आकृतियों से अलंकृत है एवं यहां नाट्यशास्त्र के चारी व स्थानकों को भी ओकेरा गया है।

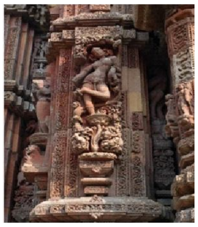

(चित्र सं. 5– "शालभंजिका") (चित्र सं. 6– "वृक्षिका") (चित्र सं. 7–पैरों में नुपूर धारण की हुई नर्तकी)

4. **कोणार्क का सूर्य मंदिर (1000–1250)**– यह मंदिर उड़ीसा में जगन्नाथ पुरी से 26 किलोमीटर दूर समुद्र तट पर स्थित है। 'गंगराज प्रथम नरसिंह देव' ने बारह सौ कारीगरों की सहायता से बारह वर्ष में इस मंदिर का निर्माण करवाया था एवं चक्र क्षेत्र पूरी के उत्तर–पूर्व कोण पर अवस्थित होने के कारण 'कोण' और 'अर्क' (सूर्य) इन दोनों शब्दों के सम्मिश्रण से इस स्थान का नाम 'कोणार्क' होने की संभावना व्यक्त की जाती है। कोणार्क का सूर्य मंदिर एक विशाल रथ के समान है, जिसमें 12 जोड़ी पहिए एवं सात घोड़े उस रथ को खींचते हुए दर्शाए गए हैं। यह मंदिर चार भागों में विभक्त है– (1) विमान (प्रधान मंदिर), (2) जगमोहन (दर्शकों के बैठने का स्थान), (3) नृत्य मंडप (आरती के समय वाद्ययंत्र लेकर नृत्य करने का स्थान), (4) भोग मंडप (देवता के लिए भोग रखने का स्थान)। कोणार्क के सूर्य मंदिर में नृत्य व गायन से संबंधित मूर्तियों का अंकन भी बहुतायत से हुआ है स जगमोहन की छत के ऊपर वाले बरामदे में विभिन्न प्रकार के वाद्य–यंत्रो सहित नृत्य भंगिमाओं में खड़ी नृत्यांगनाओं को दर्शाया गया हैं इसके अतिरिकत्त सूर्यदेव 'सप्ताश्रववाहित' रथ पर विराजमान दिखायें गये है तथा प्रत्येक कमल दल पर हाथों में वाद्य–यंत्र, सिर पर पूजा सामग्री लिए नर्तकियों की मूर्तियां खुदी हुई हैं। सबसे ऊपर स्वर्ग का दृश्य है, जहां उपस्थितगण सूर्य देव का स्वागत कर रहे हैं। हाथों में माला लिए स्त्रियां शंख–ध्वनि कर रही हैं। अप्सराएँ विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र सहित प्रार्थना कर रही हैं। जगमोहन के सामने नृत्य मंडप या नृत्य मंदिर बना है। विविध वाद्य–यंत्रों जैसे– मृदंग, झांझ, वेणु आदि वाद्य–वादन करती नारी मूर्तियां, श्रृंगार–रत नायिकाएं, दैनिक जीवन से संबंधित अनेक कार्यकलापों को प्रकट करती ये नारी आकृतियां मानो जीवन के 'उल्लास' और 'संगीत' को मूर्तिमान करती प्रतीत होती हैं।

(चित्र सं. 8– कोणार्क मंदिर, रथ का पहिया)

(चित्र सं. 9– "नृत्य करती व वाद्य बजाती स्त्रिया")

(चित्र सं. 10–नगाड़ा बजाते हुए स्त्री) (चित्र सं. 11– वाद्य–यंत्र बजाती वादिका) (चित्र सं. 11– वाद्य–यंत्र बजाती स्त्री)

5. **परशुरामेश्वर मंदिर (750 ई.–900 ई.)**– परशुरामेश्वर मंदिर में वादक दल को उत्कीर्ण किया गया है, जो वेणु, ढोल–मृदंग, नर्तकों के साथ ताल देने वाले अन्य वाद्य यंत्र बजाते हुए उत्कीर्ण किए गए हैं। नर्तकियों को नृत्य की आकर्षित भाव–भंगिम में उकेरा गया है, जिन्हें बाहरी कमरे के अंदर की दीवारों में बने आलों में उत्कीर्ण किया गया है। साथ ही एक पहिये की आकृति में अनेक भुजाधारी–नटराज शिव को दर्शाया गया है।

(चित्र सं. 13– भुजाधारी नटराज शिव की प्रतिमा) (चित्र सं. 14– नर्तक एवं वाद्य–यंत्र बजाते वादक)

5. **मुक्तेश्वर मंदिर (900 ई.–1100 ई.)**– भुनेश्वर के मुक्तेश्वर मंदिर में एक बहुत सुंदर शिला–पट्ट है। इस पर एक नर्तकी मध्य में नृत्य कर रही है। उसके दोनों ओर एक–एक वादक बैठे हैं। नर्तकी के दाहिने हाथ की ओर का वादक तत वाद्य बजा रहा है और बाएं हाथ में घनस वादकों के पीछे दो स्त्रियां कलात्मक मुद्रा में दिखाई गई हैं। इस पट्ट के दृश्य में विशेषता यह है कि नर्तकी एक तो प्रौढा ना होकर बालिका जैसी दिखाई देती है, दूसरे उसकी मुद्रा नाट्यशास्त्र के करण से मेल खाती है शास्त्रीय नृत्यों की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व हैं।

(चित्र सं.– 15 मुक्तेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर, ओड़िशा)

नागर शैली की उपशैली खजुराहो शैली–

खजुराहो मध्यप्रदेश के छतरपुर जिला मुख्यालय से लगभग 47 किलोमीटर दूर स्थित है। शिलालेखों एवं प्राचीन ग्रंथों में खजुराहो के अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं, जिनमें खज्जूर वाहक, खज्जीनपुरा तथा खाजुरपुरा। खजुराहो के मंदिर भी नागर वास्तु शैली में निर्मित है, यह स्थापत्य सौंदर्य और मूर्ति शिल्प के सर्वोत्तम उदाहरण है। खजुराहो के मंदिर, तलच्छंद (ग्राउंड प्लान) तथा उर्ध्वच्छंद (इलेवेशन) में विशिष्ट है। ये ऊंची जगती पर बने हुए हैं एवं इनकी आधार योजना 'लेटिन क्रास' के आकार की है, जिसकी लंबी भुजा पूर्व से पश्चिम दिशा में है। इसके तीन अंग हैं– (1) गर्भगृह, (2) मंडप, (3) अर्धमंडप ।

खजुराहो के मंदिर मुख्यतः कामक्रीडाओं से सम्बंधित शिल्प व मूर्तियों के लिए विश्वविख्यात हैं, साथ ही नृत्य का सौंदर्य पूर्ण व विस्तृत रूप खजुराहो की मूर्तियों में देखने को मिलता है स खजुराहो मूर्तिशिल्प में नृत्य मुद्राओं, नर्तकियों एवं गंधर्वों को उकेरा गया है, कुछ नर्तकियों को जटिल मुद्रा में दिखाया गया है स खजुराहो के मंदिरों को समूहों में बांटा गया है, जिनमें पश्चिम समूह के मंदिर, पूर्वी समूह के मंदिर एवं दक्षिण समूह के मंदिर सम्मिलित हैं–

पश्चिम समूह के मंदिर	**पूर्वी समूह के मंदिर**	**दक्षिण समूह के मंदिर**
लक्ष्मी मंदिर	वामन मंदिर	चतुर्भुज मंदिर
वराह मंदिर	जावरी मंदिर	दूल्हा देव मंदिर
लक्ष्मण मंदिर	जैन मंदिर	
कंदरिया महादेव मंदिर	ब्रह्मा मंदिर	
सिंह मंदिर	घंटाई मंदिर	
जगदंबा मंदिर		

सूर्य चित्रगुप्त मंदिर
विश्वनाथ मंदिर
नदी मंदिर
पार्वती मंदिर
मतंगेश्वर मंदिर
चौसठ योगिनी मंदिर

लक्ष्मण मंदिर के सामने बाईं ओर स्थित लघु मंदिर में एक नर्तकी को दर्शकों की ओर पीठ किए हुए नृत्य मुद्रा में दिखाया गया है, किंतु नर्तकी ने अपनी कमर को इस तरह मोड़ रखा है कि उसका मुख तथा वक्ष दर्शकों की ओर है। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसकी अधोदेह पर देह का ऊपरी भाग अलग से घुमाकर जोड़ दिया गया है, किंतु दूसरे दृष्टि में यह कठिन नृत्य मुद्रा स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रकार की मुद्रा विश्वनाथ मंदिर की बायीं आंतरिक प्रदक्षिणा भित्ति पर तथा कंदरिया महादेव मंदिर की बायीं एवं दाहिनी बहिर्भिती पर है जिसमें नर्तकी ने अपनी देह के ऊपरी हिस्से को कमर से मोड़ कर दर्शकों की ओर कर रखा है। लक्ष्मण मंदिर तथा कंदरिया महादेव मंदिर में एक अन्य नृत्यमुद्रा प्रदर्शित है जिसे 'त्रिभंग' कहते हैं। इसमें नर्तकी के दोनों हाथों की उंगलियाँ उसकी देह के पृष्ठ भाग में जाकर आपस में गुँथी हुई हैं। एक अन्य मुद्रा में नर्तकी ने अपने दाएं पैर को मोड़कर दाएं हाथ से पकड़ रखा है तथा उसका चेहरा बाएं कंधे की ओर झुका हुआ है। नर्तकियाँ प्रायः अधोवस्त्र के रूप में चूड़ीदार पजामा जैसा कसा हुआ वस्त्र पहनती थीं। यद्यपि उनका वक्ष–स्थल अनावृत रहता था जो आभूषणों से सुसज्जित रहता था। खजुराहो में नटराज की मात्र दो प्रतिमाएं हैं। प्रथम, दुल्हादेव मंदिर भित्ति पर है जिसमें नटराज के तीन हाथों में क्रमशः त्रिशूल, डमरू और खप्पर (कपाल) प्रदर्शित है तथा चौथा हाथ कटि पर स्थित है। दूसरी प्रतिमा संग्रहालय में स्थित है जिसे वरद, त्रिशूल, खड्ग, डमरू, खेटक, खटवांग खप्पर प्रदर्शित हैं।

(चित्र सं. 16– बांसुरी वादक) (चित्र सं. 17–नर्तकी की प्रतिमा)

(चित्र सं. 18–नर्तकी की प्रतिमा) (चित्र सं. 19– बांसुरी वादक)

जावरी मंदिर की भित्तियों पर दो आदमियों को नृत्य करते हुए तथा एक आदमी को कान पर हाथ रखकर आलाप लेते हुए दर्शाया गया हैं एवं अनेक नारी मूर्तियां वाद्य यंत्र बजाते हुए प्रदर्शित हैं। विश्वनाथ मंदिर में बांसुरी बजाती हुई नारी, लक्ष्मण मंदिर में एक नारी दर्शकों की ओर पीठ कर बांसुरी बजाती हुई तथा इसके अतिरिक्त तार वाद्य बजाती हुई नारी मूर्तियां भी इन मंदिरों में प्राप्त होती हैं, जिसके अंतर्गत एक नारी को 'रबाब' जैसा तारवाद्य का वादन करते दृश्य अंकित किए गए हैं।

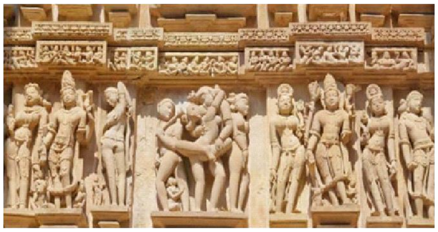

(चित्र सं. 20– कामक्रीड़ा एवं देवी–देवताओं के शिल्प)

ढोलक, मंजीरा, शंख, मृदंग, डमरु, तुरही, घंटा आदि वाद्य बजाती हुई प्रतिमाएं भी इन मंदिरों में देखने को मिलती हैं। वामन मंदिर में एक नारी को लंबा इकतारा बजाते हुए उत्कीर्ण किया गया है, जिसे उसने अपने दोनों हाथों में थाम रखा है। जावरी मंदिर में स्त्री–पुरुष के समूह को विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र बजाते हुए दिखाया गया है। जैसे– बांसुरी, शंख, वीणा, घंटा आदि स पूजा में प्रयुक्त होने वाला 'उपंग' नामक वाद्य भी प्रदर्शित है। विश्वनाथ मंदिर में डमरु, तुरही और क्लेरियानेट बजाते हुए कलाकारों का समूह अंकित है। विश्वनाथ मंदिर में ही एक अन्य

दृश्य में दो पुरुष और एक स्त्री नृत्यरत हैं, एक पुरुष अपने गले में लटका हुआ ढोल बजा रहा है तथा एक अन्य पुरुष तुरही बजा रहा है। लक्ष्मण मंदिर में दो पुरुषों को तबलानुमा वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है जिसमें एक नर्तकी भी दिखाई पड़ती है। ढोल और तबला बजाते पुरुषों की कई प्रतिमाएं मंदिर भितियों पर हैं। अन्य प्रतिमाओं में ढोल, घंटा, मृदंग, तुरही, हार्प, डमरु, इकतारा, वीणा, शंख, बांसुरी, करताल और ढफली बजाते दिखलाया गया है।

(चित्र सं.21– लक्ष्मण मंदिर, वाद्य–यंत्र बजाते संगीतज्ञ)

नागर शैली की उपशैली सोलंकी शैली–

सोलंकी शैली को 'सोलंकी' शासकों ने विकसित किया। गुजरात, राजस्थान सहित भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में यह शैली विकसित हुई थी। इसमें गर्भगृह बाहर व अंदर दोनों तरफ से मंदिर से जुड़ा हुआ होता था। बरामदे में सजावटी धनुषा का द्वार होता था, जिन्हें 'तोरण' कहते थे, इसमें 'बावड़ी' (सूर्यकुंड) होता था एवं बावड़ी की सीढ़ियों पर छोटे–छोटे मंदिर थे, जिनमें लकड़ी की नक्काशी थी। अधिकांश मंदिरों को ऐसा बनाया गया है कि सूर्य की किरणें सीधे मुख्य मंदिरों में पर पड़े।

1. **सूर्य मंदिर मोढेरा**– दसवीं शताब्दी में राजा भीमदेव ने मोढेरा में सूर्य मंदिर बनवाया था, जिनकी दीवारों पर गायन–वादन से संबंधित मूर्तियों का निर्माण किया गया था एवं मंदिर नृत्य के सुंदर दृश्यों से परिपूर्ण था। मंदिर के अंदर स्थित आठ स्तम्भों पर नर्तकियों की आकृतियां बनाई गई एवं मंदिर के शिखर पर चारों तरफ स्त्री–पुरुष के श्रृंगारमूलक दृश्य को दर्शाया गया, जिनमें युगल नृत्य की भी झलक दिखाई गई हैं।

(चित्र सं. 22– सूर्य मंदिर की दीवारों पर उकेरे गये शिल्प)

2. **सोमनाथ मंदिर**– गुजरात में स्थित सोमनाथ महादेव मंदिर भी सोलंकी शैली के अंतर्गत निर्मित किया गया । सोमनाथ मंदिर को कई बार नष्ट एवं पुर्ननिर्मित किया गया। महमूद गजनवी ने इस मंदिर में लूटपाट कर हीरे–जेवरात अपने देश ले आया। कहते हैं इस मंदिर को छः बार लूटा गया और उसका हर बार पुर्ननिर्माण कराया गया। अंत में भारत सरकार के प्रथम गृहमंत्री 'श्री वल्लभ भाई पटेल' ने समुद्र का जल लेकर मंदिर के निर्माण का संकल्प लिया। छः बार टूटने के बाद सातवीं बार इसे 'कैलाश महामेरू' प्रसाद शैली में बनवाया गया। इस मंदिर में देवी–देवताओं की मूर्तियों के अतिरिक्त तीन से अधिक संगीतज्ञ एवं पांच सौ नर्तकियों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।

(चित्र सं. 23– देवी–देवताओं एवं नर्तकियों के शिल्प)

नागर शैली की उपशैली राजस्थान आबू पर्वत शैली–

देलवाड़ा के मंदिरों का निर्माण तेरहवीं शताब्दी में राजस्थान में माउंट आबू नगर में किया गया। यह पांच मंदिरों का समूह था, जो जैन तीर्थंकरों को समर्पित है। मंदिर में लगभग अड़तालीस स्तंभों का निर्माण कराया गया जिसमें नर्तकियों की आकृतियां बनी हुई हैं। देलवाड़ा

के मंदिरों के गुम्बजों में कमल पुष्प, पंक्तिबद्ध सिंह, नर्तक, वादक व विभिन्न पुष्पों की अलंकृत आकृतियाँ उत्कीर्ण है। वैष्णव देवी–देवताओं, कृष्ण लीला आदि से सम्बन्धित दृश्य उकेरे गए हैं। मंदिर में स्थापित रंगमंडप जिसमें बारह अलंकृत स्तंभों और कलात्मक सुंदर तोरणों पर आश्रित बड़े गोल गुंबज में हाथियों, अश्वों, हंसों, नर्तकों आदि की ग्यारह गोलाकार मालाएं और केंद्र में झुमकों के स्फटिक गुच्छे लटकते हुए से बनाए गए हैं। प्रत्येक स्तंभ के ऊपर भक्ति भाव से वाद्य बजाती हुई ललनाएं और उसके ऊपरी भाग में भिन्न–भिन्न आयुध, शस्त्र और नाना प्रकार के वाहनों से सुशोभित सोलह महाविद्या देवियों की खडी अवस्था में अत्यंत प्रभावशाली एवं रमणीय मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

(चित्र सं. 24–संगमरमर से निर्मित नर्तकियों के शिल्प)

(चित्र सं 25– "विमलवसहि का अलंकृत, गुम्बज," माउंट आबू)

संगमरमर से निर्मित होने के कारण यह मंदिर विश्व भर में विख्यात है। इसके अतिरिक्त देलवाड़ा के मंदिरों में मानव, पशु पक्षियों, वाद्यों तथा राग–रागनियों की आकृतियाँ बनायी गयी है। देलवाड़ा में स्थित 'तेजपाल मंदिर' की छत्ते भी अत्यंत आकर्षक हैं, इनकी प्रमुख बड़ी छत जिसे 'रंगमंडप का कटोरक' कहते है, विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान के दिलवाड़ा, रणकपुर तथा कुंभारिया के मंदिरों में नृत्यमग्न देवताओं की मूर्तियां मंदिर के सभामंडप में खंभों पर अंकित की गई है। ये मूर्तियां शिल्पकारी का एक अप्रतिम नमूना है। संगमरमर में उकेरी हुई इन मूर्तियों के चार हाथ हैं। ये हाथ नर्तक की चार भिन्न–भिन्न क्रियाओं को प्रदर्शित करते हैं। दाहिने तथा बाईं तरफ से किसी भी एक–एक हाथ को एकसाथ एकत्रित रूप में देखने से हर बार एक अलग नृत्यभंगिमा हमें दिखाई देती है। अर्थात एक ही मूर्ति से उभरने वाली इन चारों भंगिमाओं में पैरों की स्थिति समान रहती है। दो हाथों के सम्मिलन से बनी स्थिति बदलने से एक ही मूर्ति द्वारा चार नृत कारणों का स्पष्टीकरण होता है। मंदिरों में नर्तकियों के अनेक युगल रूप दिखाई देते हैं। सामान्यतः ये नर्तकियाँ नर्तक की दो भिन्न–भिन्न विधाओं को एक साथ प्रदर्शित करती हैं। कुछ स्थानों पर वे एक ही क्रिया को दोनों अंगों से प्रदर्शित करती है। नाट्यशास्त्र में दोनों अंगों से की हुई एक ही क्रिया को 'अंगपर्याय' कहा गया है।

निष्कर्ष–भारत धर्म व आस्था की तपोभूमि हैं, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने अच्छे व बुरे कर्मों के फल हेतु एक दैवीय शक्ति पर विश्वास करता हैं, इस दैवीय शक्ति की आराधना हेतु मंदिरों का निर्माण किया गया। भारत के उत्तर भाग में नागर शैली में निर्मित मन्दिर जहां एक ओर स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने हैं वहीं दूसरी ओर इन मंदिरों में उत्कीर्ण गायन, वादन व नृत्य के शिल्प व चित्र, स्थापत्य कला व संगीत कला के अद्वितीय संगम के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मन्दिरों में उत्कीर्ण संगीत सम्बंधित तथ्य ये दर्शाते हैं, कि संगीत की साधना भी ईश्वर को प्राप्त करने का साधन हैं। इन मन्दिरों का इतिहास जितना पुराना हैं उतनी ही पुरानी परम्परा संगीत की रही हैं। अतः ये दोनों कलाएं पुरातन काल से अंतर्संबंध स्थापित किये हुए हैं।

चित्र सन्दर्भ सूची :

1) https://images.app.goo.gl/8EAmrNynaH6k2KZu6
2) https://images.app.goo.gl/Vx6eKgkEi3nuM2ZNA
3) https://images.app.goo.gl/4QX5gCfjuezUHHch9
4) https://images.app.goo.gl/FEF9Nmg7ebTbZqMu6
5) https://images.app.goo.gl/wqFudkW9n7YCY3xu8

6) Varandpande, M.L., Women in Indian sculpture, Abhinav Publication, New Delhi-110016, Image no. 8
7) Varandpande, M.L., Women in Indian sculpture, Abhinav Publication, New Delhi-110016, Image no. 47
8) https://images.app.goo.gl/d48mCqrPHuPMfXak7
9) https://images.app.goo.gl/zoZtdzPc5n3n9bGy7
10) Dev, Krishna, Temples of India, Aryan Book International Publication, New Delhi-110002, Image no. 264
11) Varandpande, M.L., Women in Indian sculpture, Abhinav Publication, New Delhi-110016, Image no. 39
12) Varandpande, M.L., Women in Indian sculpture, Abhinav Publication, New Delhi-110016, Image no. 38
13) https://images.app.goo.gl/GTAw3wJ8bV7pNkRf7
14) https://images.app.goo.gl/uBKquSmZquQGpEHg8
15) https://images.app.goo.gl/rNc1hUoFyxTRaQSW8
16) Vatsyayan, Kapila, Incredible India, Arrested Movement Sculpture & Painting, Wishdom Tree Publisher, New Delhi- 110002, page no. 84
17) Vatsyayan, Kapila, Incredible India, Arrested Movement Sculpture & Painting, Wishdom Tree Publisher, New Delhi- 110002, page no. 84
18) Vatsyayan, Kapila, Incredible India, Arrested Movement Sculpture & Painting, Wishdom Tree Publisher, New Delhi- 110002, page no. 84
19) Dev, Krishna, Temples of India, Aryan Book International Publication, New Delhi-110002, Image no. 181
20) https://images.app.goo.gl/aND6wLfjnCbXjdX58
21) https://images.app.goo.gl/FTAWQJ2jSJJRko2N9
22) https://images.app.goo.gl/DpFCFCCwPDcGYcy36
23) https://images.app.goo.gl/SaDRwBHWNXGpWBoy9
24) https://images.app.goo.gl/PPgNwUX54PXp3Rwo9
25) https://images.app.goo.gl/T7eJRGuUyJFvLqdW7

सन्दर्भ सूची :

1. प्रताप, डॉ. रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2020, पृ. 564
2. आजाद, पं. तीरथराम, कत्थक ज्ञानेश्वरी, तौर्यत्रिकम पब्लिकेशन, 28 भारती आर्टिस्ट कालोनी, विकास मार्ग, दिल्ली–110092, 2022, पृ. 27
3. प्रताप, डॉ. रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2020, पृ.568
4. वहीं
5. वहीं , पृ. 569
6. वहीं , पृ. 574
7. भारती, मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2019, पृ. 188
8. आजाद, पं. तीरथराम, कत्थक ज्ञानेश्वरी, तौर्यत्रिकम पब्लिकेशन, 28 भारती आर्टिस्ट कालोनी, विकास मार्ग, दिल्ली–110092, 2022, पृ. 27
9. सिंह, डॉ. शरद, खजुराहो की मूर्तिकला के सौन्दर्यात्मक तत्व, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृ. 6
10. वही, पृ. 75
11. वही, पृ. 77
12. भारती, मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2019, पृ. 268
13. प्रताप, डॉ. रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2020, पृ. 589
14. दाते, रोशन, कथक–आदिकथक, ग्रंथाली, इंडियन एजुकेशन सोसायटी की म. फुले कन्याशाला, दादर मुंबई, 2010, पृ. 103, 104

Banjhakri : Shaman of the Himalayas

Dr. Samidha Vedabala** **Subham Peter Gazmer***

Abstract

The enduring connection between music and religion is a fundamental aspect of human culture, enabling profound spiritual experiences and strengthening faith. This paper investigates the central role of music in various religious traditions, emphasizing its importance in worship, fostering community cohesion, and the transmission of sacred narratives. The paper explores the global practice of shamanism, where music serves as a vital tool for intermediaries connecting humans with spirits. Focusing on the Himalayan region, renowned for its cultural diversity, and including Sikkim's indigenous communities with animistic beliefs, this study employs participant observation as its methodology. This immersive approach allows for an in-depth exploration of the intricate relationships between music, religion, and shamanism within their respective cultural contexts. The paper also sheds light on the rigorous training and transformative experiences that shape notable figures like Ban-Jhakri, who employ music in shamanic ceremonies to induce altered states and establish connections with the spirit world.

Keywords : *Shaman, Music, Himalayas*

Methodology : *This study employs participant observation as its methodology.*

Introduction

Music has always been a medium for people to reach spiritual ecstasy. Religious scripts have been descent throughout the narrative of humans (Miller & Strongman, 2016). Mantras chant in a harmonious pattern or the choir in churches. Music has played a crucial role in religious traditions. Music allows people to bind with their deeper sense that texts may not able to do it. For eg, In Hinduism, when people sit for puran lots of bhajans are song while people sing and dance and express their devotion towards their God. Studies have suggested that Religious music eased their worries about death and given more satisfaction with their lives (Demmrich, 2018). Religious music has encourage people to participate in a healthy community. With music, people get connected to be grateful to their higher power.

Music and religion have a deep and interconnected relationship that spans across various cultures and historical periods. Music is often employed as an integral part of religious rituals, ceremonies, worship, and spiritual practices. Here are some key aspects of the relationship between music and religion (Fine, 1939).

Worship and Devotion: Music plays a central role in religious worship and devotion in many traditions. It can be used to express praise, gratitude, and adoration to a higher power or deity. Hymns, chants, and religious songs are commonly sung during religious services or gatherings as a way to connect with the divine and foster a sense of unity among worshipers.

Spiritual Transcendence: Music has the power to evoke profound emotions and create a sense of transcendence. It can be a vehicle for spiritual experiences, helping individuals enter a state of heightened awareness, contemplation,

*Ph.D. Scholar, Sikkim University, Gangtok, Sikkim
**Assitant Professor, Sikkim University, Gangtok, Sikkim

and connection with the divine. Through melodies, rhythms, and harmonies, music can facilitate a sense of awe, reverence, and spiritual upliftment.

Rituals and Ceremonies: Religious rituals and ceremonies often incorporate music as an essential element. These rituals may involve specific musical compositions, instruments, and vocal performances that have symbolic and sacred significance. The music sets the tone, creates a sacred atmosphere, and enhances the overall religious experience (Becker.J, 1994).

Community and Unity: Music has the power to bring people together and foster a sense of community and unity within religious contexts. Congregational singing or chanting can create a shared experience, strengthen social bonds, and enhance a sense of belonging among believers. Music often serves as a unifying force, allowing individuals to connect with one another and their shared religious beliefs.

Sacred Texts and Stories: Music is sometimes used to recite or chant sacred texts, scriptures, or religious stories. These musical renditions help in memorization, oral transmission, and preservation of religious teachings. By combining music and storytelling, religious traditions can convey their narratives, morals, and spiritual messages in a captivating and memorable way.

Healing and Meditation: In some religious traditions, music is used as a therapeutic tool for healing, meditation, and spiritual reflection. Soothing and meditative musical compositions can create a conducive environment for individuals to find inner peace, tranquillity, and a deeper connection with the divine (Beck, 2019)

It's important to note that the role of music in religion can vary significantly across different cultures, traditions, and denominations. The styles, instruments, and specific musical practices associated with religious contexts are diverse and reflective of the unique cultural expressions of each faith.

Shamans

A shaman is a person who practices shamanism, which is a spiritual and healing practice found in various cultures around the world. Shamans are often regarded as intermediaries between the human and spirit realms. They are believed to have the ability to connect with spirits, including ancestors, animal spirits, and nature spirits, to gain knowledge, guidance, and healing powers. Shamans typically undergo extensive training and initiation, often through personal experiences of illness, visions, or dreams. They may employ various techniques and rituals, such as drumming, chanting, dancing, or using natural substances like herbs or sacred plants, to enter altered states of consciousness and access the spirit world. Shamans are respected members of their communities and fulfil multiple roles, including healers, diviners, counsellors, and mediators between humans and the spiritual realm. They may perform rituals for healing physical, emotional, and spiritual ailments, as well as provide guidance on personal matters, offer protection, or conduct ceremonies for important life events. Shamanism encompasses diverse practices and beliefs across different cultures, so specific details and rituals may vary widely depending on the particular tradition and region.

Shamanistic Traditions of the Himalayas

The Himalayas are a region known for its rich cultural diversity and spiritual traditions. Within the Himalayas, there are various indigenous communities that have their own unique shamanic practices. While these practices can vary among different groups, there

are some common elements found in Himalayan shamanism. Here are a few examples:

Bon Tradition: The Bon tradition is an ancient shamanic and spiritual tradition that predates Buddhism in the Himalayan region. Shamans in the Bon tradition, known as "Bonpo," practice rituals and ceremonies to connect with spirits, deities, and natural forces. They use techniques such as chanting, drumming, divination, and trance states to communicate with the spirit world and perform healing and protection rituals.

Sherpa Shamanism: The Sherpa people, known for their association with Mount Everest and the Everest region, have their own shamanic practices. Sherpa shamans, called "Lamas," perform ceremonies and rituals to communicate with deities, spirits, and ancestors. They use prayer flags, incense, and offerings as part of their rituals, and they may also employ chanting, drumming, and sacred dances.

Tamang Shamanism: The Tamang community, which is found in Nepal, Tibet, and parts of India, practices a form of shamanism known as "Tamang Sambaad." Tamang shamans, called "Bompo," are believed to have the power to communicate with spirits, diagnose illnesses, and perform healing rituals. They may use rituals involving animal sacrifices, chanting, and the playing of musical instruments like the damaru (a small drum) and shang (a metal gong).

Lepcha Shamanism: The Lepcha people, indigenous to the Himalayas in Sikkim and parts of Bhutan and Nepal, have their own shamanic traditions. Lepcha shamans, known as "Phedangba," act as intermediaries between the human and spirit realms. They perform rituals involving chants, dances, and offerings to spirits and deities for healing, divination, and protection.

These are just a few examples of the diverse shamanic practices found in the Himalayas. Each community and region within the Himalayas may have its own specific variations and practices, making it a fascinating and varied landscape for the exploration of shamanism.

Sikkim Culture

Sikkim is a land of diverse spirituality. Indigenous communities of sikkim like Rai-Limbu and Lepchas are rooted in animistic practices. Nature holds wisdom, power and is also a realm of uncertainty as it is also inhabited by the spirits who live in the human world. Shamans and the Ban jhakris act as the mediators who help the common folks to navigate the unknown world of the spirits. This spiritual world has a story of its own which is believed to have cause an effect the natural world of men when unknowingly trespassed by men, shamans and banjhakris are known help interpret this unknown to the common folks and this is often done through music. So that harmony can be brought between the natural and the supernatural (Gurung & Shanta, 2023)

Origin of Ban-Jhakri

The legends tell that Once in a blue moon a first Shaman takes a boy from a village to share his occult knowledge. But it's not easy for any boy to survive that extreme process of learning on the other hand the danger of forest shaman wife would eat any human without thinking for once. Forest Shaman protects his disciple from his wife as much as he can but sometime, he fails. To pass on the occult knowledge Shaman, need to keep his disciple in samadhi state. Where the disciple doesn't have any idea about the outer physical world. Once the ritual gets over forest shaman wife tries to devour the disciple, but shaman does everything possible to save his disciple. Serving the extreme transformation period for 4 years boy get released from the jungle. Even though

the boy runs away from the claws of jungle shaman, but the occult won't allow him to run away from the ritual. With the flow of time, he transforms into Jhakri.

In any situation, the shaman is of utmost importance to the village's populace. He stands in for their spiritual leader, akin to a priest, who is regarded as the moral arbiter of all matters of faith and provides guidance to people. A shaman serves as a conduit and representative between the natural and paranormal worlds. It is thought that he may leave his body when tranced and visit the enigmatic intermediate world to communicate with the ghosts of the ancestors. Or he allowed the spirit to enter his body so that it might communicate with people and operate via the shaman. The supernatural manifests within him and dances, chants, and the beating of loud tambourine drums.

Shaman Music

Shamans plays a drum called dhyangro, which is played with a drumstick fashioned like a snake. The drum is the shaman's horse which rides in the world of gods. Drumstick is used as a whip and that the shaman occasionally trembles and shakes in a manner like it's riding on a horse. A key component of shamanic ceremonies is the drum. It has a rich meaning as well as several supernatural properties. It is built from wood from a tree whose location the spirits reveal. The skin is also obtained from a sacrificial goat or a deer taken as part of a religious hunt.The most prevalent sacred symbols painted on the skin are the sun, moon, cosmic tree, and trident. The horse, eagle, and boat that the shaman employs to travel between the three realms are represented by the drum, which also serves as a symbol for the cosmos' three divisions—heaven, earth, and the underworld. The drum's primary purpose is to create a trance state. The pombo bargains with the spirits for the welfare of his patients while they are in the trance. The pombo establishes a holy space in the home and engages in a discourse with forces beyond of human control throughout the nightlong music ritual that constitutes the trance. Drumming and chanting are used to accompany each activity. The chant gives the movement a mythological tone while the drum controls the tempo.

The shaman's attire is also crucial since it serves to distinguish between normal activities and ceremonial ones. The shaman wears a clothing during ceremonies that alludes to a larger, invisible reality that is outside the scope of the five senses. The Yolmo pombo, for instance, wears a white frock and a red shirt because those colours represent the gods and humans, respectively. He wears a cotton ring with three colours on his forehead—white, red, and either blue or black—to signify his ability to go across the underworld. In the shamans chest he sports a bandoleer of bells, and the bells' ringing indicates the presence of gods or spirits inside the shaman's body. He is wielding a ceremonial wooden dagger known as a phurba, whose three-sided blade is carved with hideous faces and intertwined snakes.It is employed in the battle against demons and evil spirits. Additionally, a human thighbone trumpet is carried; it is thought to ward off bad spirits with its powerful notes and appease vengeful gods. A tiger or leopard bone trumpet, which is carried by certain shamans, is thought to represent the fierce and savage power of the respective animal. Along with an arrow, a set of Himalayan antelope horns is employed as a warlike trait. The shaman wears necklaces made from a variety of seeds, grains, and bones. Every element of his attire has a significant purpose.

It is simple to state that shamanism cannot exist without music. It is practically hard to imagine a shamanic session without music, or at the very least, some gestural-rhythmic expression (harner). There is no shamanism

without a rhythm or melody—as we know, we can have shamanic experiences and rituals without the use of musical instruments—whereas we can only have singing or, for example, a rhythmic movement of the hand, following an inner tune. Clearly, the concept of music is intended here with its broad range of meanings.

In close relation to religion and philosophy, music is in fact one of the most obscure keys to knowledge. The process of the cosmic manifestation itself is conveyed through music. For mystics and astrophysicists, vibration is the first cause and the supreme reality. It is easier to find the divine in sounds rather than words since music allows us to immediately feel its symbolism and meanings. The musical sound is the most abstract form of musical expression and sound is the most abstract sense we may have. The most effective means for the supernatural realm to manifest itself and for humans to fully integrate into it are sound structures (Ferrara). Therefore, music plays a crucial role in all rituals, initiations, direct communications with the spirit realm, and prophetic manifestations. Thus, we find that music is present at the very beginning of all relationships between man and the sacred, whether it be the symbolic meaning of some music used to create a sacred condition (Rouget, 1985). The drum is the primary ceremonial item of the shaman, the voice of the non-human, and the mode of travel across the universe, and it may be used to invoke musical magic. The rhythmic modalities that are primarily used in shamanic music are crescendo and accelerando, making it quite straightforward. The oral tradition is mostly told and actualized through rhythm:

The shaman sang and beat the drum as he recounted his many meetings with spirits, battles with demons, and negotiations with the king of the underworld. Sometimes he trembled and shook wildly, and other times he stayed still. Following his orders, his aides took out each of the nine gtor ma and the rice beads, leaving just the two leading ones. The lady was abruptly released from the black one, which was then swiftly removed outside, during the last encounter.

The shaman then started to take the soul, materialising it as a rice bead, speck of dust, or something similar on the skin of his drum. The guardian deities that protect the entrance to the inner abodes of soul and life-energies were then fully restored after he had reintegrated it into the woman's body and had locked the nine gates of her body once more. The shamanic while chanting and drumming, narrates the mythological history of each thing. The shaman makes an invitation to the gods, spirits, and ancestors asks them to take a seat within the altar throughout the rite. A few of the entities take over the shaman's body and communicate with him and through him in order to ascertain the origin of the patient's disease and the best course of treatment. The shaman then performs the appropriate activities while in a trance to carry out the instructions, all the while playing the drum and singing about the deeds he is carrying out both in this world and in the others. The audience pays close attention to this since it is the most important phase of the ritual and can be rather lengthy and full of unexpected happenings. The culmination of the ceremonial action is a real or symbolic sacrifice. Typically, the blood of a victim is required (e.g., chicken, goat, etc.). The shaman thanks the spiritual beings. In many stages and purposes of the ritual action, we may hear a change in time and rhythm from a musical perspective. It's interesting to note that the patient plays a completely passive role during the entire process.

Conclusion :

Shamanism is fundamentally based on

music, and shamanism as a discipline is practised all over the world. Sound and musical instruments are the primary tools used in shamanic practise and tradition. Shamanism a self-sustaining tradition that is influenced by regional cultures and influences, environments, historical events, and belief systems and religions.

It is important to note that all this knowledge is said to have been imparted to the shaman directly by the gods or the ancestors through dreams, visions, and ecstatic experiences. The community is then taught all this information while trance-like. So, apparently, it is represented and disseminated in the shape of music and is emanating from the same, everlasting source again and over again. The shamanic song serves as a guide, a route, and a means of transportation for people through both life and the universe.

References :

Miller, M. M., & Strongman, K. T. (2016). The Emotional Effects of Music on Religious Experience: A Study of the Pentecostal-Charismatic Style of Music and Worship. Sage journals.

Demmrich, S. U. (2018). Personal Rituals in Adolescence: Their Role in Emotion Regulation and Identity Formation. Journal of emperical Theology.

Harner, M. (n.d.). The Way of Shaman. San Francisco: HarperSanFransico.

Ferrara, L. (n.d.). Philosophy and the Analysis of Music: Bridges to Musical Sound, Form and reference. Greenwood Press.

Rouget, G. (1985). Music and trance; A theory of the relations between music and possession.

University of Chicago Press.

Fine, C. M. (1939). A psychology of music: The influence of music on behavior. College of Music, pp. 125-141.

Becker.J. (1994). Music and Trance. Leornado Music Journal, 41-51.

Beck, G. L. (2019). Sacred Music and Hindu Religious Experience: From Ancient Roots to the Modern Classical Tradition. Religions.

Gurung, M., & Shanta, E. (2023). Sikkim Culture - Remats of Spiritual/Faith Healing System among the lepcha and limbu Communities of Sikkim. Black Magic,Witchcraft and Occultism.

Symbolism and Philosophy of The Dance of Shiva: An Analysis of AnandaCoomaraswamy's Interpretation

Dr. N.K.Vivekanandhan** **Dr. P. Sakthivel***

Abstract

The Dance of Shiva, an iconic delegacy of Lord Shiva's cosmic dance, holds profound symbolism and philosophical deepness within Hindu mythology and art. This research paper investigates the intricate layers of meaning embedded in the portrayal of Shiva's dance, as taken by the renowned writer, Ananda Coomaraswamy. The analysis explores the historical and ethnical circumstances of the Nataraja motif, emphasizing its agency of creation, destruction, and the cyclical nature of existence. An examination of Ananda Coomaraswamy's seminal work reveals his insights into the symbolism of Shiva's gestures, poses, and attributes, as wellspring as the philosophic themes they capsulize. Through a comparative analysis of Coomaraswamy's reading alongside other scholarly perspectives, this paper highlights both convergences and divergences in observation. This exploration further reveals the profound philosophical implications derived from the dance's symbolization, encompassing concepts of the clip, equilibrize, and the harmonious interplay of opposites. The enduring legacy of Coomaraswamy's rendering is discussed in terms of its impact on art, philosophy, and ethical discussion while also acknowledging very possible criticisms and controversies. In sum, this research paper offers a comprehensive analysis of Ananda Coomaraswamy's rendering of The Dance of Shiva, illuminating its import in the broader setting of Hindu philosophic thought and its long-suffering work in scholarly and artistic realms.

Key Words : *Symbolism, Philosophy, Hindu mythology, Cosmic dance, Hindu art, Artistic representation*

Research Methodology : *This research paper adopts a qualitative research approach, aiming to deeply analyze and see the symbolization and philosophy of The Dance of Shiva as presented in Ananda Coomaraswamy's seminal writing. Qualitative research is especially suited for exploring composite themes and meanings embedded within ethnic artifacts and philosophic texts, allowing for in-depth exploration and rendering (Denzin & Lincoln, 2011).*

Introduction:

The Dance of Shiva, a captivating artistic agency very deeply rooted in Hindu mythology, encapsulates profound layers of symbolism and philosophical intuition. Within the realm of Hindu art and thought, this iconic depiction of Lord Shiva's cosmic dance holds a pivotal localize, serving as a metaphor for conception, devastation, and the cyclic rhythms that underlie existence. The intricate meanings of this dance are the seminal act of Ananda Coomaraswamy, renowned for his expertise in the crossroads of art, symbolism, and philosophy. In *The Dance of Shiva*, Coomaraswamy offers an unsounded rendering that unveils the intricate gestures, poses, and attributes of Shiva's dance, delving into the underlying philosophic concepts that they signify. This research article embarks on an exploration of the symbolization and philosophy

*Assistant Professor, Department of English, Government College of Engineering, Salem, Tamilnadu
**Assistant Professor, Department of English, Government College of Engineering, Salem, Tamilnadu

woven into the fabric of .as lit by Ananda Coomaraswamy's scholarship. By situating the dance within its historical and cultural context, this paper aims to illuminate the significance of the Nataraja motif as a powerful representation of Hindu cosmology. This article engages in a comparative analysis of Coomaraswamy's insights with other scholarly perspectives, thereby contextualizing his version within a broader academic discourse.

Literature Review:

The mysterious symbolization and philosophical significance embedded within *The Dance of Shiva* have charmed scholars, artists, and enthusiasts for centuries. This iconic depiction of Lord Shiva's cosmic dance, commonly known as the Nataraja, has been a case of exploration from both artistic and philosophical perspectives. This segment explores the existing lit that has contributed to our understanding of the symbolization and philosophy of the dance, culminating in a discussion of Ananda Coomaraswamy's seminal interpretation. The portrayal of Lord Shiva as a cosmic terpsichorean traces its origins to antediluvian Hindu mythology and art. Within this rich cultural circumstance, the dance embodies a synthesis of various Hindu philosophic concepts, including conception, devastation, and the cyclical nature of existence. Scholarly works exploring the historical and cultural roots of the Nataraja motif offer insights into its evolution as a virile symbol that encapsulates the essence of Hindu cosmology (Eck, 2003; Zimmer, 1951).

The workings of renowned art historians and scholars, such as Stella Kramrisch and Heinrich Zimmer, make contributed significantly to the understanding of the symbolization inherent in the Nataraja delineation. Kramrisch's analysis of Indian art and its philosophic foundations (Kramrisch, 1981) and Zimmer's exploration of the unearthly symbolization of Hindu iconography (Zimmer, 1951) have provided foundational insights into the complexities of the dance's gestures, postures, and attributes. Ananda Coomaraswamy, a prominent enter in the study of Indian art and philosophy, occupies a polar post in this discussion. His ground-breaking act *The Dance of Shiva* (Coomaraswamy, 1918) remains a cornerstone in the version of the dance's symbolism. Coomaraswamy's multidisciplinary approach, rooted in his very deep understanding of Hindu philosophy and his appreciation for artistic nuances, sheds illumination on the intricacies of Shiva's dance. His process not only unravels the aesthetic elements but also delves into the unsounded metaphysical ideas the dance embodies.

Coomaraswamy's interpretation has not been without its critics and alternatives. Scholars like David Smith (1996) challenged certain aspects of Coomaraswamy's analysis, suggesting alternative interpretations and raising questions about the catholicity of its symbolization. The ongoing discuss surrounding *The Dance of Shiva* reflects its enduring implication. Contemporary scholars such as Rajiv Malhotra (2016) continue to explore the dance's symbolization within the broader context of ethnic appropriation and cross-cultural interpretations.

Data Collection:

The primary data for this contemplate are derived from AnandaCoomaraswamy's version of *The Dance of Shiva* as presented in his renowned work published in 1918. This text forms the core source that guides the analysis and exploration of the symbolization and philosophy of the dance. Additionally, secondary sources, including scholarly articles, books, and commentaries, are consulted to cater to a broader context and comparative perspective.

Data Analysis:

The analysis of the primary and secondary sources follows a thematic analysis approach. The text of Coomaraswamy's work is carefully examined to key revenant themes, motifs, and concepts related to the dance's symbolism and philosophic implications. Through an iterative appendage, key passages and insights are extracted, coded, and organized into themes that reflect the intricate layers of meaning embedded within the portrayal. This research methodology aligns with the end of providing a comprehensive analysis of the symbolism and philosophy of *The Dance of Shiva.* By employing a qualitative approach, the contemplate aims to illuminate the nuanced meanings within Coomaraswamy's version, highlighting its contributions to the broader discussion, and encouraging farther exploration of this profound ethnic and philosophic symbol.

***"The Dance of Shiva"*: Historical and Cultural Context:**

The Dance of Shiva, captured through the iconic portrayal of the Nataraja, finds its origins deep-rooted in the very historical and cultural tapestry of Hindu civilization. This unfathomed agency holds a pivotal place in Hindu mythology, art, and philosophy, symbolizing the eternal cycles of conception and devastation that underlie the universe's cosmic dictate. The Nataraja motive, featuring Lord Shiva in a dynamic dance pose, resonates as a virile allegory for the intricate interplay between life, death, and rebirth within Hindu cosmology. Tracing its roots in antediluvian texts and scriptures, the Nataraja delineation draws from the rich mythological narratives surrounding Lord Shiva. As the god of destruction and shift in the Hindu pantheon, Shiva embodies the paradoxical nature of existence, signifying both the ultimate germ of creation and the cosmic force that dismantles the universe to alleviate renewal. This dualistic portrayal reflects the multifaceted worldview of Hinduism, where opposing forces harmoniously coexist, and equilibrium is sought through the interdependence of conception and destruction.

Within the broader ethnic setting, the Nataraja motif has permeated various forms of artistic reflection, including carving, painting, dance, and literature. AnandaCoomaraswamy observes: "This dance of Siva in Chidambaram or Tillai forms the motif of the South Indian copper images of Sri Nataraja, the Lord of the Dance" (58). Its resonance extends beyond religious sanctums, weaving into the fabric of quite daily life and ethical celebrations. The dance's symbolical import goes beyond religious tenets, inviting contemplation on the cyclical nature of existence and the impermanence of the material world. Such multi-layered symbolism exemplifies the syncretism prevalent in Hinduism, where the religious, artistic, and philosophical realms intermingle to transmit profound truths. The two historical evolution of the Nataraja motive mirrors the development of Hindu iconography and artistic representation over the centuries. Its intricate symbolization became increasingly processed as it transcended regional variations and stylistic changes; making it a timeless symbolisation recognized and revered crossways the various landscapes of the Indian subcontinent. From the ancient temple carvings of South India to the expound sculptures of Khajuraho and beyond, the dance of Shiva stands as a testament to the enduring very spiritual and cultural heritage of Hinduism.

Interpretation of "*The Dance of Shiva*":

AnandaCoomaraswamy's thoughtful interpretation of *The Dance of Shiva* stands as a cornerstone in the exploration of the symbolism and philosophy enshrined within this iconic depiction. Coomaraswamy, a grand scholar with a profound discernment of art, symbolization,

and Hindu philosophy, offered a transformative perspective that revealed the dance's layers of meaning beyond its esthetic charm. This seminal work not only unveiled the intricate gestures and postures of the dance but also delved into the unfathomed metaphysical ideas that this dance embodies. He says: "The dance, in fact, represents His five activities (Paiicakritya), viz: Srishti (overlooking, creation, evolution), Sthiti (preservation, support), Samhara (destruction, evolution), Tirohhava (veiling, embodimjent, illusion, and also, giving rest), Anugraha (release, salvation, grace)" (59). Central to Coomaraswamy's rendition is the recognition of the dance as an agency of the cosmic rhythms that mold the world. He illuminated the symbolization of Shiva's dance as an avatar of the dynamic interplay between conception and destruction, with Shiva as the cosmic terpsichorean enacting the eternal cycles of birth, expiry, and renascence. The dance, in Coomaraswamy's eyes, transcends mere artistic representation to become a visual metaphor for the unsounded philosophic tenets of Hindu cosmology.

In his analysis, Coomaraswamy meticulously decoded the extremely various elements of the Nataraja motif. From Shiva's dynamical posture and the beat of his movements to the flames encircling him and the figure under his feet, apiece facet was imbued with layers of meaning that extended beyond the visual realm. For instance, the cosmic light that envelops Shiva signifies the cyclical nature of time and the simultaneous processes of creation and disintegration. The dwarf fig under Shiva's foot represents ignorance and restriction, symbolizing the ultimate triumph of sapience over ignorance. Coomaraswamy's interpretation delved into the intricate hand gestures (mudras) of Shiva, which convey profound messages. The motion of the raised rightfulness hand, also known as the 'abhaya mudra,' reassures and protects, signifying Shiva's benefaction still amid the demolition. Conversely, the lowered left paw, known as the 'Gaja hasta,' points to Shiva's foot, inviting devotees to seek refuge in the divine amid life's challenges. Coomaraswamy's insight into these gestures transcends very mere physical motions, revealing an unsounded philosophic discourse.

Furthermore, Coomaraswamy's work explored the philosophical concepts encapsulated within the dance's symbolization. He recognized the dance as a representation of the cyclical nature of existence, where birth and death are portions of a larger cosmic rhythm. The dance, for Coomaraswamy, encapsulates the concept of 'Lila,' the divine play, where the creation unfolds in a symmetrical equilibrize of opposing forces. As he puts it: "The conception of the world process as the Lord's pastime or amusement (lila) is also prominent in the Shaiva scriptures" (62). Shiva's dance becomes the ultimate look of godlike artistry, orchestrating the grand narrative of conception and dissolution. In essence, Ananda Coomaraswamy's interpretation of *The Dance of Shiva* is a testament to his multifaceted expertise in art, symbolization, and philosophy. Through his insights, he unraveled the layers of meaning concealed within the dance's artistic signifier, a gateway to the profound philosophical concepts that underlie Hindu cosmology. Coomaraswamy's legacy endures as a seed of inspiration for scholars, artists, and seekers likewise, perpetuating the exploration of the dance's symbolism and its transformative implications.

Philosophical Implications of "*The Dance of Shiva*":

AnandaCoomaraswamy's profound interpretation of *The Dance of Shiva* extends beyond the realm of art and symbolization, delving late into the philosophic implications

that this iconic representation holds within the framework of Hindu thought. Coomaraswamy's analysis sheds light on the dance's role as a metaphor for profound metaphysical and very spiritual truths, offering insights that resonate with the nucleus tenets of Hindu philosophy. At the heart of Coomaraswamy's interpretation lies the construct of duality and harmony. The dance, with its dynamic interplay of creation and destruction, lifetime and decease, reflects the inherent dualistic nature of existence. Shiva's simultaneous incarnation of the creator and the destroyer highlights the fragile equilibrium that underlies the cosmos. This duality, as lighted by Coomaraswamy, is not a conflict but a symmetrical interdependence, where opposing forces coalesce to defend cosmic balance.As he writes: "The place where the ego is destroyed signifies the state where illusion and deeds are burnt away: that is the crematorium, the burning-ground where ShriNatarajadances, and whence He is named Sudalaiyadi, Dancer of the burning-ground" (61).

The construct of time as cyclical rather than linear takes center stage in Coomaraswamy's analysis. The dance becomes a visual representation of the eternal cycles of nativity, death, and renaissance, where the beat of creation and disintegration follows a timeless pattern. This cyclical view of time echoes Hindu philosophy's understanding of reality as a perpetual cycle of cosmic phases, each connected to the others, creating a grand tapestry of existence. Furthermore, Coomaraswamy's interpretation touches on the dance's invitation to bosom the transitory nature of life. As he writes: "The general result of this interpretation of the arch is, then, that it represents matter, nature, Prakriti; the contained splendor, Shiva dancing within and touching the arch with head, hands and feet, is the universal omnipresent Spirit (Purusha)" (64). The flames that enclose Shiva symbolize not only destruction but also the purification and transformation that rise from the quiet round of change. The dance becomes a poignant reminder that life's impermanence should not be feared but rather embraced as an indispensable facet of the cosmic dance. This perspective resonates with Hindu teachings on detachment and the chase of spiritual growth beyond the transient realm.

Coomaraswamy's exploration of Shiva's gestures (mudras) infuses the dance with philosophical import. The 'abhaya mudra,' for instance, symbolizes fearlessness and protection, suggesting that when one recognizes the cosmic dance and its inherent ordering, fear dissipates. Similarly, the 'gaja hasta,' inviting devotees to seek refuge at Shiva's feet, underscores the thought of surrendering to the divine plan, a key construct in Hindu philosophy that emphasizes relinquishing the ego's control in favour of aligning with the universe's flow.

Research Findings:

An in-depth analysis of Ananda Coomaraswamy's reading of *The Dance of Shiva* revealed a very rich tapestry of symbolism embedded within the depiction. Coomaraswamy's scrupulous examination of Shiva's gestures (mudras) also uncovered their thoughtful philosophic implications. The 'abhaya mudra,' conveying bravery, emerged as a virile symbolization of divine protection even amid the cosmic dance of destruction. The 'Gaja hasta,' inviting devotees to seek sanctuary, held implications of cede and alignment with the universe's beat. These gestures transcend their physical form to get gateways to philosophic reflection. The research findings reinforced Coomaraswamy's assertion that the dance's symbolization transcends cultural and very spiritual boundaries. The philosophic ideas embedded within the depiction bear universal implications, resonating with individuals regardless of their cultural background. The

dance's characterization of cosmic truths invites seekers to engage in philosophic rumination and self-discovery. This article highlights Coomaraswamy's emphasis on the dance's delegacy of the cyclical clip, a nucleus conception in Hindu philosophy. Shiva's dance mirrors the eternal cycles of conception and dissolution, where lifetime and decease are harmoniously interwoven. Coomaraswamy's analysis lighted the dance's invitation to comprehend life's impermanence not as a germ of reverence but as a chance for shift. By very piquant with the dance's symbolism, individuals are encouraged to detach from the material world and embrace the spiritual journey beyond momentary realities.

Conclusion:

In the intricate dance of symbolism and philosophy, Ananda Coomaraswamy's interpretation of *The Dance of Shiva* has unveiled a realm of profound insights that transcend artistic representation. Through his meticulous analysis, Coomaraswamy revealed the layers of meaning within Shiva's cosmic dance, inviting us to explore the harmonious interplay of creation and destruction, the cyclical nature of time, and the pursuit of balance amidst duality. His interpretation resonates as a powerful reminder of the impermanence of existence and the transformative potential within change. This research journey has illuminated the enduring relevance of Coomaraswamy's work, as his insights continue to inspire scholars, artists, and seekers alike. *The Dance of Shiva* stands as a timeless embodiment of Hindu cosmology's profound wisdom, inviting us to engage in philosophical contemplation, embrace life's rhythm, and seek unity within the dance of existence.

References:

1. Coomaraswamy, Ananda. K. *The Dance of Siva: Fourteen Indian Essays.* The Sunwise Turn, Inc.,1918.
2. Denzin, Norman K., and Yvonna S. Lincoln. *The SAGE Handbook of Qualitative Research.* Sage Publications, 2011.
3. Eck, Diana L. Darsan. *Seeing the Divine Image in India.*Columbia University Press, 2003.
4. Kramrisch, Stella. *The Hindu Temple.*Vol. 1, MotilalBanarsidass, 1981.
5. Malhotra, Rajiv. *Being Different: An Indian Challenge to Western Universalism.* Harper Collins India, 2016.
6. Smith, David. *Review of Ananda K. Coomaraswamy's 'The Dance of Shiva'.* Journal of the American Oriental Society, vol. 116, no. 4, 1996, pp. 765-767.
7. Zimmer, Heinrich. *Philosophies of India.*Bollingen Foundation, 1951.

पेपर कटिंग/स्टेंसिल साँझी कला– समीक्षात्मक अध्ययन (कलात्मक प्रभाव, नवीन प्रयोग एवं संभावनाएँ)

अपराजिता त्रिपाठी*

सारांश

साँझी कला मुख्यतः तीन रूपों में दृष्टिगत होती है– ग्रामीण, देवालयी एवं पेपर कटिंग। पूर्व में पेपर अथवा स्टेंसिल साँझी का प्रयोग देवालयों में साँझी बनाने हेतु एक साधन के रूप में अथवा मेंहदी व बिंदी आदि के खाकों के रूप में प्रचलित था। परन्तु समय के साथ पेपर कटिंग साँझी कला ने एक विस्तृत एवं मौलिक स्वरूप ग्रहण किया है तथा पारंपरिक विषयों, जिन पर मुगल कला सन्दर्भों का प्रभाव भी दिखाई देता है, आज समकालीन विषयों और संभावनाओं को तलाश रहे हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्तमान परिदृश्य में पेपर–कटिंग साँझी कला के विकसित और परिवर्तित स्वरूप के साथ उसके प्रारम्भिक स्वरूप एवं कलात्मक प्रभावों का समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द : *साँझी, पेपर कटिंग, स्टेंसिल, खाका, समकालीन।*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लिए द्वितीयक स्रोतों से सहायता ली गई है ।*

पृष्ठभूमि– साँझी 'साँझ अथवा संध्या' शब्द से उद्धृत है। लोक मान्यता के अनुसार द्वापरयुग में कृष्ण जब संध्या समय गौएँ चराकर लौटते थे तब राधा अपनी सखियों सहित पुष्पों आदि से सुंदर साँझी की रचना कर उन्हें प्रसन्न करने अथवा रिझाने का प्रयास करती थीं। कालान्तर में यही प्रथा भक्ति भाव और सेवा के रूप में वैष्णव भक्तों द्वारा मंदिरों में प्रारम्भ हुई। साँझी 'संध्या' शब्द से बना है। संस्कृत के संधि शब्द का अर्थ मेल, मिला एवं मिलन आदि विविध अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। 'संधि' शब्द से ही 'संध्या' शब्द बना। संध्या का अर्थ दो कालों के मिलन का समय है। संध्या शब्द दिन के पश्चात सांझ की बेला के लिए रूढ़ होकर प्रयुक्त होता है। लोक में ऐसी मान्यता है, प्रचलित है, यही संध्या शब्द तद्भव रूप में साँझी बन गया।[1]

स्टेंसिल का अर्थ एवं संदर्भ–

देवालयों में बनने वाली साँझी रचना में कागज के खाकों अथवा पेपर कटिंग्स की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन्हें 'स्टेंसिल' भी कहा जाता है। स्टेंसिल के ऊपर ही सूखे रंगों का छिड़काव करते हुए ठोस धरातल अथवा जल पर साँझी बनाई जाती है। ये स्टेंसिल्स अथवा खाके कागज के बने होते हैं जिनके माध्यम से भिन्न–भिन्न आकारों को धरातल पर रखकर सुन्दर कलात्मक साँझी का निर्माण किया जाता है। हालाँकि इस सम्बन्ध में कलाकारों का मत है कि इसे स्टेंसिल की संज्ञा देना उचित नहीं है।

अंग्रेजी–हिन्दी–शब्दकोष के अनुसार, स्टेंसिल का अर्थ ''स्टेंसिल– किसी सतह पर डिजाइन बनाने के लिए प्रयुक्त कागज, प्लास्टिक या धातु का टुकड़ा'' होता है। स्टेंसिल के प्रारंभिक साक्ष्य के उदाहरण हमें लगभग सैंतीस हजार साल पूर्व स्पेन में निएण्डरथल मानव द्वारा गुफा चित्रों के रूप में प्राप्त होता है। ये चित्र मनुष्य के हाथ के छापों के रूप में प्राप्त होते हैं जो केवल एक बाह्य रेखा के रूप में दृष्टिगत होते हैं। (देखें–चित्र सं0 1) अनुमानतः आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने हाथ को दीवार पर रखकर किसी रंग के चूर्ण को फूँक मारकर किनारों पर फैला दिया होगा जिससे हाथ की एक बाह्य आकृति बन गई। समय के साथ स्टेंसिल का प्रसार पूरे विश्व में हुआ। मिस्त्र के मकबरों आदि की दीवारों पर तथा पोम्पेई शहर की दीवारों पर अनेक अलंकरण स्टेंसिल के रूप में प्राप्त होते हैं। पेपर आधारित स्टेंसिल का विकास सर्वप्रथम 105 ई0 पू0 चीनी कलाकारों द्वारा किया गया।[2]

---

*शोध छात्रा (पीएच.डी.), कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय

चित्र संख्या–1

पेपर कटिंग/स्टेंसिल का प्रारम्भिक स्वरूप–

ब्रज में पेपर के खाके बनाने का क्रम कई वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ परन्तु तब यह खाके देवालयों में बनने वाली सूखे रंगों की साँझी में प्रयोग किया जाता था। प्रारम्भ में ब्रज के देवालयों में सूखे रंगों से साँझी बनने की प्रथा प्रारम्भ हुई जिसमें आकृतियों के निर्माण हेतु कागज के बने खाकों को रखकर उस पर रंगों को छानकर साँझी बनाई जाती थी। धीरे–धीरे समय के साथ खाका काटने वाले कलाकारों ने अपने खाकों के साथ कुछ प्रयोग किए। पहले महिलाओं को मेहंदी लगाने तथा उसमें डिजाइन आदि बनाने में काफी मशक्कत करनी पड़ती थी जिसके लिए इन कागजों के माध्यम से विभिन्न डिजाइन काट कर हाथ पर रखकर सुन्दर मेहंदी के डिजाइन बनाना आसान हो गया। मेहंदी के डिजाइनों के साथ–साथ बिन्दी के डिजाइन्स का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ। साँझी पेपर कटिंग के कलाकार मोहन वर्मा बताते हैं कि ''पहले पेपर कटिंग केवल मंदिरों में साँझी बनाने के लिए बनाई जाती थी और हमारे दादा जी, पिता जी साँझी के खाके बनाते थे और मंदिरों में सेवा भाव से साँझी बनाने जाया करते थे। लेकिन धीरे धीरे इसने एक व्यवसाय का रूप ले लिया। उच्च समाज वर्ग की महिलाओं में मेहंदी व विभिन्न प्रकार की बिंदी लगाने का प्रचलन चलता था जो हमारे दादा जी व पिता जी मेहंदी और बिंदी के डिजाइनदार खाके काटने लगे। और, लोग उन्हें बिन्दीवाला के नाम से जानते थे परन्तु वह कहते हैं कि तब हमें यह पता नहीं था कि यह भी इतनी महत्वपूर्ण कला है।'' मोहन वर्मा जी के अनुसार ''उस समय लगभग हर व्यक्ति ही पेपर–कटिंग जानता था और परन्तु अब यह कला कुछ लोगों तक सिमट कर रह गई है।'' मेहंदी की डिजाइनों में विभिन्न अवसरों पर लगाई जाने वाली मेहंदी के अनुसार डिजाइन बनाए जाते थे, जैसे– शादी–विवाह आदि पर लगाई जाने वाली मेहंदी में कलश, पान की आकृति, फूल, बारह तोते वाली डिजाइन, स्वास्तिक, मछली, विभिन्न बेल–बूटों आदि के खाके बनाए जाते थे। इसके अलावा अंगुलियों पर डिजाइन के लिए अलग खाके तैयार किए जाते थे। अंगुलियों पर बनाई जाने वाली डिजाइन भी विभिन्न विषयों पर आधारित होती थी। इन खाकों को पहले हाथ पर रखते थे फिर उस पर मेंहदी का लेप लगाकर कागज को सावधानी से उठा लेते थे जिससे खाके की डिजाइन हाथ पर छप जाती थी। पतले कागज पर महीन बेल बूटों की कटिंग मेहंदी को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने के लिए पर्याप्त थी। (देखें चित्र सं0 2 व 3)

चित्र संख्या–2 एवं 3

पेपर कटिंग/स्टेंसिल साँझी में मुगल विषय का प्रभाव–

मनमोहन पारिक के अनुसार ''ब्रजमंडल में साँझी की परंपरा कृष्णकालीन है। 16वीं शताब्दी के बाद से यह मनोरथ मंदिर और देवालयों में पल्लवित हुआ।[3] यह वह समय था जब ब्रज में अकबर जैसे उदार शासकों का काल आया जिसमें सभी धर्म संप्रदायों की उन्नति हुई। ''फलतः हिन्दू धर्म, हिन्दू कला, हिन्दू साहित्य और हिन्दू विज्ञान ने मुस्लिम तत्वों को ही नहीं अपितु हिन्दू संस्कृति की भावना और हिन्दू मनीषा की प्रेरणा में भी परिवर्तन हो गया। दूसरी ओर, मुसलमानों ने जीवन के हर क्षेत्र में खुले हृदय से आदान प्रदान किया।[4] इस समय कला की दृष्टि से भी ईरानी एवं भारतीय कला एवं संस्कृतियों के समन्वय से एक नई प्रकार की कला का सूत्रपात हो रहा था। इन सभी प्रक्रियाओं के सहज परिणामस्वरूप प्रथम दृष्टि में सर्वाधिक ईरानी कला एवं संस्कृति का का प्रभाव भारतीय वास्तु एवं शिल्प पर दिखाई देता है। प्रभावस्वरूप साँझी कला में भी ईरानी तत्वों का समावेश होना स्वाभाविक था। उदाहरणस्वरूप– विभिन्न प्रकार की महीन जालियों की कटिंग जो कि ईरानी अथवा मुगल कला का महत्वपूर्ण तत्व है तथा विभिन्न प्रकार के बेल–बूटे आदि हमें मुगल कला के प्रभाव को रेखांकित करते हैं। (देखें चित्र सं04)

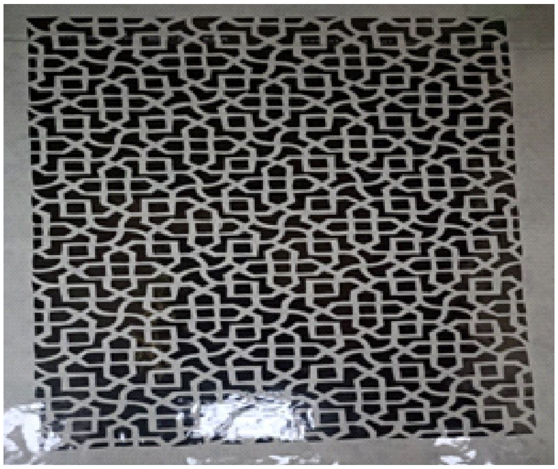

चित्र सं0 4 (स्रोत– स्वतः छायाचित्र)

पेपर कटिंग / स्टेंसिल का परिवर्तित स्वरूप–

धीरे–धीरे समय के साथ इनका महत्त्व कम होता गया और खाकों का स्थान पहले पैकेट की पाउडर वाली मेंहदियों ने लिया जिन्हें पीसने की आवश्यकता नहीं होती थी और लगाने में अधिक सुविधाजनक होती थी। बाद में इन मेंहदियों से बनने वाले घोल को प्लास्टिक की पन्नियों से कीप बनाकर आसानी से डिजाइन बनाए जाने लगे। तत्पश्चात् इसमें और बदलाव हुआ और रेडीमेड कीप की मेहंदियों ने इसे और सुविधाजनक कर दिया जिससे इन खाकों का विलुप्त होना स्वाभाविक था। हालाँकि इन खाकों की माँग सामान्यतः उच्च वर्ग की महिलाओं के द्वारा अधिक थी। साँझी के पारंपरिक खाके श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं पर आधारित होते हैं। साँझी कलाकार मोहन वर्मा जी अपना चित्र संग्रह दिखाते हुए बताते हैं कि इन लीलाओं में सामान्यतः ''दान लीला, जमुना जी का स्वरूप, नन्दगाँव, नागदहन, रास लीला, गोपी का स्वरूप, चमर वाली गोपी, गोवर्धन लीला, मुखारबिन्द गिरराज जी दर्शन, रासलीला, गौवें और गोपियाँ, काँटा लीला, बगुला वन, मक्खन लीला आदि। वर्तमान में इन पारंपरिक विषयों से अलग समकालीन विषयों पर भी साँझी के खाके बनने लगे हैं जैसे– 'कल्पवृक्ष, पशु पक्षी, विभिन्न प्रकार के लोगो, ज्यामितीय आलेखन, महीन जालियाँ आदि। (देखें–चित्र सं0–5 एवं 6) मेंहदी के डिजाइनों के साथ–साथ बिन्दी के डिजाइन्स का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ। साँझी पेपर कटिंग के कलाकार मोहन वर्मा बताते हैं कि ''पहले पेपर–कटिंग केवल मंदिरों में साँझी बनाने के लिए बनाई जाती थी और हमारे दादा जी–पिता जी साँझी के खाके बनाते थे और मंदिरों में सेवा–भाव से साँझी बनाने जाया करते थे। लेकिन धीरे–धीरे इसने एक व्यवसाय का रूप ले लिया। उच्च समाज वर्ग की महिलाओं में मेहंदी व विभिन्न प्रकार की बिंदी लगाने का प्रचलन था जो हमारे दादा जी व पिता जी मेहंदी और बिंदी के डिजाइनदार खाके काटने लगे। परन्तु साथ ही वह कहते हैं कि तब हमें यह पता नहीं था कि यह भी इतनी महत्वपूर्ण कला है।'' मोहन वर्मा के अनुसार ''उस समय लगभग हर व्यक्ति ही पेपर कटिंग जानता था और परन्तु अब यह कला कुछ लोगों तक सिमट कर रह गई है।'' मेहंदी की डिजाइनों में विभिन्न अवसरों पर लगाई जाने वाली मेहंदी के अनुसार डिजाइन बनाए जाते थे जैसे शादी–विवाह आदि पर लगाई जाने वाली मेहंदी में कलश, पान की आकृति, फूल, बारह तोते वाली डिजाइन, स्वास्तिक, मछली, विभिन्न बेल–बूटों आदि के खाके बनाए जाते थे। इसके अलावा अंगुलियों पर डिजाइन के लिए अलग खाके तैयार किए जाते थे । अंगुलियों पर बनाई जाने वाली डिजाइन भी विभिन्न विषयों पर आधारित होती थी। इन खाकों को पहले हाथ पर रखते थे फिर उस पर मेंहंदी का लेप लगाकर कागज को सावधानी से उठा लेते थे जिससे खाके की डिजाइन हाथ पर छप जाती थी। पतले कागज पर महीन बेल–बूटों की कटिंग मेहंदी को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने के लिए पर्याप्त थी। धीरे–धीरे समय के साथ इनका महत्व कम होता गया और खाकों का स्थान पहले पैकेट की पाउडर वाली मेंहंदियों ने लिया जिन्हें पीसने की आवश्यकता नहीं होती थी और लगाने में अधिक सुविधाजनक होती थी। बाद में इन मेंहदियों से बनने वाले घोल को प्लास्टिक की पन्नियों से कीप बनाकर आसानी से डिजाइन बनाए जाने लगे। तत्पश्चात इसमें और बदलाव हुआ और रेडीमेड कीप की मेहंदियों ने इसे और सुविधाजनक कर दिया जिससे इन खाकों का विलुप्त होना स्वाभाविक था। हालाँकि इन खाकों की माँग सामान्यतः उच्च वर्ग की महिलाओं के द्वारा अधिक थी। वर्तमान में जहाँ विभिन्न प्रकार और विशेषता वाले कागज इन खाकों को बनाने के लिए उपलब्ध है, उस समय सामान्यतः बही के कागज का प्रयोग किया जाता था तथा उसे और अधिक मजबूती प्रदान करने के लिए वार्निश की चपड़ी लगाकर मजबूत कर दिया जाता था।

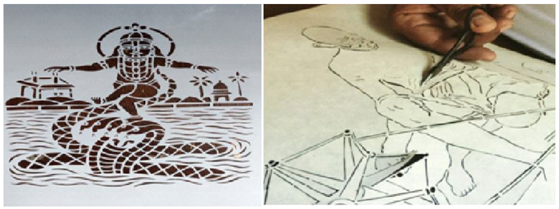

चित्र संख्या–5 व 6 (स्रोत–स्वतः छायाचित्र)

नवीन संभावनाएँ–

सन् 2010 में राष्ट्रमण्डल खेलों में प्रयोग किए जाने वाले पिक्टोग्राम्स (चित्राक्षर) मूल रूप से उत्तर प्रदेश की साँझी स्टेंसिल कला से प्रेरित हैं। (देखें–चित्र सं0 7) इन पिक्टोग्राम्स में स्टेंसिल पर आधारित छह खेलों का प्रदर्शन करते (साइकिलिंग, बैडमिंटन, बॉक्सिंग, हॉकी, लॉन बॉल्स, तीरंदाजी) युवकों का चित्रण किया गया है– (The pictograms for all the 17 sporting discipline that are part of the Commonwealth Games have been inspired by Sanjhi art. इसके अलावा वर्ष 2007 में ध्वनि देसाई द्वारा निर्देशित एक एनिमेशन डॉक्यूमेंट्री फिल्म 'मनपसंद' का निर्माण किया गया था। निरंतर विकास की ओर बढ़ते हुए समाज के बीच साँझी की इस विधा और इसके कलाकारों ने समकालीन परिवर्तनों से कदम से कदम मिलाने की पूरी कोशिश की है, परिणामस्वरूप इसकी लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन बढ़ती दिख रही है।

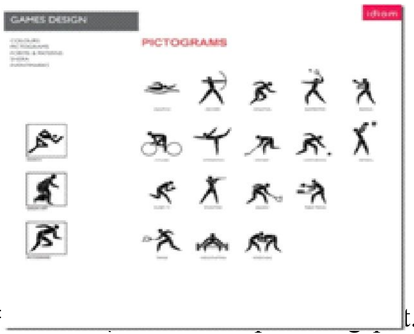

चित्र स t.com)

संदर्भ सूची :

1. ब्रज सलिला–पत्रिका', साँझी अंक, पृ017.
2. alabamachanin.com (On Design : The History Of Stenciling)
3. हिन्दुस्तान–समाचार पत्र, 30 सितम्बर 2016, आगरा, 20वाँ संस्करण
4. दिल्ली सल्तनत, शोध धारा, ISSN-0975-36664, mar.2019,vol.1,page1-4
5. 'Ancient Art find space in Games logo motifs' https://www.hindustantimes.com/delhi/ancient-art-finds-space-in-games-logo-motifs/story-sNFWnR2tuAPx4Hp1oZ8hFI.html

चित्र संदर्भ सूची :

चित्र सं. 1. https://www.istockphoto.com/photos/cave-painting-hand

चित्र सं. 2 एवं 3. संग्रह–श्री मोहन वर्मा (स्टेंसिल कलाकार, वृंदावन)–स्व छायाचित्रित

चित्र सं. 4, 5 एवं 6. संग्रह–श्री मोहन वर्मा (स्टेंसिल कलाकार, वृंदावन)–स्व छायाचित्रित

चित्र संख्या –7 (स्त्रोत– ia.inspirit.blogspot.com)

शास्त्रीय संगीत–साधना में सॉफ्टवेयर की उपयोगिता

सागर शर्मा *

संक्षेप सार

आज यूँ तो सॉफ्टवेयर का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। कोविड–काल में शिक्षा जगत में सॉफ्टवेयर ही एकमात्र विकल्प के रूप में उभर कर सामने आया। संगीत भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। संगीत के शिक्षण–अध्ययन–अध्यापन और साधना में जिन उपकरणों ने अपनी भूमिका निभाई है उनमें मोबाईल सॉफ्टवेयर का अपना विशेष स्थान हैं। प्रस्तुत पत्र में सॉफ्टवेयर की चर्चा करने का प्रयास किया गया है। विचारणीय बिन्दु इस प्रकार हैः–

1. *सॉफ्टवेयर की परिभाषा*
2. *सॉफ्टवेयर का स्वरूप*
3. *सॉफ्टवेयर का क्षेत्र*
4. *सॉफ्टवेयर की उपयोगिता*
5. *सॉफ्टवेयर का संगीत में प्रभाव*

कुंजी शब्द : *सॉफ्टवेयर, संगीत, कम्प्यूटर, मोबाइल*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है ।*

सॉफ्टवेयर की परिभाषा

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक हैं कि सॉफ्टवेयर किसे कहते हैं। सामान्य शब्दों में Program के समूह को सॉफ्टवेयर कहा जाता है। कम्प्यूटर से कार्य संपन्न करवाने के लिए उसे कुछ निर्देश देने होते हैं। इन निर्देशों के समूह को हम कम्प्यूटर प्रोग्राम कहते हैं[1] तथा संबंधित प्रोग्रामों के समूह को 'कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर' कहते हैं। वस्तुतः सॉफ्टवेयर विज्ञान में सॉफ्टवेयर या तंत्रांश (Software) सार्थक क्रमादेशों (institutions) और आवश्यक सूचनाओं का एक ऐसा समूह है जो संगणक (कम्प्यूटर) को यह बताता है कि उसे क्या काम करना है।

सॉफ्टवेयर का स्वरूप

सॉफ्टवेयर के स्वरूप को जानने के लिए कम्प्यूटर को जानना आवश्यक है क्योंकि सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर का ही अंग होता है। कम्प्यूटर के दो घटक होते हैं, प्रथम Hardware, द्वितीय सॉफ्टवेयर। Hardware कम्प्यूटर का बाह्य ढांचा होता है जो स्थूल रूप में दिखाई देता है। इसका स्थूल आकार प्रारंभ में लगभग डेढ फूट लम्बा और दस इंचा चौड़ा और धातु का बना होता था, इसके साथ Keyboard, Mouse और Display Screen अलग होती थी। कालान्तर में आकार कम हुआ और ढांचा Plastic और Display Screen के भी कई आकार दिखाई देने लगे। कम्प्यूटर को Desktop भी कहते थे और Desktop की जगह लैपटॉप आया जिसमें Screen और Keyboard अंगभूत होने लगे। Mouse का प्रयोग अवश्य अलग था। तदन्तर टैब (Tablet) प्रचार में आया जिसके Keyboard, Mouse सब Touchscreen से हो गया और आधुनिक समय में मोबाईल के रूप में उपलब्ध है जो आकार में छोटा और Handy है; मोबाईल को 'हेंडसेट' भी कहते हैं।

उसी प्रकार सॉफ्टवेयर का आंतरिक ढांचा, जिसे हम छू नहीं सकते और देख नहीं सकते क्योंकि सॉफ्टवेयर का कोई भौतिक रूप नहीं होता, यह आभासी होता है जिसे हम समझ और आभास कर सकते हैं।[2] सॉफ्टवेयर कई प्रकार के होते हैं, यह कम्प्यूटर की मेमरी (Memory) Processor के हिसाब से चलते हैं। सॉफ्टवेयर उन प्रोग्राम को कहते हैं जो इनमें इंस्टॉल होते हैं और विशेष प्रकार के कार्य करते हैं। समय के अनुसार इनमें भी अन्तर आए हैं। पूर्व में सॉफ्टवेयर विभिन्न प्रकार के 2 GB या 4 GB का होता था, उस सॉफ्टवेयर को चलाने में अधिक

*शोध–छात्र, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

समय लगता था। सॉफ्टवेयर में Generation आती है– पूर्व में First Generation आई, फिर लैपटॉप में 5जी Gen, 6 Gen आई, और कलान्तर ने 9–10जी Generation भी आई । आज यह 12जी Generation तक विकसित हो चुकी है और इसी तरह उदाहरण के लिए Windows कम्प्यूटर का Operating software है, यह भी Windows, Window XP, Window 5, कालान्तर में 7, 8, 9, 10 और आज 12 मॉडल नं. तक आ चुकी है। टैब में Android सॉफ्टवेयर विकसित हो गया था जो आज मोबाईल में देखने को भी मिलता है।

सॉफ्टवेयर का क्षेत्र

सॉफ्टवेयर का उपयोग सामान्य जीवन से संगीत अध्ययन तक हो रहा है। आज हर छोटी से छोटी दैनिक आवश्यकता Online के माध्यम से ही पूरी की जा रही हैं । सामान्यतया Billing, Data Storage, Documents, Digital Payments, Online filling of forms आदि सॉफ्टवेयर के माध्यम से ही होते हैं। दुकानदारों को Bill के लिए Datasheet या Excel सॉफ्टवेयर का प्रयोग करके Bill बनाना होता है। Digital Payments का आज अधिक प्रचार है, कोई भी Payment हो, जिसे Paytm, Google Pay आदि से की जा सकती है। यह मोबाईल से होती है। ऐसे ही अन्य कई प्रकार के सॉफ्टवेयर Online प्रयोग किए जाते है। आज भोजन भी Online order द्वारा प्राप्त किया जाता है या घर का कोई भी सामान या कहीं जाना हो तो Zomato, Swiggy, Uber, E-ticket, Booking Rail ticket, इन सभी को हर व्यक्ति आज प्रयोग कर रहा है। ऐसे ही संगीत में साधक, कलाकार, अध्यापक, कई संगीत सॉफ्टवेयर का प्रयोग कर रहे हैं। आज विद्यालयों से विश्वविद्यालयों तक Classroom Teaching हो रही है जिसका माध्यम सॉफ्टवेयर है। इनका सॉफ्टवेयर, –Google Meet, Zoom आदि हैं। विद्यार्थी घर से ही अपने लैपटॉप, कम्प्यूटर, मोबाईल से दिखा ले रहे हैं और संगीत में Online कक्षा होती है, हर साज़ विद्यार्थी के पास होना कठिन है पर आज सॉफ्टवेयर के कारण विद्यार्थी को सहायता मिली। जैसे Ishala यह Application Android on IOS में भी प्राप्त होती है, इसमें एक साथ तबला, तानपूरा, स्वरमंडल को अपने राग के अनुसार चलाया जाता है। इसे Bluetooth Speaker से जोड़कर साधक अपनी कक्षा और साधना करता है। ऐसे ही और भी सॉफ्टवेयर है, जैसे– I-tabla, Tanpura Pro, Tanpura Droid आदि। इन सॉफ्टवेयर का केवल विद्यार्थी ही नहीं, अध्यापक, कलाकार भी अधिक मात्रा में प्रयोग कर रहे हैं। Music Recording Software, जैसे– Tuitorial Software, Drill Practise, Sequence Software आदि संगीत सॉफ्टवेयर प्राप्त होते है।[3]

सॉफ्टवेयर की उपयोगिता :

सॉफ्टवेयर का प्रयोग हर जगह खूब हो रहा है और सॉफ्टवेयर को छोटे से लेकर बड़े व्यक्ति तक प्रयोग कर रहे हैं। चाहे वो कोई Digital Software हो या कक्षा के लिए विद्यार्थी द्वारा प्रयोग होने वाला सॉफ्टवेयर। जैसा कि पूर्व में ही चर्चा की गई है कि भोजन से लेकर कहीं जाने तक, सब कुछ Online सॉफ्टवेयर के माध्यम से किया जा रहा है। संगीत में संगीत सॉफ्टवेयर का प्रयोग विद्यार्थी अपने घंटों रियाज़ के लिए करता है, जहाँ पहले साधना करने के लिए संगतकार को बुलाना पड़ता था, वहीं आज इन सॉफ्टवेयर के माध्यम से विद्यार्थी घंटों साधना कर रहे हैं। सॉफ्टवेयर पर ही रागों का परिचय भी मिल जाता है। संगीत में youtube की बहुत बड़ी भूमिका है। पुराने उस्तादों की recording आज हमें youtube पर प्राप्त हो जाती है। बहुत विद्यालय संगीत विद्या के सबक youtube पर अपलोड करते हैं जिससे विद्यार्थी उसका लाभ ले सकते हैं। यह प्रक्रिया भी सॉफ्टवेयर के माध्यम से ही संम्भव है।[4] साज़ को मिलाना, साज़ के बारे में जानना, इन सब में भी सॉफ्टवेयर का प्रयोग आज कर सकते हैं। कलाकार भी इन सॉफ्टवेयर का प्रदर्शन के समय प्रयोग करते हैं जिसे वे Bluetooth speaker पर लगा कर Mic से जोड़ देते हैं जिससे Manual तानपूरे के साथ ये electronic सॉफ्टवेयर तानपूरा लगाने से मंच पर तानपूरे की आवाज़ और भी भर जाती है । स्वरमंडल का भी Online सॉफ्टवेयर प्रयोग करते है। इससे कई लाभ प्राप्त होते हैं।

सोफ्टवेयर का संगीत में प्रभाव

संगीत में सॉफ्टवेयर का अधिक प्रभाव है। आज संगीत का विद्यार्थी कहीं से भी सीख सकता है और साधना (रियाज) के भी कई प्रकार के सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, उनका प्रयोग कर सकता है। सॉफ्टवेयर के माध्यम से किसी भी कलाकार को सुन सकते हैं और कई प्रकार के

रागों और उसकी बन्दिश, तान व आलाप को बड़े ही अच्छे प्रकार से ग्रहण कर सकता है लेकिन इन सब सुविधों का लाभ उठाने में बहुत सी कठिनाईयाँ भी देखने को मिलती है क्योंकि इन सब का लाभ वही उठा सकता हैं जिनको इन सॉफ्टवेयर्स का ज्ञान होगा। हर कोई इन सॉफ्टवेयर को नहीं चला सकते। तो इन सब सॉफ्टवेयर को चलाने के लिए पहले इसका ज्ञान लेना अधिक महत्व रखता है।[5] संगीत में सॉफ्टवेयर के अधिक प्रयोग के कारण सॉफ्टवेयर को चलाने के लिए बहुत से Lesson आज प्राप्त होते है। विद्यालयों में भी कम्प्यूटर के Course करवाए जाते हैं। सॉफ्टवेयर से सीखने में अनेक कठिनाईयाँ भी हैं, जैसे– जो गा रहे हैं वह ठीक है या नहीं, जिनके सबक सुन रहे हैं वह सही हैं या गलत; क्योंकि अभी भी कलाकार या आचार्य आज इनका इस्तेमाल नहीं कर पा रहें है क्योंकि इन सॉफ्टवेयरर्स को चलाने का पूर्व ज्ञान उन्हें नहीं है। यह सॉफ्टवेयर के कुछ मानदण्ड होने आवश्यक हैं। इन सब को सीखने की सुविधा और होनी चाहिए ताकि अध्यापक, कलाकार, विद्यार्थी आदि इसका इस्तेमाल कर सकें। उन्हें जानना बहुत आवश्यक है क्योंकि संगीत पर इन सॉफ्टवेयर का बहुत प्रभाव हुआ है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हमने कर्तव्य–बिन्दुओं को यहाँ स्पर्श किया है। इस दिशा में अध्ययन करना और सॉफ्टवेयर के उपकरणों को भली प्रकार से समझना और उनका सदुपयोग करना अति आवश्यक है। सॉफ्टवेयर के गहन अध्ययन और ज्ञान से जहाँ संगीत में कई विधाओं को संरक्षण प्राप्त होगा, वहीं संगीत का प्रचार–प्रसार भी अधिक होगा और शोध के लिए भी अनेक सम्भावनाएँ प्राप्त होंगी।

सन्दर्भ सूची :

1. www.wikipedia.org
2. information technology tools and Network Basics
3. Music software in the technology integrated Music Education (Seven Nart)
4. www.Brainlyquote.com/Topics/Technology
5. www.google.com

डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर द्वारा वाचित अभिलेखों में उल्लिखित प्राचीन भारतीय राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन

उत्कर्ष राय*

सारांश

इतिहास लेखन की दृष्टि से पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य दोनों समान रूप से उपयोगी हैं, तथापि पुरातात्विक साक्ष्य सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु अभिलेख अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये समकालीन होते हैं। इनके अंतर्गत विशिष्ट ऐतिहासिक जानकारियाँ संग्रहित होती हैं। डॉ० वि० श्री० वाकणकर तीसरी–दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर उन्नीसवीं सदी तक के 250 से अधिक अभिलेखों का गहन अध्ययन कर प्रामाणिक तथ्यों को प्रकाश में लाये, जिनसे भारतीय इतिहास के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा। प्रस्तुत शोधपत्र में डॉ० वि० श्री० वाकणकर द्वारा संकलित एवं वाचित अभिलेखों में से चयनित महत्वपूर्ण अभिलेखों में वर्णित तथ्यों के आलोक में प्राचीन भारतीय राजनैतिक इतिहास को निरूपित किया गया है।

मुख्य शब्द : *अभिलेख, उज्जैन, विजय, औलिकर, राज्य, वाकणकर*

शोध प्रविधि : *प्रस्तुत शोध–पत्र में ऐतिहासिक शोध–पद्धति के साथ ही कई द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।*

परिचय– डॉ० वाकणकर एक प्रसिद्ध अभिलेखशास्त्री एवं लिपिविद थे। उनके द्वारा स्थापित वाकणकर भारती संस्कृति अन्वेषण न्यास, उज्जैन के अंर्तगत वाकणकर शोध संस्थान में 140 से अधिक अभिलेखों की प्रतियाँ संग्रहित हैं। स्व–पुरातात्विक शोध के दौरान अनेक स्थानों से उन्होंने इनकी प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं, किंतु अपरिहार्य कारणों से ये अभिलेख वर्तमान में वाकणकर संग्रहालय में प्रदर्शित नहीं हैं। इस संग्रह में तीसरी–दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के काल तक के अभिलेख हैं। इसके अतिरिक्त वाकणकर द्वारा खोजे गये कुछ अन्य अभिलेख लेख विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के पुरातत्त्व संग्रहालय में संरक्षित हैं। इनमें से अधिकांश अभिलेखों का उन्होंने ही प्रथमतः वाचन किया और उन पर उत्कृष्ट लेखों का प्रकाशन किया तथा संगोष्ठियों, महासम्मेलनों आदि में भी प्रस्तुत किया।

डॉ० वाकणकर ने शताधिक अभिलेखों को संकलित कर उद्वाचन किया, जिनमें से राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण अभिलेखों की सारिणी निम्नलिखित है[1]–

क्रम सं.	अभिलेख का नाम	विषयवस्तु के आधार पर प्रकार	प्राप्ति स्थान	भाषा एवं लिपि	तिथिक्रम	टिप्पणी
1	अँवलेश्वर स्तम्भशीर्ष के अधोभाग का लेख	दान लेख	प्रतापगढ़ जनपद, राजस्थान	संस्कृत, ब्राह्मी	तिथिविहीन, अनुमानतः ईसा पूर्व प्रथम सदी	महत्वपूर्ण नामोल्लेख
2	बहार कोटरा प्रस्तर लेख	अज्ञात	नरसिंहगढ़ राजगढ़	प्राकृत, ब्राह्मी	तिथिविहीन	मथुरा के शक–क्षत्रप शासक रजुबुल का नामोल्लेख

*शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ,वाराणसी

3	खेतखेड़ी शिलालेख	जनहित से सम्बन्धित लेख	शाजापुर	संस्कृत ब्राह्मी	207 शक संवत् अर्थात् 285 ई.	विश्वसिंह नामक नये शक शासक के विषय में जानकारी
4	औलिकर शासक नरवर्मा का बिहार कोटरा शिलालेख	धार्मिक लेख	नरसिंहगढ़, राजगढ़	संस्कृत, ब्राह्मी	संबत 474 (कृत / मालव) अर्थात 417–418 ई.	औलिकरों का राज्य भिक्षुओं के निवास हेतु लयण निर्माण
5	कुमार वर्मा का खण्डित शिलालेख	राजनैतिक लेख	मंदसौर	संस्कृत, ब्राह्मी	तिथिविहीन, अनुमानतः पाँचवी सदी ई०	औलिकर वंशावली, वापी निर्माण की चर्चा
6.	औलिकर शासक प्रकश धर्मा का रस्थल शिलालेख	प्रशस्ति लेख	मंदसौर	संस्कृत, ब्राह्मी	मालव संवत 572 अर्थात् 515 ई.	औलिकर वंशी कई प्रतापी राजाओं का गौरवशाली वर्णन, सरोवर, मंदिर एक धर्मशाला निर्माण का जिक्र
7	अपराजितवर्द्धन का नरसिंहगढ़ हिंगलाज माता शिलालेख	दान लेख	नरसिंहगढ़, राजगढ़	संस्कृत, ब्राह्मी	तिथिविहीन, अनुमानतः छठीं सदी ई.	दो मोखरी नृपतियों अपराजितवर्द्धन एवं त्रैलोक्यवर्द्धन का जिक्र, बौद्ध महाविहार का निर्माण
8	वल्ख नरेशों महाराज भुलुण्ड, स्वामिदास, रूदद्रस भट्टारक तथा नामभट्ट के बाग से प्राप्त 23 ताम्रपत्र	दान लेख	धार	संस्कृत,	कलचुरी संवत 47 से 134 अर्थात् 296 ई. से 383 ई. तक	समस्त दानपत्रों में मुख्यतः भूमिदान की चर्चा है, भूमि का दान या तो किसी ब्राह्मण या ब्राह्मण समूह को अथवा देवी प्रहार के रूप में किसी देवता हेतु प्रदान किया गया है ।
9	राष्ट्रकूट नृपति अमोघवर्षवल्लभ नरेन्द्र देव का ओझर ताम्रपत्र	प्रशस्ति लेख	खरगोन जनपद	संस्कृत, नागरी	शक संवत 744 अर्थात 822 ई.	अमोघवर्ष प्रथम की उपाधियों का उल्लेख, विजयों का विस्तृत वर्णन, अंत में अमोघवर्ष प्रथम द्वारा ब्राह्मण श्री नागभट्ट को ग्रामदान का जिक्र
10	सीयक द्वितीय का नागदा ताम्रपत्र	राजनैतिक लेख	उज्जैन	संस्कृत, नागरी	संवत 1026 (कृत / मालव / विक्रम) अर्थात् 969	परमारों की उत्पत्ति का सीयक की उपाधियों की चर्चा, महादेव नामक ब्राह्मण को अग्रहार ग्राम दान

11	राजा भोज का महाकाल अभिलेख	धार्मिक लेख	उज्जैन	संस्कृत, देवनागरी	तिथिविहीन, अनुमानतः ग्यारहवीं सदी ई.	परमार नृपति भोजदेव द्वारा महमूद विजय के उपरांत महाकाल की आराधना का उल्लेख
12	निरवाण–नारायण (नरवर्मा) का महाकाल मंदिर प्रस्तर लेख	प्रशस्ति लेख	उज्जैन	संस्कृत, नागरी	तिथिविहीन, अनुमानतः बारहवीं सदी का प्रारंभ	केसी नृपति द्वारा अपनी विजयी सेना सहित उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में सुदूर लंका तक जाने का वर्णन है।
13	जयसिंह चौलुक्य सिद्धराज का महाकाल अभिलेख	प्रशस्ति लेख	उज्जैन	संस्कृत, नागरी	संवत 1195 (कृत / विक्रम) अर्थात 1138 ई.	मालवा के परमार शासक यशोवर्मा पर जयसिंह सिद्धराज की विजय की चर्चा
14	श्री रणरंगमलल का खंडित शिलालेख	प्रशस्ति लेख	उज्जैन	प्राकृत, नागरी	तिथिविहीन, अनुमानतः ग्यारहवीं शती ई. का पूर्वार्द्ध	परमार नृपति भोज (रणरंगमल्ल) की कीर्ति, ऊण मंडल तथा खर्जूरी विटवर्धक वंश का उल्लेख
15.	देवपालकलीन दोतरु	दान लेख	बड़नगर, उज्जैन	संस्कृत, परमार कालीन नागरी	संवत 1285 (मालव / विक्रम) अर्थात 1228 ई.	देवपाल की माता सल्लक्षण देवी द्वारा पगारा परगना के खलि ग्राम के अन्तर्गत 32 निवर्तन भूमिदान देने का उल्लेख
16.	चौबीस खम्भा अपूर्ण लेख	प्रशस्ति लेख	उज्जैन	प्राकृत, देवनागरी	तिथिविहीन, अनुमानतः संवत बारहवीं शती	द्रोणवंशी विज्ज सिंह की प्रशस्ति, तुरुष्क विजय पर्व का जिक्र, कई नामोल्लेख
17.	भाव के बाड़े से प्राप्त खंडित शिलालेख	राजनैतिक लेख	उज्जैन	संस्कृत, नागरी	तिथिविहीन, अनुमानतः संवत बारहवीं शती	द्रोणवैरी का जिक्र, द्रोणवंशी विज्ज सिंह पर विजय का संकेत

राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन

प्रतापगढ़, राजस्थान के अँवलेश्वर स्तंभशीर्ष अधोभाग के तिथिविहीन लेख के दायें भाग में विक्रमादित्य नाम, राज्ञः, भगवतेन हरति एवं जलाशय तथा बांये भाग में राजा श्री पंथान, श्रेणी, पृण द्वारा प्रदत्त दान, भगवत तथा दशपुर (वर्तमान मंदसौर) नामोल्लेख उत्कीर्ण है। राजा विक्रमादित्य का यह संभवतः समकालीन उल्लेख है। बी० एल० राजपुरोहित तथा जे० एन० दुबे इसे विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के स्पष्ट आभिलेखिक प्रमाण के रूप में स्वीकारते हैं। अतः यह लेख विभिन्न साहित्यिक स्रोतों, यथा– गाथा सप्तशती, वृहत्कथा, वृहत्कथामंजरी, कथा

सरित्सागर, सिंहासनद्वात्रिंशक, वेतालपञ्च– विंशति, शुक–सप्तति, भविष्य पुराण, जैन ग्रंथ प्रभावक चरित के कालकाचार्य कथानक आदि में उल्लिखित तथा भारतीय लोककथाओं, जनश्रुतियों में विद्यमान उज्जयिनी के प्रथम सदी ईसापूर्व के प्रसिद्ध न्यायप्रिय शासक विक्रमादित्य से सम्बन्धित हो सकता है।" बिहार कोटरा तिथिविहीन प्रस्तर लेख में राजा महाक्षत्रप रजुवुल का नामोल्लेख है, जो मथुरा के शक–दक्षत्रप वंश से सम्बन्धित था। रजुवुल के काल की मुद्राये भी उपलब्ध हैं। इस लेख के आधार पर यह मत है कि संभवतः मथुरा से लेकर नरसिंहगढ़ का क्षेत्र उसके राज्य सीमा के अंतर्गत सम्मिलित था। मथुरा के शक शासकों की सूची में रजुवुल तथा शोडाष महाक्षत्रप एवं शिवदत्त, शिवघोष, हगान, हगामस क्षत्रप थे। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में इस वंश के शासकों के कालक्रम को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है तथापि इन शक शासकों ने प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के आरंभ के लगभग शासन किया था।' उज्जैन से मिले लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के एक तिथिविहीन खंडित शिलालेख (प्राकृत, ब्राह्मी) में दमस्य पुतस्य अंकित है। यह अभिलेख प्रत्यक्षतः क्षत्रपों के शाही घराने से सम्बन्धित है, जो उस समय इस क्षेत्र पर शासन कर रहे थे।

शाजापुर के सेतखेड़ी से प्राप्त प्रस्तर लेख में शक–क्षत्रप वंश के शासक स्वामी विश्वसिंह द्वारा 285 ई० में जनहितार्थ कृप निर्माण की चर्चा है। उल्लेखनीय है कि पश्चिम मालवा में कार्दमक वंशी शक–दक्षत्रप शासकों का यह एक मात्र सर्वप्रथम अभिलेखीय साक्ष्य है। वाकणकर ने प्रथमतः यह लेख पुराविदों के सम्मुख प्रस्तुत कर शक वंशावली में विश्वसिंह नामक नये महाक्षत्रप का नाम जोड़ा।' यह प्रसिद्ध शासक रुद्रदामन की वंश–परम्परा में रुद्रसेन द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र था। मौद्रिक प्रमाणों से भी इसके शासनकाल की पुष्टि होती है, इसकी मुद्रायें गुजरात और काठियावाड़ से प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई हैं। औलिकर शासक नरवर्मा के बिहार कोटरा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि इस वंश के राजा दशपुर (वर्तमान मंदसौर) क्षेत्र पर राज्य कर रहे थे एवं नरवर्मा के शासनकाल में इनका राज्यक्षेत्र नरसिंहगढ़ तक विस्तृत हो गया था।

मंदसौर से उपलब्ध कुमार वर्मा के तिथिविहीन खंडित शिलालेख से तीन नये औलिकर शासकों, यथा–भास्कर वर्मा, कुमार वर्मा तथा कृष्ण के नाम प्रकाश में आये। लेख की बारहवीं पंक्ति में नृशाम्बयपुर विजय का वर्णन है, डॉ० वाकणकर ने इस स्थल की पहचान राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जनपद के निम्बाहेड़ा नामक स्थान के रूप में की है। उनका कहना है कि सम्भवतः कृष्णवर्मा ने नृशाम्बयपुर में दस्यु अथवा हूणों को परास्त किया था और विजयोपरांत उसने लोकहित के निमित्त कूप का निर्माण कराया था। इस लेख तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर पर डॉ० वाकणकर ने औलिकर राजाओं की वंशावली प्रस्तुत की है, जिनके नाम क्रमशः सोम, वीरसोम (पुण्यसोम), नंदी सोम, जयत्सोम (जयसोम), भट्टिसोम, जयवर्मा, सिंहवर्मा, नरवर्मा (404 ई.), विश्ववर्मा (480 मालव संवत अर्थात 423 ई.), बन्धुवर्मा, भास्कर वर्मा, कुमारवर्मा, कृष्णवर्मा, प्रभकारवर्मा (476 ई.), आदित्यवर्मा, राष्ट्रवर्धन, यशोगुप्त (490 ई.), गुणी (491 ई), द्रघ्य्यवर्धन, प्रकाशधर्मा, यशोधर्मा (532 ई.), ईश्वर (संभवतः आभीर राजा) हैं।" विदित है कि औलिकर शासकों के अनेक शिलालेखों में मिलने वाली वंशावलियों में प्रायः परस्पर मेल नहीं होता है, जो एक विचित्र समस्या है। हर शिलालेख में प्रदत्त वंशावली में कुछ अंतर अवश्य रहता है। इस सूची के आधार पर उनका विचार है कि औलिकर मालवा के ही थे एवं मालवा राजशाही गणराज्य के लिए युद्ध लड़े थे तथा इनका मालवा (दशपुर), मेवाड़ (नागरी) एवं हाड़ोती (कोटा) क्षेत्रों पप आधिपत्य था। औलिकरों ने न केवल मंदिरों अपितु जनहित हेतु तालाब और कूपों का निर्माण भी करवाया, जिनमें से प्रत्येक में एक शिलालेख है। अब तक ज्ञात ग्यारह शिलालेखों में से आठ अकेले मालवा क्षेत्र से मिले हैं, जो उनके मालवा क्षेत्र पर शासन का प्रतीक है। मालवा में गुप्त सत्ता का वर्चस्व प्रभावहीन रहा है, बन्धुवर्मा के अतिरिक्त किसी अन्य औलिकर शासक ने गुप्तों की अधीनता स्वीकार नहीं की। हालाँकि बन्धुवर्मा भी मंदसौर अभिलेख में मालव संवत का उल्लेख करता है, जो उसके अस्मिता एवं गौरव का द्योतक है। औलिकर शासकों ने अभिलेखों में गुप्त संवत के बजाय मालव संवत का प्रयोग किया है, जो उनके स्वन्त्रत होने एवं मालवा पर शासन करने का स्पष्ट प्रमाण है। तीसरी से सातवीं सदी तक औलिकर नृपतियों का दाशरेक प्रदेश पर प्रभुत्व निरंतर बना रहा। इस प्रकार औलिकरों के काल में मालवा क्षेत्र का अपना गौरवशाली अतीत था।

रिस्थल (मंदसौर) से मिला शिलालेख औलिकर नृपति प्रकाशधर्मा की प्रशस्ति है। यह कक्क के पुत्र वासुल द्वारा रचित है, इसमें औलिकर वंशी विभिन्न्न

प्रतापी राजाओं का गौरवशाली चरित्र वर्णित है। इस लेख से औलिकर वंश के नृपतियों की सूची में नये राजा जुड़े, जिनके नाम भगवत्प्रकाश, द्रमवर्धन, जयवर्धन, जितवर्धन, विभीषणवर्धन, राज्यवर्धन तथा प्रकाशधर्मा है। सम्भवतः प्रकाशधर्मा को ही आरम्भ में भगवत्प्रकाश कहा गया है। इस लेख में उल्लिखित है कि प्रकाशधर्मा ने हूण शासक तोरमाण को रिस्थल रणक्षेत्र में हुये भीषण युद्ध में बुरी तरह से परास्त किया था। यह लेख ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्व का है, क्योंकि इसमें वर्णित राजाओं का नाम सर्वप्रथम इसी से ज्ञात हुआ। लेख में प्रकाशधर्मा को 'अधिराज" कहकर संबोधित किया गया है। 1978 ई० में मंदसौर में उत्खनन के दौरान प्राप्त एक कमरे से डॉ० वाकणकर को काँच निर्मित दो मुद्रायें मिली थीं, जिनपर औलिकरकालीन लिपि में "श्री प्रकाश धर्म्म" अंकित था। ऐसी पूरी संभावना है कि यशोधर्मा इसी वंश से था और वो प्रकाशधर्मा का उत्तराधिकारी था। वाकणकर भी प्रकाशधर्मा को यशोधर्मा का पिता मानते हैं।' यशोधर्मा की प्रसिद्ध मंदसौर प्रशस्ति की रचनाकार वही वासुल है जिसने प्रकाशधर्मा के रिस्थल लेख को रचा था। मंदसौर प्रशस्ति (संस्कृत, ब्राह्मी, मालव संवत 589 अर्थात 532 ई०) में यशोधर्मा को औलिकर नामक श्रेष्ठ एवं प्रख्यात वंश को उन्‍न्नोनत पद पर पहुँचाने वाला बताया गया है। अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मालवा का प्रसिद्ध शासक यशोधर्मा संभवतः प्रकाशधर्मा का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था, तोरमाण के पुत्र मिहिस्कुल को पराजित कर उसने अपने पिता के समान विदेशी हुणों को युद्ध में हराने की परंपरा को जारी रखा।

मौखरि नृपति अपराजितवर्द्धन का हिंगलाजमाता तिथिविहीन शिलालेख नरसिंहगढ़ के शैलाश्रय संख्या 1-G-8A, में उत्कीर्ण एक दानाभिलेख है, जिसमें दो नये मौखरी नरेशों अपराजितवर्द्धन एवं त्रैलोक्यवर्द्धन का नामोल्लेख है। वाकणकर का अनुमान है कि अपराजितवर्द्धन, अवन्तिवर्मा के पश्चात मगध में उसका उत्तरकाधिकारी नियुक्त हुआ होगा। हालाँकि इस अभिलेख में उल्लिखित दोनों शासकों का मौखरि वंशावली में नाम नहीं मिलता है। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि अवन्तिवर्मा के पश्चात उसका पुत्र ग्रहवर्मा कन्नौज का राजा बना। गौड़ नृपति शशांक एवं मालवा के गुप्तवंशी शासक देवगुप्त ने कन्नौज पर आक्रमण करके ग्रहवर्मा को मार दिया, तदनन्तर राज्यश्री के निःसंतान होने के कारण कान्यकुब्ज तथा थानेश्वर एक राज्य में सम्मिलित हो गये और कान्यकुब्ज साम्राज्य की स्थापना हुयी।

वल्ख के महाराज भुलुण्ड, स्वामिदास, रुद्रदास, भट्टारक एवं नागभट्ट नामक शासकों के 32 ताम्रपत्र धार जनपद, मध्यप्रदेश में स्थित बाघ क्षेत्र से प्राप्त हुये हैं। जिनमें से 27 ताम्रपत्रों का विशाल संग्रह 1982 ई० में बाघ के समीप स्थित आदिवासी ग्राम रिसावला में एक खेत से मिला था। ये ताम्रपत्र आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के ग्रंथ "ए कॉपर प्लेट होर्ड ऑफ गुप्ता पीरियड फ्रॉम बाघ" में प्रकाशित हैं, जिसके संपादक के० वी० रमेश एवं एस० पी० तिवारी हैं।" इसके पूर्व भी पाँच ताग्रपत्र प्राप्त हुये थे। इन सभी ताम्रपत्रों की भाषा संस्कृत एवं लिपि ब्राह्मी है तथा तिथि हेतु कलचुरी–चेदि अथवा आभीर संवत का प्रयोग किया गया है। वा० वि० मिराशी एवं डॉ० वाकणकर के अनुसार ताम्रपत्रों में तिथि हेतु कलचुरि चेदि अथवा आभीर संवत का प्रयोग किया गया है, जबकि डी० सी० सरकार, मजूमदार, के० वी० रमेश और एस० पी० तिवारी आदि विद्वान इन अनुदानों में प्रयुक्त संवत को गुप्त संवत मानते हैं। अब तक ज्ञात समस्त ताम्रपत्रों में उल्लिखित तिथियों के आधार पर क्रमशः भुलुण्ड ने कलचुरी संवत 38 (287 ई०) से संवत 59 (308 ई०) तक अर्थात 22 वर्षों के दौरान 15 ताम्रपत्र, स्वामिदास ने संवत 63 से 67 तक 6, रुद्रदास ने संवत 67 से 70 तक 6, भट्टारक ने संवत 102 से 129 के मध्य के मध्य 3 एवं नागभट्ट ने केवल एक ताग्र पत्र संवत 134 (383 ई०) में निर्गत किया। वर्णित तिथियों के आधार पर उपरोक्त नृपतियों का शासन काल 287 से 383 ई० तक निर्धारित किया जा सकता है।

ये स्वंतत्र शासक थे अथवा अधीन यह निश्चित नहीं है। मजूमदार, सरकार आदि विद्वान इन्हें गुप्तों के अधीनस्थ शासक मानते हैं। वल्ख शासकों के प्रत्येक ताम्रपत्र में उनके नाम के आगे महाराज शब्द का प्रयोग किया गया है तथा परमभट्टारक के चरणों की वन्दना करने का उल्लेख है, परमभट्टारक शब्द का प्रयोग गुप्त शासकों के लिये किया गया है।[10] के० वी० रमेश एवं एस० पी० तिवारी का समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में लिखित परिचारकीकृत– सर्व्याटविक–राजस्य के आधार पर कथन है कि वल्ख वनाच्छादित आटविक राज्य था। ऐसी पूर्ण संभावना है कि वल्ख राज्य समुद्रगुप्त के साम्राज्य का अंग था तथा उपरोक्त वर्णित वल्ख के महाराज,

गुप्तों के आधीन शासन करते थे। अतः इनका अनुमान है कि वल्ख (बाघ) के आटविक राज्य को जीतने के उपरांत समुद्रगुप्त ने शक्तिशाली आदिवासी सरदार भुलुण्ड को महाराज की उपाधि से सुशोभित कर यहाँ का सामंत शासक नियुक्त किया होगा। विदित है कि भुलुण्ड का नाम जनजातीय स्वरूप का है जबकि अन्य चार राजाओं– स्वामिदास, रुद्रदास, भट्टारक एवं नागभट्ट के नाम पर संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः यह भी संभव है कि ब्राह्मणीकरण और संस्कृतिकरण के असर के कारण भुलुण्ड के उत्तराधिकारियों ने संस्कृत नामों को अपना लिया हो, जो परस्पर सम्बन्धित हो भी सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते हैं।

शक–क्षत्रपों के चष्ठन वंश की शाखा का अंतिम राजा विश्वसेन (295–304 ई०) महाक्षत्रप के स्थान पर क्षत्रप ही बना रहा। तत्पश्चात् एक नये शक कुल का उदय हुआ, जिसका संस्थापक जीवदामन था। इसके पुत्र रुद्रसिंह द्वितीय ने 305 से 316 ई० तक राज्य किया। रुद्रसिंह द्वितीय एवं उसके उत्तराधिकारी यशोदामा द्वितीय (317–332 ई०) की चाँदी की उपाधियुक्त मुद्राओं पर महाक्षत्रप के स्थान पर क्षत्रप उपाधि मिलती है, अतः किसी अधिक शक्तिशाली राजा ने इन्हें महाक्षत्रप की उपाधि धारण करने से परावृत्त किया था। इस समयावधि (287 से 317 ई०) में पश्चिमी मालवा के अनूप (निमाड़ क्षेत्र) के शासकों वल्ख महाराज भुलुण्ड ने 15 ताग्रपत्र, स्वामिदास ने 6 एवं रुद्रदास ने भी 6 ताम्रपत्र निर्गत किये, जो इनकी इस क्षेत्र पर राजनीतिक प्रभुसत्ता का द्योतक है। तीनों वल्ख नृपतियों यथा– भुलुण्ड, स्वामिदास, रुद्रदास के ताम्रपत्रों में वर्णित अग्रहार ग्रामों से यह पता चलता है कि नर्मदा नदी के दोनों तटवर्ती क्षेत्रों पर इनका आधिपत्य था। विद्वानों द्वारा इनकी राजधानी वल्ख की पहचान बाघ (धार जनपद के अंतर्गत) अथवा धार जिले के मनावर तहसील में स्थित बागली से की जाती है। यशोदामा द्वितीय के पश्चात सोलह वर्षों अर्थात 332 से 348 ई० के मध्य की कोई भी मुद्रा नहीं प्राप्त होती है, जो राजनीतिक उथल–पुथल की ओर इंगित करती है। इस अवधि में वल्ख महाराजाओं के भी कोई ताम्रपत्र नहीं मिलते हैं। इस समय पूर्वी मालवा पर एक नए शक वंशी महाक्षत्रप श्रीधर वर्मा का आधिपत्य था, जिसके एरण अभिलेख में उसकी उपाधियाँ राजन एवं महाक्षत्रप प्राप्त होती हैं। साँची के समीप स्थित कानाखेड़ा अभिलेख से इसके शासन–काल की तिथि 333 ई० ज्ञात होती है। अतः रुद्रसिंह द्वितीय एवं यशोदामा द्वितीय का स्वशासनकाल में महाक्षत्रप ना बन पाने का एक कारण गृहयुद्ध भी हो सकता है।[11]

वल्ख महाराज भट्टारक के तीन ताम्रपत्र 351, 376, 378 ई० के प्राप्त हुये हैं। इस समय में शक–क्षत्रप नरेश रुद्रसेन तृतीय ने 348 से 388 ई० तक की दीर्घावधि में राज्य किया, परंतु उसका समय शांतिपूर्ण नहीं था, क्योंकि उसकी मुद्रायें 351 से 364 ई० के मध्य की नहीं मिलती हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस समयावधि में रुद्रसेन के राज्य में आतंक की स्थिति थी, जिसके लिए महाराज भद्ठारक की राजनीतिक शक्ति के उत्कर्ष को एकमात्र उत्तरदायी कारण माना जा सकता है। रुद्रसेन तृतीय के शासनोपरांत क्षत्रपों का इतिहास स्पष्ट नहीं है एवं वल्ख महाराज नागभट्ट का भी मात्र एक ताम्रपत्र (383 ई०) प्राप्त हुआ है। रूद्रसेन तृतीय की 388 ई० के बाद की कोई भी मुद्रा प्राप्त नहीं होती है। संभवतः 395 से 400 ई० के मध्य चंद्रगुप्त द्वितीय ने इस अंतिम क्षत्रप का वध कर अपना राज्य अवन्ति तक विस्तृत कर लिया।

राष्ट्रकूट नृपति अमोघवर्ष प्रथम (814–78 ई०) का ओझइर से चार ताग्रपत्रों का विस्तृत अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह ताम्रपत्र उसने अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष अर्थात शक संवत 744 (822 ई०) में जारी किया था। चम्पू शैली में रचित इस लेख के प्रारम्भ में ब्रह्मा की स्तुति की गयी है, तदुपरांत अमोघवर्ष की प्रारंभिक विजयों एवं उपाधियों का उल्लेख किया गया है। कलिवल्लभ, निरुपम, वेंगीश्वर आदि प्रमुख उपाधियाँ थीं। इस ताग्रपत्र में राष्ट्रकूट राजा कृष्णाराज की चालुक्य विजय के जिक्र के साथ ही ध्रुव प्रथम की वत्सराज गुर्जर पर विजय, गोविन्दराज तृतीय, गंग, मानुतुंग, आदि की भी चर्चा है।

परमार राजा सीयक द्वितीय (948–972 ई०) के 969 ई० के दो अपूर्ण ताग्रपत्र नागदा ग्राम से मिले हैं, इन्हें सीयक ने उज्जैन में दान देते समय निर्गत किया था। ये लेख कण्हपैक की आज्ञा से लिखे गये थे। इसमें राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष व अकालवर्ष का स्मरण करते हुये आबू पर्वत से परमारों की उत्पत्ति का विवरण है। सीयक का विरुद "महामांडलिक–चूड़ामणि महाराजाधिराज" था तथा राजा उसकी उपाधि थी, जिससे स्पष्ट होता है कि वह राष्ट्रकूटों का वंशज न होकर उनके अधीन महामांडलिक

था। सीयक के पूर्ववर्ती ताम्रपत्रों में "तस्मिन वंशे" शब्दों के पश्चात उसका वर्णन आने से यह भ्रांति प्रचलित हो गयी कि परमार राष्ट्रकूटों की वंश परंपरा से हैं। यह भ्रम इस ताम्रपत्र से निर्विवाद रूप से दूर हो जाता है, क्योंकि इसमें परमारों का उल्लेख राष्ट्रकूट शासकों के राज्य में उनके अनुगामी के रूप में हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि सीयक द्वितीय 969 ई० तक राष्ट्रकूटों के अधीन सामंत था परंतु अपने राज्यकाल के अंतिम वर्षों में सीयक ने स्वयं को स्वतंत्र राजा के रूप में स्थापित कर लिया था। परमार नृपति भोज (1010–1055 ई०) के महाकाल क्षेत्र स उपलब्ध तिथिविहीन खंडित शिलालेख में भोजदेव द्वारा तुरुष्क एवं महमूद पर विजय के उपरांत महाकाल की अभ्यर्थना का उल्लेख है।[12] दारिलस्वामी कृत कौषितकी उपनिषद की टीका में भी भोज की तुरुष्क विजय पर प्रकाश डाला गया है। इससे प्रकट होता है कि भोजदेव ने किसी महमूद तुर्क को विजित किया था, संभवतः यह भोज का समकालीन महमूद गजनवी रहा हो।

उज्जैन के निर्वाण–नारायण (नरवर्मा) का महाकाल मंदिर प्रस्तर लेख तिथिविहीन है, इसमें किसी शासक द्वारा अपने सेना के साथ उत्तर दिशा में अयोध्या नगरी, सरयू नदी, हिमालय क्षेत्र सहित पश्चिम दिशा में द्वारिका तक तथा दक्षिण दिशा में मलयगिरि पर्वत आदि क्षेत्रों को विजित करने का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह संपूर्ण वर्णन पारंपरिक प्रतीत होता है, इसमें किसी ऐतिहासिक तथ्य की जानकारी नहीं प्राप्त होती है। निर्वाण नारायण परमार नरेश नरवर्मा (1094–1133 ई०) की उपाधि थी। संभवतः यह किसी बड़े अभिलेख का अंश है।''[13]

महाकाल क्षेत्र से मिले एक शिलालेख में चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज (लगभग 1094–1142 ई०) की मालवा के परमार राजा यशोवर्मा (1133–1142 ई०) पर विजय का वर्णन है। लेख में जयसिंह को महाराजाधिराज, परमेश्वर, त्रिभुवन गंड, सिद्ध चक्रवर्ती, अवन्तिनाथ, तथा बर्बरक की उपाधियों से विभूषित किया गया है। सिद्धराज ने बर्बरों (तुरुष्कों) को युद्ध में परास्त करने के पश्चात् रंगास्वामी के प्रासाद का निर्माण करवाया एवं अवन्ति क्षेत्र में श्रेणियों को स्थापित किया। इसके अलावा डॉ० वाकणकर ने जयसिंह सिद्धराज की बिलपांक प्रशस्ति का अध्ययन कर चालुक्य नृपतियों के धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के अनेक लुप्त प्रसंगों को इतिहासकारों के समक्ष प्रस्तुत किया।[14]

उज्जैन से प्राप्त श्री रणरंगमलल तिथिविहीन खंडित शिलालेख में परमार नरेश भोज की कीर्ति का वर्णन किया गया है तथा इसमें ऊण मंडल (वर्तमान ऊण, खरगोन) तथा खर्जुरी विट–वर्धक वंश का जिक्र है। रणरंगमलल राजा भोज का विरुद था, जिसका उल्लेख भोज द्वारा रचित योगसूत्र टीका में है। डॉ० वाकणकर ने खर्जुरी के जिक्र को खजुराहो के किसी चंदेल राजा पर विजय के संकेत स्वरूप स्वीकार किया है।[15] उनका मत है कि संभवतः खजूर के बहाने खजुराहो की चर्चा की गयी है।

दोतरु ताम्रपत्र परमार शासक देवपाल (1218–1239 ई.) की माता सल्लक्षण देवी ने जारी किया था। दो पत्रों पर उत्कीर्ण इस ताम्र लेख में सललक्षण देवी द्वारा श्रावण मास की सोमवती अमावस्या के दिन सूर्यग्रहण के अवसर पर रेवा कुब्जा संगम में स्नान कर पगारा (वर्तमान में धार जिले के धरमपुरी के पास स्थित) परगना के खलि ग्राम के अन्तर्गत 32 निवर्तन भूमि दान देने की चर्चा है। दान प्राप्तकर्ता गर्गगोत्रीय कहशाह शर्मा नामक ब्राह्मण था। इस लेख में परमार नृपतियों यथा– भोजदेव, उदयादित्य, नरवर्मा, यशोवर्मा, अजयवर्मा, विन्ध्यवर्मा, सुभटवर्मा, अर्जुनवर्मा तथा हरिश्चन्द्र का पुत्र देवपालदेव का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें सान्धिविग्रहिक बिल्हण एवं दूतराज धन्धूक का भी जिक्र है। लेख के अंत में परमारों का राजकीय चिह्न गरुड़ भी अंकित है।

उज्जैन का चौबीस खम्भा तिथिविहीन शिलालेख द्रोण वंश के विज्ज सिंह की प्रशस्ति है। इसमें विज्ज सिंह का उल्लेख है, जो अरिशंकु था एवं जिसने तुरुष्क खुरासानों को परास्त किया था। इसका राज्य विस्तार जावरा के निकट रिंगनोद से डूँगरपुर तक था। इसमें दद्दी सिंह, भैलल स्वामी, छडिक नामों का भी जिक्र है। द्रोणबंश भोपाल के अधिद्रोण वंश से सम्बन्धित था या स्वंतन्त्र वंश था, यह निश्चित नहीं है। हालॉकि इस लेख से उज्जैन क्षेत्र में द्रोणवंश का अस्तित्व का संकेत तो मिलता है, परन्तु अन्य ठोस साक्ष्यों के अभाव के कारण इनके विषय मे कुछ विशेष कह पाना संभव नहीं है।[16] उज्जैन के भावे के बाड़े से प्राप्त तिथिविहीन खण्डित शिलालेख में द्रोणवैरी नाम से विभूषित किसी राजा की प्रशस्ति है। यह शिलालेख द्रोणवंशी विज्ज सिंह पर विजय का संकेत दिखाई पड़ता

है, विज्ज सिंह को परास्त करने वाला मालवा का कोई तत्कालीन परमार नरेश हो सकता है।

निष्कर्ष :

डॉ० वाकणकर ने विभिन्न माध्यमों पर अंकित सैकड़ों अभिलेखों का वाचन एवं अध्ययन किया। इनके अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण एवं नवीन तथ्य प्रकाश में आये, जिनसे भारत के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक इतिहास एवं अन्य सांस्कृतिक बिन्दुओं से सम्बन्धित बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध हुई। इस प्रकार अभिलेख शाख के क्षेत्र में डॉ० वाकणकर का अनुपम योगदान है, उन्होंने अथक अन्वेषण कर इतिहास अध्येताओं के लिये अभिलेखशास्त्र सम्बन्धित जो विपुल सामग्री एकत्रित की है, उस पर विशिष्ट अध्ययन होना अवश्य है।

सन्दर्भ सूची :

1. दुबे, जगन्नाथ एवं राजपुरोहित, भगवतीलाल, 2002, भारतीय अभिलेख (सम्पादित), सचिव वाकणकर भारती संस्कृति अन्वेषण न्यास, उज्जैन, पृ० 21–140
2. पांडे, राजबली, 1960, विक्रमादित्य, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी, पृ० 12–29
3. राव, राजवंत एवं राव, प्रदीप कुमार, 2009, प्राचीन भारतीय मुद्राये, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ल्ली, पृ० 59
4. सोलंकी, डॉ० किरण रमन, 2020, लिपियों के ज्ञाता : वाकणकर बंधु, पाञ्चजन्य, वर्ष 71, अंक 43, हितेश शंकर (सम्पा०), भारत प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ल्ली, पृ० 12–13
5. वेदालंकार, हरिदत्त, 1972, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (200 ईसा पूर्व से 300 ई०), उत्तर प्रदेश शासन हिंदी समिति, लखनऊ, पृ० 213
6. वाकणकर, वि० श्री०, 1979, न्यू एविडेंस ऑन द औलिकर्स ऑफ मालवा, प्राच्य प्रतिभा, वॉल्यूम –7 (अंक 1 एवं 2), के० पी० नारायणन (सम्पा०), प्राच्य निकेतन, बिड़ला मयूजियम, भोपाल, पृ० 71–72
7. वाकणकर, वि० श्री०, 2021, औलीकर वंश के इतिहास पर नया प्रकाश, द जर्नल ऑफ एकेडमी ऑफ इंडियन न्यूमिसमेटिक्स एंड सिगिलोग्राफी (2019–20), वॉल्यूम – 33, प्रो०एस० के० भट्ट एवं डॉ ० पंकज आमेटा (सम्पा०), एकेडमी ऑफ इंडियन न्यूमिसमेटिक्स एंड सिगिलोग्राफी, इंदौर, पृ० 166–167
8. वाकणकर, वि० श्री०, 1985, आद्य मालवगण कालीन राजनैतिक स्थिति, अखिल भारतीय कालिदास समारोह स्मारिका, डॉ० श्यामसुंदर निगम एवं प्रो० कलानिधि "चंचल" तथा अन्य (सम्पा०), केन्द्रीय कालिदास समारोह समिति, उज्जैन।
9. रमेश, के० वी० एवं तिवारी एस० पी०, 1990, ए कॉपर–प्लेट होर्ड ऑफ द गुप्ता पीरियड फ्रॉम बाघ, मध्य प्रदेश (सम्पादित), द डायरेक्टर जनरल ऑफ इंडिया, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृ० iv-xxv
10. वही, पृ० vii-viii
11. दुबे, जगन्नाथ एवं राजपुरोहित, भगवतीलाल, 2002, पूर्वोक्त, पृ० 8–9
12. राजपुरोहित, भगवतीलाल, 2004, परमार भोजदेव और उज्जयिनी, उज्जैन और उसका गौरवशाली अतीत, डॉ० रामकुमार अहिरवार (सम्पा०), आर० बी० एस० ए० पब्लिशर्स, जयपुर, पृ० 215
13. द्विवेदी, हरिहर निवास, 1947, ग्वालियर राज्य के अभिलेख, मध्य भारत पुरातत्त्व विभाग, ग्वालियर, पृ० 82
14. आर्य, सुरेन्द्र कुमार, 1987, प्राच्य दृष्टि, अन्वेषण एवं इतिहास पुनर्लेखन में योगदान, पद्मश्री डॉ० वि० श्री० वाकणकर अभिनन्दन ग्रंथ, पूर्वोक्त, पृ० 27
15. राजपुरोहित, भगवतीलाल, 2005, राजा भोजकृत स्तुति एवं अभिलेख, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 99
16. राजपुरोहित, भगवतीलाल, 2003, भारतीय अभिलेख और इतिहास, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 66

रबाब वाद्य की संरचना एवं विकास

डॉ. अमनदीप सिंह मक्कड़** **रमा***

सारांश

संगीत को यदि मनुष्य की मौलिक प्रवृत्ति कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। सभ्यता के प्रारम्भ में वैदिक संगीत की जो अनेक मुखी लोक–धाराएँ प्रचलित थीं उन्हें शास्त्रीय दृष्टि से संगठित कर संगीतशास्त्र की रचना की गई है। भारतीय संगीत एक विशाल एवं व्यापक विषय है। पूर्व वैदिककाल से हमें वाद्यों के विकास चिह्न मिलते हैं, चाहे वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही हो। धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के साथ–साथ वाद्यों की बनावट, सामग्री आदि में परिवर्तन होता गया और वाद्यों का विकास एवं परिष्कृत होते गए।

संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने के उपकरण को 'वाद्य' कहा जाता है। इसी दृष्टि से प्राचीन काल में मानव कंण्ठ भी वाद्य माना गया है। किन्तु कण्ठ–वाद्य ईश्वर निर्मित है। अतएव मनीषियों ने मनुष्य–निर्मित वाद्यों का ही अध्यनन, मनन तथा वर्णन किया है। आदि काल से मनुष्य किसी–न–किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता आया है। जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य, सुसंस्कृत होता गया, उसके द्वारा प्रयुक्त वाद्य भी विकसित होते गये। यह विकास दो रूपों में हुए। वाद्य–निर्माण में प्रयुक्त सामग्री के आधार पर बाह्य स्वरूपगत तथा वादन–सामग्रीगत।

मुख्य शब्द : *वाद्य, संरचना, विकास, रबाब*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र में द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है ।*

भारतीय शास्त्रों में प्राचीन काल से ही वाद्यों के चार प्रमुख वर्ग माने गए हैं– तत, अवनद्ध, सुषिर तथा घन। इनमें तत एवं सुषिर मुख्यतः स्वर वाद्य एवं अवनद्ध एवं घन लय–वाद्य हैं। भारतीय संगीत शास्त्रियों ने वाद्यों का वर्गीकरण मुख्य चार श्रेणियों में किया है। इनमें सब से प्रथम तत वाद्य है।

तत वाद्य–वादन की क्रिया के आधार पर इस वर्ग के वाद्यों को चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे पहले उंगलियों से छेड़कर बजाया जाने वाला वर्ग, जिसमें स्वरमण्डल, तम्बूरा, आदि वाद्य आते हैं। दूसरे वर्ण में कोण, त्रिकोण (मिज़राब) से बजाये जाने वाले वाद्य इस वर्ग के अन्तर्गत सितार, रबाब, सिरोद, रूद्रवीणा आदि वाद्य आते हैं। तीसरे वर्ग के अंतर्गत गज से रगड़कर बजाये जाने वाले वाद्य आते हैं। इस वर्ग में सारंगी, इसराज, दिलरूबा आदि वाद्य यंत्र आते हैं। चौथे वर्ग में डण्डी से प्रहार कर बजाये जाने वाले वाद्य, इस वर्ग में संतूर, कानून आदि वाद्य–यंत्र आते है।

हमारी भारतीय शास्त्रीय संगीत–परंपरा में आदि काल से रबाब, वीणा, बीन, बाजा, किंगरी, मुरली, पखावज, मृदंग आदि अनेक वाद्यों का विवरण प्राप्त होता है। इनमें रबाब वाद्य का अपना विशेष स्थान रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में तो रबाब का अपना एक विशेष स्थान है ही वही पंजाब की गुरमति संगीत–परंपरा में रबाब वाद्य का विशेष स्थान है जहाँ इस वाद्य को गुरु का वाद्य होने का सम्मान प्राप्त है।

रबाब को भारतीय शास्त्रीय संगीत के तत वाद्यों में विशेष दर्जा प्राप्त है। रबाब वाद्य की व्युत्पत्ति एवं विकास के संदर्भ में विद्वानों के अलग–अलग मत पाए जाते है। यह वाद्य आरंभ में एशियाई क्षेत्र में प्रचार में रहा। ''संगीत आचार्य अहोबल जी ने अपने ग्रंथ में रबाब का विवरण देते हुए लिखा है, ''रण बहित यदसमस्तो ते रबाब''। किसी अन्य ग्रंथ में रबाब वाद्य के संबंध में जानकारी प्राप्त नहीं होती।''[1]

*शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर।
**असिस्टेंट प्रोफेसर, परफोर्मिंग आर्ट्स (संगीत) लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर।

''एक धारणा के अनुसार रबाब वाद्य का विकास अरब के रूबेब वाद्य से माना जाता है। परंतु एक मत के अनुसार रबाब का ही आरंभ का नाम रूबेब था,''[2] रूबेब एक लोक वाद्य था जो उत्तर भारत एवं अफगानिस्तान में बहुत प्रचार में रहा। इस वाद्य का प्रयोग विशेष रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करने वाले शोख सैलानी अपने मनोरंजन के लिए किया करते थे।''[3]

''10वीं शताब्दी ईसा पूर्व में अरब के एल फराबी रबाब के एक अलग प्रकार का विवरण दिया है, जिसका वादन गज द्वारा किया जाता था। किन्तु कश्मीर एवं अफगानिस्तान में बजने वाला रबाब जबा के साथ ही बजाया जाता था। और यह वाद्य एवं वादन–विधि 500 से अधिक वर्षों से प्रचलन में थी। बनावट के आधार पर रबाब वाद्य को मुख्य तीन भागों में बाटा गया है।''[4]

1. आधुनिक रबाब
2. बिना परदों का रबाब
3. भाई मरदाने वाला रबाब[5]

''पुरातन एवं आधुनिक रबाब की संरचना में कुछ मुख्य अंतर पाया जाता है जिसके अंतर्गत पुरातन रबाब का तुंबा गोल था, वहीं आधुनिक रबाब के तुंबे की बनतर अलग है। पुरातन रबाब की डाँड आधुनिक रबाब से लंबाई में अधिक लंबी है। पुरातन रबाब में परदे नहीं होते थे, वहीं आधुनिक रबाब में परदों को लगाने का भी प्रावधान है।''[6] पुरातन रबाब ज्यादातर लोक संगीत में प्रयुक्त होता था, जिस कारण तरब के तारों का भी अभाव रहता था, वहीं आधुनिक रबाब का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में भरपूर होने लगा है जिस कारण आधुनिक रबाब तरब के तारों से युक्त होने लगा है।

रबाब की संरचना की बात की जाय तो इसके मुख्य भाग निम्न अनुसार देखे जा सकते हैं–

डांड :– यह यंत्र एक लंबे और खोखले डंडे से बना होता है।

तुंबा :– डाँड के नीचे लकड़ी का एक तुंबा होता है। तुबा कुछ चौड़ा शीर्ष से चपटा होता है एवं दूसरे किनारे की ओर कम मोटाई का होता है और इसीं पर खूंटी लगी होती है।

माँद :– तुंबे के ऊपरी हिस्से को बकरी या किसी और जानवर की पतली खाल से मढ़ा जाता है, इसे माँद कहते हैं।

घडुच घानी :– मांद के ऊपर बिलकुल बीच में घडुच को खड़े रूप में रखा जाता है।

तार घनी :– डाँड की दूसरी तरफ जो घडुच रहता है उसे तार घनी कहा जाता है। रबाब के तार घुड़च घनी एवं तार घनी की सहायता से स्थिर रहते हैं।

तार :– रबाब में छह तार होते हैं जो एक साथ तांत से जुड़े रहते हैं।

''कहा जाता है पहले तार को 'जील' कहा जाता है। दूसरे तार को 'म्यान' कहा जाता है इसे मध्य सप्तक के ऋषभ से मिलाया जाता है। तीसरे तार को 'सूर' कहा जाता है और इसे मध्य सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है। चौथे तार को 'मंद्र' कहा जाता है, यह मंद्र सप्तक के पंचम से मिलाया जाता है। पंचम तार को 'घोर' कहा जाता है इसे मंद्र स्पतक के मध्यम से मिलाया जाता है। छठे तार को 'खुर्ज' कहा जाता है इसे मंद्र स्पतक के मध्यम से मिलाया जाता है।

डाँड के जिस भाग पर तारों को दबा कर स्वरों को निकाला जाता है, उसे स्थान कहा जाता है।''[7]

जवा :– रबाब से नाद–उत्पति करने के लिए तारों पर जिस छोटे टुकड़े का प्रयोग किया जाता है उसे 'जवा' कहते हैं। यह तिकोना टुकड़ा हाथी दांत या लकड़ी का बना होता है। रबाब के एक प्रकार को गज से भी बजाया जाता है किन्तु प्रचलन में जवा से बजाने वाली रबाब ही रही है।

रबाब अपने सुन्दर नाद से खुली फिजा को मनमोहक एवं आकर्षक बनाने में पूरी तरह सक्षम वाद्य है। लय को प्रयुक्त करना इस वाद्य में आसान है क्योंकि जवा के प्रयोग से लय को सुन्दर ढ़ंग से स्थापित किया जा सकता है।

निष्कर्ष :

संरचनात्मक गुणों एवं मधुर और गंभीर नाद का वाद्य होने के कारण जहाँ आम जन–समाज में यह वाद्य लोकप्रिय रहा, वहीं ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो सिख धर्म में इस वाद्य का विशेष स्थान है, सिखों के पहले गुरु नानक देव जी ने अपने उपदेश में इस वाद्य को साथ रखा। जिस पवित्रता से भगवान श्री कृष्ण की मुरली को सनातन धर्म में देखा जाता है उसी पवित्रता से रबाब को सिख धर्म में देखा जाता है और यह इस वाद्य को विशेष दर्जा प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 49
2. The Music and Musical Instruments of Southern India and The Decan, p. 127
3. चौधरी, विमलकांत राय, भारतीय संगीत कौश, पृ. 134
4. The Mirror, May 1980, p. 95
5. सिंह, डॉ. गुरनाम, गुरमति संगीत प्रबंध अते पासार, पृ. 159
6. वही।
7. वही।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भार्गव, डॉ. अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
2. शर्मा, शान्तनु, प्रतिष्ठित सितार एवं सरोद–वादकों की साधना और संघर्ष, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली
3. Musical Instruments, B.C. Deva, National Book Trust (India), Green Park, New Delhi.
4. भृगुवंशी, डॉ. रचना, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र–वादन शैलियाँ, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
5. भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत (गायन–वादन सुमेल), मिश्रा, डॉ. अरुण, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

Musical and Choreographical Analysis of Guru K J Govindarajan's Hindolam Tillana

Rashmi Khanna*

Abstract

This research study aims to investigate the composition of the Hindolam Tillana by Guru KJ Govindarajan, a valuable composer in the field of Bharatanatyam. While many dancers still perform age-old tillanas, there are few who know about the compositions of Guru K J Govindarajan. This document employs an analytical approach, including qualitative research techniques including interviews and additional references like scholarly journals and written works. It examines the complex rhythms, tonal framework, and the relationship between musical components and dance movements in the Tillana composed By Guru K J Govindarajan, with a specific focus on exploring the choreographic opportunities it presents for Bharatanatyam dancers. It offers a basic overview of Bharatnatyam, its historical beginnings, and the breakdown of Tillana into three basic divisions (opening, middle and finale sections) is explored. The musical analysis centres on the melodic framework and its cyclic rhythm. The choreographic analysis breaks down the symmetric possibilities in creating the dancer's motion, physical expressions, and spatial organisation. By examining the composition from both musical and dance perspectives, this research seeks to improve the comprehension and effectiveness of the tillana, to encourage collaborative efforts among music performers and dancers and to create a more captivating audience engagement.

Keywords: *Bharatnatyam, Tillana, Hindolam, Guru K J Govindarajan, choreography*

Research Methodology : *This study employs a descriptive-evaluative research methodology to comprehensively analyse Guru K J Govindarajan's tillana in Bharatnatyam. The research approach incorporates qualitative methods, including interviews, conducted with experts in Bharatnatyam, including experienced dancers, musicians, and scholars to gather insights from practitioners and experts in the field. Secondary sources of data, such as journals, books, articles, and websites, are utilized to support and augment the analysis. The data obtained from the above sources has been aanalysed thematically to extract key themes, perspectives, and expert opinions.*

Introduction:

Bharatnatyam, a classical dance form originating in the state of Tamil Nadu, holds a significant place in Indian cultural heritage. The term "Bharatnatyam" is believed to be derived from the Natyasastra, an ancient treatise on performing arts. With its intricate footwork, graceful hand gestures, elaborate costumes, and expressive story telling, Bharatnatyam is often revered as the epitome of Indian classical dance. Rooted in ancient temple dances performed by devadasis, the dance form has evolved over centuries and encompasses the essence of Bhava (expression), Raga (musical mode), and Tala (rhythm) according to the Vedanta Deshika and the Tiruvilayadal Puranam(Understanding Bharata Natyam, 2000).

Among the various components of a Bharatnatyam performance, the tillana holds a prominent position as the concluding piece of

*Student - Masters, Performing Arts, School of Performing Arts, World University of Design, Sonepat, Haryana

the dance repertoire. Serving as a grand finale, it showcases the dancer's skill, energy, and command over complex footwork, leaving the audience enthralled and appreciative of the dancer's virtuosity. It is a mesmerizing composition sung in a specific raga and set to a particular tala, accompanied by the intricate rhythmic patterns of the mridangam. The tillana accentuates the dancer's fast-paced footwork, intricate hand gestures, grace, agility, technical prowess, and exuberance.

Guru Govindarajan, apart from being a distinguished singer, nattuvanaar, and choreographer, was a prolific composer who adhered to the traditions of the Traditional Tanjore style. With a keen understanding of the changing times, his compositions aimed to add an innovative dimension to Bharatnatyam, showcasing variety and flexibility through the intelligent use of tala and raga. Guru Govindarajan's extensive repertoire encompasses numerous tillanas, contributing significantly to the art form.

By closely examining his Hindolam Tillana, we aim to uncover the rhythmic intricacies, melodic patterns, and innovative elements that make his tillanas a unique contribution to the Bharatnatyam repertoire. Through this analysis, we not only deepen our knowledge and appreciation of his compositions but also foster greater collaboration and communication among musicians and dancers, resulting in cohesive and harmonious performances that captivate audiences.

Research Area:

This study focuses on the musical and choreographic analysis of Guru K J Govindarajan's tillana in Bharatnatyam. Specifically, it aims to gain comprehensive insights into the rhythmic intricacies, melodic structure, and the interplay between music and movement in this enthralling composition. By exploring the tillana from both musical and choreographic perspectives, this research contributes to a deeper understanding and appreciation of this significant piece in the Bharatnatyam repertoire. The analysis sheds light on the unique elements of Guru Govindarajan's composition and its artistic expressions, enriching the field of Bharatnatyam research and performance.

Structure of a tillana:

Structurally, the tillana is divided into three segments - the Pallavi, Anupallavi and Charanam.

1. **Pallavi :** The tillana begins with the Pallavi which is the main section of the composition. It consists of a melodic phrase or a set of phrases that are repeated throughout the tillana. It often showcases the raga on which the tillana is based. 'This tune covers the entire composition from start to finish with minor embellishments or accommodations made in view of changed lyrics. This concept of varnamettu or a standardised compositional tune for a raga encapsulates the identity of the raga and is repeated by numerous composers and tunesmiths.' (Krishna, 2018).

2. **Anupallavi :** Following the Pallavi, the tillana progresses to the Anupallavi. This section introduces new melodic phrases that provides a contrast to the Pallavi. It is shorter in length than the Pallavi and explores different melodic patterns.

The above two angas are strictly rhythmic patterns. (Bhagyalekshmy, 1992).

3. **Charanam :** The Charanam is the next section of the tillana. It presents a new set of lyrics and melodic patterns. The Charanam will have sahitya spread over two avartanams followed by chollakattu. It ends with a complicated korvai and teermanam (Bhagyalekshmy, 1992). The tillana usually

concludes with returning to the Pallavi or Anupallavi bringing the composition to a close.

Musical analysis of Guru K J Govindarajan's Tillana :

This Tillana was composed by Guru Govindarajan in the year 1978. This is composed in the formal pattern created by the Tanjore Quartet (as defined by them for all items like jatiswarams, varnams, including tillanas. For a Bharatnatyam Composer, the reference must be kept of the Tanjore Quartet who created and systematised the "maargam" of Bharatnatyam.) This item was composed after Guruji had Programmes in Kanjeepuram, Madurai and Kashi. Hence, he dedicated the Sahityam or lyrics of this tillana to the three Goddesses of each of these cities. During that time, even the Kathak dancers used to perform this tillana as it catered to the musical and rhythmic needs of kathak as well. Pandit Durga Lal ji had performed this tillana with Guru Govindarajan Sir's senior disciples. Guru Radha Marar, Director of Kala Madhuri also composed this tillana in five different classical dance styles. (G. Elangovan, personal communication, July 5, 2023)

Tillana : Raga Hindolam, Talam Aadi

Arohanam : sg2m1d1n2S

Avarohanam : Sn2d1m1g2s

(sadharan gandharam, shudha madhyamam, shudh daivatam, Kaisiki Nishadam)

Small letters for same octave, Capital letters for higher octave and Italic letters for lower octave have used for better understanding of the readers.

Pallavi:

GSd,- ndm, - mgmndnSn l

Dhirana, dhirana, tanata dhim, ta tira

S;;; S l MGSnSndn ll

Naa ;;; di ranaa, dhiranaa, ta

The varna mettu of this tillana, upon keen studying, helps arrive at the following observations:

Table 1:

1. 3, 3, GSd, are notes starting from the upper octave and receding to the lower note ending in a long note.

   ndm, are also receding notes ending in a long note

2. 3 3 2 mgmndnSn are all single notes

3. 1;;;1 S;;;S is an elongated note in the upper octave held for 7 maatras

4. 4 4 MGSnSndn are single notes beginning in the higher octave and receding in a laya of 4 beats each

If we observe carefully, there is a clever connection of 3. and 4. Wherein the syllables as well as the swaras begin with "osi" and the last note "S" is connected with the second Dhrutam beat as a combination with MGSnSndn. This gives a different twist and flavour to the tune.

Anupallavi:

g, ggggm,-; d, ddddn; - ndnSG I

naa dir dir tom; tom dir dit tom, tanadhirana

S;, Sndmgmdn I S, - SndmgmdnS, II

tam;, " "

MGSnS,; GSndn,; I Sndmd,; mmdd mgm,; II

" tadiginatom " takatadiginatom

Mgm-dmd-ndn- SnS- SGS, I , MGSnd- GSndm- sgmdn II

" " " junuta taka taam tadiginatom tadiginatom tadiginatom

Mgm-dmd-ndn-SnS- SGS; MGSnd- GSndm-sgmdn I Mgm-dmd-ndn-SnS- SGS; MGSnd- GSndm-sgmd II

Observation:

If the sollukattu of the first two lines of anupallavi is spelt out, it will sound like:

Tai, dhit tit tai, tam,;; Tai, dhit tit tai, tam,; ta ki ta ju nu |
tam,; takadimitakajunu taam,; takadimitakajunu taam,; ||

The third line is within Chatusra but the notes are 5 each as the last note is extended to four matras, within a time cycle of 8 beats, with each set of notes starting on samam.

The last 2 lines of the anupallavi clearly chalk out the rhythm pattern as:

Takita takita takita takita tatdhit taam,
3 3 3 3 2 2
,tai tai tai dhit tit tai- Tai tai tai dhit tit tai- Tai tai tai dhit tit tai
5 5 5

The Hindustani equivalent of Hindolam is Raga Malkauns which emerged from the Bhairavi thaat. This raga is said to have been created from Shiva's Cosmic dance (tandav). That is why it has a lot of vigour and energy about it (Anuradhamahesh, 2022). As we observe the end of the anupallavi, we can see that it gathers more momentum, speed and notational variety to lend a quick change of tempo within the existing beats.

The anupallavi itself creates a neat concise korvai within itself ending with a teermanam. To further beautify it, it is sung twice again in mela kalam to add speed, energy and dynamism to the song.

Charanam:

S; n; d n d; n d n, d m I g m d m g m g s n s I m g m g m, d n II

Nee ye arul vaay dayaanidhi ta…..ye akhilaandeshwari

d n S G G,; S S M G G M G G S S I n S S n S G, S S I d n d m g m d n II

Kasipura annapoorneshwari kanchikamakshi mathura Meenakshi

Lyrical Analysis:

Inspired by his devotion to the goddesses of the South Indian temples where Guru Govindarajan performed during one of his tours, he wrote the above Sahityam (G. Elangovan, personal communication, July 5, 2023). He explains how the Devi is merciful, like a mother to her devotees. He praises Akhilandeshwari, a form of Goddess Parvati- the divine mother who protects the entire universe in her womb. In Kashi, she is worshipped as Annapoorneshwari (a manifestation of Parvati- The Hindu Goddess of food and nourishment), in Kanchipuram as Kamakshi (the Supreme Goddess of Tranquility and beauty) and in Madurai as Meenakshi(another avatar of Goddess Parvati).

Observation:

It is interesting to note that Guru Govindarajan was well aware that Akhilandeshwari or Adi Parashakti is also worshipped collectively with Goddesses Meenakshi and Kamakshi. They are all various forms of Goddess Parvati. The melodic composition exudes bhakti rasa wherein the devotee is steeped in devotion towards the Goddess. The notes reach the higher octave in "kashipura Annapoorneshwari" and gently follow a receding pattern as they come to the end of the line "Madura Meenakshi".

Raga Analysis:

"Raga Hindolam," a well-known Janya raga from the Melakartha raga Natabhairavi, (Iyer, 1995) is one of the gentle, soulful, and pleasing meditative ragas. It is said that this raga is associated with spring season and that it conveys the mood of romance (Jayadevan, n.d.). Other than Shringara, it is also known to include the rasa of bhakti (Anuradhamahesh, 2022). That is why it is aptly used in this tillana as it not only has the freshness of Vasant Ritu (spring) but also incorporates feelings of piety and surrender which come under the umbrella of bhakti.

Choreographic Analysis:

In the Pallavi, the notes are placed in such a way that both chatusram and tisram beats can be utilised in the choreography giving flexibility to the dancer to create elaborate patterns and cross patterns to each Avartanam of the Pallavi. For Example, 2. Can be choregraphed in combinations of 323, 44, 2222, 242 or 332 with varieties of adavus like teerman, osi, kuditta mettu or pakka set to any yati.

The pattern of the rhythm is so framed that the entire line is held in full grip with respect to laya with the talented use of 'osi' before the last dhrutam of the Avartanam.

Since the Pallavi is sung repeatedly to enable the dancer to perform nritta sequences, it can incorporate bodily movements, poses, karanas and charis (Bhagyalekshmy, 1992), after completing the commencing movements of the eyes, shifting to the neck, proceeding to the erect torso, outstretched arms, standing postures, leg extensions, pirouettes and ardhamandali positions (Vatsyayan, 1974). The adavus can be performed in three varying degrees of speed - Vilambit, Madhya and Dhruta Laya, displaying difficult poses and complicated adavus and teermanams (Bhagyalekshmy, 1992).

For Kathak Dancers, these notes can be utilised in Mela kala or double the speed to create intricate footwork patterns in the form of tatkaars ending with with parans or creating intricate chakradhaars as the composition is conducive to applying different talas or rhythms within its framework.

In the Anupallavi, the syllables give an effect of tisram, chatusram and khandam sabdas getting involved in them so the nritta aspect can be choreographed with all these combinations,

either directly or as cross- patterns.

The ingenious use of notes blended into the tala structure gives the fluidity to the dancer to create patterns of Khandam, mishram, chatusram or even tisram ending with a quick dhit tit tai. They also help the dancer to cover the stage spatially in linear geometric patterns in different directions.

As Bharatnatyam usually follows the balanced left right pattern, fast paced, brisk korvai sequences can be inserted precisely here, in harmony with the melodic rhythms, to enhance the overall impact of both the song as well as the dance. These can be repeated on both the lateral sides for greater impact. The laghu can be choregraphed in many ways - as patterns of 4 4 4 4, ending with tai, dhit tit tai thrice or as patterns of 3 3 3 3 with tat dhit taam/takadimi ending with different combinations of teermanams like tai -tai -tai-dhit tit tai thrice. The dancer can cover the stage with long strides at 45-degree angles towards the audience while executing the Teermanams or he /she can can create circles through rotations and revolutions and then end with a crisp teermanam before taking on the araddi.

In the Charanam, to give more freedom to the dancer and to add variety to the Natya aspect of the performance, Guru Govindarajan has added many forms of Goddess Parvati. It not only educates about her various incarnations in different geographical locations and Temples but also helps the dancer create different visually appealing postures as found in the Temples of South India. Iconographically, Akhilandeshwari, a Saraswati emanation, (Amazzone, 2015a) is shown with a parrot on her right shoulder, two hands in Abhay and Varada mudras and two hands holding a lotus each across the shoulders. Annapoorneshwari is shown with a rice bowl in one hand and a ladle in the other. Goddess Kamakshi holds a sugarcane bow, and a bunch of five flowers in her lower two arms and a pasha (lasso) and ankush (goad) in her upper two arms. A parrot perches near the flower bunch. Goddess Meenakshi is depicted holding a parrot, which represents Kama, the God of love (Pattanaik, 2016). Such variety helps add new dimensions to the main theme alongwith teaching more aspects of mythology to the students of dance and help them interpret a singular idea in multiple ways and methods.

Results and Conclusion:

This research paper expands our understanding of Guru Govindarajan's Hindolam Tillana, shedding light on its artistic intent and its significant contribution to the Bharatnatyam repertoire. As a dance practitioner who is involved in teaching and choreographing, it can help pass down the nuances and intricacies to future generations. The valuable insights gained from this study have the potential to benefit practitioners, scholars, and enthusiasts alike, enriching their knowledge and enhancing their performances. By delving into the analysis of raga and tala, practitioners can deepen their understanding of musical elements, preserve the tradition, and widen their artistic expression through effective abhinaya. Furthermore, this research encourages collaboration and communication among artists, fostering a more engaging and cohesive experience for the audience.

Analysing this Tillana will help in understanding its core components. It will enhance a dancer's ability to interpret and execute the composition. Understanding the melodic nuances will enable musicians as well as dancers to synchronize their movements and expressions with the music more effectively, resulting in a more captivating performance. Analysis of tillana will foster a deeper understanding of its artistic intent and the emotions it seeks to convey. By delving deep

into the lyrics or Sahityam and exploring their historic and mythological relevance alongwith the religious beliefs of that region can help convey to the audience with a great amount of authenticity and expressiveness. Studying the tillana from all perspectives will facilitate collaboration between musicians and dancers. It will help in effective communication, shared vocabulary, mutual understanding, and a cohesive, harmonious performance. The findings of this study pave the way for further exploration and continued research in the dynamic field of Bharatnatyam.

References:

1. Amazzone, L. (2015a, December). Akhilandeshwari: The power of brokenness. Sutra Journal- Eternal Truths. Modern Voices. http://www.sutrajournal.com
2. Anuradhamahesh. (2022, September 11) https://anuradhamahesh.wordpress.com/
3. Bhagyalekshmy, S. (1992a). Approach to Bharatanatyam. Cbh Publications.
4. Gaston, A. (1996). Bharata Natyam: From Temple to Theatre. Manohar Publishers and Distributors.
5. Khokhar, A. Guru K J Govindarajan (1994). First City, July 1994.
6. Govindarajan, K.J. (1995)Bharata- Paamalai: By "Natya Laya Gnana Isai Oli" Guru K. J. Govindarajan. [English]. Bharata Natya Niketan (Regd) Publications.
7. Iyer, A. S. (1995). Ganamrutha Varna Malika (1995th ed.) [English]. The Ark Printers.
8. Jayadevan. (n.d.). Raga series, topics, India Video-Indiavideo.org: Visual gateway to india. https://www.indiavideo.org>Music.
9. Kothari, S., & Anand, M. R. (1997). Bharata Natyam. Marg Publications.
10. Krishna. (2018). Those Who Talk of Plagiarism in Carnatic Music Know Not About the Tradition.The Wire. http://thewire.in/the-arts/carnatic-music-plagiarism-tradition#amp_tf
11. Lusti-Narasimhan, M., & Watts, J. (2002). Bharatanatyam: la danse classique de l'Inde. Adam Biro.
12. Pattanaik, D. (2016). The Goddess Meenakshi of Madurai. Bangalore Mirror Bureau. https://bangaloremirror.indiatimes.com
13. Sarabhai, Understanding Bharata Natyam (7th ed.). (2000). [English]. Darpana Publication.
14. Vatsyayan, K. (1974). Indian Classical dance. Publications Division Ministry of Information & Broadcasting.

पूर्व–मधुमेह में यौगिक आहार और नाद योग की उपयोगिता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. अजय कुमार पाण्डेय** **डॉ. कन्चन चौधरी***** **कपिल***

सारांश

वर्तमान समय में पूर्व मधुमेह एक महामारी का रूप लेती जा रही है। जो भारत देश के साथ–साथ विश्व में भी तेजी से फैल रही है। प्रस्तुत शोध अध्ययन पूर्व मधुमेह क्या है, कैसे होता है, पूर्व–मधूमेह के कारण व लक्षण और यौगिक आहार व नादानुसंधान योग से पूर्व मधुमेह की नैदानिक चिकित्सा विधि के अध्ययन को दर्शाता है। अमेरिकन डायबिटीज एशोसियसन के अनुसार 359 मिलियन लोग पूर्व–मधुमेह से प्रभावित है और 2045 तक विश्व स्तर पर पूर्व–मधुमेह का प्रसार 532 मिलियन तक पहुँच जाएगा। व्यस्कों में पूर्व–मधुमेह की संख्या 2018 में 88 मिलियन थी। इंडियन काऊसिंल ऑफ मेडिकल रिसर्च की रिर्पोट में यह पाया गया है कि भारत मे पूर्व–मधुमेह के रोगियों की संख्या 136 मिलियन है। हमारे देश व समाज में आज भी बहुत से व्यक्ति पूर्व–मधुमेह में अनभिज्ञ हैं, उन्हें इस रोग का पता तब चलता है जब वे अन्य बीमारी के उपचार के लिए चिकित्सक के पास जाते हैं। वर्तमान समय में पूर्व–मधुमेह एक गंभीर समस्या बनती जा रही है जो देश के युवा वर्ग को प्रभावित कर रही है जिसके कारण युवा वर्ग में चिंता, तनाव, क्रोध और ईर्ष्या जैसे नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलते हैं। पूर्व–मधुमेह पैंक्रियाज ग्रन्थि के सुचारू रूप से कार्य ना करने और उचित आहार–विहारना होने के कारण होता है। जिसके कारण पैंक्रियाज इन्सुलिन का अनियमित स्राव कम करता है जिसमें हमारा शरीर ग्लूकोज का चपायच नहीं कर पाता है परिणामस्वरूप पूर्व–मधुमेह के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। यौगिक आहार और उचित जीवन–शैली के द्वारा पूर्व–मधुमेह का उपचार प्रबंधन किया जा सकता है। यह शोध–पत्र पूर्व–मधुमेह के प्रबंधन में यौगिक आहार और नाद योग की उपयोगिता के लिए प्रस्तुत किया गया है।

संकेत शब्द : *नाद योग, पूर्व–मधुमेह, मधुमेह, योग, यौगिक आहार।*

प्रविधि : *शोध–पत्र में द्वितीयक स्रोतों का सहयोग लिया गया है ।*

प्रस्तावना–

वर्तमान समय में पूर्व–मधुमेह एक गंभीर समस्या का रूप लेती जा रही है, जो पूरे भारत वर्ष में फैली हुई है। यह रोग व्यक्ति की असंतुलित जीवन–शैली के कारण होता है। भारत देश में 14 प्रतिशत लोग पूर्व–मधुमेह से ग्रसित है और लगातार यह संख्या बढ़ती जा रही है। वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है जिसके कारण तनाव व चिंता उत्पन्न होती है। जो यकृत रोग, हृदय रोग, उच्च–रक्तचाप, मोटापा, मधुमेह को उत्पन्न करती है। पूर्व–मधुमेह रोग इन्सुलिन नामक हर्मोन्स और असंतुलित आहार–विहार से सम्बन्धित रोग है जिसमें मुख्य समस्या शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उचित प्रकार से उपयोग न हो पाना है। अमेरिकन डायबिटीज एसोसिएशन के अनुसार, एक स्वस्थ व्यक्ति में खाली पेट ग्लूकोज की मात्रा 100 मि. ग्रा. प्रति ली. से कम होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति का खाली पेट रक्त शर्करा 100 मि. ग्रा. प्रति ली. से 125 मि. ग्रा. प्रति. ली. के बीच में पाई जाती है तो वह पूर्व–मधुमेह की स्थिति होती है। पूर्व–मधूमेह के उपचार मे योग अभ्यास और यौगिक आहार दोनों ही लाभकारी पाए गये हैं। इसमें कोशिका स्तर पर इन्सुलिन की अक्रियाशीलता पायी जाती है। इसे हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इन्सुलिन रेजिस्टेंश कहते है।

*पीएच. डी. (शोधार्थी), कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सह आचार्य, कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
***सहायक आचार्य, स्वास्थ्यवृत एवं योग विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यौगिक आहार द्वारा शरीर में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है। यौगिक आहार का वर्णन योग के ग्रन्थो में मिलता है। भगवद्गीता, हठप्रदीपिका और घेरण्ड–संहिता में यौगिक आहार के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। व्यक्ति उचित आहार–विहार और उचित जीवनशैली से पूर्व–मधुमेह रोग को नियंत्रित कर सकता है।

अध्ययन की आवश्यकता–

पूर्व–मधुमेह से अन्य रोगों का भी जन्म होता है, जिन्हें हम जोखिम–कारक कहते है, जैसे– आँख की समस्या, पेशाब का बार–बार आना, हाथ व पैरो में जलन होना और थकान महसूस होना। अगर व्यक्ति अपने आहार पर नियंत्रण करता है तो पूर्व–मधुमेह के साथ–साथ अन्य रोगों से भी बच सकता है। इस समय भारत देश में पूर्व–मधुमेह के रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। इससे भी अधिक रोगी अभी पूर्व–मधमेह के रोग एवं इसके दुष्प्रभावों से अनभिज्ञ हैं। पूर्व–मधुमेह के रोगियों की बढ़ती संख्या समाज के लिए चिंता का विषय है। अतः स्पष्ट है कि पूर्व–मधुमेह रोग के लिए वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है जिसमें यौगिक आहार और नादानुसंधान योग महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

मधुमेह क्या है?

मधुमेह या डायबिटीज मेलिटस एक चयापचय–सम्बन्धी रोग है जिसमें प्रमुख समस्या शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पाना है। कोशिकाएँ ग्लूकोज का उपयोग स्वतः नहीं कर पाती हैं, उसके लिए कोशिकाओं को इन्सुलिन नामक हार्मोन्स की आवश्यकता पड़ती है। अतः ग्लूकोज की चयापचयता इन्सुलिन पर निर्भर करती है। यह हार्मोन्स हमारे शरीर की पैंक्रियाज ग्रन्थि द्वारा स्रावित होता है। जब यह ग्रन्थि अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती तो इन्सुलिन का उत्पादन कम हो जाता है जिसे यौगिक चिकित्सा और आहार द्वारा बढ़ाया जा सकता हैं। फलस्वरूप शरीर में इन्सुलिन की कम मात्रा होने से ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। इसी उच्च रक्त शर्करा स्तर की अवस्था को पूर्व–मधुमेह या मधुमेह कहा जाता है। यह सामान्य रूप से 5–10 प्रतिशत व्यक्तियों में पाया जाता हैं।

मधुमेह के प्रकार–

1. टाइप–I डायबिटीज
2. टाइप–II डायबिटीज

टाइप–I डायबिटीज–

इस अवस्था में पैंक्रियाज इन्सुलिन का उत्पादन बंद कर देती है। इस स्थिति में कोशिकाओं को ग्लूकोज मिलना बंद हो जाता है। इस प्रकार की डायबिटीज में शरीर में इन्सुलिन का उत्पादन बंद हो जाता है। टाइप–I डायबिटीज में इन्सुलिन बाहर से इन्जेक्शन द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार का मधुमेह साधारणतः तरूणों में देखा जाता है।

टाइप–II डायबिटीज–

पाचन तंत्र और पैंक्रियाज ग्रन्थि का सुचारू रूप से कार्य न कर पाने के कारण यह डायबिटीज होता हैं। इस अवस्था में पैंक्रियाज इन्सुलिन का स्राव तो करती है लेकिन शरीर की आवश्यकता से कम करती हैं या कोशिका स्तर पर इन्सुलिन की निष्क्रियता पाई जाती है। जिससे शरीर में रक्त शर्करा का स्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है और फिर इस रोग की जटिलताएँ विभिन्न अंगों में दिखाई पड़ने लगती है। यदि रोगी पुर्नजीवन प्रदान करने वाले योगाभ्यास को नियमित रूप से करे तो इस रोग से सम्बन्धित स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त कर सकता है। यदि शरीर में इन्सुलिन हार्मोन्स की मात्रा कम हो तो हमारे शरीर की कोशिका ग्लूकोज के होते हुए भी ग्लूकोज को इंधन के रूप में उपयोग नहीं कर पाएगी। योगाभ्यास द्वारा हम शरीर में इन्सुलिन नामक हार्मोन्स की मात्रा को बढ़ा सकते हैं और इसके साथ–साथ दैनिक आहार में कार्बोहाड्रेट की उचित मात्रा का सेवन करें तो भी पूर्व–मधुमेह को नियंत्रित किया जा सकता है। पूर्व–मधुमेह एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर में ग्लूकोज का स्तर धीरे–धीरे बढ़ना शुरू कर देता है और आगे चलकर यह टाइप–II डायबिटीज का रूप ले लेती हैं। यदि हम पूर्व–मधुमेह की स्थिति में ही आपने खान–पान अर्थात आहार–विहार को ठीक कर लेते है तो टाइप–II डायबिटीज और इससे उत्पन्न होने वाले उपद्रवों की स्थिति से बचा जा सकता है।

पूर्व–मधुमेह क्या है?

पूर्व–मधुमेह एक ऐसी स्थिति है जिसमें हमारे

शरीर में ग्लूकोज का स्तर सामान्य स्तर से बढ़ जाता है इतना भी नही बढ़ता है कि हम उसे मधुमेह टाइप–II डायबिटीज कह सके। विश्व स्वास्थ्य सगंठन के अनुसार 3 से 5 साल में 25 प्रतिश पूर्व–मधुमेह के लोग टाइप–2 डायबिटीज में रूपांतरित हो जाते हैं। वर्तमान समय में ग्लाइकासिलेटेड हिमोग्लोबीन भी पूर्व–मधुमेह की जांच के लिए प्रयोग किया जाता है। हम जो भी पदार्थ या ग्लूकोज भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं वह कार्बोहाइड्रेट नाम से जाना जाता है। जो हमारे शरीर की पाचन–क्रिया द्वारा ग्लूकोज में रूपांतरित कर दिया जाता है। यह ग्लूकोज हमारी छोटी आँत से अवशोषित होकर लीवर में इकठ्ठा हो जाता है तथा जरूरत पड़ने पर पूरे शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है अर्थात् ग्लूकोज हमारे शरीर में ईधन के रूप में प्रयोग होता है। पूर्व–मधुमेह के अन्तर्गत तीन प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं–

1. खाली पेट ग्लकोज की मात्रा की जांच।
2. भोजन के दो घंटे बाद की ग्लूकोज की जांच।
3. तीन महीने की औसत ग्लूकोज स्तर की जांच।

पूर्व–मधुमेह के लक्षण–

इन्सुलिन हार्मोन्स के कम स्राव एवं इन्सुलिन की निष्क्रियता के कारण ग्लूकोज का पाचन नहीं हो पाता है जिसके कारण शरीर में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। इस स्थिति को हाइपरग्लेसिमिया कहते हैं जिसके साथ पूर्व–मधुमेह रोगी में निम्नलिखित लक्षण नजर आने लगते हैं–

1. थकान
2. गला सूखना
3. हाथ व पैर में जलन महसूस होना
4. पेशाब का बार–बार आना
5. जोड़ो में दर्द
6. नेत्र ज्योति का कम होना
7. वजन कम होना
8. अधिक भूख का लगना

पूर्व–मधुमेह के जोखिम कारक–

1. टाईप–II डायबिटीज
2. उच्च रक्तचाप
3. हृदय रोग
4. किडनी रोग
5. यकृत रोग

पूर्व–मधुमेह के कारण–

यौगिक चिकित्सा किसी भी रोग के जड़ से चिकित्सा करती है। अतः पूर्व–मधुमेह की चिकित्सा से पहले उसके कारण को जानना जरूरी है। वैसे तो पूर्व–मधुमेह के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें से कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं–

1. **असंतुलित आहार**– जैसा खाओगे अन्न वैसा रहेगा मन। इसका वर्णन योग के ग्रन्थों में भी पाया जाता है। भोजन की अधिकता और असंतुलित आहार के कारण अनेक रोगों का जन्म होता है जिनमें मोटापा, उच्च–रक्तचाप और पूर्व मधुमेह जैसी बिमारियाँ भी शामिल हैं। पूर्व–मधुमेह रोग में अधिक कार्बोहाइड्रेट वाला भोजन मुख्य कारण माना जाता हैं जिसके कारण शरीर में बढ़े हुए ग्लूकोज को नियंत्रित करने के लिए पैंक्रियाज को अधिक कार्य करना पड़ता है। यदि लंबे समय तक इस प्रकार से प्रतिदिन अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण किया जाए तो हमारी पैंक्रियाज पर दबाव बढ़ जाता हैं। यदि हम उचित मात्रा में भोजन करेगे तो पैंक्रियाज द्वारा उचित मात्रा में इन्सुलिन हार्मोन्स के स्त्राव से इसको नियंत्रित किया जा सकता है। योग ग्रन्थ हठयोग–प्रदीपिका में इसका वर्णन भी किया गया है।

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यं शड्भिर्योगो विनश्यति।।1/15

अर्थात् अधिक–भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम पालन में आग्रह, अधिक लोक संम्पर्क तथा मन की चंचलता ये सभी रोग उत्पन्न करने वाले और योगमार्ग की प्रगति में बाधक है। अधिक–भोजन से अनेक बीमारियों का जन्म होता हैं।

असंतुलित जवीन–शैली के कारण

आज का समय प्रतिस्पर्धा का समय है जिसके कारण व्यक्ति की जीवनशैली अस्त–व्यस्त हो गई है। उचित समय पर शयन और जागरण की प्रक्रिया नहीं हो पाती है। लोग पश्चिमी सभ्यता के पीछे भाग रहे हैं जिसके कारण अनेक प्रकार के असंतुलित जीवन–शैली

से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे– उच्च–रक्तचाप, तनाव, पूर्व–मधुमेह इत्यादि। जीवन–शैली से संबधित वर्णन भगवद्–गीता में इस प्रकार से किया गया है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वपनावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 6/7

अर्थात् उचित आहार–विहार, चेष्टा, आदि कर्म एवं शयन और उचित समय पर जागरण करने वाला व्यक्ति सभी रोगो और दुःखो से मुक्त रहता हैं। यदि व्यक्ति अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित कर लेता है तो वह असंतुलित जीवनशैली से होने वाले रोगों से बच सकता है जैसे– मोटापा, उच्च–रक्तचाप व पूर्व–मधुमेह।

2. **तनाव के कारण**– पूर्व–मधुमेह रोग कहीं–ना–कहीं तनाव से भी जुड़ा हुआ है। तनाव भौतिक स्तर से मानसिक व भावनात्मक स्तर पर रूपांतरित हो जाता है। हमारे शरीर में स्थित एड्रीनल ग्लैंड काट्रिको स्टेराइड नामक हार्मोन्स का स्त्राव करती है जिसे स्ट्रेस हार्मोन्स भी कहा जाता है। यह हार्मोन्स हमारे मानसिक तनाव को नियंत्रित करता है। यह हार्मोन्स रक्त प्रवाह में ग्लूकोज को छोड़ने का कार्य भी करता है। मानसिक तनाव बढ़ जाने के कारण यह कार्य सुचारू रूप से नही हो पाता है जिसके कारण शरीर में ग्लूकोज की मात्रा सामान्य से अधिक बढ़ जाती है। रक्त में सामान्य से ज्यादा बढ़े ग्लूकोज स्तर को ही पूर्व–मधुमेह कहा जाता है। उचित आहार अर्थात् सात्विक आहार ग्रहण कर हम मानसिक तनाव को कम कर सकते हैं। सात्विक आहार में मोटा अनाज, ताजे फल, दूध, आदि पदार्थ शामिल हैं।

3. **कोशिका द्वारा ग्लूकोज अवशोषित न करना**– इन्सुलिन का कार्य ग्लूकोज को कोशिकाओं में प्रवेश करवाना है। इन्सुलिन पैंक्रियाज की बीटा कोशिका से निकलता है। वर्तमान समय में व्यक्ति की जीवनशैली निर्जीव होती जा रही है। अस्त–व्यस्त दिनचर्या के कारण व्यक्ति शारीरिक अभ्यास नहीं कर पाता है जिसके कारण इन्सुलिन हार्मोन्स शरीर में पर्याप्त मात्रा में होने के बाद भी वह ग्लूकोज का अवशोषण नहीं कर पाता हैं और लगातार शरीर में ग्लूकोज का स्तर बढ़ता जाता है। यह बढ़ा हुआ स्तर आगे चलकर पूर्व–मधुमेह में बदल जाता है। यौगिक अभ्यास, आसन, प्राणायाम के द्वारा कोशिका का ग्लूकोज अवशोषित न कर पाने की समस्या का समाधान किया जा सकता है। आसन और संतुलित आहार से कोशिका का ग्लूकोज ग्रहण करने की क्षमता में सुधार होता है जिससे पूर्व–मधुमेह की स्थिति से बचा जा सकता है।

पूर्व–मुधमेह में यौगिक आहार और नादयोग चिकित्सा

मात्र रक्त शर्करा को नियंत्रित रखने हेतु औषधियों की मात्रा बढ़ाते जाना स्थायी समाधान नहीं है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आधुनिक चिकित्सा–पद्धति रोग के मूल कारण दूर करने में सक्षम नहीं है। वह मात्र लक्षण दबाने का प्रयत्न करती है। यौगिक चिकित्सा द्वारा पूर्व–मधुमेह पर नियत्रंण पाना संभव है। जिन व्यक्तियों को पूर्व–मधुमेह का नया–नया पता लगता है तथा वे किसी अन्य रोग से पीड़ित नहीं है। उन्हें यौगिक चिकित्सा द्वारा सर्वाधिक लाभ मिल सकता है। यदि वे किसी कुशल योग चिकित्सक के मार्गदर्शन में यौगिक दिनचर्या व यौगिक आहार को अपनाते हैं तो वह पूर्व–मधुमेह रोग को समूल नष्ट करने में सफल हो सकते है। योग अनियत्रिंत, गरिष्ठ तथा राजसिक आहार पर आधारित दिनचर्या को स्वीकार नहीं करता है।

घेरंण्ड–संहिता के अनुसार आहार–

घेरण्ड–संहिता में यौगिक आहार का वर्णन मिलता है। जिसमें मिताहार के बारे में चर्चा है।

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।
नानारोगो भवेतस्यकिञ्चिधोगो न सिध्यति।। 5/16

अर्थात् जो साधक योग आरंभ करने के काल में मिताहार नहीं करता है। उसके शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। उसी प्रकार यदि एक सामान्य व्यक्ति मिताहार यानि संतुलित आहार को ग्रहण कर पूर्व–मधुमेह जैसे रोग को भी नियंत्रित कर सकता है। प्रतिकूल भोजन या असंतुलित भोजन करने से अनेक प्रकार की शारीरीक बिमारियाँ होने की सम्भावना रहती हैं। जिसके लिए आहार संबंधी नियम की चर्चा की गई है। योग के ग्रन्थों में आहार–सबंधी नियम बताये गये है–

1. अर्थात् अमाशय का 50 प्रतिशत भाग अन्न से भरना, उसके बाद 25 प्रतिशत अर्थात् एक चौथाई भाग जल से भरना और शेष 25 प्रतिशत यानि एक चौथाई भाग वायु सचांलन के लिए खाली रखना चाहिए।

अत्रेन पूरयेदधं तायेन तु तृतीयकम्।
उदरस्य तृतीयांश संरक्षेद्वायुचारणे।। 5/22

2. बारिश में कौन–सी सब्जी या फल खाने चाहिए।

3. चावल, गेहूँ, जौ, चना तथा उड़द की दाल से बनी रोटी खानी चाहिए।

4. पूर्व–मधुमेह रोगियों के लिए अनेक प्रकार के मोटे अनाज से बनी रोटियाँ लाभदायक होती हैं। वह ग्लूकोज को नियंत्रण करती है और साथ ही शरीर को ताकत प्रदान करती है।

शाल्यत्रं यवपिष्टं वा तथा गोधूमशिष्टकम्।
मुद्रं माशचणकादि शुभ्रं च तुशवर्जितम्।। 5/17

5. मौसमी हरी सब्जियों का सेवन करना चाहिए।

6. पेट भर भोजन करना वर्जित है अर्थात मक्खन, धृत, गुड़, शक्कर और अम्ल रस आदि से बचना चाहिए।

नवनीतं धृतं क्षीरं शर्कराधैक्षवं गुडम्। 5/26

7. ज्यादा खट्टी या तली भुनी वस्तुएं नहीं खानी चाहिए जो पूर्व–मधुमेह रोगियों के लिए भी नुकसानदायक है।

यौगिक आहार का महत्व–

योग के ग्रन्थों में योग अभ्यास से लाभ प्राप्ति हेतु साधक के आहार पर विशेष बल दिया गया है। बिना मिताहार के साधक को नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते है। श्रीमद्–भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि अधिक खाने वाले, या कम खाने वालो को योग सिद्ध होता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। 6/16

अर्थात् हे अर्जुन! जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता, उसके योगी बनने की कोई सम्भांवना नहीं है।

भगवद्–गीता में आहार को तीन वर्गो में बाँटा गया है–

1. सात्विक आहार
2. राजसिक आहार
3. तामसिक आहार

सात्विक आहार– अर्थात् जो भोजन सात्विक होता है। वह आयु बढ़ाने वाला, जीवन को शुद्ध करने वाला, बल, स्वास्थ्य, सुख और तृप्ति प्रदान करने वाला होता है। ऐसा भोजन स्वास्थप्रद तथा मन को भाने वाला होता है। यही आहार पूर्व–मधुमेह रोगियों के लिए भी लाभकारी होता है।

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्याआहाराः सात्विकप्रियाः।। 17/8

राजसिक आहार– अर्थात् अत्यधिक तिक्त, खट्टे, नमकीन चटपटे, शुष्क तथा जलन उत्पन्न करने वाले भोजन रजोगुणी प्रवृति के होते है। ऐसे भोजन दुःख शोक तथा रोग उत्पन्न करने वाले होते है। पूर्व–मधुमेह रोगियों को ऐसे भोजन से बचना चाहिए तथा सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए।

कट्वम्ललवणात्युश्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहाराराजसस्येश्टादुःखशोकामयप्रदाः।। 17/9

तामसिक आहार– अर्थात् खाने से तीन घंटे पूर्व पकाया गया, स्वादहीन, वियोजित एवं सड़ा, जूठा तथा अस्पृश्य वस्तुओं से युक्त भोजन उन लोगों का प्रिय होता है जो तामसी प्रवृति के होते हैं। तामस् प्रकृति का भोजन रोग को बढ़ाने वाला होता है जिसके कारण अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

यातयामंगतरसंपूतिपयुर्शितंचयत्।
उच्छिश्टमपिचामेध्यं भोजनंतामसप्रियम्।। 17/10

यौगिक आहार–

यौगिक आहार की चर्चा योग के अनेक ग्रन्थों में की गई हैं सभी में मुख्य रूप से आहार के बारे में कहा गया है। युक्ताहार अर्थात् मिताहार। मिताहार का अर्थ–भर पेट भोजन करने की जो मात्रा है उसे कम भोजन ग्रहण करना ही मिताहार हैं। भोजन लेने का तरीका कैसा होना चाहिए, इसके बारे में भी योग के ग्रन्थों में निर्देश दिये गये है। हठ प्रदीपिका में भी बताया गया है कि किस प्रकार का भोजन ग्रहण करना चाहिए–

पुश्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोशणम्।
मनोभिलशितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।। 1/63

अर्थात् भोजन पुष्टि देने वाला, शरीर का विकास करने वाला तथा सभी कार्यों की पूर्ति करने वाला होना चाहिए।

पूर्व–मुधमेह में नादयोग चिकित्सा–

'नादयोग' एक प्रकार का संगीत ध्यान है। नाद का अर्थ–ध्वनि या आवाज होता है। नादयोग शरीर व मन

के बीच तालमेल स्थापित कर मानसिक समस्याओं के साथ–साथ शारीरिक समस्याओं को भी दूर करता है। नाद योग साधना द्वारा ध्वनि के माध्यम से शरीर में ऊर्जा का प्रवाह किया जाता है। इसी ऊर्जा से मानसिक तनाव को कम किया जा सकता है। पूर्व–मधुमेह रोगियों में अनियंत्रित रक्त शर्करा का एक मुख्य कारण तनाव भी है। नादयोग से उत्पन्न ध्वनि तनाव को कम करने के साथ–साथ रक्त शर्करा को भी नियंत्रित करता है। नादयोग में प्रारंभ में शंख जैसी ध्वनि सुनाई पड़ती है। फिर मेघ ध्वनि जैसा स्वर सुनाई पड़ता है, अंतिम में भ्रमर जैसी ध्वनि सुनाई देती है। जिससे अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति होती है और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

स्वामी स्वात्माराम ने हठ प्रदीपिका में लय के सवा करोड़ प्रकार बताये हैं जिनमें से नादानुसंधान को मुख्य माना जाता है–

मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धय शाम्भवीम्।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तस्थमेकधीः।। 4/67

अर्थात् मुक्तासन में बैठकर, शम्भावी–मुद्रा अपनाकर साधक एकाग्रचित मन से अपने दाहिने कान से शरीरान्तर्गत ध्वनि को सुनने का प्रयास करे।

श्रवणपुटनयनयुगल ध्राणमुरवानां निरोधनं कार्यम्।
शुद्धसुशुम्नासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः।। 4/68

अर्थात् दोनों कान, दोनों आँख, दोनों नासिका, विवर और मुख को बंद करने का अभ्यास करें, तब विशुद्ध सुशुम्ना–मार्ग में स्पष्ट और पवित्र नाद सुनाई देता है। जब सुशुम्ना श्रवण केन्द्र को स्पर्श करती है तभी ध्वनि की संवेदना का अनुभव होता है। इसी ध्वनि से रोगी को मानसिक स्वास्थ प्राप्त होता है। पूर्व–मधुमेह के रोगियों में ग्लूकोज स्तर बढ़ने का एक मुख्य कारण तनाव भी है। जब सामान्य व्यक्ति में तनाव बढ़ता है तो उसके शरीर के हार्मोन्स का संतुलन बिगड़ जाता है। पूर्व–मधुमेह के रोगियों में जब इस प्रकार की प्रक्रिया होती है तो उनके शरीर की पैंन्क्रियाज ग्रन्थि सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती है। जिसके कारण पूर्व–मधुमेह के रोगी में रक्त शर्करा का स्तर बढ़ जाता है। यदि पूर्व–मधुमेह रोगी नित्य नादानुसंधान का अभ्यास करें तो वह तनाव के स्तर को कम करने के साथ–साथ ग्लूकोज के स्तर को भी कम कर सकता है। नादानुसंधान में जो ध्वनि सुनाई देती है वह मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करती है। इसलिए रोगी को नित्य इसका अभ्यास करना चाहिए।

परिचर्चा–

पूर्व–मधुमेह एक विकृत रोग है जिसमें रोगी के शरीर में रक्त शर्करा का स्तर सामान्य से अधिक हो जाता है। इस रोग में आधुनिक चिकित्सा के दुष्परिणाम भी सामने आए हैं जिसमें उच्च रक्तचाप, हृदयाघात और नींद न आना आदि रोग शामिल है।

यौगिक चिकित्सा अर्थात् यौगिक आहार द्वारा संम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रोत्साहित किया जा सकता है। आहार चिकित्सा द्वारा रोगी के रक्त शर्करा को नियत्रंण किया जा सकता है। यौगिक आहार का वर्णन योग के ग्रन्थों में पाया गया जिसमें आहार के बारे में विस्तृत चर्चा मिलती है। योग के ग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि हमें आहार किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए और भोजन में किस–किस पदार्थ को ग्रहण कर सकते हैं। जिसकी चर्चा पथ्य और अपथ्य के रूप में की गई है। यदि सामान्य व्यक्ति यौगिक आहार और नादानुसंधान को अपनी दिनचर्या में शामिल करता है तो वह निशचित रूप से असंतुलित जीवन–शैली से होने वाले रोगों से बच सकता है।

उपसंहार :

वर्तमान युग में पूर्व–मधुमेह महामारी का रूप लेती जा रही है। इस बीमारी के कारण मुख्य रूप से आहार–विहार और असंतुलित जीवनशैली हैं। आज पूर्व–मधुमेह रोग आम–जन तक पहुँच गया है। शहरों के साथ–साथ गाँव में भी पूर्व–मधुमेह के रोगियों की संख्या में बढ़ोत्तरी पाई गई है जिसके लिए उचित चिकित्सा–पद्धति की आवश्यकता है। नादानुसंधान और यौगिक आहार के माध्यम से पूर्व–मधुमेह रोग को नियंत्रित किया जा सकता है तथा इस रोग के पुनः उभरने की संम्भावना भी खत्म हो सकती है। यौगिक चिकित्सा को प्रत्येक व्यक्ति अपनी जवीन–शैली में शामिल कर सकता है, क्योंकि उचित आहार–विहार द्वारा ही हम असंतुलित जीवन–शैली से होने वाले रोगों पर नियत्रंण पा सकते हैं। योग के ग्रन्थों में आहार के लिए निर्देश दिए गये हैं जिनका पालन पूर्व–मधुमेह रोगी को करना चाहिए । साथ ही, पथ्य और अपथ्य की भी चर्चा की गई है। घेरण्ड–संहिता में अनेक प्रकार के मोटे अनाज, गेहूँ, चना और जौ से मिलकर बनी

हुई रोटी का सेवन करने के लिए कहा गया है। विभिन्न प्रकार के मोटे अनाज से बनी रोटी पूर्व–मधुमेह में लाभकारी होती है जिससे शरीर में ग्लूकोज का स्तर सामान्य रहता है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यौगिक आहार से पूर्व–मधुमेह रोग को नियत्रिंत किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए।

उपरोक्त विषय का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि नादानुसंधान चिकित्सा, यौगिक आहार और नाद योग के माध्यम से अंतुलित जीवन–शैली से होने वाले रोगों से बचा जा सकता है तथा पूर्व–मधुमेह रोग में ग्लूकोज स्तर को भी नियत्रिंण किया जा सकता है।

संदर्भ–सूची :

1. अमेरिकन डायबिटीज एसोसिएशन (2022) स्टैण्डर्ड ऑफ मेडिकल साइंस केयर इन डायबिटीज, एस–14
2. सरस्वती, डॉ0 स्वामी कर्मानन्द, (2013), रोग और योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, ISBN 978-81-86336-12-0
3. सरस्वती, डॉ0 स्वामी शंकरदेवानंद, (1662), दमा और मधुमेह में योग अभ्यास, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, ISBN-81-84787-48-4
4. अमेरिकन डायबिटीज एसोशिएसन (2021), स्टैण्डर्ड ऑफ मेडिकल सांइस केयर इन डायबिटीज।
5. कुशवाहा, जयराम, (2018), मधुमेह का आयुर्वेदिक एवं यौगिक प्रबन्धनः एक समीक्षात्मक अध्ययन, इटंरनेशनल जरलन ऑफ रिर्सच इन मेडिकल साइंस एडं टेक्नोलॉजी, ISSN:-2455-5134
6. सरस्वती, स्वामी निरजानंद जरनल, (2013), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, ISBN-978-81-86336-35-9
7. प्रभुपाद, श्रीमद् ए0सी0 भक्तिवेदांत स्वामी, श्रीमद भगवद्गीता यथारूप, भक्ति वेदांत ट्रस्ट, श्लोक, पृष्ठ, सं0–218
8. दिगम्बरजी, स्वामी, झा डॉ0 पीताम्बर (2016) हठप्रदीपिका, स्वामी कुवलयानंद मार्ग, लोनावला पूणे, ISBN-978-818-948-5122.
9. दिगम्बर, स्वामी जी और झा, पीताम्बर, संस्करणकर्ता (14 फरवरी 1980): स्वात्माराम–कृत, कैवल्यधाम लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र
10. दशोरा, नन्दलाल, (2017) पातंजल योगसूत्र योगदर्शन, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, ISBN-081-86955-17-8
11. शंकर, डॉ0 गणेश, डॉ0 बाबूलाल दायमा (2011), योग एवं आहार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली–110059, ISBN-978-93,80190-66-2

शास्त्रीय संगीत के प्रचार में समाचार पत्रों की भूमिका

डॉ. अमिता शर्मा** लक्की मल्होत्रा*

सारांश

सृष्टि के कण–कण में नाद का बोध, संगीत कला की पृष्ठभूमि है। नाद से उत्पन्न स्वर तथा लय के समायोग से अनुप्राणित संगीत भौतिकता से विह्वल मानव को आत्मिक शान्ति प्रदान करता है। संगीत कला मनुष्य के विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का सरल, सुबोध एवं सौन्दर्यात्मक माध्यम है।

शास्त्रीय संगीत का विकास अगणित प्रमुख संगीत शास्त्रियों की उपलब्धि का परिणाम है जिन्होंने शास्त्रीय संगीत की साधना कर हमें इस नियमबद्ध संगीत का विकसित रूप प्रदान किया है।

समाज के अन्तर्गत समय–समय पर घटित विभिन्न घटनाओं के प्रति मनुष्य संवेदनशील रहता है और अपने विचार भी अभिव्यक्त करता है। विभिन्न प्रकार की घटनाओं की सूचना ही समाचार कहलाती है जो समाचार पत्रों द्वारा जनता तक पहुँचती है।

समाचार पत्र दैनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग है जो पाठकों को देश–विदेश की गतिविधियों से अवगत करवाता है। शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत के कार्यक्रमों से सम्बंधित सूचना, प्रतिवेदन, समीक्षा, लेख, फीचर इत्यादि के प्रकाशन द्वारा समाचार–पत्र संगीत कला के प्रचार में अहम भूमिका निभा रहे हैं।

मुख्य शब्द : *शास्त्रीय संगीत, समाचार–पत्र, समाज*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है ।*

मानव एक बुद्धिजीवी प्राणी है। वह जिस परिवार में जन्म लेता है और जिस जाति एवं समाज में पलता है वह उसी जाति समुदाय व समाज के रीति–रिवाज़ों व संस्कारों का अनुशीलन करता है। समाज के अन्तर्गत समय–समय पर घटित विभिन्न घटनाओं के प्रति संवेदनशील रहता है तथा अपने विचार भी प्रस्तुत करता है। किसी भी मनोगत भाव, जो आसपास के परिवेश से प्रतिफलित होते हैं, उनकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम विभिन्न कलाएं हैं। लेखन कला के विकास के साथ जहाँ कई प्रकार के शास्त्र ग्रन्थ रचे गए, वहीं घटनाओं को क्रम से जानने का साधन भी शब्दाभिव्यक्ति ही रही है। लिखित संदेश या घटनाओं की सूचना के लिए समाचार तथा इन सूचनाओं को दूसरों तक पहुँचाने के माध्यम को समाचार–पत्र कहा जाता है। समाचार को अंग्रेज़ी में NEWS कहते हैं यानि चारों दिशाओं (नौर्थ, ईस्ट, वेस्ट, साऊथ) में घटित विभिन्न घटनाओं की सूचना–प्राप्ति समाचार कही जाती है।[1]

हेरी सी हीथ के अनुसार–''उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जिनमें जनता की दिलचस्पी हो, उन्हें हम समाचार कह सकते हैं।''[2]

श्री खाडिलकर के विचार में –''दुनिया में कहीं भी किसी समय कोई छोटी–मोटी घटना या परिवर्तन हो उसका शब्दों में जो वर्णन होगा, उसे समाचार या खबर कहते हैं।''[3]

जार्ज एच मैरिस के विचारानुसार – ''समाचार जल्दी में लिखा गया इतिहास है।''[4]

उपरोक्त परिभाषाओं पर विचार करें तो समाचार के विषय में यह कहा जा सकता है कि समाचार एक सूचना है जो सत्य घटनाओं पर आधारित होती है। इसका उद्देश्य जनता को मात्र सूचित करना ही नहीं अपितु समाज को सही चिन्तन की दिशा की ओर प्रवृत्त कर उनके बौधिक स्तर को शिक्षित कर ऊपर उठाना है।

समाचारों के उद्देश्यपरक होने के कारण वर्तमान जीवन में समाचार–पत्रों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

*शोधकर्त्री, पी.जी.जी.सी.जी.–11, चण्डीगढ़।
**अध्यक्ष, संगीत विभाग, पी.जी.जी.सी.जी.–11, चण्डीगढ़।

समाचार–पत्र जहाँ विविध विषयक सूचनाएं प्रदान करते हैं वहीं विभिन्न कला के क्षेत्रों से सम्बंधित गतिविधियों एवं उपलब्धियों की सूचना भी प्रदान करते हैं।

आर्थर मिलर के अनुसार–''एक अच्छा समाचार–पत्र किसी राष्ट्र का स्वयं से संवाद है।''[5]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के मतानुसार– ''समाचार–पत्र का प्राथमिक उद्देश्य जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें अभिव्यक्त करना है। द्वितीय उद्देश्य जनता की वांच्छनीय भावनाओं को उजागर करना है। तीसरा उद्देश्य व्यवस्थागत त्रुटियों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना है।''[6]

सी.बी. शान के विचार में– ''दैनिक समाचार–पत्र गरीबों का विश्वविद्यालय है।''[7]

जहाँ समाचार–पत्र का उद्देश्य विभिन्न घटनाओं के सूचनाक्रम को लिपि तथा भाषाबद्ध कर प्रकाशित करना है और समाज को नैतिकता और स्वस्थ चिन्तन की ओर प्रवृत करना है, वहीं संगीत सम्बंधित सूचनाओं को समाचार–पत्रों में समाविष्ट कर संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों, आयोजनों और कलाकारों के माध्यम से संगीत के रस को समान्य जनता तक पहुँचाना है। आज संगीत के अभ्यास, प्रदर्शन, शिक्षण, चिंतन सभी प्रकार के क्रियाकलापों में समाचार पत्र अहम् भूमिका निभाते है।

सांगीतिक क्षेत्र में भारतीय शास्त्रीय संगीत का सर्वोपरि स्थान है। भारतीय संगीत का उत्कृष्ट स्वरूप शास्त्रीय संगीत के नाम से जाना जाता है। शास्त्रीयता से अभिप्राय यह है कि ऐसा संगीत जिसमें शास्त्रीय विधि का प्रयोग किया जाता हो अर्थात् जो संगीत परम्परानुसार तथा शास्त्रबद्ध हो जिसमें राग के दस लक्षणों में नियमबद्ध होकर गाया बजाया जाए।

समाचार–पत्र, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा इस समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के प्रचार, विस्तार तथा शिक्षा के लिए एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में उभरते हैं। शास्त्रीय संगीत के कलाकारों, उनके कार्यक्रमों के आयोजन, संगीत समारोहों के विषय में जानकारी प्रदान करने में समाचार–पत्र अहम भूमिका निभाते हैं वे साक्षात्कार, लेख, फीचर तथा समीक्षा प्रकाशित करके पाठकों को शास्त्रीय संगीत की नवीनतम घटनाओं के विषय में जागरूक करते हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध कलाकारों, उभरती हुई नई प्रतिभाओं और उनकी उपलब्धियों के विषय में प्रकाशित कर, समाचार पत्र जनता के बीच कला के प्रति उत्साह उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

1. महत्त्वपूर्ण स्त्रोत

समाचार पत्र शास्त्रीय संगीत के बारे में सूचना प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में कार्य करते हैं। वे शास्त्रीय तथा अन्य किसी भी प्रकार के संगीत क्षेत्र में होने वाली नवीनतम घटनाओं, कॉन्सर्टों, त्योहारों तथा विशेष संगीत सम्मेलनों के बारे में पाठकों को अद्यतनित (updated) रखते हैं। कलाकारों की कला का प्रदर्शन तथा उनकी कला को बढ़ावा देने में समाचार–पत्रों का बहुत योगदान रहता है।

2. कलाकारों से साक्षात्कार–सम्बंधी लेख

समाचार–पत्रों में प्रमुख कलाकारों से साक्षात्कार तथा बड़े–बड़े लेख प्रकाशित किए जाते हैं जिनमें उनकी उपलब्धियों, संगीत कला का सफर तथा उनकी शैली का विवरण होता है जिसके कारण कलाकारों का पाठकों से सम्बंध स्थापित होने में सहायता मिलती है तथा उनकी कला के प्रति विशेष सम्मान भी प्राप्त होता है।

3. सांगीतिक विरासत का प्रलेखीकरण

समाचार–पत्र शास्त्रीय संगीत की विरासत के प्रलेखीकरण (Documentation) तथा संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कलाकारों के जीवन परिचय, शिक्षा, पुरस्कार इत्यादि की जानकारी फीचर या लेख के रूप में प्रकाशित होकर संगीत प्रेमियों तक पहुँचती है तथा लिखित प्रमाण के रूप में सुरक्षित हो जाती है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक लेख, पुनर्निर्माणात्मक लेख, संग्रहशाला सामग्री प्रकाशित की जाती है जो शास्त्रीय संगीत के विकास के बारे में प्रकाश डालती है। यह प्रलेखीकरण आगामी पीढ़ी के लिए शास्त्रीय संगीत की सांस्कृतिक विरासत और परम्परा के संरक्षण में सहायक होता है।

4. तकनीकी सिद्धान्तों की व्याख्या

शास्त्रीय संगीत के सैद्धान्तिक तथा तकनीकी पहलुओं की व्याख्या करने वाले लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित किए जाते हैं जिसमें विभिन्न राग, ताल, शास्त्रीय संगीत के इतिहास तथा महान संगीतकारों के जीवन के

विषय में चर्चा की जाती है। ऐसी ज्ञानवर्धक सामग्री पाठकों को इस कला प्रणाली की जटिलताओं तथा गहराइयों को समझने में सहायक होती है।

5. संगीत की विभिन्न शैलियों का ज्ञान

प्रसिद्ध संगीतकारों तथा विद्वानों से साक्षात्कार करके, समाचार पत्र पाठकों को इन कलाकारों के जीवन, उनकी प्रेरणाएं तथा उनकी कला की शैली जैसे विषयों के बारे में जानकारी देते हैं विभिन्न कलाकारों की विभिन्न शैलियों के विषय में लेख प्रकाशित कर समाचार–पत्र समाज में शास्त्रीय संगीत के प्रति जागरुकता, आदर, सम्मान तथा सीखने की इच्छा को बढ़ावा देते हैं।

6. उभरते कलाकारों को प्रोत्साहन

समाचार–पत्र उभरते कलाकारों की प्रतिभा के बारे में प्रकाशित कर उनकी कला को मान्यता प्रदान करने में सहायक होते हैं वे अक्सर नवयुवक कलाकारों तथा संगीतकारों से साक्षात्कार कर प्रकाशित करके उन्हें तथा उनकी कला को पाठकों/जनता तक पहुँचाते हैं जिससे उनके करियर की स्थापना में मदद मिलती है।

7. उभरते कलाकारों तथा पाठकों में सम्बंध स्थापित करना

समाचार–पत्र उभरती प्रतिभाओं/कलाकारों तथा पाठकों के बीच एक सम्बंध स्थापित करके शास्त्रीय संगीत की अगली पीढ़ी को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में सहायक होते हैं। इन पर प्रकाशित लेख, फीचर, कार्यक्रम की रिपोर्ट को पढ़कर जनता उन कलाकारों के प्रति अपनी राय कायम करती है तथा उन्हें प्रसिद्धि की राह पर ले जाती है।

8. शास्त्रीय संगीत तथा जनता के बीच की कड़ी स्थापित करना

समाचार–पत्र शास्त्रीय संगीत तथा जनता के बीच एक पुल की भूमिका निभाते हैं इसकी ज्ञानवर्धक तथा मनोहरी सामग्री द्वारा जनता में जागरूकता बढ़ती है तथा इस प्राचीन कला प्रणाली के प्रति गहरी प्रशंसा और सम्मान विकसित होता है। शास्त्रीय संगीत के प्रचार, प्रसार तथा संरक्षण में समाचार–पत्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

9. संगीत कार्यक्रमों की समीक्षा

समाचार–पत्रों में नियमित रूप से संगीत कलाकारों तथा संगीत कार्यक्रमों की रिपोर्ट, समीक्षा तथा आलोचना भी प्रकाशित की जाती है जिसमें कलाकार/कार्यक्रम की अच्छाइयों, कमज़ोरियों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं को उजागर किया जाता है जिससे कलाकार को कला में सुधार करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। रचनात्मक आलोचना संगीत के विकास तथा शोधन में भी योगदान देती है।[8]

10. संगीत कलाकारों के स्मृति लेख तथा अभिनन्दन लेख

समाचार–पत्र महान संगीतकारों के अन्तिम संस्मरण, स्मृति लेख तथा श्रद्धांजलि लेख भी प्रकाशित करते हैं जिससे उनके संगीत कला के प्रति प्रेम तथा योगदान को याद किया जाता है। जैसे पं. रविशंकर, पं. जसराज, लता मंगेशकर जी के निधन पर लगभग सभी समाचार–पत्रों में उन पर स्मृति लेख फोटो के साथ प्रकाशित हुए जिसमें उनके सांगीतिक सफर का पूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। इसी प्रकार जब किसी कलाकार को बड़े–बड़े अवार्ड या पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है तो उन पर अभिनन्दन लेख प्रकाशित किए जाते हैं।

11. संगीत के कार्यक्रमों के प्रायोजक के रूप में समाचार–पत्रों की भूमिका

कई समाचार–पत्र समूह संगीत कार्यक्रमों के प्रायोजक बन जाते हैं जिसके द्वारा प्रसिद्ध कलाकारों तथा संगीतज्ञों को मंच प्रदान करते हैं तथा अपने समाचार–पत्र में अच्छी कवरेज भी देते हैं। कुछ समाचार–पत्र समूहों द्वारा सम्मान समारोह आयोजित किए जाते हैं जिनमें वे संगीत के विभिन्न क्षेत्रों के कलाकारों को अवार्ड प्रदान करते हैं जिससे कलाकारों का मनोबल बढ़ता है तथा उनमें कला को और निखारने का जुनून पैदा होता है।

निष्कर्ष :

समाचार–पत्र शास्त्रीय संगीत के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। उनके माध्यम से संगीत–प्रेमियों को संगीत जगत के नवीनतम समाचारों, कलाकारों तथा शास्त्रीय संगीत के विभिन्न तत्वों की जानकारी भी प्राप्त होती है। इसके साथ ही वे कलाकारों की पदोन्नति,

संगीत शिक्षा, समीक्षा तथा सांस्कृतिक संरक्षक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह कहा जा सकता है कि समाचार–पत्र शास्त्रीय संगीत के प्रचार में तथा सांगीतिक परम्परा को संरक्षित रखने में अहम् भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ सूची :

1. मल्होत्रा महेन्द्र, आधुनिक मीडिया एवं समाचार, पृ.86
2. वही, पृ. 87
3. वही, पृ. 88
4. वही, पृ. 90
5. वही, पृ. 93
6. वही
7. वही
8. पठालिया, जनक आर., वैश्वीकरण और पत्रकारिता, पृ . 21

सन्दर्भ ग्रन्थ :

चौधरी, सुभद्रा, संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–110002, प्र. सं. 2002

पठालिया, जनक आर, वैश्वीकरण और पत्रकारिता, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

मल्होत्रा, महेन्द्र, आधुनिक मीडिया एवं समाचार, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

मल्होत्रा, महेन्द्र, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं समाचार, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

सिंह, पी. पी., प्रिंट मीडिया कम्यूनिकेशन, अनमोल पब्लिकेशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, 2002

पारसी रंगमंच की रंग युक्तियाँ और नाटकों में इसके प्रयोग की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'** **अविनाश तिवारी***

सारांश

पारसी रंगमंच में प्रयुक्त रंगयुक्तियों का प्रभाव भारत के रंगमंच पर दीर्घकाल तक व्याप्त था। इन रंगयुक्तियों में विशेष रूप से भारतीय शास्त्रीय और लोकतंत्र परंपरा के कुछ अनिवार्य तत्त्व की अनायास ही पारसी नाटकों में दिखाई देते थे। इसके साथ ही युगल गीत की उद्भावना पारसी रंगमंच की मौलिक खोज है। फिल्मों में भी इसका प्रचलन पारसी रंगमंच के प्रभाव से ही प्रारंभ हुआ। पारसी रंगमंच की रंगयुक्तियों की विशिष्टता स्थान (Setting), वेश–भूषा (Costume), संगीत (Music), अभिनय (Acting), चित्रित पर्दे का प्रचलन (Utility of curtain) आदि के रूप में सुविख्यात है। वास्तव में, अभिनेता और दर्शक के बीच भी अंतरंगता ही पारसी नाटक और रंगमंच का सबसे सशक्त और जीवंत पक्ष है। इसके प्रभाव से न तो भारतेन्दु बच पाए और न हि जयशंकर प्रसाद। हिन्दी के दोनों ही युग पुरुषों के नाटकों में अभिनय–शैली, रंग–शैली, गीत–संगीत, पात्रों के प्रवेश–प्रस्थान में इस पारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में पारसी रंगमंच की रंगयुक्तियों का दीर्घकालिक प्रभाव एवं उसकी प्रासंगिकता पर विचार व्यक्त करने की चेष्टा की गयी है।

मुख्य शब्द : *रंगयुक्तियाँ, परंपरा, दृश्य, संगीत, अभिनेता, दर्शक।*

शोध प्रविधि : *प्रस्तुत शोध–पत्र को तैयार करने के लिए द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

बंबई में रहने वाले अंग्रेजों ने नाटक करना आरंभ किया और 1776 ई. में 'बाम्बे थियेटर' नाम से एक प्रेक्षागृह का निर्माण करवाया। लगभग 65 वर्षों तक इस प्रेक्षागृह में नाटक मंचित होते रहे लेकिन जैसा कि शैकिया रंगमंच की नियति है, यह सारा काम घाटे में चलता रहा। अंततः इस घाटे के परिणामस्वरूप प्रेक्षागृह को नीलाम करना पड़ा।[1] सन् 1835 में जमशेद जी जीजी भाई ने 50,000 रू0 में उसे खरीद लिया। थियेटर पर उस समय ऋण की राशि निकालकर 27,379 रू0 शेष रहे, जो सरकारी कोष में जमा करा दिये गये। 10 वर्षों तक थियेटर बंद रहा। इस अवधि के पश्चात् फिर बंबई के लोगों को अपने मनोरंजन के लिए नये थियेटर की आवश्यकता प्रतीत हुई। जनता ने अपनी आवाज उठायी और बंबई की प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं ने इस आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि पिछले थियेटर की बिक्री की शेष राशि नये थियेटर के निर्माण के लिए देने का वायदा सरकार ने कर लिया। बंबई के एक सम्भ्रान्त सेठ श्री जगन्नाथ सेठ ने वर्तमान ग्राण्ट रोड पर एक भूखण्ड थियेटर के लिए अपनी इच्छा से दान कर दिया। स्थान का प्रश्न भी हल हो गया और नये थियेटर का निर्माण आरंभ हो गया। इस कार्य में संलग्न समिति ने थियेटर भवन को शीघ्रातिशीघ्र निर्माण कराने का बीड़ा उठाया। समिति के सभापति एच.फासेट (H-Fawcett) की ओर से थियेटर के लिए एक ड्रापसीन का पर्दा उपहार में दिया जिसे इंग्लैंड में तैयार कराया गया था, नाम 'ग्राण्ट रोड थियेटर' रखा गया। इसका उद्घाटन 10 फरवरी, 1846 ई0 को हुआ। इसमें आरंभ में अंग्रेजी नाटक होते थे।[2] कालान्तर में इसका नाम 'बादशाही थियेटर' रखा गया। पहले पारसी लोग अंग्रेजी नाटक ही करते थे, फिर वे गुजराती में, हिन्दी में नाटक करने लगे।

सन् 1853 ई0 में उन्होंने 'राजा गोपीचन्द्र' नामक नाटक का मंचन हिन्दी में किया। पारसी रंगमंच के लिए यह हिन्दी का पहला नाटक था।[3] इसके पश्चात् पारसी नाटक मंडलियाँ अस्तित्व में आयीं, जो शहरों, कस्बों में घूम–घूमकर नाट्य–प्रदर्शन करती थीं।

पारसी रंगमंच में प्रयुक्त रंग–युक्तियों का प्रभाव दीर्घ काल तक परवर्ती रंगमंच पर पड़ा। इन रंग–युक्तियों में विशेष रूप से भारतीय शास्त्रीय और लोकरंग परंपरा के कुछ अनिवार्य तत्त्व भी अनायास ही पारसी नाटकों में

*शोध छात्र (नाट्य), विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
**शोध निर्देशिका, संकायाध्यक्ष, ललित कला संकाय, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

दिखाई देते थे। उदाहरण के लिए संस्कृत नाटकों के नांदी पाठ अथवा लोकनाटकों के मंगलाचरण के समानान्तर पारसी नाटक की शुरूआत भी पूरे अभिनेता–समुदाय द्वारा मंच पर उपस्थित होकर एक प्रार्थना गीत के साथ होना, वादक–वृंद तो मंच पर नहीं होते थे, लेकिन मंच के सामने उनका नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक बैठे रहना और नाटक के अंत में भी सभी पात्रों का मंच–प्रवेश और गीत के साथ ही प्रदर्शन की समाप्ति। इसके साथ युगल–गीत उद्‌भावना यह पारसी रंगमंच की अपनी मौलिक खोज है। इसका प्रचलन न तो हमारे शास्त्रीय और लोक रंगमंच में ही दिखाई पड़ता है और न हि इसकी किसी परंपरा का संकेत पाश्चात्य रंगमंच के इतिहास में कहीं दिखाई पड़ता है। अपने अस्तित्व के बाद अविष्कृत फिल्म जैसे माध्यम में इस युक्ति का प्रयोग वास्तव में पारसी नाटक की ही देन है। कुछ रंग–युक्तियाँ इस रंगमंच को विशिष्ट बनाती थीं, जैसे–

स्थापन (Setting)

पारसी थियेटर प्रारंभ से ही रियलिस्टिक (Realistic) थियेटर था। जो कुछ भी स्टेज पर दिखाना था उसे हू–ब–हू उसी शक्लों–सूरत में दिखाया जाता ताकि दर्शकों को लगे कि वाकई में वो असल है। जैसे 'भक्त प्रहलाद' नाटक में खंभे का फटना जरूरी है ताकि नृसिंह भगवान प्रगट हो सकें। दर्शकों के दिलों में भक्ति–भाव पैदा हो सके। यह काम इतना आसान नहीं था। इनके बनाने वाले बेहतरीन कारीगर हुआ करते थे। इस तरह के भव्य सेट के अतिरिक्त अद्‌भुत स्टेज–इफेक्ट भी होते थे। इस प्रकार, पारसी रंगमंच में किसी प्रकार के बहानें के लिए कोई जगह ही नहीं थी। यह भी यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि पारसी थियेटर घुमंतु थियेटर था। कलकत्ता–बंबई से निकलकर हिन्दुस्तान के दूसरे बड़े शहरों का दौरा किया करता। यह उसकी सबसे बड़ी ताकत थी। इस थियेटर के लिए प्रयुक्त सेट भी इसी तरह के बनाये जाते थे। यहाँ तक कि महल का बहुत बड़ा सेट 25 मिनट में पैक हो जाया करता था।

जिस तरह से शेक्सपियर के नाटकों में दृश्य के बारे में विस्तार से नहीं लिखा जाता था, ठीक उसी तरह पारसी नाटकों में भी नहीं लिखा जाता था। अगर बादशाह के महल का सीन था तो सिर्फ 'महल' लिखा जाता था। बाजार का सीन है तो 'बाजार' लिखा हुआ होता। जैसे आगाहश्र काश्मीरी के नाटक 'सुफ़ैद खून' में सिर्फ 'महल' लिखा है। 'सीता वनवास' में सिर्फ 'महल' लिखा है। महल–आश्रम–कैसे बने यह सब सेट डिजाइनर की सोच पर निर्भर करता था।[4]

पारसी रंगमंच की वेश–भूषा (Costumes)

नाटकों को पात्रो की वेश–भूषा पर पारसी रंगमंच में यथेष्ट ध्यान दिया जाता था। प्रायः प्रत्येक कंपनी में एक दर्जी नियुक्त रहता था। निर्देशक उसके साथ बैठकर तमाम कलाकारों की पोशाकों को लेकर चर्चा करता– कपड़े किस तरह के हों, उनका रंग कैसा हो, पोशाक बनाते वक़्त यह देखा जाता था कि नाटक की कहानी किस जमाने की है, हर पात्र की सामाजिक हैसियत का ख़याल रखा जाता था। राजा–रानी को पहनाने के लिए ज़ेवरात भी बनवाये जाते थे। पारसी रंगमंच में विशेष रूप से इस बात पर ध्यान दिया जाता था। पोशाक, कपड़ा एवं जेवरात ज्यादा कीमती न हों, मगर दूर से लगे कि ये बहुत महँगे हैं।

पारसी रंगमंच का संगीत (Music)

पारसी थियेटर में संगीत को बड़ी अहमियत दी जाती थी। यह आवश्यक था कि प्रत्येक कलाकार को गाना आना चाहिए। जब नया कलाकार कंपनी में रखा जाता था तो सबसे पहले उससे यह पूछा जाता 'तुम्हें गाना आता है।' तब उसे सबसे पहले म्यूज़िक मास्टर के पास भेजा जाता, उसे गाना सिखाया जाता। संगीत शास्त्रीय धुनों पर ही आधारित होता था। परंतु रंगमंच की आवश्यकता के अनुसार उसमें बहुत कुछ बदलाव किया जाता था। पारसी रंगमंच में कई जगह गीत भी संवाद का काम करता था। इसलिए उसकी धुनें ऐसी होती थी कि दर्शकों को उसके बोल आसानी से समझ में आ सकें और पात्र उसे आसानी से गा सकें। संगीत मनोरंजन का साधन तो था, मगर गीतों के माध्यम से संवाद का भी काम लिया जाता था। पारसी रंगमंच में शायरी और गीतों का प्रयोग इसलिए हुआ करता था कि जो कहा जा रहा है, वह दर्शकों तक ठीक तरह से पहुँचे ताकि उसका अपेक्षित प्रभाव दर्शकों पर पड़ सके। इस प्रकार पारसी रंगमंच में प्रयुक्त संगीत एक प्रकार से रंगमंचीय संगीत था।

पारसी रंगमंच और अभिनय

नाटक का प्राण अभिनय है। परिस्थिति के अनुकूल अनुकृति अथवा भावानुकूल अनुकृति ही अभिनय की सफलता का मूल मंत्र है। पारसी अभिनेताओं विशेषकर चोटी के अभिनेताओं ने इस बात पर बड़ा ध्यान दिया था। उनके

स्वर के उतार–चढ़ाव, उनके प्रवेश–प्रस्थान, रंगमंच पर उनकी चाल–ढ़ाल आदि सभी चीजों पर निर्देशक की विशेष दृष्टि रहती थी। निश्चय ही भाव–भंगिमा के कुशल अभिनेता अधिक नहीं थे परंतु ट्रेजडी में कावसजी पालनजी खटाऊ और कामेडी में सोहराबजी ओगरा अद्वितीय थे। बालीवाला, जहाँगीर खम्बाता, दादी ठूँण्ढ़ी, दादी पटेल, पेस्तनजी मादन, डॉ. घनजी पारख कैखुशरू कावरा आदि सर्वकलासम्पन्न अभिनेता थे। महिला पात्र के अभिनय में डॉ. घनजी पारख, हाथीराम पेशु आवान आदि अपना उदाहरण नहीं रखते थे। और तो और, तीन फुट ऊँचे जयसु काँदेवाला ने तहमीना की भूमिका में बड़ी कला–कुशलता का परिचय दिया था।[5]

इस प्रकार, यदि कहा जाय तो उपर्युक्त प्रत्येक कलाकारों की इच्छा अभिनय को उच्चतम कला की ओर ले जाना था।

जब अच्छे निर्देशकों का ह्रास हो गया और दर्शकों के स्तर में भी अंतर आ गया तो स्वाभाविक था कि अभिनय कला ह्रास की ओर अग्रसर हो और होते–होते वह समाप्त ही हो गयी। अपने अंतिम दिनों में भी जिस किसी ने सोहराबाजी ओगरा, घनजी मास्टर, केशवलाल, भोगीलाल, नसीर और मोडक आदि का अभिनय देखा था, वे कह सकते हैं कि उन दिनों अभिनय–कला केवल खेमटेवालों की तरह मटकन नहीं था। उनमें अभिनेयात्मक अद्भुत दक्षता भी थी। मिस गौहर, मिस कज्जन, मुन्नी कज्जन, मुन्नीबाई आदि अभिनेत्रियाँ तो अपनी–अपनी कला में दक्ष थीं ही, परंतु नरबदाशंकर, भोगीलाल, अम्बालाल आदि पुरुष भी महिला–भूमिका में किसी से कम नहीं उतरते थे।[6]

पारसी रंगमंच और पर्दे का प्रचलन

पारसी रंगमंच के प्रत्येक नाटक में कार्य–व्यापार के अनुसार चित्रित पर्दे लगे रहते थे जो गुल्लियों के सहारे उठते और गिरते थे। इनमें सबसे आगे 'ड्रॉपसीन' का पर्दा रहता था और उसके पीछे कई पर्दे लगे होते थे जो नाटक के अनुसार परिवर्तित होते रहते थे परंतु 'ड्रॉपसीन' के पीछे 'स्ट्रीटसीन' प्रायः सभी नाटकों में रहता था क्योंकि इस पर्दे पर ही प्रार्थना करने के लिए अभिनेता खेड़े रहते थे और 'ड्रॉपसीन' के उठते ही बाजे के साथ स्तुति कलाकारों के द्वारा आरंभ होता था। यह पर्दा प्रहसन के काम में भी प्रयुक्त हुआ करता था। प्रायः संवादपरक प्रहसन के दृश्य, जबतक किसी स्थान विशेष का दिखाना अनिवार्य न हो, इसी पर्दे पर होते थे। पारसी रंगमंच के अन्य पर्दों में जंगल–दृश्य, 'कटपर्दा', 'महल', 'उद्यान' और 'कैम्प' के दृश्य प्रायः समान रूप से पाये जाते थे।

इन पर्दों को चित्रित करने वाले आरंभ में विलायती चित्रकार थे जिनमें जर्मन चित्रकार 'क्राउस' (Kraus), इतालबी चित्रकार 'सीरोनी' (Sironi) और रूआ प्रसिद्ध थे। बाद में पारसी चित्रकार पेस्तनजी मादन ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। अल्फ्रेड के चित्रकार हुसैन खाँ का बड़ा नाम था। पढ़ने–लिखने के नाम पर तो वह अँगूठा–छाप थे परंतु उन दिनों उनका मासिक वेतन 1500 रूपये था।[7] पारसी रंगमंच ने रंगमंच की प्रकृति के अनुकूल शैली पर विशेष बल दिया।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि आज भारतीय रंगमंच को जिस प्रकार की अभिनय–शैली की आवश्यकता है या जिसकी तलाश है–पारसी रंगमंच उसका एक विकल्प प्रस्तुत करने में समर्थ है। उस विकल्प को अपने–सामने देख पाना इतनी जटिल प्रक्रिया नहीं है। बशर्ते उसे खुले मन से स्वीकार किया जाय। इसमें अभिनय–शैली की भाव प्रवणता अर्थात् दिल को छू लेने की क्षमता है। वास्तव में, अभिनेता और दर्शक के बीच का अंतरंग संबंध ही पारसी नाटक और रंगमंच का सबसे सशक्त और जीवंत पक्ष था। इसकी रंगयुक्तियों की छाप इतनी गहरी थी कि इसके प्रभाव से कोई नहीं बच पाया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पारसी रंगमंच की रंगयुक्तियों का प्रभाव दीर्घकाल तक भारत के परवर्ती नाटककारों पर पड़ा।

संदर्भ सूची :

1. शुक्ल, डॉ. धीरेन्द्र (संपादक), हिन्दी नाट्य परिदृश्य, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ–18
2. गुप्त, सोमनाथ, पारसी थियेटर : उद्भव और विकास, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ–21
3. शुक्ल, डॉ. धीरेन्द्र (संपादक), हिन्दी नाट्य परिदृश्य, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ–18
4. सिंह, रणवीर, पारसी थियेटर, सेतु प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली, 2021, पृष्ठ–175,
5. गुप्त, सोमनाथ, पारसी थियेटर : उद्भव और विकास, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ–207
6. वही, पृष्ठ–208
7. वही, पृष्ठ–203–204

पं0 राजन–साजन मिश्र : एक वाग्गेयकार

डॉ0 श्वेता कुमारी**

अपर्णा पाण्डेय*

सारांश

साहित्य एवं संगीत अपने अभीप्सित की सिद्धि हेतु एक–दूसरे से जुड़े हुये हैं। एक–दूसरे से भिन्न होते हुए भी दोनो जहाँ मिलते हैं उस बिन्दु को हम साध्य और साधन बिन्दु मानते हैं, संगीत के ऐसे ही महान साधक हैं पं0 राजन–साजन मिश्र।

पं0 राजन–साजन मिश्र सफल गायक होने के साथ–साथ कुशल वाग्गेयकार भी हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि उनकी रचनाओं में कुशलता स्वतः ही परिलक्षित होती है। ख्याल–गायन–परम्परा की श्री–वृद्धि हेतु पण्डित द्वय ने बन्दिशों को स्वरबद्ध एवं लयबद्ध किया। आपकी रचनाओं को केन्द्र में रखा जाय तो यह भेद करना कठिन होगा कि आप 'मिश्र बन्धु' गायक हैं अथवा वाग्गेयकार।

सूचक शब्द : *वाग्गेयकार, रचना, बन्दिश, रचनाकार, स्वरलिपि*

शोध प्रविधि : *इस शोध–लेख के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों के माध्यम से सामग्री एकत्र कर अध्ययन किया गया है।*

विषय प्रवेश –

पद–लालित्य हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का आधारभूत घटक है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में शब्द और स्वर का सुफलकारी अभूतपूर्व संयोग दृष्टिगोचर होता है। एक जीवन है तो दूसरी उसकी प्राणदायिनी शक्ति। मनुष्य के द्वारा निर्मित सौन्दर्य को ही लालित्य कहा जाता है, लालित्य अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न किन्तु उसके समानान्तर चलने वाला मानवरचित अर्थात् मनुष्य के द्वारा सजाया संवारा हुआ स्वरूप।

एक कुशल वाग्गेयकार तभी सफल होता है जब उसे शब्दों का चयन करनें, पद का निर्माण करने, सौन्दर्य, लालित्य, भाव आदि का बोध हो और उसकी रचना श्रोता को स्पंदित करे। वाग्गेयकार स्वयं में एक पूरक शब्द है और एक प्रकार का न्याय भी, किसी बन्दिश के निर्माण में पूर्ण न्याय तभी हो सकता है जब उपर्युक्त लिखित तत्त्व उसमें शामिल हों/सम्मिलित हों क्योंकि इन तत्वों के बिना कोई भी रचना पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती है। हमारे संगीत जगत में बहुत से ऐसे भी गायक हैं जो गायन के साथ–साथ रचना भी करते हैं और स्वरचित बन्दिशें गाते हैं उन्हीं में से एक हैं पं0 राजन–साजन मिश्र की जोड़ी।

बनारस घराना के ख्यातिप्राप्त सारंगी वादक पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र पं0 राजन मिश्र व छोटे पुत्र पं0 साजन मिश्र हैं। पं0 राजन मिश्र का जन्म सन् 1951 में हुआ व छोटे भाई पं0 साजन मिश्र का जन्म 1956 में हुआ, आप दोनों की संगीत (गायन) की शिक्षा आपके पिता पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र व चाचा पं0 गोपाल मिश्र से हुई।

पं0 राजन–साजन मिश्र एक सफल वाग्गेयकार भी हैं, इसकी पहचान उनकी रचनाओं में झलकती है, वे अपनी रचनाओं में पद–लालित्य, सौन्दर्य भाव से पूर्ण सुन्दर शब्दों का चुनाव आदि को प्राथमिकता देते है और जब आप अपनी बन्दिशों की प्रस्तुति देते हैं तो गायन के माध्यम से उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं।

आप दोनों ने अनेक बन्दिशों की रचना भी की है जो कई रागों में एवं लयों में निबद्ध है, जो अग्रलिखित भी हैं। प्रस्तुत सारी रचनाएँ मिश्र–बंधु द्वारा विभिन्न समारोहों व कार्यक्रमों में प्रस्तुत भी की गई हैं तथा कुछ बन्दिशें या रचनाएँ इन्टरनेट पर भी उपलब्ध है।

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, सहायक आचार्या, गायन विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

रचना/बन्दिशों की समीक्षा

1. राग नन्द

स्थाई – अजहूँ न आये श्याम
बहुत दिन बीते रे

अन्तरा – पलकन डगर बुहारूँ और मगझारूँ[1]
जो आवे धाम

विश्लेषण– थाट–कल्याण, जाति–षाडव–संपूर्ण, वादी–षड्ज, संवादी–पंचम, दोनों मध्यम का प्रयोग, वर्जित स्वर–आरोह में ऋषभ, समय–रात्रि का दूसरा प्रहर।

आरोह – सा ग म ध प रे सा, ग म प नि सां।

अवरोह – सां ध, नि प, ध मं, प ग, म ध प रे सा

स्वर विस्तार– सा, सा ग म ध प रे सा; ग म प ध नि, (ध)प ध (प) म म प, ग म ध प रे सा, ग म प नि सां, प नि रें' नि ध प, प ध म प, ग म (ध)प रे सा।

प्रस्तुत बन्दिश को तीन ताल में बाँधा गया है, जिसमें स्थाई के मुखड़े की उठान 12वीं मात्रा से की गई है जिसमें सम गांधार पर है व अन्तरा 9वीं मात्रा से उठाकर सम निषाद पर दर्शाया गया हैं। बन्दिश के शब्द परम्परानुसार हैं एवं भावपूर्ण हैं जिसमें श्याम के वापस आने की राह देखी जा रही है, यह राग शान्त एवं करूण रस प्रधान माना जाता है।

2. राग भीमपलासी

स्थाई – प्रीतम की पाती बाँचे रे
एहो मोरे बीर बभनवा।।

अन्तरा – जब से गयो मोरी सुधहूँ न लिन्हो।[2]
किन सौतन विलमाये पियरवा।

विश्लेषण– थाट–काफी, जाति–औडव–संपूर्ण, वादी–माध्यम, संवादी–षड्ज, विकृत स्वर–निषाद एवं गांधार कोमल, वर्जित स्वर–आरोह में ऋषभ और धैवत, गायन समय–दिन का तीसरा प्रहर।

आरोह – नि सा ग म प नि सां।

अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।

स्वर विस्तार – नि़ सा ग म प ग म ग रे सा नि़ प़ नि़ सा ग रे सा ग म प नि ध प म प ग रे सा रे सा रे नि़ सा म ग म प नि सां, सां नि ध प म प ग म ग रे सा।

प्रस्तुत बन्दिश तीन ताल में निबद्ध है। मुखड़े का उठान 10वीं मात्रा से है, बन्दिश का साहित्य अति उत्तम कहा जा सकता है, शब्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसमें नायिका नायक के विरह में पत्र को बाँच रही है। यहाँ पाती का अर्थ पत्र से है, बाँचना का अर्थ पढ़ने से है। बन्दिश पूर्णतः करूण रस से परिपूर्ण हैं। वादी स्वर मध्यम दर्शाया गया है जो वादित्व को दृढ़ करता है।

3. राग जैजैवन्ती

स्थाई – ऐसो नवल लाडली राधा
संग निरतत लपटी–झपटी कान्हा।।

अन्तरा – झूले हिन्डोला बगीयन–बगीयन
सखीयन सब मिल नाचत–गावत
संग नटवर पद लागे कान्हा।।[3]

विश्लेषण– थाट–खमाज, जाति–संपूर्ण–संपूर्ण, वादी–ऋषभ, संवादी–पंचम स्वर–दोनों गांधार, दोनों निषाद, वर्जित स्वर–आरोह में धैवत, गायन समय–रात्रि के दूसरे प्रहर में।

आरोह – नि़ सा रे ग म प, म प नि सां।

अवरोह – रें नि ध प, म ग, रे ग रे सा।

स्वर विस्तार – सा रे ग रे सा नि़ सा, ध़ नि़ रे ग रे सा, सा नि़ सा धा नि़ रे ग रे सा नि़ रे सा रे नि़ ध़ प़, प़ रे ग म म ग रे ग रे सा।

प्रस्तुत बंदिश में स्थाई का मुखड़ा 9वीं मात्रा से है और सम मध्यम पर है तथा अन्तरा का सम तार षड्ज पर है। यह बन्दिश तीन ताल में निबद्ध है। इस बन्दिश में राधा–कृष्ण की अति सुन्दर लीला का वर्णन हैं। इस बन्दिश में श्रृंगार रस–प्रधान है, इस रचना में राधा–कृष्ण व सारी सखियाँ साथ नृत्य कर रहे हैं, गा रहे हैं जिसका वर्णन बड़ी सुन्दरता से हुआ है। राधा को 'नवल' लाडली' जैसे शब्दों से सुशोभित किया गया है। प्रस्तुत रचना में

द्वन्द समास, लपटी–झपटी, नाचत–गावत जैसे शब्दों में देखने को मिल रहा है।

4. वृन्दावनी सारंग

स्थाई – लंगरइया हम संग ना करो।
मनमोहन प्यारे नन्द के छैल।।

अन्तरा – 'रामदास' के मोहन प्यारे।
अब तुम हमरी रोको ना गयल।।[4]

विश्लेषण– थाट–काफी, जाति औडव–औडव, वादी–ऋषभ, संवादी–पंचम विकृत दोनों निषाद का प्रयोग वर्जित स्वर–गंधार एवं धैवत पूर्णता वर्जित गायन समय–दिन का दूसरा प्रहर।

आरोह – ऩि सा रे म प नि सां।

अवरोह – सां नि प म रे सा।

स्वर विस्तार– नि सा रे सा नि प, प नि सा रे सा, नि सा रे म रे सा, सा रे म प, प म प म रे म रे सा, प म प म रे सा।

प्रस्तुत बन्दिश को तीन ताल में निबद्ध किया गया है, यह एक प्राचीन बन्दिश है जो सातवीं मात्रा से प्रारम्भ होती है। बन्दिश का सम रे पर दिखता है जो राग के वादित्व को दृढ़ करता है। इस बन्दिश में बड़े 'रामदास' के नाम को रखा गया है जो पं0 राजन–साजन जी की परम्परा को दर्शाता है। रचना में श्रृंगार रस झलकता है एवं श्री कृष्ण के छैल रूप का वर्णन दिखता है।

5. राग बिलासखानी तोड़ी

स्थाई– कान्हा रे मुरली काहे ना तू बजाई रे
बिन सुन बेनु की धुन अखियाँ अलसाये

अन्तरा– तुम्हरे मुरली की धुन से उदय होत ब्रज के भानु
ग्वाल बाल गोपिन सब, राह तकत तोरी, ब्रज में चहुं दिस
ऐसी निशा छाये।[5]

विश्लेषण– थाट–भैरवी, जाति–षाडव–सम्पूर्ण, वादी–धैवत, संवादी–गांधार विकृत स्वर–ऋषभ, गांधार, धैवत व निषाद, वर्जित स्वर–आरोह में मध्यम गायन समय–दिन का दूसरा प्रहर।

आरोह – सा, ऩि, सा रे ग, प ध ऽ नि ध सां।

अवरोह – रें नि ध ऽ प, ध नि ध म ग ऽ रे ग रे सा

स्वर विस्तार – ध ऽ म ग रे ग रे सा, रे ऩि सा रे ग।

प्रस्तुत बन्दिश एक ताल में निबद्ध है। स्थाई बारहवीं मात्रा से शुरू है व अन्तरा सम से प्रारम्भ है। प्रस्तुत रचना में श्री कृष्ण के मुरली वादन का वर्णन मिलता है। साथ ही, पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे यह बन्दिश भाव–प्रधान बनती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः देखा जाये तो 'मिश्र बंधु' ने अपनी रचना के माध्यम से साहित्य एवं संगीत के अटूट सामंजस्य को प्रस्तुत किया, रचनाओं में भाव एवं रस को साकार रूप दिया है, अपनी पूरी एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ राग की आत्मा को साकार करने में सक्षम है, मिश्र–बन्धु की यही विलक्षणता है जो आपको विश्व विख्यात बनाती है। आपकी इस विलक्षण प्रतिभा को देखकार आपको 'वाग्गेयकार' कहना अतिशयोक्ति नहीं है।

सन्दर्भ सूची :

1. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, राग परिचय भाग चार, पृ. 47
2. पण्डित साजन मिश्र के साथ साक्षात्कार से प्राप्त
3. पण्डित साजन मिश्र के साथ साक्षात्कार से प्राप्त
4. भट्ट, वीराज अमर, शोध–प्रबंध Development Of Banaras Gharana & Role Of Mishra Bandhu (Pt. Rajan & Sajan Mishra) As Vaggeyakara, पृ0 49
5. कश्यप, प्रभाकर, शोध प्रबंध– बनारस घराने के ख्याल गायन परम्परा की उन्नतशीलता में पद्मभूषण पंडित राजन मिश्र एवं पंडित साजन मिश्र का योगदान, पृ. 160, 162, 166, 173, 185, 186, 189।

ध्रुपद गायन–शैली में दरभंगा एवं बेतिया घराना : एक विश्लेषण

डॉ. ममता रानी ठाकुर**

संगीत मल्लिक*

निबंध सार

मुगल साम्राज्य के पराभव के बाद सेनिया–परंपरा के ध्रुपद गायकों ने पूरब की ओर आकर विभिन्न राजवाड़ों में आश्रय प्राप्त किया । इन कलाकारों को आश्रय देने में बिहार के इन राजबाड़ों में दरभंगा, बेतिया, डुमराँव, बनैली, टेकारी, गिद्धौर और तमकुही का विशिष्ट योगदान रहा है । इन राजवाड़ों ने मात्र आश्रय ही प्रदान नहीं किया, बल्कि इनके जीवन–यापन की समग्र व्यवस्था का संपूर्ण भार वहन भी किया । सेनिया–परंपरा की कतिपय दुर्लभ बंदिशें आज भी दरभंगा (अमता) एवं बेतिया घराना के गायकों के पास संरक्षित हैं ।

दरभंगा एवं बेतिया घराना के कलाकार आज भी अपने–अपने घराना के द्वारा निर्धारित मानदंड के अनुरूप गायन करते हैं । दोनों की गायन–शैली का अपना–अपना अंदाज है । सबसे बड़ी बात है कि दोनों ही घरानों के अपने–अपने रचनाकार हैं । दोनों ही घराने अपने घराने की बंदिश का गायन करते हैं । प्रस्तुत निबंध में उन विलक्षण बंदिशों का उल्लेख करते हुए, इन घरानों की गायन–शैली पर भी प्रकाश देने की चेष्टा की गयी है ।

बीज शब्द– *घराना, गायन–शैली, परंपरा, रचनाकार, बंदिश*

शोध प्रविधि– *इस शोध–पत्र को विभिन्न द्वितीयक स्रोतों से सामग्री का अध्ययन कर तैयार किया गया है ।*

दरभंगा घराना– दरभंगा (अमता) घराना का क्रमिक इतिहास दो–तीन सौ वर्ष पूर्व का है। वे राजस्थान से हाजीपुर के पास घटारो गाँव पहुँचे। माता सती के चार पुत्र थे– रामनेवाज, सीताराम, कर्त्ताराम और राधाकृष्ण। इन चारों में कर्त्ताराम और राधाकृष्ण ध्रुपद–गायन में निष्णात थे। इन दोनों भाईयों ने ध्रुपद की तालीम भूपत खाँ 'महारंग' के पुत्र नेमत खाँ 'सदारंग' से ली थी।[1] ऐसी किंवदंती है कि वे डुमराँव घराना के हस्तिराम और मस्तीराम के परिवार में वैवाहिक–संबंध स्थापित करना चाहते थे, परंतु हस्तिराम के सुपुत्र रामसहाय इस कारण से संबंध करने से इन्कार किया कि कर्त्ताराम और राधेश्याम संगीतज्ञ नहीं थे । इस अपमान का बदला लेने के उद्देश्य से दोनों भाईयों ने भूपत खाँ 'महारंग' तथा उनके पुत्र नेमत खाँ 'सदारंग' से संगीत की तालीम ली और इस अपमान का बदला रामसहाय से लिया ।

इसके पश्चात् दोनों भाई अवध के नवाब सिराजुद्दौला के दरबार में रहने लगे । उस समय दरभंगा राज अवध के नवाब के शासन–क्षेत्र में आता था, इसलिए अवध के नबाब के यहाँ तत्कालीन मिथिला नरेश माधव सिंह का आना–जाना लगा रहता था । वहीं इन दोनों भाईयों के गायन से प्रभावित होकर इन्हें अवध के नबाब से मांग लिया तथा दरभंगा ले आये तथा उपहारस्वरूप अमता गाँव की पाँच सौ बीघा जमीन प्रदान की । महाराज माधव सिंह का शासन–काल 1775–1807 तक माना जाता है और उक्त घटना अठारहवीं शताब्दी की है । तब से लेकर आज तक इस घराने में एक–से–बढ़कर–एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर के गायक एवं वादक पैदा हुए, जिनमें पंडित रामचतुर मल्लिक, पंडित विदुर मल्लिक, पंडित सियाराम तिवारी, पंडित अभय नारायण मल्लिक, पंडित रामकुमार मल्लिक, पंडित प्रेम कुमार मल्लिक, पंडित अनंत कुमार मल्लिक, प्रभृति कतिपय सार्थक नाम परिगणित हैं । इस घराना के छितिपाल मल्लिक और उनके द्वितीय पुत्र महावीर मल्लिक कुशल रचनाकार भी थे । इन दोनों रचनाकारों की एक बंदिश उदाहरण के लिए देखी जा सकती है–

*शोधार्थी, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

** शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा

राग खमाज–ताल–चौताल[2]

आली री तू अंग–अंग रंग रानी
सुरत सयानि पियजितय मनमानी री ।
सोलह कला सयानि बोलत अमृत बानी,
तेरी छबि देखियत चन्द्र हूँ लजानी री ।।
कटि केहरी केदली जंघ नासिका है की जाको,
श्री फल सरोजन की येसी छबि खानी री।
कहै गुनी 'छितिपाल' चिरंजिवि रहौ तो,
लो गंगा जी में पाऽऽऽऽऽऽऽ नी री ।।

इस प्रकार, एक रचना महावीर मल्लिक की देखी जा सकती है–

राग–देस–सिन्दुरा, ताल–चौताल[3]

आज आई धाई उमड़ घुमड़ नव किशोरी,
गोरि मोरि होरी खेले मदन मोहन लाल संगमे ।
डफ मृदंग घन घोर जोर सोइ सराबोर केसर गुलाल श्याम रंग यो ।।
लुकत झुकत अलबेलि झनक मनक मनक रंग
झटपट लपटाय श्याम तरु तयाल अंग ये ।
जप तप व्रत ध्यान करत मुनियन वेद भेद न पावत
प्रेम रस बस भये महावीर ढंग ये ।

इस घराना की कुछ प्रचलित बंदिशें उदाहरणस्वरूप द्रष्टव्य हैं–

राग–मेघमल्लार, ताल–झपताल[4]

स्थायी– धन घुमड़ दल साज सुरराज,
बृज आय बरसाये डुबाय चहत है ।
अंतरा– गरजत बादर कड़गत दामिनी,
डरपत पुरजन कृष्ण मुख देखत है ।

राग–मल्लार, ताल–चार ताल[5]

स्थायी– सावन घन बूंद बरस, ना संदेश पाय श्याम ।
पिया परदेस जाय गढ़ छाय हाय ।।
अंतरा– गरजि गरजि वरसि–वरसि
चमकि–चमकि चपला चहूँ ओर
कड़कि घटा घेरि घुमड़ि घहराय ।।
संचारी– तापर मोर–चकोर शोर घन घोर
झिंगुर जोर झनकार सुन श्रावण
सेज सैन विसराय
आभोग– राम कृष्ण प्रभु बिन अब कैसे,
जियो री माय एहि पावस ।
विरहनि भाई सकल दुःख दाय ।।

दरभंगा घराना की गायन–शैली

ध्रुपद–गायन में दरभंगा घराना के गायक स्वरों की अवतारणा गम्भीरतापूर्वक करते हैं । आलाप की क्रिया में इस घराना के कलाकार नोम, तोम, ऐ, श्री, ना, दे, रे, ना, आदि का प्रयोग करते हैं । इसे 'ओऽम् हरि अनंत नारायण' का विकृत रूप माना जाता है । आलाप का विस्तार चार चरणों में किए जाने की परंपरा है । तत्पश्चात् द्विगुण गति से मीड़, गमक आदि की क्रिया मध्य षड्ज से मन्द्र पंचम या मध्यम से लेकर मध्य मध्यम या पंचम कभी–कभी तार षड्ज तक किया जाता है । तृतीय चरण में आलाप में छूट आदि क्रिया के अंतर्गत मध्य षडज से प्रायः तार षड्ज तक राग–विस्तार करते हैं और चौथे चरण के आलाप में आलंकारिक ढंग से फिर दाना के आधार पर बेग के साथ स्वरालाप करते हुए आकारादि तिहाई के साथ आलाप खंड को समाप्त करते हैं ।[6] आलाप खंड की समाप्ति के पश्चात् विलम्बित में बंदिश प्रारंभ करते हैं, इस समय पखावज वादक प्रायः चौगुन गति में संगति करते हुए तिहाई के साथ सम पर आकर बराबर लय में संगति करने लगते हैं । इस प्रकार, बंदिश के स्थाई, अंतरा, संचारी तथा आभोग का गान क्रमिक रूप से करते हैं । इस गायन की क्रिया में पखावजी बोल के छंदमय प्रवाह का अनुसरण करते हैं और प्रत्येक शब्दाघात पर थाप लगाते हैं । गायकी के इस लयात्मक संचरण में पखावजी के साथ सम की लुका–छिपी के साथ अतीत–अनागत की क्रिया की जाती है । उपज की यह क्रिया गायक की योजना एवं रसिकों के आंग्रह तक चलती है और तिहाई या नौहक्का के साथ गायन की समाप्ति की जाती है ।[7] दरभंगा घराना के ध्रुपद गायक गौड़ बानी शैली में गायन करते हैं ।

बेतिया घराना :– जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि मुगल दरबार के पराभव के पश्चात् घरानेदार गवैए देसी रियासतों में आश्रय पाने लगे । मुगल दरबार की महफिलों में बेतिया–नरेश गजसिंह (1659–1694) का आना–जाना था । वहाँ वे चमारी मल्लिक (गायक) और कंगाली मल्लिक (बीनकार) से अत्यंत प्रभावित हुए । यद्यपि मुगल दरबार में इन दोनों की कोई विशेष पूछ नहीं थी । बेतिया घराना को सशक्त बनाने में महाराजा आनंद किशोर सिंह (1816–1838) का नाम आदरपूर्वक लिया

जाता है । बेतिया घराना को आश्रय देने में तथा ध्रुपद को उत्कर्ष तक पहुँचाने में आपका नाम अविस्मरणीय है ।

बेतिया घराना के प्रारंभिक जुमराज मल्लिक का उल्लेख मिलता है, ये बेतिया नरेश युगल किशोर सिंह (1762–1785) के दरबारी संगीतकार थे । बेतिया घराना के यशस्वी गायकों में महंथ मल्लिक (मिश्र), राजकिशोर मल्लिक (मिश्र) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । राज किशोर मिश्र का निधन 15 मई, 2010 को हो गया । श्याम मल्लिक के पौत्र इन्द्र किशोर मल्लिक (मिश्र) भोपाल के एक समारोह में ध्रुपद–गायन के समय देश के प्रख्यात पखावज वादक अर्जुन सेजवाल का हाथ रूक गया था । यह घटना 1990 की है ।

बेतिया घराना के दुःखी मल्लिक खण्डारबानी के सिद्ध ध्रुपद गायक थे । बेतिया के कतिपय नरेश प्रारंभ से लेकर अंतिम पीढ़ी तक स्वयं ध्रुपद के गायक भी थे तथा ध्रुपद के रचनाकार भी थे । इस बेतिया नरेश की ध्रुपद की बंदिश उदाहरणस्वरूप यहाँ द्रष्टव्य है :–

ध्रुपद–राग–बहार ताल–चौताल[8]

रचना–महाराजा अनंद किशोर (1816–'38)

सघन वन द्रुम बेलि डर पात तब
लहन हात ऋतु वसंत आयो मान ।
रंग–रंग के फूल फूले सरस सुगंध
भंवर गूजत कोयल कुहूकत तान
सुर सप्त संपूरण कर गावे कण्ठ गध
उपजावत तुकन आदि वरणन जान ।
तिनक अस्तुत करत आनंद किशोर गावे
पावे मन वांछित फल होय विद्या निधान

इसी प्रकार, एक बानगी के रूप में महाराजा नवल किशोर की ध्रुपद–रचना यहाँ द्रटव्य है–

राग–केदार नट, ताल–चार ताल

रचना–महाराजा नवल किशोर (1833–'55)

काली पद–पंकज परसत
जनन–जनन को पाप ताप नाशत ।
दुःख दारिद्र–भंजन, जो नाम करो बखान
जा लगि मुनिगण नित ध्यावत ।
हो अधम जीव गण, कहो भूले काली नाम
कौन काम दिन काटत ।
नवल किशोर कहे रात, जो काली नाम जपत
सो अमर पद पावत ।

इस प्रकार यह दृष्टिगोचर होता है कि इस घराना के यशस्वी रचनाकारों ने अपनी रचनाएँ ब्रजभाषा में की हैं।

बेतिया घराना की गायन–शैली

इस घराना के गायक गौडबानी तथा खण्डारबानी में अपना गायन करते हैं । वे संक्षिप्त आलापचारी करते हैं । बंदिश को ताल में गाते हैं, संपूर्ण गायन में लय में कोई परिवर्तन नहीं करते हैं अर्थात् प्रारंभ, मध्य और अंत में लय के साथ एक–जैसा व्यवहार करते हैं । इनकी गायन–शैली में बोल–बाँट वर्जित है । ख्याल की तरह स्वर–विस्तार भी नहीं करते हैं । बंदिश या रचनाओं में फेर–बदल नहीं करते और रागानुकूल गायन ही करते हैं ।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकत है दरभंगा तथा बेतिया घराना के गायक अपने–अपने घरानों की ही बंदिशों को गाते हैं । दोनों ही घरानों में ध्रुपद के रचनाकार मिलते हैं । दरभंगा घराना के कलाकार गौडबानी में ही ध्रुपद प्रस्तुत करते हैं जबकि बेतिया घराने के कलाकार गौडबानी तथा खंडारबानी में ध्रुपद की प्रस्तुति देते हैं । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत की ध्रुपद गायन शैली को जीवंत बनाने में इन दोनों ही घरानों की विलक्षण भूमिका रही है ।

सन्दर्भ सूची :

1. सिंह, श्री गजेन्द्र नारायण, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 21.11. 1976, पृ.– 32
2. सिंह, गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, तक्षशिला एजेकुशेनल सोसायटी, दिल्ली, 2011, पृ.– 63
3. वही, पृ.– 63
4. झा, चण्डेश्वर, ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, संगीत शोध संस्थान ध्रुपद केन्द्र, पश्चिम दिग्घी, मिर्जापुर, दरभंगा, 1997, पृ.– 96–97
5. वही, पृ.– 56–97
6. प्रकाश, वेद, भारतीय संगीत : ध्रुवपद और दरभंगा घराना, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ.– 251
7. वही, पृ.– 252
8. सिंह, गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, तक्षशिला एजुकेशन सोसायटी, दिल्ली, 2011, पृ.– 59

गुप्तकालीन उद्योग–धन्धे तथा वास्तुकला : एक अध्ययन

प्रवेश कुमार*

सार

प्राचीन समय से ही कृषि और पशुपालन को आजीविका का मुख्य व्यवसाय माना जाता था, परन्तु धीरे–धीरे मानव ने अनेक प्रकार के उद्योग और व्यवसायों को भी प्रारम्भ किया। आरम्भिक समय में लोग सुसंस्कृत स्थिति में नहीं थे, तथापि भारतीय जन–जीवन में किसी–न–किसी प्रकार का उद्योग धन्धा या व्यवसाय प्रचलित था। बाद में इन उद्योग–धन्धों का विकास बड़ी तेजी से हुआ । अनेक व्यावसायों के नाम पर जातियों का नामकरण किया गया, जैसे– लकड़ी का कार्य करने वाले बढ़ईगिरी, तन्तु का काम करने वाले तन्तुवाय, सोने का काम करने वाले सुनार, लोहे का काम करने वाले लुहार, चर्म का काम करने वाले चर्मकार माने जाते थे। महाकाव्य काल में उद्योग–धन्धों एवं व्यवसायों ने व्यवस्थित संगठन का रूप धारण किया तथा वर्तमान की तरह व्यवसासियों में समूह की भावना का उद्भव हुआ। लोगों के द्वारा विभिन्न व्यवसायों को अपनाने से स्थानीय निकायों की तरह ही अपना समूह बना लिया गया तथा इनके विकास की संभावना पर विचार करने लगे। यही कारण है कि भारतीय उत्पादन की विदेशों में बड़ी तेजी से मांग की जाने लगी जिसके फलस्वरूप राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गया। गुप्तकाल में उद्योग–धन्धों एवं वास्तुकला में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

मुख्य शब्द : *वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, स्वर्ण उद्योग, चांदी उद्योग, तांबा उद्योग, पीतल उद्योग*

शोध प्रविधि : *प्रस्तुत शोध–पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है।*

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकालीन युग आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से वैभव एवं सम्पन्नता का काल माना जाता है। इस काल के आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रो में अभूतपूर्व तकनीकी ज्ञान का काफी उच्चतम विकास दिखाई देता है। इस समय शासन व्यवस्था में शांति व्यवस्था स्थापित थी। आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र मे धातु उद्योग में विशिष्टीकरण एवं प्रगति हुई।

इस काल में उद्योग–धन्धों एवं व्यवसायों ने एक वैज्ञानिक आधार प्राप्त कर लिया था। गुप्तकालीन साहित्यिक ग्रंथो में विभिन्न खानों के उल्लेख प्राप्त होते है।[1] राज्य का खानों पर एकाधिकार प्राप्त था। वात्स्यायन के कामसूत्र में चौसठ धातुओं की कलाओं के बारे में उल्लेख मिलते है।[2] अमरसिंह के अमरकोश में भी रोट एवं अनरोट इन दोनों प्रकार के सोने तथा लोहे का उल्लेख मिलता है।[3] इस काल में आभूषण निर्माण कला को पर्याप्त बल प्राप्त हुआ तथा अन्य धातुओं के कर्म व्यवसायों में अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उद्योग–धन्धों की उन्नति का कारण यह है कि लोगों उद्योग से संबंधित जीवन–यापन करने के बाद भी सम्मानीय और योग्य माने जाते थे। गुप्तकाल में विभिन्न उद्योग–धन्धों एवं व्यवसायों वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, स्वर्ण उद्योग, चांदी उद्योग, ताम्र, कास्य एवं पीतल उद्योग, हाथीदांत उद्योग, मद्यपान उद्योग व मृदभाण्ड उद्योग आदि प्रचलित थे।

वस्त्र उद्योग : गुप्तकालीन कपड़ा उद्योग का कार्य मुख्य व्यवसाय माना जाता था। कपड़ा उद्योग में सूती, ऊनी तथा रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र बनते थे। अमरसिंह कृत अमरकोश में चार प्रकार के वस्त्र बाल्क (छाल से बने), फाल (फल के रेशे से बने), कौशेय (रेशमी वस्त्र) और रांकव (पश्मीना) की जानकारी मिलती है। इस समय अमीर वर्ग के लोग बहुत बारीक एवं ढीले प्रकार के कपड़े और गरीब लोग मोटे कपड़े पहनते थे।[4] मोटे कपड़ो से तम्बू एवं पर्दों का निर्माण किया जाता था। इस समय जंगलों में निवास करने वाले ऋषि–मुनि साधारणतया वृक्षों की छाल के कपड़े पहनते थे। कालिदासरचित ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के कपडों का उल्लेख मिलता है।[5] रघुवंश से पता चलता है कि तन्तुवाय कपड़े बनाने में इतने निपुण थे, कि उनके बनाये कपड़े फूंक मात्र से ही

*शोधार्थी, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विष्वविद्यालय उदयपुर (राज.)

उड़ जाते थे।[6] यद्यपि इस समय कपड़ा उद्योग चरमोत्कर्ष पर था तथा कपड़ा–उद्योग में गुजरात, बंगाल और तमिल क्षेत्र मुख्य केन्द्र माने जाते थे। बनारस भी, विशेष रूप से रेशमी, कपड़ों के लिए तथा मथुरा उच्च कोटि के सूती कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। मथुरा में निर्मित वस्त्रों में सिलबटे का प्रयोग सुचारू रूप से किया जाता था।

'अमरकोश' नामक ग्रंथ में बुने, धोए, पॉलिश किये हुये कपड़ों का उल्लेख मिलता है।[7] मंदसौर अभिलेख में तन्तुवाय श्रेणी का वर्णन है, तथा इन्दौर लेख में तैलिक श्रेणी का उल्लेख मिलता है।[8] ऊन की सहायता से गरम वस्त्र एवं कम्बल का निर्माण किया जाता था। चीन से भी रेशमी कपड़े को मंगाया जाता था। कपड़ा–उद्योग के व्यवसाय में कलाकृतियों, विशेषकर मूर्तिशिल्पों से, अनेक उदाहरणों की जानकारी मिलती है जिनमें स्त्री और पुरुषों का इतनी सूक्ष्मता के साथ सही प्रकार से अंकन किया हुआ है कि उनके कपड़ों की बुनाई, छपाई या निर्माण की अन्य विधियों के संबंध में स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। कपड़ों के निर्माण के बाद उनके रंगसाजी का कार्य भी बड़े पैमाने पर किया जाता था। अनेक प्रकार के रंगों से कपडों को रंगने के साथ–साथ उन पर लहर तथा बुंदकी भी लगाई जाती थी। कपड़ों पर रंगों से हंसों की पंक्तियों तथा फूलों की भी छपाई होती थी। वराहमिहिर ने वज्रलेप की जानकारी दी है कि जिससे मालूम होता है कि इस समय लोग कपड़ों को रंगने की रासायनिक क्रिया को भी जानते थे।

धातु उद्योग

गुप्तकालीन युग में धातु उद्योग का भी अग्रणी स्थान माना जाता था। अमरकोश में विभिन्न धातुओं सोना, चांदी, लोहा, तांबा, पीतल, शीशा एवं जस्ता की जानकारी मिलती है। जिससे गुप्त शासकों ने सोने तथा चांदी के बहुत से सिक्कों को प्रचलित करवाया था।[9] वृहस्पति ने भी स्वर्ण, चांदी एवं अन्य धातु से वस्तुओं का निर्माण करने वाले वर्गों का उल्लेख किया है। इस समय विभिन्न स्थलों में धातुओं की सहायता से वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। लौहकार, हथौड़े, छेनिया, कुठार, ताले, छिद्रयुक्त, चादरे, दरवाजे की कुडिंया, चम्मच, कुल्हाड़ी और छोटे बर्तन आदि का निर्माण किया जाता था। यद्यपि गुप्तकाल से प्राप्त धातु के वस्तुओं का निर्माण पूर्व काल में भी होता था। परन्तु वर्तमान में इन वस्तुओं में काफी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन परिलक्षित प्रतीत माना जाता है। उत्खननों में अनेक प्रकार की खेती–संबंधित लौहे की धातुओं जिनमें लौह निर्मित हसियाँ छैनी भीटा, श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि स्थानों से मिलती है। लौह उद्योग के अन्तर्गत ही अस्त्र–शस्त्र हथियार अर्थात् युद्ध संबंधित सामग्रियाँ निर्मित की जाती थीं। संभवतः ये सभी प्रकार की धातुएँ बड़े पैमानों पर कारखानों में बनाई जाती थीं तथा इनकी देखभाल राज्य करता था। इस समय उत्खनन में विभिन्न आकार–प्रकार के बाण व त्रिशूल के फलक मिले हैं, जो पहले की अपेक्षा अधिक विकसित पद्धति से बनाये गये हैं। इस समय तलवार, छूरी के अलावा परशु के फलक का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता था। लौह धातु उद्योग के व्यवसाय का अच्छा प्रमाण चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय निर्मित महरौली का लौह स्तम्भ में प्राप्त होता हैं। यह लौह स्तम्भ 23 फुट ऊँचा है, जिसका वजन 6 टन से अधिक है और इस पर हजारों वर्षों से तेज वायु, धूप एवं वर्षा के होते हुए भी वर्तमान में, भी तनिक जंग नहीं लगा है।[10] पर्सी ब्राऊन ने भी इस लौह स्तम्भ की बहुत प्रशंसा की है। इस काल के पुरातात्विक और साहित्यिक ग्रंथों से पता चलता है कि लौह धातु उद्योग तब अपनी पराकाष्ठा पर विद्यमान था।

स्वर्ण उद्योग

यह उद्योग भी काफी उन्नत व्यवस्था में विकसित था। सुनार अनेक प्रकार के आभूषणों का निर्माण करते थे। साहित्य ग्रंथों में उनके लिये स्वर्णकार, नाडिधम्, कलाद तथा रूक्मकारक आदि का प्रयोग किया गया है। 'वृहत्तसंहिता' नामक ग्रंथ में चौबीस प्रकार के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। अमरकोश से पता चलता है कि स्वर्णकार नगरों में निवास करते थे और आभूषणों का निर्माण करते थे। इन आभूषणों का उपयोग अमीर वर्गों के लोग करते थे। स्वर्णकार अपने अनेक अलंकारों में रत्नों का उपयोग करता था। स्वर्ण उद्योग में मुख्य निर्माण आभूषण एवं सिक्कों का होता था। स्वर्ण आभूषण जहां स्वतन्त्र रूप से विद्यमान था, वहीं सिक्कों का निर्माण राज्य के हाथ में था। गुप्त सिक्कों पर अंकित आभूषणों से जौहरी कला का पता चलता है। कुमारगुप्त एवं बन्धुवर्मा के मंदसौर अभिलेख में स्त्रियों द्वारा हार पहनने का उल्लेख मिलता है।[11] गुप्तकालीन सिक्कों पर शासकों तथा रानियों द्वारा अनेक प्रकार के आभूषण पहने हुए दृष्टिगोचर होते है। सिक्कों पर नक्काशी तथा छोटे स्थानों पर आभूषणों के सुस्पष्ट अंकन, सुनारों की विकसित कला और उनकी योग्यता के परिचायक माने जाते हैं।

चांदी उद्योग

गुप्तकालीन युग में चांदी उद्योग भी महत्वपूर्ण माना जाता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय शासक ने रजत सिक्कों का प्रचलन करवाया था। धनी वर्ग के लोग चांदी के आभूषणों को पहनते थे। इसके अतिरिक्त चांदी के बर्तनों का भी उपयोग खाने–पीने में करते थे जबकि निर्धन तबके के लोग खाने–पीने में सामान्य बर्तन का उपयोग करते थे। इस समय चांदी उद्योग विकसित अवस्था में था।

ताम्र, कांस्य एवं पीतल उद्योग

गुप्त काल में तांबे के पात्र, उपकरण, औजार, सिक्के तथा अन्य वस्तुएँ बनायी जाती थी। अमरकोश से तांबों की वस्तुएँ बनाने वाले कारीगरों की जानकारी मिलती है। भीटा क्षेत्र से तांबे के पात्र, चूडियां एवं तिपाहियाँ की प्राप्ति होती है। इस समय तांबे की धातुओं से निर्मित वस्तुएँ पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक विकसित एवं परमार्जित मानी जाती है। कांस्य एवं तांबे की मूर्तियाँ उत्तर–भारत के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई है। बिहार के भागलपुर नामक स्थान से कांसे की बुद्धमूर्ति तथा सुल्तानगंज से बुद्ध की तांबे से निर्मित मूर्ति उल्लेखनीय है।[12] नालंदा कांस्य की ढलाई का एक प्रमुख केन्द्र था, जहां से अनेक कांस्य प्रतिमाएँ मिली है। इस समय पीतल के भी अनेक बर्तन बनाये जाते थे। कालीघाट नामक स्थल से पीतल के एक पात्र की प्राप्ति हुई है। इस समय भूमिदान का काफी प्रचलन हुआ तथा दान में दी गई भूमि का ताम्रपत्रों पर भी उल्लेख मिलता है।

चमड़ा उद्योग

गुप्तकालीन चमड़ा उद्योग काफी विकसित था। चर्मकार चमड़े की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करते थे, जिसमें जूते, चमड़े की रस्सियाँ, चाबुक तथा मसक आदि की जानकारी प्राप्त होती है। तत्कालीन मूर्तियों और चित्रों के द्वारा अच्छे एवं आकर्षक जूतों का निर्माण किया जाता था।[13] 'अमरकोष' नामक ग्रंथ में भारवाहक (कुली) मछुवारा, मांस विक्रेता, चीड़ीमार, षांखिक आदि के भी उल्लेख मिलते हैं। इस समय चमड़े का काम करने वाले चर्मकार कहलाते थे।

मृदभाण्ड उद्योग

मृदभाण्ड उद्योग काफी उन्नत था। कुम्हार विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन जिनमें कटोरे, हंडियाँ, धूप जलाने के स्टैंड, छोटे एवं बड़े मटके आदि बनाते थे। इन बर्तनों पर, विभिन्न प्रकार की चित्रकारी भी की जाती थी। कुम्हार अधिकतर खिलौनें की वस्तुओं में देवी–देवताओं की मूर्तियों, पुरुष और स्त्रियों की मूर्तियाँ एवं पशुओं की आकृतियाँ भी अंकित करते थे। अहिछन्न नामक स्थान से विभिन्न प्रकार के मनके प्राप्त होते है। कुम्हार मूर्तियों का निर्माण हाथों की सहायता से एवं सांचे के द्वारा भी करता था। इस समय के विशिष्ट मृदभाण्ड लाल मृदभाण्ड कहलाते थे।

लकड़ी उद्योग

प्राचीन समय से ही लकड़ी उद्योग महत्वपूर्ण माना जाता है। लकड़ी उद्योग इस समय भी प्रचलन में था। लकड़ी में नक्काशी का काम करने के शिल्प व्यवसाय का काफी विकास हुआ। बढ़ईगिरी मिट्टी द्वारा महल निर्माण का काम भी किया जाता था। बेतों और सरकंड़ों की सहायता से कुर्सियां भी तैयार की जाती थी। बांसों की सहायता से जुलूस के लिये पांच मंजिले रथ बनाये जाते थे। मूर्तियों का निर्माण लकड़ी की सहायता से किया जाता था। बांस और बेंत की सहायता से टोकरियाँ भी बनाई जाती थी। बढ़ई लकड़ी की सहायता से इनके अलावा दरवाजा, खिड़कियाँ, हल विभिन्न प्रकार की गाड़ी, खिलौने इत्यादि का निर्माण करते थे।

मद्यपान उद्योग

शराब बनाने का उद्योग भी प्रचलन में था। इस समय स्त्री तथा पुरुष दोनों ही शराब का सेवन करते थे। ऐसा माना जाता था कि मद्यपान करने से उनका सौन्दर्य अधिक आकर्षणपूर्ण हो जाएगा ।

हाथीदांत उद्योग

गुप्तकालीन युग में हाथीदांत उद्योग भी प्रचलित था। शिल्पी लोग हाथीदांत की सहायता से विभिन्न वस्तुओं जैसे खिलौने, खूंटी, मुहरें तथा घरेलु वस्तुओं का निर्माण करते थे। भीटा नामक स्थान से विभिन्न सिक्के मिले हैं। अमीर वर्ग के लोग हाथीदांत का प्रयोग विभिन्न वस्तुओं को सजाने एवं उनका आकर्षण बढ़ाने के लिये करते थे। जनता हाथीदांत को पलंग, सिहांसन एवं आभूषण आदि में जड़वाती थी।

मणि उद्योग

मणि उद्योग समुन्नत स्थिति में विद्यमान था।

वराहमिहिर ने 22 प्रकार की मणियों का उल्लेख किया है।[14] विभिन्न ग्रंथों में लाल हीरा, नीलम का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। जनता गहनों में एवं घरों को सजाने में इनका प्रयोग करती थी। जैन ग्रंथ आचरंग सूत्र में अनेक तरह के मुक्ताओं की जानकारी का उल्लेख मिलता है। कालिदासकृत 'रघुवंश' नामक ग्रंथ में आभूषणों, सिक्कों, कपड़ों, चारपाई, शास्त्रास्त्रों आदि के सौन्दर्यवर्धन के लिये भी इनका प्रयोग मिलता है।[15]

तेलीय उद्योग

इस काल में तैलीय उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान था। काली और सफेद सरसों, तिल, अलसी और इगुंदी का तेल निकाला जाता था। इगुंदी का तेल दीपक जलाने और फोडे–फुंसी को ठीक करने के लिए भी उपयोग में लाया जाता था।

तक्षण–कला (शिल्प कला) उद्योग

गुप्तकाल में तक्षण कला उद्योग काफी प्रचलित था। वास्तुकार अपने शिल्प से सुन्दर और आकर्षक वास्तुकला का निर्माण करते थे। गुप्तकालीन तक्षण कला का निर्माण कुशल एवं प्रवीण कारीगरों द्वारा किया जाता था। इस समय तक्षण कला में लावण्य और लालित्य दोनों का मिश्रण था। मथुरा, सारनाथ और पाटलिपुत्र तक्षण कला के प्रमुख केन्द्र माने जाते थे। गुप्तकाल में बुद्ध–मूर्तियों के वस्त्र चिकने और पारदर्शक होते थे। मूर्तियों की भौंहे तिरछी नहीं होकर सीधी प्रतीत होती थीं। शिल्पी कारीगर बुद्ध मूर्तियों के लिए चुनार के सफेद बालुदार पत्थर का प्रयोग करते थे।[16]

भवन–निर्माण उद्योग

भवन–निर्माण उद्योग का कार्य स्थापत्य कला में काफी उन्नत माना जाता था। भवन–निर्माण में भारतीय कला का विकास हुआ तथा पत्थरों का प्रयोग भवन–निर्माण में किया जाता था। इस समय निर्मित भव्य आवासीय, धार्मिक वस्तु, कुआँ, नहरें एवं तालाबों के अवशेष उत्खननों से प्राप्त हुये हैं। भवन छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के बनाये जाते थे।

स्थापत्य एवं वास्तुकला उद्योग

इस काल में स्थापत्य एवं वास्तुकला निर्माण अत्यधिक उन्नत अवस्था में था। गुहाओं का निर्माण पत्थरों को काटकर किया जाता था। गुहाओं के द्वार स्तम्भ एवं बाहरी दीवारों पर मूर्तियों का निर्माण किया जाता था। गुहाओं के ऊपरी चौखट वाले हिस्सों पर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ भी निर्मित हैं।

देवगढ़ का दशावतार मन्दिर : यह मन्दिर उत्तर–प्रदेश के ललितपुर जिले में बेतवा नदी के तट पर स्थित है। जिसमें अन्नतशायी विष्णु की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर की जगतपीठ का निर्माण उच्चे चबूतरों पर किया गया है। चबूतरे के चारों तरफ साढ़े पन्द्रह फुट लम्बी सीढ़ियाँ है। मन्दिर में गर्भगृह बाहर से वर्गाकार साढ़े अठराह फुट और अन्दर से पौने दस फुट निर्माण किया गया है।[17]

तिगवा का विष्णु मन्दिर : मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले में यह मन्दिर स्थित है। मन्दिर का गर्भगृह वर्गाकार आठ फुट माना जाता है। इसमें नरसिंह की मूर्ति विराजमान है।

भूमरा का शिवमन्दिर : यह मन्दिर मध्यप्रदेश में अवस्थित है। वर्तमान में इस मन्दिर का केवल गर्भगृह ही विद्यमान है। मन्दिर के द्वार स्तम्भ के दायें–बायें की ओर गंगा एवं यमुना की मूर्तियाँ अंकित हैं। मन्दिर में एकमुखी शिवलिंग की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं।

नचना कुठार का पार्वती शिव मन्दिर : यह मन्दिर अजयगढ़ राज्य में अवस्थित है। इसमें दो मंजिला निर्माण किया गया है जिसमें कम कोटी का अलंकरण मिलता है।

भीतरगांव का मन्दिर : यह मन्दिर उत्तरप्रदेश के कानपुर जिले में अवस्थित है। इसका निर्माण ईंटों की सहायता से किया गया है। मन्दिर की छत शुंडाकार आकृति में बनी हुई है जिसके बाहरी दीवारों पर देवी–देवताओं की मूर्तियों से अलंकरण किया गया है।

इनके अतिरिक्त इस काल में अजन्ता, एलोरा तथा वाद्य आदि की कलायें भी उस समय के कारीगरों की महत्वपूर्ण देन है।

शीशे का उद्योग

शीशे का उद्योग भी बहुत उच्च स्तर का माना जाता था। शीशे की सहायता से चूड़ियाँ व मनके बनाये जाते थे। चूडियों और मनकों का विभिन्न रंगों के द्वारा

निर्माण किया जाता था।

रंग–रोगन एवं इत्र–प्रसाधान–संबंधी उद्योग

इस समय रंग–रोगन तथा इत्र प्रसाधन–संबंधी उद्योग भी मुख्य माना जाता था। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के सुंगधित पदार्थों चन्दन, केसर, लौहचूर्ण आदि का प्रयोग करती थी।

ईंट और खपड़ों के निर्माण का उद्योग

ईंट और खपड़ों के निर्माण का उद्योग भी उच्च कोटि का था। स्थापत्य में ईंट का उपयोग किया जाता था। ईंटे कच्ची और पक्की दोनों प्रकार की पाई जाती थीं।[18] ईंटें आकार–प्रकार की दृष्टि के उत्खनन से वर्गाकार, घनाकार, वृत्ताकार इत्यादि प्रकार की मिलती थी। अलंकृत ईंटो का भीतरगांव, नचारखेड़ा, अहिछन्न एवं मीरपुरखास निर्माण में प्रयोग किया जाता था।

निष्कर्ष :

अतः उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकालीन उद्योग–धन्धे और व्यवसाय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गुप्तकालीन उद्योग–धन्धों एवं व्यवसाय की गणना काफी उच्च कोटि की मानी जाती है जिसे नकारा नहीं जा सकता है बल्कि काफी सराहना ही की जाती हैं। अनेक विद्वानों ने भी काफी प्रशंसा की है। इस समय उद्योग–धन्धे एवं व्यवसाय के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई, जिसके परिणामस्वरूप उद्योग–धन्धा एवं व्यवसायों का काफी विकास हुआ। अतः स्पष्ट है कि गुप्तकालीन युग में उद्योग–धन्धे तथा व्यवसाय की महत्वपूर्ण भूमिका मानी है।

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, एस.एम, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, प्रमाणिक पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1997, पृ. 303
2. मैती, एस.के. इकॉनोमिक लाईफ इन दी नॉदर्न इंडिया, इन गुप्त पिरियड, कलकत्ता, 1957, पृ. 134
3. अमरकोश, 2/10/08
4. गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, प्राचीन भारत में व्यापार, जयपुर, 2004, पृ. 44
5. रामकुमार अहिरवार, शिल्पियों का गौरवशाली इतिहास, जयपुर, 2010, पृ. 223
6. रघुवंश, 16/43
7. अमरकोश, 2/6/113–119
8. पाण्डेय, विमलचन्द, प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2016, पृ. 149
9. सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 2000, पृ. 388
10. जून, राजीव, प्राचीन भारत में धातु उद्योग, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 63
11. श्रीवास्तव, प्रवेश कुमार, गुप्तकालीन नगर एवं व्यापार, दिल्ली, 2005, पृ. 48
12. काडिग्टन, दि आर्ट्स ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान, पृ. 48
13. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2000, पृ. 529
14. गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, प्राचीन भारत में व्यापार, पृ. 46
15. कालिदास, रघुवंश, 16/43
16. पाण्डेय, राजेन्द्र, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तर–प्रदेश, 1976, पृ. 183
17. वही, पृ. 176
18. श्रीवास्तव, प्रवेश कुमार, गुप्तकालीन नगर एवं व्यापार, पृ. 53

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधुनिक नवनिर्मित अप्रचलित तत वाद्य : एक अध्ययन

डॉ. अंजलि शर्मा** **वर्षा मिश्रा***

शोध सार

वैदिक काल से ही भारतीय शास्त्रीय संगीत में तत वाद्यों का एक विशेष स्थान रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में समय–समय पर नवीन तत वाद्यों के निर्माण का क्रम निरंतर प्रवाहशील है। प्राचीन काल तथा मध्य काल की तरह आधुनिक काल के विद्वानों में भी नवीन वाद्यों के आविष्कार में विशेष रूचि देखने को मिलती है। आधुनिक काल के विद्वानों ने अनेक नवीन तत् वाद्यों का निर्माण तो किया किन्तु अनेक वाद्य अत्यंत मधुर तथा भारतीय संगीत की हर विधा के लिए उपयुक्त होने के पश्चात् भी भारतीय संगीत में अपना स्थान नहीं बना पाए। अनेक तत वाद्यों को उनकी विशेषताओं के अनुरूप लोकप्रियता न मिल पाना भारतीय संगीत के लिए चिंता का विषय है।

सूचक शब्द : *भारतीय संगीत, तत, वाद्य, अप्रचलित, आविष्कार*

प्रविधि : *इस शोध–आलेख में द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है।*

भूमिका :

सम्पूर्ण विश्व की समस्त कलाओं में सर्वश्रेष्ठ भारतीय संगीत कला का उद्भव वैदिक काल से भी पूर्व का माना जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र इतना व्यापक है कि अत्यंत प्राचीन होते हुए भी सदैव नवीन प्रतीत होता है। भारतीय संगीत के इतिहास को विद्वानों ने मुख्यता तीन भागों में विभाजित किया है। प्राचीन काल, मध्य काल तथा आधुनिक काल। प्राचीन काल का समय प्रथम शताब्दी से 8वी शताब्दी तक, मध्य काल को दो भागों में विभाजित किया गया, पूर्व मध्य काल 8वी से 13वी शताब्दी, उत्तर मध्य काल 13वी से 18वी शताब्दी तक तथा आधुनिक काल का समय 18वी से वर्तमान समय तक सुनिश्चित किया गया है। प्राचीन काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक ही संगीत पद्धति का प्रचार था, किन्तु मध्यकाल में लगभग 13वी शताब्दी में भारतीय संगीत पद्धति का विभाजन दो भागों में हो गया, उत्तर भारतीय संगीत पद्धति तथा दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति। दोनों ही संगीत पद्धतियाँ अपने आप में पूर्ण हैं। किन्तु सम्पूर्ण विश्व में उत्तर भारतीय संगीत पद्धति का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है।

भारतीय संगीत का स्वरूप गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के मिश्रण से पूर्ण होता है। तीनों कलाओं के विकास क्रम का गहराई से अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि तीनों कलाओं में से विद्वानों द्वारा वादन संगीत के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रयोग किये गये। चारों प्रकार के वाद्यों (तत, सुषिर, अवनद्ध तथा घन) में से तत वाद्यों का स्थान सर्वोपरि है तथा नवीन तत वाद्यों का निर्माण हो या प्राचीनतत् वाद्यों को अधिक सशक्त बनाने के लिए वाद्यों में संशोधन का कार्य हो, प्राचीन काल से ही निरंतर चला आ रहा है। नवीन तत वाद्यों का सर्वाधिक निर्माण कार्य मध्यकाल में हुआ किन्तु आधुनिक काल के विद्वानों ने भी नवीन तत वाद्यों का निर्माण तथा प्राचीन अथवा मध्यकालीन तत वाद्यों के पुनर्निर्माण द्वारा भारतीय संगीत को और अधिक वैभवशाली बनाने के प्रभूत प्रयास किया है।

शोध विषय :

भारतीय शास्त्रीय संगीत की दोनों पद्धतियों (उत्तर भारतीय संगीत पद्धति तथा दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति) में से तत वाद्यों का सर्वाधिक प्रचलन उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में देखा जा सकता है। उत्तर मध्यकाल के प्रारंभ से ही उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में विभिन्न प्रकार के नवीन तत वाद्यों के निर्माण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधुनिक काल का समय लगभग 18वी शताब्दी से प्रारम्भ होकर वर्तमान समय में

*शोध छात्रा, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशिका, सहायक आचार्या, वाद्य अनुभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गतिमान है। इसी समय के अंतर्गत अनेक विद्वानों ने अपनी–अपनी आवश्यकतानुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के तत वाद्यों का निर्माण किया तथा कुछ मध्यकालीन तत वाद्यों में अपनी रूचि अनुसार संशोधन द्वारा उन्हें ओर अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास किया है। आधुनिक काल में निर्मित विभिन्न प्रकार के वाद्यों में से कुछ तत वाद्यों को उनकी विशेषताओं के अनुरूप उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में सुयोग्य स्थान प्राप्त हुआ किन्तु बहुत से तत वाद्य ऐसे भी हैं जिनको उनकी योग्यता समरूप उतर भारतीय संगीत में स्थान प्राप्त नहीं हो पाया। कहा जा सकता है कि जिन विद्वानों ने इन तत वाद्यों का निर्माण किया वे इन तत वाद्यों का प्रचार–प्रसार करने में सफल नहीं हो पाए। फलतः उतर भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए उपयुक्त होने के पश्चात् भी अनेक तत वाद्य या तो अप्रचलित हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधुनिक काल में निर्मित प्रमुख अप्रचलित तत वाद्यों का वर्णन निम्नलिखित है–

आधुनिक काल में निर्मित प्रमुख अप्रचलित तत वाद्य

1. सुर सागर	2. सुर प्यार
3. चन्द्रसारंग	4. दत्तात्रेय वीणा
5. मोहनवीणा	6. दिल बहार
7. नवदीपा	8. बेलाबहार
9. ललिता वीणा	

1. **सुर सागर**– सुर सागर वाद्य का निर्माण दिल्ली घराना के प्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद संगी खां के सुयोग्य पुत्र उस्ताद गुलाम हुसैन खां द्वारा किया गया। उस्ताद गुलाम हुसैन खां ने सर्वप्रथम अपने पिता से गायन की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अपना पूरा ध्यान सारंगी–वादन पर केंद्रित किया। उस्ताद गुलाम हुसैन खां गज तथा मिजराब दोनों की विशेषताओं

को एक साथ एक ही वाद्य में चाहते थे। अपनी इसी कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के उद्देश्य से खां साहब ने सारंगी के आधार पर सन् 1864 ई० 'सुर सागर' नमक एक नवीन वाद्य का निर्माण किया।" इस वाद्य को सारंगी का बड़ा रूप कह सकते है।" सुर सागर वाद्य का वादन गज अथवा मिजराब दोनों से किया जा सकता है। इस वाद्य में 100 से भी अधिक तारों का प्रयोग किया जाता है। दो प्रकार के वाद्यों की विशेषताएँ एक साथ एक वाद्य में समाहित होने के पश्चात् भी सुर सागर वाद्य वर्तमान काल में उतर भारतीय शास्त्रीय संगीत में अप्रचलित वाद्यों की श्रेणी में है।

2. **सुर प्यार**– सुर प्यार वाद्य का आविष्कार उस्ताद अशरफ अली तथा नवाब अली द्वारा 19वी शताब्दी में किया गया। यह अपनी तरह का एक मात्र विचित्र वाद्य है, इसमें तानपुरा, सितार तथा इसराज इन तीन वाद्यों को आपस में जोड़ कर बनाया गया है । तीनों वाद्यों का तुम्बा तथा सिर आपस में जुड़ा हुआ है। तीनों वाद्यों के ऊपर लगी एक

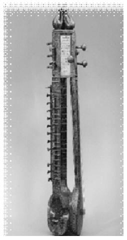

पट्टी पर अंग्रेजी, हिंदी तथा उर्दू में कुछ लिखा गया है। सुर प्यार वाद्य की वादन–शैली के विषय में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। वर्तमान समय में सुर प्यार अप्रचलित ही नहीं, अपितु लुप्त वाद्यों की श्रेणी में आता है।

3. **चन्द्र सारंग**– चन्द्र सारंग वाद्य का आविष्कार मैहर घराना के संस्थापक उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब ने किया। उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब एक ऐसे वाद्य का निर्माण करना चाहते थे जिसमे सारंगी, सरोद तथा वायलिन तीनों की विशेषताओं का समिश्रण हो तथा मौसम के प्रभाव से किसी तरह का विकार भी उत्पन्न न हो। इन्हीं सब विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए सन्

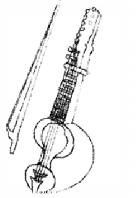

1931 ई० में चन्द्र सारंग वाद्य का निर्माण हुआ। इस वाद्य को बनाने में तुन की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य को गज द्वारा बजाया जाता है। इसका गज सारंगी वाद्य के समान होता है तथा गज–संचालन की विधि वायलिन के सदृश है। "उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब ने इस वाद्य का निर्माण एकल–वाद्य के रूप में किया था।" खां साहब ने सन् 1932 से 1934 के मध्य चन्द्र सारंग को अखिल भारतीय स्तर पर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। खां साहब के अथक परिश्रम के पश्चात् भी इस वाद्य का इतना अधिक प्रचार–प्रसार नहीं हो पाया तथा भारतीय संगीत के लिए अप्रचलित वाद्य के रूप में लुप्त होने की तरफ अग्रसर है।

4. **दत्तात्रेय वीणा**– दत्तात्रेय वीणा का आविष्कार विलक्षण प्रतिभा के धनी सन्यासी संत स्वामी श्री दत्तात्रेय राम राव पर्वतीकर द्वारा किया गया था। स्वामी पर्वतीकर का जन्म सन् 1916 ई० में कर्नाटक में हुआ। स्वामीजी को भारतीय शास्त्रीय संगीत में विशेष रूचि थी, वे सितार, विचित्र वीणा, रूद्र वीणा आदि वाद्यों का वादन करते थे। स्वामीजी इनके संगीत प्रेम के कारण इन्हें नाद योगी, वीणा बाबा आदि नामों से पुकारा जाने लगा। इन्होने सितार, विचित्र वीणा तथा स्वरमंडल को रुद्र वीणा में मिश्रित कर एक नवीन एवं विचित्र वाद्य का आविष्कार किया जिसका नाम दत्तात्रेय वीणा या दत्ता वीणा रखा। इस वाद्य की ध्वनि अत्यन्त सुमधुर है, स्वामी जी ने दत्तात्रेय वीणा का कुशल वादन विभिन्न संगीत समारोह में प्रस्तुत कर संगीत प्रेमियों को मंत्रमुग्ध किया है। स्वामी जी दत्तात्रेय वीणा के एक मात्र वादक थे, सन् 1990 ई० में स्वामी जी के निधन के पश्चात् इस वाद्य को किसी अन्य कलाकार द्वारा अपनाया नहीं गया । अतः भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त होते हुए भी दत्तात्रेय वीणा वर्तमान समय में अप्रचलित वाद्य है।

5. **मोहन वीणा**– पं० राधिका मोहन मोइत्रा द्वारा सन् 1946 ई० में मोहन वीणा का निर्माण किया गया। पंडित जी एक ऐसे वाद्य का निर्माण करना चाहते थे जिसमे वीणा तथा सुर सिंगार जैसी गहराई के साथ–साथ रबाब जैसी द्रुत गति की शैली को प्रस्तुत करने की क्षमता हो। कुछ वर्षों के प्रयोग के पश्चात् पंडित जी ने एक नवीन वाद्य का आविष्कार किया जिसमे सुर सिंगार, सुर बहार रबाब, तथा सरोद की सभी विशेषताओं को समाहित करने का सफल प्रयास किया गया। सन् 1948 ई० में ठाकुर जयदेव सिंह द्वारा पं० राधिका मोहन मोइत्र के नाम पर इस वाद्य का नाम मोहन वीणा रखा गया। इस वाद्य में मुख्य तारों की संख्या छः है तथा तरब के तारों की संख्या सरोद के सामान तेरह से पन्द्रह तक होती है। इसमें दो तुम्बे होते हैं। मोहन वीणा को मिलाने की विधि भी सरोद के सामान है। पंडित जी के शिष्यों द्वारा इस वाद्य का प्रचार–प्रसार करने का प्रयास किया गया किन्तु वे इस कार्य में सफल नहीं हो पाए है। वर्तमान समय में यह वाद्य भारतीय संगीत के लिए अप्रचलित तत वाद्य है।

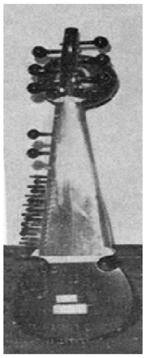

6. **दिल बहार** :– दिल बहार का आविष्कार पं० राधिका मोहन मोइत्रा द्वारा सन् 1956 ई० में किया गया । इस वाद्य का निर्माण सुरबहार, सितार तथा दिलरुबा के सम्मिश्रण से हुआ है। इस वाद्य में सात मुख्य तथा ग्यारह तरब की तारों का प्रयोग किया जाता है। "इसमें स्टील के उन्नीस पर्दे लगे हैं।" देखने में यह वाद्य सितार की तरह प्रतीत होता है। किन्तु इसमें लकड़ी की तबली के स्थान पर बकरी की खाल का प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य सुरबहार, सितार तथा दिलरुबा की विशेषताओं को समाहित किये हुए है किन्तु प्रचार–प्रसार न होने के कारण अप्रचलित वाद्यों की श्रेणी में आता है ।

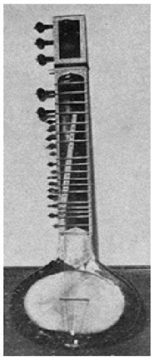

7. **नवदीपा** :– नवदीपा वाद्य का आविष्कार भी पं० राधिका मोहन मोइत्रा द्वारा सन् 1968 ई० में सम्पन हुआ। इस वाद्य में सुर सिंगर तथा इसराज का मिश्रण हुआ है।" राधिका मोहन मोइत्रा की एक शिष्या थी 'दीपा' वह अत्यंत सुन्दर थी। संभवतः उसके नाम पर इस वाद्य का नाम रखा गया है।" यह वाद्य सुर सिंगर वाद्य का लघु रूप है। इसकी वादन–विधि भी सुर सिंगर की तरह तथा ऊँगलियों का संचालन इसराज की तरह है तथा इसे गज द्वारा बजाया जाता है। यह वाद्य भी अपनी विशेषताओं के अनुरूप ख्याति अर्जित नहीं कर पाया। अतः नवदीपा वाद्य का स्थान भी अप्रचलित वाद्यों में ही आता है।

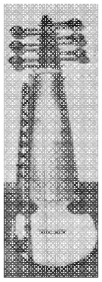

8. **बेला बहार**– बेला बहार का आविष्कार पंडित बाबूलाल गंधर्व द्वारा किया गया। पंडित बाबूलाल गन्धर्व का जन्म सन 15 अप्रैल 1951 ई० में देवास (मध्य प्रदेश) में हुआ। इनके पिता पंडित काशीराम अपने समय के प्रसिद्ध सारंगी वादक थे। पंडित बाबूलाल जी ने सर्वप्रथम गायन, सारंगी तथा वायलिन की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् सन 1979 में मुम्बई आ गए। यहाँ पंडित जी ने वायलिन और सारंगी

के मिश्रण से एक नवीन वाद्य के निर्माण की कल्पना की। "पिता जी की सहायता से 200 साल पुरानी लकड़ी पर काम शुरू किया, भाग्य ने साथ दिया और बाबूलाल जी ने नए साज का निर्माण प्रथम प्रयोग में कर दिया।"

बेला बहार वाद्य का निर्माण–कार्य लगभग 1984 में पूर्ण हुआ । इसका निर्माण सागौन तथा शीशम की लकड़ी से किया जाता है। बेला बहार में सारंगी तथा वायलिन की सभी विशेषताएँ समाहित हैं। यह वाद्य भारतीय संगीत की किसी भी विधा में उपयोग के लिए उपयुक्त तथा अत्याधिक कर्णप्रिय वाद्य है। इस वाद्य का प्रयोग भारतीय चित्रपट संगीत में हुआ है, जैसे– गदर, दामिनी, एल.ओ.सी कारगिल, रिफ्यूजी आदि लोकप्रिय हिंदी फिल्मों में बेला बहार को सुना जा सकता है। बेला बहार में मुख्य 5 तार तथा 22 तरब के तारों का प्रयोग किया जाता है तथा इसका वादन गज द्वारा किया जाता है। इसकी वादन–विधि वायलिन की तरह है जो कलाकार वायलिन बजा सकता है वह बेला बहार को भी सरलता से बजा सकता है। परन्तु बेला बहार वाद्य इतनी विशेषताएँ तथा मधुर ध्वनि होने के पश्चात् भी उतर भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपना उपयुक्त स्थान नहीं बना पाया।

9. **ललिता वीणा**– ललिता वीणा का आविष्कार श्री रामशेष विश्वनाथ द्वारा किया गया। "श्री रामशेष के शब्दों में, ''स्वप्न में श्री रामशेष को माँ ललिता का साक्षात्कार हुआ। माँ ललिता ने श्री रामशेष को ललिता वीणा बनाने की प्रेरणा दी।"

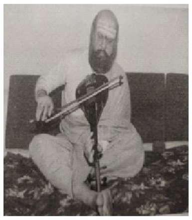

तत्पश्चात् श्री आर. के. मोहन तथा श्री सरबजीत सिंह के सहयोग से इस वाद्य को आकार देने में सफलता प्राप्त की । यह वाद्य गज द्वारा बजाया जाता है। इस वाद्य का निर्माण वायलिन वाद्य के आधार पर हुआ है। श्री रामशेष विश्वनाथ ललिता वीणा का वादन करने वाले एकमात्र कलाकार हैं। अतः ललिता वीणा की गणना भी उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के अप्रचलित वाद्यों में ही की जाती है।

उपर्युक्त वाद्यों के अतिरिक्त सुर सांगा, हंस वीणा, सुर निखर, नवचित्र वीणा, शिंगार वीणा आदि वाद्यों का निर्माण आधुनिक काल में हुआ किन्तु ये सभी वाद्य अपनी क्षमताओं के अनुरूप उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याति प्राप्त नहीं कर पाए, अतः भारतीय संगीत के लिए अप्रचलित वाद्यों की श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोधपत्र में उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आधुनिक काल में निर्मित अप्रचलित तत वाद्यों के विषय पर चर्चा की गई है। उपर्युक्त वाद्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नवीन वाद्यों के निर्माण में आधुनिक काल के विद्वानों की विशेष रूचि रही है। विभिन्न प्रकार के अन्य वाद्यों का निर्माण आधुनिक काल में निरंतर गतिमान है किन्तु नवीन वाद्य पूर्ण रूप से उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए उपयुक्त होने के पश्चात् भी अपना स्थान नहीं बना पा रहे। अतः नवीन तत वाद्यों के प्रचार–प्रसार के लिए पर्याप्त प्रयास करने की आवश्यकता है अन्यथा अनेक प्राचीन सुमधुर वाद्यों के सदृश नवीन तत वाद्य का लुप्त होना निश्चित है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, डॉ. योगिता, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तंत्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृतियां, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, 2008, पृ. सं.– 164
2. वही, पृ. सं.– 159
3. वही, पृ. सं.– 162
4. वही, पृ. सं.– 163
5. कपिल, डॉ. हेमंत, वायलिन के विभिन्न आयाम, वृंदा प्रकाशन, दिल्ली 2020, पृ. सं.– 59
6. शर्मा, डॉ. योगिता, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तंत्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृतियां, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, 2008, पृ. सं.– 175

बुन्देली लोक वाद्य : एक सर्वेक्षण

डा० संतोष पाठक**

सुमिति श्रीवास्तव*

शोध सारांश

भारतीय लोक संगीत के क्षेत्र में वाद्यों का लोकप्रिय होना अत्यंत स्वाभाविक है । सांगीतिक ध्वनि उत्पत्ति उपकरण द्वारा हुई, जिन्हे वाद्य की संज्ञा दी गई । लोक संगीत के अंतर्गत वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है । सांगीतिक वाद्यों का वर्णन वैदिक कालीन ग्रंथो में मिलता रहा है तथा आदिकाल से वाद्यों की परंपरा चली आ रही है । साहित्य व ग्रंथो से प्राप्त जानकारी से स्पष्ट होता है कि अनगिनत वाद्य–यंत्र उपलब्ध थे परंतु परिवर्तन की इस बयार में इनका विलुप्तिकरण होता जा रहा है। आधुनिकता के दौर में अपनी प्राचीन धरोहर का संरक्षण व संवर्धन हो सके तथा समय आने पर पठन–पाठन के काम आ सके जिससे यह उपयोगी साबित होगा।

मुख्य शब्द : *बुन्देली, वाद्य, यंत्र, वादन, लोक*

प्रविधि : *शोध–पत्र तैयार करने के लिए द्वितीयक स्रोत को माध्यम बनाया गया है।*

प्राचीन काल से मनुष्य भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीत, वाद्य और नृत्य को माध्यम बनाता आ रहा है। सभी वर्गों की भाषा, कला और संस्कृति एक–दूसरे से भिन्न होती हैं इसलिए ही इन सबके गीत, नृत्य और वाद्ययंत्र समाज, देश और काल के अनुसार अपना अलग अस्तित्व और अलग सौंदर्य रखते हैं।

संसार में जीतने भी वाद्यों का प्रयोग किया जाता है उनके मूलरूप से दो ही प्रकार होते है–

स्वर वाद्य यंत्र और ताल वाद्य यंत्र[1]

बुंदेल खंडका

लोक जीवन अपने आनंद और हर्षोल्लास में जिन सांगीतिक वाद्ययंत्रों का प्रयोग करता है वह यहां के लोक वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्य–यंत्रों की एक लंबी श्रृंखला है जिन्हें हम पांच विभेदों में अध्ययन करते हैं–

1. तत वाद्य–यंत्र 2. सुषिर वाद्य–यंत्र
3. अवनद्द वाद्य–यंत्र 4. घन वाद्य–यंत्र[2]

1. तत वाद्ययंत्र

ये वे वाद्ययंत्र हैं जिनमें तार अपनी झंकार से स्वरों की उत्पत्ति करते हुए गीतों को लय प्रदान करते हैं। इन वाद्ययंत्रों में एक दण्ड होता है जो किसी गोल बड़े पात्र से जुड़ा रहता है और इन पर तार खीचें रहते हैं। बुंदेली लोक जीवन में एक अथवा चार तारोंवाले तत वाद्य–यंत्रों का ही प्रयोग अधिकांश प्रचलन में है। इन वाद्य–यंत्रों को तंत्री या तारवाद्य भी कहते हैं। बुंदेलखंड में सारंगी, तंबूरा, रेकड़िया, डुग–डुगी आदि लोकवाद्य यंत्रों का प्रचलन हैं ।[3]

तम्बूरा

ब्रह्माजी के मानस पुत्र नारदजी सदैव अपने हाथों में वीणा लिए रहते हैं जिसमें चार तार होते हैं। इसे नारद वीणा भी कहते हैं। तंबूरे में आमतौर पर एक तार ही होता है परंतु कहीं–कहीं चार तारवाले तंबूरे का भी प्रयोग होता देखा जा सकता है। तंबूरे में तुंबा होता है जो इकतारे की अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

चौपालों में जब ग्राम के लोग एकत्रित होकर भजन करते हैं आमतौर पर उसी समय इस तंबूरे का प्रयोग होता है। कबीरदास के भजन या पदों के साथ–साथ अन्य भजनों की गायकी में इसका प्रयोग किया जाता है।

एकतारा

इसमें केवल एक तार होता है तथा इसे भी एक

*शोध–छात्रा (संगीत), वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
**शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

अंगली से बजाया जाता है। यह आम तौर पर भिक्षा मांगने वाले भजन गाते हुए इसे बजाते हैं जिससे स्वर का सामंजस्य बना रहता है।

रेकड़ी

इसकी बनावट एक तारे जैसी ही होती है परंतु इसका आकार अपेक्षाकृत काफी छोटा होता है। इसको बजाने के लिए बांस की एक धनुषाकृति ली जाती है जिसमें डोरी के स्थान पर घोड़े का बाल बंधा होता है। एक हाथ से रेकड़ी को पकड़ कर दूसरे हाथ से धनुषाकृति के बाल वाले भाग को तार पर रगड़कर स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। इसे रूरूं या किंगारी भी कहते है। वैसे तो यह ढिमरयाऊ नृत्य का प्रमुख वाद्य यंत्र भी है लेकिन कथा गायकी में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

2. सुषिर वाद्य–यंत्र

मुंह से फूंक मारकर जिन यंत्रों द्वारा स्वरों का सृजन होता है वह यंत्र सुषिर वाद्ययंत्रों की श्रेणी में आते हैं। सुषिर वाद्ययंत्रों की लंबी श्रृंखला बुंदेली लोकजीवन में देखने को मिलती है।

अलगोजा

यह तंत्र बांसुरी जैसा ही होता है इसमें छिद्रों की संख्या केवल तीन होती है। इसकी विशेषता यह होती है कि यह जोड़े में होती है तथा जोड़े को एक साथ होठों से लगाकर एक साथ फूंक मारकर स्वरों को निकाला जाता है।

तुरही

यह पीतल अथवा तांबे (धातु) की एक लंबी छड़ी होती है। इसके एक सिरे से फूंक मारी जाती है तथा दूसरा सिरा कुप्पी की तरह चौड़ा होता है जहां से तुरही के स्वर निकलते हैं। इसका उपयोग उद्घोष के अवसर पर किया जाता है। मां भवानी की सवारी चलती है और आगे–आगे तुरही अपने स्वरों से मां की सवारी की सूचना देती हुई चलती है।

कन्डाल

इसका स्वरूप भी तुरही की तरह ही होता है। अंतर केवल इतना होता है कि इसका आकार तोरई के आकार का लगभग दोगुना अथवा उससे अधिक होता है। यह एक घोष सुषिर वाद्य यंत्र है जिसका चलन अब समाप्त हो गया है।

रमतूला

यह अंग्रेजी के अक्षर S के आकार का होता है। इसमें फूंक मारने वाला सिरा पतला तथा दूसरा खुला शब्द निकालने वाला सिरा बड़ा फैला हुआ होता है। वर्तमान में इसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।

3. अवनद्ध वाद्य–यंत्र

खाल से मढ़े हुए वाद्य यंत्र अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। गीत, गायकी की तथा नृत्य में थाप के माध्यम से संगत देने का कार्य ये वाद्य यंत्र करते हैं। अपनी आकृति में विविधता समेटे हुए ये वाद्य यंत्र अलग–अलग नामों से जाने जाते हैं।

ढांक

इसकी बनावट डमरू के ही समान होती है। परन्तु इसका आकार डमरू के आकार से कई गुना बड़ा होता है तथा इसके दोनों खाल से मढें हुए सिरों को हाथ तथा एक डंडी के प्रहार से बजाया जाता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसको पैर के पंजों पर डोरी की सहायता से घुटनों में बांधा जाता है। इस पर घुंगरू भी लगे होते हैं जब खाल मढे सिरों पर हाथ के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न होती है तभी घुटनों के खिंचाव से उस ध्वनि में लय डाली जाती है। ढाक का प्रयोग आम तौर पर देवताओं के आह्वान के समय किया जाता है। बुंदेल खंड में लोक देवताओं के रूप में पूजित कार सदेव, हीरामन, दूल्हा देव, हरदौल आदि गोटे कहा जाता है।

मृदंग

मिट्टी अथवा लकड़ी के बेलनाकार खोखले पात्र के दोनों सिरों को खाल से बढ़कर तैयार किया जाता है। एक सिरे की खाल पर स्याही लगी होती है तथा दूसरे सिरे की खाल पर कच्चे गीले आटे की रोटी चढ़ाई जाती है। तब यह दोनों हाथों की सहायता से बजाया जाता है। त्रिपुरा सुर के साथ युद्ध करते हुए जब भगवान शंकर ने विजय प्राप्त की थी तब हर्षोल्लास के वातावरण में गौरी

सुत श्री गणेश ने इस वाद्ययंत्र को सृजित कर सबसे पहले भगवान शंकर के नृत्य को ताल तथा गीत देने के लिए बजाया था।

ढोलक

इसकी बनावट मृदंग की ही भांति होती है। अंतर केवल इतना होता है कि इसमें दोनों सिरों का कसाव पैदा करने के लिए गट्टे नहीं होते बल्कि छोटे–छोटे लकड़ी की खपत्तियों द्वारा रस्सी में बल देकर खिंचाव किया जाता है। केवल लकड़ी की बनी होती है। गायन के पीछे–पीछे लुढकने के कारण इसका नाम ढुलकिया या ढोलक पड़ा।

ढोल

ढोलक का बड़ा और विशाल रूप ही ढोल कहलाता है इसके बजने से वीर रस का आभास होता है।

नगाड़ा

यह लोहे तथा पीतल की धातु का बना होता है जिसमें केवल मुख होता है जो खाल से मढ़ा हुआ होता है तथा रस्सियों के खिंचाव से खाल को खींचा जाता है। इसे लकड़ी के दण्डों से बजाया जाता है। पौराणिक ग्रंथों में दुंदंभि के रूप में इसका उल्लेख मिलता है। यह वही दुंदंभि है जिसका उपयोग आमतौर पर रण–भूमि में ललकार के लिए उपयोग किया जाता था।

नगडिया

यह नगाड़े का ही छोटा रूप है जो धातु अथवा मिट्टी की बनी होती है। जोश पैदा करने वाले गीतों की गायकी के साथ–साथ देवी पूजन, विवाह संस्कार, जन्म संस्कार आदि विशेष विषयों पर गाए जानेवाले लोकगीतों के साथ नगडिया स्वर से स्वर मिलाकर थाप देते हुए वातावरण में व्याप्त हर्ष के वेग को दुगुना कर देता है।

हुड़क

इसे लकड़ी या मिट्टी से ढोलक के बेलनाकार रूप में बनाते हैं परंतु इसे केवल एक ही तरफ से मढ़ा जाता है तथा हाथ की अंगुलियों के प्रहार से बजाया जाता है। बुंदेल खंड की कहार जाति का यह प्रिय वाद्ययंत्र है इसे दहकी भी कहते हैं।

ढ़फ

इसकी आकृति डमरू के आधे भाग से मिलती है। इसे चंग भी कहते हैं। इसका प्रयोग आम तौर पर फाग में किया जाता है। भजन गायकी में भी इसका उपयोग किया जाता है।

खंजरी

यह वाद्य–यंत्र अवनद्ध तथा घन वाद्य–यंत्र का मिला–जुला रूप है। इसमें एक गोल धातु तथा लकड़ी की चौड़ी पट्टी युक्त रिंग होती है जो एक ओर खाल द्वारा मढ़ी होती है। इस पट्टी युक्त रिंग में बड़े–बड़े छिद्र होते हैं जिनमें तार को आधार बनाकर उसमें तांबे के गोल–गोल पतले पैसेनुमा टुकड़े पड़े रहते हैं। इसे बाएं हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ की अंगुलियों से थाप देकर बजाते हैं।

चंग

यह बुंदेल खंड का अत्यंत प्रिय वाद्य है। इसमें पीतल तांबा तथा गिलट का गोल घेरा होता है। इसके एक ओर चमड़ा मढ़ा होता है जिसे धातु के हुकों द्वारा फंसाया जाता है। इस पर दाहिने हाथ से थाप देते हैं तथा बाएं हाथ की अंगुलियों में पीतल या लोहे के छल्ले से मेखले पर आघात करते हैं। संगत के आधार पर ख्याल गायकगण फड़बाजी में पूरी–पूरी रात बिता देते हैं।

ढपला

यह वाद्य यंत्र लकड़ी की आठ पट्टियों द्वारा बना हुआ होता है। ये पट्टियाँ चार से आठ इंच लंबी व तीन से पांच इंच चौड़ी व लगभग आधा इंच मोटी होती है। इन आठों पतियों को अष्टभुजी आकृति में जोड़ लिया जाता है, फिर एक ओर चमड़ा मढ़ कर दूसरी ओर रस्सी के जाल से चमड़े पर खिंचाव बनाया जाता है। स्वर निकालने की दृष्टि से इसे आग में तपा कर अथवा धूप दिखा कर उपयोग में लाते हैं।

ढपली

इसका आकार धपले से छोटा होता है। यह धातु की अथवा लकड़ी की एक गोलपट्टी होती है जो एक ओर से चमड़े द्वारा मढ़ी होती है। इसे हाथ के प्रखर प्रहार से बजाया जाता है।

नौबद

लोहे, पीतल तथा तांबे की विशाल नाद को मोटे चमड़े से मढ़कर नौबत बनाई जाती है। मोटे डंडे के आघात द्वारा इसे बजाया जाता है। प्राचीन काल में राजा के आने–जाने की सूचना के समय इसे बजाया जाता था तथा युद्ध में भी इसका प्रयोग बहुत अधिक होता था।

डिग्गी

नौटंकी में नगाड़े के साथ रखकर बांस की पतली खपच्ची के द्वारा बजाया जाता है। यह गहराई लिए हुए चौड़े मुंह का मिट्टी का पात्र होता है जो ऊपर से चौड़ा तथा नीचे से सकरा होता है। इसके ऊपरी भाग को चमड़े से रस्सी की मदद से मढ़ा जाता है।

टिमकी

इसका रूप नगड़िया जैसा ही होता है परंतु नगड़िया के अपेक्षाकृत छोटा होता है इसका स्वर नगडिया से ऊंचा होता है।

तांसा

यह टिमकी की भांति ही होता है किंतु धातु के तसलानुमा बने आकार को चमड़े से मढ़कर इसे बनाया जाता है। इसका स्वर तेज होता है। इसका प्रयोग ज्यादातर मुनादी आदि करवाने में किया जाता है। इसे बांस की पतली खपन्ची के आघात द्वारा बजाया जाता है।

4. घन वाद्य–यंत्र

इन वाद्ययंत्रों में खाल मढ़ी हुई नहीं होती तथा आपसी प्रहार एवं घर्षण द्वारा स्वर की उत्पत्ति होती है।

मटका

यह मिट्टी का बना होता है तथा इसका मुंह छोटा तथा पेट बड़ा होता है। इस पर एक हाथ में पैसा अथवा धातु की कोई वस्तु लेकर प्रहार किया जाता है तथा दूसरे हाथ से थाप देकर नियंत्रण करते हैं। बुंदेलखंड में मां के अचरी–गायन में इसका प्रयोग होता है। अब तो इस वाद्ययंत्र की पहुंच शास्त्रीय संगीत तक हो गई है।

मंजीरा

यह सामान्यतः चार अंगुल व्यास का छिछला कोटेनुमा गोलाकार यह वाद्य फूल, पीतल कांसा तथा अष्टधातु का बना होता है। गहराई के बीचो–बीच एक छिद्र होता है जिसमें डोरी पिरोई जाती है। इसकी डोरी को हाथों में लपेटकर जब दोनों मंजीरो को आपस में टकरा कर बजाते हैं तो मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। भजन, आल्हा, फाग आदि गीतों में इसका प्रयोग होता है।

झांझ

यह अत्यंत प्राचीन वाद्य है। इसका उल्लेख भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, बौद्धसाहित्य, रामायण, महाभारत आदि पुस्तकों में झर्झर के रूप में मिलता है। यह मंजीरा के सामान होता है लेकिन इससे बहुत बड़ा होता है। इसका उपयोग आल्हा, फाग तथा भजन–गायन में बुंदेली गायक करते हैं।

झींका

यह लंबी लकड़ी की दोपट्टियों के मध्य छः से लेकर दस मोटे तारों से बनता है। इन तारों में पीतल के गोल–गोल छोटे पहिये लगे होते हैं। इस वाद्य को दोनों हाथों से पकड़कर जब हिलाते हैं तब इसके पहिए झंकृत होते हैं।

कसारी

यह एक कांसे की थाली होती है। इसे कसावरी, कसेरू आदि नामों से पुकारते हैं। इसे एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ में पकड़े किसी चमचे के प्रहार से बजाया जाता है। इसके द्वारा नवजात शिशु के आगमन की सूचना दी जाती है।

लुटिया

घर की दिनचर्या में प्रतिदिन काम आनेवाला गिलट अथवा पीतल का लोटा भी एक लोकवाद्य के रूप में यहाँ प्रयोग किया जाता है। इसे खाली रखकर इस पर दो धात्विक क्षणों के प्रहार से बजाया जाता है। इससे निकलने वाली टन–टन की आवाज बहुत मधुर लगती है। मां के अक्षरी गायन अथवा दिवारी नृत्य में इसका बहुत प्रयोग होता है।

चटकोला

यह पीतल अथवा लोहे की दो पतले छड़ो की

मदद से बनता है जिसके एक ओर गोल छल्ला लगा रहता है। इसके दो अग्रभाग खुले रहते हैं जिनपर आघात से ध्वनि उत्पन्न होती है। बुंदेलखंड में सरमन वासुदेवा की कथा गाते समय, साधुलोग भजन करते समय तथा गौड़ जाति की महिलाएं अपना शैताम नृत्य करते समय उपयोग करती हैं। इसे चिमटी, चिमटा, चमीटा भी कहते हैं।

लकड़ी

पतली–पतली दो लकड़ियों के आपसी टकराव से उत्पन्न ध्वनि को बुंदेल खंड के लोक–जीवन ने संगीत के वैकल्पिक वाद्य के रूप में स्वीकार किया। अभी तो यहां दिवारी जैसे पुरुष–प्रधान नृत्य में इन लकडियों द्वारा उत्पन ध्वनि लय व ताल प्रदान करती हैं।

कुछ अन्य वाद्य–यंत्रों के रूप ढकोली, झंगड, नाहर, धौंकनी आदि भी सम्मिलित हैं।

बाल्मीकि रामायण के 128 में सर्ग के श्लोक संख्या 10 में कहा गया है–

तूर्यसंघाततनि घोषैःकान्चीनूपुरनिः स्वनैः।
मधुरैगीर्यत शब्दैश्च प्रतिबुध्यस्वशेष्व च।[4]

श्री रामजी! आप विविध वाद्यों की मधुर ध्वनि, कांची तथा नूपुर की झंकार और गीत के मनोहर शब्द सुनकर सोएँ और जागें।

निष्कर्ष :

इन वाद्य–यंत्रों से लोक जीवन के गायन को ताल और लय मिलती है जिससे हर्ष एवं आनंद का वातावरण उत्पन हो उठता है और मन मयूर थिरकते हुए आत्मविभोर हो जाता है। इन वाद्य–यंत्रों की बहुत उपयोगिता है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, महारानी, 2014, संगीतमणि, श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं. 183
2. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, 2010, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. सं 349
3. श्रीवास्तव, वीणा, 2004, बुंदेलखंडी लोकगीतों में सांगीतिक – तत्व, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.सं. 375
4. बाल्मीकि, रामायण, 128वें सर्ग से श्लोक सं 10

पटियाला घराना में तान प्रधान बंदिशों का वैशिटय

डॉ. ममता रानी ठाकुर** **राम नारायण झा***

सारांश

पटियाला घराना का हिन्दुस्तानी ख्याल गायकी में अपना प्रमुख स्थान है। इस घराने में अली बक्श (जनरैल), फतेह अली (जनरैल), मोजुद्दीन खाँ, उस्ताद काले खाँ (कसूर वाले), उस्ताद मियां जान, उस्ताद इमामदीन, अल्लादिया खाँ मेहरवान, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, उस्ताद मुन्नवर अली खाँ आदि अनेक महान गायक हुए है, परंतु पटियाला घराना का नाम आते ही उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ का नाम स्वतः ही प्रकट होता है। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ इस घराने ने उच्चकोटि के कलाकार होने के साथ–साथ इस घराने को अपनी विशिष्ट पहचान दिलायी। इस घराना की बंदिशें भी विशिष्ट हैं ।

मुख्य शब्द : *घराना, पटियाला, बन्दिश, तान, गायकी*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लिए प्राथमिक और द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है ।*

उस्ताद बड़े गुलाम खाँ साहब का कथन है "वैसे तो मैं कसूर का हूँ, लेकिन मेरे बुजुर्गों ने यानी अली बक्श खाँ साहब और चाचा काले खाँ साहब ने फतेह अली खाँ से शिक्षा पाई जो पटियाला घराने के थे और मैंने चूँकि अपने वालिद (पिता) और चाचा काले खाँ से इस गायकी को सीखा और अपनाया इसलिए मैं पटियाला घराने का हूँ।[1]

इस घराने के विषय में विभिन्न मत प्राप्त होते है कि यह कोई बहुत पुराना घराना नही है, इस घराने का संक्षिप्त विवरण कुछ इस प्रकार है–

एक मत के अनुसार "बहराम खाँ (ध्रुपदिये) के, काले खाँ नाम के एक सारंगिए थे जिनके दो पुत्र थे – अली बक्श एवं फतेह अली, जो आलिया–फत्तु के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोकी बाई जो बहराम खाँ की शिष्या थी उन्होंने इन दोनों भाइयों को ख्याल गायन की शिक्षा एवं बहराम खाँ ने उन्हें ध्रुपद की शिक्षा दी। कहा जाता है कि इन दोनों भाइयों ने दिल्ली के 'तानरस खाँ' से भी शिक्षा पाई। इसके बाद आलिया टोंक चले गये और फतेह अली पटियाला चले गये। बाद में आलिया भी टोंक छोड़ कर पटियाला आ गये। यहाँ इन्होंने विशेष साधना से दिल्ली और पंजाब की टप्पा अंग की शैली का सुन्दर मिश्रण कर एक नवीन शैली निर्मित की जिसे 'पटियाला गायकी' कहकर संबोधित किया गया। ''वास्तव में पटियाला घराना के प्रवर्तन का श्रेय आलिया फत्तु को ही मानना उचित होगा।[2]

उस समय फत्तु आलिया की आवाज की सफाई, तैयारी व मौके की सूझ–बूझ शिखर पर थी एवं गायकी अत्यंत प्रभावी थी। तानरस खाँ ने हद्दू–हस्सू खाँ एवं मियां अचपल से प्राप्त स्थाइयाँ इन दोनों भाइयों को सिखाना प्रारम्भ किया। इन दोनों ने उनके मुखड़े को टप्पा अंग में परिवर्तित कर दिया, जिससे इनकी गायकी में विविधता एवं स्फूर्त नवीनता का प्रसार हुआ।[3]

पटियाला घराने की विशेषताओं में रचनाओं में रंगीनी एवं चपलता, आलंकारिक एवं फिरत की तानों का प्रयोग छोटे ख्यालों में कलापूर्ण बंदिशें, गायन में पंजाब–शैली के टप्पा अंग का प्रयोग, तैयार तानों का अधिक प्रयोग सुनने को मिलता है।

आलिया फत्तू ने ख्याल कई की बंदिशों की रचना की, जिनमें कुछ बंदिशें पंजाबी भाषा में भी उपलब्ध हैं। बाद में बड़े गुलाम अली खाँ साहब ने 'सबरंग' उपनाम से बंदिशों की रचना की जो अत्यंत आकर्षक हैं। वर्तमान में ये रचनाएँ सुनते ही पटियाला घराना की विशेषताएँ परिलक्षित होने लगती हैं, जैसे राग यमन में "मोरा मन हर लीये दैया", भैरव राग की "धन धन मूरत कृष्णमुरारी", कामोद राग में "छाड़ दे मोरा आचरा", गुणकली राग में "हे करतार", राग जैजैवन्ती में "विनती का करिये", गुजरी तोड़ी में 'भोर भई तोरी बाट तकत पिया", केदार में

*शोधार्थी, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

**शोध निर्देशिका, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

''नवेली नार", बिहाग में "अब तो रट लागी", शंकरा में "ऐरी सजनी", मालकौंस में "आये पी मोरे मंदिरवा" एवं देस राग में "कारी घटा घिर आईं री सजनी" आदि अपने टकसालीपन के लिए विश्वविख्यात हैं ।

पटियाला घराना की प्रायः सभी बंदिशें जो बहुत ही आकर्षक रहीं, इनमें से कुछ रचनाएं इस प्रकार हैं–

राग–अड़ाना (तीनताल)

स्थाई – तान कपतान कहा गयो, जगत में फतेह अली खान

अंतरा – तान बलवंत ऐसी फिरत है जैसे अर्जुन जी के बान[4]

इस बंदिश में अड़ाना राग के स्वभाव एवं चंचलता को ध्यान रखते हुए लय की चपलता से रचना की गई, बंदिश में तान कपतान शब्द के अनुसार ही रखा गया है।

सांनि	सारें	मंरे	सांनि	पम	रेसा	ग
ताऽ	ऽऽ	ऽऽ	नऽ	कऽ	पऽ	x

मुखड़ा 6 मात्रा का है और वह 11वीं मात्रा से शुरू हो रही है और सम को (ग) पर रखा गया है, दूसरी पंक्ति में यही तान फिर फतेह अली खाँ में प्रयोग करते हुए उसमें

सांनि	सारें	गरें	सांनि	पम	प	सांनि	सारे	गेरें	सांनि
खा	ऽऽ	ऽऽ	नाऽ	कऽ	प	ताऽ	ऽऽ	ऽऽ	नऽ

अलग से एक तान भी कही गई है। अंतरे का उठान म प नि प सारंग अंग से सीधा रखते हुए अन्तिम पंक्ति में फिर से स्थाई वाली अन्तिम जड़ो 'अर्जून जी के बान' शब्द आया है वहाँ पर फिर से बान में

सांनि	सारें	गरें	सांनि	पम	प	सांनि	सारे	गेरें	सांनि
बऽ	ऽऽ	ऽऽ	नऽ	कऽ	प	ताऽ	ऽऽ	ऽऽ	नऽ

फिर स्थाई तान से शुरू की गई है । ज्यादातर गायक जब इस बंदिश को गाते है तो बंदिश का सम तार (सां) पर रखते है इस प्रकार

सांनि	सारें	सांनि	पम	प	सां
ताऽ	ऽऽ	नऽ	कऽ	प	ता

राग–भैरव (तीनताल)

स्थाई – धन धन मूरत कृष्ण मुरारी सुलोचन गिरधारी, छब सुन्दर लागे अति प्यारी

अंतरा – बंसीधर मन मोहन सुहाये बली बली जाऊँ, मोरे मन भावे, सबरंग ज्ञान बिचारी[5]

इस बंदिश में भैरव रागवाचक स्वर ग म ध ध से धन धन मूरत की शुरुआत करते हुए राग के अनुसार स्वर निर्मिति के साथ ही अंतिम 'लागे अति प्यारी' में प्यारी को एक सुन्दर आरोही–अवरोही की तान में पिरोया गया है ।

पध	निसां	सारें	सांनि	धनि	धप	मग	म
प्या	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री

अंतरा का उठान ग – म – प – ध – लेते हुए तार सप्तक के गांधर तक जाते हुए 'ज्ञान विचारी' में उसी

स्थाई वाली तान किया गया है ।

पध	निसां	सारें	सांनि	धनि	धप	मग	म
चाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री

राग–गुर्जरी तोड़ी (तीनताल)

स्थाई.– भोर भई तोरी बाट तकत पिया नैन अलसाने भये, सगरी रैन कहाँ जागे पिया

अंतरा – हमी संग मुख की बतियाँ कर सबरंग तोरी बात, सौतन के भाग जागे पिया[6]

इस बंदिश की स्थाई में एक आकर्षक तान से ही आरंभ किया गया है, नायिका अपने प्रीतम से रूष्ट है और अपनी नाराजगी जाहिर करती है। इस भाव को ध्यान में रखकर खाँ साहब ने

धमं	धनि	धमं	गरे	सा	धमं	धनि	धमं
भोऽ	ऽऽ	रऽ	भऽ	ई	तोऽ	ऽऽ	रीऽ

'तान लेते हुए इसकी रचना की, पहली पंक्ति को तान में लेते हुए दूसरे पंक्ति को सीधा और तीसरी पंक्ति में तार सप्तक के गांधार तक जाते हुए

नि	सां	रें	गं	धमं	गरे	सा
जा	ऽ	ऽ	ऽ	गो	ऽऽ	ऽ

एक तान ऐसी ली कि सुनते ही श्रोता रोमांचित हो उठते है। अंतर में सुंदर उठाव के साथ ही अंतिम पंक्ति को तार सप्तक के गांधार तक गाते हुए तान का प्रयोग किया है।

सां	रें	गं	–	धमं	गरे	सा	–
जा	ऽ	ऽ	ऽ	गेऽ	ऽऽ	पि	या

राग–मालकौंस (तीनताल)

स्थाई.– आये पी मोरे मंदिरवा सबरंग सों लागे भाग

अंतरा – बहुत दिनन में प्रभु दया किन्हीं मोरे सब दुख दीनो त्याग[7]

इस बंदिश में 'आए पी मोरे' के प्रारंभ में ही अवरोही तान से की, जैसे नायिका का मन ही नृत्य कर रहा हो एवं उसे वातावरण में सृष्टि झूमती हुए प्रतीत हो रही हो,

सांनि	धम	गम
आऽ	ऽऽ	ऽऽ

तान लेते हुए (नि) पर सम मालकौंस को एक नवीन स्वरूप देता प्रतीत होता है, दूसरे पंक्ति में 'लागे भाग' में अवरोही तान में तार गांधार को छूते हुए तान ली गई है–

सांनि	सांग	सांनि	ध
लाऽ	ऽऽ	गेऽ	भा

अंतरा को साधारण रखते हुए अंतिम पंक्ति में फिर से अवरोही तान ली गई है।

सांनि धम गम

राग–शंकरा (तीनताल)

स्थाई – ऐ री सजनी ऐ री काहु सौतन बिरमाये मोरे पिया

अंतरा – अजहुन आये सबरंग पिया घबराये उन बिन मोरा जिया[8]

इस बंदिश की स्थाई में पहली पंक्ति को रागानुसार सीधा रखते हुए पंक्ति में आरोहात्मक छोटी एवं सुंदर तान ली गयी है।

प–	निसां	गरें	सां	प–	निध	सांनि	प
माऽ	ऽऽ	ऽऽ	ये	मोऽ	ऽऽ	ऽऽ	रा

अंतरा में भी पहली पंक्ति को सीधा रखते हुए दूसरे पंक्ति में

प–	निसां	गरें	सां	प–	निध	सांनि	प
माऽ	ऽऽ	ऽऽ	ये	राऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ

को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त बंदिशों के अतिरिक्त पटियाला घराना में ऐसी अनेक रचनाएँ विद्यमान है, जो तान–प्रधान होने के साथ–साथ आकर्षक, टकसाली एवं प्रभावशाली हैं, जिन्हें आत्मसात करने के लिए एक लम्बी साधना की आवश्यकता के साथ–साथ क्लिष्ट एवं सही अभ्यास चिन्तन एवं संयम की आवश्यकता है। इस कारण पटियाला घराना की ये रचनाएँ आज भी श्रोताओं के समक्ष अपना प्रभाव बनाए हुए है।

संदर्भ सूची :

1. Youtube Rare Recording of Bade Gulam Ali Khan
2. खुराना, शन्नो, ख्याल गायकी के विविध घराने, पृ.– 87
3. वही, पृ.– 88
4. वही, पृ.– 89
5. Sapra, Dr. Vinita, Ustad Bade Ghulam Ali Khan & His Contribution to Indian Music, page-100
6. वही, पृ.– 108
7. वही, पृ.– 1
8. Gilani, Malti & Hyder, Quratulain, Ustad Bade Ghulam Ali Khan His Life and Music, page-237

Evolution of Self Imagery from Self Portrait in Indian Paintings

(A Study from Ancient Times to Contemporary Art World)

Dr. Suresh Chandra Jangid** **Ashita Gupta***

Abstract

Self-portraiture has always been a significant part of the Indian painting traditions. Indian painters have produced a long lineage of self-portraits that date back to the ancient times. While the early self-portraits were created mostly for religious purposes, which evolved to depict personal and individualistic styles later on. Over time, the styles, techniques, and themes of self-portraiture in Indian paintings have undergone numerous transformations, making the practice a cultural artefact.

The concept of self-portraiture has evolved drastically in contemporary Indian art. Artists are moving away from the traditional representation of themselves and exploring the idea of selfimagery, which reflects their individual experiences, identities, and psychological states. In this research paper, we will explore the development of self-imagery from self-portrait in contemporary Indian paintings.

Keywords : *Self-Portrait, Self-Imagery, Contemporary, Personal Experiences*

Methodology : *The data used in this study are Literature data, and data on artworks. There are several research methods that can be used, Historical research to examine relevant materials to trace the development of self-imagery in Indian painting from ancient to contemporary times, Comparative analysis which compare and contrasting different self-portraits from different periods and regions, Visual analysis which involve in- depth analysis of visual elements of self-portrait and self-imagery and Case study to analysing a particular artist or group of artists, examining their works in detail to understand how they used self-imagery to express their individuality, identity and cultural values.*

Literature Review

The previous literature has proposed various criteria to define about evolution of different art structures in different period from prehistoric to Contemporary art and also define the depiction of self in art, and about autobiographical art practices. Different approaches stand out, major part of the previous literature have used to define the story behind their use of self-imagery in various context. None of these approaches are able to properly define the evolution of self-imagery from self-portrait.

In 'Amirta Sher-Gil Art & Life', Yashodhara Dalmia provides a thorough insight into the life and art of Amrita Sher-Gil, which were characterises by a stunning combination of European and Indian styles. It recreates the personal and artistic journey of this remarkable artist and presents comprehensive record of her contribution to Indian painting. It begins with her family background, her multicultural upbringing, her early years in Hungary and France, vividly describe her return to India as a mature artist, her insights into the social & cultural milieu in which she lived, the challenges and opportunities faced by Sher-Gil as a woman artist in pre-independence India and conclude with a discussion of her untimely death at the young age of 28. It also analyses her feminist politics and her impact on the emergence of

*Research Scholar, Department of Painting, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (Uttar Pradesh), India
**Assistant Prof., Department of Painting, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (Uttar Pradesh), India

feminist art in India.

In 'When Was Modernism', Geeta Kapur assert the concept of modernism, it can traces the emergence, development, and transformation of modernism in Indian art from the early twentieth century to the present. The book begins by focusing on the pre-independence era, the Bengal School, Progressive Artists' Group, explore relationship between Indian modernism and the global modernism movement. She argues that Indian modernism should not viewed simply as a derivative of western modernism but rather as a unique and independent phenomenon. Also analyses the impact of Indian independence on modernism in art and culture.

Pran Nath Mago, in his book 'Contemporary Art in India' has define Indian art scene, a historical background that situates contemporary Indian art within its cultural and social context. The author trace the evolution of modernism in Indian art and discuss the contributions of artists such as M.F. Hussain, F.N. Souza, Tyeb Mehta and V.S. Gaitonde. Also focuses on different artistic style and women artists in contemporary Indian art such as Arpita Singh, Nalini Malini, and Anju Dodiya who broke through the glass ceiling to become leading artists in the country.

In 'Indian Art', Partha Mitter, has discuss about the authoritative and comprehensive account of the history of Indian art. It has provides a detailed overview of Indian art from the Prehistoric origins to modern times. Also give attention to the contributions of religious art during the medieval era, discuss Mughal and Rajput schools of art, as well as the role of European artists in influencing Indian art during the colonial period. After medieval period every artist started working in their individual style from the colonial period and gradually it became a general practice.

The book concludes with a review of modern and contemporary Indian art, including the emergence of the Bengal School, the Progressive Artists' Group(PAG). With the advent of Bengal School after colonial period, individuality among artists reflected their inner self, not only composition-wise but also subject-wise. After independence (1947), PAG group can be considered the first self- conscious modernists in country. Expressionism finding the most direct means for the depiction of personal feelings and archetypal contents.

By the 1980s, several contemporary artists had intervened in and transformed, for their specific purposes, of finding subject matter in the immediate environment rather than in 'grand' themes, such as Bhupen Khakhar, Gulammohammed Sheikh, Vivan Sundaram, Nasreen Mohamedi, etc.

Also, define feminist autobiographical paintings. Women artists intertwined their personal experiences with communal memories to speak on modernity and social commitment in a unique and concerted manner, such as Anjolie Ela Menon, Nalini Malini, Arpana Kaur, Nilima Sheikh, Madhavi Parekh, Rekha Rodwittiya and Mrinalini Mukherjee

Study Area

My topic is based on the Evolution of self-imagery from self-portraits in the Indian context, in which we will see when and how the tradition of self-portraits started. What was the intention of the artist behind its making and then, how slowly, from the self-portrait which was based on the manuscript in the initial period, it started being made to give status to the artists in the society and then how with the changing nature of the society, self-imagery began to emerge to reflect the duality of the artist's inner selves.

Introduction

What is Self Portrait and Self-Imagery

A self-portrait is a representation of the artist created by him or herself. It often defines the artist physical appearance, facial expression and possibly their personalities, emotions or attitudes. Self- Portraits can also be symbolic or metamorphic all, representing the artist's identity or cultural background. The artistic medium used in self-portraits can vary greatly, including painting, photography, sculpture, and more, whereas self-imagery carried a sense of intimacy and humour and give the artworks a more personal touch. The contemporary Indian art scene continues to see the use of self-imagery in many forms, including self-portraits, selfreferential imagery, and autobiographical elements.

From Self-Portrait to Self-Imagery

Self-portraits within the Indian paintings can trace back to as early as the 3rd century BCE. The concept of self-portrait has prevalent in Indian painting since ancient times. However, the approach towards depicting oneself in a painting has evolved over centuries, depending on the period, style and artist.

Traditionally, self-portraits in Indian paintings were realistic representations of the artists in their respective professions or vocations. It has undergone significant changes over time, reflecting the cultural, social and political context of different eras. In traditional Indian painting the emphasis was on creating idealized representation of religious figure, goddesses, kings and other prominent members of society, often portraying them in a highly stylized and symbolic way. These works would created a primarily for religious or religious-and-courtly audiences. Most of these self-portraits were painted anonymously, often as part of larger compositions. These early self-portraits depicted people in a particular time, traditional attire, and occupation or role in society. For example, in the Ajanta and Ellora Caves paintings, the figures of the artists or patterns can be seen as a part of the religious or secular narrative art. These paintings feature the Buddha and his various forms, and some of the depiction have been interpreted as self-portraits of the artist who created them.

The medieval period of Indian art marked the beginning of originality in the selfportraiture tradition. The portraits during this period had a more individualistic approach. The artists started experimenting with different forms, styles, and techniques to create a unique image of themselves. An example of the individualistic approach during the medieval period in Indian art is the manuscript illustrations and miniature paintings. In Rajasthan, where the finest miniature painting flourished, the artists depicted themselves in different poses, often with their tools or other symbols of their craft and profession. However, these self-portraits were often hidden in obscure places or disguised, as other figures, as the idea of representing oneself was deemed to egotistical. It was not until the 18th century that the idea of selfportraiture in Indian art began to emerge more visibly Artists like Nainsukh and his followers created a new style of Pahari painting, which depicted the artist's image in the painting. These images often carried a sense of intimacy and humour and gave the artworks a more personal touch.

The Mughal period marks the Golden Age of Indian paintings, which saw the emergence of a new style of self-portraiture. Perso-Islamic influences during this period led to more refined and realistic representation in Indian portraits. During the Mughal era, selfportrait emerged as a distinct genre with the work of some prominent artists such as Ustad Mansoor, Abul Hasan, Keshav Das, Basawan

and Bichitr. They depicted themselves with a long beard, turban, and holding their brushes, giving us an idea of their profession and status. These portraits were more realist, with features such as wrinkles, sagging skin, and other realistic details, either as a part of the larger scene or as an isolated figures. The first portrait painter in the Mughal court, Manohar, studied under his father Basawan. The latter was particularly skilled at painting several genres and at drawing portraits. He worked on the folios of the Hamzanama, the first known illustrated Mughal school manuscript (1560-073 A.D.). The introduction of Indian influences into Mughal miniatures is credited to him. Manohar outperformed his father and became a portrait specialist. His work is from the 1580–1640 time frame. Manohar, a very talented artist, made a name for himself by representing his self-portrait when he was just 16 or 18 years old. Manohar's portrait is rendered in profile, which is a hallmark of Jain art.[1]

Other example of an Indian manuscript featuring a self-portrait is the Akbarnama, a historical chronicle of the reign of the Mughal Emperor Akbar. The Akbarnama was commissioned by Akbar himself and features illustrations by various artists. One of these artists, Basawan, created a self-portrait in which he is depicted holding a brush and looking directly at the viewer. The painting captures his confidence as an artist and his pride in his work.

Keshav Das painted an early self-portrait in which he is the only subject, in contrast to the Mughal painters who frequently conceals their self-portraits in the borders of crowd scenes.

At that period self-portraits were considered as a mark of artistic excellence, showcased the artists's ability to create a likeness of themselves, served as evidence of their technical skill, it\ also conveyed the artist's status and social position and allowed artists to promote themselves and advertise their work. Finally, self-portraits served as a form of self-expression, allowing artists to explore their innermost thoughts and emotions through their art.

However, during the British colonial era in India, there was a growing interest in individual expression, and many artist began to explore new styles and subjects, including new approaches to portraiture. An art saw a shift towards a more Westernised style of selfportraiture. Indian artists were interested in the western art of self-portraiture and incorporated it into their paintings. The artists started using oil and canvas, which gave them a broader

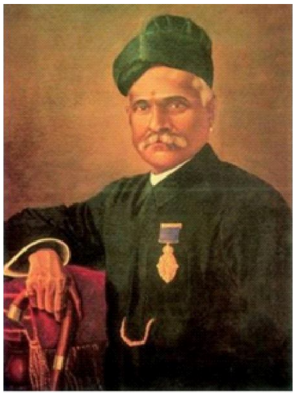

Fig.1. Varma, Ravi, Raja. *Self Portrait* (Oil on canvas). Private Collection

range of expression. Painters like Raja Ravi Verma influenced the Indian art style in the 19th century. A new style of self-portrait emerged in Indian painting with Raja Ravi Varma's influence. He started depicting himself in his paintings, often dressed in European clothing, and posing in a regal manner,"Self-Portrait by Raja Ravi Varma"(e.g.,Fig.1), are notable for their realism and attention to detail. This was a significant shift from the earlier depictions where artists were shown as ordinary people without any grandeur.

During this period, Indian artists depicted themselves in western-style dressing, which symbolised a new era of change. They created self-portraits in a more individualistic, realistic, and life-like style. As a result, self-portraits became more common, depicting the artist as a distinct individual with unique features and personality.

The Bengal School, active in India during the early 20th century, placed a significant emphasis on Indian cultural revivalism and a return to traditional Indian artistic styles. Self-portraiture became a popular genre among artists of the Bengal School because it allowed them to assert their individuality while simultaneously expressing their Indian identity and ideals. In addition, many Bengal School artists were engaged in the Indian independence movement and used their self-portraits to convey messages of nationalism and political consciousness. Through their self-portraits, these artists sought to establish a connection with the Indian people and to promote Indian art and culture on a global stage. Overall, self-portraits during the Bengal School period were used as a means to assert individual identity, express cultural and national values, and promote Indian art at a time of significant social and political change through artists like Abanindranath Tagore, Gaganendranath Tagore Nandlal Bose, Jamini Roy, etc.

Beyond being connected to any school or group there are artists like Amrita Sher-Gil and Rabindranath Tagore, who contribute a important role in the evolution of self-imagery from self-portrait by introducing new themes and techniques in their works. Amrita Sher-Gil is the artists to be recognised worldwide, explored the fluidity of identity psyche by incorporating surrealism in her works. Her self-imagery was not just a reflection of the physical self but also explored the interiority of the self, and its intersection with the outside world. She

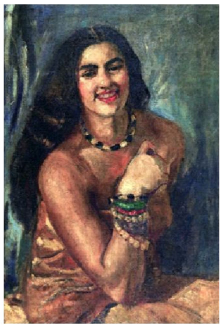

Fig. 2 Sher-Gil,Amrita.(1930), *Self-Portrait* on canvas). National Gallery of Modern Art, New Delhi

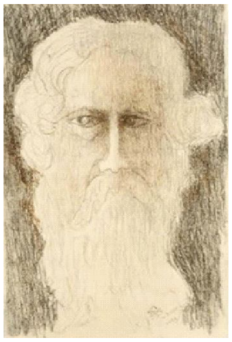

Fig. 3 Tagore, Rabindranath.(1930), *Self* (Oil *Portrait* (Lithograph).South & South East Asia Collection

painted herself in a more realistic and honest way that reflected on her internal struggle of belonging to two different cultural backgrounds, such as "Self-Portrait"(1930) (e.g., Fig.2), "Self-Portrait as Tahitian"(1943), are known for their intense gaze and introspection.

Rabindranath Tagore, a Nobel laureate, used self-imagery to explore his own self, his engagement with nature, and his spiritual and emotional insights. His paintings like "Self-portrait" (1930) (e.g., Fig.3), "Self-portrait" (1933) reflect his own persona blended with nature and his engagement with the outside world. They both explore not just the physical self, but also the interiority of the self, their works can be considered as bridges that connect the traditional and modern concepts of self-imagery.

And now after partition in the post-

independence period, artists in India, particularly those associated with the Progressive Artists Group, began to explore new modes of self-expression in art. Self-portraiture continued to be a significant genre during this time, but it took on new meanings and purposes. For the Progressive Artists Group, self-portraits develop into self-imagery, were used as a means to assert their individual identities and creative independence from the dominant Western styles that had previously dominated Indian art. Their self-portraits were often experimental and unorthodox, reflecting the group's rejection of academic tradition and their interest in modernist styles. Later on, artists continued to use self-portraiture as a means of exploring personal identity and interiority. Many artists used self-portraits to express their feelings, thoughts, and emotions, exploring their own subjectivity and the complexities of their own lives. In some cases, self-portraits were used as a means of exploring social and cultural issues, offering a critical commentary on the society and politics of the time.

Overall, self-portraiture turn into self-imagery in art after independence became a means through which Indian artists could explore and express their individual identities, experiment with new styles, and engage with the social and political realities of the time. These self-portraits turn into self-imagery, have become a more personal and introspective genre. Artists like Maqbool Fida Hussain, Francis Newton Souza, and Tyeb Mehta significantly contributed to the evolution of self-imagery in Indian Art. They have portrayed themselves with a more individualistic approach, reflecting their unique personality, style, experiences and emotions from anger to anguish to introspection and contemplation, creating a personal connection between the artist and the viewer.

M.F. Husain presented the artists' modern perspectives and the experiences they have encountered in their respective lives. F.N. Souza painted himself in an abstract style that explored different concepts, he often reflect his inner turmoil and struggles with personal demons. His painting's visuals are very strange and powerful manner, which depict his psychological restlessness as he was very much troubled by his fate and destiny in his personal life, say that his unpleasant experiences, e.g. "Self-Portrait"(e.g., Fig.4).

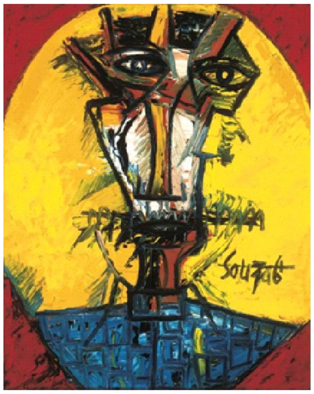

Fig. 4 Souza, Newton, Francis. (1961), *Self-Portrait* (Oil on board). Ruth Borchard Collection

In recent years, the art of contemporary Indian painting has seen an emergence of a new trend-the rise of self-imagery.

Discussion

The Rise of Self-Imagery in Contemporary Indian Paintings

Self-imagery is significant in Contemporary Indian art as it allows artists to express their individual experiences and emotions in a more personal and authentic way. This trend speaks to the changing landscape of contemporary India and growing sense of individualism and self-expression among its people, and seen as a response to the changing social and cultural landscape of India. The country's rapid economic growth and increasing exposure to Western culture have resulted in a growing sense of individualism.

"In art, self-image has become an essential domain in representing the body as an expression of social norms. Self-imagery offers a venue for discovering the artist's inner self, which plays a broadened role in understanding what this "self" is all about."[2]

The shift from traditional self-portraiture to self-imagery has allowed for a more intimate discourse on the artists' identity and perception of themselves. Contemporary artists use their artworks to reveal their inner world, their dreams, struggles, focus more on issues of gender, race, and culture.

But self-imagery of Indian artists has undergone a significant shift from being a mere representation of personal identity to a broader representation of the society's global identity in contemporary Indian art. The contemporary Indian artists have started using their self-imagery to address broader societal issues, communicate cultural differences, and represent Indian culture in the global context. The self-imagery of Indian artists now reflects diverse cultural backgrounds that have emerged from the country's complex social history. These artists use their own experiences to depict larger universal experiences that connect people globally. The contemporary Indian artists use their self-imagery to create dialogues that bring awareness of the issues existing within society. The artists use a range of media from paintings, digital art to installations, and performance art to represent the concerns of the society. In doing so, they create a platform to express a range of issues like gender, caste, politics, and identity crisis.

Overall, the self-imagery of Indian artists has transitioned from the representation of personal identity to become a space that reflects the larger cultural and societal identity of India. The contemporary Indian artists use their self-imagery to raise questions, start dialogues and offer new perspectives to the global audience on issues that are universal yet remain particular to India. There are many artists who work with their self-imagery in different aspects like Bhupen Khakhar, Zarina Hashmi, Gogi Saroj Pal, Manjit Bawa, Anjolie Ela Menon, Atul Dodiya, Anju Dodiya, Nalini Malini, A Ramachandran, Arpana Kaur, Ranbir Kaleka, Pushpmala N, Sonia Khurana, Subodh Gupta, etc. Among all these artists Bhupen Khakhar, Zarina Hashmi, Arpana Caur and Nalini Malini can be discuss here. Bhupen Khakhar was a prominent Indian artist who played a significant role in revolutionizing contemporary painting in India during the late 20th century. He is renowned for using self-imagery in his paintings as a way to explore his personal identity, sexuality, and cultural roots.

Bhupen Khakhar was born in Mumbai in 1934 and received a Bachelor's degree in arts from the University of Bombay before moving to Baroda to join the M.S. University. He was, known for its experimental and non-traditional approach to painting. Khakhar's paintings were influenced by his lived experiences of gay identity. Khakhar's paintings often depicted his own image, which reflected his personal struggles and experiences. The use of self-imagery allowed Khakhar to break free from conventional art forms and create a personal visual language that expressed his unique perspective. For instance, his self-image titled 'Man with a Bouquet of Plastic Flowers' depicts himself standing in front of a window with a sense of longing and isolation, surrounded by a colourful array of plastic flowers. This painting is

Fig. 5 Khakhar, Bhupen.(1981), You can't please. (Oil on Canvas). Tate, UK.

considered one of Khakhar's seminal works and reflects his struggles with homosexuality and loneliness.

Similarly, in his painting "You Can't Please All," (e.g., Fig.5), Khakhar portrays himself as a naked man on a balcony in a world entirely dominated by men. He demonstrates his fragility in this way by being a solitary member of a complicated social society. When discussing this picture, Khakhar commented somewhat crudely that if necessary, because one cannot satisfy everyone, one should please oneself. This painting explores the contradictions in contemporary Indian society, where people are often torn between traditional values and the lure of worldly pleasures. Khakhar used his self-image to comment on the societal pressures and expectations that people face in contemporary India.

After living in London for a while, Khakhar began talking openly about his sexuality and commenting on the relative sexual liberties of the former metropolis. His sexual orientation as a gay man further enabled him to thoroughly explore the questions surrounding the "identity of the self." In his 1982 painting "Two Men in Benares," he frequently depicts himself in intimate encounters with other men, regardless of the circumstances. The primary characters are typically surrounded by other commonplace events and lacquers. The incidents are revealed extremely fluidly through intimacy. When he turned fifty, he experienced a lack of vigour, which was a form of self-realization of ageing, and from that point on, his works turned into fantasies. He further gains ever-increasing social relevance by stepping into the realm of personal imagination. His naked males, like in "ghost city night," are depicted in a lush setting, with the beat signifying the paradox in contemporary Indian society. He wears the emotional complexity of an individual with that of a greater realm of standards established by the community in an educated way. The fact that Khakhar was India's first openly gay artist became most apparent in the paintings he created throughout the 1980s and 1990s, which showed men with other men caught in a variety of filthy sexual practises. In India's environment of modernist art practise, Khakhar's perceptions of males as a group are unique.

He offers a brave, daring intervention in the area of self-image in favour of a practical ceasefire with social conventions and everyday life, which he translates, very creatively, into various types of companionship. His "experiment with truth" is, in its most extreme form, locked in place by the unique, unstoppable act of painting.[3]

Khakhar's use of self-imaging was also a reflection of his broader artistic philosophy, which placed the individual at the center of his work. He was deeply influenced by Western artists such as David Hockney and Richard Hamilton, who also used self-portraiture to explore their identity and experiences. But Khakhar's approach was unique in that he blended those Western influences with Indian motifs, symbols, and mythology. In this sense, his work is a hybrid form that represents a synthesis of Indian traditions and Western modernism. Khakhar's work represents a

significant contribution to contemporary Indian art and continues to inspire artists today. His legacy is a testament to the power of art to express individual perspectives and challenge societal conventions.

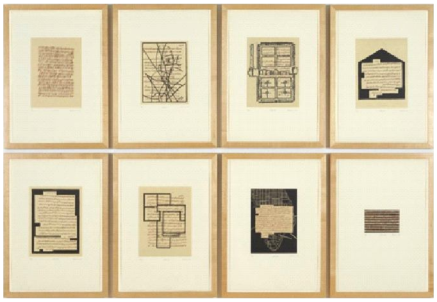

Fig. 6 Hashmi, Zarina. (2004), Letters from Home. (woodblock and metal-cut prints on paper). Tate, UK

American artist Zarina Hashmi, who was born in India, created an emotional and spiritual manual using sparse imagery, poetic words, and subtle political themes. She was born on July 16, 1937, and died in London on April 25, 2020, at the age of 82 from Alzheimer's disease. She graduated with a degree in mathematics before going on to study printmaking in Thailand, Paris, and Tokyo. She was born in Aligarh, British India. In her works, she uses art as a method to investigate the concept of home. Her art is heavily influenced by the concepts of travel, migration, displacement, and movement, which run throughout her body of work.

Art by Zarina Hashmi continues to be as private and intimate as a diary. Her work speaks to a strictly political aspect in the context of lost India. All those elements that reveal the cruelty of her background and the feelings of division she experienced. As she left her home in Aligarh, India during Partition, that memories would continue to haunt her throughout her life. Because of the themes of exile, statelessness, and the tenacity and depth of nostalgia, she has defined the relationship between personal and collective memory as well as the "relationship

Fig. 7 Malini, Nalini. (2012), In Search of Vanished Blood. (installation)

between individual biography and a biography of groups or nations." Her artwork clearly conveys the sensation of dreariness. Sharing stories with one another is the key. Many people who were banished from their own country and yearned to return home were intimately connected to her artwork, e.g. 'Letters from Home', 'Travels with Rani I and II'.

In her series of works titled "Letters from home,"(e.g., Fig.6), she employs calligraphy in a variety of ways. She directly used the letters of her sister Rani and overlaid them with geometric patterns of the city and the house; these letters reverberate about intimate family moments such as the passing of parents, the sale of Rani's home, and the sadness of children moving away; these all convey the loss and dispossession of home as a result of political partition. Notably, every letter is written in Arabic script because so many of the letters are used in other prints. In Asian countries like India, where it is progressively losing use, Urdu still signified "home" as clearly for Zarina as pictures of houses and maps did. We see that Zarina Hashmi didn't use her direct self-image in her artwork but use her autobiographical elements in her work.

As like Zarina, Nalini Malini who is a renowned artist of India, have used the form to challenge social norms, her work 'In Search of Vanished Blood' (e.g., Fig.7), which is a art installation , is a reselling of the Partition of

India and how it affected her family. Through the artwork, Malini examines her own personal history and struggles as a result of the partition.

Arpana Caur is known for her use of traditional Pahari miniature, her self-imagery in her artworks is often used to explore the intersection of her identity as an Indian women.With her paintings, Caur takes a feminist stance against the male-dominated art scene by fusing the universal with the autobiographical. Her mother's critically acclaimed book Homeless, which was based on their experience, had an impact on Caur. She focuses on their struggles and the claustrophobia that comes with living in such quarters like cramped lodgings. From the young kid through the mother, the widow, and the iconic Mother Earth, she employs a variety of feminine figures in her paintings. The embroidered linen becomes a signifier on a another level of meaning, acting as a stand-in for women's productivity generally in her work as the

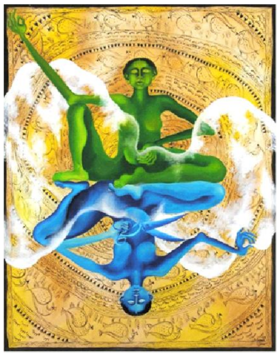

Fig. 8 Caur, Arpana. (1997), Between Dualities. (Acrylic on canvas)

picture of women stitching in calm domesticity, like, ' Between Dualities'(e.g.,8), 'Threatened City', 'Widows of Vrindavan'.

Her artwork is not just for the quest for personal identity and the need to establish new connections with society, but also for the creation of new aesthetic sensitivities that are visibly sensed in the figuration, subject matter, and use of pictorial symbols. Her artwork is concerned with the times we live in, a period where contexts and boundaries are shifting to accommodate brand-new realities that are appearing all the time. According to a renowned critic, "Nothing, except perhaps the human being, is sacrosanct in art; for the whole of her imagery revolves around the crumbling layers of protection we wear around us." Arpana has openly shown everyday life circumstances in her numerous series of paintings, focusing in particular on the plight of women and the rise of violence in our society.

Results and Conclusion

As the evolution of self-imagery from self-portrait in Indian paintings reflect the changing perceptions of identity, individualism and self-expression across different periods and artistic styles, it shows the changing attitudes and perspectives of artists and society as a whole. From the early cave portraits to the contemporary period, Indian self-portraiture in paintings has come a long way to become a self-imagery. Its evolution have evolved from more anonymous portrayals in early times to more individualistic and realistic representations. Self-Imagery has played a significant role in Indian art, evolving from its early beginnings as hidden self-portraits to a prominent feature in contemporary artworks. It has given artists a tool to express their unique perspectives, making it an essential aspect of the Indian art scene.

The development of self-imagery in contemporary Indian paintings represents a shift in how artists perceive and represent themselves. Contemporary artists are rejecting traditional norms and conventions, of self-portraiture and had a desire to break free from societal constraints to exploring personal experiences, emotions, and struggles through their self-imagery. It represents a willingness to challenge the status quo and explore new forms of artistic

expression, which is essential for progress and growth in any society. This shift has allowed for more personalised and authentic conversations about the self in Indian art, and has helped to create a more emotionally connected relationship between the artist and the audience.

The use of these kind of images allows these artists to connect with their audience on a more intimate and relatable level, while also challenging societal norms and ideals. By incorporating their personal experiences and identities into their works, these artists have created a unique and personal dialogue within the Indian art scene.

The influences from various cultures and artistic movements - Perso-Islamic, Western, and Indigenous - have enriched the self-portrait tradition in Indian painting. Finally, the self-imagery has become an intimate expression of artists' realities, struggles, and the socio-cultural traditions they come from. It is a mirror reflecting the complexities of life, society, and the self in the Indian art world.

References :

1. Verma, S. P. (1977). INTRODUCTION OF SELF-PORTRAIT PAINTING IN INDIA. Proceedings of the Indian History Congress, 38, 297–302. http:// www.jstor.org/stable/44139084
2. Nazima Rangwala Kalita.(2019).The Art of Re-Interpreting Self:Self Imagery in the Works of Indian Artists. Imternational Journal of Visual and Performing Arts,1(2),69-79.http:// dx.doi.org/ 10.31763/viperarts.v1i2.52
3. Ibid

Bibliographies :

1. Dalmia,Yashodhara. (2014). Amrita Sher-Gil Art & Life, Oxford University Press, New Delhi.
2. Kapur, Geeta. (2000). When Was Modernism, New Delhi.
3. Mago, Nath, Pran. (2001). Contemporary Art In India, National Book Trust, New Delhi.
4. Mitter, Partha. (2001). Indian Art (1st ed.). Oxford University Press, New York.
5. Nazima Rangwala Kalita. (2019). The Art of Re-Interpreting Self: Self Imagery in the Works of Indian Artists. Imternational Journal of Visual and Performing Arts,1(2),69-79.http:// dx.doi.org/ 10.31763/viperarts.v1i2.52
6. Verma, S. P. (1977). INTRODUCTION OF SELF-PORTRAIT PAINTING IN INDIA. Proceedings of the Indian History Congress, 38, 297–302. http:// www.jstor.org/stable/ 44139084

Image References :

1. Fig.1 Varma, Ravi, Raja. *Self-Portrait* (Oil in canvas). Private Collection. https:// commons.wikimedia.org/ wiki/File:Self_portrait_by_Raja_Ravi_Varma.jpg
2. Fig.2 Sher-Gil, *Amrita. Self*-Portrait (Oil on canvas). National Gallery of Modern Art. https:// artsandculture.google.com/asset/self-portrait-7-amrita-sher-gil/cAGsbot8N1HHpw? h l = e n & m s = { " x " : 0 . 5 , " y " : 0 . 5 , " z " : 8 . 6 1 9 7 7 3 2 6 4 5 4 7 9 7 , " s i z e " : {"width": 2.7892665935534464, "height": 1.2500000000000009}}
3. Fig.3 *Tagore. Rabindranath. Self Portrait (*Lithograph). South & South East Asia Collection. https://collections.vam.ac.uk/item/O81873/self-portrait-lithograph-tagore-rabindranath/
4. Fig. 4 Souza, Newton, Francis. (1961), *Self-Portrait* (Oil on board). Ruth Borchard Collection. https:// www.artsy.net/artwork/francis-newton-souza-self-portrait-1
5. Fig. 5 Khakhar, Bhupen. (1981), You can't please All (Oil on Canvas). Tate, UK.https:/ images.app.goo.hi/.JHFDpQ9hDRALb9
6. Fig. 6 Hashmi, Zarina. (2004), Letters from Home. (woodblock and metal-cut prints on paper). Tate, UK.https://www.tate.org.uk/art/artworks/hashmi-letters-from-home-p80181
7. Fig. 7 Malini, Nalini. (2012), In Search of Vanished Blood. (installation). https:// theculturetrip.com/asia/ india/articles/in-search-of-vanished-blood-nalini-malani-s-transformativeart/
8. Fig. 8 Caur, Arpana. (1997), Between Dualities. (Acrylic on canvas). https://jnaf.org/artist/ arpana-caur/

वर्तमान युग में तबला के घराने व उनका महत्व

डॉ. चन्दन विश्वकर्मा** **अशेष नारायण मिश्रा***

सारांश

तबला भारत में एक लोकप्रिय संगीत वाद्य–यंत्र है। यह एक जोड़ी है, जिसमें ''दायां'' नामक एक छोटा और ''बायां'' नामक एक बड़ा भाग होता है। तबला हाथों के पंजे और उंगलियों से बजाया जाता है, और यह भारतीय शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत और पारंपरिक नृत्यों का एक अभिन्न अंग है। इसका उपयोग अक्सर विभिन्न संगीत रचनाओं को लयबद्ध संगत प्रदान करने के लिए किया जाता है।

तबला की उत्पत्ति और उसके नामकरण से संबंधित कई मत प्रचलित हैं । एक मत तो यह है कि एक मृदंग वादक जब प्रतियोगिता में हार गए तो क्रोध में उन्होंने मृदंग को पटक दिया, मृदंग दो भागों में टूट गया, जब मृदंग वादक का क्रोध शांत हुआ तो उन्होंने दोनों हिस्सों को साथ रखकर थाप दिया, तो वह बज रहे थे, वहां से तबले का निर्माण हुआ । यह मत प्रचलित जरूर है लेकिन तर्कसंगत मालूम नहीं पड़ता है क्योंकि मृदंग की बनावट ऐसी होती है कि अगर वो टूट जाये तो वो बजाने लायक नहीं होगा।

एक मत ये है कि आमिर खुसरो ने तबले का निर्माण किया लेकिन इसके भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। कुछ लोगों का मानना है कि भारतीय वाद्य पुष्कर से तबला का जन्म हुआ है, एक प्रचलित मत ये है कि मुगल सेना के साथ एक नक्कारे जैसा वाद्य चलता था जिसे 'तबल' कहा जाता था, इसी से 'तबला' बना। तबले की उत्पत्ति कैसे हुई, किसने की, इसके बारे में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परंतु पारंपरिक मान्यताओं के आधार पर पुष्कर से ही तबला का जन्म हुआ ऐसा माना जाता है।

मुख्य बिंदु– *तबला, वादन परम्परा, घराना, तबला–उत्पति, शैली।*

प्रविधि– *द्वितीयक माध्यमों से सामग्री ली गई है ।*

मुख्य अंश– भारत में तबला, वादन की विभिन्न परंपराओं को संदर्भित करता है। प्रत्येक घराने की अपनी अलग शैली, तकनीक और शास्त्र है ।

Every upcoming artiste always possesses some heritage handed down by tradition to which he makes his own addition- If he achieves eminence and sets up his own school of followers, he becomes a pioneer of new style.[1]

Gharana, literally a 'Family'; a term applied to a school of music comprising a creatively innovating, his pupils and those who follow in the line of discipleship"[2]

तबला के कुल 6 घराने हैं जिसमें सबसे पुराना घराना 'दिल्ली' है। दिल्ली से ही घरानों की नींव पड़ी। इसके अलावा अजराडा, लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस और पंजाब भी तबला के घराने हैं। ख्याल–गायन के साथ पखावज की संगत होती थी परन्तु, ख्याल–गायन के साथ पखावज के बोल जमते नहीं थे। 18वीं शताब्दी में आज का जो तबला है वह विकसित हुआ। पहले तबला में ज्यादा चांटी और मसाले (स्याही) का प्रयोग नहीं होता था लेकिन सिद्धार खाँ ढाढ़ी ने मसाले (स्याही) के प्रयोग के साथ कुछ कायदे, पेशकार और टुकड़ों की भी रचना की। उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी मुहम्मद शाह रंगीला के प्रतिष्ठित संगीतकार थे, इन्होंने ही दिल्ली घराना की नींव डाली।

दिल्ली घराना

दिल्ली पहला और सबसे पुराना घराना है। दिल्ली घराना के संस्थापक सिद्धार खान ढाढ़ी के तीन बेटे थे, पहले बेटे बुगरा खाँ, दुसरे बेटे माहताब खान और तीसरे बेटे घसीट खाँ थे। सिद्धार खान ढाढ़ी के दूसरे बेटे माहताब खान से तीन बेटे थे– मक्कू खाँ, मौदू खाँ और बख्शू खाँ । बुगरा खान के दो बेटे थे उस्ताद सिताब खाँ और उस्ताद गुलाब खाँ, उस्ताद सिताब खाँ के भी दो बेटे

*शोधार्थी (जे.आर.एफ.), वाद्ययंत्र विभाग (तबला), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

थे– नजीर अली और बड़े काले खाँ। उस्ताद बड़े काले खाँ के पुत्र थे– बोलीबख्श। उस्ताद बोली बक्श के पुत्र थे नत्थू खाँ एवं उस्ताद नत्थू खाँ के शागिर्द थे मुनीर खाँ।

दिल्ली पर नादिरशाह के हमले से दिल्ली तबाह हुई तो दिल्ली के शायर लखनऊ और रामपुर का रुख करने लगे। शायरों के अलावा जो संगीतकार दिल्ली में थे वे भी दिल्ली से बाहर शहरों में गये।

बाएं पर हाथ और दाएं पर उँगलियों को रखने का तरीका सभी घरानों का अलग–अलग था । साथ ही, बोलों को निकालने की पद्धति भी घरानों की अलग–अलग थी, इसी के कारण घरानों की अपनी–अपनी विशेषताएँ रही है।

''दाढी लोग गायन–वादन का व्यवसाय कर उदरपूर्ति किया करते थे। आगे चलकर वे मुसलमान हो गये। आज इन धाढियों की विद्या नष्ट हो गई तथा वे लोग नाचने–गाने वाली बाइयों का साथ करने वाले मिरासी बन गये हैं।''[3]

"अबुलफजल के अनुसार ढाढ़ी लोगों का मूल स्थान पंजाब था और वे सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए युद्धगान करते थे। वे ढोल बजाते थे तथा पंजाबी भाषा में शौर्य गीत गाया करते थे । तत्पश्चात् वे संगीत कला में भी पारंगत होने लगे। वे विभिन्न शैलियों के गायन तथा वादन में कुशल साबित हुए तथा शास्त्रीय संगीत का उच्च स्तरीय ज्ञान रखने लगे। इस जाति के संगीत कलाकारों को अकबर के दरबार में भी स्थान मिला और वही क्रम आगे चलता गया।"[4]

अजराड़ा घराना

अजराड़ा घराना की शुरुआत दो भाइयों– कल्लू खाँ और मीरु खाँ से होती है। ये दोनों उस्ताद सिताब खाँ के शागिर्द थे, ये दोनों तबला सीखने के बाद अजराड़ा (मेरठ) आ गए और तबला–वादन में कुछ तब्दीलियां कर अजराड़ा घराना की शुरुआत की। इस घराना में उस्ताद कुतुब खाँ, उस्ताद तुल्लन खाँ, उस्ताद घीसा खाँ और उस्ताद मुहम्मदी बख्श मशहूर तबला नवाज हुए। उस्ताद काले खाँ इसी घराना के हैं जो उस्ताद चाँद खाँ के पुत्र और उस्ताद मुहम्मदी बख्श के पौत्र थे।

लखनऊ घराना

सिद्धार खाँ ढाढ़ी के पुत्र माहताब खाँ के तीन पुत्र हुए– मक्कू खाँ, मौदू खाँ और बख्शू खाँ। दिल्ली से तबला का इल्म हासिल करके मौदू खाँ और बख्शू खाँ लखनऊ आ गए और लखनऊ घराने की बुनियाद डाली। पंडित रामसहाय जिन्होंने बनारस घराने की नींव डाली, उस्ताद मौदू खाँ के शागिर्द थे। उस्ताद मम्मू खाँ, मुहम्मद खाँ, मुन्ने खाँ, आबिद हुसैन, वाजिद हुसैन, पंडित बीरू मिश्र, पंडित सपन चौधरी लखनऊ घराना के तबला नवाज हैं।

उ० बक्शूखाँ के एक शिष्य पं० बेचाराम चट्टोपाध्याय से विष्णुपुर की परम्परा फैली। बाद में यह परम्परा मम्मू खाँ के शिष्य विष्णुपुर निवासी रामप्रसन्न बन्दोपाध्याय से और भी सुदृढ़ हुई।[5]

"लखनऊ के उ० मम्मू खाँ तथा फरुखाबाद के हुसेन बख्शसे तालीम प्राप्त कर उ० अता हुसेन ढाका चले गये जहाँ उन्होंने अपनी अलग परम्परा फैलायी। वे कुछ समय विष्णुपुर में भी रहे थे। पूर्व तथा पश्चिम बंगाल में तबला के प्रचार में उनका योगदान महत्वपूर्ण है।"[6]

"उ० बख्शू खाँ के नाती बाबू खाँ से कलकत्ता में तबले की परम्परा फैली।"[7]

"हाजी विलायत अली खाँ के शिष्य उ० चूड़ियाँ इमाम बख्या से भटौला की परम्परा फैली।''[8]

फर्रुखाबाद घराना

उस्ताद मौदू खाँ के भाई उस्ताद बख्शू खाँ के शागिर्द थे विलायत अली। विलायत अली खाँ उस्ताद बख्शू खाँ के दामाद भी थे। लखनऊ से तबला सीखने के बाद वे फर्रुखाबाद चले गए और फर्रुखाबाद घराने की नींव डाली। विलायत अली खाँ के चार पुत्र थे– निसार अली खाँ, अमान अली खाँ, हुसैन अली खाँ और नन्हे खाँ, इन्हीं से आगे ये घराना चला । इस घराना को आगे बढ़ाने में उस्ताद हुसैन अली खाँ का विशेष योगदान है, इनके शागिर्द हुए उस्ताद मुनीर खाँ।इन्हीं उस्ताद मुनीर खाँ के शागिर्द हुए अहमद जान थिरकवा। इस घराना के प्रमुख तबला वादकों में उस्ताद मसीत खाँ, गुलाम हुसैन, करामात खाँ, उस्ताद बन्दे हसन खाँ, पंडित ज्ञान प्रकाश घोष आदि हुए।

''हाजी विलायत अली गत–वादन में कुशल थे। हज करने के पश्चात् उन्होंने महफिलों में बजाना छोड़ दिया था।''[9]

"हाजी साहब कलाकार के साथ–साथ एक अच्छे गुरु भी थे। उन्होंने उस युग में तबला का एक विद्यालय खोला था, जब विद्यालय की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।"[10]

बनारस घराना

लखनऊ में 12 वर्ष तक उस्ताद मौदू खाँ से तबला सिखने के बाद पंडित राम सहाय बनारस आए और बनारस घराना की नींव डाली। इन्हीं के शिष्य हुए बैजू महाराज, रामशरण जी, यदुनन्दन जी, प्रताप महाराज। इन्होंने अपने भाई जानकी सहाय और भतीजा भैरो सहाय को भी तबला की शिक्षा दी। इस घराने के प्रसिद्ध तबला वादकों में पंडित दरगाही मिश्र, कंठे महाराज, बिक्कू जी, पंडित अनोखे लाल मिश्र, पंडित सामता प्रसाद (गुदई महाराज) और पंडित किशन महाराज हुए।

पंजाब घराना

पंजाब घराना स्वतंत्र घराना है, मशहूर पखवाज वादक लाला भगवानदास के शिष्य फकीर बख्श ने पंजाब घराना की नींव डाली जो उस्ताद फकीर बख्श के पुत्र थे, इन्हीं से यह घराना आगे बढ़ा। उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ इस घराना के मशहूर तबला नवाज हुए, इन्हीं के पुत्र हैं मशहूर तबला नवाज जाकिर हुसैन उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ के शागिर्द हैं, आदित्य कल्याणपुर एवं उस्ताद करीम बख्श बैरना, उस्ताद उस्ताद अल्ला दित्ता बघारपुरिया, उस्ताद अल्ताफ हुसैन (ताफो खान), उस्ताद तारी खान पाकिस्तान के पंजाब के मशहूर तबलानवाज हैं।

चूँकि जब दिल्ली से तबला सीखकर सिद्धार खान ढाढ़ी के शिष्य देश के शहरों में फैल गये तो उन्होंने तबला के बोल एवं कायदों को बजाने में थोड़ा–थोड़ा बदलाव किया। हालाँकि छः घराने होने के बावजूद शैली (बाज) के दो ही प्रकार हैं– पूरब बाज और पश्चिमी बाज।

तबला बजाने की जो पूरबी शैली है वह खुले हांथों की है जबकि पश्चिमी शैली बंद हाथों की शैली है, इसे किनार का बाज कहते हैं क्योंकि इस शैली में किनार का प्रयोग ज्यादा होता है। इसमें दो उँगलियों का प्रयोग होता है इसीलिए इसे 'बन्दबाज' भी कहते हैं। इस शैली के अंतर्गत दिल्ली और अजराड़ा घराने आते हैं।

पूरबी शैली में थाप का प्रयोग होता है, जिससे आवाज में और गूँज पैदा होती है, बेस का इस्तेमाल, जिसे बायां कहा जाता है, पर खुले हाथों से थपकी ली जाती है।

इस शैली में उँगलियों के साथ–साथ पंजे का भी इस्तेमाल होता है, इसीलिए इसे 'खुला बाज' भी कहते हैं । साथ ही, स्याही का इस्तेमाल ज्यादा होता है, इसमें पाँचों उँगलियों का प्रयोग होता है, कारण कि लखनऊ में नृत्य के साथ पखावज (खुले हाथों का वाद्य है) की संगति होती थी और तबला यहाँ आया तो पखावज का प्रभाव उस पर पड़ा तो वह खुले हाथों से बजाया जाने लगा । इस शैली के अंतर्गत लखनऊ, फर्रुखाबाद और बनारस घराने आते हैं।

"श्री वामनराव देशपांडे के अनुसार : ''No gharana can escape its natural limitations. A singer pledging himself to one single gharana is likely to develop in one&sided manner. If one wants a variety of colours, one must learn from many gurus.

Who can be sure that in this state of affairs the gharanas, with their 'Ustads', 'Shagirds', initiation ceremonies and other traditional observances will continue to exist ? A truly cataclymic transformation is taking place.

It is therefore necessary to break one's shell, venture out, storm the fortresses of gharana in order to attain excellence of any kind.

If one wishes to enrich one's own style it is evident that one must be ready to absorb influences from many quarters."[11]

निष्कर्ष :

हमें चाहिए कि प्रत्येक घराना की विशेषताओं को ग्रहण करें। इन सारी खूबियों को सीखने, समझने तथा व्यवहार में प्रयुक्त करने के लिए घरानेदार एवं नियमबद्ध तालीम की आवश्यकता अनिवार्य है। जब व्यक्ति को ज्ञान हो जाए, प्रत्येक वादन–शैली का अन्तर मालूम हो जाए, उनकी अच्छाइयाँ–बुराइयाँ समझने की क्षमता आ जाए तो वह अपना रास्ता स्वयं चुन सकता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य एक गतिशील और विकसित परिदृश्य

है। हालांकि बदलते सांस्कृतिक स्वाद और तकनीकी प्रगति के कारण चुनौतियां हो सकती हैं, लेकिन कई उत्साहजनक कारक भी हैं जो भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला के भविष्य में योगदान करते हैं:

1. **परंपरा का संरक्षण** : भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्ञान और विशेषज्ञता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने की एक मजबूत परंपरा है। इसी तरह, तबला वादक प्रसिद्ध गुरुओं से सीखना और प्रशिक्षित करना जारी रखते हैं, जिससे कला के संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सके। परंपरा के प्रति यह समर्पण तबला वादन की समृद्ध विरासत को बनाए रखने में सहायता करता है।

2. **वैश्विक मान्यता** : भारतीय शास्त्रीय संगीत ने दुनिया भर में महत्वपूर्ण मान्यता और लोकप्रियता हासिल की है। कई तबला वादक कला के राजदूत बन गए हैं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन और शिक्षण कर रहे हैं, जिससे विविध दर्शकों को आकर्षित किया जा रहा है और तबला के प्रदर्शन और विकास में योगदान दिया जा रहा है।

3. **फ्यूजन और सहयोग** : फ्यूजन संगीत ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के तत्वों को अन्य शैलियों के साथ जोड़कर, हाल के वर्षों में गति प्राप्त की है। तबला वादक अक्सर विभिन्न संगीत पृष्ठभूमि के कलाकारों के साथ सहयोग करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अभिनव और गतिशील प्रदर्शन होते हैं। संगीत प्रयोग के लिए यह खुलापन पारंपरिक सेटिंग्स से परे तबला के दायरे और पहुंच का विस्तार करता है।

4. **तकनीकी प्रगति** : प्रौद्योगिकी ने तबला–वादकों को डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया के माध्यम से अपने संगीत को साझा करने के अवसर प्रदान किए हैं, जो व्यापक दर्शकों तक पहुंचते हैं। ऑनलाइन ट्यूटोरियल, लाइव स्ट्रीमिंग प्रदर्शन और इंटरैक्टिव प्लेटफार्मों ने तबला सीखने को दुनिया भर के महत्वाकांक्षी संगीतकारों के लिए अधिक सुलभ बना दिया है। यह तकनीकी एकीकरण संगीत–प्रसार के समकालीन तरीकों को गले लगाते हुए परंपरा को संरक्षित करने में मदद कर सकता है।

5. **युवा प्रतिभा** : युवा और प्रतिभाशाली तबला वादकों की निरंतर उपस्थिति है जो कला को आगे बढ़ाने के लिए समर्पित हैं। उनका उत्साह, रचनात्मकता और नई संभावनाओं की खोज भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला के भविष्य के विकास में योगदान करती है।हालांकि चुनौतियां निस्संदेह मौजूद हैं, तबला वादकों और व्यापक भारतीय शास्त्रीय संगीत समुदाय का जुनून, प्रतिबद्धता और अनुकूलनशीलता वाद्ययंत्र के लिए एक आशावादी भविष्य सुनिश्चित करती है। तबला की स्थायी सुंदरता और अपील, नवाचार और सहयोग की क्षमता के साथ मिलकर, यह सुझाव देती है कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए भारतीय शास्त्रीय संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखेंगी।

संदर्भ सूची :

1. Deshpande, Vamanrao, Indian Music Traditions : Chapter 2, P:80
2. Deshpande , V. H., Maharashtra's Contributions to Music : Chapter 1, P 6
3. पं. भातखंडे, भातखण्डे संगीत शास्त्र, भाग चौथा, पृष्ठ 223
4. आइना–ए–अकबरी, दूसरा खण्ड, अबुल फजल, पृष्ठ 480
5. तबला कथा सबोध नन्दी (विष्णुपुर परम्परा), (उद्धृत– मिस्त्री, अबान ई पखाबज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 149)
6. वही, अध्याय ढाका घराना, (उद्धृत– मिस्त्री, अबान ई पखाबज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 149)
7. तबला कथा सुबोध नन्दी, (उद्धृत– मिस्त्री, अबान ई पखाबज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 149)
8. वशिष्ठ, सत्य नारायण, तबले पर दिल्ली और पूरब (भटौला घराना), (उद्धृत– मिस्त्री, अबान ई पखाबज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 149)
9. इमाम,मोहम्मद करम, मऊदन–उल–मूसिकी, (उद्धृत– मिस्त्री, झबान ई पखाबज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 155)
10. मुसलगाँवकर, अरविन्द, तबला, (मराठी) प्रथम संस्करण, पृ. 297
11. Deshpande,Vamanrao. H., Indian Musical Traditions : Limitations of Gharana System, Pages : 82 to 94

A Critical Discourse Analysis of selected Digital News Headlines and Cartoons on Covid-19

Dr. Anindya Deb** **Ayush Anand***

Abstract

News headlines act as signposts for the readers and pave the way in deciding whether one should go for the entire article. A good headline is attention-grabbing, informative, and accurately reflects the content of the story. Previous literature suggests that the structure of the news headlines is not randomly decided rather they are chosen in congruence with the ideology and objective of the journalists/ news organizations. A cartoon on the other hand is an artistic technique to convey a message or commentary on a particular topic/event in a simplistic and entertaining manner. News cartoonist uses a caricature that exaggerates an event to create a recognizable likeness.Critical discourse analysis (CDA) is a research approach that examines how language is used to construct social realities, and to reproduce or challenge power relations. In the context of the COVID-19 pandemic, CDA can help to uncover how news media shape public understanding of the crisis. Therefore, the current study is objectivized to conduct a CDA of selected digital news headlines on covid-19 and reveal meaning beyond what is actually stated. The study intends to diagnose the orientation of the news, themes stressed, ideologies represented in covid-19 headlines, determine the discursive devices and reveal some other insights.

Keywords: *Critical discourse analysis, Covid-19, News headlines, Digital news, Ideology*

Introduction

Headlines are crucial in news stories because they often determine whether or not readers will continue reading the article. A good headline is attention-grabbing, informative, and accurately reflects the content of the story. News headlines act as signposts for the readers and pave the way in deciding whether one should go for the entire article. Headlines do not just represent the content rather they also shape the orientation and perspectives of the readers (Develotte C. & Rechniewski E., 2001). They are often the first and sometimes the only thing people read about a news story, and as such, they have the power to influence how people think and feel about a particular topic. D or D. (2003) argues that most skilled newspaper readers prefer to go only through the headlines rather than reading the entire story.

Discourse analysis is a multi-disciplinary field that seeks to understand how language is used to construct and maintain social relationships, power dynamics, and ideologies. A discourse analyst basically analyses the semantic, lexical, and grammatical features of spoken, written, and sign language to explain the meaning beyond what is actually stated. Researchers have identified four different types of discourse analysis- Descriptive, Narrative, Expository, and Argumentative. The approaches that have been most influential in the field include linguistic analysis, critical discourse analysis, Ethnography of Communication (EoC), Conversation analysis, and corpus-assisted discourse studies. Each of these approaches has contributed to our understanding

*Ph.D. Scholar, Central University of South Bihar
**Assistant Professor, Central University of South Bihar

of how language is used in different contexts and has important implications for a wide range of fields, including sociology, political science, Journalism, and applied linguistics.

A critical discourse analysis of news headlines is a method of studying the ways in which language is used to construct meaning and convey messages in the news. This approach can be used to uncover the underlying ideologies, values, and power dynamics present in news headlines and the news media more generally.

One of the key aspects of discourse analysis is the concept of representation or the way in which language is used to construct and reflect social reality. In the context of news headlines, representation refers to the way in which events, people, and ideas are described and framed in the news. Previous research has shown that news headlines often use language that is biased or stereotypical, which can reinforce harmful societal attitudes and reinforce the marginalization of certain groups (Yo & Zheng, 2022; Septiawan, 2021; Saedi, 2020; Lombardi D., 2018; Hussein, 2017).

Another important aspect of discourse analysis is the examination of the structures and patterns of language use in news headlines. Researchers have used this approach to examine the ways in which news headlines use certain lexical and grammatical structures to create certain effects, such as sensationalism or scare-mongering. Some studies have shown that news headlines use more negative words and phrases to describe events and people than to describe positive ones (Nurjannah, 2018; Mardhyarini & Ariyanti, 2016).

Additionally, Discourse analysis of headlines has also been used to reveal the ways in which the news media is shaped by various factors such as corporate ownership, political ideology, and cultural influences. Some research has shown that news headlines are often influenced by the political leanings of the media organization that publishes them, with conservative news outlets tending to use language that is more critical of liberal policies and vice versa (Akpere, 2021).

Moreover, recent studies have also tried to look into the impact of digitalization and social media on news headline discourse, which has led to many studies of the headlines in these contexts and how they differ from traditional news headlines. Such as, how social media headlines often prioritize clickability and sharability, while traditional news headlines prioritize being informative (Sari, 2019; montezo and Adriano, 2018).

Previous studies have covered different aspects of the discourse analysis of news headlines. Chakraborty and Dash (2020) carried out a syntactic analysis of Hindi newspaper headlines and suggest that the structures of news headlines are strategically woven on the basis of the intended functionality. Seidi (2019) in an analysis of discursive news values of English and Arabic science news headlines revealed that the most and least constructed news values in terms of frequency were eliteness and unexpectedness respectively. Sari (2019) in a discourse analysis of the headlines of Detik.com a news portal in Indonesia identified the use of tendentious and suggestive vocabulary to attract readers. Lodhi et al. (2018) identified the use of linguistic and contextual techniques in newspaper headlines for various effects on the minds of the readers such as entertainment, sympathy, embarrassment, or amusement. Monsefi and Sepora (2017) concluded the use of wordplay in newspaper headlines makes them more vivid and conspicuous. Ulum (2016) carried out a study on ideological representation of Syrian refugees in newspaper headlines. Mardhyarini and Ariyanti (2016) conducted a CDA on the Guardian and the Daily Telegraph to show how news headlines are intentionally

structured to prefer their side of the party during general election in United Kingdom. Develotte and Rechniewski (2001) suggest that newspaper headlines mainly reveal the social and cultural representations circulating in society at a given time.

However, no study to the best of the researchers' knowledge has yet been carried out on the critical discourse analysis of news headlines on covid-19 of the top 5 Hindi news apps. Therefore the current study will fill this gap in the research domain. The result of this research will also aware the audience about the different discursive news values and strategies used for creating persuasive news headlines.

Objectives of the research are as follows:

1) To identify the dominant themes in the covid-19 news headlines
2) To identify the orientation of the covid-19 news headlines
3) To identify different discursive news values in the covid-19 news headlines

RQ 1) What and how are the ideologies represented in the news headlines and cartoons on COVID-19?

Methodology

The first step in conducting this research is the identification of the top five Hindi news apps. In order to shortlist these apps data have been extracted from the Google play store. Google play store uses a similar web algorithm to calculate apps' ranking. Categories in the similar web were selected as India, News & Magazines, and top free respectively (See figure 1)

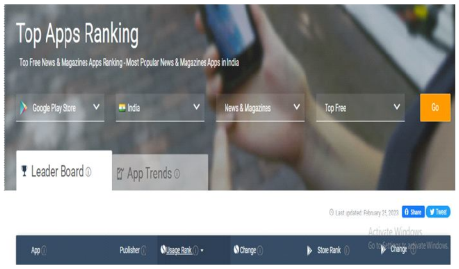

Figure 1: Screenshot of similar web categories

Further, the lists of news apps were sorted by usage ratings. Usage ratings go beyond ranking news apps based on reach and consider the daily active users and the number of individual user engagements with a particular app. As a result following apps were identified:

1) Dainik Bhaskar
2) Aajtak
3) ABP Live
4) Amar Ujala
5) DainikJagran

Thereafter, 6 news headlines were collected from each app through purposive sampling. The time range selected for these headlines has been 13 March, 2021 to 19 June 2021 at the time

when the most severe covid wave popularly known as the second covid wave hit India (NCBI, 2022). Altogether 30 news headlines were collected for further analysis. List of app wise headlines are presented below in table 1

News app	Headlines
Dainikbhaskar	कोरोना देश में : 24 घंटे में 2.56 लाख नए संक्रमित मिले, 1757 लोगों की मौत; पहली बार एक दिन में डेढ़ लाख से ज्यादा मरीज ठीक हुए
	MP में कोरोना का कहर : प्रदेश में पहली बार 1 दिन में 8998 केस, 40 मौतें; 7 दिन में बढ़ गए 17 हजार से ज्यादा एक्टिव केस, शाजापुर BJP के पूर्व अध्यक्ष की मौत
	कोरोना देश में : 24 घंटे में रिकॉर्ड 2.71 लाख से ज्यादा नए पॉजिटिव मरीज मिले; कुल संक्रमितों का आंकड़ा डेढ़ करोड़ के पार हुआ
	दुनिया में कोरोना से 2 से 3 गुना अधिक मौतें : न्यूयॉर्क टाइम्स की रिपोर्ट; भारत में 42 लाख लोगों की मौत की आशंका, 70 करोड़ से ज्यादा लोग संक्रमित हुए होंगे
	कोरोना से मौतों में भारत तीसरे नंबर पर : अमेरिका और ब्राजील के बाद भारत में संक्रमण से 3 लाख मौतें, बीते 26 दिन में ही 1 लाख लोगों ने दम तोड़ा
	कोरोना देश में : 67,256 नए मरीज मिले और 2,329 की मौत, लेकिन 1.03 लाख ठीक भी हुए; सिर्फ 4 राज्यों में रिकवरी से ज्यादा नए केस आए
Aajtak	Coronavirus Live Updates : देश में कोरोना के 3,66,161 नए केस, 3,754 मौतें, जानें 20 राज्यों के हालात
	Coronavirus Updates : कोरोना संक्रमण की रफ्तार घटी, नए केस, लाख से कम, लेकिन मौतें अभी भी 4100 पार
	Corona in India: देश में कोरोना आउट ऑफ कंट्रोल, दिल्ली–महाराष्ट्र–यूपी में आंकड़ों ने तोड़ा रिकॉर्ड
	Corona in India : देश में कोरोना विस्फोट, 2 लाख के पार नए केस, 24 घंटे में 1038 मरीजोंकीगईजान
	Covid–19 : भारत में मई के बाद कोरोना और मचाएगा तबाही, वैज्ञानिकों ने चेताया
	कोरोना के लक्षण दिखते ही घबराएं नहीं, उठाएं ये कदम ! देखें एक्सपर्ट की राय
ABP live	Coronavirus LIVE Updates : क्या देश में वैक्सीन की कमी ? अमित शाह ने कहा– ये जानकारी गलत
	JDU नेता को जांच कर्मियों ने सौंपी कोरोना की दो अलग–अलग रिपोर्ट, नाराज नेता ने लगाया ये आरोप
	Coronavirus India : देश में 61 दिनों के बाद सबसे कम केस दर्ज, कल हुई 2427 की मौत
	LIVE : कोरोना के खिलाफ केंद्र सरकार की बहुत बड़ी पहल!
	लॉकडाउन पर सबसे बड़ा फैसला
	Corona के बढ़ते खतरे से केंद्र सरकार चिंतित, PM Modi 8 अप्रैल को करेंगे अहम बैठक
Amar ujala	कोरोना वायरस : क्या होता है साइटोकाइन स्टॉर्म, जो प्रति रक्षा तंत्र को ही बना देता है शरीर

	का दुश्मन
	'मोलक्की' के मुख्य कलाकारों अमर उपाध्याय और प्रियल महाजन का कोरोना टेस्ट पॉजिटिव, शूटिंग प्रभावित
	काम की बात : COVID-19 वैक्सीन का सर्टिफिकेट कैसे डाउन लोड करें, ये है तरीका
	सावधान : कोरोना के इलाज में न करें इस दवा का इस्तेमाल, WHO ने दूसरी बार दी चेतावनी
	मध्य प्रदेश : कोरोना से मरने वालों की संख्या में बढ़ोतरी, भय से कम दिखा रहे आंकड़े
	उत्तराखंड : एक जून से कोविड कर्फ्यू में आंशिक ढील के आसार, दुकानें खोलने का समय बढ़ा सकती है सरकार
Dainik jagran	देश में कोरोना के हालात को लेकर पीएम मोदी ने की बैठक, ऑक्सीजन की आपूर्ति और उपलब्धता बढ़ाने पर हुई चर्चा
	जागरण पड़ताल : 2015 में भी उन्नाव के परियर घाट पर गंगा में उतराए थे शव, तब कहां था कोरोना
	News : बिहार में 70 हजार के करीब पहुंचा कोरोना, 80.36 फीसद तक गिरी रिकवरी दर
	Covid 19 Cases in India : कोरोना के नए मामलों ने आठ राज्यों में बढ़ाई चिंता, उठाए गए लॉकडाउन और नाइट कर्फ्यू जैसे कदम
	Lockdown News Updates : कोरोना बेकाबू, कई शहरों में लॉकडाउन; क्या देश भर में फिर लौट सकता है संपूर्ण लॉकडाउन ?
	डबल म्यूटेंट वैरियंट के बाद अब भारत में सामने आए कोरोना के ट्रिपल म्यूटेंट ने बढ़ाई चिंता

Table 1 List of app wise headlines

Data analysis and Interpretation

Qualitative data analysis tool Taguette has been used for the preparation of the codebook and results were exported in excel format. Further, interpretations of the results are given below:

Objective 1: To identify the dominant themes in the covid-19 news headlines

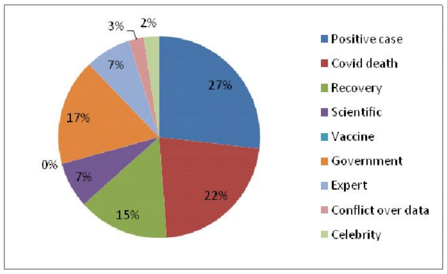

Figure 2: Percentage share of different themes

Positive cases (27 per cent), covid death (22 per cent), role of government (17 per cent) and recovery rate (15 per cent) were the most dominant themes stressed in covid headlines of top 5 Hindi news apps. A clear distinction could be witnessed in the presentation of covid death by Amar ujala and all other apps. All news apps chose to present covid death in numbers whereas Amar ujala

chose to present the severity through statements. Themes related to the actions taken by the government were mainly published by ABP live and DainikJagran. Most scientific news (2 out of 3) has been published by Amar Ujala. Headlines related to scientific and expert based knowledge were mere 7 per cent.

Objectiv 2: To identify the orientation of the covid-19 news headlines

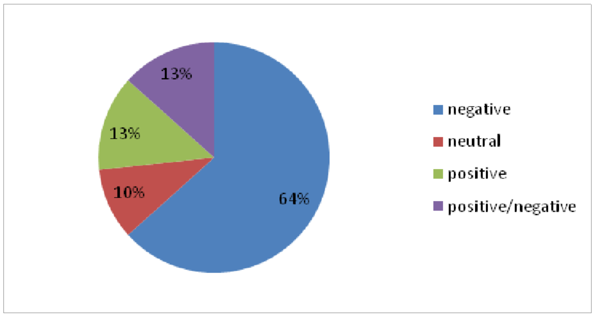

Figure 3: Percentage share of news orientation

64 per cent of the news headlines have negative orientation. A negative news headline is characterized by a conflict, disaster or crisis (Bednarek&Caple, 2017). Further, 13 per cent have both positive/negative orientations, 13 per cent have positive orientation and the remaining 10 per cent news has neutral orientation. Most negative news was published by DainikJagran and most neutral news was published by Amar ujala.

Objective 3: To identify different discursive news values in the covid-19 news headlines

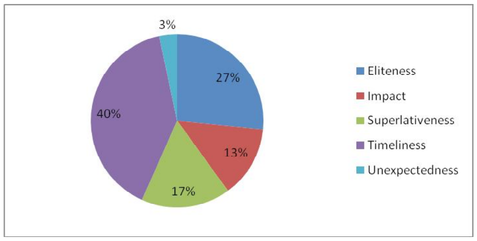

Figure 4: Percentage share of discursive news values

Timeliness (40 per cent), Eliteness (27 per cent) and Superlativeness (17 per cent) were the most constructed news values in the news headlines of top 5 Hindi news apps. Definitions given by Bednarek&Caple, 2017 have been followed to identify the discursive news values.

RQ 1) What and how are the ideologies represented in the news headlines and cartoons on COVID-19?

Analysis of news headlines

Van Dijk's concept of microstructure is used as an approach for conducting qualitative analysis. Dijk's microstructure refers to the local meaning of the words, phrases, or sentences and the connections between them. Dijk is of the opinion that text is a form of knowledge control, and knowledge control in itself has the tendency to influence people's interpretations, attitudes, and

actions. A deliberate attempt was made in most covid news headlines of the top 5 Hindi news apps to discursively create 'fear' and 'hope' as ideological representations. Such emotions of fear and hope symbolize the cognitive experiences of the mind of the readers. The strategies applied to create these ideological representations were evidentiality and authority. Evidentiality involves backing up certain lines of argument often with cited figures or statistics and numbers whereas authority references institutions or people with high credibility. The findings are similar to that of Ghamdi (2021).

Analysis of cartoons

1)

2)

3)

4)

5)

The CDA model of Norman Fairclough has been used for analyzing these cartoons. Cartoon 1 (Newsclick) has been designed to present the perspectives of the daily wage earners whose livelihood was at stake due to continuous lockdown imposed during the COVID-19 period. Cartoon 2 (ABP live) represents the negligence of the public towards precautionary notification of the government during COVID-19. Cartoon 3 (DainikBhaskar) reveals the politicians lust for power who were carrying out public meetings and rallies during COVID-19 despite election commissions guidelines. Cartoon 4 (DainikBhaskar) is a political satire that reveals the lapses in the current election process. Cartoon 5 (News 18) is an attempt to highlight the unavailability of vaccines as per the requirement of the nation. As compared to the news headlines cartoons published were more vocal about issues of public interest. Cartoons revealed some hard realities that the Indian society was facing during the Corona period. However, different sources have presented different aspects of the same event i.e. COVID-19 through their cartoons.

Conclusion:

Positive cases, covid deaths, role of government and recovery rate are the most dominant themes in covid headlines of top 5 Hindi news apps. Most news is found with negative orientation. Timeliness, eliteness and superlativeness are the most constructed discursive news values. Fear and Hope are ideologically represented in most headlines and evidentiality and authority are widely used strategies to create these representations. Covid cartoons were more vocal on issues of public interest as compared to Covid news headlines.

References:

Al-saedi, H. (2020). A Critical Discourse Analysis of the Representation of Iraq in Media

Discourse (Newspaper Headlines*). International Journal of Language and Literary Studies*, 2(2), 178–190. https://doi.org/10.36892/ijlls.v2i2.307

Chakraboraty, V., & Dash, N. (2020). Analyzing Structures of Hindi Newspaper Headlines: A Discourse Perspective. *Journal of Advanced Linguistic Studies*, *8*(2), 197–222.

Develotte, C., &Rechniewski, E. (2001). Discourse analysis of newspaper headlines: A methodological framework for research into national representations. *Web Journal of French Media Studies*, *4*(1).

Dor, D. (2003). On newspaper headlines as relevance optimizers. *Journal of Pragmatics*, *35*(5), 695–721. https://doi.org/10.1016/s0378-2166(02)00134-0

Lodhi, M. A., Mukhtar, S., Akhtar, S., Nafees, K., Akhtar, N., &Sajid, H. M. (2018). Textual and Rhetoric Analysis of News Headlines of Urdu and English Newspapers. *International Journal of English Linguistics*, *9*(1), 324. https://doi.org/10.5539/ijel.v9n1p324

Lombardi, D. (2018). Critical Discourse Analysis of online News Headlines: A Case of the Stoneman Douglas High School Shooting. *Malmö University, Faculty of Culture and Society (KS)*.

Monsefi, R., &SeporaTengkuMahadi, T. (2017). The Rhetoric of Persian News Headlines: A Case Study of Euronews. *International Journal of Applied Linguistics and English Literature*, *6*(2), 36. https://doi.org/10.7575/aiac.ijalel.v.6n.2p.36

Montejo, G. (2018). A critical discourse analysis of headlines in online news portals. *Journal of Advances in Humanities and Social Sciences*, 4(2). https://doi.org/10.20474/jahss-4.2.2

Sari, D. R. (2019). Discourse Analysis on Headline News. *Advances in Social Science, Education and Humanities Research,377*.

Seidi, M. (2019). *Discursive news values analysis of English and Arabic science news stories*. *8*(1), 33–85. https://doi.org/10.21608/herms.2019.66041

Septiawan, Y. (2021). A Critical Discourse Analysis of Online News Texts: A Case of Tribun-timur.com. *Wiralodra English Journal (WEJ)*, 5(1), 32–44. https://doi.org/https://doi.org/10.31943/wej.v5i1.120

Yu, X., &Zheng, H. (2022). A Critical Discourse Analysis of Different News Reports on the Same Event: Illustrated with Examples from China Daily and The Guardian. *Open Journal of Social Sciences*, 10(11), 348–363. https://doi.org/10.4236/jss.2022.1011023

मारवा थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रियांशु घोष*

सारांश

मारवा को एक आधुनिक राग कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन ग्रंथों में जहाँ कहीं भी इसका कुछ वर्णन मिलता है, वहाँ तीव्र मध्यम व कोमल ऋषभ का प्रयोग नहीं बताया गया। प्रस्तुत शोध–आलेख के माध्यम से मारवा राग के इतिहास के विषय में बताया गया है।

शब्द सूचक : *मारवा, राग, मालवा, कोमल, थाट।*

शोध प्रविधि : *इस आलेख में द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गयी है।*

विषय प्रवेश :

भारतीय संगीत में रागों का विकास एक अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। जबकि अरब के संगीतज्ञ मुकामों के बीजगणित में व्यस्त रहे तथा यूनानी स्वरों के भौतिक तत्त्वों में मगन रहे, हमारे यहाँ ग्रामों से रागों का जन्म हो चुका था। भारत के अतिरिक्त अन्य सभ्य सांगीतिक देशों में संगीत का विश्लेषण भावपक्ष से विलग होकर हुआ। भारत में संगीत में भावपक्ष को प्रधान माना गया। इसीलिए हमारे यहाँ राग संगीत अभी पूर्ण रूप से जीवित है। इसी कारण संगीत के भौतिक तत्त्वों के समन्वय से हार्मनी (Harmony) की चेष्टा भारत में कदापि न हुई। Tempered तथा हार्मनी (Harmony) में वैज्ञानिक विचित्रता तथा तात्कालिक प्रभाव अवश्य है क्योंकि ये संगीत की प्रयोगशाला (Laboratory) में बनी हुई आधुनिक औषधियाँ हैं, परंतु इनका प्रभाव भविष्य के राज्य तक विस्तृत नहीं है। भारतीय राग कालजयी है, क्योंकि मनुष्य के अवचेतन मन में इसका जन्म हुआ और भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं से इसका सम्बन्ध अटूट रहा है।

हमारे यहाँ संगीत जगत के कुछ विचारशील व्यक्ति षड्ज–पंचम भाव तथा कुतप विन्यास (Orchestra of Bharat) में हार्मनी (Harmony) के बीज को ढूँढ़ते हैं। सिद्धांततः इस मत से हमारा विरोध नहीं, क्योंकि व्यापक उक्तियों में भूल की संभावना कम रहती है। संकीर्णतर विचारधारा तथा विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं–

1. राग–संगीत में विश्लेषण तथा समन्वय सदैव मानव–भावनाओं पर अपेक्षित रहा है।
2. हार्मनी (Harmony), यूनानी युग से अब तक भौतिक विज्ञान (Physics) के सिद्धांतों पर आधारित रही है।

ग्राम तथा मूर्च्छना भारतीय रागों की बुनियाद समझी जा सकती है। इसलिए भारत के सर्वकाल के जनप्रिय राग वही हैं, जिनके व्यवहत स्वरों में अधिक–से–अधिक षड्ज–पंचम का संबंध रह सका, जैसे अर्वाचीन काफी, भैरवी, खमाज, बिलावल, आसावरी इत्यादि इन पर आश्रित रागों पर भी यही नियम लागू होता है। भावराज्य में विचरण करने वाले भारतीय संगीतज्ञों ने षड्ज–पंचम के विरोधाभास पर भी रागों को सृष्टि की। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे रागों में वादी–संवादी के अतिरिक्त अन्य स्वर षड्ज–पंचम भाव पर अपेक्षित नहीं रहे परंतु वादी–संवादी स्वरों में षड्ज–पंचम भाव का होना बाध्यतामूलक रहा।

ऐसे कृत्रिम रागों के उच्चासन पर मारवा अधिष्ठित है। मारवा ठाठ (गमनश्रम मेल) में दो विकृत स्वर प्रयोग में आते हैं, कोमल ऋषभ तथा तीव्र मध्यम। यथार्थ में कोमल तथा तीव्र का अर्थ जो हम इस समय समझते हैं, वह प्राचीन युग में नहीं था, अन्यथा राग मारवा, जिसमें कोमल ऋषभ तथा शुद्ध धैवत का संवाद है। मारवा , मालवा का अपभ्रंश है। मालवा की सभ्यता सिंधु घाटी सभ्यता के समकालीन (Chalcolithie) युग की है। यह प्रदेश गणतांत्रिकता के कारण प्रख्यात हो चुका था । ऐतिहासिकों का मत है कि यहाँ के निवासियों ने भारत से हजारों मील पूर्व बृहत्तर भारत में मलय की सभ्यता की नीव डाली। संगीत विद्वानों ने मालवा, मालविका, मालवपंचम, मालवकेसरी, मालवगौड, मालवकौशिक, मालवी आदि क्लिष्ट रागों की सृष्टि की, मालय या मारवा का रूप अपरिमार्जित अवस्था में क्या था, यह बताना इस समय असंभव है। जैसे भैरवी, पुलिदिका सर्वरी, सौराष्ट्र, बंगाल, कर्णाट, लिंग

*शोध छात्र (गायन विभाग), मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आदि के बारे में अनिश्चित है परंतु शास्त्रकारों ने रागलक्षण के यंत्र में मारवा को रखकर जो रूप दिया, उसमें काफी मतभेद की सृष्टि हुई, राग भी कठिन हो गया। क्लिष्ट शब्द से यह तात्पर्य है कि शुद्ध स्वरों के आपस के संबंध के अतिरिक्त और कोई भी स्वर संगति (Pattern) अप्राकृत हो जाती है और क्लिष्ट भी। इस प्रकार सा,म–रे,ध स्वरसंगति स्वाभाविक तथा रोचक नहीं है। मतंग के समय से अर्वाचीन काल तक हम इस बात का प्रमाण पाते हैं कि देशी रागों को नियम के बंधन में लाने की चेष्टा अवश्य हुई, लेकिन प्रकृति की गोद में पले हुए ये राग विधिनिषेधों को जब भी मौका मिला तभी छोड़ते रहे, जैसे– मान लीजिए, मालश्री राग ने चार स्वरों से जन्म लिया, परंतु पंडित अहोबल के समय तक इसमें छः स्वर सम्मिलित हुए। आजकल तो कुछ बंदिशों में सातों स्वर मिलते हैं जिससे प्रतीत होता है कि समय के प्रवाह के साथ राग की गति क्लिष्ट पथ को छोड़कर सरलता को स्वयं ढूँढ लेती है।

मुक्त रूप में एक मालवा नाम सर्वप्रथम हम 'बृहदेशी' में पाते हैं। आचार्य मतंग जी ने मालव तथा मालवी पंचमी को टक्ककैशिक की भाषा बताया है। मकरंदकार नारद ने (संभवतः 1000) संपूर्ण राग मालवो का उल्लेख किया है। स्वामी प्रज्ञानानंदजी के मतानुसार, पंचमसंहिताकार नारद ने मालव की प्रथम जनक राग के मालाना रूप में कल्पना की। 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार टक्ककैशिक की दो भाषाओं में से मारवा एक थी। मालवी टक्क की 29 भाषाओं में से एक थी। इसके अतिरिक्त मालवकैशिक तथा मालव पंचम बेसरा राग तथा जनक राग थे। मालववेसरी, मालवरूपा, मालवकैशिक की भाषाएँ थीं। इसके अतिरिक्त भिन्नषड्ज की चार विभाषाओं में भी मारवा नाम आता है। मालवी उस समय (14 शतक) का एक प्रसिद्ध रागांग राग माना गया है।

लोचन की 'रागतरंगिणी' में मारू (संभवतः मारवा) तथा मालवकैशिक की कर्णाट (नि) मेल में पाते हैं, जो हमारे खमाज ठाठ के समान था। पूरिया यमन मेल (म) का राग था। लोचन ने मालवगौरी मेल भैरव ठाठ का राग माना है। सोमनाथ कृत 'रागविबोध' (1640) में मारवा वसंत तथा भैरव (रे,ध,नि) का जन्य राग है। मालव गौड़ (रे,ध) एक स्वतंत्र मेल है। मालश्री राग (ग,नि) का जन्य राग है। 'संगीत दर्पण' (1625) में मालवी का उल्लेख है और यह श्री राग की भार्या मानी गई है। एक दूसरी मालवी भी इसी राग में पाते हैं, जो कि पंचमभार्या बताई गई है।

शार्ङ्गधर–पद्धति पर लिखित 'रागार्णव' में केवल मालवी का उल्लेख मिलता है। मल्लाराश्रित रागों के साथ हनुमान मत से जैसा कि दामोदर तथा लोचन ने उद्धृत किया है,मालविका मालश्री, श्री राग की भार्यायें हैं, परंतु राग–रूप वर्णन में कहीं–कहीं इसका व्यतिक्रम मिलता है, जैसे–

1. ऋतुपति मालोआ
2. नितंबिनी चुम्बितवक्रपदमः शुकद्युतिः कुण्डलबानप्रमतरु,
   शंकेतशालां प्रविशन् प्रदोषे मालाधरो मालवरागऐषः ।।
3. पीनस्तनी शुभ्रविलासनेत्रा नितंबबिंब प्रतिबद्धकांची
   मुखानविंद सुरगीतरम्या नृत्यानुगा मालविका प्रवीणा ।।

'संगीत पारिजात' में मारू नाम के संपूर्ण राग (ग,नि) का उल्लेख है (श्लोक 414)। मालवगौल भैरव ठाठ में है तथा मालव (श्लोक 403) कोमल ऋषभ, धैवत का राग है, मध्यम शुद्ध है। मालवश्री ऋषभ वर्जित षाडव राग है। पुंडरीक कृत 'सद्रागचंद्रोदय में मालव, मालवगौड मेल का राग माना गया है (रे ध)। इसी मेल में मारवा राग का पृथक उल्लेख भी है। मालवश्री श्री मेल (ग नि) का जन्य राग है। राग–अध्याय में मालव को श्री राग का पुत्र भी माना गया है। 'रागमंजरी' में मारू एक गौड़ी मेल का राग (रे ध) भी बताया गया है। मालवकैशिक मेल में (ग नि) मालवकैशिक तथा मालश्री का भी उल्लेख है। मालव राग के आधार पर एक फारसी राग 'मुसलीक' का भी उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। मालवानिवासी भावभट्ट ने 'अनूपविलास' में मालव, मालवकैशिक तथा मालवी का उल्लेख किया है। रामामात्य ने 'स्वरमेलकलानिधि' में मालवी तथा मालवगड के अतिरिक्त मालव नाम का पृथक उल्लेख कहीं नहीं किया है। सोमनाथ कृत 'राग–विबोध' में भी केवल मालवगौड तथा मालवी का ही उल्लेख है।

'चतुर्दंडीप्रकाशिका' में मालव से संबंधित केवल मालवश्री ही रह गई है। तुलाजीकृत 'संगीतसारामृत' में मालवगौडी मेल (रे ध) में मालवी तथा श्री मेल में (ग नि) मालवश्री पाते हैं। कर्णाटक संगीत में इस समय मालवी एक राग अवश्य है, परंतु वह है समान ठाठ में तथा मालवी काफी ठाठ में। ऊपर्युक्त तथ्यों से हमें यह ज्ञात होता है कि मारवा मालवा, मालविका मालवी तथा मालव

सभी का मूल एक है। आधुनिक मारवा (रे म तीव्र), मालवी (रे म(तीव्र) ध) तथा मालीगौरा (रे म(तीव्र) ध ध) से प्राचीन मालव मालविका या मालवगौड बहुत ही पृथक थे। पूर्वी के बारे में हम देख चुके हैं कि तीव्र मध्यम का प्रयोग इस्लाम की सभ्यता के विकास के साथ हुआ। इन्हीं दिनों भारत में षड्ज तथा मध्यम ग्रामों का मिश्रण हो रहा था, जिसके कारण विकृत पंचम को भी लोग मानने लगे। काल के प्रवाह तथा विदेशी प्रभाव से इसी विकृत पंचम को लोग तीव्र मध्यम कहने लगे।

खयालियों में श्रुति की आवश्यकता तो खतरा मोल लेना है। इसलिए यह अति तीव्र मध्यम हमारे विकृत स्वर सप्तक की शोभा बढ़ाने लगा। जैसा पहले कहा जा चुका है कि मारवा की भारतीयता पर किसी का घोर संदेह होना अनुचित नहीं है– क्योंकि इसमें कोमल ऋषभ तथा शुद्ध धैवत का संवाद हमारे षड्ज–पंचम भाव के विरुद्ध है। किंतु ऊपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि मालव तथा मालविका दोनों रोगों के प्राचीन रूप में यह व्यतिक्रम नहीं हुआ। विदेशी प्रभाव से ही ऐसा विपर्यय होना संभव हुआ है, इस नए रूप में प्रबल धैवत के साथ मारवा फिर भी खयालियों में अब तक प्रचलित है, परंतु मालवी तो लुप्त हो चुकी है। प्रायः एक प्रकार का राग पूरिया जो गांधार तथा निषाद के संवाद के कारण अब भी रूचिकर तथा प्रचलित है। पूरिया में कोमल ऋषभ से समता रखने के लिए धैवत का प्रयोग करते हैं। साधारणतः तंत्रकार ऋषभ–पंचम भाव के अतिरिक्त और स्वरों के संबंध को भी व्यावहारिक रूप में एकबारगी पाते हैं, इसलिए हम तंत्रकारों के यहाँ मारवा का प्रचार बहुत कम पाते हैं।

मारवा राग में एक प्रकार का रूखापन है, क्यों ? विचार कीजिए कि वृंदावनी सारंग का आरोह तथा अवरोह गाया जा रहा है. कुछ देर के बाद कोमल ऋषभ पर मिला हुआ एक तानपूरा बजाना प्रारंभ किया। इस प्रकार राग मारवा का रूप दिखाई देगा, इससे समझ सकते हैं कि वृंदावनी सारंग का दोपहर का रूखापन क्यों मारवा में दिखाई देता है। संभवतः इसी कारण विशेषकर किराना गायकी में मारवा में षड्ज का प्रयोग बहुत होता है, जिससे वृंदावनी समाहित दोपहर का रौद्रताप मन पर प्रभाव डालता है।

निष्कर्ष :

इसलिए हम इस सिद्धांत पर पहुँचते हैं कि मारवा रौद्र रसप्रधान राग है, तथा मालवी, जो पूर्वी थाट का राग है, करूण रस–प्रधान है यद्यपि मारवा राग–परिवार का प्रभाव प्राचीन युग में कुछ और ही था, किंतु समय की गति के साथ मारवा–परिवार तथा मानव–मन दोनों का परिवर्तन हुआ है। संभवतः यह अनित्यता ही मानवसृष्ट कला है। अतः इससे यही अभिप्राय निकाल सकते हैं कि आज प्रचलित मारवा राग का स्वरूप नवीन है तथा यह लोकप्रिय भी है।

संदर्भ सूची :

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत, मारवा थाट अंक, पृ. 6
2. गोस्वामी, जी. एन., संगीत, मारवा थाट अंक, पृ. 11
3. वही, पृ० सं० 12
4. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, अध्याय–2, प्रथम प्रकरण
5. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र, राग परिचय– भाग 2, पृ० सं० 58

Journey of Mrinalini Mukherjee through her textile sculpture : Hemp Fiber Works

Shujat Ali*

Abstract

This Research paper is engaged with the early phased work of Mrinalini Mukherje, that is work of fiber hemp. After her interaction with K.G.Subramanyam at M.S.Baroda University and influenced by his craft-material instruction, she shifted from mural painting to massive fiber like jute or hemp sculptures through the knotting technique and by using this day-to-day material she blurred the gap between high art and low art. By knotting, twisting, and plaiting the hemp fiber, she constructed it into a biomorphic three-dimension form, which stands freely on the floor with the help of an armature hanging from the ceiling.

Mrinalini Mukherjee was a committed sculptor who worked intuitively, she explored the divide between figuration and abstraction. Nature was her primary inspiration, and she was further informed by her enthusiasm for Indian historic sculpture, modern design, and local crafts and textile traditions. Phenomenal Nature Her exhibition at Met Breuer highlighted the radical intervention Mukherjee made in her adaptation of crafting techniques with a modernist formalism

Key Words : *Hemp fiber, Textile, Sculpture, Painstaking, Macrame, Craft*

Methodology : *This paper is supported by secondary sources.*

Introduction:

Growing national trends in sculptures from the middle of the 1950's through the 60's at various art centers like Delhi, Baroda, and Madras was the submission of rootedness in the nation's culture tradition. Madras and Baroda became exemplary locations, where progressive artists began to move away drastically from Western idioms.

Mrinalini Mukherjee was one of these artists who change her trends after interacting with K.G Subramanya's craft-material instruction.

She studied at M.S University of Baroda between 1965-1970. She did her Post- Diploma in Mural Design under proffessor, K.G Subramanyan. It was from this time that she started experimenting with natural fibers as a medium. Her studies included working with Italian Fresco and other conventional techniques. As a student Mukherjee studied painting, specializing in mural painting at the Faculty of Fine Arts at Maharaja Sayajirao University in Baroda. She studied with the prominent artist and pedagogue K.G. Subramanyan (born 1924), whose work on =living traditions' or reworking traditional craft forms and indigenous materials was formative as she developed her sculptural practice. Mukherjee later worked in both ceramic and bronze.

Mukherjee received a British Council Scholarship for Sculpture in 1971 that sent her to the West Surrey College of Art and Design where she pursued her tied-fiber works till 1978. She did her first Solo Exhibition at Sridharni Art Gallery in New Delhi in 1972. It featured warped, woven forms in dyed natural fibers—a

*Research Scholar, Faculty of Visual Art, BHU, Varanasi

series of works that brought her recognition. She named her sculptures after deities of fertility and was seen as sensual and suggestive.

Even though she studied painting and mural design at Vadodara's Maharaja Sayajirao University, she chose natural fiber as her primary medium of expression which had little to do with formal training.

"Mrinalini's early work was mistakenly thought to represent Hindu deities simply because some of them had been titled Devi.

"I did not use the term in a religious sense," she clarifies. "For me, the primary inspiration has been, and still is, nature. Nothing else can furnish my imagination in the same way," she adds."[1]

Technique Hemp Fiber

Mrinalini Mukherjee started with Hemp Fiber, a painstaking technique and later she also experimented with Ceramics and the Bronze technique as well. She made her mark in the 1970s and 80s with ambitious works of dyed and woven Hemp Fibers and went on to investigate Ceramics and cast Bronze.[2]

Hemp, or industrial hemp, is a strain of the Cannabis sativa plant species that is grown specifically for the industrial uses of its derived products. It is one of the fastest-growing plants and was one of the first plants to be spun into usable fiber 10,000 years ago. It can be refined into a variety of commercial items, including paper, textiles, clothing, biodegradable plastics, paint, insulation, biofuel, food, and animal feed. Hemp yarn is a ubiquitous material in both urban and rural India, a natural rope used for multiple purposes including string cots and beds. Mukherjee used modern chemical dyes, not natural ones, to get the precisely controlled color effects that she wanted. More importantly, since no one else in her milieu was making the kind of soft sculpture that she was, this particular choice of the medium allowed her to define an autographic artistic personality.

Macrame:

Made by weaving and knotting cords. The primary knots of Macramé are the square (or reef knot) and forms of "hitching": various combinations of half hitches. It was long crafted by sailors, especially in elaborate or ornamental knotting forms, to cover anything from knife handles to bottles to parts of ships. Mukherjee's decision to devote herself, at the beginning of her career, to making art from masses of knotted rope may seem to resonate with the reclamation of craft and textile arts that was taking place among feminist artists in the US in the same period—but that's a false cognate. Her own painstaking knotted accumulations were meant to chime with India's tradition of village textile arts, evoking grounding in popular aesthetics.

Themes :

Basically, she seeks inspiration from the mother nature and as I mentioned her quote above where she is directly saying that only the nature is motivation for her works. She had a lively appreciation of the natural world not only from direct experience but also from the teachings of her father, Benode Behari Mukherjee, who himself had been exposed to the ecological philosophy originated by Rabindranath Tagore.

The sculptures knotted painstakingly with hemp ropes in earthy or rich glowing colours evoke a fecund world of mushrooming life, lush vegetation and iconic figures. The strong undertone of sexuality is manifest in the phallic forms, in its mysterious folds and orifices, the intricate curves and drapes. Her sculptures belong in the outdoors. Wild, free-flowing and suggestive of terror-inducing hybrid organisms, her work challenges the slickness of built environment, including a museum.

Another source of her work was the representation of divinities, nymphs and forest forms at temples and roadside shrines. Despite the names (almost all Sanskrit) she gave to each of her works, the artist distanced her work from Hinduism She was not a practicing Hindu and denied that her work was grounded in Hindu mythology.

"I am not trained in any of them. I think that is the strength of my work. I don't have any fixed notion of what is possible and what should not be done. Simply, because I don't know. I am constantly discovering."[3]

Major Works Of Hemp Fiber By Mrinalini Mukherjee

Fig.-1

Mrinalini Mukherjee was a committed sculptor who worked intuitively, she explored the divide between figuration and abstraction. Nature was her primary inspiration, and she was further informed by her enthusiasm for Indian historic sculpture, modern design, and local crafts and textile traditions. Phenomenal Nature Her exhibition at Met Breuer highlighted the radical intervention Mukherjee made in her adaptation of crafting techniques with a modernist formalism.

Mukherjee‘s earliest Fiber works can best be classified as wall hangings that explore a range of plant forms and other elements seen in nature. The three dimensionalities of Squirrel, a bricolage creature with a carpet-brush body and crocheted head, marks a shift in her wall-based work. The form of the squirrel, which hangs by its tail from a net of loose jute, appears to emerge from a knitted backdrop. As Mukherjee‘s first animal form, Squirrel anticipates her later fiber monoliths, which exist somewhere between the realms of plant and creature. .Mrinalini Mukherjee used synthetic Colours to execute her sculptures according to her thought and will. She did not use natural colors for her sculptures may be because to make them very bright and shiny. Mrinalini Mukherjee (1949–2015) who worked intensively with fiber, was among a group of post-Independence Indian artists who did not abide by the then-dominant tradition of figure painting. While non representational forms of fiber art emerged in the West in the 1960s and =70s, Mukherjee was never part of that movement. She worked instead in near isolation in India, integrating traditional craft techniques with a Modernist visual vocabulary.

Squirrel (1972), Mukherjee‘s interest in the relationship between figuration and abstraction. The three-dimensionality of Squirrel, a bricolage creature with a crocheted head and a carpet-brush body, hangs by its tail from a net of loose jute and appears to emerge from a knitted backdrop. Squirrel is Mukherjee‘s first animal form.4The composition is tall and rectangular, the idea of a backdrop giving it the look of a wall hanging which she later improvised in free-standing sculptures. Later she used armatures to make the sculptures stand. Another way she used was to give support to the sculpture directly from the ceiling.

Fig. -2

"I just liked the look and feel of ropes of sunn (Indian hemp)." As the title suggests "RituRaaj" the King of Spring this early phased work shows the gradual understanding of the medium and the theme as well. She seeks inspiration to execute her study to show her surrounding and nature according to her perspective. Thus, she said that she is not sculpting nature but her idea of nature in her sculptures. If we closely examine the folds and, protuberance of RituRaaj, one can observe her minutely detailed hemp knots and weaving which is in itself so praiseworthy. In this work she has used different tones of brown which is quite dull in color not going with the title but as she suggested it‘s not the title but her way of seeing. The beginning of the style is seen in the weaving not so finely composed as this shows her efforts and hard work to develop a technique. The feminine and masculine aspect is also omnipresent in this work as the forms are not so clear we can only guess what she must have been trying to convey. According to me perhaps in this, she has shown the Feminine and masculine genitals. Also, the loosened jute strings add the interesting look to her sculpture that gives it a certain softness to the work along with the tightened knots. So, it is a nice play of paradoxes hard and soft (male and female aspects).

This work is also displayed with the wall, not a freestanding sculpture but it's seen that artist is gradually improvising in her execution as we can see the woven base of the sculpture.

Fig.-3

Mrinalini Mukherjee's 'Apsara (Celestial Nymph),' 1985, is one of many works the late Indian artist made that drew on local mythology. Inspired by temples and roadside shrines that she encountered in New Delhi,

In a 1977 essay on Mukherjee‘s hemp sculptures, art critic Geeta Kapur observed that they resemble totems, =at once idea, motif, and presence.‘ Historically, totems venerate specific plants and animals, but also spiritual beings. They are markers of ancestry, lineage, and mythology. Apsara (Celestial Nymph) (1985) for example, refers to the female spirit of the clouds and waters from the 4th century BCE epic Mahabharata. Made up of naturally dyed crimson rope of varying weights, both Apsara (Celestial Nymph) and Pari (Nymph) (1986) evoke the suspended armor of a samurai and the free-hanging, ethereal monofilament sculptures of Kay Sekimachi. Fittingly, Mukherjee‘s archive includes slides of costumes for Japanese Noh and Kabuki theatre, as well as traditional Indian Kathakali and Theyyam performances."[5]

Apsara is the freestanding work standing with the help of the Armature rising directly towards the ceiling. Mrinalini never used pedestals for her works as she wants to connect her sculptures directly from the ground.

Fig.-4

Mrinalini Mukherjee's iconic piece, "Pushp" (1993), is a flower, but also reminiscent of the vulva. A voluptuous red opening leads to a dark interior. The work is based on prakriti, the female principle, an aspect of the mother goddess central to regeneration.

Here this works evokes two different ideas together firstly she used the morphed images of Vulva and flower this somehow hints the concept of fertility and abundance. Secondly if we see it from the point of view of the only Flower then again it could be linked with the sacredness of the womb or the sanctum of the temple. So this is a very unique and captivating sculpture not so high in size.

The combination she could manage to add is another noteworthy thing now as this shows her ability to execute her idea beautifully.

The entire concept links it to the prakriti . Prakriti refers to the feminine aspect of all life forms, and more specifically a woman is seen as a symbol of Prakriti. So ultimately this work related to the female fertility aspect which is opposite to purush prakriti (masculine aspect).

"But whatever substance Dilu chose, her forms always reflected a deep bond with nature, inherited from her father who taught her to recognise and fall in love with all flora, its lush sensuality and smell. She had grown up between between Shantiniketan and Dehradun. Both places where, Nilima Sheikh says, "flowers were planted and grown in gardens, worn, sung in praise of, painted, worked into shorthand in textile and rangolis." They occupied centrestage in dilu's private space, fragrant lilies placed in the bedroom and in her work. "Everything I have ever sculpted is my resonse to plant life," she told me. "The process of growth and decay is a part of my work. But it has never been naturistic. For instance, my Palms are not a particular plant, they are an expression of my feelings and ideas towards Palms."[6]

Fig.-5

Mrinalini has done two series of Van Raja earlier one is this fierce form of King of the Lion which is resembling like a lion this time. The color and the appearance is massive and monumental that give us an awestruck reaction to the sculpture when one enters the gallery.

The minute details of this piece proclaim that the artist has done a really painstaking and finger aching knotting so laboriously that she could manage this work to execute beyond our imagination.

Here each and every detail is relatable like the heavily modelled face with the loosely sunken knots resembles the hairs. Tassels on the eye brows and the big open roaring mouth is evident in the sculpture. The kings crown is so recognizable because of its finely modelled crown's knotting. Body is sleek like lion's body and the claws are thick in appearance. Now the artist has mastered in her forte that she is able to convey her thought with the help of folds and protuberances very nicely. Gradual development can be seen in her work now on.

Fig.-6

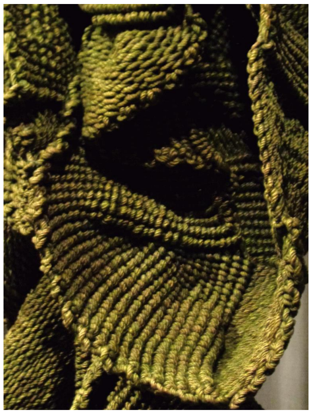

Mukherjee created unusual, mysterious, sexual, and, at times, grotesque and unsettling forms. These are commanding in presence and scale and resist realism; through their artifice they draw attention to the marvels of growth and fruition in the natural world.

'Van Raja (1991-94) is even grander. Placed in a woven alcove arched like a temple is a standing figure, very definitely male, but also animal. Is this a tiger turned god, his golden body made erect, to be worshipped amidst his unruly jungle of green?

This is the second version of the 'VanRaja' which is more elaborated and mysterious in execution. Again the anthropomorphic figures are used once it looks like a lion as the title suggests but on the other hand it is resembling a male figure as well. So perhaps she is trying to show the duality in her artwork.

Mrinalini Mukherjee had set out to make .this man in the forest. But between the idea and those long months of winding, plaiting, knotting, twisting and folding the hemp fiber, that. Man in the forest. metamorphosed into a being part- plant, part animal and part-deity. And then, something else.

Fig.-7

As Mukherjee's first fully freestanding work as well as her most figural in profile, Woman on Peacock is a consummate example of her singular treatment of conventional iconography. By depicting a woman astride a male form, the artist both fused human and animal worlds and explored sexuality. Concerning her choice of composition, Mukherjee stated that the figure's stance was not only adopted by male gods; female goddesses also have Vahans (vehicles). It is maybe an idiosyncrasy, to be avoided in iconic art, but it demonstrates the possibility of playfulness in the realm of personal mythology.

"Here the depiction of a female mounting a male form, and the unhidden female genitalia in the midst of a blooming maroon flower push sexual iconography to the forefront.

For me it is the most remarkable of all her work as how nicely she managed to compose woman on the peacock. The idea of virility is enhanced by taking peacock which is a beautiful national bird of India also the vahana of Kartikey God of War. Perhaps it suggests that she is raising the stature of a woman by placing her on the peacock. This is such a mind numbing and praiseworthy work of Mrinalini Mukherjee

Fig.- 8

The three free-standing figures that make up "Vruksha Nata‘ (1991-92) appear plant-like at first, with their layered stems and fronds in light brown and lime green. But as one looks at them again, their inescapably humanoid qualities come to the fore: a sad, drooping head, a bent back, what seems like the start of a slow, painful hobble towards the other. Also when it comes to several folds going not in symmetry but randomly here and there then it evokes the idea of hustle and bustle. This is the main theme of this work, this work shows the painful, disturbed forms we do not know whether they are actual trees or man. So again, artist has morphed the two thing together. Intermingling of the two concepts together give it a very captivating essence and makes it more enigmatic and mysterious thing to understand.

Fig.-9

Jauba is the culmination of the artist‘s ongoing experimentation with the material, which she has used since 1971.

Jauba (Hibiscus) is a freestanding sculpture that was created by knotting yarn made from dyed hemp fiber over a vertical metal armature, with the bulk of its woven detail on the front. The title of Jauba refers to the hibiscus flower. In this later work, hemp dyed in brilliant colours is manipulated into flower-like forms around freestanding metal armatures, almost human in scale.

The yarn has been dyed red, green and black and is woven into pleated organic forms which drape the frame like a robe. "Jauba" means hibiscus in the artist‘s native language Bengali. Visually, the sculpture resembles a botanical, floral form, roughly symmetrical, which droops slightly towards the floor due to the weight of the material. In works such as Jauba, where the central pink area has a strong visual association with female genitalia, Mukherjee also directly addresses issues of female sexuality through the use of tactile labial forms. Jauba was shown in the exhibition India Moderna at the Institut Valencià d‘Art Modern in Valencia in 2008.

Fig.-10

The sculpture Nag Devta is reminiscent of the ubiquitous serpent deity found in Indian shrines and temples; the portion attached to the wall suggests the snake‘s poised hood and the trail on the floor its coiled tail. Here, Mukherjee distilled the vocabularies of Indian stone and bas-relief sculpture into a patterned, symmetrical, and thoroughly modern form that speaks to her interest in representing sexual difference. Abounding with fecundity and vitality, the piece comingles male and female sexual attributes in

a single form, whose sensuous bends and folds envelop a phallus shape.

Conclusion :

Mrinalini Mukherjee has gone on a journey of three distinct media according to her will and availability of the material. Here in my research paper I have explained her early phased work. she was majorly influenced by the nature around her. Because of her family background and her teacher K.G Subrmanyan who encouraged her to use unconventional material in her art.

She is blurring the gap between High art and Low art by using day today material in grand and monumental sculptures. She is definitely a daring woman artist who used in 1970s the knotting technique without any fear of contemporary scenarios of that time, in spite of being mocked by the colleague male artists. She never dropped the idea of weaving and knotting.

Not stinging from the religious idea rather taking nature as her primary source of inspiration. She explored very intuitive and otherworldly themes. Often her works are linked with the religion oriented, but she openly refused to accept it as she said she is seeking ideas from mother nature only or totally from her intuitions. As her stylistic aspirations were her living in Santiniketan and Dehradun.

She focuses to show the feminine and masculine aspect very effectively and no doubt she is able to convey feminine idea of her very nicely with the help of anthropomorphic figures. The ability to morphing the two ideas together is so remarkable in itself.

She managed her thematic content with the painstaking method of weaving so nicely.

Gradual development in the execution is omnipresent as in earliest work she was using knotted wall hangings then she managed to free stand her works and at last she found the idea of using metal armature to make her sculpture freestanding. So I have explored the psychology and imaginative idea of the artist by taking her noteworthy body of work of hemp fiber. Through this Case study I have explored and researched on the idea of low art and high art that she rejected as a whole and gone a long way to show that a woman artist who is using day to day material, who is so called a craftsperson in her society but got worldwide recognition by doing such grand and monumental thoughtful artworks. This definitely unravels the hidden capabilities of an Indian contemporary artist who becomes famous worldwide.

References :

1. Anushka Arora, .Phenomenal Nature: Mrinalini Mukherjee's Met retrospective showcases the artist's wild, free-flowing sculptures., Firstpost, September 6,2019, accessed 20, January. https://www.firstpost.com/living/phenomenal-nature-mrinalini-mukherjees-met-retrospective-showcases-the-artists-wild-free-flowing-sculptures-7241541.html
2. “Mrinalini Mukherjee”, Jehangir Nicolsan Art Foundation, accessed on January 02, 2020, http://jnaf.org/artist/mrinalini-mukherjee/.
3. ibid
4. Sahar, Kharaibani, .Phenomenal Nature- At The Met Breuer., Degree critical, September 21,2019, Accesssed February 25,2020, https://degreecritical.com/2019/09/27/phenomenal-nature-mrinalini-mukherjee-at-the-met-breuer/
5. Sophie, Kovel, .In Mrinalini Mukherjee’s Garden of Earthly Delights. frieze, July 23, 2019, Accessed February 26, 2020, https://frieze.com/article/mrinalini-mukherjees-garden-earthly-delights.
6. Trivedy, Shikha, .Mrinalini Mukherjee-Brilliant, Pure Artist with all that entails., NDTV, Accessed February 24,2020, https://www.ndtv.com/blog/mrinalini-mukherjee-brilliant-pure-artist-with-all-that-entails-767231.

Bibliography :

Arora Anushka, "Phenomenal Nature: Mrinalini Mukherjee's Met retrospective showcases the artist's

wild, free-flowing sculptures., Firstpost, September 6,2019. https://www.firstpost.com/living/phenomenal-nature-mrinalini-mukherjees-met-retrospective-showcases-the-artists-wild-free-flowing-sculptures-7241541.html

Ghoshal Somak, "Mrinalini Mukherjee|Nature as Art", Livemint, 8 November,2013. https://www.livemint.com/Leisure/53MJymd6rXLOsW3SDhmjgM/Mrinalini-Mukherjee--Nature-as-art.html

Kovel Sophie, "In Mrinalini Mukherjee's Garden of Earthly Delights. frieze, July 23, 2019. , https://frieze.com/article/mrinalini-mukherjees-garden-earthly-delights.

"Mrinalini Mukherjee., Jehangir Nicolsan Art Foundation, http://jnaf.org/artist/mrinalini-mukherjee/.

Trivedy Shikha, .Mrinalini Mukherjee-Brilliant, Pure Artist with all that entails., NDTV, https://www.ndtv.com/blog/mrinalini-mukherjee-brilliant-pure-artist-with-all-that-entails-767231.

Kharaibani Sahar, "Phenomenal Nature- At The Met Breuer., Degree critical, September 21,2019. https://degreecritical.com/2019/09/27/phenomenal-nature-mrinalini-mukherjee-at-the-met-breuer/

Guha, Tania. (1994), Mrinalini Mukherjee: Labyriths of the mind, Third Text, 8:28-29, 165-168, https://doi.org/10.1080/09528829408576513

Sinha, Gayatri. (2009). Art and visual culture in India 1857-2007. Mark publications

Mago, Pran, Nath. (2012). Contemporary Art in India A prespective. National Book Trust, India

Figure References :

Fig 1, Mrinalini Mukherjee, "Squirrel., 1972, Hemp Jute, Cotton, Sisal Bamboo and Carpet Brushes, KNMA New Delhi, https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/

Fig2, Mrinalini Mukherjee , "Ritu Raj", 1977, accessed February 23,2020, https://www.tate.org.uk/visit/tate-modern/display/materials-and-objects/mrinalini-mukherjee

Fig 3 Mrinalini Mukherjee, "Apsara" (Celestial Nymph), 1985, 1900 × 820 × 500 mm, fiber. Private collection on loan to the Metropolitan Museum of Art, NY in 2019, https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/

Fig 4 , Mrinalini Mukherjee, .Pushp., 1993, Hemp Fiber, accessed February 25,2020, https://www.dailyo.in/arts/mrinalini-mukherjee-will-be-remembered-as-one-of-the-greatest-artists-of-this-generation-national-gallery-of-modern-art/story/1/1834.html

Fig 5, Mrinalini Mukherjee, .Van Raja | (King Of The Forest)., 1981, Roopankar Museum of Fine Arts, Bharat Bavan, Bhopal on loan to the Metropolitan Museum of Art in 2019,Acessed Februuary 21,2020, https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/

Fig 6, Mrinalini Mukherjee, .VansRaja Details. 1981, Accessed February 21, 2020 https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/

Fig 7, Mrinalini Mukherjee,.Woman On Peacock., 1991, fiber, and detail. Foundation of Contemporary Art, Reunion Island on loan to Metropolitan Museum of Art, NY in 2019, accessed February 21,2020, https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/

Fig 8, Mrinalini Mukherjee,(Vriksha Nata Aboreal Enactment), 1991-92, fiber. Kiran Nadar Museum of Art loaned to the Metropolitan Museum of Art, NY in 2019, Accessed February 22,2020, https://vindevie.me/2019/08/09/mrinalini-mukherjee-invocation-of-gods-man-and-nature-in-hemp-copper-and-ceramics/.

Fig 9, Mrinalini Mukherjee, "Jauba", 2000, Hemp Fiber and Steel, 1430 × 1330 × 1100 mm, Accessed February 24,2020, https://www.tate.org.uk/art/artworks/mukherjee-jauba-t14458

Fig 10, Mrinalini Mukherjee, .Nag Devta I., 1979. Natural and dyed hemp, 50 × 25 in (127 × 63.5 cm). Collection Cleveland Museum of Art accessed February 25,2020, https://www.cobosocial.com/dossiers/mrinalini-mukherjee-dissident-vision/

भोजपुरी लोकगीतों में सांगीतिक तत्व

प्रो0 रेवती साकलकर** **अमित कुमार***

सारांश

भोजपुरी लोकगीत अपनी लयात्मक धुनों, मधुर स्वर–लहरियों के आरोहावरोह तथा रंजक राग–रागिनियों के लिए सुप्रसिद्ध हैं। लोकगीतों में संगीत पक्ष का होना स्वभाविक है। संगीत व्यापक तथा भावबोध में सुगम है जो समस्त चर–अचर, प्राणियों–जीवों को अपने प्रभाव से प्रभावित करता है।

नागरी सभ्यता तथा शिक्षा–दीक्षा से वंचित जन–जातियों एवं सरल ह्दय ग्रामीणों के गीत सरल, सरस और अल्प स्वरों से युक्त, संक्षिप्त होते हैं । ये गीत उनके मन में आनन्द का संचार करते हैं, जिनको वह आत्मसात करके आत्मविभोर होते हैं। यह गीत सरस साहित्यिक तथा सांगीतिक तत्वों से परिपूर्ण होते हैं। सरल एवं सरस स्वर, लय, ताल इनमें व्याप्त सहजता को उजागर करते हैं। गीतों में शब्द, स्वर तथा लय, गीतों का स्वभाविक सौन्दर्य उनके मर्मस्पर्शी गुणों को अभिव्यक्त करते हैं।

मुख्य शब्द– *लोकगीत, भोजपुरी, संगीत, स्वर, लय*

शोध प्रविधि– *द्वितीयक स्त्रोतों यथा– पुस्तक, पत्र–पत्रिकाओं से सहायक सामग्री लेकर शोध–पत्र तैयार करने का प्रयत्न किया गया है ।*

भूमिका–

बिहार राज्य के शाहाबाद जिला बक्सर उपखण्ड में भोजपुर नाम का एक परगना है। इसी परगना में दो गाँव, नवका तथा पुरनका भोजपुर स्थित है। ये दोनों गाँव डुमराँव राजधानी से दो–तीन मील उत्तर गंगा के निकट बसे हैं और दोनों गाँव प्राचीन नगर भोजपुर में स्थित हैं।[1] कहा जाता है कि प्राचीन समय में भोजपुर एक प्रमुख नगर था, जिसे मालवा के उज्जैनवंशी राजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। इन्हीं भोजवंशीय राजाओं के नाम पर भोजपुर नाम पड़ा। 18वीं शताब्दी के अन्त में भोजपुर का विस्तृत होने लगा और 'भोजपुरी' यहाँ की बोली, तथा 'भोजपुरिया' विशेषण यहाँ के निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

भोजपुरी भाषा के प्रधान क्षेत्र उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले और बिहार प्रान्त के पश्चिमी जिले हैं परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भोजपुरी अन्य जगहों पर भी बोली जाती है।[2] उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर मध्यप्रान्त के सरगजा रियासत तक, बिहार में शाहाबाद, सारन, चम्पारन, राँची, जशपुर, एवं मुजफ्फरपुर के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र, उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में गाजीपुर, बनारस, बलिया, मऊ, जौनपुर, मिर्जापुर के आस–पास का क्षेत्र भोजपुरी के अन्तर्गत आता है।

भोजपुरी भाषी लोग अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं, मान्यताओं, प्रथाओं आदि के अनुसार अपना जीवनयापन करते हैं, अतः ये भोजपुरी भाषा को अधिक महत्व देते हैं। भोजपुरिया भाषी लोग अपनी इन्हीं विशिष्टताओं–संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, कला, शौर्य, वीरता आदि के लिए सम्पूर्ण विश्व में जाने जाते हैं। यहाँ की पवित्र भूमि मनीषी, महात्मा, सन्त, वाग्गयेकार, कलाकार, सूफियों की जन्म–भूमि रही है जिन्होंने भोजपुरी लोकसाहित्य का संरक्षण तथा संवर्द्धन किया है। भोजपुरी लोकसाहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन का श्रेय यहाँ के किसानों, लोक कलाकारों, महिलाओं को जाता है क्योंकि इन्होंने भोजपुरी को सींचा है तथा जीवित रखा है।

''लोक'' शब्द संस्कृत के ''लोकदर्शने'' धातु में ''घञ्'' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है–देखने वाला। साधारण जन के अर्थ में ''लोक'' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है।[3] ऋग्वेद में लोक के लिए ''जन'' शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरूष सूक्त में ''लोक'' शब्द का व्यवहार जीवन तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है।[4] उपनिषदों में, पाणिनि की अष्टाध्यायी में, भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में

*शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र बी.एच.यू.
**प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय बी.एच.यू.

अनेक नाट्यधर्मी एवं लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ है।[5]

महर्षि व्यास ने लिखा है–

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां, सर्वदर्शी भवेन्तरः।

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है, वही उसे सम्यक् रूप में जान सकता है।[6]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सब समाया हुआ है।''

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ''लोक'' शब्द का अर्थ ग्राम, जनपद से लेकर नगरों व महानगरों में फैली हुई जनता को कहा है, जो परिष्कृत, रूचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों के बीच प्राकृतिक, सरल और सहज जीवन जीने में विश्वास रखते हैं।

डॉ. कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा देते हुए कहा है, ''लोकसंगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते हैं।[7]

लोकगीत को मात्र ग्रामगीत कहकर उनकी व्यापकता को सीमित नहीं किया जा सकता। ये गीत अब गाँव की सीमाओं से बाहर निकलकर नगरों और महानगरों में भी शोभा बढ़ा रहे हैं। हिन्दी साहित्य कोश में ''लोकगीत शब्द के तीन अर्थ दिये गये हैं–

1) लोक में प्रचलित गीत

2) लोकनिर्मित गीत

3) लोक विषयक गीत

मूलतः लोकगीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत ही हैं, जिनके दो अर्थ दिये जा सकते हैं–

1) अवसर विशेष में प्रचलित गीत

2) परम्परागत गीत

लोक में निर्मित होने से लोकगीत सामान्य जन–मानस का प्रतिबिम्ब होते हैं क्योंकि रचनाकार को उस गीत में समस्त लोक के व्यक्तित्व को उभारना होता है।

लोकसाहित्य वस्तुतः जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिये लिखा जाता है। लोकगीत लोकसाहित्य का प्रमुख अंग है। इसमें सामूहिक जनजीवन के अवचेतन मन की अभिव्यक्ति होती है। जनमानस के हर्ष–विषाद, उमंग–उत्साह, हास–परिहास, आशा–निराशा, सपनों और आकांक्षाओं को लोकगीतों में भली–भांति सुनकर अनुभव किया जा सकता है।[8]

लोकगीत की प्रामाणिकता ऋग्वेद से सिद्ध होती है। प्राच्य साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता है। पद्य या गीत को गाथा तथा उसके गाने वाले को गाथिक की संज्ञा का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के समय विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा थी। श्रीराम–विग्रह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख है–

गावहिं मंगल मंजुल बानी, सुनि कलरव कलकंठ लजानी।[9]

समस्त मानव समाज में चेतन–अवचेतन रूप में जो भी भावनाएँ गीतबद्ध हुई हैं, उनको लोकगीत कह सकते हैं। ग्रिम का कथन है कि "A folk song Composes itself" अर्थात लोकगीत अपने आप बनते हैं।

राल्फ वी. विलियम्स का कथन है कि ''लोकगीत न पुराना होता है न नया वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है जिसकी जड़े दूर जमीन में धँसी हुई हैं परन्तु जिनमें सदैव नई–नई डालियाँ पल्लव और फल लगते रहते हैं।'' मानव के जीवन की संम्पूर्ण विकास गाथा लोकगीतों में निहित होती है और इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से उनके सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, मिलन–विरह, उतार–चढ़ाव आदि भावनाएँ व्यक्त होती रहती हैं। मानव के सरस, सरल, स्वभाविक जीवन एवं उनके भावों की गहराई तथा मानव समाज की रीति एवं कुरीतियों के भाव भी लोकगीतों में सन्निहित रहते हैं।

लोकगीतों की व्यापकता कहाँ तक है, इसका अनुमान लगा पाना कठिन है परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएँ आज भी जीवित हैं। ये ह्दय की गहराइयों से जन्मे तथा श्रुतिपरम्परा से अपने विकास का मार्ग बनाते चले आ रहे हैं। अतः इनमें भावनाएँ अधिक,

तर्क कम हैं। न इनमें छन्दशास्त्र के नियम लागू होते हैं, न इनमें अलंकारों की बोझिलता है, इनमें तो बस लोक मानस के स्वच्छ, निर्मल गंगा–यमुना जैसा प्रवाह है। लोकगीतों के गुणों पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि इनमें तो स्वच्छन्दता, स्वाभाविकता, सरलता, सरसता, सहजता के साथ सुख–दुःख, प्रेम–करूणा आदि के विविध रंग दिखाई देते हैं। कहीं पुत्र प्राप्ति पर आनन्द मनाया जाता है तो कहीं कन्या की विदाई पर करूणा के स्वर सुनायी देते हैं।

लोकगीत के श्रवण का संबंध श्रवण इंद्रियों से है जो कानों के माध्यम से सीधा मन तक पहुँचता है । इसलिए यह मन के अहंकार का दमन करता है तथा मनुष्य को समाज में सभ्य मानव की तरह सहनशीलता, सृजनात्मकता, व्यावहारिकता, भाईचारा, सहयोग, त्याग तथा मैत्री आदि गुणों से संपन्न करता है।

लोकगीतों में भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक होती है ये हृदय की गहराइयों से निकले लय युक्त होते हैं। हरे जंगलों में जैसे पंछी उन्मुक्त होकर गाते है उसी प्रकार लोकगीत उन्मुक्त हृदय के उद्गार हैं। इनमें सरल काव्य होता है।[10]

लोकगीत वस्तुतः लोकनिर्मित प्राकृतिक गान हैं जिसमें लोक का समस्त जीवन व्यक्त होता है। शिशु के जन्म से लेकर जीवन की अन्तिम कड़ी तक के भावाचित्र इनमें हैं। पारिवारिक परिदृष्यों में भाई–बहन का अगाध प्रेम, सास, ननद तथा सौत के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री की मनोव्यथा, किसान की परिवारिक विपन्नता, वीरों की शौर्य गाथा तथा मिलन–विरह के रंगारंग भाव इन लोकगीतों में मिलते हैं। मूलतः ये कहा जा सकता है कि इन लोकगीतों में जीवन के भा वत सत्य झलकते हैं।[11]

शिक्षा–दीक्षा, छल–कपट से कोसों दूर अपने परम्पराओं, प्रथाओं, मान्यताओं में जीवन व्यतित करने वाले जनसामान्य के गीतों में शब्द तथा स्वरों का चयन अत्यन्त सहज, सरल तथा प्राथमिक स्तर का होता है। इन जातियों के सरल–सहज जीवन की भाँति, इनके गीतों में भी शब्द, स्वर तथा अर्थ अत्यन्त सरल, सहज तथा संक्षिप्त होते हैं। इस प्रकार के गीत उनके मन में आनन्द का संचार करते हैं, जिनको वे आत्मसात करके आत्मविभोर होते हैं। वे गीत साहित्यिक तथा सांगीतिक तत्वों से परिपूर्ण होते हैं, शब्द, स्वर तथा लय, गीतों का स्वभाविक सौन्दर्य एवं उनके मर्मस्पर्शी गुण को उजागर करते हैं।

भोजपुरी लोकगीत अपनी लयात्मक धुनों, मधुरस्वर–लहरियों तथा रंजक राग–रागिनियों के लिए सुप्रसिद्ध है तथा उनमें संगीत पक्ष का होना स्वभाविक है क्योंकि संगीत व्यापक तथा भावबोध में सुगम्य है जो चर–अचर समस्त प्राणियों को अपने प्रभाव से प्रभावित करता है। इसी बात को स्वीकार करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास जी ने लिखा है कि ''संगीत की विशेषता इस बात में है कि उसका प्रभाव बहुत विस्तृत है जो अनादिकाल से मनुष्य की आत्मा पर पड़ता चला आ रहा है, आदिम से सभ्य मनुष्य तक इसके प्रभाव के वशीभूत होते रहते हैं, तथा पशु–पक्षी तक उसका अनुशासन मानते हैं।''[12]

मनुष्य जब अपने विकसित अवस्था में हुआ तो वह लोकगीतों को अपने दृष्टिकोण से देखने लगा। साहित्यकार उन्हें साहित्य की कसौटी पर कसने लगा, तो संगीतकार उन्हें सांगीतिक स्वर, लय, ताल की भूमिका में परखने लगा।

लोकगीत के अनेक अलग–अलग धुनों के अध्ययन तथा उनके ध्वनि–परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका है कि वे अपनी धुन और स्वर–रचनाओं की ताकत से ही आज तक जीवित हैं।[13] लोकगीतों के स्वर समूहों में रागों का आभास मात्र रहता है। उसी आभास के आधार पर शास्त्रीय संगीत का विस्तार–पक्ष सक्रिय होता है। इस प्रकार अनेक लोकगीतों के परीक्षण से यह ज्ञात होता है कि उनकी स्वर–रचनाओं में स्वर चयन किसी न किसी रागात्मक तथा भावात्मक वृत्ति के आधार पर ही होता है।[14]

लोकगीतों की रचना का आधार 'लोक' है। लोकगीत तो स्वतः ही जन्मे हैं अतः उसकी शास्त्रीयता एक सीमा तक ही निर्धारित की जा सकती है। फिर भी रागों, तालों, तथा थाटों का स्थूल संबंध स्थापित किया जा सकता है।

लोकगीतों को मुख्यतः चार थाटों के स्वरों पर आधारित माना गया है–बिलावल, काफी, खमाज, तथा भैरव। ग नि कोमल होने पर काफी थाट, केवल नि कोमल होने पर खमाज थाट, सभी शुद्ध स्वरों का प्रयोग बिलावल थाट, ग ध नि कोमल स्वरों का प्रयोग आसावरी थाट तथा रे ग ध नि कोमल लगने वाले स्वरों से भैरवी थाट माना

गया है। इन थाटों के स्वरों पर आधारित विभिन्न लोकगीत प्रकारों को रखा गया है। पूर्वी–जो लोकगीत विधा है, को बिलावल तथा भैरवी थाट में तथा कहीं–कहीं भैरव थाट के स्वरों में भी पूर्वी गीत प्रकार को गाया जाता है। चैती खमाज थाट में तथा छठमाता के गीतों को काफी थाट में रखा जा सकता है। इसी प्रकार काफी थाट के स्वरों पर आधारित–तिलक, वस्त्रधारण, इमली घोटाई, बारात विदाई, चुमावन, मँडव छवाई, संझा गीत, हरदी गीत, जन्म गीत, यात्रा गीत, छठी माता गीत आदि हैं। जाति विशेष के गीत, झूमर, निर्गुण सगुन गीत आदि में बिलावल थाट के स्वरों की छाया रहती है।

लोक धुनें स्वतः निर्मित हैं अतः वह पूर्ण हैं तथा उनमें किसी–न–किसी राग के स्वरों की छाया अदृश्य रूप से विद्यमान होती हैं। जब हम उन धुनों को शास्त्रीयता के दृष्टि से विश्लेषण करते हैं तो रागों की छाया उत्पन्न हो जाती है या यह कहें कि राग के प्रकटीकरण हेतु, संगीतकार सूक्ष्मता से धुनों में, स्वर समूहों को नियमबद्ध कर देता है। लोकगीत के प्रकारों के साथ उनकी धुनें भी बदलती रहती हैं, जो स्वरलयताल में बद्ध होती हैं। विवाह संस्कार पर गाये गए गीतों में कन्यादान से पहले के गीतों में स्वर, लय, ताल, उत्साह, उमंग तथा जोश से परिपूर्ण होती हैं परन्तु कन्यादान के पश्चात् गाये जाने वाले गीतों में लय, ताल में शिथिलता एवं करूणा भरे स्वर सुनायी पड़ते हैं। श्रमगीतों में धीमी गति में करूण वेदना के स्वर, उदासी, दुःख, आदि के भाव सुनाई देते हैं, जिसका कारण कार्य करने में लग रहा शारीरिक श्रम भी प्रतीत होता है तथा कार्य की गति से भिन्न तो गीतों की लय भी असंभव है अतः उनकी लय धीमी ही होती है। रोपनी गीतों को दो स्थितियों में गाया जाता है– थकान मिटाने के लिए, वातावरण के सौन्दर्य को देख अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के लिये। रोपनी गीतों में उनकी स्थितियों की भाँति स्वर, लय चलती है। लोकगीतों में कम स्वरों के प्रयोग होने के पश्चात् भी भाव विस्तार अधिक है। अधिकांशतः लोक धुनों में शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है कहीं भैरव अंग की छाया दिखातें हुए ऋषभ–धैवत कोमल मिलता है तो कहीं दोनों धैवत के साथ कोमल नि का प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। भोजपुरी लोकगीतों को गाने के लिए ऊँचे स्वर में यथा– मध्यम को सा मानकर, मध्य एवं तार सप्तक में गाने की प्रथा है।

लोकगीतों की स्वर–परिधि अधिकांश चार या पाँच स्वरों की होती है। कुछ गीतों में बारह स्वरों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। कुछ गीतों में तो कई रागों का मिश्रण पाया जाता है।

पं0 रविशंकर जी ने लोक धुनों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया है–

1) मूल शास्त्रीय रागों पर आधारित, जो भक्ति रस समन्वित हैं, हरि कथा से लेकर रामायण जिस पर गायी जाती है, इस प्रकार के गीतों में दुर्गा, पीलू, काफी, आदि रागों का प्रयोग होता है।

2) गाँवों में निवास करने वाले साधारण जन के गीत, जो विभिन्न अवसरों के होते हैं उनमें दुर्गा, भूपाली, पहाड़ी, सारंग, पीलू, झिंझोटी आदि रागों में गाए जाते हैं।

3) आदिवासियों के गीत जो शुद्ध रागों पर आधारित होते हैं और आदिवासियों द्वारा विशेष प्रकार से गाए जाते हैं जिनकी श्रुतियाँ भिन्न होती हैं।

लोकगीत समय तथा ऋतु सिद्धान्त के अनुरूप होते हैं। साधारण शब्दों में कहा जाय तो समय, परिस्थिति, काल, देश के अनुसार ही लोक धुनों में स्वर लगते हैं। लोक कवि ईसूरी ने कहा है–बहुतई बुरों लगत है ईसर बे औसर को बाजो' जैसे सावन में कजरी के स्थान पर होरी, फाग गाया जाय तो मन को अटपटा लगने लगता है तथा मानव पर अपना यथेष्ट प्रभाव नहीं डाल सकता। लोकगीत तो आत्मा का संगीत है वह बादलों की घनघोर छटा, वर्षा की फुहार, बादलों की गड़गड़ाहट, में जहाँ सावनी कजरी गाने को विवश करती हैं, वहीं फागुन की उमंग होली तथा फाग गीतों में अल्हड़, उन्मुक्त गायन करने हेतु प्रेरित करती है। कजरी तथा फाग की विभिन्न प्रकार की धुनें तथा लय भिन्न होते हैं। जाता के गीत को दो स्त्रियाँ मिलकर गाती हैं, चक्की की एक आवर्तन होने पर स्त्रियों के हाथों की चुड़ियाँ छन्न, दूसरा आवर्तन छन्न, इसी प्रकार छन्न–छन्न की ध्वनि जहाँ लय का आभास कराती हैं वहीं चक्की की घरघराहट से स्वरों को आधार मिलता है। धोबियों के गीतों में छियों राम, छियों राम की ध्वनि जहाँ गीतों को आधार देती है वहीं कहार हैया हैया की धुन में मग्न होके गीत गाते चलते हैं। गीत प्रकारों में राग की शुद्धता नही पाई जा सकती किन्तु उन के स्वाभाविक

मधुर धुनों में लगने वाले स्वरों के साम्य के आधार पर राग को जोड़ा जा सकता है–सोहाग, हरदी गीत, ईमली घोटाई, नहछू नहावन, सेन्दुरदान, द्वार पूजा, कन्यादान, कोहबर गीत आदि भीमपलासी राग के अन्तर्गत अधिकांशतः प्राप्त होते हैं। जेवनार, माटी कोडवा, बन्नी, झूमर, मिर्जापुर कजरी, चौताल, जँतसार आदि पहाड़ी, मिश्र पहाड़ी के अन्तर्गत प्राप्त होते हैं। सोहर, लावा भुजाई, चुमावन, विदाई गीत, कजरी आदि गीत राग पीलू में, परिछन, विदेशिया, दादरा, देवी गीत तेलियों के गीत राग झिंझोटी के अन्तर्गत प्राप्त होते हैं।

निर्गुण, बारहमासा, खेमटा, झूला, कजरी, होली, मेला गीत, चैती, लचारी आदि खमाज तथा माँझ खमाज राग के स्वरों में गाये जाते हैं।

भोजपुरी लोकगीतों में तालों का विश्लेषण करें तो सोहर, जनेऊ, गवना, गोधन, होली, चैता, जँतसार आदि गीत जतताल में तथा बिदेसिया को दीपचन्दी और कुछ गायक कहरवा में गाते हैं। झूमर गीत, दादरा ताल में गाया जाता हैं।

लोकगीतों में लय सामान्य परिस्थिति से प्रारम्भ कर भाव की तीव्रता के साथ समाप्त होती है। लोकगीतों के लय, ताल में वैविध्य दिखाई देता है । दादरा, कहरवा, दीपचन्दी, खेमटा, जतताल आदि तालों का उपयोग पाया जाता है। संस्कार गीत के अन्तर्ग आने वाले गीत और श्रम के कुछ गीत प्रकार ताल रहित होते हैं और कुछ गीत तालबद्ध। भिन्न–भिन्न लय, ताल योजनाओं के कारण ही गीत विशिष्ट हैं। गीतों में कभी ताल द्रुत हो जाता है तो कभी मध्य तो कभी विलम्बित, लगभग अस्सी प्रतिशत गीत कहरवा ताल में निबद्ध होते है। कुछ गीत दादरा में भी होते हैं, दीपचन्दी या चाँचर में प्रसिद्ध धुने बटोहिया, पूर्वी, होली, सोरठी, झूमर इत्यादि ही पायी जाती है।[15]

संगीत का विद्वान् गीतों के गेयपक्ष का अध्ययन करते समय उसके शास्त्र को ढूँढ़ते हैं। वे लोकगीतों में स्वर–लालित्य की खोज नहीं करते। वे यह जानने का प्रयास नहीं करते कि विशिष्ट गीतों में विशिष्ट प्रकार के स्वर–चयन से विशिष्ट प्रकार का प्रभाव क्यों पड़ता है? इनमें राग–रागिनियों की छाया क्यों रहती है? शास्त्रीय तालों की पेचीदगियाँ उनमें नहीं रहते हुए भी गाने के इतने प्रभावशाली खटके उनमें कहाँ से आते हैं? ये सब बातें ऐसी हैं, जिनका विधिवत् अध्ययन तथा परीक्षण संगीत–शास्त्रियों को करना चाहिए।

निष्कर्ष :

लोकगीत समाज की धरोहर हैं जो सामाजिक, सांस्कृतिक, भाव–भीनी मंगल अवसरों पर गाए जाते हैं। इन अवसरों पर गाए गीतों की धुन, लय, उतार–चढ़ाव, स्वरों का लगाव से कोई भी पथिक उसमें मगन हो जाता है। इस प्रकार के गीतों में व्याप्त सांगीतिक तत्व, तन मन को भीतर तक छू जाते हैं। ये सांगीतिक तत्व लोकगीतों के प्राण हैं तथा उनके माधुर्य के कारण हैं। लोकगीतों में निगड़ित इन तत्वों के विश्लेषण से इनकी विशेषताओं को गहराई से जाना जा सकता है तथा आने वाली संततियों में हस्तान्तरित किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. उपाध्याय कृष्णदेव, भोजपुरी लोक साहित्य, पृ. 12
2. वही, पृ. 17
3. जैन, डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृ. 1
4. यादव, डॉ. मोतीचन्द्र, भोजपुरी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 21
5. जैन, डॉ. शान्ति, चैती, पृ0 4
6. यादव, डॉ. मोतीचन्द्र, भोजपुरी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 22
7. जैन, डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृ. 1
8. त्रिपाठी, सूर्यकान्त, लोक का अवलोकन, पृ. 31
9. जैन, डॉ. शान्ति, चैती, पृ. 7,8
10. जैन, डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृ. 2
11. वही,
12. शुक्ला, डॉ. मधुरानी, लोक भाषा एवं संगीत, पृ. 46
13. सागर, देवीलाल, लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाएँ, पृ. 7
14. वही, पृ. 21
15. शुक्ला, डॉ. मधुरानी, लोक भाषा एवं संगीत, पृ. 46, 50

बिहार के लोक नाटकों में पलायन और उससे उत्पन्न सामस्याओं का चित्रण

अमरजीत कुमार*

शोध सार

बिहार राज्य अपने निर्माण से आज तक मजदूरों के पलायन के लिए जाना जाता रहा है, जिसका मूल कारण है उद्योग का अभाव। बिहार के मजदूर आज भी रोजगार की तलाश में देश के हर कोने में मिल जाएंगे, जो अपने परिवार को छोड़कर मेहनत मजदूरी कर रहे हैं। इसी चीज को बिहार के लोक नाटकों में भी दिखाया गया है। भोजपुरी के शेक्सपियर कहे जाने वाले 'भिखारी ठाकुर' कृत– "बिदेसिया" इसका मुख्य उदाहरण है, साथ ही उनके नाटक– ''गबरघिचोर'' में भी पलायन देखा जा सकता है। वहीं अनिल पतंग के द्वारा लिखित बिहार के प्रचलित लोक–नृत्य पर आधारित नाटक–''जट–जटिन'' में भी मजदूरों के पलायन की कहानी है।

बीज शब्द : *बिहार, पलायन, लोक नाटक, बिदेसिया, गबरघिचोर, जट–जटिन।*

शोध–प्रविधि : *द्वितीयक श्रोतों के कई लोक साहित्यिक रचनाओं के अध्ययन तथा इन तीनों नाटकों की प्रस्तुति को देखने के बाद इस पत्र को तैयार कर प्रस्तुत किया गया है।*

अध्ययन क्षेत्र : लोक–साहित्य

भूमिका : लोक नाटक, जो समाज के ग्रामीण और निम्न तबके की बात करता है, इसके प्रस्तुतकर्ता और दर्शक भी निम्न तबके के ही लोग होते थे[1] जो अपने आप से कहानी को सम्बद्ध कर पाते थे। शुरुआती दिनों में इसका प्रदर्शन भी खुले मैदान में ग्रामीण क्षेत्रों में ही होता था परंतु लोक कला को लेकर सरकार की पहल और रंगकर्मी के अथक प्रयासों के बाद अब यह बड़े–बड़े नाट्य महोत्सव का हिस्सा होती है और इसका प्रदर्शन प्रोसेनियम स्टेज पर भी होता है।

बलवंत गार्गी ने अपनी किताब– 'फोक थिएटर ऑफ इंडिया' में लिखा है– लोक रंगमंच असभ्य और अशिष्ट है।[2] अगर हम लोक नाटक के संवाद को देखें तो यह बात सत्य भी प्रमाणित होती है। चूंकि यह भी हमारे ही समाज और संस्कृति का हिस्सा है। अगर हम ग्रामीण इलाके के निम्न तबके के लोगों की जिंदगी को देखें तो उनकी भाषा थोड़ी असभ्य है भी, जिसका कारण है शिक्षा का अभाव।

अन्य लोक कलाओं की तरह लोक नाटक की शुरुआत भी संभवतः मौखिक रूप से ही हुई होगी, किन्तु आजकल लोक नाटक को भी लिखित रूप में देखा जा सकता है। लोक कला के अन्य रूपों में लोक नाटक का एक अपना महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसमें गीत, नृत्य और संवाद का समावेश है।

बिहार की सभ्यता और संस्कृति अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है जिसमें लोक नाटक की एक अपनी गरिमा है, जो बिहार की सामाजिक दुविधाओं और कुरीतियों को भली–भाँति उजागर करता है।

पूरे भारत में सबसे अधिक मजदूरों का पलायन होने में बिहार का स्थान दूसरा है, पहला स्थान उत्तर प्रदेश का है।[3] हमें देश के हर एक कोने में बिहारी मजदूर दिख जाते हैं जो जीविकोपार्जन के लिए अपने घर, परिवार और समाज को छोड़कर किसी तरह से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पुराने समय से लेकर आज तक बिहार के मजदूरों का पलायन नहीं रुका है। इसी बेरोजगारी और पलायन के शिकार हुए भिखारी ठाकुर भी कलकत्ता गए थे, उन्होंने उस पीड़ा को झेला और वापस अपने गाँव आकर अपनी कला के जरिए समाज के दुख–तकलीफ के ऊपर अपनी मंडली के साथ मिलकर नाटक करना शुरू कर दिया। उनके सबसे प्रसिद्ध लोक नाटक–"बिदेसिया" में बिहार के एक मजदूर 'बिदेसी' (बिहार में पुराने समय में आजीविका हेतु अपने शहर को छोड़ चुके लोग को 'बिदेसी' कहा जाता था) के जीवन की कहानी है, जिसकी नई–नई शादी हुई है वह रोजी–रोजगार के लिए बिहार

*पीएच.डी. स्कॉलर, डिपार्टमेन्ट ऑफ थिएटर आर्ट्स, यूनिवर्सिटी ऑफ हैदराबाद, तेलंगाना

से कलकत्ता जाता है और वहीं जाकर बस जाता है और दूसरी औरत के साथ जीवन व्यतीत करने लगता है। यहाँ प्यारी सुंदरी (बिदेसी की पत्नी) अनेक दुख–तकलीफों को झेलती है और हर परदेस जाने वाले से विनती करती है कि उसके पति को ढूंढ कर वापस ला दो। एक दिन उसकी मुलाकात कलकता जा रहे बटोही नाम के एक बुजुर्ग से होती है, उससे प्यारी सुंदरी का दुख देखा नहीं जाता है और वह संकल्प लेकर निकलता है कि सुंदरी के पति को ढूंढ कर ही मानेगा। कलकता पहुँच कर वह हर गली, हर चौराहा उसे ढूँढता है तब कहीं जाकर उसे बिदेसी मिलता है। वह बिदेसी को प्यारी सुंदरी के बारे में सारी बात बताता है और तब बिदेसी अपने घर वापस आता है। पीछे से वह दूसरी औरत भी चली आती है जिसे रखेलिन(रंडी–कहकर संबोधित किया गया है)।[4]

नाटक की शुरुआत में ही गीत है–

पियवा गइलन कलकतवा ए सजनी।

....

लिखत 'भिखारी' खोजिकर बही–खातवा ए सजनी,
प्यारी सुंदरी के बातवा ए सजनी, पियवा...[5]

इसमें स्त्री के तरफ से अपने पति के लिए चिंता और खुद के लिए भी अपने पति के बिना रहने का वियोग है। सुदूर गाँव में आज भी स्त्रियों में आत्मनिर्भरता की कमी है। जिस समय "बिदेसिया" के प्रदर्शन की शुरुआत हुई, तब तो बिहार और भी पिछड़ा था। स्त्री के पति के न होने पर आर्थिक कष्ट जो होता है वह तो होता ही है, हमारे समाज में पुरुष के बिना स्त्री को अधूरा माना जाता है, क्योंकि हमारा समाज पुरुष–प्रधान समाज रहा है। नाटक के हर एक दृश्य और पंक्ति का उद्देश्य है पलायन से उत्पन्न हुई समस्या को उजागर करना। उस समय पलायन सिर्फ एक घर की कहानी नहीं थी, बल्कि यह घर–घर की कहानी थी। नाटक के एक दृश्य में पलायन करते हुए मजदूरों की भीड़ को दिखाया गया है, जिसको परवेज यूसुफ द्वारा निर्देशित–"बिदेसिया" में आलाप की ध्वनि के साथ बहुत ही खूबसूरती के साथ दिखाया गया है, जो मजदूरों और उसके परिवार का पलायन को लेकर दर्द को दिखाता है। यह कहानी इतनी मार्मिक है कि दर्शकों के आंखों में आँसू आ जाते हैं। इसकी हर एक पंक्ति में ममत्व दिखता है। जैसे–

पिया मोर मत जा हो पुरुबवा।
पुरुब देश में टोना बेसी बा, पानी बहुत कमजोर। पिया मोर...
सुनत बानी आँख पानी देत बा, सारी भइल सराबोर।[6]

इन पंक्तियों में प्यारी सुंदरी अपने पति को बताती है कि कलकत्ता मत जाइए, क्योंकि कलकत्ता उस समय जादू–टोना के लिए भी प्रसिद्ध था। वास्तव में वह वहाँ की औरत के बारे में कहती है, क्योंकि उस समय अफवाह थी कि वहाँ की औरत मर्दों को फँसा लेती है। ऐसा इस कहानी में दिखाया भी गया है। नाटक में जिस समय इस पंक्ति का गायन हो रहा होता है, दर्शकों में रोमांच आ जाता है।

भिखारी ठाकुर का ही दूसरा नाटक है– "गबरघिचोर", इसमें भी पलायन के कारण उत्पन्न समस्या दिखाया गया है। कहानी कुछ इस प्रकार है कि गलीज अपने गाँव से पलायन होकर कलकत्ता चला गया होता है। यहाँ उसकी पत्नी का गरबड़ी नाम के आदमी से शारीरिक संबंध रहता है, जिससे एक बेटा पैदा होता है जिसका नाम 'गबरघिचोर' है। गलीज, पंद्रह साल बाद कलकत्ता से वापस आता है अपने बेटे 'गबरघिचोर' पर अधिकार जमाने, ताकि वह उसे भी कलकत्ता ले जा सके, अपने काम में हाथ बटाने के लिए। गरबड़ी, गलीज बहु और गलीज, हर कोई उसे अपने साथ रखने की बात करता है। बात यहाँ तक आ पहुँचती है कि पंच यह फैसला करता है कि 'गबरघिचोर' के तीन टुकड़े कर बाँट दिए जाएं। अंत में मातृत्व की जीत होती है और 'गबरघिचोर' अपनी माँ को पूरी तरह से मिल जाता है।[7]

इन सारी समस्याओं का कारण है पलायन और पलायन का कारण है रोजगार का अभाव। गलीज बहू का गरबड़ी के साथ शारीरिक संबंध इसलिए हुआ क्योंकि गलीज उसे छोड़कर पैसे कमाने के लिए चला गया था। हर किसी को सहारे की जरूरत होती है और इसी जरूरत के कारण गरबड़ी गलीज बहू के करीब आया। गलीज पन्द्रह साल बाद अपने बेटे को भी कलकत्ता ले जाने के लिए आया क्योंकि यहाँ अभी भी रोजगार की समस्या थी और लोग अभी भी पलायन कर रहे थे।

"बिदेसिया" और "गबरघिचोर", दोनों ही नाटकों में एक संवाद लगभग समान है– बिदेसी उहे हवन, बियाह क के घर में जनाना के बइठा दले न ।अपने चल गइलन

कमाए। बाहर से ना एगो खत भेजतारन, ना खबर भेजतारन, ना खरच–बरच खातिर पाँच गो रोपेया मनीआडर से भेजतारन।[8] और, ''ईहे गलीज हवनं बिआह कके घर में जनाना बइठा देलन। अपने चल गइलन बहरा कमाये। बाहर से ना कबहीं खत भेजलन, ना खबर भेजलन, ना पाँच रोपेया मनिआडर भेजलन।[9]

इससे यह स्पष्ट होता है कि रोजी–रोजगार के लिए लोग नई–नई शादी कर अपनी पत्नी को छोड़कर परदेश चले जाते थे। आजकल तो संचार का बहुत ही बेहतरीन साधन है मजदूरों के हाथ में भी स्मार्ट फोन रहता है, परंतु उस समय तो चिट्ठी ही थी वह भी लोग भेजना भूल जाते थे और ना ही पैसा भेजते थे। अपने परिवार से लगभग रिश्ता तोड़ ही देते थे। एक विवाहित स्त्री को विधवा की तरह जीना पड़ता था। सामाजिक बंधनों के कारण वो दूसरी शादी भी नहीं कर सकती थी।

अनिल पतंग द्वारा लिखित नाटक– "जट–जटिन" में भी पलायन की समस्या को दिखाया गया है। इस कहानी में भी जट और जटिन की आपस में शादी होती है और एक बेटा पैदा होता है। जट अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य के लिए पैसे कमाने 'मोरंग' चला जाता है। यहाँ जटिन को अकेले ही अपने बेटे का लालन–पालन करना पड़ता है।[10]

आधुनिक शहरी समाज में सामान्यतः किसी को किसी से कोई मतलब नहीं रहता है, परंतु पुराने समय में खासकर बिहारी ग्रामीण समाज की बनावट ही ऐसी थी कि लोग असहायों की मदद भी करते थे तो कुछ ताना भी मारते थे, उन्हें तकलीफ भी देते थे। लोगों को अपनी जिंदगी से ज्यादा लोगों की जिंदगी में दिलचस्पी होती थी, जैसा कि "जट–जटिन" में भी दिखाया गया है।

निष्कर्ष :

बिहार आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ एक राज्य है। जहां रोजगार का अभाव है इसलिए बिहारी मजदूर, यहाँ से पलायन कर दूसरे राज्यों में पैसे कमाने के लिए जाते हैं जिससे उन्हें कई तरह की समस्याओं से गुजरना पड़ता है। साथ ही उनका परिवार भी कई तरह की समस्याओं से जूझता रहता है। इनकी इसी पीड़ा को यहाँ के लोक नाटकों में दिखाया गया है। "बिदेसिया", "गबरघिचोर" और "जट–जटिन" को देखने के बाद हम कह सकते हैं कि बिहार के लोक नाटकों में पलायन और उससे उत्पन्न समस्याओं का भली–भाँति चित्रण किया गया है।

संदर्भ सूची :

1. गार्गी, बलवन्त, फोक थिएटर ऑफ इंडिया, रूपा एण्ड को०, कलकत्ता, 1991, पृ.सं. 3
2. वही, पृ. सं. 3
3. बैसंतरी, ज. प., प्रॉब्लेम्स ऑफ लेबर माइग्रेशन इन बिहार, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन मल्टीडिसिपलेनरी स्टडीज, 2019, पृ. सं. 70–74
4. विद्यार्थी, अविनाश चन्द, सिंह, नगेन्द्र प्रसाद, आर्य, रामदास, 'पीड़ित', प्रो0 तैयब हुसैन, ठाकुर, जलेश्वर, भिखारी ठाकुर ग्रंथावली पहिल खण्ड, लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर (सारन), 1979, पृ. सं. 9–66
5. वही, पृ. सं. 16
6. वही, पृ. सं. 21
7. विद्यार्थी, अविनाश चन्द, सिंह, नगेन्द्र प्रसाद, आर्य, रामदास, 'पीड़ित', प्रो0 तैयब हुसैन, ठाकुर, जलेश्वर, भिखारी ठाकुर ग्रंथावली दोसर खण्ड, लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर (सारन), 1986, पृ. सं. 76–100
8. विद्यार्थी, अविनाश चन्द, सिंह, नगेन्द्र प्रसाद, आर्य, रामदास, 'पीड़ित', प्रो0 तैयब हुसैन, ठाकुर, जलेश्वर, भिखारी ठाकुर ग्रंथावली पहिल खण्ड, लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर (सारन), 1979, पृ. सं. 11
9. विद्यार्थी, अविनाश चन्द, सिंह, नगेन्द्र प्रसाद, आर्य, रामदास, 'पीड़ित', प्रो0 तैयब हुसैन, ठाकुर, जलेवर, भिखारी ठाकुर ग्रंथावली दोसर खण्ड, लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर (सारन), 1986, पृ. सं. 82
10. पतंग, अनिल, बिहार का लोक नाटक जट–जटिन / सामा चकेवा, प्रकाशन विभाग, नाट्य विद्यालय, बाघा (बेगूसराय), 2000–2001, पृ. सं. 10–20

Analysing The Impact Of Hybridization In Kathak

Anukriti Vishwakarma*

Abstract

This paper explores the dual aspects of Kathak's development, combining traditional training methods with innovative, improvisational, and fusion elements. It aims to present a comprehensive view of the diverse approaches used to nurture and globalize Kathak while safeguarding its rich traditions and relevance in the contemporary world. The study examines the challenges posed by the structured nature of classical art forms, questioning the possibility of fully expressing oneself within their confines. It discusses appropriate pedagogical approaches for teaching classical art forms and explores the implications of connecting them with street dancing. Thematic analysis involving artists' reviews and articles on hybridization and fusion in Kathak provides insights to guide future generations and preserve this cultural heritage.

Key words : *Classical dance, Hybridization, pros and cons of modern, factors, traditional kathak.*

6. Methodology

6.1 Research Design (Aim)

The primary objective of this research is to assess the effects of incorporating hybridization or fusion into classical dance forms, which typically have structured systems to follow. It aims to determine the extent of innovation and improvisation that can be introduced while preserving the essence of classical dance. The study also explores the possibility of proposing a foundational structure to maintain authenticity while allowing for some flexibility in artistic expression.

6.2 Data Collection Method

Data was collected by interviewing the artists and reviewing their interviews in existing literature, who have pioneered creative works.

Introduction

The refashioning and introduction of Indian classical dance as synonymous with 'high culture' aimed to establish these specific dance forms as 'classical' equivalents to Western ballet. However, the term 'neoclassical,' denoting their modern recreation from earlier traditions, was deliberately avoided in popular Indian dance histories. By imposing the idea of 'classical Indian dance' on revived forms and ancient Sanskrit treatises, revivalists created a link between the two traditions. This link helped claim the antiquity of the reconstructed forms, symbolizing India's rich past and contributing to the construction of a unified national identity rooted in diversity. [Skiba, 2017]

The theorists of subaltern studies, namely Nandy (1983), Chatterjee (1993), and Bhabha (2010), have highlighted that the concept of cultural hybridity is not solely a recent result of globalization. Instead, it can be largely attributed to the effects of colonialism and the imposition of Western paradigms of nationalism in the construction of postcolonial, national, and "high cultures." Examining this phenomenon within the context of India, we can trace its origins to the early 20th century when cultural nationalists initiated a "revival" of

*PhD Scholar, World University of Design, Sonipat, Hariyana

classical performing arts. These efforts aimed to reclaim and promote a sense of "Indianness." Throughout this process, various South Asian dance forms were reimagined and transformed to embody this cultural identity. However, in doing so, the architects of classical Indian dance sought to align it with the European standards of classicism in art. As a result, the outcome of this dance revival is a fusion of transcultural traditions, rooted in Indian elements but shaped by classical ballet and integrated into Westernized discourses. (Skiba, 2017)

Kathak : Brief overview

Kathak, a classical dance form originating from the northern regions of India, has evolved and flourished over centuries. The growth and development of this captivating art form owe much to the dedication, expertise, and artistic contributions of the Kathak practitioners, commonly known as gurus. These revered masters not only imparted the traditional knowledge and techniques of Kathak but also played a pivotal role in encouraging their disciples to explore, innovate, and push the boundaries of this ancient dance form.

1.1 Kathak : Oral tradition .

Kathak's rich history is intertwined with devoted gurus who preserve and promote this art form. Beyond technical training, gurus nurture their disciples, inspiring creativity and self-expression. They encourage innovation, allowing Kathak to evolve while respecting tradition. Gurus' mentorship has shaped Kathak into a dynamic dance form, blending tradition with contemporary relevance.

1.2 Historical context.

Before the tentative or eleventh century, there existed a shared artistic tradition in North India. However, as societal circumstances evolved, a natural shift in focus occurred. Notably, there is evidence of dance depictions in Jaina paintings and manuscripts, particularly in the Kalpa Sutra and Samghrani Sutra. Within the renowned Deva Kalpa Sutra, dating back to approximately 1475 to 1500, and the Jamnagar Kalpa Sutra from 1501 AD, numerous marginal figures vividly portray various forms of dance. While some of these figures exhibit similarities to the Odissi style, others indicate the emergence of a style that we now recognize as Kathak. (Vatsyayan ,2018)

2. Characteristics and Techniques

Hailing from Northern India, Kathak is an ancient dance form deeply intertwined with the art of storytelling and characterized by its mesmerizing rhythmic footwork. Drawing inspiration from both Hindu and Muslim traditions Kathak seamlessly blends intricate footwork, spins, delicate expressions, and elegant body movements. Throughout its evolution, Kathak has embraced innovation, integrating elements from contemporary dance styles and delving into a wide range of themes beyond its traditional repertoire. (Villareesh, Anahad lok)

Over time, Kathak has undergone a process of rehabilitation, and it can be attributed to the amalgamation of Persian and Indian influences in the courtly setting that gave rise to the nascent form of dance now recognized as Kathak. Despite the performances of Kathak before kings and princes in the courts of Avadh, the classical distinctions between lasya (graceful, feminine) and tandava (vigorous, masculine) as well as between nritta (pure dance) and abhinaya (expressive storytelling) were diligently maintained by Kathak exponents. It is important to acknowledge that the Vaishnavaite traditions of North India not

only influenced but also provided a definitive direction to this dance style.

While the courtly milieu or the environment that prioritized technical virtuosity played a role in conditioning the pure abstract design created through rhythm, Kathak dancers never lost sight of the sahitya (lyrics) aspect. They constantly remembered that the abstract design was ultimately an invocation to God, which could be practiced in solitude or collectively within a temple setting. [Vatsyayan, 2018]

3. Understanding Hybridization in Kathak Dance

3.1 Definition and Concept of Hybridization

Hybridity in Kathak represents blending distinct identities, embracing influences from Persian, Mughal, and Vaishnav traditions. This fusion of techniques, music, and themes expands Kathak's horizons, making it versatile and contemporary. While it showcases adaptability and cultural exchange, questions arise about the parameters for hybridization. Is it acceptable to fuse Kathak with other dance forms and modern elements, considering the risk of diluting its authentic Indian classical identity for future generations?

3.2 Factors Influencing Hybridization in Kathak Dance

The hybridization of art forms is influenced by prevailing tastes and Westernized culture. Today's youth culture, prioritizing aesthetics over preserving Indian cultural heritage, inclines towards refashioning traditional art forms for contemporary adaptations, potentially distancing themselves from their roots. (Vatsyayan, 2018)

3.3 Examples of Hybridization in Kathak Dance.

Contemporary Kathak

Madhu Natraj, a Kathak and Contemporary dancer, daughter of legendary kathak dancer Smt. Maya Rao and Shri MS Natrajan. In conversation with Bindu Narula she replied on coming back to India after contemporary dance training in Newyork. *I really enjoyed the buzz of being in Newyork, but one day I realized that my dance, although universal in nature must have the essence of India. Learning does not prescribe imitation. So why did I need to dance like a western contemporary dancer? Each of us is unique, our relationship with dance is unique. My uniqueness should then be in translating "my" ideology, "my" images as a contemporary Indian into "my" own vocabulary.* [Khokar, 2007/8]

Kathak with Flamenco/ flamenco Kathak.

My Kathak is different in a way (...). I dance with a lot more energy (...). This approach comes from the West, from contemporary dance (...). When we were training in Kalari, it was very difficult for women. As Kathak dancers we are never in so low position (...), so when I started it was a nightmare and so much pain (...). But that training of Kalari has given me a lot of new ideas of how I can use my body, keep the subtleties of Kathak and make it re-ally calm (...). When I went many times to Spain, I stayed close to Flamenco dancers and have many Spanish students. Then I have also taken some influences from Flamenco. 1 The multiplication of similar projects, combining Kathak with Flamenco, has led to the emergence of the term 'kathamenco' [Skiba K, 2017]

Kathak with street dance forms [waacking, locking popping, hip-hop, breaking etc.]

In recent times, there has been a growing trend of blending street dance forms from the West with Indian classical dances, largely influenced by platforms like YouTube and dance reality shows. However, this trend often prioritizes promoting dances without paying much attention to their authenticity. As a result, the youth are encouraged to prioritize creativity and uniqueness without considering the structured nature of classical dance forms.

Street dances typically lack a rigid structure, while classical dances are highly structured, adhering to specific rules and techniques. For example, classical dancers avoid lip syncing as it hinders their ability to fully express themselves. They also do not emphasize the use of shoulders, focusing mainly on the upper torso to maintain a graceful body alignment at the center.

The fusion of these two distinct dance styles can lead to a loss of the true essence of classical dance and may not fully represent its rich cultural heritage. It is essential to strike a balance between creative innovation and preserving the authenticity and traditions of classical dance forms to ensure their continued significance and integrity. (Wikipedia)

Kathak and jazz.

A program dedicated to Kasturba Gandhi, exploring her life and virtues through Kathak performed by Shama Bhate ji and accompanied by Jazz music by the Austrian orchestra, Unlimited Fields. *Shama Bhate, founder of Nad- Roop said that the dance form of Kathak has evolved with the times. "Classical dance showcases how people feel. For the last two years, we were planning to do this. Towards this end, I read a lot on Kasturba Gandhi. It took a lot of time to understand her and then I collected a lot of important moments from her life and clubbed them into this format."*

She adds that the choreography for the piece has a lot of spontaneity and the sound of Jazz integrated with classical Kathak makes for an interesting combination. "After Gandhiji left for South Africa, his life became global and this transition is interpreted through the space, time and music in this piece," [Lawate, 2012]

Kathak with tap dancing

Pandit Chitresh Das and Jason Samuels Smith, masters of kathak and tap dance, collaborated in "India Jazz Suites," fusing their percussive footwork and improvisation. Das showcased kathak's classical precision, demonstrating intricate rhythms and storytelling abilities, reflecting its temple and court origins. The show exemplified the fruitful dialogue between their art forms.

Bolly kathak :

Bombay commercial cinema has played a significant role in blurring the boundaries between classical or high culture and commercial culture. While song and dance sequences have always been a notable aspect of commercial Hindi cinema, they have reached unprecedented levels in recent times. Filmee dance, a genre that has gained prominence in metropolitan cities like Bombay and Calcutta, as well as among the Indian diaspora, has taken the concept of innovation to a whole new level. This genre combines new filmic technology with traditional dance techniques to create extravagant spectacles, as exemplified by the recent blockbuster from Bollywood, Devdas. [chakroborty,2006]

4.Advantages of Hybridization in Kathak Dance

Hybridization in Kathak empowers practitioners to enrich their movement vocabulary by incorporating new choreographic ideas, stylistic elements, and movements, resulting in expanded creative potential while preserving the essence of the art form. This adaptability translates into increased opportunities in the job market, as Kathak dancers become more versatile and sought-after for collaborations with other dance forms, theater productions, and interdisciplinary performances. The art form's ability to adapt and embrace contemporary elements ensures its continued relevance and appeal to diverse audiences, fostering deeper engagement and appreciation for Kathak on a global scale.

5. Disadvantages of Hybridization in Kathak Dance:

Incorporating diverse influences in Kathak poses the risk of diluting its traditional elements, potentially compromising the authenticity and essence of the classical style. Striving for technical excellence becomes challenging when introducing non-traditional elements, as it may disrupt the well-established and intricate framework of traditional Kathak. Additionally, hybridization may draw criticisms and resistance from purists, who fear it could undermine the art form's cultural significance and heritage. Balancing innovation and tradition is crucial to sustain Kathak's unique identity while embracing evolution.

Astad Deboo

Astad has kept his art to himself, not wishing to pass it on as students can be a big diversion and a responsibility. Besides, how does one teach a form that comes from within, has no structured grammar or style? Most modern Indian dancers cannot truly have students or teach because their art starts and finishes with them. Chandralekha and Uttara can be good example.

He said *"Looking ahead, I sense my dance evolving into a more minimalist, focused, and centered form, fueled by diverse performance spaces. The conventional proscenium stage no longer excites me; boredom has set in. My work draws from various idioms, and while it undergoes changes, my Indianness remains constant and integral. I've never felt disconnected from my roots, and over time, I've successfully developed my own unique style, a distinctive signature that defines my artistic journey,".*

Shiamak Davar [Choreographer]

It saddens me sometimes to see Indian classical dance forms losing their identity. That's because no one is pushing for them, no one is encouraging the classical dancers. It's disheartening because classical dance is powerful; dance forms like Chau and Odissi are beautiful. Social media platforms and reality shows must promote such dance forms and other than what is commercial,". [ANI, 2019]

Gauri Diwakar [Kathak Danseuse]

"The statement "Dekhya-sikhya-parikhya" emphasizes the process of observing, learning, and then innovating in Kathak. My training under diverse maestros like Pt. Birju Maharaj ji, Pt. Jai Kishan Maharaj ji, and Aditi Mangaldas ji provided a solid foundation for personal expression.

While fusion may lead to confusion, one's unique identity should be preserved to share the art globally. Delving into other forms without proper training leads to imitation and

*dilution of one's identity. Now a days art is more audience-oriented, fame and breads n butter,". (*Gauri Diwakar, personal communication, July 18, 2023)

Mala Murli [Bharatnatyam dancer and teacher]

"I believe despite all these influences there is a niche section of students who love, admire and follow our classical art forms- be it music or dance. The awareness and the right of choice have also helped in encouraging to choose Indian dance form. The fact that learning a classical art requires a dedication of one's time and effort has been one of the challenges for choosing western over Indian dance form,".[ANI,2019]

Padma Shri Geeta Chandran [Bharatnatyam Danseuse]

Pointing out that this is not an isolated issue that only affects the dance community, this International Dance Day the classical dancers believe that to preserve this part of India's cultural heritage, the government needs to make efforts.

"I think classical art needs more patronage. Because there is enough and more talent, there are very hard-working young dancers who are learning very diligently. It's just that, they need to be watched more, they need more opportunities, so patronage must be up,".[ANI, 2019]

Ramli ibraham

"I also believe that Indian dance yoga ayurvedIndian philosophy and religion et cetera have transcended their National boundaries and have become the property of the human race this is something India should be proud of. Like everything else to be good in dance one has to learn it inside out one has to know its origin and all the rules before attempt to meddle with it. Eventually artist find their own level of competence expertise and just reward,". [Khokar, 2007/8]

7. Discussion

Thematic analysis of existing literature and interview reviews highlights the analogy that dance is a language, requiring a comprehensive understanding of its vocabulary to communicate effectively. Mixing unlearned elements can lead to disastrous outcomes. Classical dance forms, including Kathak, are well-structured languages, and they need not be completely changed with time. However, they can be reviewed and adapted sensibly while considering the impact of various factors like patronage, fusion, financials, fame, and unique identity. Dance language should evolve over time to stay relevant and responsive to the changing cultural context.

8. Implications and Recommendations

8.1 Balancing Tradition and Innovation

Finding a balance between tradition and innovation is crucial when exploring hybridization in Kathak. It is essential to respect and uphold the foundational principles, techniques, and cultural significance of the classical dance form while allowing space for creative experimentation. Emphasizing the importance of thorough training in traditional Kathak techniques can serve as a solid foundation for dancers to explore and incorporate innovative elements.

8.2 Ensuring Cultural Authenticity in Hybrid Kathak

To maintain cultural authenticity in hybrid Kathak, practitioners should conduct thorough research and understanding of the cultural context and historical roots of the art

form. Engaging with Kathak's traditional repertoire, musical compositions, and narrative themes can help preserve the essence and authenticity of the dance. Collaborations with cultural experts and scholars can provide valuable insights to ensure that the fusion elements align harmoniously with the cultural heritage of Kathak.

8.3 Strategies for Effective Hybridization

Implementing effective strategies for hybridization in Kathak can help maximize its artistic potential while preserving its identity. It is crucial to approach hybridization with thoughtfulness, intentionality, and an understanding of the impact on the art form. Encouraging collaborations between traditional Kathak gurus and contemporary choreographers can facilitate a meaningful exchange of ideas and techniques. Integrating elements from other dance forms or genres should be done with care, ensuring they harmonize with the aesthetics and philosophy of Kathak.

Furthermore, fostering a culture of open dialogue and critical engagement within the Kathak community can encourage healthy discussions around hybridization and its implications. This dialogue can help develop guidelines, standards, and ethical considerations for maintaining the integrity and cultural authenticity of hybrid Kathak.

Overall, a thoughtful and mindful approach to hybridization in Kathak, grounded in deep respect for tradition and cultural authenticity, can lead to innovative expressions while preserving the essence of this classical dance form.

Conclusion

9. Summary of Findings

The evolving cross-cultural relationships in transmitting knowledge present an opportunity to establish structured and authentic methods for preserving classical dance forms like Kathak. While traditionally an oral tradition, the changing times call for a foundational structure to safeguard its integrity. Unlike Bharatanatyam, which benefited from early documentation due to educated dancers, Kathak faced challenges as it evolved dynamically over time. Lack of formal education among dancers hindered systematic documentation, making it imperative now to adopt a more structured approach. By bridging the gap between the oral tradition and modern documentation practices, Kathak can establish a firm foundation for the next generation of artists.

The lack of educated dancers during Kathak's formative years contributed to the scarcity of documentation. However, recognizing the importance of preserving its essence for future generations, there is a pressing need to introduce a more structured approach without compromising the fluidity that defines this art form. Embracing the idea of structured components while allowing room for time-changing innovations during improvisation can strike a balance between tradition and contemporary expression.

In conclusion, the future direction lies in preserving and promoting classical dances like Kathak through structured and authentic means. By embracing codification and maintaining the foundational structure, this ancient art form can evolve gracefully with the times while safeguarding its core. This approach ensures that Kathak remains a vibrant and enduring art, ready to inspire future generations and foster cross-cultural exchanges in the realm of performing arts.

References :

ANI. (n.d.). https://www.aninews.in/news/lifestyle/culture/international-dance-day-abandoning-the-classical-dance-forms-to-jazz-thing-up20190429100118/ [Review of https://www.aninews.in/news/lifestyle/culture/international-dance-day-abandoning-the-classical-dance-forms-to-jazz-thing-up20190429100118/]. Https://Www.aninews.in/News/Lifestyle/Culture/International-Dance-Day-Abandoning-The-Classical-Dance-Forms-To-Jazz-Thing-Up20190429100118/.

Chakravorty, Pallabi. "Dancing into Modernity: Multiple Narratives of India's Kathak Dance." Dance Research Journal, vol. 38, no. 1-2, 2006, pp. 115–136

Developer, W. (n.d.). A rare fusion of Kathak and Jazz. Mid-Day. Retrieved July 27, 2023, from https://www.mid-day.com/amp/lifestyle/health-and-fitness/article/a-rare-fusion-of-kathak-and-jazz-190061

Diwakar, Gauri. (2023, July 18). impact of hybridization in kathak (Anukriti Vishwakarma, Interviewer) [Review of impact of hybridization in kathak].

https://www.facebook.com/theartsfuse. (2023, July 26). Dance Review — India Jazz Suites, Where Kathak and Tap Meet - The Arts Fuse. Https://Artsfuse.org/. https://artsfuse.org/57381/fuse-dance-review-india-jazz-suites-where-kathak-and-tap-meet/

Kapila Vatsyayan. (1974). INDIAN CLASSICAL DANCE. Publications Division Ministry of Information & Broadcasting.

Khokar, A. M. (2007). Aditi Mangaldas in conversation with Ambika Paniker [Review of Aditi Mangaldas in conversation with Ambika Paniker]. Attendance, the Dance Annual of India, 80.

Khokar, A. M. (2007). Astad Deboo: Eclectic essence [Review of Astad Deboo: Eclectic essence]. Attendance, the Dance Annual of India, 71.

Khokar, A. M. (2007). Ramli Ibrahim: Class meets Culture [Review of Ramli Ibrahim: Class meets Culture]. Attendance, the Dance Annual of India, 38.

Khokar, A.M. (2007). Madhu Natraj in conversation with Bindu Narula [Review of Madhu Natraj in conversation with Bindu Narula]. Attendance, the Dance Annual of India, 93.

Skiba, K. (2017). Kathak as a Zstr+ya N[tya: Pucpik: Tracing Ancient India through Texts and Traditions, 132.

https://www.academia.edu/69254233/Kathak_as_a_%C5%9A%C4%81str%C4%ABya_N%E1%B9%9Btya_The_Rediscovery_ of_ the_N%C4 %81%E1%B9%ADya%C5% 9B% C4% 81stra_and_the_Invention_of_ Classicism_in_Indian_Dance?email_work_ card=thumbnail

Skiba, K. (2017). Redefining hybridity in contemporary Kathak dance. Uj-pl. https://www.academia.edu/35446935/Redefining_Hybridity_in_Contemporary_ Kathak_Dance

Where Jazz Meets Kathak. (n.d.). Lokvani. Retrieved July 27, 2023, from https://www.lokvani.com/lokvani/article.php?article_id=4557

A.K. Ramanujan's Poetic Perceptional Paradigms with Special Reference to Indianness

Dr. Yogesh Chander Sood** **Sukhwinder Singh***

Abstract

A myriad- minded artistic virtuoso, A.K Ramanujanstands at a prominent place in the cosmos of Indian English poetry. A.K. Ramanujan (1929- 1962) was a creative genius of the twentieth century Indian English poetry. His poetry radiantly displays vibrant and refined perception. Actually, his over-all perception is multifaceted in which the notions of Indian myth, history, culture, heritage, folklore, environment, and locale milieu are commonly found in reoccurring positions. Being a linguist, he masterly deploys idioms, phrases and folklores in his creative works. His poetry is an image craft which signify all the objects and figurative language as the vehicles of metaphors and similes. The purpose of this article is to explore Ramanujan'smulti- dimensional perceptions with special reference to Indianness, Indian family, Indian religions, Hindu consciousness and psyche. In this way, this research paper evaluates the above mentioned multidimensional perceptions deployed by Ramanujan and testifies his exclusive role in modern Indian English writing in general and in modern Indian English poetry in particular.

Keywords: *Culture, Hindu consciousness, Indianness, Perception*

Research Methodology : *The research paper chiefly focuses at the multi-dimensional perceptions expressed by A.K. Ramanujan in his few poems from the angle of Indianness. So, in order to attain this purpose, the analysis of his selected poems has been done under the biographical as well as the historical approach.*

Introduction

A.K. Ramanujan, being a typical Brahmin, talks about Indianness, Indian philosophy, Indian culture, Indian heritage or Indian ethos in general and about Hindu consciousness, Hindu heritage or a Hindu way of living in his poems in particular. His distinctive way of creative perception via his poetic artistry demonstrates the degree of his exceptionality among his contemporaries. But, his psyche is unrestricted very much like the above mentioned statement. It soundly exhibits the spirit of Indianness. But his attitude as a Hindu or Brahmin is somehow unconventional. And when we read his poetry, we find very clear that he does not give much importance to the outmoded or out- fashioned things i.e. superstitions, irrational rituals and customs predominantly prevalent in Hindu religion.

"A poem is really never finished, it is only abandoned" (Ramanujan, 45).And this is very factual in A.K. Ramanujan's case. Indubitably, his long stay in U.S.A. puts him under the group of a diasporas and due to all this, it was natural in his mind set to develop the Western perception in his literary productivity. For this reason, the diasporic notions also touch his creative perception and commonly found place in his poems. **A celebrated American writer, historian and philosopher rightly says, "India will teach us the tolerance and gentleness of mature mind,**

*(Research Scholar), Dept of English, Sant Baba Bhag Singh University, Jalandhar (Punjab)
*Research Guide, Dept of English, Sant Baba Bhag Singh University, Jalandhar (Punjab)

understanding spirit and a unifying, pacifying love for all human beings" (**Durant**).

Finding And Discussion

The above assertion seems to be justifying the firm position as well as perception of India and Indianness in the whole universe. Indianness, Indian philosophy, Indian culture, Indian heritage and Indian ethos generally reflect the collective perception of the Vedas, Puranas and Upanishads in Indian mind. Religion has had a significant component of Indian living. Though, Islam, Buddhism, Sikhism, Jainism, or Christianity have evolved its roots in the past India or few of them are still in active practice, the part of Hinduism as a major religion has had always influenced the Indian way of living in general and the way of Hindu psyche in particular. Therefore, in order to comprehend Indianness, it is important to understand the need of religion from Indian context.

> The prominence of the Hindu holy texts and epics i.e. the Bhagvad Gita, the Ramayana, the Mahabharata along with the Vedas, the Puranas and the Upanishadas are observed as the foundation that later on helped in the developments of Indianness, Indian philosophy or thought.The Upanishads provide privilege to the Brahmins. The caste or *Varna* system still prevalent in India (mainly due to and in Hindu religion) focuses upon the superiority of the Brahmins to the other classes or sections of Varna system. But, to its contrary, A.K. Ramanujan being a Brahmin does not indulge in such class division. He openly asserts, "Against Hinduism, I had the notion that only a kind of modern rationalism was the answer to all the problems that we had: the caste system, the problems of s hierarchy by birth." (Ramanujan, 55)

He gives an equal treatment to all in his personal, professional and poetic life. He appears to establish that all are made by the same God and all vanish into the same kind of Nature, environment or surroundings. Their ways may be different. But, it is a universal golden rule that one who comes, finally goes also. He was ready for bigger adventures and a new life. His early rationalism and modern perspective had already prompted a break with traditions – religious, social, literary, and aesthetic. At the same time, and not without inner conflict, he retained aspects of his Brahmin roots, maintaining the moderation in his daily habits and the scholar's temperament that were results of his upbringing. (Ramanujan and Rodriguez XXI)

He rejected the narrow-minded of discriminating others on the basis of their castes, colour or creed? The modern and contemporary authors or writers must learn from Ramanujan who day-to-day express their biased views or thoughts over some controversial matter to instigate the communal disputes in the minds of their Indians readers. Such authors actually work on the advice of some government or private agencies to create 'groupism' that might prove very harmful for the integrity of our nation sooner later.

> There is a delicate tight- rope walking between the directness of expression and the aloofness of the poet's self- from being too much involved with art. An ironic, skeptic distance from the spectacle is needed to enable the spectator to capture all the nuances of the experience even if the spectator himself is at the receiving end of the experience. Too much of involvement with art distorts the perception of the artistic self. (Bhatnagar,5)

From the close reading of the poem*Snakes*, we get the idea about poor people that they may become fearless in any

circumstances in order to nourish their family or children. They may put their life into risk to earn their bread as in case of snake- charmers. As, it has been mentioned earlier that India is a country that has had been divided into different sections, classes and castes. So, it has been a common thing for the poor to find it very difficult to survive in the society in which the rich dominates. The poor dance to the tunes of the rich in order to quench their hunger. See:

> The snakeman wreathes their writhing
> round his neck
> for father's smiling
> money. (*CP* 5)

The poet points out towards the hard core fact even the single penny cannot be earned without putting the life into danger as in case of snake charmer who is shown to performing above said feat so that he can earn his livelihood.

Indianness also includes zoophilic notions. Indian has built such a tradition that a devout Hindu does not kill or eat animals. A.K. Ramanujan's one of the Hindu poems bear the similar type of title i.e. *THE HINDOO: he doesn't hurt a fly or spider either*. The killing of cow is strictly prohibited in Hindu religion. The Hindus worship cows as their mothers. Similar types of notions are kept by the Muslims towards pig. Michael Molloy relates,

> Cows often wander along Indian streets, and cars and taxis take care to drive around them. Furthermore, visitors to some Hindu temples may find monkeys and even mice well fed and running free. Several extremely popular gods, such as Ganesha and Hanuman, have animal features; the gods like Shiva and Vishnu are regularly portrayed in the company of the animal companions. (Molloy, 85)

Though Ramanujan lived in different country, it is Hindu consciousness that ties him with his Indian tradition. Explicitly, the title poem of the "Second Sight" affirms this: "You are Hindoo, aren't you? /You must have second sight?" (*CP*191). Hindu consciousness chiefly colours his vision of life as well as his attitudes to life.His Hindu consciousness shapes his vision of life. His poetry is exposition of his Hindu heritage. He lived in the U.S.A. in the city of Chicago where he had offered his services as a professor at the university there apart from the first thirty years of his life. But he could not forget his parental home, religion and the way of living. He has cleverly depicted the conflict of the past and the present occupies his mind and he finely which he reflects it in his works. A creative tension between the modernity of western cultures and the orthodoxy of ancient Hindu culture fill up the majority of the subject matters of his poetry.

In this way, his four Hindoo poems-*The HINDOO: he doesn't hurt a fly or a spider either*, *The HINDOO: he reads his GITA and is calm at all events*, *The HINDOO: The only Risk* and *A Hindu to His Body* Fundamentally embody the spirit of Indianness. What make his poetic dexterity idiosyncratic are his perceptions of scepticism and agnosticism in these poems. He seems to provide an authenticity of relevancy and scientific propensity to Indianness.

In his one of the most remarkable poems, *The HINDOO: he doesn't hurt a fly or a spider either*, the poet reflects the Hindu principles of nonviolence and cowardice. Besides the content, we can see the linguistic expertise of the poet at its peak here. The poet imagines and expresses his emotions through intensified words. See:

> And who can say I do not bear
> As I do his name, the spirit
> or Great Grandfather, that still man
> untimely witness, timeless eye,
> perpetual outsider,

watching as only husbands will
a suspense of nets vibrate
under wife and enemy
with every move of hand thigh...(*CP* 63)

In this poem, we find that the poet is a religion-bound Hindu who prefers to be non-violent and passive in his life as he keeps faith in the dogma of immortal soul. According to the Hinduism, the soul never dies. Each and every time, it is reborn and assumes a new form. Thus, he perceives that there might be is a possibility of all insects to be his ancestors in their previous births. He sees a fly or spider. And he never intends to hurt them as they might be his grandmother or grandfather in their previous births. The poet actually deploys his ironic perception while elucidating it by saying:

It's time I told you why
I'm so gentle, do not hurt a fly.
why, I cannot hurt a spider
either, not even a black, widow,
for who can tell who's who ?
can you ?... (*CP* 62)

The poem, *The Hindoo: he reads his GITA and is calm at all events* is fabulously written with the objective of creating ironic perception. But, the notions of Hinduism cannot be unnoticed. The teaching as well as preaching of the Gita put emphasis on self-control, calmness and kind- heartedness towards the others. In the poem, we find that the persona reads the Gita but is unable to keep the spirit of wisdom and equanimity: "I do not marvel/ when I see good and evil: I just walk" (*CP* 79). The poet comes up with the two opposing verges of Hinduism - one the non-involvement: "yet I come unstuck/ and stand apart" (*CP* 79). On the other side, a superior sense of detachment can be seen:" I do not marvel/ when I see good and evil" (*CP* 79).

It is to be noticeable here that the poet neither ridicules Hinduism nor he tries to defame the sacred scripture. He is basically against those Hindus who are unable to comprehend the spinelessness that becomes visible behind their non-violence, or non- aggression. He satirizes the apparent or rather superficial calmness of the Hindus that hides their past abrasions and degradations of downfall. The poet further pints out that such Hindus should learn that this type of pretense of high seriousness will lead them nowhere as it contains several jeopardies i.e. a sense of guilt.

In the poem *THE HINDOO: the only risk,* the risk the poet is talking about is the risk of heartlessness. He pleasingly talks about that the near impossibility of keeping the heart's simple given beat in face of a neighbour's striptease or a friend's suicide or of keeping one self away from the kitchen knife which is needed to maim oneself or carve up wife and child. See:

Just to keep the heart's simple given beat
through a neighbour's striptease of a friend's suicide.
To keep one's hand away from the kitchen knife
Through that returning weekly need
to maim oneself or carve up wife
and child. (*CP* 90)

The poet once again employs sharpened sarcasm at the Hindus who are biased and cowardly. In the poem, we find that the poet, being well-versed in the Gita, is afraid of handling a kitchen knife, as he may be tempted to injure himself or his wife or the child. But ironically, he never takes any risk in getting three square meals a day as he asserts: "Always and everywhere, to eat/ Three square meals at regular hours" (*CP* 90). He chooses to be get involved in everything of common interest, even in the dead street dog, but he is frightened to be caught dead at sea, combat, riot, abhorrence or

infidelity. In this way, the poem takes area dig at the pacifism and passivity of the persona (Hindu).

In *A Hindu to His Body,* the poet emphasizes on the importance of both body and soul for the humans. The poet does not have faith in in the cultivation of the body at the cost of the soul as his own self is a product of tradition- abiding Hindu psyche. The poet addresses the body as "pursuing presence" with the connotation that that it contains the capability to be reborn again and again. Every time man rejects the old and decaying body, he assumes a new one, hence it is pursuing. See: "Dear pursuing presence,/dear body: you brought me/ curdled in womb and memory" (*CP* 40).

But ironically, the Hindus do not make themselves enslaved in the love of body to be pursued and cherished. Instead, they definitely show their trust in the fourfold Hindu principle one's *karma* that is 'Dharma', 'Artha', 'Kama' and 'Moksha'. Among these, Moksha is believed to be the culmination and a desirable ideal of human life. According to Hindu religion Moksha is basically liberation of the soul from the cycle of bodily births and the ultimate unification with the Brahma, the highest and absolute Truth.In the same poem, we further find that after his death, the poet wishes to rise in the sap of trees and feel the weight of honey hives in his branching and the burlap weave of weaver-bird in his hair. This poem demonstrates that the body is as important to a Hindu as the soul:

> When you leave all else,
> my garrulous face, my unkissed
> alien mind, when you muffle
> and put away my pulse
> to rise in the sap of trees
> let me go with you and feel the weight
> of honey-hives in my branching
> and the burlap weave of weaver-birds
> in my hair. (*CP* 40)

Ramanujan is particularly striking while portraying the typically Hindu convention or consciousness as in the poem *Convention of Despair.* Indian sensibility is seen to be in conflict with the modem, western sensibility. The poet accepts here the pattern of sorrow as something inherited from his ancestors as something natural: "But, sorry, I cannot unlearn/ conventions of despair/ They have their pride" (*CP* 34).Similarly, they:

> … must translate and turn
> till I blister and roast
> for certain lives to come, 'eye-deep',
> in those Boiling Crates of Oil, weep",
> iron tears for winning what I should
> have lost… (*CP* 34)

So, as a traditional Hindu, the poet believes in the fact that as inner will have to undergo severe tortures in the hell before he is given a new life on the earth. The picture is as horrifying for us, as for the poet who, in a shudder, wants not to commit sins and become a sinner to undergo such punishments in the hell:

> No, no, give me back my archaic
> despair:
> It's not obsolete yet to live
> in this many-lived lair
> of fears, this flesh. (*CP* 34)

The poet thus gets ready to lead his life strictly by the codes imposed by his past (The Hindu) tradition. But his acceptance is not to be taken at its face value. The hardcore truth about the Hindus is that they are prone to sorrow and suffering, to the ways of prayers and penance, to the practice of tapasya and meditation. Hence, the commitment follows in the most commented upon lines: "I must seek and will find/ my particular hell only in my Hindu mind(*CP* 34).

As the Hindus believe that the punishment in a sinner's present birth is decided according to the proportion to his sins collecting since past lives. His ironic acceptance of Hindu tradition and his revisionist approach to the inherited faith have been highlighted by the use of the lower capital "h" in Hindu. The use of the modal must and will untie the fact that the poet is incapable of avoiding his destined predicament. Therefore, without making himself captive to the rigours of an ascetic life, the poet desires to experience a sense of being a normal man. He is not willing to exchange the present for some dreamy future as he comments;

> And I must draw, ductile,
> the sudden silver of a glimpse
> through the hole of a stare
> and see a grandchild bare
> her teen- age flesh to the pimps
> of ideal Tomorrow's crowfoot eyes
> and the theory of a peacock- feathered
> future. (*CP* 35)

He puts: "No, no give me back my archaic despair:/It's not obsolete yet to live/ in this many-lived lair of flesh, this flesh" (*CP* 35).

The poet wishes to extract the life to its fullest. He seems to be satisfied because he claims to have discovered his native conventions which can be meaningful not in the immediate present but only in the literary past which is available in the act of translation and creation. Hence the predicament: "must translate and turn till I blister and roast" (*CP* 34), is true of his creative urge. Commenting on Ramanujan's writing style in the reference of his famous poem *Still Another View of Grace*, a critic expertly commented:

> On the basis of the stylistic analysis of Ramanujan's poem, one can say with confidence that he is a remarkable and original craftsman. His predominantly nominal style, with the use of concrete nouns wherever, possible, renders a visual quality and terseness of his poetry. (Jayaprada, 47)

And this is not limited to his specific poems. His all the poetic volumes display this idiosyncratic eminence of his writings. His poetic penchant can be observed through following words:

> He was almost too eager to express his opinion on any subject, however unfashionable his view. But he was never unreasonable, or merely argumentative. What was fascinating was the number of subjects on which he could hold forth with insight and scintillating wit: proverbs, riddles, conjuring tricks, mathematical puzzles, folktales. ('I don't read newspapers,' he would say, because I am tempted to take down notes'(Karnad, 15).

A.K.Ramanujanseems to be advocating the words of Khushwant Singh, a well-known Indian English author and columnist the birth of a new religion which must eliminate the negativities of all the contemporary religions as well as useless customs, rituals and superstitions prevailing in existing Hindu religion in particular.

> Our new religion should take into account needs of our country in the present times and the future. I am convinced that most of our ills of today- poverty, ignorance, slums, corruption and crimes including communal riots- are caused by over- population and the suicidal rate at which we are breeding. Restricting the size of the family should be made into religious obligation and incorporated in oaths of fidelity taken in marriage vows. Couples should have the freedom to choose whatever means they prefer to restrict birth of more children- natural self- control or artificial means- but both parties should undertake to have

themselves sterilized on the birth of their second child. We have no right to overload an overpopulated country. (Singh, 242) In fact, he sums up his view by saying that "good life is the only religion."(Singh, 243)

Conclusion

In conclusion, it can be said that the need of the hour is to form a community cum society that comprises the total population of the India, irrespective of any religion or faith. Obviously, the influences from outside world will be seen but finally whatever will be there that will contain essential Indianness. And literature is working on it in broader terms because it is through Indian English literature that Indianness is mirrored before the universe. A.K. Ramanujan as a poet has had been quite successful in delivering the spirit of Indianness through his writings. Indeed, his poetry reflects the journey of the Indian mind, Indian psyche, Indian conscience and Indian spirit portrayed through different images, symbols, metaphors, similes and their representational techniques and methods.

Workscited:

1. Ramanujan A.K. (1995).*Uncollected Poems and Prose*, New Delhi: Oxford University Press, 2000, 45. Print
2. Durant Will, The Case for India (1931). Retrieved from https://quotepark.com/quotes/1909076-will-durant-india-will-teach-us-the-tolerance-and-gentleness-o/ on 15.09.2022
3. Ramanujan A.K.(2000).*Uncollected Poems and Prose*, New Delhi: Oxford University Press, 55. Print
4. Ramanujan Krishna and GuillermoRodriguez. (2019). *Journeys: A Poet's Diary.* Eds. Gurgaon: Penguin Random House India, XXI
5. Bhatnagar M.K. "Search for Self and Idiom in A.K. Ramnuajn: Some Critical Aspects." *The Poetry of A.K. Ramanujan*.(2002). Ed. M.K. Bhatnagar. New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 5. Print.
6. Ramanujan A.K. (1995).Collected Poems, New Delhi: Oxford University Press, 5.Print
7. Molloy, Michael. (1999)*Experiencing the World's Religions: Tradition, Challenge, and Change*. California: Mayfield Publishing Company, 85. Print
8. Ramanujan A.K. (1995).Collected Poems, New Delhi: Oxford University Press, 191.Print
9. Ibid, 63
10. Ibid, 62
11. Ibid, 79
12. Ibid, 79
13. Ibid, 79
14. Ibid, 90
15. Ibid, 90
16. Ibid, 40
17. Ibid,40
18. Ibid, 34
19. Ibid, 34
20. Ibid, 34
21. Ibid, 34
22. Ibid, 35
23. Ibid, 35
24. Ibid, 34
25. CLL Jayaprada. (1996) "A Stylistic Approach to Ramanujan's Still Another View of Grace," *Indian Writing Today*, Ed. C.R. Visweswara Rao. Delhi: IAEA, 47. Print
26. Ramanujan Krishna and Guillermo Rodriguez .(2019) *Journeys: A Poet's Diary.* Eds. Gurgaon: Penguin Random House India.XV. Print
27. Singh Khushwant.(1993). *The Best of Khushwant Singh: Not a nice man to know.* Foreword by Vikram Seth. New Delhi: Penguin Books, 242. Print
28. Ibid, 243.

A Scoping Review of Yoga & Naad Yoga Therapy in Women
(with Polycystic Ovary Syndrome)

Shringarika Mishra*
Manan Agrawal**
Dr. Mamta Tiwari***

Abstract

Polycystic ovarian syndrome (PCOS) is one of the women's most prevalent metabolic and endocrine illnesses, ranging from 2.2 percent to 26 percent. PCOS is associated with unhealthy lifestyle and physical inactivity affects disproportionately. Yoga is mind-body stress-relieving therapy, and by the different interventions researchers are increasing their focus on the benefits of yoga for PCOS. After discussing the etiological factors of PCOS, this present review summarizes the current scientific understanding of the effects of yoga on PCOS and the etiological factors associated with such as obesity, stress, insulin sensitivity etc. Based on these preliminary results, yoga therapy may be suggested as a safer and affordable therapy for PCOS.

Keywords : *Yoga, Naad Yoga, Theray, Women*

Methodology : *This research paper is based upon primary and secondary sources.*

Introduction:

Polycystic Ovary Syndrome (PCOS) is a complex endocrine disorder affecting reproductive-aged women, characterized by various clinical features such as irregular menstrual cycles, hyperandrogenism and polycystic ovaries. Polycystic ovarian syndrome (PCOS) is one of the women's most prevalent metabolic and endocrine illnesses, ranging from 2.2 percent to 26 percent[1,2]. PCOS is diagnosed using various criteria, including the Rotterdam criteria, Androgen Excess Society criteria, and National Institutes of Health (NIH) criteria. The Rotterdam criteria are commonly used and require the presence of two out of three features: oligo- or anovulation, clinical and/or biochemical signs of hyperandrogenism, and polycystic ovaries on ultrasound[3]. Weight and stress management through a healthy lifestyle are first-line therapy in international evidence-based guidelines for PCOS[4].

Yoga, a mind-body intervention, has been reported to improve hormonal and metabolic imbalances associated with PCOS. The exact mechanism of yoga therapy involves several physiological and psychological pathways that may improve insulin sensitivity, reduce inflammation, and decrease oxidative stress. It may also affect the hypothalamic-pituitary-adrenal axis and the autonomic nervous system, which play important roles in regulating hormonal and metabolic functions[5]. Additionally, yoga may improve psychological well-being and reduce stress, which could indirectly improve PCOS symptoms.

Etiological Factors associated with PCOS

Polycystic Ovary Syndrome (PCOS) is

*Ph. D. Scholar, Department of Swasthvritta and Yoga, FoA, IMS, BHU
**Assistant Professor, Kavikulguru Kalidas Sanskrit University
**Assistant Professor, Department of Swasthvritta and Yoga, Faculty of Ayurveda, IMS, BHU

a complex disorder with a multietiological nature. It involves a combination of genetic predisposition, hormonal imbalances, insulin resistance, environmental factors, and epigenetic modifications. Understanding the various factors contributing to PCOS is crucial for effective diagnosis, treatment, and prevention strategies.

Hormonal Imbalances and Insulin Resistance:

PCOS is characterized by hormonal imbalances, including elevated levels of luteinizing hormone (LH), androgen hormones (testosterone and DHEA-S), and insulin resistance. Insulin resistance plays a crucial role in the development and progression of PCOS, as it leads to increased insulin levels, compensatory hyperinsulinemia, and subsequent elevation in androgen production by the ovaries. This hormonal dysregulation contributes to the clinical manifestations of PCOS.

Genetic Factors:

There is growing evidence supporting the genetic component of PCOS. Familial clustering and heritability studies suggest that PCOS has a genetic basis. Genome-wide association studies (GWAS) have identified several candidate genes associated with PCOS, including those involved in insulin signalling, hormone production, and follicle development. However, the genetic mechanisms underlying PCOS remain complex and require further investigation.

Environmental Factors:

While genetics play a role in PCOS susceptibility, environmental factors also contribute to its development. Lifestyle factors such as sedentary behaviour, poor dietary choices, and obesity are associated with a higher risk of PCOS. Environmental endocrine disruptors, such as bisphenol A (BPA) and phthalates, have also been implicated in PCOS pathogenesis, potentially affecting hormonal balance and ovarian function.

Role of Yoga in Management of PCOS

Yoga plays a crucial role in managing Polycystic Ovary Syndrome (PCOS) by addressing multiple aspects of the condition. It helps reduce stress levels, which can contribute to hormonal imbalances and exacerbate PCOS symptoms. Through specific yoga asanas, pranayama, and relaxation techniques, yoga promotes hormonal balance and improves insulin sensitivity, aiding in weight management and blood sugar regulation. Regular yoga practice can also enhance fertility by supporting reproductive health and increasing the chances of conception. Overall, yoga serves as a valuable complementary therapy for PCOS, offering a holistic approach to symptom management and improving the well-being of individuals affected by the condition.[6]

Stress Reduction:

Chronic stress can exacerbate hormonal imbalances in PCOS. Yoga incorporates various relaxation techniques such as deep breathing, meditation, and mindfulness, which activate the parasympathetic nervous system, inducing a state of relaxation. Regular practice of yoga can help reduce stress levels, improve mental well-being, and contribute to hormonal balance in individuals with PCOS[7].

Hormonal Regulation:

Yoga practice has been found to positively influence the endocrine system, which plays a crucial role in PCOS. Certain yoga postures, such as forward bends, twists, and inversions, stimulate and massage the endocrine glands, including the ovaries, adrenal glands, and thyroid gland. This stimulation can help regulate hormonal secretions, potentially improving hormonal imbalances associated with PCOS.[8]

Insulin Sensitivity:

Insulin resistance is a common metabolic feature of PCOS. Regular yoga practice has shown promising results in improving insulin sensitivity and glucose metabolism. Yoga postures that involve stretching, twisting, and compression of abdominal organs, like the seated spinal twist (Ardha Matsyendrasana) and the wind-relieving pose (Pavanamuktasana), can enhance insulin sensitivity, thus helping to manage PCOS-related metabolic abnormalities[9].

Weight Management:

Maintaining a healthy weight is crucial in the management of PCOS. Yoga offers a combination of physical activity, mindfulness, and breath control, which can contribute to weight management. Dynamic styles of yoga, such as Power Yoga or Vinyasa Flow, provide cardiovascular benefits, burn calories, and aid in weight loss. Additionally, yoga promotes self-awareness, mindful eating, and a positive body image, supporting individuals with PCOS in achieving and maintaining a healthy weight.[10]

Role of Nada Yoga in management of PCOS

Nada Yoga, a branch of yoga that focuses on sound and meditation[11], can potentially aid in sleep management for PCOS patients through several mechanisms. By incorporating soothing soundscapes and meditative practices, Nada Yoga may help reduce stress and anxiety[12], which are often associated with PCOS and sleep disturbances. Furthermore, the practice of Nada Yoga can enhance mindfulness and relaxation, promoting a calmer mental state conducive to improved sleep quality[13]. Additionally, by harmonizing the mind and body, it may regulate hormonal imbalances that can disrupt sleep patterns in PCOS patients. Nada Yoga has potentially aid in stress management for PCOS patients through several mechanisms. By engaging in mindful listening to soothing sounds, such as chants or ambient music, Nada Yoga can promote relaxation, reduce cortisol levels, and alleviate the chronic stress often associated with PCOS. Moreover, regular practice may enhance self-awareness and emotional regulation, enabling PCOS patients to better cope with the emotional toll of the condition. While promising, it's important to acknowledge that scientific research in this specific context is limited, and further clinical studies are needed to substantiate the effectiveness of Nada Yoga in stress management for PCOS patients.Nada Yoga, may have a potential role in aiding hormonal regulation in PCOS patients. While scientific evidence is limited, the calming and stress-reducing effects of Nada Yoga may indirectly contribute to hormonal balance. Chronic stress is known to exacerbate PCOS symptoms, and Nada Yoga's relaxation techniques could help mitigate this stress, potentially leading to more stable hormonal levels.

Conclusion:

Yoga can be a beneficial complementary approach in the management of PCOS.Its stress-reducing effects, hormonal regulation, improvement in insulin sensitivity, weight management support, and enhanced circulation and ovarian function contribute to addressing the underlying factors associated with PCOS. Nada Yoga shows promise as a complementary therapy for PCOS (Polycystic Ovary Syndrome) patients, its potential benefits should be viewed with cautious optimism. The practice's emphasis on sound, meditation, and stress reduction may contribute to improved stress management, sleep quality, and hormonal regulation, all of which are vital aspects of PCOS management. However, it's important to recognize that Nada Yoga is not a standalone treatment but rather an adjunctive approach that

may complement conventional medical interventions and lifestyle modifications. Further rigorous research and clinical trials are needed to establish its effectiveness and safety as a holistic therapy for PCOS. As of now, PCOS patients interested in exploring Nada Yoga should do so under the guidance of qualified instructors and in consultation with their healthcare providers to ensure a comprehensive and balanced approach to managing this complex condition.

References :

1. Dipiro, J. T., Talbert, R. L., Yee, G. C., Matzke, G. R., Wells, B. G., & Posey, L. M. (2014). Pharmacotherapy: a pathophysiologic approach, ed. *Connecticut: Appleton and Lange*, *4*, 141-142.
2. Moro C, Pasarica M, Elkind-Hirsch K, Redman LM. Aerobic exercise training improves atrial natriuretic peptide and catecholamine-mediated lipolysis in obese women with polycystic ovary syndrome. The Journal of Clinical Endocrinology & Metabolism. 2009 Jul 1;94(7):2579-86.
3. Lujan, M. E., Chizen, D. R., & Pierson, R. A. (2008). Diagnostic criteria for polycystic ovary syndrome: pitfalls and controversies. *Journal of obstetrics and gynaecology Canada : JOGC = Journal d'obstetrique et gynecologie du Canada : JOGC*, *30*(8), 671–679. https://doi.org/10.1016/S1701-2163(16)32915-2
4. Lord J, Thomas R, Fox B, Acharya U, Wilkin T. The central issue? Visceral fat mass is a good marker of insulin resistance and metabolic disturbance in women with polycystic ovary syndrome. BJOG: An International Journal of Obstetrics & Gynaecology. 2006 Oct;113(10):1203-9.
5. Sarvottam K, Yadav RK. Obesity-related inflammation & cardiovascular disease: Efficacy of a yoga-based lifestyle intervention. The Indian journal of medical research. 2014 Jun;139(6):822.
6. Ratnakumari, M. E., Manavalan, N., Sathyanath, D., Ayda, Y. R., & Reka, K. (2018). Study to evaluate the changes in polycystic ovarian morphology after naturopathic and yogic interventions. *International journal of yoga*, *11*(2), 139.
7. Vibhuti Rao, B. A. M. D., Kashinath Metri, B. A. M. S., Shubhashankari Rao, B. A. M. S., & Nagaratna, R. (2018). Improvement in biochemical and psychopathologies in women having PCOS through yoga combined with herbal detoxification. *Journal of Stem Cells*, *13*(4), 213-222
8. Mohseni, M., Eghbali, M., Bahrami, H., Dastaran, F., & Amini, L. (2021). Yoga effects on anthropometric indices and polycystic ovary syndrome symptoms in women undergoing infertility treatment: a randomized controlled clinical trial. *Evidence-based Complementary and Alternative Medicine*, *2021*.
9. Nidhi, R., Padmalatha, V., Nagarathna, R., & Ram, A. (2012). Effect of a yoga program on glucose metabolism and blood lipid levels in adolescent girls with polycystic ovary syndrome. *International Journal of Gynecology & Obstetrics*, *118*(1), 37-41.
10. Shohani, M., Badfar, G., Nasirkandy, M. P., Kaikhavani, S., Rahmati, S., Modmeli, Y., ... & Azami, M. (2018). The effect of yoga on stress, anxiety, and depression in women. *International journal of preventive medicine*, *9*.
11. Shringarika M., Mamta T,. Samriti N,. Shreyansh C.,(2022). Nada Yoga: An ancient sound therapy for health management. IJRAR September 2022, Volume 9, Issue 3. https://www.researchgate.net/publication/363535464_Nada_Yoga_An_ancient_sound_therapy_for_health_management
12. Kumar, N. (2019). Effect of Nada Yoga (Music Therapy) on Stress and Relaxation. Think India Journal, 22(14), 2650-2657.
13. Lakshmi, R. R. R. (2022). Review of the Effects on Health and Cognition of the Mind Sound Resonance Technique, a Yoga-Based Form of Meditation. Pastoral Psychology, 71(4), 545-553.

Effects of Spirituality and Art on Pregnant Women in Covid-19 : A Qualitative Study

Ms. Muskan Bharti*
Mr. Arun Kumar**

Abstract

Spirituality has power to enable people to overcome their problems and be a guiding force for their well-being. As suggested by different studies, increasing number of deaths due to Covid-19 and inadequate awareness about the disease have led people to experience mental health problems. In the time of Covid-19, it can be said that pregnant women were at high risk. This study puts emphasis overthe views of women during pregnancy and also tries to understand the role of spirituality in handling the uncertainty created by the pandemic. This study is qualitative in nature which prefers descriptive study design. Findings suggested thatwomen were under stress due to Covid-19. The fear among women was above the moderate level and their spiritual practices had increased at the very time. Spirituality enabled women to better manage their fear and provided them with hope, peace and encouragement.

Keywords : *Art, Spirituality, Covid-19, Women, Mental Health, Pregnancy*

Research Methodology (Design and Sampling)

In this paper, researchers have used qualitative descriptive design, including purposive sampling. Open ended semi structured interview hasbeen done for required information. The design questionnaire has two section, first section includesbasic information of respondents and later section have6 qualitative open-ended questions. The 6 open-ended questionsare as follows: 1) How would you describe your spiritual self? How is ituseful in your life? 2) During the pregnancy, wereyou worried about thefuture due to covid-19 crisis? Which type of stress youfaced? 3) What did you dowhen you were worrisome? 4) In dealing with those problems, was your spiritual engagementincreasedor decreased, or remained same? 5) What wasyour coping mechanism like reading scripture, watching religious program on TV, listening bhajans, chanting mantras or any-thing else? How was ithelpful to cope with this crisis? 6) What have you achieved in regard to spiritual activities, what is your finding?

Background

The outbreak of Novel Corona Virus (COVID-19) all around the world has changed the way to live a life of all segment of society (Almeida et al., 2020). The highly infectious virus spread worldwide in a short span of time and became a global public health threat (Jangari, 2020). These pandemic-related stressors effected nearly all individuals but pregnant women were at high risk of being infected (Fikari & Simbar, 2020). The speedy spread of this disease has stucked all aspects of human life and activity. Adequate economic activities have brought about enormous economic losses and event ually resulting in loss of income and livelihood. Consequently, the issue of mental health of the masses has become a public health concern (Rajkumar, 2020). In the broader context on public health discourse, maternal health including mental healthboth are

*Ph.D. Research Scholar, MGCU Motihari, Bihar
**Ph.D. Research Scholar, MGCU, Motihari, Bihar

usually neglected. In the normal times, it is estimated 10-30% of women in all over the world including India, used to suffer from depression during pregnancy and after delivery. Maternal mental health is the biggest public health problem in India (Anokye et al., 2018; Upadhyay et al., 2017). This problemhas been increased during pandemic when pregnant women has limited restricted accessof mental health services. Living in the situation with extreme stress, anxiety and mental depressioncan expand the adverse health outcome (Topalidou et al., 2020). So pregnant women were not specifically at risk for medical related issue but they were at risk for psychological issues due to mass protection strategies like physical and social distancing (Buekens et al., 2020).

As per different study published recently on pregnancy and covid-19 says the impact of this diseases on mental health of pregnant and postpartum womenhas not been properly evaluated yet.However certain consideration to avoid adverse influences have been highlighted. The world health organization and several groups of trend professionals in the field of obstetrician and gynaecologists have issued guideline adhere *to* during pregnancy and delivery. But the suggestions differ due to lack of solid evidence (Liang & Acharya, 2020).

Mental health and spirituality

Bulk of literature have identified spirituality as an important factor in mental health, that mayhelp to reduce mental illness (absence of mental disease), by serving psychological and social resources for coping with stress. Spiritual engagement provides social support, gives guideline for healthy and satisfactory life. It can represent a powerful source of comfort, purpose, hope and meaning specially in the suffering period (Koenig, 2009). Another study by Koenig (2004) explains in the life journey of religious individual, it has been seen better mental health condition, higher quality of life, greater well-being and lower rates of stress, depression and suicide. Koenig (2009) further instances argue religious believe and practise may strengthen phobic tendencies, enhance fear and guilt, rather than control it, especially a person having emotional vulnerable. Weber & Pargament (2014) findings demonstrate there is an important association between religion/spirituality and well-being. Faith in these aspects has better coping mechanism to manage stressful events. However, he/she further also say religion and spirituality have ability to damage mental health by creating negative coping mechanism, miss communication and negative believes. But there is a less published literature, support the argument that adverse effects of religious engagement on mental health (Koenig, 2009).

Spirituality and Religion

According to World Christian Database 2007, approximately 90% population of the world, engage in some kind of spiritual practice. It is a globally acknowledge concept. It includes obedience and have faith in to super natural power, generally called God, who controls the universe and destiny of human being. The universalities of spirituality cover different creed and culture and at the same time it is very much personal and unique to each individual. Spirituality gives the way in which people can understand the purpose of their existence, able to search the meaning of life and sense of connectedness to the universe (Saver & Rabin 1997;Verghese, 2008). Koenig (2009) study demonstrate, spirituality has the power of coping behaviour. Spiritual beliefs and practices have capacity to enable people to come over their difficulties that they face in their life and provide suggestions to live happily and work together.

On the other hand, religion isusually

concept which says you have to believe' for it is based on belief system. Religion facilitates human being with social norms and discipline. Religion can be one arm of human body and spirituality is another. Religion connects spirituality with awareness of God where spirituality from religious point of view is awareness of God. As per Indian and western tradition, there is a difference in understanding the word 'spirituality'. The understanding of spirituality in west is based on religion but Indian understanding of spirituality is not based on religion but on personal experience of people(Saraswati,2019; Saraswati 2020).Eithertaken together or separately,research associates both religion and spirituality very much helpful in better functioning of individuals and give a direction for constructing a sense of the world and coping with life (Miller, 1995).

Spirituality and Art

From the beginning of time art has served spiritual world of human being. It is well known that spiritual world is greatly influenced by the art of music. Music has a significant impact on spiritual maturity of individuals and coming generation (Talaboev et al., 2020). Wax (2005) has explained a number of musicians and actors seem to adopt the seeker mentality towards the spirituality while attending or taking part in performances. They make an attempt to establish a connection with the divine that is present in and driving their words, actions, and music. However, the ways in which they engage with it and define it are highly diverse, and their ability to actually realise that spirit depends largely on their efforts. Number of examples has been cited in this study which show prior to commencing performances, artists make a prayer to God in the hope of seeking the blessings and energy of a higher power to their art.

Importance and Objectives

Worldwidepotential disruption in normal life due to the pandemic. It has created much stress in the life of Human beings. In this situation it is hard to balance our normal routine. Tilldate, only few studies are available on role of spirituality onmaternal mental health. This study wishes to explore the views of child-bearingwomen and their coping mechanism during pregnancy with the time of social distancing and also tries to understand the role of spirituality in handling the uncertainty and unknown created by this pandemic.

Procedure and Ethical Consideration

Most of the interview hasbeen conducted via phone and WhatsApp call. Researchers contacted 2 participants face to face with following pandemic protocols/procedures. The survey hadbeen done in the month of July 2021. For clarity in responses, researcher had sent the questionnaire to respondents before conducting interviews. Almost all the interviewslastedfor around 15-25 min. During the interviews, participants were encouraged to freely express their views and experiences related to spirituality and pregnancy. The respondents had given the optionto withdraw themselves from the interviewatany time, if they were not comfortable in responding of the questions or whatsoever.

Data Analysis

In order to analyse contentof the data, manual table was initially constructed in which researchers put respondents' responses to arrange them toorganised it in particular categories according to the theme. Researchers have chosen deductive approach for qualitative data analysis.

Results

This study included 18 women who

were pregnant and given the birth of child during lockdown period with no other restrictions. Researcher has considered the duration after April 2020 to July 2021. Participants have been identified as R1 to R18 to protect their identity.

Demographic Characteristics of study participants

Table-1 (Number of respondents-18)

Variables	Respondents
Age	
20 years or below	1 (5.55%)
20-30	12 (66.66%)
30-40	5 (27.77%)
Marital Status	
Married	18 (100%)
Education	
Illiterate	1 (5.55%)
High School	3 (16.66%)
College Degree	7 (38.88%)
Masters/Professional	7 (38.88%)
Employment Status	
Unemployed	17 (94.44%)
Full Time employed	1 (5.55%)
Living Status With spouse only	4 (22.22%)
With in-laws & Spouse	14 (77.77%)
Current Status Pregnant	6 (33.33%)
Postpartum	12 (66.66%)
Religion Hindu	18 (100%)

How would you describe your spiritual self? How it is useful in your life?

In thequestion, "Spiritual self" referred totheengagement of respondents in activities that is related to God and how it can be usefulin living. In this category almost all participants were spiritual in nature and they have experienced its power.Participants under this study deliberately engaged themselves in coping with day-to-day experiences of living during covid-19 pandemic, which was revealed byfollowing means—

R3explained spirituality is useful in our life. After performing meditative activities, I found myself in solitude and relaxed. This is as important as food for me. When I am unable to maintain puja (Pray) routine, I often feel disturb and anxious. "Puja" givesme satisfaction and peace. According to some participants expression itwas noted that they had a feeling of insecurity without spiritual faith.

R6 stated, if something bad about to happen, faith in God provide me signal to be aware. Puja providedme to go forward inright direction. Praying to god, help in making everything perfect.

R18 noted, faith in superpower is very helpful for human beings. Itgives me positive attitude. If something is bothering me, I just sit calmly and chant some mantra, I feel very relax in this way**.** Participants discussed on their previous trial as well as in pandemic time that spirituality has giventhem peace, positivity and disciplined and ideal way of living.

During the pregnancy, were you worried about future due to covid-19 crisis?

During the pregnancy existing literature explains that women often feel stress in normal situations. In the COVID-19 era, majority of child-bearing womenwere worried as per the study. Participants who were having first baby were more worried than the ones having second or third time.

R2 stated I was worried due to lockdown. The emergency vanwas not available so that it put me in trouble while I had an appointment with doctor. I was physically sick because of much vomiting and swelling in different parts of body. It was very risky to visit any hospital in that time and unavailability of

doctors created a lot of problem for me.

R5 mentioned I was in stress at that time. Doctors were not available. I had to wait for all type of help and need. I had a fear of infection, it was much stressful. My elder child also required the need of care so, it was difficult to manage all the stuff at that time.

R10 explained, I faced stress. I was bearing twins; I had much confusion and questions related to health which were constantly going through my mind. I was tensed by not getting proper medical facilities which one should receive during pregnancy especially inbearing twins. A thought about the delivery always bothered me. Doctors were engaged with severe cases; they were not treating people like me and to meet doctors was also problematic. There was potential risk of viralinfection, so I always felt the pressure and was depressed.

What did you do when you were worried?

In this section participants used to remember God when they felt stress. Here, remembering God meant praying to God, sing and listen Bhajan (devotional song with religious/spiritual theme), watching TV for listening Prawachan (Preaches), read spiritual stuff. Along with remembering God, some participants used to do meditation and practising Yoga for avoiding stress. Some of them preferred talkingwith friends and family for relaxationalong with remembering God. Women with pregnancy had less fear than postpartum women. The reason behind this picture, researcher collected the data in the month of July andby that time 2nd phase of covid-19 pandemic was about to end. Respondents expressed as following—

R1 explained, I used to pray God for providing me safety. I meditated time to time and talked with my family and friends.

R9 pointed, I used to chant the name of Gods and asked him to lowermy all burdens. It provided me self-satisfaction by just asking for help and renewal from God, as he would definitely listen to me.

R10 stated, I used to listen bhajans, song of *Vaishnaw Mata* (divine mother in Hindu mythology), chanted the *Om Namo Bhagwate Basudewya* (I bow down to Vasudewa/God) mantra (spiritual verse in ancient Hindu literature). When I felt my mind wasanxious, I used to chat withmy family members.

R17 identified as pregnant explained, I am listening some soothing music, some time I do *ajpa jap* (type of meditation) and listen and read spiritual stuff. During pregnancy this type of activities are helpful in reducing stress, instilspeace within oneself and with the healthy child.

In dealing with those problems, has your spiritual engagementincreasedor decreased, or remained same as before?

In this category, referring to the responses of participants, their spiritual engagement has increased. Respondent srevealed spiritual engagement is necessary in stress management along with having a child with *Samskara* (positive character). Increased spiritual engagement strengthened participants and helped them managed to avoid stress related to covid-19 crisis, which was understood by following narrations —

R3 stated, it has increased very much. At the time of pregnancy, people around me suggested stress will affect your baby significantly. So, avoidthe stress andget yourself involved some where, and it eventually led tomy spiritual engagement.

R10 explained, Puja is part of my daily routine since childhood. The recitation of Gita and Ramayana (holy book of Hindu dharma) used to happen at home long back. During the

time of pregnancy, the fear had increased so, I had increased my spiritual engagement.

R18 my engagement had increased because Iwas pregnant.

What was your coping mechanism likechanting mantras, reading scripture, watching religious program on TV, listening bhajans, or any-thing else? How Was it helpful to cope with this crisis?

In this category, majority of the participants described they used to read scripture, chanting mantras, watching religious programme and listening bhajans for avoiding stress. Some of them practised yoga and morning walk. In reading scripture most of the participants preferred to read Gita, Ramayana and biographies of saints. By doing this they get positivity, relaxation, and optimism.

“R9 identified as pregnant said, I used to listen *prawachan* (Preach) on TV program and sing *arti* (religious song) of God. It gives me peace. I receive happiness and encouragement. When I don’t have idea what to do and what will happen, I urge God to give me capacity to handle the situation. This approach automatically reduces negativity.

“R8 remembered her days during pregnancy and stated, I used to read religious books and chanted mantras. Chanting the mantras gave me peace. If someone wish to know its power, they have to practise it; it has power to provide happiness. God never says go to Temple, it is quite easy to be with God, if someone mentally worship God, in this process the soul meets the divine, who is connected with the heart. Call from heart, God must listen.

“R15 told, I was doing prenatal yoga. I used to read scripture book, chant mantras and walk around my house. These things were very helpful and made things easier for mein my journey.

What have you achieved in regard with spiritual activities, what is your findings?

In this category**,** almost all participants received some meaning through spiritual activities. Participants described that they got hope that every thing wouldbe fine. Their fear had been reduced related to uncertainty andregarding the conditions of healthy baby. To be involved in activities with Super Power, they achieved self-confidence, positive attitude, encouragement and peace.

R1narrated her findings, the fear has been reduced. I started to believe that I am in safe zone irrespective of COVID-19 infections, I felten couraged. After sometime, I started to feel the fear, then I used to talk with myself that god is with me, I am not going to bein fected. I feel relaxed after the worship and that’s the positive aspect of my worship.

R7 explained, involving in spiritual engagement built the strong connection with God. I received energy to handle the worst situation. It helped me believing in the God blessings, God will make everything fine.

R13 noted, having a healthy baby was my finding in COVID-19 crisis, now me and my baby both are in good health. It’s because of the blessings of God.

R14 stated as, connection with spirituality gives me a positive aspect. I think the drastic change camein my life during this phase. Now, I am very calm and content.

Discussion

Aim of this study was to explore the association between effects of spirituality on child bearing women and Covid-19 pandemic. The analysis of participants narrative, it came to be known that spirituality has played an important role tocope with thecrisis. In the first category, participants described, it issignificant

in many aspects of life. It helped them in handling unknown and social isolation created by this pandemic.The major findings in this section were peace and positivity. Saraswati (2020) says spirituality means experiencing the nature of spirit. In the state of spirituality, we learn to manage various activities of mind and try to develop certain positive attitudes on our natural state of mind. These positive attitudes help in organising our pattern of behaviour in right direction. Surprisingly, participants under this study have believed that the spiritual engagement works as a crucialtool to shape the behaviour in right direction. Pregnancy is most important phase in the life of every women. It isconsidered as stressful and challenging period, which result in fear, stress and anxiety (Li et al., 2020). It has been identified by various research that experiencing the mental health problems during this period have harmful impact on child-bearing women and her baby (Field, 2011; Rees et al., 2019). In the second category responses, due to uncertainty, participants in this study were under stress. Unavailability of doctors, poor treatment, lockdown and limited awareness were the major reasonfor the participant sinsecurity during pregnancy. Participants felt extreme anxiety attacks when they thoughtof, they may not get proper treatment due to unavailability of doctors. It has always raised a question on health of the mother and the baby. Lack of meaningful social interactions was also a cause to be worried. Fakari & Simbar, (2020) has desbribed this pandemic can increase the mental problem and that can be commonly seen in pregnant women. Wastnedge et al., (2021) says women with complex pregnancy made them more vulnerable to severe SARS-CoV-2 infection and physiological changes during pregnancy.

Third category responses were related to remembering God, meditation and interacting with people, socialisation were the solutions to get rid of participant's stress. Majority of the participants used to remember God when they felt stress. In this regard, participants had a believe that meditation is a method in reducing stress. All these activities were beneficial incontrolling fear during pregnancy in these challenging times. Study by (Fikari & Simbar, 2020; Luo & Yin, 2020) explain limited awareness regarding vertical transmission, management and assessment of infection during pregnancy and certainly increased in the number of cases of COVID-19 patients among world results in stress and anxiety much among pregnant women. The finding from previous research suggests that spirituality has ability in reducing anxiety and depression. Study by Goyal et al., (2014) discussed meditation reduce the negative dimension of psychological stress. It has shown in improvement in mental health components. It was also noted by researcher in this study that the healthy relationship within family is a good instrument in promoting positive behaviour.

In fourth category responses that dealt with problems in covid-19, participant's spiritual engagement had been increased significantly. It has been investigated under this study that fear of covid-19 among participants were above the moderate level. A realisation of potential harm among participants from this pandemic was larger than any other thing and they believed that only God can reduce these stressful situations. Durmus et al., (2021) in their study conclude as fear of covid-19 among pregnant women were moderate and level of spirituality was above the medium level. They further say the fear of covid-19, level of depression and spiritual well-being is related to each other. Hamilton et al., (2021) study on breast cancer survivors discussed participants of their study were restricted to being a part of church activities, but they engaged themselves in more worship through online services than previously

before covid-19 restrictions, that was permitted to them. Although No doushan et al., (2020) study describes most of the mother in this pandemic experienced premature birth due to increased stress and quarantine conditions. Spiritual health of pregnant women in his study decreased even in religious Islamic people of Iran.

In the fifth category, responses were related tochanting mantras, reading scripture, **watching religious programmes and listening bhajans.** These were coping mechanism during pregnancy for stressful life events. The finding of these practises among participants in this study were relaxation and optimism. Lolla (2018) study describe there is deep effect of spiritual verse known as *mantras* in harmonising the mind. In ancient India, vibrations of sound had been used to control mind and body which lead to peace, prosperity and happiness. Under this study similar to watching religious programme on TV, reading passage from holy books were the strategy of the participants in promoting mental health and cope with crisis during pregnancy. Poudel (2020) conclude as holy books such as Bhagwat Gita, Ramayana, Bible and Quran can be effectively used to help the patients in coping the life situation. Behavioural changes like listening bhajans and peaceful music, meditation, praying, rise early morning and many other religious and spiritual activities might help in promoting mental health.

The sixth and final category responses of spiritual practises in covid-19 pandemic during pregnancy were related to hope, self-satisfaction and encouragement. Participants had control over negativity and had a believe that everything will be fine. Study by Reicks et al., (2004) explain involving in religious and spiritual activities is effective in increasing self-confidence and self-believe as well as self-efficacy. According to Adegbola (2011) says spiritual health can predict self-efficacy. Spiritual health is related to religious and existential components of health. Spirituality is powerful force in improving the health of the mother andthe baby. It is an important to adopt spiritual attitude in pregnancy, taken care by professionals. Spiritual teaching is essential factor in creating healthy environment to avoid stress and negativity (Tajvidi & Dehghan, 2016). Study of Allahbakhshian et al., (2010) suggested spirituality makes the process of coping with mental problems easy and provide a meaning of life. Researcher in this investigation found, spirituality provided the participants a healthy life.

Conclusion

Covid-19 has created a number of challenges for pregnant women. The impact of these challenges varieson participant's mental health.As a result, it was found that most of the participants fear were above the medium level in this crisis. Due to increased stress, women adopted spirituality as a tool for happy and peace mind. They had believed that spirituality is a weapon which can save them from stress. In addition, it was also known that all participants were spiritually oriented but during pregnancy,in the time of pandemic, their spiritual engagement has increased. Spirituality had shaped their responses to Covid-19. It had provided them strength in developing self-confidence and positive attitude that everything will be fine. Some participants have believed that spirituality should be practised during pregnancy for happy and healthy child. Some participants with pregnancy have less fear than postpartum women. It was analysed that after the second phase, respondents fear regarding virus infection had reduced. They had following pandemic protocol along with practising spiritual activities. To conclude, it can be noted that there are positive corelation between pregnancy and spirituality. In the time of pandemic, it has enabled the pregnant women to overcome stress

which leads to promote peace, hope and positivity.

Limitation of the Study

The study contains small sample size and qualitative methodology limits to generalise on larger population. The greatest limitation of this study is homogeneity of population in terms of religion, race and ethnicity. In addition, snapshot measurement of stress, fear and level of spirituality didn't include any scale, and majority of the participants interview were conducted via telephone. So, these are the limitations of this study.

References :

Adegbola, M. (2011). Spirituality, self-efficacy, and quality of life among adults with sickle cell disease. *Southern online journal of nursing research*, *11*(1).

Allahbakhshian, M., Jaffarpour, M., Parvizy, S., & Haghani, H. (2010). A survey on relationship between spiritual wellbeing and quality of life in multiple sclerosis patients. *Zahedan Journal of Research in Medical Sciences*, *12*(3).

Anokye, R., Acheampong, E., Budu-Ainooson, A., Obeng, E. I., & Akwasi, A. G. (2018). Prevalence of postpartum depression and interventions utilized for its management. *Annals of general psychiatry*, *17*(1), 1-8.

Buekens, P., Alger, J., Bréart, G., Cafferata, M. L., Harville, E., & Tomasso, G. (2020). A call for action for COVID-19 surveillance and research during pregnancy. *The Lancet Global Health*, *8*(7), e877-e878.

Durmuº, M., Öztürk, Z., ªener, N., &Eren, S. Y. (2021). The Relationship between the Fear of Covid-19, Depression, and Spiritual Well-Being in Pregnant Women. *Journal of Religion and Health*, 1-13.

Fakari, F. R., &Simbar, M. (2020). Coronavirus pandemic and worries during pregnancy; a letter to editor. *Archives of academic emergency medicine*, *8*(1), e21-e21.

Field, T. (2011). Prenatal depression effects on early development: a review. *Infant behavior and development*, *34*(1), 1-14.

Goyal, M., Singh, S., Sibinga, E. M., Gould, N. F., Rowland-Seymour, A., Sharma, R., ... & Haythornthwaite, J. A. (2014). Meditation programs for psychological stress and well-being: a systematic review and meta-analysis. *JAMA internal medicine*, *174*(3), 357-368.

Hamilton, J. B., Best, N. C., Barney, T. A., Worthy, V. C., & Phillips, N. R. (2021). Using Spirituality to Cope with COVID-19: the Experiences of African American Breast Cancer Survivors. *Journal of Cancer Education*, 1-7.

Jungari, S. (2020). Maternal mental health in India during COVID-19. *Public Health*, *185*, 97.

Koenig, H. G. (2004). Spirituality, wellness, and quality of life. *Sexuality, Reproduction and Menopause*, *2*(2), 76-82.

Koenig, H. G. (2009). Research on religion, spirituality, and mental health: A review. *The Canadian Journal of Psychiatry*, *54*(5), 283-291.

Li, R., Yin, T., Fang, F., Li, Q., Chen, J., Wang, Y., ... & Qiao, J. (2020). Potential risks of SARS-CoV-2 infection on reproductive health. *Reproductive biomedicine online*, *41*(1), 89-95.

Liang, H., & Acharya, G. (2020). Novel corona virus disease (COVID-19) in pregnancy: What clinical recommendations to follow?.

Lolla, A. (2018). Mantras help the general psychological well-being of college students: A pilot study. *Journal of religion and health*, *57*(1), 110-119.

Luo, Y., & Yin, K. (2020). Management of pregnant women infected with COVID-19. *The Lancet Infectious Diseases*, *20*(5), 513-514.

Miller, M. A. (1995). Culture, spirituality, and women's health. *Journal of Obstetric, Gynecologic, & Neonatal Nursing*, *24*(3), 257-264.

Nodoushan, R. J., Alimoradi, H., & Nazari, M. (2020). Spiritual health and stress in pregnant women during the Covid-19 pandemic. *SN comprehensive clinical medicine*, *2*(12), 2528-2534.

Poudel, A. (2020). Role of Spirituality in Mental Health in Nepal. *JNMA: Journal of the Nepal Medical Association*, *58*(226), 439.

Rajkumar, R. P. (2020). COVID-19 and mental health: A review of the existing literature. *Asian journal of psychiatry*, *52*, 102066.

Rees, S., Channon, S., & Waters, C. S. (2019). The impact of maternal prenatal and postnatal anxiety on children's emotional problems: a systematic review. *European child & adolescent psychiatry*, *28*(2), 257-280.

Reicks, M., Mills, J., & Henry, H. (2004). Qualitative study of spirituality in a weight loss program: Contribution to self-efficacy and locus of control. *Journal of nutrition education and behavior*, *36*(1), 13-19.

Saver, J. L., & Rabin, J. (1997). The neural substrates of religious experience. *The neuropsychiatry of limbic and subcortical disorders*, 195-207.

Swami Niranjananand Saraswati (2019, September 9). How would you differentiate spirituality from religion? [Face Post]. Retrieved from https://www.facebook.com/groups/1292001077507119/permalink/3201382863235588/ on 03-01-22

Swami Niranjananand Saraswati (2020, September 5). *Yoga Sadhana Panorama* [Facebook Post]. retrieved from https://www.facebook.com/groups/Paramahamsa. Swami. Niranjanananda/permalink/10159391140811287/ on 20.12.21

Tajvidi, M., & DEHGHAN, N. N. (2016). EXPERIENCING SPIRITUALITY IN PREGNANCY: APHENOMENOLOGICAL STUDY.

Talaboev, A., Akbarov, T., & Haydarov, A. (2020). SONG PERFORMING IN TRADITIONAL PERFORMING ARTS: PAST AND PRESENT TIM. *European Journal of Arts*, (1), 85-88.

Topalidou, A., Thomson, G., & Downe, S. (2020). COVID-19 and maternal mental health: Are we getting the balance right?. *MedRxiv*.

Upadhyay, R. P., Chowdhury, R., Salehi, A., Sarkar, K., Singh, S. K., Sinha, B., ... & Kumar, A. (2017). Postpartum depression in India: a systematic review and meta-analysis. *Bulletin of the World Health Organization*, *95*(10), 706.

Verghese, A. (2008). Spirituality and mental health. *Indian journal of psychiatry*, *50*(4), 233.

Wastnedge, E. A., Reynolds, R. M., Van Boeckel, S. R., Stock, S. J., Denison, F. C., Maybin, J. A., & Critchley, H. O. (2021). Pregnancy and COVID-19. *Physiological reviews*, *101*(1), 303-318.

Weber, S. R., & Pargament, K. I. (2014). The role of religion and spirituality in mental health. *Current opinion in psychiatry*, *27*(5), 358-363.

Craft Cluster : Exploring Kolhapuri Chappal Making in Maharashtra

Dr. Shruti Tiwari*
Amar Mithapalli**
Khyati Pawar***
Avantika Potdar****

Abstract

Craft Cluster aims to develop a comprehensive understanding of clusters and units by exploring factors such as lifestyle, sources, and working conditions. This project involved visiting selected craft clusters, interacting with craftsmen, and learning about their design aspects for a month. The exchange allowed the participants to get to know people who have practiced the craft for generations. The project also provided insight into the making of Kolhapuri Chappals, covering the history, future, and scope of the craft. The project focused on the process of making aunthentic handcrafted Kolhapuri Chappals in Kolhapur, Maharshtra, showcasing all aspects from raw materials to final products. The project also allowed the participants to interact with master craftsmen, gaining insight into the lives of the people behind these beautiful Paytaans.

Key Words : *Craft Cluster, Kholapuri, craftsmanship, Maharashtra, handcraft, design.*

Methodology :

Step – 1 - Process of Leather Making –

Vegetable Tanning- *Vegetable tanning has been used for thousands of years and is based on a lengthy and intricate process of soaking animal skins in vegetable tannings. To achieve the required quality and beauty, this process might take up to two months and involves numerous treatments and extremely specialized work. Leather is a talent that must be selected by expert leather artisans.*

Chrome Tanning- *Chrome tanning is a newer technique that dates back to 1858, when tanneries were seeking for methods to speed up the process and save money. Chrome tanning, which is now utilized in roughly 90% of the leather industry, is significantly cheaper than vegetable tanning since it can be processed in as little as two weeks.*

The Difference between Vegetable Tanning and Chrome Tanning –

Vegetable tanning uses wood tanning chemicals and water, while chrome tanning uses chrome salts and liquors. Both methods offer durability, with chrome-tanned leather being water-resistant and suitable for heat and moisture-sensitive items. Vegetable-tanned leather is thicker and can handle everyday use, while chrome tanning produces a wide range of colors, making it suitable for the fashion industry. However, it may fade slightly.

The chappal making industry uses animal leftovers for meat consumption, gathers outer skin, cuts Myrobalan Fruits, and softens cow/buffalo outer hides in salt and limestone tanks.

*Professor in Design, Parul University, Badodara
**Asst. Prof. School of Design, Avantika University, Ujjain
***Student B.Design, School of Design, Avantika University, Ujjain
****Student B.Design, School of Design, Avantika University, Ujjain

Aims & Objectives

Aims:

To develop a comprehensive understanding of craft clusters and their functioning.

To explore the lifestyle and sources of craft clusters.

To gain insights into the design aspect of craft clusters and their craftsmen.

To document the process of making authentic handcrafted Kolhapuri Chappals.

To understand the history, future, and scope of Kolhapuri Chappal craft.

Objectives:

Identify and select craft clusters for study.

Visit the identified craft clusters, reside there, and interact with craftsmen for a duration of one month.

Gather information about the craft from craftsmen who have inherited the craft through generations.

1. Explore the raw materials used in the production of Kolhapuri Chappals and document the step-by-step process of making them.
2. Interact with master craftsmen to gain insights into their lives and experiences.
3. Analyze the unique selling points of Kolhapuri Chappals and evaluate their market reality.
4. Provide a historical overview of the craft and its cultural significance.
5. Discuss the future prospects and potential challenges faced by the craft and craft clusters.
6. Present the documentation of the craft-making process, including photographs, videos, or illustrations, to enhance understanding.
7. Summarize the findings and conclusions about the craft clusters and the craft itself.

These aims and objectives can serve as a foundation for your research paper on craft clusters and the process of making Kolhapuri Chappals.

Hypothesis:

The qualitative part of the present research aims to explore the craft cluster of Kolhapuri Chappals in Maharashtra and examine various aspects, including the lifestyle, sources, and working of the clusters. The hypothesis for this research paper could be:

H1: "The craft cluster of Kolhapuri Chappals in Maharashtra is characterized by a rich history and a tradition of craftsmanship passed down through generations. Through an in-depth exploration of the cluster, including interactions with master craftsmen and understanding the chappal-making process, this research paper seeks to uncover the unique selling points of Kolhapuri Chappals and examine their current market reality."

Whereas the quantitative part of the research will focus on analysing market trends, consumer preferences, and the economic impact of the Kolhapuri Chappal craft cluster. The hypothesis for this paper could be:

"H1: The quantitative research findings will demonstrate that there is a growing demand for authentic handcrafted Kolhapuri Chappals in the market, and the craft cluster has the potential to contribute significantly to the local and regional economy."

The hypothesis suggests that the research will highlight the cultural and historical significance of Kolhapuri Chappals, as well as provide insights into their production process, craftsmanship, and market presence. The qualitative approach allows for a comprehensive understanding of the craft cluster and its impact on the artisans' lives and the market dynamics.

Introduction

Kolhapuri Chappal, also known as Paytaans, is a renowned leather chappal made in Kolhapur, India. Initially produced for locals, it has evolved into two varieties: one for authorities and the other for farmers with a hard-faced core. Crafts have been a significant part of Indian life since ancient times, with Kolhapuri chappal manufacturing being a skill that dates back over 800 years. These chappals were predominantly worn by royal lineages, adding to their cultural significance in India.

The History of Craft

The Soudagar family invented the Kolhapuri chappal around 1920, a craft popularized during Chhatrapati Shahuji Maharaj's reign in Kolhapur. Craftsmen competed to create the most diverse chappals for the monarch, which flourished under Maharaj's care. The origin of the 'kolhapuri chappal' is unknown, but it was of great importance and popularity during Maharaj's reign. Early versions were slimmer and had two side flaps.

Evolution

Kolhapuri Chappals have evolved from ethnic to more comfortable, soft, and sophisticated styles since the 12th to 13th centuries. Originally worn by royal patrons, they have also been used by troops due to their heat resistance. Kolhapur's arts and crafts flourished under Chhatrapati Shahuji Maharaj's reign, with the origin of the term "kolhapuri chappal" unknown. In the 1970s, late-nineteenth-century Kolhapuri Chappals embraced the hippie movement in the United States, attracting orders from Madras, Calcutta, and the British Royal Family. The shoe market gained a stronghold due to this surge in demand. Kolhapuri chappals are now produced in Madbavi, Nippani, Sankeshwar, Ugar, Ainapur, Belgaum, Atani, and several villages in Kolhapur district, as well as Kolhapur city, in the late 20th century.

Indian Ayurveda involves mixing Hirada seeds and Babul pieces with water in a wooden bucket for five days. The skin is then stitched with a Cactus Leaf, filled with the mixture for 7-8 days, and tied for 8 days. The skin is then immersed in a five-foot deep tank for seven days.

After that, the skins are kept on the bed of Babul and Hirada under direct sunlight to dry completely, which is later, stored in a closed room. "Hirada", "Babul" as medicinal plants, they

gave shoes medicinal properties. This was an added advantage for Kolhapuri chappals. It is said that there are small pores in it, and it has the effect of absorbing heat and cooling the feet and the whole body.

Step – 2 – Chappal Making –

The leather is soaked for about 30 minutes and initially washed manually. A brush is used for better cleaning. The outer layer containing hair is removed. The face part of the leather is usually used for the Chappal footbed and the other part of the leather is used for the Chappal sole. The other body hide is used to make soles by regularly beating it with a shoemaker's anvil (asthi). The rough side of the leather is sanded down to a smooth surface and then cut to size for tanned leather slippers. The size of chappal is marked using stencils on the footbed.

Depending on the marking, the sole is cut. The sole and the cut pattern pieces are stuck with the local adhesive (rubber solution) to stick each part of the sole. The side strap is glued to the footbed.

The heel is separately glued to the chappal. Another layer of leather is added to the sole and hammered to fix them permanently. The sole is allowed to be set for about 30 minutes.

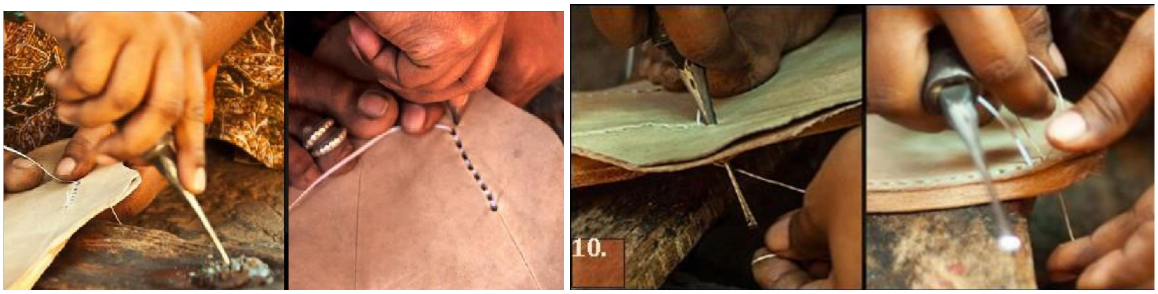

A cobbler needle is dipped in the beeswax for easy penetration. The footbed and the sole of chappal is stitched together. Nylon thread is used for stitching because of its durability.

The shoe cream color (yellow or red) mixed with little water is brushed in 3 stages to get a yellowish or reddish color. Color is applied evenly using a brush. Color and cream mixture is applied as a second coat. Black color and kerosene are mixed and applied to obtain other colors.

Final Product

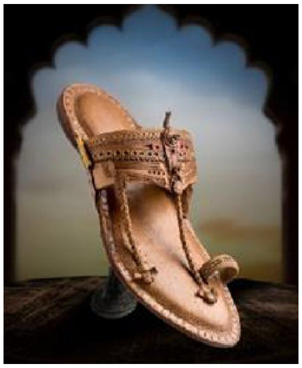

Future of the Craft

The emergence of multinational export traders and a modernized leather market has made it challenging for kolhapuri chappal craftsmen to maintain their livelihood. Animal rights activism has also impacted their ability to procure high-quality leather, leading to cheap alternatives and inauthentic kolhapuri chappals. However, the craft has a bright future, with recognition and value for the GI (Geographical Indication) Tag in 2019. Many artisans are also pursuing e-commerce, conducting business through apps like WhatsApp and Facebook. With the rise of sustainability and vegan culture, a shift to vegan leather could be possible, but the artisans are hesitant to embrace these ideals.

Expanding into various leather products, such as bags, belts, folders, and jewelry, using scraps and leftovers from kolhapuri chappals would help achieve a sustainable environment and make the craft more accessible to diverse beliefs. Proper marketing, branding, and innovation among artisans will help the craft become a premium luxury product.

Future of the Craft:

POST GI (GEOGRAPHICAL INDICSATION) TAG

The GI label enhances shoe visibility at national and international levels, supporting artisanal connections and collaborations with e-commerce platforms like Amazon and Flipkart. It allows shoes to be manufactured in areas with geographical indications, preventing manufacturing outside these areas.

Result & Discussion –

About 50 people completed the survey form. The findings of the form reveal that the form was filled out by people ranging in age from 20 to 70. Individual reactions differ based on generation and experience.

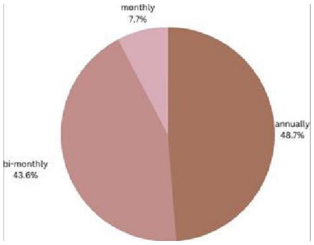

1. How often do you shop for footwear

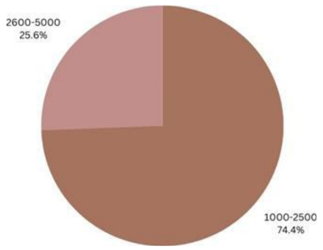

2. How much do you spend on your footwear

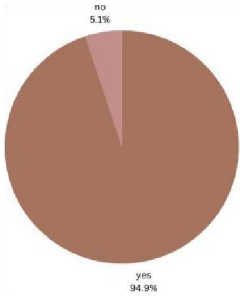

3. Awarness of Kolhapuri Chappals

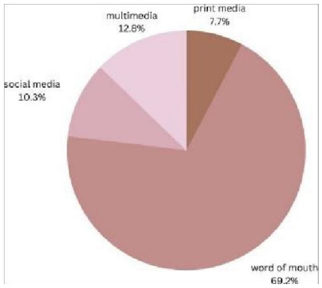

4. If yes, how do you know about them

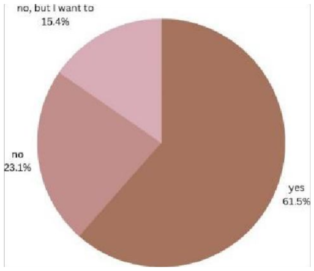

5. Do you own any Kolhapuri Chappal

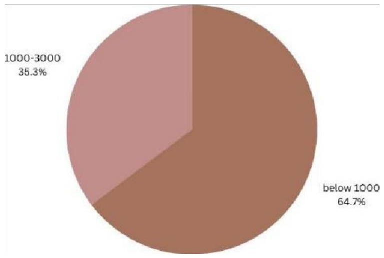

6. If yes, how much did you pay for your pair of Kolhapuris

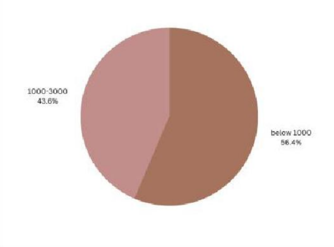

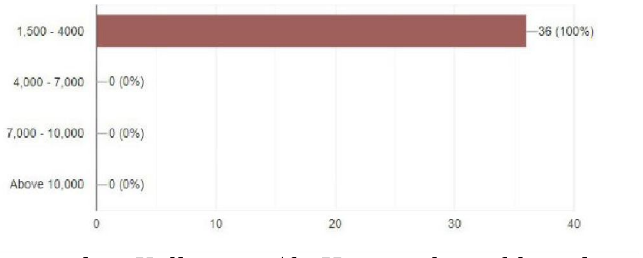

7. a. How much would you be willing to spend on Kolhapuris / b. How much would you be willing to spend on a branded Kolhapuri Chappal? (authentic, handcrafted, handstitched, pure leather)

Conclusion:

The present survey has been done on 50 people. The audience varied in age from 20 to 70 years old, according to the form findings. The replies differ from person to person based on generation and experience.

People choose shoes based on a variety of variables such as price, brand, quality, comfort, and occasion. When asked what characteristics a premium or luxury goods should have, the majority of the audience mentioned comfort, quality, durability, and a design that sticks out from the crowd.

Kolhapuri Chappals are exquisitely made Paytaans. Everyone is aware about Kolhapuris, but not everyone owns one. The owners have had a positive experience with the chappals. One-time users have had difficulties.

Suggestions –

A range development has been done by the designers Khayati Pawar, Avantika Potdar under the mentorship of Asst. Prof. Amar Mithapalli -

Design Process -

India, known for its rich culture and talent, has lost its once-luxurious crafts due to modernization and global fashion. The current collection aims to address this issue by incorporating venis, handstitching, and leather carvings into a kolhapuri chappal collection. The collection aims to be ageless, traditional, and rich in history while still oozing luxury, making kolhapuri chappals a luxury investment rather than just another product. The collection aims to be admired and respected like international leather craftsmanship.

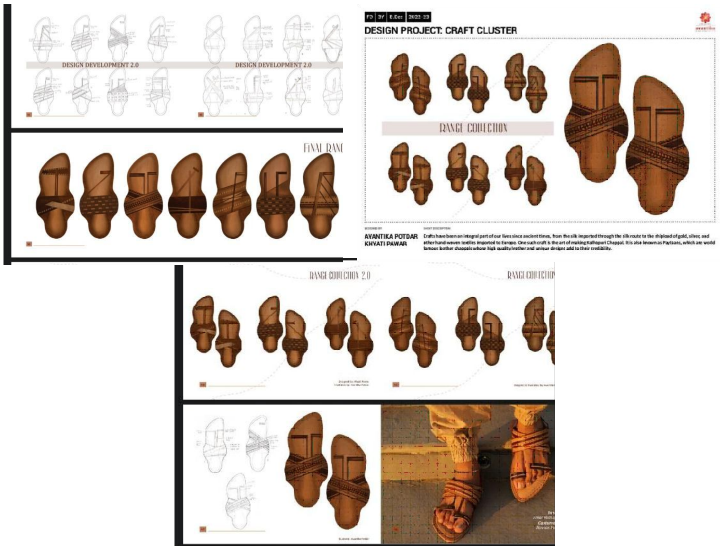

Acknowledgement –

We would like to acknowledge all the people directly and indirectly connected in the conduction of this research. Special thanks to our jury Dr. Shruti Tiwari (Professor in Design, Parul Institute of Design, Parul University) for research guidance.

Bibliography :

- https://stylecaster.com/fashion-trends-2023/#slide-7
- https://www.elle.com/fashion/trend-reports/a41218503/spring-2023-shoe-trends/
- https://textilevaluechain.in/in-depth-analysis/emerging-global-trend-in-leather/
- https://www.wgsn.com/en/blogs/4-top-footwear-trends-ss-23
- https://www.ibef.org/research/newstrends/changing-footwear-trends-in-india
- https://facts.net/types-of-leather/
- https://economictimes.indiatimes.com/jobs/fddi-to-train-artisans-making-kolhapuri-chappals-connect-them-with-buyers-to-boost-sales/ articleshow/78979002.cms?from=mdr
- https://vhaan.in/blogs/news/state-maharashtra-pushes-for-kolhapuri-chappals-revival-thehindu
- https://www.dsource.in/resource/kolhapuri-chappal/tools-and-raw-materials
- https://7esl.com/tools-vocabulary/
- https://niceorg.in/blog/culture/paytaan-indian-leather-footwear/
- https://www.fibre2fashion.com/news/apparel-news/india-s-kolhapuri-chappal-gets-geographical-indication-tag-250176-newsdetails.htm
- https://www.gktoday.in/topic/gi-tag-namma-kolhapuri-chappals/#:~:text=History%3A%20As%20per%20GI%20 application,ruled%20 Bidar%20(in%20Karnataka)
- https://vhaan.in/blogs/news/history-of-kolhapuri-chappal
- https://thewire.in/economy/how-the-beef-ban-is-causing-the-decline-of-the-famous-kolhapuri-chappal

Analysing the Success Factors of TVF Panchayat : The Rural Drama with Portrayal of a Common Man

Rahul Ahuja*

Abstract

The Indian Web Series and OTT Industry has witnessed a major spike in viewership amongst the youth. Panchayat is an Indian Hindi-language comedy-drama web series created by The Viral Fever (TVF), which has gained immense popularity. This research paper focuses on analysing the success factors of Panchayat Web Series (Season 1 & 2) produced by TVF. Panchayat is a family-orientedrural drama that captures the journey of an engineering graduate Abhishek, who is a common man, and for lack of a better job option joins as a Panchayat Secretary of Gram Panchayat Phuleraof Uttar Pradesh. The data were collected using a survey questionnaire andis conducted by using quantitative research methodology. The research paper has tried to identify several factors such as favourite season, character, and other elements like grounded story plot, village life, background music, which together have made this web series a huge hit in terms of popularity and viewership. The research paper also tries to answer questions related to content being produced and released on OTT platform nowadays. There are currently more than 800 million people in India, who are online, and it is surely going expand in the future as people have started taking internet as a medium for entertainment. This research paper will help the OTT industry, especially for the upcoming web series.

Keywords: *Entertainment, Web Series, OTT, Panchayat, New Media*

Research Methodology : *Quantitative research methodology is used in this research paper.The data is collected through questionnaire (close ended questions). The respondents of the study are undergraduate and postgraduate students, and young professionals (18-30 Years) working in Patna, which is a capital city of Bihar, India.*

Introduction

The Rise of OTT in India

The Human entertainment has greatly benefited from communication's growth. Since ancient times, people of all ages have created many forms of entertainment for themselves, their families, and society. The ancients used rock art, folktales, storytelling, folksongs, folklore, and myths to express themselves, and in more recent times, people have used writing to share their feelings. In addition, new and inventive ways of communicating events, emotions, and interpretations emerged with the development of technology. With the development in the industry, the reach and scope of entertainment have expanded beyond all comprehension.

India is a promising market for Over-the-Top (OTT) media providers. Over-the-top (OTT) providers in India are extending their content selection to satisfy consumer demand as the number of individuals with smartphones and access to high-speed Internet keeps rising.With the advent of OTT services, content producers can now communicate directly with their audiences. This technique of selling directly to consumers has made the entertainment

*Assistant Professor, Amity School of Communication, Amity University, Patna

industry more open and competitive by lowering entry barriers and increasing content variety.

The globe is experiencing a digital revolution, and India is leading the way in terms of mobile internet connectivity. In India, 4G and the impending rollout of 5G technology have completely transformed access to information, communication, and commerce. Leading telecom companies like Reliance Jio, Airtel, and Vodafone Idea were instrumental in ensuring that high-speed internet was available to millions of people across the nation.

India's extensive adoption of 4G and 5G connectivity has had a significant impact on a number of industries. One such sector that has experienced significant and most significant expansion is the entertainment industry. Bypassing traditional broadcast channels, these platforms offer streaming services to users directly via the internet. Leading international and domestic providers, including Netflix, Amazon Prime Video, Disney+ Hotstar, Zee5, and Sony LIV, have successfully cornered the Indian market by providing a variety of material, including films, TV shows, documentaries, and original series.

India's entertainment consumption habits are drastically changing as a result of the Over-The-Top (OTT) platforms' rapid growth. The OTT market has exploded in recent years, providing a wide variety of digital content that is accessible whenever, whenever, and on a variety of devices.

TVF Panchayat Web Series

Talented performers, directors, writers, and technicians now have more opportunities because to the OTT business. It has given newcomers, independent filmmakers, and providers of specialised content a platform to present their work and connect with a larger audience. And as a result, a variety of new web series and episodes are regularly released in the Indian OTT market. It wouldn't be inaccurate to say that OTT platforms have something for everyone. On the OTT Platforms, one may find a vast content library and some of the most well-liked and successful web series, which can satisfy their entertainment demands whether they are children, teenagers, or adults. The OTT Apps are now people's top choice for entertainment at home and on the go after they gradually stopped using television and radio.

There are several online series and shows that have recently gained a lot of praise, success, and popularity and have had a significant impact on the Indian audience. One such web series that has enjoyed enormous success and popularity in India is The Panchayat Web Series (Seasons 1 & 2) produced by The Viral Fever (TVF).

The Rural Drama

TVF Panchayat is a popular Indian web series that originally aired in 2020 on Amazon Prime, the popular OTT Platform in India. Created by TVF (The Viral Fever), one of India's leading online content creators, Panchayat quickly gained a massive following for its refreshing storyline, relatable characters, and seamless blend of humor and drama.

Set in the rural heartlands of India, the series revolves around the life of Abhishek Tripathi, brilliantly portrayed by Jitendra Kumar. Abhishek, a young engineering graduate, finds himself compelled to take up a government job as the secretary of a panchayat (village council) in a remote village due to a lack of better employment opportunities. With dreams of a glamorous urban lifestyle dashed, he reluctantly moves to the rustic and quirky village of Phulera.

Portrayal of a Common Man

As Abhishek navigates the challenges of rural life and bureaucratic red tape, he

encounters a colorful array of villagers, each with their eccentricities and endearing qualities. The story beautifully captures the essence of small-town life, with its blend of traditions, struggles, and heartfelt bonds.

The series not only showcases the stark contrast between urban and rural lifestyles but also delves into the joys and sorrows of the villagers, making it a heartwarming and emotionally resonant watch. With its witty humor and realistic portrayal of rural India, TVF Panchayat has earned critical acclaim and won the hearts of audiences, making it a standout gem in the realm of Indian web series.

Cast and Characters

TVF Panchayat (Season 1 & 2) have various characters, which together, make both the seasons a great viewing package. The complete cast of TVF Panchayat web series have won the hearts of the Indian audience as they have very well portrayed the life of common people residing in a small village. The main cast and their portrayed characters are-

1. Jitendra Kumar as Abhishek Tripathi, Panchayat Secretary
2. Neena Gupta as Manju Devi Dubey, Pradhan
3. Raghubir Yadav as Brij Bhushan Dubey, Manju Devi's Husband, Pradhan-Pati
4. Faisal Malik as Prahladchand "Prahlad" Pandey, Upa-Pradhan
5. Chandan Roy as Vikas, Office Assistant
6. Sanvikaa as Rinki, daughter of Pradhan
7. Durgesh Kumar as Bhushan aka Banrakas, Kranti's husband and Brij and Abhishek's rival
8. Sunita Rajwar as Kranti Devi, Bhushan's wife and Manju Devi's rival
9. Pankaj Jha as MLA Chandra Kishore Singh (season 2)
10. Aasif Khan as Ganesh, Bride Groom (season 1)

Literature Review

According to Mehta & Kaye (2021), Indian film, television, and music are the country's most popular domestic and export products. The authors of "Pushing the Next Level: Investigating Digital Content Creation in India" found that the proliferation of digital media platforms has had far-reaching effects on the content creation industry. The research argues that a more comprehensive paradigm should be used in future studies of online content makers.

Opportunities for innovation and artistic expression abound in the many web series currently in production. The rise of VOD services like Netflix has "ushered in a mediated society of instant gratification, endless entertainment choices, and immersive experiences in televisual fantasies that combine drama and realism in irresistibly compelling and spectacular ways," says one expert. S Matrix (2014).

The shift toward online content consumption has made web series a hot commodity in the media industry. Shows like "Game of Thrones," "Friends," and "Narcos" all attracted massive audiences. The Friends finale was watched by over 52 million people, making it one of the largest crowds ever for the conclusion of a television series (Carter, 2004)

The fact that so much research has already been done on these performances is indicative of their widespread interest and success in piqueing academic curiosity. For an explanation of how the shifting power dynamics in the storey affect the identities of the characters, see Shraddha Mhasawade's Breaking the Stereotypes and Rewriting the Identities in Game of Thrones (Mhasawade, 2012).

The content of Friends was analysed to see how the show first used the Hangout comedy format (Picone, 2014). In total, 12.1 million people watched the season seven finale of Game of Thrones around the world (Rodriguez, 2017). In total, 27.2 million people watched Season 3 of Narcos (Chichizola, 2017).

Haritha (2021) in her study "A Study on the Forthcoming Revolution of Entertainment Service: Over The Top (OTT)" claims that the media and entertainment industry has altered as a result of the rise of Over-the-Top (OTT) platforms and internet streaming services like Netflix, Amazon Prime, Hotstar, Zee5, and Voot.

Laghat (2017) discusses the rise in OTT usage, particularly on mobile devices, in his article titled "How OTT players are set up to lure Indian viewers." It describes that viewers are always benefited by the OTT as they have access to content from all around the world.

The working of a significant section of organisations has undergone a significant transformation as noted in "THE RISE OF OTT PLATFORM: CHANGING CONSUMER PREFERENCES" authored by (Jain, 2021). As web usage among its ideal interest group has increased, media outlets have had to deal with extraordinary adjustments in their responsibilities. This environment is particularly favourable for the global expansion of OTT platforms.

Regional language Internet users are growing at a faster rate than their Hindi and English-speaking counterparts. Viewers are more likely to interact with and enjoy content that is localised to their language. As a result, Amazon Prime and Netflix, two of the largest streaming services in the world, are increasing their budgets to produce content in eight additional major Indian languages in addition to Hindi and English. (Patel 2020)

Objectives of the Study

The objective of this research study was to analyse the success actors of Panchayat Web Series (Season 1 & 2). It tries to identify several factors such as favourite season, character, and other elements like grounded story plot, village life, background music, which together have made this web series a huge hit in terms of popularity and viewership.

Data Analysis & Interpretation

The Most Interesting Element of TVF Panchayat Web Series (Season 1 & 2)

Respondents found several aspects of the Panchayat Web Series intriguing. The portrayal of the common man and a grounded story plot stood out as the most captivating elements, with 66.3% and 51.5% of respondents selecting them, respectively.

The light-hearted comedy, engaging dialogues, natural acting performances, and the series' ability to present purposeful moments also garnered significant interest, with varying percentages ranging from 23.8% to 51.5%.

Elements such as background music, camera work, and the family storyline without nudity received lower preference percentages, suggesting they were relatively less influential in capturing viewers' attention. However, it is a matter of fact that these elements play a crucial role in shaping any web series or movie.

Favourite Character from TVF Panchayat Web Series (Season 1 & 2)

Jitendra Kumar's portrayal of Abhishek Tripathi struck a chord with the majority of respondents, with 76.2% selecting him as their favourite character. This showcases the audience's appreciation for his performance and the relatability of his character.

Raghubir Yadav's portrayal of Brij Bhushan, Chandan Roy as Vikas, Faisal Malik

as Prahladchand, and Neena Gupta as Manju Devi also garnered notable popularity. However, their preference percentages ranged from 34.7% to 47.5%, indicating a relatively lower level of favourability compared to Jitendra Kumar's character.

Characters such as Sanvikaa as Rinky, Pankaj Jha as MLA Chandra, Durgesh Kumar as Bhushan, and Sunita Rajwar as Kranti Devi received lesser preference percentages, suggesting they might have had relatively minor impact on audience.

Reasons to Watch TVF Panchayat Web Series (Season 1 & 2)

When asked what insisted the respondents to watch the Panchayat web series, the most influential factor was an encounter with its trailer either on YouTube or Amazon Prime, with 51.5% of respondents indicating this as their motivation. This highlights the effectiveness of promotional trailers in generating interest and attracting viewers.

23.8% of respondents reported that the series was suggested to them by someone, indicating the role of word-of-mouth recommendations in driving viewership.

Discovering the series through social media was another significant factor for 18.8% of respondents, emphasizing the impact of online platforms in spreading awareness and generating buzz.

Relatively fewer respondents mentioned learning about the series through news channels (TV, radio, newspaper, or online news portals), suggesting that traditional news media played a smaller role in influencing viewership decisions.

Favourite Season of TVF Panchayat Season 1 vs. Season 2

The Season 1 of the Panchayat Web Series emerged as the clear favourite among the respondents, with 55.4% selecting it as their preferred season. This indicates that the initial season had a stronger impact and resonated more with the audience.

Nonetheless, Season 2 garnered a considerable following, with 44.6% of respondents favouring it. This suggests that the subsequent season successfully maintained or built upon the series' appeal, maintaining the interest of a significant portion of the viewers.

The Emotional Track in TVF Panchayat Season 2

The last episode of Panchayat Season 2 left viewers moist-eyed with its emotional track. When asked whether the respondents also felt to cry, an overwhelming majority of respondents, 82.2%, admitted to feeling emotional and shedding tears while watching the last episode of Panchayat Season 2. This indicates the strong emotional impact the episode had on the viewers, successfully evoking a sense of sadness and empathy.

When asked if they believed the emotional track portraying the pain of losing someone was unnecessary and could have been avoided, 52.5% of respondents answered "No." This suggests that a majority of viewers felt that the emotional track added value to the series, deepening its emotional impact and narrative.

However, 47.5% of respondents answered "Yes," indicating that a significant portion of viewers believed the emotional track could have been omitted, possibly due to personal preferences or a desire for a different storytelling approach.

The Need of nudity, vulgar language, alcohol, drugs, or violence in web series

When asked whether any web series must have content with nudity, vulgar language, alcohol, drugs, or violence to make it successful

and popular, the majority of respondents, 77.2%, answered "No," implying that they do not consider explicit content as essential for the success and popularity of a web series. This suggests a preference for content that relies on other creative elements such as storytelling, character development, and production quality to engage the audience.

15.8% of respondents answered "Maybe," indicating some uncertainty or openness to the possibility that explicit content may have some influence on a series' success.

A relatively lower percentage of respondents answered "Yes," suggesting a minority viewpoint that explicit content is necessary for a web series to gain traction and popularity.

The scope of family-oriented web series

The respondents were asked whether they would like to watch such family-oriented web series in the future as well, an overwhelming majority of respondents, 89.1%, expressed a resounding "Yes" to watching similar family-oriented web series with a portrayal of the common man's life in the future. This indicates a strong interest and desire for content that resonates with the experiences of everyday people.

A smaller percentage of respondents, 9.9%, answered "Maybe," suggesting a level of openness but also some uncertainty. A relatively minor percentage of respondents answered "No," indicating that only a small fraction expressed disinterest in such content.

The wait for TV Panchayat Season 3

When asked about the excitement and wait for next season, a high majority of respondents, 91.1%, expressed high levels of excitement and eagerness for the release of Season 3 of the Panchayat Web Series. This demonstrates the series' strong fan base and anticipation among viewers. A small percentage of respondents answered "No" or "Maybe," indicating fewer enthusiasm or uncertainty regarding their interest in the upcoming season.

Findings

The conducted research provides valuable insights into the viewership and reception of the Panchayat Web Series, focusing on seasons 1 and 2. The findings reveal the preferences, motivations, and emotional impact experienced by the surveyed audience.

From the data analysis it is evident that Jitendra Kumar's character as Abhishek Tripathi, stands out as the favorite among respondents, with a substantial 76.2% selecting him. While other characters also garnered notable popularity. The research highlights various factors that drove viewers to watch the Panchayat Web Series. The trailer on YouTube or Amazon Prime served as a significant influencer, with 51.5% of respondents citing it as their motivation. Season 1 of the series emerged as the clear favorite among respondents. The most captivating elements of the Panchayat Web Series were the portrayal of the common man and a grounded story plot. The emotional Impact of the series is evident from the fact that 82.2% of respondents admitted to feeling emotional and shedding tears during the last episode of Season 2. Notably, the majority of respondents disagreed that explicit content, including nudity, vulgar language, alcohol, drugs, and violence, is necessary for a web series to be successful and popular. The research concludes with a resounding interest in future family-oriented web series with a common man's life portrayal, most respondents expressed a willingness to watch such content. With high anticipation for Season 3, the Panchayat Web Series has established itself as a popular and well-received show among viewers.

Conclusion :

In conclusion of the study, the Panchayat Web Series has achieved notable success, evident through its popularity among viewers. The series, available on Amazon Prime Video, portrays the life of an engineering graduate who becomes a Panchayat secretary in a fictional village. With a talented cast including Jitendra Kumar, Sanvikaa, Raghubir Yadav, Neena Gupta, and others, the series has captivated audiences with its blend of comedy and drama. The research findings indicate that the series has resonated with viewers due to its relatable characters, grounded storytelling, engaging dialogues, and natural acting performances. The portrayal of the common man's life and the absence of explicit content have been appreciated by the majority of respondents. The anticipation for Season 3 is high, reflecting the continued interest and enthusiasm of the audience. The Panchayat Web Series has successfully connected with viewers, showcasing the importance of relatability and well-crafted storytelling in creating a successful and engaging web series.

References :

1. Carter, B. (2004, May 8). 'Friends' Finale's Audience Is the Fourth Biggest Ever. The NewYork Times
2. Chichizola, C. (2017). CInema Blend. From cinemablend.com: https://www.cinemablend.com/television/1702940/wait-narcosseason-3-got-how-many-viewers-in-its-first-week
3. Haritha, T., & Joseph, V. (2021). A Study on the Forthcoming Revolution of Entertainment Service: Over The Top (OTT). International Research Journal of Modernization in Engineering Technology and Science, 3(9), 1643-1646
4. Jain, M. (2021). THE RISE OF OTT PLATFORM: CHANGING CONSUMER PREFERENCES. EPRA International Journal of Multidisciplinary Research (IJMR), 7(6), 257-261
5. Laghate, G. (2017, March 02). How OTT players are geared up to woo Indian viewers.
6. Matrix, eve Sidney (2014). The Netflix Effect: Teens, Binge Watching, and On-DemandDigital Media Trends. Queen's University. Retrieved fromhttps://www.researchgate.net/publication/270665559 Date 21.2.2020
7. Mehta, S., & Kaye, D. B. V. (2021). Pushing the Next Level: Investigating Digital Content Creation in India. Television and New Media, 22(4), 360-378. https://doi.org/10.1177/1527476419861698
8. Mhasawade, S. (2012). Academia.eu. From academia.edu: https://www.academia.edu/Documents/in/Game_of_Thrones
9. Patel (2020) Microbial Channels: Forbidden Fruit from Missense Rather than Nonsense 141-152
10. Picone, J. (2014). Evolution Of The Sitcom: How Friends Invented The Hangout Comedy. Student Resources.
11. Rodriguez, A. (2017, August 30). QUARTZ. From qz.com: https://qz.com/1064781/game-of-thrones-broke-its-own-viewershiprecords-four-times-in-a-single-season/
12. https://www.primevideo.com/detail/Panchayat/0KEP4A6DWRKFYQFTSU5RXHEAN2
13. https://www.primevideo.com/detail/0QBVWMG8CH80NL18AY37F725FH/ref=atv_dp_season_select_s2

Hindustani Classical Music : A Harmonious Co-existence of Tradition and Experimentation

Dr. Rishpal Singh Virk** **Amanneet Kaur Arora***

Abstract

Hindustani classical music, a rich and intricate musical tradition rooted in the Indian subcontinent, has evolved over centuries while preserving its core principles. Thisresearch paper delves into the trajectory of Hindustani classical music, tracing its journey from its traditional foundations to the realm of experimental approaches. The paper discusses the historical evolution, core principles, and the role of various maestros in shaping the tradition. Furthermore, it examines the emergence of experimental elements within the framework of Hindustani classical music, highlighting the challenges and opportunities presented by this evolving landscape. By analyzing this transition, the paper aims to shed light on how the interplay between tradition and experimentation has shaped the course of this musical tradition.

Keywords: *Indian Music, Traditional, Transmission, Gurukul.*

Research Methodology: *This research paper employs an analytical study of various styles and traditions of Hindustani music, drawing uponliterature, musical analysis including primary and secondary sources. To understand the experimental approach, latest texts, interviews and performances reviewed to gain deeper insights into the subject matter.*

INTRODUCTION

Hindustani classical music has a profound and deeply rooted musical heritage that has captivated audiences with its intricate melodies, improvisational prowess, and spiritual depth. This paper explores the traditional foundations of Hindustani classical music, including its historical origins and its essential components. Furthermore, it investigates the ways in which this tradition has embraced experimental approaches while maintaining its core essence.

India, a nation enriched with diverse cultures, comprises of variety of art forms that includes music, poetry, painting, pottery, sculpture textile art etc. Amongst all these the art of music is considered to be the superior most i.e. the finest form of art, as there is no limitation of either language or literature. Besides this, one can easily express his or her feelings through the medium of music. In short, it can be said that the boundary which consists of set phrases of notes within a Raag, when sung by a classically trained musician with a proper rhythmic cycle & tempo is enough to express the inner feelings and emotions of that individual.

Due the advancement of science and technology in the modern times, things are growing and progressing on quite a higher note and certain changes are being expected in each and every sphere of life. This continuous modification has made a deep impact on various art forms too. Undoubtedly, music as an art form has also come up with drastic transformations. The subject is directly related to society which

*Research Scholar, Department of Performing and Fine arts, Central University of Punjab, Bathinda, India
**Assistant Professor, Department of Performing and Fine arts, Central University of Punjab, Bathinda, India

includes a continuous change in thought process, needs, customs of a person and these changes have effected these art forms including music directly.

TRADITIONAL APPROACHES

The historical evolution of Hindustani sangeet can be traced back to ancient scriptures, where references to musical concepts are found. Over time, this tradition absorbed influences from various cultures and dynasties, leading to the emergence of distinct Gharanas[1](Chaudhary 16-83)which have their unique styles and interpretations. The Mughal era played a crucial role in shaping the presently heard Hindustani Sangeet, as it blended indigenous melodies with Persian and Central Asian elements. The contributions of legendary musicians such as Miyan Tansen and Sage Amir Khusrao laid the foundation for the subsequent development of the tradition.

Due to this influence it has broadened the boundaries of Indian Classical music and allowed it to experiment within those boundaries but still achievingnew dimensions. In ancient times, the taleem of Hindustani Sangeet was imparted orally under the Guru-Shishya Parampara representing a Gharana. The word 'Gharana' comes from the term 'Ghar'. The style of that Gharana means the style initiated by a particular family of musicians, which continues atleast for three music generations. Obviously, an outstanding artist develops a style of his own when bears a distinctive mark at first he confines it to the members of his family and then the students learning under his guidance. The tradition was kept alive through this customary method.

By the twentieth century, the trend of teaching music as a subject has grown incalculably. This traditional training system got itself established academically as an independent subject. It has effectively reached at educational institutions, universities, schools and colleges, where a new method of imparting music education in a written and oral form started all together. This is the reason that music has got a proper status of a subject academically like other disciplines. Earlier the interests of the students were quite limited as the teaching and learning of music was limited only at the mentor's place. As the students are being trained in music at institutions nowadays, it is earning a lot of respect as all the sections of the society have the access to learn music. It has shifted itself from a traditional form to institutionalized form while trying to maintain its ethical and cultural values. The nature of music and the sense of sacredness associated with it is such that not only the subject but the teacher teaching the subject is also respected immensely. Although many essential steps are being taken by the teachers who are even playing the role of a Guru to adopt creative and innovative strategies which are not only making the experience of learning music an enjoyable one but it is also helping in inculcating moral virtues and moral education. For instance, one of the renowned musical institutes of India, ITC SRA Calcutta, has experimented on the traditional Guru-Shishya Parampara and amalgamated it with the modern teaching techniques where the students learn from all the teachers but they are trained under a specific Guru for a long period of time. According to Dr. Manjushree Chaudhary: "The students have to sing before an invited audience of the academy. This appears to be an extremely sensible way of music education, because……"[2]. (Chaudhary 5)

Initially, it was started on experimental basis under which the students were given information about the intricacies of the subject in well-defined form and after evaluation awarded with a degree in music. The notations of compositions in various ragas, notation of Talas were written and explained in such a

manner that it guided the students even in the absence of a teacher. The students and scholars started analyzing music with an interdisciplinary approach. Evaluating the history via ancient texts, allowed the musicians and scholars to acquire new knowledge of Shastras and many other topics related to the same. This experiment became quite a successful one because if any student have forgotten about any raga, taal, bandish they have learnt it again from the written source, hence remembering the forgotten part.

With the implementation of music as a subject, music education was effectively made accessible to the masses in these educational institutions without any hassle. Many such experiments begun with a sole aim to promote encourage and impart the musical education among students[3] (Shrikhande 205). Publishing texts(Books, Research Journals andarticles etc.) related to music learning and documenting came into existence, for example, Kramik Pustak Maalika by Pt. V.N Bhatkahnde (in Six volumes); Sangeetanjali by Pt. Omkarnath Thakur; Sangeet Bal Bodh by Pt. V.D Paluskar; Raga Vigyan by Pt. Vinayak Rao Patwardhan are few books which gained popularity in the early 40's. Later to avoid language barriers the content was printed in various regional languages so that every student around the world can understand the depths of Indian classical music.

Along with the Guru-shishya Parmpara, new scientific techniques, modern electronic gadgets and other facilities also played a pivotal role in the method of musical teaching-learning process. Deserving and talented students were encouraged and supported financially by providing academic fellowships or scholarships etc. The institutionalized education system also generated various avenues of employment opportunities for students of music such as music teachers, music directors, playback singers, composers etc. In this way, the scope of music education expanded through the institutionalized method of teaching in which many other important subjects related to music were added to it such as astronomy, music science, phonology, music therapy, vocal culture, psychology, sociology etc.

EXPERIMENTAL APPROACHES

This experimental approach has changed the conventional thinking of Musicians, earlier the Maestros representing a particular gharana or tradition barely collaborated with the artists of other gharanas as they wanted to maintain the purity and identity of their respective schools of music. But now the artists have also started believing in the importance of collaborations and growing more of experimentalism rather than the existing traditional method.

On the contrary, with the impact of globalization and wider job opportunities, people have started migrating to other countries resulting in the blending of diverse cultures, they have also started adopting and learning the native languages, cultures or clothing of that place etc. It is due to this globalization that the Gharanedar artists have unchained themselves from the limitations of a particular Gharana. It has become equally important for every artist to maintain a balance between the tradition and contemporary or experimental music prevalent nowadays. With this approach Indian music has gained more popularity internationally.

This experimentalism has even encouraged by many Gharanedaar artists to record their voice as playback singers in films. Big starlets like Ustaad Bade Ghulam Ali Khan[4], Ustaad Amir Khan[5], Pandit D. V. Pulaskar[6], Pandit Bhimsen Joshi[7], Pandit Jasraj[8], Ustad Rashid Khan Sahib[9] Pandit Ajoy Chakraborty[10] etc. have become more famous with their melodic song recordings related to Hindustani Music. Thus, it is observed from time to time

that the artists of Hindustani Sangeet have also played a significant role in the promotion of Indian film music.

In recent decades, Hindustani music has seen a gradual integration of experimental elements. Musicians are exploring cross-genre collaborations, fusion with electronic music, and incorporation of global influences. This experimentation has widened the genre's appeal, attracting younger audiences and diversifying its sonic palette. However, balancing experimentation with the preservation of traditional authenticity remains a challenge, sparking debates about the extent to which tradition can evolve without losing its essence.

Among the senior artists of Indian Classical music, the name of Pt. Ravi Shankar is particularly worth mentioning and can be considered a hallmark in itself. While his performances he not only just performed on stage but also explained Indian music to foreigners via lecture demonstrations, workshops etc. He also established many musical institutions in European countries. He worked with a target to teach the students Indian classical music having different cultures and background. He is responsible in creating many new ragas. Apart from Pt. Ravi Shankar, many other eminent artists involved themselves into experimental music. Currently Ustad Zakir Hussain, Ustad Amjad Ali Khan, Late Pt. Shiv Kumar Sharma, Pt. Vishva Mohan Bhatt, Pt. Hariprasad Chaurasia etc. are following his footsteps. These artists have performed Indian Music around the globe and have also established many musical institutions.

A new genre of fusion was created with the efforts of Pt. Ravi Shankar and Ustad Zakir Hussain by experimentally mixing Indian and western music while promotion of Indian music. This genre or fusion music is not only popular at the national level but also at the international level and today has a place of its own.

Other than this many experimental works have been done by the Gharanedaar artists like a collaboration of Pt. Ravi Shankar with Yehudi Menuhin (violinist) and this Jugalbandi (duet) became very popular. This presentation merged the West with the East and created the music album "Mamaj Dummaje Mange", and the album was awarded a Grammy Award in the music category. This jugalbandi became very popular as a form of fusion music[11] (Kumar 33). In addition, the orchestral style introduced by his Guru Ustad Baba Allaudin Khan later carried out by him also became very trendy. Pt. Ravi Shankar directed the music of some Bengali, Hindi, English films such as Kabuli Wala, Anuradha, the Flute and the Arrow etc. He also composed a musical work called My Music My Life.

Similarly, Ustad Zakir Hussain also did many experimental works in the field of music, like he created many musical bands, first a band named Shakti with John McLaughlin and L. Shankar was created. After that he founded another band having the title, "The Dig Rhythm Band" he exhibited his art in collaboration with many foreign artists such as George Harrison, Jou Henderson, Jack Burrows, Van Merisen, Titu Peuente, Panaro Serendas, Billy Cobham etc[12]. In addition, he got associated with many other bands like The Bitus and Shanti Band etc[13].

Collaboration with Shakti Band, he released many albums related to fusion music such as Saturday Night, In Bombay the Believer etc. Apart from this, he released many more musical albums such as in the Material World in 1973, Making Music in 1987 and East and West in 1988.

Another Maestro Ustad Amjad Ali Khan has also worked with foreign artists like Charlie Bird (Guitarist) and Igor Farole

(Violinist) etc[14]. Pandit Shiv Kumar Sharma and Pandit Hari Prasad Churasiya give music in the films like Silsila, Lamhe and Chandni etc. He composed many musical albums like 'Call of the Valley'[15] and 'Music of the Mountains'[16].

Pt. Ravi Shankar's disciple Pt. Vishva Mohan Bhatt is the inventor of Mohan Veena and winner of the prestigious Grammy Award. He combined the techniques of Western Hawaiian guitar, sitar, sarod and veena with 14 strings to create this instrument. He also collaborated with many foreign artists such as Chinese faraway player Jie Wing Chen, Dobro guitarist Jerry Douglas, Arabic Awadh player Simone Shadhinand presented a Jugalbandi. Adding more to it, he also composed many musical albums such as Music for Relaxation, Tabula Rasa, and Meeting by the River etc[17].

The experimental work done by present-day sitar player Niladri Kumar is also commendable and appreciated. He made experiments on a new instrument by blending of Hindustani Sitar and Western guitar and named this unique instrument as Zeetar. He made a booming attempt to combine and fuse the music of the East and the West.

CHALLENGES AND OPPORTUNITIES

The shift towards experimental approaches presents both challenges and opportunities. While experimentation fuels innovation and adaptation, there is a risk of diluting the intricate traditional structures that define Hindustani classical music. The challenge lies in preserving the essence of ragas, talas, and bhavas while embracing modern elements. As fusion and experimentation become more common, debates arise regarding the extent to which tradition can evolve without losing its authenticity. Striking this equilibrium is essential to ensure the genre's continued relevance and integrity.

CONCLUSION

Hindustani classical music stands as a testament to the enduring power of tradition and the creative potential of experimentation. The evolution of this musical tradition from its historical roots to its modern experimental phase showcases its adaptability and resilience. As the genre continues to evolve, it is imperative to uphold the core principles while embracing innovation, thereby nurturing a harmonious coexistence of tradition and experimentation.

Hindustani classical music exemplifies the harmonious co-existence of tradition and experimentation. Its historical evolution, rooted in ancient scriptures and influenced by diverse cultural interactions, laid the foundation for a tradition that continues to evolve. The core principles of raga, tala, and bhava, upheld through the Guru-Shishya Parampara, remain the soul of the tradition. The contributions of visionary maestros have propelled the genre forward while maintaining its reverence for tradition. The introduction of experimental elements, though challenging, has expanded the genre's horizons, attracting a new generation of enthusiasts. As Hindustani classical music navigates the dynamic co-relation between tradition and experimentation, it ensures its enduring relevance in an ever-changing musical landscape.

In this way it can be seen that many of the above experiments were done in the field of music by these Gharanedar artists and moving towards experimentalism. This development gave a new direction to Indian classical music like sharing a common platform with foreign artists and became a reason to attract the musical audience from different parts of the world. A musical relationship got established between these different artists and music actually became a universal language to convey the inner feelings and emotions. The invention of new musical

instruments, the rise of musical content or literature, the commercialization in direction of music etc. were adopted in Indian music that led to the better promotion and propagation of the subject.

References :

1. Chaudhari, (Dr.) Manjushree. *Indian Music in Professional and Academic Institutions.* Sanjay Prakashan. New Delhi. Pg. 16-83. 2017 Edition. English
2. Chaudhari, (Dr.) Manjushree. *Indian Music in Professional and Academic Institutions.* Sanjay Prakashan. New-Delhi. Pg. 5. 2017 Edition. English.
3. Shrikhande, (Dr.) Suresh Gopal. *Hindustani Shastriya Sangeet ki Shiksha Pranaali.* Abhishek Publications. Pg. 205. Chandigarh-17. 1993. Hindi.
4. Khan, Bade Ghulam Ali. *Prem Jogan Ban ke..* Movie: Mughal-e-Azam. 5 August 1950. Hindi. https://www.youtube.com/watch?v=HmZnOlWYtqM
5. Khan Amir. *Jhanak Jhanak Payal Baje*. Movie: Jhanak Jhanak Payal Baje. 30 July 1955. Hindi. https://youtu.be/2vo_HTAgpE4
6. Bhushan, Bharata. *Tumre Gun Gaaye..* Movie: Baiju Bawra 5 October 1952. Hindi. https://www.youtube.com/watch?v=4MKmAJ_t17k
7. Joshi, Pandit Bhimsen and Manna Dey. *Ketaki Gulab Juhi*. Movie: Basant Bahar. 7 December 1956. Hindi. https://youtu.be/wJJ9Ji8qZyA
8. Pandit Jasraj. *Vaada Tumse hai Vada*. Movie: 1920. 12 September 2008. Hindi. https://www.youtube.com/watch?v=85O5SRIHjzA
9. Khan, Ustaad Rashid. *Aaoge Jab tum o Sajna..* Movie: Jab We Met. 26 October 2007. Hindi. https://www.youtube.com/watch?v=CNZMIhckaA0
10. Chakraborty, Pandit Ajoy and Begum Parveen Sultana. *Aan Milo Sajna.* 15 June 2001. Hindi. https://youtu.be/Bx3izRX7bsk
11. Kumar, Naresh. *Hindustani Sangeet Mein Fusion Jugalbandi*, Sangeet Kala Vihar, September 2011, Pg. 30
12. Lwevandoscy, Kevin. Discogs.com. 2000. English. www.discogs.com/artist/402896-Diga-Rhythm-Band
13. Husaain, Ustaad Zakir and Ustaad Aashish Khan. *Shanti: An Indo-American Group (1969-70).* Aashish Khan School of World Music. 11 August 2021. https://www.youtube.com/watch?v=fcfNIJ6c51Q
14. Jeevani.org https://jivani.org/Biography/502/%E0%A4%85%E0%A4%AE%E0%A4%9C%E0%A4%A6-%E0%A4%85%E0%A4%B2%E0%A5%80-%E0%A4%96%E0%A4%BE%E0%A4%A8-%E0%A4%9C%E0%A5%80%E0%A4%B5%E0%A4% A8%E0%A5%80
15. Sharma, Shiv Kumar and Brijbhushak Kabra, Hari Prasad Chaurasia. *Album: Call of the Valley.* Ivanzre. 21 January 2018. https://www.youtube.com/watch?v=yFWfF3Zow74
16. Sharma, Shiv Kumar. *Album: Sound Scapes-Music of the mountains (Ballad)*. Music Today. 26 February 2016https://www.youtube.com/watch?v=tvMj8pRJyGU
17. Bhatt, Vishwa Mohan. Interview. Dr. Rishpal Singh Virk. December 2014. Hindi.

The Fractured Self: Exploring Identity in Select Fiction by Amitav Ghosh

Dr. K.Kumar** **R. Amalan***

Abstract

Amitav Ghosh is one of the finest postmodern writers. The political and cultural context of post-independent India has immensely impacted Amitav Ghosh. Being a social anthropologist and having the chance to visit other locations, he remarks on the contemporary situation the world is going through in his books. Cultural fragmentation, colonial and neo-colonial power systems, cultural decay, the materialistic offshoots of modern civilization, the dying of human connections, the merging of truth and fiction, and the desire for love, security, and diaspora are important preoccupations in his works. The blurring of genres, one of the postmodern features, may be noticed in his works. He modifies the shape of the narrative by merging numerous genres. Ghosh's academic antecedents – history, sociology, anthropology – enhance his fictional work, yet none of his books are autobiographical. Diasporic Identity constantly arouses his attention and he studies this "space" concerning its history. Patterns begin to develop as he travels between various civilizations and different locations. So, here this paper seeks to analyze the identities of the characters in the novels of Amitav Ghosh from a postcolonial viewpoint and attempts to investigate the complexity of cultural adaptation of the characters of the selected writer, Amitav Ghosh.

Keywords: *Identity, Postcolonialism, Culture, adaptation, post-colonial identity, fluid identity, imperialism.*

Methodology: *This study is supported by primary and secondary sources.*

Introduction:

Amitav Ghosh is one of the most influential writers of Indian heritage after Salman Rushdie. Because of the many subjects addressed in his generally composite work, his writings elicit interesting critical reactions. Despite this variety, Ghosh has been consistently examining the barriers erected to separate, for example, country from nation, culture from culture, and novels from other journalistic publications. An in-depth examination of Ghosh's works would reveal how Ghosh destabilises the authoritative image of any fixed identity.

Identity is still one of the most significant and contentious issues in current ideological, cultural, and political study. There are two opposing perspectives on this concept: essentialism and postmodernism. The essentialist view of identity asserts that identity is immutable and unaffected by other social or cultural factors. The essentialist notion of identity, critics contend, also conceals the critical internal distinction between the component pieces of any identity. Prioritizing any component of an individual's experience always carries a high danger of denying other aspects. The postmodern concept of identity, on the other hand, regards identity as arbitrary and meaningless. Postmodernist critics see experience and identity as ambiguous and epistemically unreliable as the indeterminacy of linguistic reference championed by deconstruction.

Postcolonial literatures are the result of the interaction of imperial culture with a diverse range of indigenous cultural practises. As a consequence, 'Postcolonial theory' existed long

*Ph.D. Research Scholar, Department of English, Periyar University, Salem, Tamilnadu.
**Assistant Professor, Department of English, Government Arts and Science College, Harur, Tamilnadu.

before that title was applied to it. The post-colonial theory evolved after colonised people had cause to reflect on and express the tension that came from this difficult and contentious, but ultimately dynamic and powerful, combination of imperial language and personal "experience."Post-colonial theory discusses migration, enslavement, repression, resistance, representation, diversity, race, gender, location, and reactions to imperial Europe's prominent master discourses such as history, philosophy, and linguistics, as well as the basic experience of speaking and writing.

The Fractured Self in Amitav Ghosh:

The Hungry Tide by Amitav Ghosh explores the personal divide between individuals and demonstrates how knowledge about oneself is constantly elusive, fluid, and in the process of creating and unmaking. The book tells the narrative of Piyali, an Indian-born but resolutely American cetologist who does study on dolphins in the Sunderbans tidal area, experiences changes, and eventually settles in the tidal nation. Another key theme in the narrative is Piyali's developing affection for and admiration for Fokir, an uneducated but talented fisherman. The novel also discusses how Kanai, a linguist working in Delhi, takes an interest in Piyali and how his future change is impacted by his reading of his uncle's diary describing the 'Morichjhapimassacre'. The characters in Ghosh's story are in a state of mayhem. Ghosh demonstrates that knowledge of the Other cannot be definite, fixed, or absolute by grouping them and displaying their psychological states, and that knowledge of the Other is conditioned by knowledge of the Self and vice versa. Ghosh understandably believes in the narrative that the characters tell.

Amitay Ghosh's *The Hungry Tide* examines problems of identity via the revelation of character. Piyali Roy, an Indian by origin but an American by culture, travels to the Sunderbans to study gangetic dolphins. Following the original misadventure, Piyali recruits the services of Fokir, an uneducated but talented fisherman, to pursue dolphins in the Sunderbans' labyrinthine waterways. After meeting and interacting with Fokir, Piyali's identity as an evident American and a lady of science experiences a progressive intellectual and mental metamorphosis. Piyali is moved by Fokir's genuinely human essence, untainted by dogma. As a result, Piyali's marked foreignness is readily overshadowed by Fokir's wide intuitive inclusivity. Thus, the unique quaintness and aloofness that greets every foreigner is missing in Fokir's attitude to and familiarity with Piyali. Ghosh thus destabilises the essentialist idea of identity by not accepting social factors such as gender and ethnicity as inherently self-evident or genuine. Despite the fact that Piyali and Fokir are divided by social factors such as class, language, race, country, culture, education, and so on, they have a friendly relationship. Piyali's increasing relationship with Fokir therefore challenges the notion of identity as solid and stable, as the former builds closeness via her attentive approach to Fokir.

Kanai, a Delhi businessman knowledgeable in numerous languages, on the other hand, is unable to understand the connection between Piyali and Fokir because he fails to see the limits of nationality or language in building an identity for the people. Kanai is baffled as to how Piyali, the personification of science, could be interested in Fokir. Kanai dismisses Piyali's thankful appreciation of her beneficial contact with Fokir as "one of the most exhilarating events of my life" (HT, 268): "A momentary pang of jealousy

caused Kanai to make a disparaging comment." And all the time, you couldn't comprehend a word he said, could you?" (HT, 268). Kanai begins to identify all of the 'fundamental' distinctions between Piyali and Fokir: "Piya, there's nothing in common between you at all." You come from other worlds, different planets" (HT, 268). Piya's connection with Fokir is understandably limited by language, and Kanai, despite his command of many languages, fails to achieve success. Ghosh underlines the possibilities of meaningful interaction between persons separated by certain societal conditions in this passage. In other words, a person's identity, although influenced by different social circumstances, cannot be permanent, absolute, or constant.

Piya's growth begins with her developing comprehension of Fokir. Piya's studies necessitate her to be on the water with Fokir, her river guide, and his closeness has a transformative impact on her. She is attracted to Fokir because of his exceptional comfort and ability on the water: "I have worked with many competent fisherman before, but I've never encountered someone with such an astounding instinct: it's as if he can see straight into the river's heart" (HT, 267). Apart from Fokir's professional abilities, Piya is drawn to him due of several other similarities that Kanai misses since he views everything through his own prejudiced lens. When Kanai says cynically that any encounter unmediated by language is pointless, Piya responds confidently: "There was so much in common between us (Piya and Fokir) that it (language) didn't matter" (HT, 268). Thus, despite the fact that Piya and Fokir are separated by language, class, education, and the social institution of marriage, they create a potentially passionate relationship. Ghosh questions the legitimacy of identity-forming socio-cultural components such as marriage, class, and culture. In the Ghosian paradigm, the search for identity entails the dismantling of socially acquired culturally transmitted limits. As a result, the characters in Ghosh's works are continually trying to push the limits.

Nirmal, a schoolteacher and poet, in *The Hungry Tide,*notably of Rilke, falls in love with Kusum, who plainly does not share'saar's' status, position, or intelligence. For Nirmal, Kusum is his'muse,' and he is only the transcriber delving deeply into the terrible lives of the settlers in Morichjhapi, Nirmal finds poetry in the life of the settlers and sprinkles an ink of revolution in their fight. Nirmal's yearning for identity is realised via his affiliation with the Morichjhapi settlers. Nirmal shares the settlers' existential battle, and their cries infuse an inquisitive quest for his own identity, the basis of his belonging. Nirmal is dedicated to sustaining the'revolution from bottom.' Nirmal's metamorphosis is brought about by his acceptance of the life of a warrior in the cause of the downtrodden and displaced. Only through the eyes of the oppressed—whether political, cultural, economic, linguistic, or otherwise—do the main characters experience mental metamorphosis, ending in self-realization. As a result, Kanai comes to respect Fokir's predicament, which he had before dismissed. Nirmal, too, thinks he has been living a lonely existence, and it is through his involvement with the lives of the disadvantaged and socially impoverished Kusum that he discovers his life's goal.

Ghosh demonstrates the futility of social structures such as marriage in providing a stable, trouble-free existence for couples. Nirmal and Nilima are joined by the social formality of marriage, but their disrespect for

one other's way of life keeps them apart. Similarly intriguing is the concept of home, of belonging. Ghosh's The Hungry Tide delves into postcolonial topics such as belonging. The concept of home is not always linked to nationalism since the identity reinforced by nationalism should not be viewed as absolute or immutable. Piya, despite his American citizenship, always feels a connection with an Indian who is apart from him in terms of country, culture, language, class, and so on. Piya's experience therefore destabilises the essentialist idea of identity, and Ghosh focuses on the fluidity of identity.

Piya has planned her next endeavour under the auspices of Nilima's Badabon Trust. She would want to name it after Fokir and would like Moyna to assist her with data. Nilima is astonished to hear Piya referring to Sunderbans as her 'home' during a chat regarding the latter's future plans. As a result, the concept of 'home' is not percolated via the essentializing notion of a geographical limit bolstered by a feeling of shared or homogenous identity. As a result, Piya does not feel compelled to return to America. "For me (Piya), home is where the Orcella are: thus, there's no reason why this couldn't happen," she says (HT, 400). Piya's experience, which leads her to question the concept of a permanent identity like 'home,' thereby hybridises the alternative conception of home. Evidently, the postcolonial experience of migrancy and hybridity has significantly impacted the homogenising idea of national identity. Amitav Ghosh's deconstruction of numerous identity-forming components, as well as his demonstration of their limits, has been one of his ongoing preoccupations. Ghosh's search for identity incorporates a philosophic viewpoint that analyses the separation between humans. Piya learns to let go of all her preconceived notions about identity and falls in love with a guy who does not share her education, language, or culture, and she falls in love with a location far from 'home.'

Ghosh revisits the terrible struggle and horrific lives of the settlers in Morichjhapi, a sanctuary for tiger protection, in *The Hungry Tide*. Nirmal, a Rilke-quoting rebel, sees the throb of revolution in the settlers who were brutally expelled by the authorities. Squatters become Nirmal's subaltern awareness. Nirmal, a firm believer in Rilke's teaching that "life is lived in metamorphosis," shifts from prose to poetry, dreamy dreams to revolution.

On the other hand, the opening scene of Amitav Ghosh's *The Glass Palace* also introduces us to a question that will be repeated throughout this monumental epic narrative: the question of authority, specifically the authority to interpret new signs as they appear on the constantly changing landscape of colonised territory. The novel's portrayal of two families over three generations, pushed apart and drawn together by the forces of capitalism, exposes problems of economic, creative, cultural, and national power. Colonialism and the insurgent movement It is Ghosh's special skill to connect this issue with the live telling of his characters and to employ them to dive deeply into the convoluted nature of colonialism as it is experienced on a daily basis and as its legacy is carried down through time.

The Glass Palace is concerned with geographical entities, as well as space, distance, and time. Several storylines have been woven together. There are several characters. It's the narrative of various families, their lives, and their relationships. The protagonist of *The Glass Palace* is Rajkumar, an Indian orphan. Who is unintentionally sent to Burma? Rajkumar, an

eleven-year-old boy, is notable for his daring attitude, quick awareness, and readiness to take calculated risks. He is employed at Ma Cho's tea store. He enjoys acting his age in order to feel like an adult. He is recognised for being brave and exceptional. Rajkumar's lifelong hunt for places and people starts when he arrives in Mandalay. He is accepted by the city.

In Mandalay, he is assisting Ma Cho in running a dhaba right outside the royal palace. He became inquisitive about the fort, so he questioned Ma Cho about it—and Ma Cho had visited the fort's inside and says:

> It's very large, much large than it looks. It's city in itself, with long roads and canals gardens. First you come to the house of officials and noblemen. And then you find yourself in front of a stockade, made of hung teakwood-posts. Beyond lie the apartments of the Royal Family and their servants hundreds and hundreds of rooms, with gilded pillars and polished floors.
>
> Andright at the centre there is a vast hall that is like great shaft of light, with shinning crystal walls and mirrored ceiling. people call it *The Glass Palace.*(7)

The novel begins with a brief view of the palace through the eyes of Urchin, an eleven-year-old boy, while it was being ransacked and plundered by the locals before to the British conquest. The Glass Palace represents both strength and the frailty of empire.

Britain was spreading its commercial interests, notably in its colonies, during the eighteenth century. India, in example, had become more than merely a continent to pillage and dominate, but also a source of raw labour and military might to keep the military muscle engine humming. With the abolition of slavery in the empire in 1833, tens of thousands of destitute, eager Indian workers were recruited for work on plantations, docks, mills, and railroads in Burma, Fiji, the Caribbean, and Africa, while others were conscripted in what *The Glass Place*calls a "vast garrison."

As India's independence movement gathered momentum and England and Japan battled in East Asia in the twentieth century, these expatriate Indians faced a particularly agonising crossroads that called into question their sense of national identity. Unfortunately, the utopia of Indian families in Burma came to an end in 1942, during the Japanese invasion, when many were forced to flee back to India on foot through forest and mountains.

Rajkumar embodies the opportunist. He starts by employing indentured labourers in India before establishing a teak export enterprise in Burma's highlands. We can see the wheels of British commerce shaping the subcontinent and its other colonies into a vast trade and exploitation network via Rajkumar. And, although the book attempts to offer a comprehensive critique of empire, Ghosh's goal is not limited to only criticising colonial rulers. After all, "someone like Rajkumar is not stuck in his born station in life under the new colonial system, but is given a greater chance to thrive on his own initiative." Ghosh instead illustrates the complex concerns of allegiance that "come to torment them all" via the novel's characters.

Rajkumar and Saya John, both aliens, settle into teak commerce and then into rubber trade while providing the sole view of the local inhabitants in the narrative. Indians not only produce money, but they also supply the British with an active workforce to methodically drain Burma of its natural riches. The Indians in the

administrative service, as British representatives, play a part in embarrassing the Burmese monarchy.

The third factor is the departure of Indians from Burma in 1941-42, the emergence of Burmese nationalism under General Aung sung, and its quick conclusion with his killing in 1947. This was followed by independence in 1948, which only added to the disarray, civil war, and eventually the rebellion that brought General Ne to power and Burma to decades of internal persecution and foreign obscurity. Under the guise of protecting Burma from neo-colonialism and outside invasion, its own people recolonized the country. The novel not only addresses the broader issue of the creation of national consciousness but also reflects on the condition of former colonies from the perspective of the colonised. In some ways, it is about deconstructing the history of countries and re-forming some.

Conclusion:

In his select fiction, Amitav Ghosh explores the idea of the "fractured self" as a way of understanding the complexities of identity in the modern world. Ghosh's characters are often torn between different cultures, histories, and ways of life. This can lead to a sense of alienation and displacement, as well as a search for a more authentic sense of self.Ghosh's novels offer no easy answers to the question of identity. However, they do provide a nuanced and thought-provoking exploration of this complex issue. By examining the experiences of his characters, Ghosh shows how identity is not always fixed or stable, but can be fluid and ever-changing.

Works Cited :

1. Ghosh, Amitav. *The Glass Palace*: A Novel. Reprint, Random House Trade Paperbacks, 2002.
2. Ghosh, Amitav. *The Hungry Tide*. Delhi: Ravi Dayal, 2004.
3. *Post-Colonial Studies - Key Concepts* (3rd, 08) by Ashcroft, Bill - Griffiths, Gareth - Tiffin, Helen [Paperback (2007)]. Routledge, Paperback (2007), 2022.
4. Sarika PradiprаoAuradkar, *Amitav Ghosh A Critical Study*, Creative Books, 'New Delhi, 2007.
5. Mohanty, Satya P. "*The Epistemic Status of Cultural Identity: on Beloved and the Postcolonial Condition.*" Cultural Critique (Reprinted in "Reclaiming Identity" edited by Moya, Paula M.L. & Hames-Garcia Michael R., 32).

तबला संगति : कथक नृत्य के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय** **आनंद कुमार मिश्रा***

शोध–सार

संपूर्ण संगीत जगत में लय एवं ताल का बहुत महत्व है। तालविहीन संगीत को 'आरण्यक संगीत' कहा गया है अर्थात् वह संगीत जिसमें रंजकता न हो। तबला को ताल और लय के दर्शन हेतु सबसे लोकप्रिय वाद्य माना जाता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तबला का प्रयोग लगभग हर क्षेत्र में किया जाने लगा है। 'संगति' का अर्थ होता है किसी के अनुसार चलना। संगीत में संगति का अर्थ है– किसी गायक वादक या नर्तक के कहन, चलन, लय, ताल, प्रकृति, भाव के अनुसार वादन करना या अनुसरण करना। परन्तु नृत्य के साथ संगत करना पृथक कार्य है नृत्य की संगति करने के लिए संगतकार के अंदर श्रमिक हस्त, बौद्धिक क्षमता, उपज का ज्ञान, बोलो का भंडार एवं गुरु की सही शिक्षा–दीक्षा का होना अनिवार्य है। तभी वह एक कुशल संगतकार के रूप में वादन कर सकता है। नृत्य के बोलों को हू–ब–हू तबला पर निकालना संभव नहीं है। हर तबला–वादक अपने अंदाज एवं उपज के ज्ञान से उसी मुख्य बोल–समूह से ज्यों–के–त्यों मिलता–जुलता बोल प्रयोग कर संगत करता है जो एक कठिन कार्य है और बिना निरंतर प्रयास के कदापि संभव नहीं। प्रस्तुत शोध–पत्र में कथक नृत्य के साथ तबला संगति को समझने का प्रयत्न किया गया है। अनुसरण और वादन की एक साथ की गई प्रक्रिया को दर्शाने एवं उनका वर्णन ही इस शोध–पत्र का आधार है।

सूचक शब्द : *तबला संगत, कथक नृत्य, उपज, बोल, नगमा, ताल, लय*

शोध प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लेखन कार्य हेतु तथ्य–सामग्री संकलन के लिए विविध पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया है तथा उनकी सहायता से लेखन–कार्य किया गया है।*

(प्रस्तुत शोध–पत्र लेखन में प्रस्तुतकर्ता की सूझ–बूझ, गुरु–शिक्षा एवं व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर बोलों का प्रयोग किया गया है। इस शोध–पत्र को किसी भी रूप में न तो कहीं प्रकाशित किया गया है और न ही प्रकाशन के लिए प्रेषित किया गया है।)

शोध उद्देश्य :– इस शोध–पत्र के लेखन का प्रमुख उद्देश्य नृत्य पक्ष के तबला संगति को समझना एवं रेखांकित करना है।

शोध विषय :– भारत में शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आठ प्रमुख नृत्य आते हैं। जो इस प्रकार हैं –

1) भरतनाट्यम, 2) कथकली, 3) कथक, 4) ओड़िसी, 5) मणिपुरी, 6) मोहिनीअट्टम, 7) कुचीपुड़ी, 8) कुड़ीयाट्टम । इन सभी शैलियों में कथक एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अभी वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य कलाओं की श्रेणी में आता है।

संगति या संगत को परिभाषित किया जाय तो किसी के अनुसार जाना या चलना उसकी 'संगत' कहलाता है। संगीत में संगत का अर्थ होता है मुख्य कलाकार के गायन, वादन अथवा नर्तक में रंजकता प्रदान करना, उस प्रस्तुतिकरण को और अधिक मनमोहक, रोमांचक और मुख्य कलाकार के अनुसार वादन कर श्रोताओं को मनोरंजित करना। कथक के साथ आजकल नए प्रयोग किये जा रहे हैं अपितु सह गायन, तबला या पखावज संगत और एक तत अथवा सुषिर वाद्य का होना महत्वपूर्ण है और कहीं–न–कहीं अनिवार्य भी। नृत्य की संगति करना गायन और वादन (स्वर वाद्य) से काफी भिन्न है। नृत्य के साथ तबला एकदम एक साथ बजता है। कथक नृत्य के बोल तो कई बार तबले से भिन्न होते हैं। तबला–वादक अपने कुशलतानुसार उस बोल को अपने तालीम, शिक्षा एवं उपज द्वारा उन्हीं वजन के अनुसार सौन्दर्यात्मक बोलों का प्रयोग करते हैं। कथक नृत्य पूरा–पूरा तबले पर ही निर्भर

*शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

करता है और तबला पूर्णतः कथक के बोलों पर। कथक–नर्तक बोलों अथवा भावों द्वारा जब जिस रस की अभिव्यक्ति करता है, उन बोलों के साथ ठीक उसी प्रकार से संगति की जाती है जिससे उस रचना का भाव उसी तरह मंच पर प्रदर्शित हो, जिस रस अथवा भाव की अपेक्षा एक नर्तक रखता है।

कथक के साथ तबला–संगति बाक़ी सभी घरानों के कलाकारों द्वारा की जाती है परन्तु बनारस घराना में नृत्य के साथ तबला–संगति अन्य सभी से पृथक् है। चूँकि स्वतंत्र–वादन में ही खुले थाप, खुले बोल, खुले बाएं का प्रयोग होता है तो संगति में भी यह प्रयोग स्वाभाविक है और कथक नृत्य का गणनात्मक पक्ष ऐसा होता है जिसके हर एक प्रस्तुति के उपरान्त ताली बजती है या वाह–वाही मिलती है। उस वातावरण को उतना आकर्षक बनाने के लिए तिहाई के अंतिम भाग में तबला वादक कुछ अचंभित व चमत्कृत वादन कर और जोरदारी के साथ सम पर "धा" लगाता है। संगति का यह एक सबसे महत्वपूर्ण बिंदु है, जो हर तबला वादक को सुन कर प्राप्त होती है।

तबला या पखावज में ठेके का विस्तार, प्रस्ताव तथा कथक नृत्य में तत्कार का प्रयोजन लगभग एक जैसा ही है, जैसे– कथक नृत्य का "ता थई थई तत्, ता थई थई तत्, आ थई थई तत्, ता थई थई तत्" का तबला–वादन में "धा धिन् धिन धा, धा धिन् धिन् धा, धा तिन् तिन् ता, ता धिन् धिन् धा" दोनों एक समान सुनाई पड़ता है। प्रायः नृत्यकार भी वजनदार बोल जैसे "धा" का निकास उसी वजन से करता है जैसा तबले में बज रहा है। कथक नृत्य प्रदर्शन के कुछ अंग, उनका वर्णन और उनका तबले पर अनुवाद निम्न हैं–

नृत्य प्रदर्शन :–

प्रदर्शन ही नृत्य का मुख्य स्वरूप होता है गायन या वादन में पूरे शरीर का प्रदर्शन नहीं होता और न हि कोई विशेष वस्त्र या आभूषणों की आवश्यकता होती है परंतु नृत्य–प्रदर्शन में इन बातों का ध्यान रखना अनिवार्य होता है, जिससे नृत्य और आकर्षक हो सके। प्रदर्शन और प्रयोग के आधार पर नृत्य को मुख्य तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

नृत्त– इसे पारंपरिक एवं शुद्ध नृत्य भी कहते हैं। इसमें मुख्यतः शरीर की एक सुंदर गति से ताल की प्रस्तुति की जाती है। नृत्य की मूल अवधारणा दो हैं– ताल और लय। इस भाग में तबला संगत की अहम् भूमिका होती है। इसमें तबला वादक को बोल कंठस्थ होना चाहिए। तबला वादक का ध्यान प्रस्तुतकर्ता के पैर पर, साथ में बज रहे नग़मे या लहरा पर, ताल पर, लय पर और बोलों की जोरदारी, स्पष्टता और सम के आकर्षण पर एक–साथ होता है।

नृत्य के इस भाग में अत्यधिक श्रम की आवश्यकता होती है। साथ ही तबला वादक के साथ ताल–मेल की। इसलिए ज्यादातर देखा जाता है कि तबला वादक प्रायः एक या दो होते है या फिर वह तबला वादक ही प्रस्तुतिकरण में साथ लिया जाता है; जिसने कत्थक के साथ खूब बजाया हो अपितु पूरे प्रदर्शन में बहुत कठिनाइयों का सामना भी यदा–कदा नर्तक को करना पड़ सकता है। इसके अंतर्गत

थाट– एक पारस्परिक प्रदर्शन जिसमें सम को अलग–अलग मनमोहक तरीकों से दिखलाने की प्रथा है। इसमें किसी भी मात्रे से पृथक लयकारियों में ता, थेई, तत् इत्यादि बोलों से आकर्षक सम पर खड़े होने के भाव को दर्शाया जाता है।

इसमें तबला वादक की कुशलता भी दिखाई पड़ती है। इसमें पूरे भराव के साथ बीच–बीच में कर्णप्रिय मुखड़ों का प्रयोग कर उनको प्रस्तुत करना होता है। प्रत्येक तबला वादक इसको अपनी सूझ–बूझ और कुशलता के आधार पर प्रस्तुत करता है। जैसे– तीन ताल में थाट कुछ इस प्रकार बजाया जा सकता है–

ना – –थई तत | आ – –थई –तत |
x | 2

ताथई ऽतकिट आथई ऽतकिट | ताथई ऽतकिट ऽऽथईथई तऽतऽ
0 | 3

अनुवाद (तबले पर)

धा	तित	ऽधागे	ऽतकतिरकिट	धा	तित	–धागे	ऽतकतिरकिट
x				2			
धागे	ऽतकतिरकिट	ताके	ऽतकतिरकिट	धागे	ऽतकतिरकिट	ऽऽताता	ऽते–टे
0				3			

आमद– यह ताल बंद बोल का पहला परिचय होता है; इसे 'प्रवेश' भी कहते हैं।

उदाहरण :– तीन ताल में एक आमद का स्वरूप और उसका अनुवाद

ताथई	तत्ऽ	ताथई	तत्ऽ	आथई	तत्ऽ	आथई	तत्ऽ
x				2			
थई	थई	थई	तत्तत्	धा	तत्तत्	धा	तत्तत्
0				3			

अनुवाद (तबले पर)

धाधिं	ता	धाधिं	ता	धाधिं	ता	धाधिं	ता	धा	धा	धा	तेटे	धा	तेटे	धा	तेटे
x				2				0				3			

सलामी– इसका अर्थ है 'नमस्कार या प्रणाम करना'। एक ऐसी रचना जिसके अंतिम में अभिवादन के रूप में सलाम करने का एक अनोखा अंदाज होता है, उसे सलामी का टुकड़ा या "सलामी" कहते हैं। यह मुस्लिम शैली के अभिवादन का स्वरूप है जिसे कत्थक में भी किया जाता है।

उदाहरण :–

तत्	तत्	तिगधा	दिगदिग	तिगधा	दिगदिग	तत्	तत्
x				2			
थई	ऽ	तत्	तत्	थई	ऽ	तत्	तत्
0				3			

अनुवाद (तबले पर)

तेऽ	टेऽ	धातिट	किटतक	धातिट	किटतक	तेऽ	टेऽ	धा	ऽ	तेऽ	टेऽ	धा	ऽ	तेऽ	टेऽ
x				2				0				3			

कवित्त– कवित्त, कथक नृत्य की एक विशेष रचना है। नृत्यकारों द्वारा नृत्य के दृष्टि से की गई रचना जिसमें सार्थक बोलों का प्रयोग हो, भाव करने योग्य शब्द हों और तिहाई हों; वह रचना 'कवित्त' कहलाती है। इसमें कुछ रचनाएं देवताओं की स्तुति के लिए, कुछ उनके वर्णन, कुछ उनकी लीलाओं इत्यादि पर आधारित बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त जीवन के विभिन्न पहलुओं, घटनाओं एवं स्थितियों पर भी कुछ विद्वानों ने रचनाएं की हैं। कवित्त के साथ संगत करना और भी पृथक हो जाता है, जिसमें शब्दों के भाव को समझकर, बोल निर्धारित कर उनका वादन होता है; जो सुनने में बिल्कुल वैसा लगे। इसमें बोल कभी निर्धारित नहीं हो सकते हैं। केवल भाव

के आधार पर और उनके तुकबंदी के अनुसार अंदाज लगाकर कवित्त और नर्तक के अनुसार वादन करना होता है। जैसे–

नाचत गोपी और कृष्ण कन्हैया बाजत मृदंग
और पग पैजनिया छुम छुम तत् तत् थई x 3

अनुवाद (तबले पर)

नाचतगो	पीऽऔर	कृष्णक	न्हैऽयाऽ	बाजतम	दंगऔर	पगपैऽ	जनियाऽ
धातेटेधा	तेऽधाड़	क्तींतिधा	तिऽधाऽ	धातेटेधि	तेटेधाड़	धेटेधा	धेतेधा
x				2			
छुमछुम	तत्तत्	थईऽ	छुमछुम	तत्तत्	थईऽ	छुमछुम	तत्तत्
तूं तूं	ते टे	धा	तूं तूं	ते टे	धा	तूं तूं	ते टे
0				3			

परन– यह रचना विशेषकर बनारस घराना के नृत्य में देखी जाती है जिसमें जो बोल प्रयोग होते हैं वह प्रायः पखावज के होते हैं। जिस तरह तबले में परन बजाया जाता है। ठीक उसी तरह कथक में भी उन्हीं बोलों का प्रयोग किया जाता है। एक कथक नृत्य का परन निम्न वह है–

ताल धमाल

धेत्धेत्	त्रकधेत्	तगिन्न	धेत्ता	धेत्धेत्	ता	धेत्धेत्	ताऽधेधे	तेटेकत	गदिगन
x					2		0		
धाधा	दितां	किटधा	दिंता	तेटेकत	गदिगन	धाधा	दिंता	किटधा	
3				x					
दिंता	तेटेकत	गदिगन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तेटेकत	गदिगन	
2		0			3				

इसका तबले पर हू–ब–हू निकास होगा। किसी भी प्रकार के अंतर करने की आवश्यकता नहीं है; परंतु चमत्कृत सम (धा) दिखलाने के लिए यदा–कदा तबला वादक तिहाई के आखिरी पल्ले में आवश्यकतानुसार भराव करता है। जिससे वह रचना और भी आकर्षक हो जाती है।

परमेलु– 'परमेलु' दो शब्दों से मिलकर बना है पर+मेलु। "पर" का अर्थ है दूसरा तथा "मेलु" का अर्थ है मिलना या सम्मिलित करना। नृत्य के बोलों के साथ जब उसमें कविता, तबला, पखावज, नगाड़ा, मंजीरा, ताशा इत्यादि के बोलों का मिश्रण हो तो उसे 'परमेलु' कहते हैं।

यह कथक की सबसे सुंदर और आकर्षक रचनाओं में से एक माना जाता है। जितना सुंदर यह सुनने में लगता है उतना ही सुंदर और विशेष प्रकार से इसकी प्रस्तुति भी होती है। इस रचना की संगत लगभग वैसी ही होती है जैसे कवित्त की रचनाओं को और उसमें प्रयोग किए गए बोलों को सुनकर हू–ब–हू वैसे ही बोलों को बजाना जो सुनने में एक जैसे लगें, उनका प्रयोग कर इसकी संगति की जाती है।लखनऊ घराने की एक प्रसिद्ध परमेलु इस प्रकार है–

नग्गी	थर्री	कुकु	तगनग	झनकझ	नकतक	धाऽझिझि	किटधेलां
				2			
गधुम	किटतक	धाकिलां	गधुम	किटतक	धाऽधिलां	ऽगधुम	किटतकधा
0				3			

अनुवाद (तबले पर)

धागेनागे	धादीं	कत्कत्	नागेनागे	धेटेधेधे	रेधेकिट	धाऽधिर	किटधड़ा
x				2			
ऽनधिन	किटतक	धाऽधड़ा	ऽनधिन	किटतक	धाऽधड़ा	नधातिट	किटतकतिरकिट
0				3			

उपर्युक्त रचना के अंतिम भाग में उस चमत्कृत बोल का प्रयोग किया जाता है जिसे तबला वादक अपनी इच्छा अनुसार यदा–कदा प्रयोग कर सबको आकर्षित आकर्षक बनाता है।

गत निकास– गत का अर्थ है 'गति' और 'निकास' का अर्थ है निकलना। एक विशेष प्रकार की मुद्रा अथवा भाव की चाल को 'गत निकास' कहते हैं। इसमें प्रायः नर्तक पल्टों के साथ एक मुद्रा में स्थिर होता है। फिर उस मुद्रा की चाल (Body Language) के साथ दिखाते हुए जिस मुद्रा को वह कर रहा है उसी के भाव अनुसार मुख्य शरीर एवं पैरों की चाल से उसे दिखलाने का प्रयत्न करता है।

पल्टों के साथ तबला बड़े भराव के साथ बजता है। जिसमें प्रायः धा क्र धिना धिना कत्, धा क्र धिना कत् आदि बोलों का प्रयोग होता है। फिर मुद्रा लेने के बाद चाल की गति कुछ इस प्रकार होती है– ता थेई तत् आ थेई तत्" इसमें तबले की मिठास बाएं में दाबगस के साथ प्रयोग और बोल प्रयोग से तबला वादक वही भाव उत्पन्न करने का प्रयास करता है जो नर्तक प्रस्तुत करना चाह रहा है।

लड़ी– यह तत्कार की ही एक रचना होती है जिसे बांटते हुए चलते हैं। यह मूल स्वरूप से पल्टों के माध्यम से पहले विस्तृत होती है, फिर छोटी होते–होते तिहाई के साथ समाप्त होती है। इसको साधारण शब्द में अंग्रेजी में 'Footwork' कहते हैं। इसे विशेष लयकारियों में भी दिखलाया जाता है परंतु प्रायः ठाह, दुगुन और चौगुन करने में की परंपरा है।

तबले पर लड़ी को कुछ तबला वादक अपने हिसाब से बजाते हैं और कुछ उसको वैसा ही बजाते हैं जैसा वह मूल रूप में है। जैसे–

तकि	टत	किट	धिन	नधिं	धिंना	नाधिं	धिंना	तकि	टत	किट	तक	तकि	टत	क्रत	किट
x				2				0				3			

अनुवाद :–

धाते	टेधा	तेटे	धिन	नाधिं	धिंना	नाधिं	धिंना
x				2			
धाते	टेधा	तेटे	धाड़	धाते	टेधा	ड़धा	तेटे
0				3			

तोड़ा– तबला में "टुकड़ा" के समान कथक नृत्य में भी तोड़ा होता है जो साधारणतः एक, दो या तीन आवर्तनों तक का होता है। छोटे–छोटे पृथक बोलों के समूह के साथ तिहाई लगाकर सम पर आने को "तोड़ा" कहा जाता है। यह

एक तालबद्ध रचना होती है जिसे नर्तक याद कर या सीख कर प्रस्तुत करता है।

उदाहरणः–

तत्तत् त्रामथई तिगधादिगदिग थई |
x

तत्तत् त्रामथई तिगधादिगदिग थई |
2

तत्तत् त्रामथई तिगधादिगदिग थई |
0

तिगधादिगदिग थईतिगधा दिगदिगथई तिगधादिगदिग |
3

अनुवाद :–

तेटे कड़ानधा धातिरकिट धा | तेटे कड़ानधा धातिरकिट धा | तेटे कड़ानधा
x | 2 | 0

धातिरकिट धा | धातिरकिटतक धा धातिर किटतकधा धातिरकिटतक
| 3

तिहाई–

ऐसे तो गायन, वादन और नृत्य तीनों में ही तिहाई की जाती है परंतु कथक नृत्य में तिहाई अलग से की जाने वाली रचना है। किसी वर्ण समूह को तीन बार बजाकर, गाकर या नाच कर सम पर आने को तिहाई कहते हैं। तिहाई के लिए दो बातों का होना अनिवार्य है, पहला तीन समान दोहराव एवं दूसरा उनके बीच एक समान समय अंतराल। दोनों में से किसी एक बात में कमी हो जाने पर तिहाई प्रामाणित या सही नहीं मानी जाती है।

उदाहरण के लिए एक दमदार तिहाई तीन ताल में–

तकि टधि किट धिन | धा धिन धा धिन | धा ऽऽऽ | तकि टधि किट धिन
x | 2 | 0 | 3

धा धिन धा धिन | धा ऽऽऽ | तकि टधि किट धिन | धा धिन धा धिन
x | 2 | 0 | 3

अनुवाद :–

धाते टेधा तेटे धिन | धा धिन धा धिन | धा ऽ ऽ ऽ | धाते टेधा तेटे धिन
x | 2 | 0 | 3

धा धिन धा धिन | धा ऽ ऽ ऽ | धाते टेधा तेटे धिन | धा धिन धा धिन
x | 2 | 0 | 3

शोध निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्णित विषय के अध्ययन और विविध तथ्यों के लेखन के उपरांत निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नृत्य की संगति में तबला की बहुत अहम् भूमिका रहती है। या यूं कहें कि कथक नृत्य बिना तबला संगति के अपूर्ण है और दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि तबला–वादन बंधन में होकर भी नृत्य के साथ स्वतंत्र बजता है। यह तबला वादक की सूझबूझ, विवेक, कला, भाव, रस, रचनात्मक सोच का परिचायक होता है जिसके आधार पर वह भली–भांति नृत्य के बोलों एवं भावों को समझ कर संगत कर पाता है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र, ताल परिचय, भाग 3, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.– 317 से 323
2. मराठी, भालचंद्र मनोहर, ताल वाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, पृ.सं.– 54 व 55
3. दाधीच, डॉक्टर पुरू, कथक नृत्य शिक्षा, विभाग 5, बिंदु प्रकाशन, इंदौर, पृ.सं.– 69–77, 91, 101, 122–151
4. मिश्रा, पंडित छोटेलाल, ताल प्रबंध, प्रकाशक–कनिष्क पब्लिशर्स डिसट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.सं.– 137–143

Futurism of Martian Science in Kim Stanley Robinson's Mars Trilogy

Dr. M. Prabha Punniavathi** **Aara Mithilee M L***

Abstract

The Mars Trilogy by Kim Stanley Robinson presents an incredibly detailed narrative of two hundred years with an alternate future history of unimaginable scientific developments. The scope of his novels allows diverse scientific models to be explored. His fiction, infused with references to scientific history, attracts readers into a narrative that imagines a radical future for the world. This article aims to highlight the utopian scientific elements portrayed by Robinson in his Mars Trilogy that drive technological change on Mars. Its purpose is to list the scientific inventions that take place on Martian affairs. Exploring utopian science, understanding Martian politics on scientific development, and the effects and results of science on Mars are the objectives of this article. The hypothetical statement of this article is 'new inventions and scientific advancement on Mars face both optimistic and pessimistic feedback'. A background study is done with abroad articles on Mars Trilogy.

Keywords: *Science, Terraforming, Technology, Knowledge, Inventions*

Methodology : *It is supported by secondary sources of data.*

The *Mars Trilogy* by Kim Stanley Robinson presents an incredibly detailed narrative of two hundred years of alternative future history bound with unimaginable scientific developments. The scope of his novels allows diverse scientific models to be explored. His fiction, infused with references to scientific history, attracts readers into a narrative that imagines a radical future for the world. Its purpose is to list the scientific inventions that take place on Mars. Exploring Utopian science, understanding Martian politics on scientific development, and effects and results of science on Mars are the objectives of this article. The hypothetical statement of this article is 'new inventions and scientific advancement on Mars face both optimistic and pessimistic feedback'. A background study is done with foreign articles on *Mars Trilogy.* This article is limited within the theme of Science in Robinson's *Mars Trilogy*.

The Trilogy's premise is Mars, where a group of one hundred scientists and a runaway setup makes permanent settlement on Mars in 2021. More settlers are to follow soon. Over the course of two hundred years, the technologies of the settlers became increasingly advanced. Arkady the protagonist in *Red Mars* says about his first feel on Mars as:

> When we first arrived, and for twenty years after that, Mars was like Antarctica but even purer. We were outside the world, we didn't even own things — some clothes, a lectern, and that was it! Now you know what I think, John. This arrangement resembles the prehistoric way to live, and it therefore feels right to us, because our brains recognize it from 3 millions of years practicing it. In essence our brains grew to their current configuration in

*Research Scholar, (English) Nesamony Memorial Christian College, Marthandam, Manonmaniam Sundaranar Univ. Tirunerveli, Tamilnadu

**Assistant Professor, Nesamony Memorial Christian College, Marthandam, Manonmaniam Sundaranar Univ. Tirunerveli, Tamilnadu

response to the realities of that life. So as a result people grow powerfully attached to that kind of life, when they get the chance to live it. It allows you to concentrate your attention on the real work, which means everything that is done to stay alive, to make things, or satisfy one's curiosity, or play. That is utopia. (*RM* 342)

The beginning of history on Mars is everything new. They are ready to face reality and have to apply previous knowledge to make Mars more human friendly. Humans start to terraform Mars using scientific technologies to convert it parallel to Earth. The scientific findings have shown a profound influence on their relationship with the environment. Using scientific findings, the environment of Mars is made human friendly. It helped most of the settlers create a 'green' planet like Earth and Terrans explores Mars for material purposes, exploiting its minerals as potential living space. Scientists transform the planet and a new Mars is created.

Revolutionary attempts fail and succeed simultaneously, to varying degrees. New democracy emerges from the interplay of scientific and socio-political interventions. The scope of Robinson's novels gives space to represent the complex processes that constantly determine and change the Martian landscape and its inhabitants' social forms. The Martians compare them with the facilities on Earth during struggles with tremendous ecological problems and economic disparities. When the Martians finally decided on the desired form of planetary policy, experienced a qualitative difference between Mars and Earth, that the conditions for human life on Mars is much better.

Robinson gives a brilliant representation of scientific practices that constitute an utopian world. Presenting scientists with political goals and politicians using scientific models, Robinson feels that human agency can change the world for the better. Characters provide multiple perspectives on both Mars' and Earth's scientific discoveries and political struggles. They often have a stake in scientific and political processes, and when political and scientific thinking converge, their efforts to improve living conditions on Mars become more effective. They constantly experiment with changing Mars, test new models for revolution and use new technologies to create political opportunities on Mars. Their repeated efforts to change the outcome of history through their interventions distinctly demonstrate an utopian aspect in the *Mars Trilogy*. The Martians examine historical data in the progress of establishing new parameters and repeat their experiment. The world they create becomes more democratic, independent and fair as they learn.

Suvin describes utopia as a "heuristic device for perfectibility, an epistemological and not an ontological entity" (52). *In the Metamorphoses of Science Fiction*: 'On the Poetics and History of a Literary Genre'. Suvin emphasises that *Utopia* is primarily a literary work. The purpose of this description is to distinguish it from political agendas, travel writing and other forms of nonfiction. It is necessary to discuss Utopia as a sub-genre of the larger category of science fiction for a better understanding of its application. Nowhere is the development of science executed better than in *Mars Trilogy*.

Large-scale technological interventions, mainly terraforming in *Mars Trilogy,* are a part of Utopian science. At present, the actual science of terraforming is under research monitored by NASA, which is executed in many science fiction. Science is a benign, powerful and necessary practice that Robinson represents with reverence for the red planet, especially in the spear of terraforming, "Robinson delivers a

dynamic view of Utopia and a positive view of science as a powerful tool necessary for the creation of a decent human civilization" (Suvin 545). But then, with all Martians being stakeholders in the process of terraforming, the matter is drawn into the political arena and thereby subjected immediately to a semi-democratic process. Sax Ressell, the founder of the Green Movement on Mars, secretly disperses a strain of lichen to raise the Martian temperature.

The longevity treatment of the space elevator building is the second technological novelty on Mars. They develop the space elevator as a cost-effective way to transport goods and labour to Mars from Earth. It is a step to organise transportation between Mars and Earth. As more machinery is gathered, the crates and landers blend in with the Martian scenery and are presented thus:

> Red rocks were scattered all around in their uncanny regularity; voices chattered on the common band: "Hey, I found those solar panels!" "You think that's something, I just found the goddamn nuclear reactor." (*RM*, 104)

The settlers find technological means to support their survival and development. In the beginning, the planet is presented as a raw material to the settlers, including the tools needed for any propagation to be manipulated by them. While developing tools, they faced uncountable problems and the most solvable problems appeared to Nadia. An important member among the first hundred is engineering related issues faced by her engineering skills. At this early stage, Nadia's goal is to build living spaces. The settlers' continued survival under her authority. However, her architectural work creates the conditions for the following social and political distributions. Focused on the settlers' material conditions, she discerns only the fringes of the arguments that structure the ethical and political oppositions that determine the course of history. The repeated self-determination advocacy of Arkady Bogdanov negatively confirms the powerful hold of their Terran origins. Arkady aims for a revolutionary new Mars society based on anarchy. Sax in *Red Mars* says the universe is marvelous and is "characteristically naive" (*RM* 107). The prologue described the existence of Mars long before people came into being, and the settlers themselves are deeply rooted in the history of Terrans.

Mars terraforming is one of the most important issues in the *Mars Trilogy*. Robinson lays the groundwork for binary opposition on *Red Mars* between the 'Green' and 'Red' terraformers and preservationists, respectively. A strong advocate of terraforming is the physicist Sax. His position is positive and anthropocentric. Ann is a geologist who advocates the study and preservation of a planetary surface older than anything else on Earth. The subsequent arguments between Red and Green sharply focus on the various ethical and philosophical positions on technological intervention.

In response to Ann's call for Mars to be preserved and studied in 2027, Sax argues that the minerals themselves have no meaning and that "the beauty of Mars exists in the human mind" (*RM* 177). According to Markley, "Sax underlines our inability to imagine beauty, knowledge or usefulness without giving in to mystical anthropocentrism … However, Sax's insistence on the anthropocentric nature of meaning in the universe ironically reveals the accuracy of Ann's criticism." (76) The basis of terraforming is Baconian science itself, which is a method of methodical observation of facts. The comment by Markley implies that our understanding of the universe and indeed large-scale technological interventions such as

terraforming can be limited. As the narrative progresses, the complexity of this process increases steadily, especially with respect to other processes.

On seeing the ambition of terraforming Mars, Franko notes that "Hubris clobbered by nemesis is not an operational myth here" (*RM* 546). Science is a benign, powerful and necessary practice, represented by Robinson with as much respect as the red planet. Robinson provides a dynamic view of Utopia and a positive view of science as a powerful tool needed to create a decent human civilization, especially in the form of terraforming. But then, with all Martians participating in the terraforming process, the matter was brought into the political arena and subjected almost immediately to a semi-democratic process. A number of other such arguments are never presented or shortened by some scientific discovery's sudden intervention. Sax secretly disperses a lichen strain to increase the temperature on Mars. In the end, it is "not one of his best efforts" (*GM* 231), but his individualistic attitude is representative of several other independent, as well as isolated scientists who change social conditions dramatically.

Longevity treatments were invented by Vlad, Marina, and Ursula. The introduction of treatment has great socio-political implications and initially creates inequalities. Acheron is a city and an important research centre in the early years of the colonisation of Mars. People living in this city are called Acheron. This group has set its own agenda and ethical standard, much like the later Da Vinci group, the refuge for the terraforming team. More people settle on Mars at this stage in *Red Mars* and the idealistic politician John Boone travels to build support for independence. Unaware even of this political forerunner, Vlad and Ursula release bacteria that alter the biosphere and give treatments without hesitation. Boone is shocked by their recklessness, imagining the effect of their discovery on Earth's feeling billions. Ursula says, 'We are the experiment', having decided to "leave the decisions to the authorities down there" (*RM* 289). Much later, when studying Terran history, Sax "decided that the treatment of longevity had pushed things over the edge" and sent Earth into a downward spiral (*GM* 200). However, the scientists distinguish themselves that while the treatment process is a scientific affair its application is a political one.

The space elevator is another technological novelty that is important as far as terraforming and longevity treatment are concerned. Phyllis Boyel is an American prospector for several transnats and transnational Terran companies that are overshadowing national economics. The transnats grow into metanats over the course of the narrative, subsuming national politics and economics. These companies seek to exploit Mars for their resources with Phyllis as their agent. The space elevator is developed as a cost-effective way to transport goods and labour. Sax welcomes the space elevator because it "… will reduce the cost of terraforming," but John Boone is more sensitive to the political consequences of a rapid connection to Earth and warns him that anyone who pays for the elevator "calls the shots" (*RM* 266). The space elevators become contested power sites in the revolutions as they allow Mars to be opened and closed to Terrans.

> Although technology is omnipresent, it is not accompanied by a detailed account of how such feats were possible or how they are even economically viable. Technology is portrayed in ways that appear simultaneously realistic and marvelous. Such magic suspension creates a mythos not of a particular artifact, but of the technological systems themselves. (*GM* 130)

Scientists synthesise new materials as alchemists. For human survival on Mars, their abilities are necessary, but the intricacies of their work remain concealed. The pervasiveness of technological innovation suggests that the human environment constantly changes due to a scientific force. However, the history of the three major technological interventions also raises the question of whether any scientist can be entrusted with increasingly 'god-like' powers. The responsibility of the scientists becomes an important subject as the trilogy develops.

The great potential for global change in the Martians scientific ventures falls within the positivist paradigm. It is calculable, practical to modify the atmosphere of the planet and heat it with giant mirrors. Besides, technological and scientific development is largely carried out in a private space outside communal politics. This changes as more parties begin to exert their influence on Mars. Science is politics and its interventions are more often seen as complex and interrelated. To address these increasingly complex and intertwining processes, a new scientific paradigm is introduced.

A violent revolution breaks out against the metanats in 2061, destroying many Martian settlements, with little political outcome. After the revolution fails to expel the transnats from Mars, many of the first hundred are hidden. Sax, disguised as Stephen Lindholm, resurfaces to continue his work. He visited the annual terraforming conference in Burroughs in 2102. As he is a terraforming authority, but his disguise forces him to give up his influence and take the role of an observer. Before attending the first lecture, Sax examines the posters displayed on a number of different topics through internet,

> Solubilization of Polycyclic Aromatic Hydrocarbons in Mono-meric and Micellar Surfactant Solutions. Post-Pumping Subsidence in Southern Vastitas Borealis. Epithelial Resistance to Third-Stage Gerontological Treatment. Incidence of Radial Fracture Aquifers in Impact Basin Rims. Low-voltage Electroporation of Long Vector Plasmids. Katabatic Winds in Echus Chasma. Base Genome for a New Cactus Genera. Resurfacing of the Martian Highlands in the Amenthes and Tyrrhena Region. Deposition of the Nilosyrtis Sodium Nitrate Strata. A Method for Assessing Occupational Exposure to Chlorophenates Through Analysis of Contaminated Work Clothing. (*GM* 202).

Besides Sax, many scientists apply themselves to all aspects of terraforming. But Sax is focused on his own influence, so "… the posters that held him the longest were those that described aspects of the terraforming he initiated or had a hand in" (*GM* 202). All the topics displayed are interesting since it is related to future science. These posters were presented in a conference by the university students.

The first lecture of Sax in the conference states the situation in terraforming Mars. The lecture examines the different heating methods carried out in the 2040s and 50s, each of which initiated by Sax. Finally the lecture concludes, as there are synergistic effects in the implementation of different interventions. The lecture seems to appeal to Sax because it gives him an important role in manipulating a mechanistic world. But he feels dismayed by the arguments about terraforming efforts as the conference continues. The pure play of scientific discourse that he enjoyed so much has been now been diluted more. Sax discerns Terran transnats' growing political influence. "They entered that unfortunate zone where science began to drift into politics" (*GM* 213). On the other hand, he knows "the 'monster projects' …were going to have such significant impacts

that nearly everyone else's programs were affected" (*GM* 213). As there is no synergistic effect before, the conference shows transformations are highly unpredictable due to multiple inputs into the Martian system. The paradigm of mechanistic positivist science is beginning to collapse because different people have been hacking with different arguing ideas. All working against each other, bringing ever more powerful and costly methods to bear with ever less coordination.

At this point, a more appropriate scientific paradigm is already introduced in the narrative. Sax needs to change his social interactions as part of his disguise. This forces him to study social behaviour, "the calculus of human interaction is much more subtle and variable than any physics, somewhat like the emerging field of mathematics called recombinant cascading chaos, but less simple" (*GM* 168). Other characters later use the concept of cascading recombinant chaos to designate systems beyond complete understanding and control, such as recurrent revolutions.

According to Sax, these systems can be used for modelling but not for predicting. In *Blue Mars*, the theory of emergence begins to appear in the discourse of the characters as they discuss the horizons of predictive models and the limits of comprehension. In contemporary chaos theory and system theory, both recombinant chaos and emergence theory seem to have their correlates. They do not necessarily dismiss a mechanistic perspective, but they show that it is ineffective in long-term forecasts or in describing highly complex systems.

Metanat security forces torture him and damage his brain when Sax is discovered as an impostor. Sax's interest in language, psychology and weather signals a departure from a total, mechanistic scientific understanding and intervention after his convalescence. Modeled after the theory of emergence, Robinson writes that meteorological phenomena may have had predictable effects, "but in combination they made Martian weather very hard to understand, and the more he watched, the less Sax felt he knew. But it was fascinating, and he could watch the iterations play out all day long" (BM 414). The unpredictable Martian weather, as a correlate of terraforming, illustrates Sax's inability to control all the effects of his intervention. Even if the original intervention can be understood as the sum of its parts, it has unpredictable consequences that cascade and interact with other processes.

With the evidence quoted from the text, new inventions and scientific advancements on Mars face both optimistic and pessimistic feedback. Since, Science in *Mars Trilogy* is utopian it has opportunity and potentiality for the future and global change. Politics is inseparable from humans, again proven in the *Mars Trilogy* with the influence of politics in exhibiting, recognising and practising new scientific advancement on Mars. Futurism of Martian science is forecast by Kim Stanley Robinson in *Mars Trilogy.* The author predicts political influence and revolutions over the development of science. The Martian colony's attempt to establish a sustainable environment on Mars involves the creation of new scientific traits from experiences and systems of thought on Earth.

Works Cited :

Robinson, Kim Stanley. *Blue Mars*. New York: Bantam Books, 1996.

—. *Green Mars*. London: Harper Collins, 1996.

—.*Red Mars*. London: Harper Collins, 1993.

Markley, Robert. "Falling into Theory: Simulation, Terraformation, and Eco-

Economics in Kim Stanley Robinson's Martian Trilogy". Modern Fiction Studies 43.3 (1997): 773–99.

Suvin, Darko. Metamorphoses of Science Fiction: On the Poetics and History of a

Literary Genre. New Haven: Yale University Press, 1979.

Sartre's View on Aesthetics and Art

AshutoshPandey*

Aditi Mishra*

Abstract

Existentialism along with phenomenology are the key schools of contemporary philosophy. Sartre and other philosophers were keen to bring these two concepts altogether and tried to develop existentialism on the basis of phenomenology. This present work should be considered as a venture to fill the gap between philosophy and arts. So the problem which is under consideration is that "how can a conception of art grounded on humanist existentialism and phenomenological ontology be possible?". I will turn on Sartre's philosophy in order to find answer. Sartre manifested himself as a humanist atheistic existentialism in order to eliminate the belief in the existence of God. He proposed new dimensions of human understanding. The western metaphysical construction of human being as onto-theo-logical had been destroyed. Sartre presented the concept of phenomenological ontology. Through this introduction, Sartre's idea of art can be fundamentally explored.

Keywords : *Existentialism, Jean-Paul Sartre, humanism, aesthetic, art.*

Methodology : *The paper is supported by secondary sources.*

Existentialism is a philosophy which deals with the human being who is conscious of and in search of being. The forerunner of this philosophy is Kierkegaard who asked some questions which are still posing serious challenge to philosophers. The existentialist philosophers have agreement with each other that this existence is fallen and life of man is being lived amid suffering, guilt and anxiety. On the basis of this dark picture of life they have rejected hedonism, utopian dream and the serenity of stoicism. The life seems to be inexplicable and absurd because there is no reason and no necessary connection in human existence. Only contingently human life is meaningful.

Sartre is an existentialist and at the same time he is an artist, author and philosopher. He thinks that human being has strive for happiness and this makes them avoid the anxiety and the deep, hopeless depression which is despair. On theGround of reality he lives in anxiety and despair. For him there is no escape from this anxiety and Despair. The nature of anxiety is not unknown. This can also not experienced objectively but it is lived totally subjectively.

Humanistatheisticexistentialism: After Kierkegaard the second most influential existentialist seems to be Nietzsche. The solution given by Kierkegaardfor the problem of meaninglessness of life was to choose the way of faith and leap to God. In Sartre's eye it is untenable. Kierkegaard represents human being as weak and coward. On the opposite hand, for Nietzsche the religion has collapsed long time ago due to death of God (Nietzsche, 2007:119-120). God is source of all the great values and truth and with this death the ground is lost for all truth and value. This makes an urgency for humanity to create new horizons for themselves where they replace God with themselves. Sartre had constructed humanist atheistic

*Research Scholar, Department of Philosophy and Religion, Banaras Hindu University, Varanasi

existentialism with the help of Nietzsche's atheism and Heideggeriancriticism of traditional metaphysics. This paves the way for new understanding of the human being. He also overcomes the deficiencies which were present in both philosophers conception i.e. the lack of social relations and isolation of human being. The place of God is taken by man himself. This certainly indicates that existence of human being depends on its own actions which is grounded on its own decision through self-consciously. There is no presupposition adopted for life as "life is nothing until is lived" (Sartre 1966:54). Man has freedom from all his bondages and there is no God to cease his freedom. He is condemned to be free.

PhenomenologicalOntology:

The way to explore human existence is full of traps. Because of this developing a method to approach concrete human existence is of vital importance for humanist atheistic existentialism. And it makes usage of a descriptive approach. This method of thinking is called phenomenology and it recognizes everything as phenomenal being. Phenomenal being does not need any authority to manifest its essence as well as its existence. The phenomenon does not rest on an external true being. It just "reveals itself as it is". It manifests itself as the "well connected series of manifestations." (Sartre, 1956: xlvi) From this phenomenological standpoint Sartre describes a phenomenon, for example the genius of Proust as follows. "[It] is neither the work considered in isolation nor the subjective ability to produce it; it is the work considered as the totality of the manifestations of the person." (Sartre, 1956: xlvi)

In the search of human existence the use of phenomenological method helps us avoid psychological, pozitivistic, utilitarian, instrumental, rationalistic or sentimentalistic traps. Phenomenology, as Husserl defined it, is a true science of psychology that is "a priori, pure psychology". Through phenomenology trueunderstanding of psychic life of the human being becomes possible. Because now in the frame of this new science psychic life of the human being is no more considered in isolation from others.

As for ontology, Sartre is much indebted to Heidegger for his concept of ontology. For Heidegger someone's death is one's most authentic moment: "Death is possibility of Being which Dasein itself has to take over in every case with death, Dasein stands before itself in its ownmost potentiality-for-Being. [...] Its death is the possibility of no-longer-being-able-to-be-there [Nicht-mehr-dasein-könnens]." (Heidegger,1985: 294, pr.50) This personal potentiality of death can be suffered by the same person alone. No one lives another's death.

Sartre inherited these explanations about the features of the human being from Heidegger. He admitted death as another characteristics which renders human existence absurd. By making use of Husserl's phenomenology and Heidegger's ontology Sartre developed phenomenological ontology. This new method of thinking made it possible to describe and record all human experiences including the experience of death and nothingness.

TheAestheticViews:

In the essay entitled "PourquoiEcrire?" in Situations II, Sartre remarks that human consciousness "unveils" the things in the world and the whole world it- self (pp. 89-90). This is a banal statement, but he adds to it the assertion that each of our perceptions is accompanied by the awareness that man is the means through which things are manifested (Sartre 1949: 89-90). Though this is psychologically doubtful, we may let it pass. He continues that, just as we

know Lo we detect being, we know that we do not produce it and that we are "inessential in relation to the thing unveiled" (Sartre 1949: 90). He presumably means that we know when we are not the cause of the existence of the thing perceived, e. g., a mountain or clouds.

Sartre finds one of the principal motives of artistic creation to be the artist's need to feel himself "essential" in relation to the world, some aspect of which he orders and makes permanent in his product (Sartre 1949: 90). This is merely stating in a complicated and awkward way the obvious fact that human beings take pleasure in producing or making things from mudpies to skyscrapers. Sartre maintains that the artist cannot produce a work of art and "unveil" it at the same time. "The creation (i.e., the object created) becomes inessential in relation to the creative activity" (Sartre 1949: 90). He explains that the artist can never contemplate his product with the eyes of others, for he will always find himself in it and will remember the steps of the creative process (Sartre 1949: 90-91). This is another doubtful point; it is not at all certain that artists are incapable of assuming the critical attitude toward their own works either during the creative process or at its termination. Sartre, however, insists that this state of affairs manifests itself with particular clarity in the art of writing. The reader looks forward to the end of the sentence or the chapter and conjectures what is to follow, whereas the writer projects; he must make the future. If he reads what he has written, he knows what comes next (Sartre 1949: 91-93).

In a confused and puzzling passage in "PourquoiEcrire?" (Sartre 1949: 98-101) Sartre attempts to explain that, when a writer appeals to a reader to complete his work, he is calling upon his reader's creative power, which is pure freedom; he is not trying to arouse his emotions, which are passive. For freedom is alienated in passion. If the writer upsets the reader or dominates him, he cannot appeal to his collaboration necessary for the completion of the work of art. Thus the work of art is essentially "pure presentation," and the reader should be able to take advantage of aesthetic distance. The writer does not appeal, however, to an "abstract and conceptual" freedom since we recreate the aesthetic object with our feelings. But these feelings are of a certain sort; they originate in freedom and are lent; the reader's belief is given freely. ". . . All the feelings which are played out against the background of this imaginary belief are like particular modulations of my freedom; far from absorbing or masking it, they are as many ways which it has chosen to reveal itself to itself" (Sartre 1949: 100).

Some light can perhaps be thrown on the passage in question by reference to Esquissed'uneTheorie des Emotions wherein Sartre gives an account of emotion as a way of apprehending objects (Sartre1948: 30); it is a spontaneous degradation of consciousness before the world (Sartre1948: 42-45). In ordinary normal action, we are conscious of objects to be realized and of series of means to them; the means appear as routes across the world. But when the routes are too difficult, or when we can find none at all, we are driven to attempt to change the world, that is, to live it as if the means to the object we desire were not a causal sequence but magic (Sartre 1948: 33). For example, when a man faints in fear, his consciousness aims to deny by magic conduct an object of the external world; it goes as far as annihilating itself in order to annihilate the object of its fear (Sartre 1948: 35-36). The attempt to live the world as magic is by no means a game: the emotional qualities of objects are felt as real; the emotions are undergone (Sartre 1948: 33, 40-41). In short, consciousness transforms itself in order to transform the object

(Sartre 1948: 33). "The passage to emotion is a total modification of 'being-in-the-world' according to the very special laws of magic" (Sartre 1948: 51-52). Instead of appearing as a complex of causal chains, the world now appears as being modifiable without intermediate steps and in large masses (Sartre 1948: 48-49). The physiological manifestations of the emotions are disturbances of the body which represent an obscuring of our consciousness of things; emotional consciousness approaches dreams or hysteria or even unconsciousness (Sartre 1948: 42).

In this discussion of the emotions, Sartre obviously has in mind the extreme and mostly painful states such as acute fear and violent anger. He distinguishes what he calls "emotions" from the mild and stable sentiments (Sartre 1948: 38) but does not explain whether the difference is that of mode of consciousness, or merely oneof degree. And what is the relation of either to the "freely lent passions' mentioned above? It is, of course, a psychological truism that an artist cannot arouse very strong feeling in spectators without risking the total loss of their attention, for the violent emotion tends to destroy the aesthetic attitude by expressing itself in action. If this is the point which Sartre is attempting to make, it certainly does not require so many words.

The Work of Art:

Sartre's new conception of art grounded on humanist atheistic existentialism and phenomenological ontology is understood clearly in his idea of "the existential type of the work of art". The first principle of this conception of art is that "the work of art is an irreality." (Sartre, 2010: 188) This means that in a picture the aesthetic object is an irreality. As it is well known the work of an artist is a kind of realization of previously thought images. So that we believe that an artist first has an idea as imaged and then realizes it on the canvas. Sartre argues that this idea is a great error: "The error made here is the idea that the artist can, in fact, start from a mental image that is, as such, incommunicable and at the end of the work deliver to the public an object that anyone can contemplate. It is then thought that there was a passage from the imaginary to the real. But this is in no way true." (Sartre, 2010: 189) The task of an artist is not to realize a mental image. Artists could only constitute a material analogon for the people that will grasp the image when they gaze at the analogon. "There is no realization of the imaginary, nor should one talk of its objectification." (Sartre, 2010: 189)

Being aware of this error Sartre warns us that work of art is not a representation but a new reality, it has a life of its own. From the beginning of western philosophy of art, the work of art has been understood as a result of the multi level process of imitation. This theory of mimesis was inherited from Plato. For him allmental images is conceived as the representation or copy of a supersensual ideal and original world. Sartre puts an end to this mimetic theory of art. In Sartre's philosophy this world of archetypical figures is transformed into the world of analogons. In reality the only proof of the existence of the work of art is the analogon of the work. Physical appearance is the analogon of the work of art. For example the real sounds of the Ninth Symphony of Beethoven are the analogon of this work of art. "It is not simply outside time and space – as are essences, for example: it is outside the real, outside existence. I do not really hear it, I listen to it in the imaginary." (Sartre, 2010: 193) It should be made clear that for Sartre the work of art is no longer a representation of nature or of any supernatural world. For a flower in the canvas there is no more an original, archetypical world that would be looked at to copy for the realization of the picture. Consequently,

aesthetic experience of a work of art is not an act of realizing. Although Sartre refuses Plato's mimetic theory, for him the work of art still functions as an analogon: "It is simply that what is manifested through it [work of art] is an irreal ensemble of new things, of objects that I have never seen nor will ever see but there are nonetheless irreal objects, objects that do not exist in the painting, nor anywhere in the world, but that are manifested through the canvas and that have seized it by a kind of possession." (Sartre, 2010: 190-191)

Creation of the work of art is started by an imagining consciousness that posits the aesthetic object as irreal. And what should be called as beautiful is not the real objects of the nature but the ensemble of the irreal objects that are created in the work of art. Irreal objects that constitute a work of art, for example the novel, poem and drama are created through verbal analogons. The actor who plays Macbeth makes his body serve as an analogon for that imaginary person Macbeth. By this fact the actor irrealizes the play. The actor lives entirely in an irreal world. If the actor of Macbeth cries while he plays then these tears do belong not to this actor but to Macbeth, because these tears would be analogons of irreal tears. When we return to reality for the search of these tears, the result will be a disappointment. Because of this the realizing act of consciousness provokes the nauseous disgust. We should not forget that the real is never beautiful. "Beauty is a value that can only ever be applied to the imaginary and that carries the nihilation of the world in its essential structure." (Sartre, 2010: 193) Because of this Sartre finds it stupid to confuse the moral and the aesthetic. To take an aesthetic attitude to life would be absurd. For the preservation of the work of art and aesthetic experience the world of reality and the world of imaginary should not be confused. This confusion would result in a disorder like a case of paramnesia in which the real objects function as analogons for the imaginary objects. In this absurd situation the real world would be expected to be as imaginary world.

References :

Sartre, Jean-Paul (1948)Esquissed'uneTh~orie des Emotions, Hermann, Paris 1939, 1948. The Emotions, Outline of a Theory, tr. by B. Frechtman, New York: Philosophical Library.

Sartre, Jean-Paul (1949) Situations II, Gallimard, Paris 1948. What is Literature? tr. by B. Frechtman, New York: Philosophical Library.

Sartre, Jean-Paul (1956) Being and Nothingness, tr. by Hazel E. Barnes, New York: Routledge.

Sartre, Jean-Paul (1966) Existentialism and Humanism, translation and introduction by Philip Mairet, London: Methuen & Co. LTD.

Heidegger, Martin (1985) Being and Time, tr. by John Macquarrie& Edward Robinson, Oxford: Basil Blackwell.

Nietzsche, Friedrich (2007) The Gay Science, edited by Bernard Williams, tr. by JosefineNauckhoff, Cambridge: Cambridge University Press.

Sartre, Jean-Paul (2010) The Imaginary, A Phenomenological Psychology of the Imagination, with introduction by ArletteEelkaim-Sartre and Jonathan Webber, London: Routledge.

सगुण एवं निर्गुण भक्ति का काव्यात्मक विश्लेषण

प्रो. निशा कुमारी**

बलबीर प्रसाद*

सार

यह निर्विवाद सत्य है कि निर्गुण और सगुण एक–दूसरे के पूरक हैं, परस्पर–विरोधी नहीं। सगुण को निर्गुण तक की मंजिल तय करने के लिए आत्मविश्वास चाहिये और निर्गुण को भी चित्त के सूक्ष्म मैल धोने के लिए सगुण की आर्द्रता चाहिये। दोनों की एक–दूसरे से शोभा है। भक्तिमार्ग की निर्गुण और सगुण धाराओं में प्रवाह की भिन्नता होते हुए भी दोनों का प्रयोजन एवं गन्तव्य तथा मंजिल एक ही है। जहाँ दोनों (सगुण भक्त एवं निर्गुण सन्त) पहुँचने की इच्छा रखते हैं वह एक ही ब्रह्म है, जो भक्ति की प्राचीन परम्पराओं का द्योतक है। क्योंकि हमारी परम्पराओं ने समन्वय की भावना का सदा आदर किया है। सगुण भक्तों एवं निर्गुण सन्तों का मत अलग–अलग है पर लक्ष्य सत्य की खोज ही है।

सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करते हुए निर्गुण ब्रह्म को मन और वाणी से अगम्य तथा अगोचर मानकर उसके सगुण रूप को भक्ति के लिए मान्य ठहराया है। क्योंकि इन्हीं कवियों की मधुर वाणी की झंकार से जनजीवन को नव स्फूर्ति एवं प्रेरणा मिली तथा कृष्ण एवं राम के रूप में उन्हें ऐसे उपास्य देव की प्राप्ति हुई जो दीनबन्धु–दीनानाथ तथा पतितों के उद्धारक एवं असुरों के संहारक हैं। निर्गुण और सगुण ब्रह्म में बहुत कुछ भिन्नता होते हुए भी पर्याप्त समानता है, जो मानवीयता का अप्रतिम उदाहरण है।

मुख्य शब्द : *नर्गुण, सगुण, भक्ति, निराकार, साकार, मत।*

प्रविधि : *द्वितीयक स्रोत से प्राप्त समाग्री एवं ऐतिहासिक प्रविधि का प्रयोग।*

भक्तिकालीन साधना पद्धति में साधकों के आराध्य इष्टदेव का स्वरूप वर्णन है। भक्ति साधना का प्राधान्य ज्ञान, श्रद्धा, शुद्ध अनुराग–भावना योगाश्रित अभ्यासों का प्रयोग है, इसी आधार पर आराध्य ने दया–दक्षिण्यादि गुणों से युक्त मानकर भक्तों की रक्षा एवं दुःखों को दूर करने के लिए अवतार लिया, उसे हम सगुण कहें या निर्गुण सगुणवादी भक्त साकार मानकर उसके अलौकिक रूप की कल्पना कर उसमें असीम शक्ति का समावेश करते हैं। उच्चतम मानवीय गुणों के आ जाने के कारण उसके साथ विशिष्ट सम्बन्ध–व्यवहार करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। उन्होंने उसके प्रत्यक्ष न रहने के कारण उसके विग्रह एवं मूर्ति की स्थापना विशाल मन्दिरों में की। इसके विपरीत निर्गुणवादी उसे निराकार, अगम, अगोचर कहते हैं। न कभी उसने जन्म लिया न उसकी कोई मूर्ति है। ये निर्गुण को सर्वथा मायारहित एकमात्र परमतत्त्व मानते हैं । सगुण को ये मायिक तथा हेय भी कहते हैं। परन्तु सगुणवादी भक्तों ने निर्गुण को मात्र ज्ञान का विषय कहकर केवल सगुण को उपासना के लिए सुलभ ठहराया है।[1]

सगुण एवं निर्गुण दो भिन्न धाराओं का मूलतः सामान्य परिचय है। निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना के सम्बन्ध में अप्पर ने कहा है कि ''वह ज्योतिस्वरूप स्वयं काष्ठ में छिपी आग एवं दूध में छिपे घी की भाँति हमारे भीतर अन्तर्निहित है। इसलिए प्रेम की मथनी में विवेक की रस्सी लगाकर उसके द्वारा मंथन करो, वह अवश्य मिल जायेगा।''[2]

निर्गुण ब्रह्म के विभिन्न समर्थक हैं, जो निर्गुण निराकार ब्रह्म की विशिष्टता अपनी ज्ञानशक्ति से विवेचित करते हैं, जिसमें कबीर, मलूकदास, रैदास, धरमदास, पलटू, दादू, नानक आदि हैं। तत्पश्चात् जन सहजिया, सिद्ध तथा नाथ सम्प्रदाय का साहित्य लेखन के अन्तराल में चिन्तन–पद्धति विचारधारा प्रवाहित हुई । यह सम्प्रदाय भी निर्गुण साहित्य है, और बौद्धधर्म के अनुयायी सहज सिद्धों एवं नाथसिद्धों की वाणियों और सन्तों के मर्म को अच्छी तरह समझ सके। निर्गुण साहित्य में दो प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से हैं, जैसा कि डॉ० मोती सिंह द्वारा वर्णित है–एक तो साधनाजन्य चरम आनन्द को श्रद्धा और उल्लास से व्यक्त करने वाली है। दूसरी प्रवृत्ति खण्डनात्मक है, जिसमें

*शोध–छात्र, संगीत विभाग, अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़, (उ.प्र.)

**शोध–निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़, (उ.प्र.)

उस समय के समाज में प्रचलित नाना प्रकार की रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और मान्यताओं के विरोध में है।

निषेधात्मकमूलक प्रवृत्ति आचरण और कर्त्तव्य सम्बन्धी है, जिसमें सन्त कवियों ने कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं को करने के लिए वर्णित किया है।

पहली प्रकार की रचना में मूर्तिपूजा, जातिवाद, तीर्थयात्रा अथवा अनेक प्रकार के बाह्य उपचार और कर्मकाण्ड का खण्डन किया है । कबीरदास ने ऐसे ही कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए कहा है कि ''मुक्ति का सम्बन्ध न तो नग्न रहने से है और न तो वस्त्र–सज्जा से है। वास्तव में आत्मतत्त्व की पहचान आवश्यक है। बहुत से योगी–यति नंगे ही रहते हैं। किन्तु विचारने की बात है कि जब नंगे रहने से मुक्ति मिलती है तो वन के मृगों को सबसे पहले मुक्ति मिलनी चाहिये। क्योंकि यदि सिर को (बाल) मुँडाने से ही मुक्ति है तो भेड़ों से अधिक मुक्ति का अधिकारी कौन है, जो अनेक बार मुड़ी गयी हैं। अतः वीर्य की रक्षा और ब्रह्मचर्य भी मुक्ति के एकमात्र साधन या दाता नहीं हैं। क्योंकि यदि इसी से मुक्ति मिलती तो फिर बकरे को भी इसकी प्राप्ति होती है। पढ़ने और अध्ययन से भी विशेष सहायता नहीं मिलती क्योंकि इससे अहंकार की उत्पत्ति होती है।''

निर्गुण–सगुण का तात्पर्य–

भक्तिकाल की प्रमुखतः दो धाराएँ हैं– सगुण एवं निर्गुण। सगुणोपासक एवं निर्गुणोपासक अपने–अपने ब्रह्म की उपासना किस ढंग से करते हैं। इसका औचित्यपूर्ण अर्थ समझने के लिए निर्गुण एवं सगुण को अलग–अलग समझना ही समीचीन होगा।

निर्गुण मत–

साहित्य युगचेतना का प्रतिबिम्ब होता है, किन्तु साहित्य को केवल युगसापेक्ष कहना ठीक नहीं है। यह एक दर्पण है, जिसमें समय की परछाईं और क्रियात्मक निर्माणकारी शक्ति, जिसके द्वारा समाज और युग अपने रूपविधान की प्रेरणा इंगित करता है।

साहित्य की यह शक्ति गतिहीन अथवा जड़हीन नहीं वरन् साहित्य कालक्रम से बँधा हुआ एक ऐसा चिरन्तन प्रवाह है जो मानव–सृष्टि के आदिकाल से मनुष्य की कलात्मक रचना–प्रतिभा को आत्मसात किये हुए, साहित्य युगचेतना के उद्भव और प्रेरकशक्ति का रूप है । हिन्दी साहित्य में निर्गुण मत के उद्भव और विकास को ठीक तरह से समझने के लिए उसे इसी अनुबन्ध में देखना होगा।

निर्गुण मत उस शाश्वत प्रेरणा का परिणाम है जो मानव–जीवन को उसके सहज, निःसर्ग और सन्तुलित रूप में विकसित देखना चाहता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह सबसे अधिक संवेदनशील और सजग जीव है। उसकी मानसिक प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं गूढ़ है । अतः उसकी समस्याएँ भी उसी प्रकार उलझनग्रस्त हैं। उसकी समस्याओं के वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक आदि अनेक पक्ष हैं, जिसके कारण उसकी दृष्टि इन्हीं अनेक अनुष्ठानों में फँसी रही, इसी कारण अपने मूल निःसर्ग रूप को भूल में कर ऊपरी आवरण को सर्वस्व माना । उसका सहज जीवन अपना सन्तुलन खो बैठा और मनुष्य जीवन में चरम आनन्द और विविधता के बीच सन्तुलन प्राप्त करना चाहा। स्वाभाविक सन्तुलन के द्वारा अपने मूल मानव को पाने की ही चेष्टास्वरूप निर्गुण सम्प्रदाय एवं निर्गुण साहित्य की सृष्टि हई।

यह प्रामाणिक है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को स्वर्णयुग के नाम से अभिहित किया गया। इसमें निर्गुण साहित्य को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आज भी सदियों पुरानी विचारधारा अपनी महिमा को जनजीवन में बिखेरे हुए है। धर्म–कर्म के ठेकेदारों को से जबरदस्त फटकार, पाहन पूजा पर करारा व्यंग्य, तथा आध्यात्मिक सुख विमुख बौराये भ्रमर की भाँति विषय–वासना की चादर लपेटे हुए आसक्त जन की भी खूब खिल्ली उड़ायी है। निर्गुण शब्द का प्रयोग जिस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है वैसे ही आज भी अपना एक अलग स्थान बनाये हुए है।

यह सत्य है कि निर्गुण ज्ञान है, भक्ति है। इसके कुछ मूलभूत तत्त्व हैं।

1. निर्गुण का पहला मूल तत्त्व है– निर्गुण–सगुण से परे अनादि, अजाप, अनन्त, अनाम, ब्रह्म का नामजप।
2. निर्गुण का दूसरा मूल तत्त्व है– मानसिक भक्ति।
3. निर्गुण का तीसरा मूल तत्त्व है– प्रेम के माध्यम से कर्मकाण्ड की अनपेक्षित दुरूहताओं को दूर करना।

प्रेममयी भक्ति का अनुभव व्यक्त करते हुए कबीर ने लिखा है कि–

हरि रस पिया जानिए, जै कबहुँ न जाय खुमार।
मैं मंता घूमत फिरै, नाही तन की सार ।।

सगुण–मत–

हमारा भारत धर्मप्रधान देश है। यहाँ की संस्कृति धर्म पर आधारित है। आदिकाल से मानव मन भाव एवं प्रकृति से ओतप्रोत रहा है। भाव और भक्ति का सम्बन्ध मानव हृदय से है, जिसका प्रकटीकरण उपासना भक्ति के माध्यम से किया जाता है।

सगुण भक्तिधारा ने मध्ययुगीन भारतीय समाज के धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक जीवन के अनेक पक्षों को प्रेरित एवं प्रभावित किया । सगुण भक्तिधारा के लिए निर्गुण की स्वीकृति आवश्यक है, जैसे सगुणोपासक तुलसीदास के लिए निर्गुण सत्ता अमान्य नहीं थी । वस्तुतः सगुण भक्तकवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सहज एवं सरल होने के साथ ही लोकजीवन के अनेकानेक धरातलों को वैयक्तिक एवं ऐकान्तिक आदर्शों एवं सिद्धान्तों से अनुप्राणित किया ।

सगुण भक्ति के मूल में सांस्ःतिक जीवन के मुख्यतः दो पक्ष हैं–

(1) विचार पक्ष (2) आचार पक्ष।

सगुण भक्तिधारा के काव्य ने भारतीय संस्कृति के उभय पक्षों को प्रभावित किया है। सगुण भक्ति के अवतारवादी दृष्टिकोण ने भक्तों के आराध्य देवों को निर्गुण निराकार स्वरूप की सूक्ष्म और तात्त्विक धारणाओं को नहीं वरन् उसके रूप, गुण, क्रिया और चरित्र आदि की विचित्रता से पूरित मानवीय आकर्षण के आलम्बन साकार ब्रह्म के रूप को प्रतिष्ठित किया ।

कबीर ने सदैव रहस्य और आध्यात्म के जटिल तथ्यों को सम्प्रेषणीय बनाया। उनका दर्शन अद्वैतवाद एवं सूफीमत का मिश्रण है। निर्गुण काव्य में सनातनधर्म का विरोध हुआ लेकिन साधना की चरम अभिव्यक्ति अपूर्ण ही रही। कबीर ने कहा है कि–

निर्गुण राम निर्गुण जपहु रे भाई।[3]

निर्गुण ब्रह्म को ठीक तरह समझने के लिए सन्त–वाणियों का ही सहारा लेना पड़ता है।

भक्त रैदास भी इन सन्त कवियों में एक हैं जो जाति से चमार थे परन्तु भक्ति से पूरित उनका चरित्र और व्यक्तित्व पावन है। यद्यपि क्रान्ति एवं खण्डनात्मक ध्येय में इनकी रुचि न प्रबल रही है और न इनका स्वर ही उग्र रहा है। कबीर की अपेक्षा नम्रता से सच्ची बात का स्पष्टीकरण करना उनकी विशेषता है। उन्होंने अनेक आचार–विचार एवं कर्मकाण्ड का उल्लेख किया है, जिन्हें सामान्यतः जीवन में ढाल कर लोग मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। रैदास जैसे महात्मा सच्चे कर्म का मार्ग बड़ी सरलता से बताते हैं। यथा –

ऐसी भगति न होई रे भाई।
राम नाम बिनु जो कछु, कहिये जो सत करम कहाई।[4]

सन्त रैदास ने निर्गुण भक्ति का स्वरूप स्पष्ट कर दिया है। निर्गुण का मूलभूत तत्त्व बाह्याचार अर्थात् दिखावा नहीं बल्कि आत्मचिन्तन के माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति है।

मलूकदास ने भी जीवन के नित्य व्यवहार, सायत–कुसायत की आवश्यकता बतायी है। इन बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए कहा है कि–''हे मन, भ्रम में क्यों पड़े हो। कहीं आते और जाते समय शुभ दिन की तलाश पण्डित से क्यों करवाते हो। हे जनमानस बिना हिचक गोधूली बेला बिना दीपक जलाये भी भोजन ग्रहण करो तो कोई बात नहीं है, अगर जो व्यक्ति इस गोधूली बेला को राक्षसी बेला कहता है, उससे बड़ा मूर्ख संसार में नहीं है।'' श्रद्धामूलक रचनाओं में उल्लास श्रद्धा और उत्कृष्ट आत्मविश्वास है। इस कोटि में विधिमूलक रचनाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, जिनमें सन्त कवियों ने कुछ सिद्धान्तों और मान्यताओं के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया है।

श्रद्धा और उल्लास का भाव प्रायः गुरु आदर और भक्ति निवेदित करते हुए योग की चरम स्थिति या आत्मानन्द की अनुभूति और प्रेममिलन का वर्णन व्यक्त हुआ है। गुरु के प्रति भक्ति का उत्कर्ष निर्गुण सम्प्रदाय में जिस कोटि का है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कबीर की प्रसिद्ध उक्ति है कि गुरु गोविन्द से भी बड़ा है। सभी को ज्ञात है कि कबीर ने भिन्न शब्दों में गुरु महिमा का गान किया है। भगवान् की भक्ति केवल गुरु के प्रसाद से मिली है, ऐसा कहते हुए वे थकते नहीं हैं ।

कहै कबीर कृपा भई, गुरु ग्यान कहा समझाई ।
हृदय श्री हरि भेटिये, जो मन अनंत नहि जाई ।।
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाय ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो दिखाय ।।[5]

कबीर गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि गुरु के द्वारा दिया हुआ ज्ञान ही पथ–प्रदर्शक है । वे कहते हैं कि अगर ईश्वर को ढूँढ़ना है तो हृदय में ढूँढ़िये फिर आपका मन भ्रम में पड़कर अन्यत्र नहीं। भटक सकता।

वे भगवान् से बढ़कर गुरु को मानते हैं। उनका कहना है कि ''गुरु और ईश्वर दोनों एक साथ ही खड़े थे। उसी समय भक्त आ पहुँचा और ईश्वर के चरणों में नतमस्तक होने के लिए आतुर हुआ। तभी ईश्वर ने भक्त से कहा कि तुम पहले अपने गुरु के चरणों में शीश झुकाओ।'' ईश्वर से गुरु की महत्ता का प्रतिपादन इन निर्गुणियाँ कवियों द्वारा किया गया है।

इसी तरह धरमदास ने तो अत्यन्त स्पष्ट रूप से सबका नाम गिनाकर घोषित किया है कि गुरुपद सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ पद है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी मेरे गुरु के समकक्ष तुच्छ हैं । यथा– गुरु के सामने चारों वेद तुच्छ हैं, गुरु की कृपा से नारद मुनि हुए और गुरु का गान पार्वती ने भी किया है। मनुष्य और देवता, राम और सीता भी गुरु को श्रेष्ठ मानते हैं। जैसे कबीर ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है।

वैसे ही सन्त कबीर ने योगानुभूति का वर्णन भी बड़े उल्लासमय ढंग से किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आनन्दानुभूति किताबी नहीं बल्कि निर्गुणिया साधकों ने अपने–अपने सच्चे अनुभव को ही व्यक्त किया है। जैसे सहजो बाई उस प्रकाशमय जगत् का वर्णन करती हैं जो आत्मज्ञान अपूर्व है, अद्भुत है, अवर्णनीय है। यथा–

छहूँ केवल कूँ देखकरि सतवें में घर छाव।
रसना उलटि लगाय करि, जब आगे कूँ घाव ।।
जब आगे कूँ घाव देख करि जगमग जोती ।
बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजै मोती ।।
हंस–हंस जहाँ होत है ओअं ओअं होय ।
चरनदास यों कहते हैं, सहजो सुरति समोय ।।

उसी प्रकार धरमदास ने उच्च अट्टालिकाओं का वर्णन किया है जिसमें अमृत की बूँदों की झड़ी लगी हुई है। आकाश में बादलों का गम्भीर गर्जन हो रहा है तथा कभी गर्जन और कभी बिजली का त्वरित प्रकाश तथा उसकी उठती हुई चमक पूर्ण ऊर्मियों की शोभा अकथनीय है। उस शून्य के महल में अमृत वर्षा का भानकर साधक स्नान करता हुआ प्रेमानन्द का अनुभव कर रहा है। हृदय के कपाट खुल गये हैं और अज्ञान एवं माया की अंधियारी नष्ट–सी हो गयी है। सद्गुरु की कृपा से यह धरमदास को दैवी आनन्द मिल रहा है।

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।
खन गरजै खन बिजली चमकै, लहर उठै सोभा बरनि न जाय।।

धरमदास की स्वानुभूति में निर्गुण निराकार ब्रह्म का भलीभाँति आँकलन किया गया है कि निराकार ब्रह्म का स्वरूप शून्य के समान है और उसमें विलीन होने वाला साधक अमृत जैसे मीठे एवं शाश्वत ज्ञान का अनुभव करते हुए ब्रह्म–उपासना के माध्यम से ईश्वर का दर्शन कर रहा है उसके हृदय के बन्द दरवाजे खुल गये हैं और हृदयरूपी मन्दिर में ईश्वर की मूर्ति स्थापित हो गयी है, अज्ञान एवं माया से रहित ज्ञानरूपी चक्षु खुल गये हैं जिसके फलस्वरूप सन्त हरिदर्शन में विलीन हैं।

निर्गुणियों ने यह स्पष्ट बताया है कि निराकार ब्रह्म की जब प्राप्ति हो जाती है, या प्रत्यक्ष रूप से भक्त जब दर्शन कर लेता है तब पुनः उसकी स्थिति कितनी दयनीय हो जाती है, और वह उस ब्रह्म की खोज में एकान्त शान्त में नयन मूँदे बैठा ही रह जाता है । इसी स्थिति का वर्णन धरमदास ने प्रेम और मिलन के समय भगवान् के ऐश्वर्य, वैभव एवं भक्ति को परिभाषित किया है, जिसके कारण भक्तिमार्ग में ही परम सौन्दर्यशील प्रेमी का दर्शन हो जाता है । दर्शन से सन्त एकदम भावविभोर–सा हो जाता है, जिसके कारण उसका चित्त उसके वश में नहीं रह जाता है। उस रूप और प्रकाश को देखकर सूर्य और चन्द्रमा भी मलिन हो गये। उस दर्शन की पुनः इच्छा से भक्त तड़प रहा है ।

इस प्रकार सन्त कवियों की मूलभूत रचनाओं में उन सिद्धान्तों तथा आचार–विचारों का उल्लेख किया गया जो एक सच्चे साधक के लिए जरूरी है। जहाँ एक ओर अन्धविश्वास एवं बाह्याचार तथा वैदिक परम्परा का खण्डन है वहीं पर अत्यन्त स्पष्ट तथा सन्देहपूर्ण शैली में

जीवनोपयोगी उस सत्य तत्त्व को उद्घाटित किया गया है, तथा निर्गुण, निराकार ब्रह्म के उपासक कबीर सच्चे भक्तों की पहचान बताते हुए कहते हैं कि– सच्चा भक्त प्रायः विरला ही होता है। क्योंकि भक्त के लिए आवश्यक गुणों की उपलब्धि बहुत कठिन है। भगवान् के सच्चे रूप की पहचान के लिए काम, क्रोध, लोभ के विकारों से मुक्त होना आवश्यक है। तामस, राजस और सात्विक भाव तीनों ही एक माया के रूप हैं। इनके अतिरिक्त मन की चौथी अवस्था में ही रहने वाले भगवान् को पाते हैं। भक्त स्तुति और निन्दा दोनों से अनासक्त रहता है और अभिमान तथा प्रतिष्ठा की ईर्ष्या उसमें नहीं होती है। जो लोहा और सोना दोनों को समान दृष्टि से देखता है। वही सच्चा भक्त है। भक्त को यदि किसी की चिन्ता नहीं रहती है तो वह चिन्तामणि के समान भगवान् का ही ध्यान करता है और सबसे उदासीन रहकर केवल ईश्वर–आराधना में तल्लीन रहता है। उसकी इस कथन की एक बानगी देखिये–

महल से अमृत बरसे प्रेम प्रेम अनंद होई होई साधन हाय।
खुलि किवरिया भिरी अंधिरियां घन सत गुरु जिय दिया है लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय।[6]

निर्गुण सम्प्रदाय सन्तों की वाणियों की ही देन है, क्योंकि निर्गुणियाँ सन्त दार्शनिक विचारधारा से ओत–प्रोत आत्मचिन्तन करते हैं, तथा कुम्भक की स्थिति में पाटचक्रों का भेदन कर अन्त में अनहद के साथ अपनी सुरति को जोड़कर आराध्य की प्रार्थना करते हैं। निर्गुण गुणातीत परमतत्त्व की रहस्यात्मक स्थिति का अवलोकन मात्र है। यह सच है कि जो चीज खुलेआम (प्रत्यक्ष) रूप में दिखायी देती है उसे देखने की ललक उतनी नहीं होती जितनी की पर्दे में रखी वस्तु की । क्योंकि यह उत्सुकता स्वाभाविक है उसी प्रकार साकार ब्रह्म की अपेक्षा निराकार ब्रह्म की उपासना है क्योंकि इस बात के समर्थक विज्ञानवेत्ता भी हैं। जैसे अलबर्ट आइंस्टीन का दावा है कि जिस किसी परम वस्तु की हम उपलब्धि कर सकते हैं वह रहस्यमयी ही हो सकती है और वही वस्तुतः सच्ची कला और सच्चे विज्ञान के लिए मूल स्रोत भी ठहरायी जा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. पाण्डेय, डॉ. राजबली, हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (सगुण भक्ति), खण्ड–1, पृ.सं. 5
2. अप्पर, जी.ए. नरसेन, प्रदास, पृ.सं. 43
3. वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त, इतिहास, पृ.सं. 29
4. मोहन, विवेक, रैदास वाणी (पद–24), पृ.सं. 12
5. तिवारी, पारसनाथ, कबीर ग्रन्थावली (हरिऔध), पद–300, पृ.सं. 119
6. धरमदास की वाणी, पृ.सं. 33

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. पाण्डेय, डॉ. राजबली, हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग–1, नागरी प्रचारिणी सभी, वाराणसी, संस्करण–2014
2. मोहन, विवेक, रैदास वाणी, राजश्री प्रकाशन, दिल्ली।
3. तिवारी, पारसनाथ, कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, संस्करण–1961
4. सन्त धरमदास की शब्दावली, वेलवीडीयर प्रकाशक, इलाहाबाद, संस्करण–1926

सूफी–साधना और संगीत का सम्बन्ध

प्रो. मंगला कपूर** **डॉ. शिवि तिवारी***

सारांश

सूफी कवियों के अनुसार, इस सृष्टि में आने के पहले जब आत्मा, परमात्मा से अलग नहीं हुआ था और उस समय उसने जो स्वर्गीय संगीत सुना था उसको इस संसार का संगीत जाग्रत कर देता है। संगीत सुनकर वह इस संसार से परे होकर उस स्वर्गीय संगीत को सुनने लगता है और उसे पूर्वावस्था (जिसमें आत्मा, परमात्मा से अलग नहीं था) प्राप्त हो जाती है। वह भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है और उसका नस (आत्मा का वह अंश जो कुप्रवृत्तियों की ओर ले जाता है) पिंजड़े के पक्षी की तरह पिंजड़े से छुटकारा पाने के लिए छटपट करने लगता है (इब्नुलफरीद)। संगीत को धर्मानुमोदित मानने के पक्ष या विपक्ष में बहुत–सी हदीसों का हवाला दिया जाता है। इसे धर्मानुमोदित साबित करने के लिए अबू अब्दुल रहमान अल–सुलमी ने बहुत–सी हदीसों का संग्रह अपनी पुस्तक किताब अल–समा में किया है। चाहे जो हो, सूफियों और दरवेशों के सम्प्रदायों ने इसको अपना लिया और इसको एक विशिष्ट स्थान दिया।

मुख्य शब्द : *पूर्वावस्था, भावाविष्टावस्था, नस, हदीस, हवाला, दरवेश*

प्रविधि : *इस शोध–लेख के लिए द्वितीयक माध्यमों से सामग्री ली गई है।*

मुसलमानों में ऐसी प्रचलित धारणा है कि औलिया का परमात्मा के साथ एक निकट का सम्बन्ध होता है। उनके लिए दृश्य तथा अदृश्य जगत में कोई अन्तर नहीं है। जब वे भावाविष्टावस्था में रहते हैं तो उनके और अदृश्य जगत् के बीच का अवरोध दूर हो जाता है और उन्हें सत्य के दर्शन होते हैं।[1] कहा जाता है कि सन्तों के लिए कोई जरूरी नहीं है कि वे आध्यात्मिक तत्त्वों के जानकार हों और वे धार्मिक ग्रन्थों में निरत रहें। फकीरी जीवन बिताने वाला अथवा बहुत बड़ा सदाचारी और निष्ठावान व्यक्ति ही सन्त हो सकता है। जिसे भावाविष्टावस्था और 'उल्लास' की प्राप्ति हो जाये, वही 'वली' है। इस अवस्था की प्राप्ति होने पर उसके लिए संसार का बन्धन नहीं रह जाता और न वह संसार का रह जाता है।[2] सन्तों के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा और इस प्रकार के विश्वास अधिकांश जन में सूफियों के ही कारण हैं। सूफियों का ऐसा विश्वास है कि इस्लाम अनुयायियों में वे विशेष रूप से परमात्मा के कृपापात्र हैं। सन्तों के बारे में उनका ख्याल है कि वे परमात्मा के वली (मित्र) हैं। इसलिए सूफियों के भी अन्तर्गत उन्हें परमात्मा का विशेष अनुग्रह प्राप्त है।

प्रसिद्धि–प्राप्त सन्तों को लोग शेख, वली कहा करते हैं। उन्हें मुराबीत भी कहते हैं। इन सन्तों की आध्यात्मिक शक्ति और गुणों के बारे में अल–हुजवीरी ने कहा है, 'परमात्मा ने आज तक पैगम्बरी शक्ति को बचा रहने दिया है और सन्तों के द्वारा उसे प्रकट करता है जिसमें (परम) सत्य के चिन्ह और मुहम्मद की सत्यता के प्रमाण दृष्टिगोचर होते रहें। औलिया के सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि चूँकि वे परमात्मा के विशेष कृपा पात्र हैं इसलिए परमात्मा ने उन्हें विशेष शक्ति प्रदान की है। साधारण–जन अपने इसी विश्वास के कारण अपने दुखों के निवारण करने के लिए उनका स्मरण करते हैं। उनके मकबरों पर शिरीनी चढ़ाते हैं और मन्नत मानते हैं। सन्तों के मजारों के दर्शन के लिए जो जाते हैं उसे 'जियारत' कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि परमात्मा के विशेष प्रेम–पात्र होने के कारण सन्त कभी डरते नहीं। इन मकबरों में उस सन्त की सेवा के लिए संसार त्यागी दरवेश रहते हैं। वे स्वयं भी पवित्र जीवन बिताने वाले होते हैं। अपने दुःखों को दूर करने के लिए अथवा किसी अन्य काम में सफलता प्राप्ति करने के लिए लोग उन दरवेशों से मृत सन्त से प्रार्थना करने के लिए कहते हैं। वे सेवा में नियुक्त दरवेश स्वयं शेख या औलिया हो सकते हैं और अपने साथ एक या दो मुरीद (शिष्य) रखते हैं जिन्हें वे आध्यात्मिक शिक्षा देते हैं।[3] औलिया के सम्बन्ध में किसी

*पीएच.डी., गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**(सेवानिवृत्त), गायन विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकार का सन्देह प्रकट करना धर्म के विरूद्ध माना जाता है। उनके आचार–विचार के सम्बन्ध में लोगों के मन में किसी प्रकार के प्रश्न नहीं उठते। 'सन्त' शब्द का प्रयोग इतना व्यापक है कि जलालुद्दीन रूमी जैसे सूफी–कवि और साधक तथा इब्न–अल–अरबी जैसे दार्शनिक और कवि से लेकर पगले, अर्द्ध–विक्षिप्त, कम समझ तथा अनाप–शनाप बकने वाले सभी इस कोटि में आ गये हैं।[4] जलालुद्दीन रूमी ने कहा है कि औलिया का हाथ मानों परमात्मा का ही अंश है। लेकिन इस प्रकार के विश्वास के कारण बहुत से धूर्तों को भी छूट मिल गयी है जो संतों का स्वांगभर रचते हैं और मनमानी करते हैं।[5] सूफियों का विश्वास है कि प्रत्येक काल में एक ऐसा सन्त अवश्य होता है जो सर्वोच्च स्थान का अधिकारी होता है। उस सन्त को कोई देख नहीं सकता, वह बराबर अवश्य रहता है। संसार को चलाने के लिए और उस पर नियन्त्रण रखने के लिए ये औलिया (सन्त) परमात्मा के द्वारा शासक के रूप में भेजे जाते हैं। ऐसे बहुत से सन्त हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इन सन्तों की नियत संख्या है। किसी के अनुसार वह संख्या 4000 है और कोई इसे 356 बतलाता है। आध्यात्मिक शक्ति और पवित्रता के अनुसार, इनकी सात श्रेणियाँ हैं। इनकी समिति को 'गौस उल आलम' कहते हैं। गौस उल आजम इनमें सर्वोच्च है जो अपने पुण्य–बल से दूसरों के पाप काटता है। कुत्ब उसका वजीर है। जो अपने समय का सर्वश्रेष्ठ सन्त होता है, उसे कुत्ब–उल–वक्त–अकतूब कहते हैं। हुजवीरी ने बतलाया है कि इस प्रकार के अधिकारियों में तीन सौ ऐसे हैं जिन्हें अख्वार कहते हैं, चालीस अब्दाल हैं, सात अब्रार कहलाते हैं, चार औताद हैं, तीन नुक्बा और एक कुत्व हैं जिसे गौस भी कहते हैं। ये एक–दूसरे को जानते हैं और बिना एक दूसरे की राय के कोई काम नहीं करते। कुछ लोगों के अनुसार, सबसे ऊपर गौस, चार औताद, सात अख्यार, चालीस अब्दाल, सत्तर नुजवा और तीन सौ नुकबाकी वेशी नहीं होती। ये सभी अदृश्य रहते हैं और उनकी एक शासन सभा है जिसकी बराबर बैठकें होती हैं और कुत्ब उन सबों के ऊपर है।[6]

अफीफुद्दीन तिलिमसानी ने सूफियों की यात्रा के चार मंजिल बतलायें हैं। तिलिमसानी के वर्णन से कुत्ब के स्थान और आध्यात्मिक शक्ति का पता चलता है। तिलिमसानी ने बतलाया है कि पहली मंजिल की समाप्ति फना है जो मारिफ (ईश्वरीय ज्ञान) से प्रारम्भ होती है और दूसरी मंजिल वह है जब फना के बाद बकाकी स्थिति का आरम्भ होता है। जो इस मुकाम पर पहुँच जाता है वह मानों परम सत्य में ही यात्रा करने लगता है। उस समय वह परम सत्य के द्वारा परम सत्य के लिए अग्रसर होता है। इस प्रकार से अग्रसर होता हुआ वह उस जगह पहुँचता है जो कुत्बका स्थान है। वहाँ पहुँचकर वह आध्यातिम्क जगत का केन्द्र हो जाता है।[7] शेख अबुल कासिम गुरगानी 67 और जुनैद 68 अपने काल के कत्ब थे। ये कूत्ब केवल अदृश्य रूप सें ही इस सम्पूर्ण जगत की व्यवस्था नहीं करते बल्कि कभी–कभी इस दृश्यमान जगत के भी अधिकारी होते हैं। जैसे कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद के बाद चारों खलीफा, हसन और हुसैन तथा मुआविया, उमर बिन अब्दुल अजीज और मुतवक्किल ये तीन खलीफा अपने समय के कुत्ब थे। इसी प्रकार अबुल अब्बाल अहमद बिन मसरूक तथा फरगना के अशलाटक गाँव के एक वृद्ध जिनका नाम बाब उमर था, औतादों में थे।[8]

प्रारम्भ में सूफी साधकों ने इन चमत्कारों को साधक के लिए एक प्रलोभन माना था जो उन्हें लक्ष्य भ्रष्ट करता है। इसे वे अपने आध्यात्मक मार्ग की बाधा समझते थे, बायजीद बिस्तामी का कहना था कि साधना की प्रारम्भिक अवस्था में परमात्मा मेरे सामने बहुत से चमत्कार लाया करते थे लेकिन मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और जब उन्होंने देखा कि मैं ऐसा करता हूँ तब उन्होंने मुझे वह साधन दिया जिससे मैं उनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। उस काल के सूफी साधक इन चमत्कारों से दूर भागते थे क्योंकि वे परम सत्य तक पहुँचने में रोड़ा जैसे हैं। बाद में चलकर दरवेशी के भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों ने करामातों (चमत्कारों) को बहुत बड़ा बना दिया।[9]

सनातन पंथी सूफी साधकों ने पैगम्बर और सन्त के अन्तर पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि जहाँ 'सन्त–त्व' का अन्त होता है वहाँ से 'पैगम्बर–त्व' का प्रारम्भ होता है। प्रत्येक पैगम्बर सन्त होता है लेकिन सभी सन्त पैगम्बर नहीं होते। सन्तों की 'हाल' (भावाविष्टावस्था) की अवस्था स्थायी नहीं होती लेकिन पैगम्बर की स्थायी होती है, वही उसकी प्रकृत अवस्था है। पैगम्बर मानव जगत् के दोष–गुणों से परे होता है जबकि सन्तों के लिए यह अवस्था अल्पकालिक ही होती है। अतएव सनातनपंथी सूफियों का कहना है कि सभी अवस्थाओं तथा सभी

कालों में सन्त का दर्जा पैगम्बर से नीचे का है। 'सन्त–त्व' का प्रारम्भ भी है और अन्त भी, लेकिन पैगम्बर सदा–सर्वदा पैगम्बर ही थे।

सन्तों की शक्ति सीमित है। अबुल हमन खुरकानी फारस के रहने वाले एक सूफी सन्त थे। उनकी मृत्यु सन् 1033 ई0 में हुई। उनके बारे में कहा जाता है कि एक दिन रात में उन्होंने कहा कि किसी एक विशेष मरूभूमि में बहुत से आदमी डाकुओं द्वारा मार डाले गये हैं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उन्होंने जो कुछ कहा था वह बिल्कुल ठीक है। उसी रात को किसी ने उनके पुत्र का सिर काटकर उनके दरवाजे पर लटका दिया और उन्हें पता तक नहीं चला। अपनी रोती हुई स्त्री के पूछने पर कि शेख की इतनी दूर की बात मालूम हो गयी और दरवाजे की घटना का पता नहीं, इससे वह क्या समझे, शेख ने बताया कि पहली घटना के समय उसकी आँखों से हिजाब (पर्दा) दूर हो गया था और दूसरी घटना के समय वह फिर उसकी आँखों पड़ गया था। यह कहानी सन्तों की सीमित शक्ति पर प्रकाश डालती है।[10]

कहा जाता है कि साधक को मुर्शीद (गुरू) का बराबर चिन्तन करना चाहिए। उसे बराबर गुरू का ध्यान करना चाहिए। सभी बुरे विचारों से गुरू उसकी रक्षा करता है। गुरू की अलौकिक शक्ति मानों साधक की सभी चेष्टाओं में उसके साथ बनी रहती है और जहाँ भी वह जाता है उसके साथ बनी रहकर उसकी रक्षा करता है। गुरू अपनी शक्ति द्वारा उसके सभी कर्मों, सभी विचारकों का दर्शक बना रहता है और सब प्रकार से उसका सहायक बना रहता है। ध्यान करते–करते यह चीज इतनी दूर तक पहुँच जाती है कि साधक सभी मनुष्यों तथा सभी वस्तुओं में गुरू को ही देखता है। इस स्थिति को 'गुरू में लय कर देना' कहते हैं। गुरू अपनी दिव्य शक्ति से जान जाता है कि साधक इस साधना में कहाँ तक सफल हो सका है और कहाँ तक वह अपने को उसके साथ एक कर पाया है। इस अवस्था में पहुँचने पर मुर्शीद उस साधक को अपने सम्प्रदाय के संस्थापक दिवंगत पीर की दिव्य शक्ति के अधीन कर देता है। साधक अपने गुरू की आध्यात्मिक शक्ति के सहारे उस पीर की प्रत्यक्ष करता है। इसको 'पीर में लय करना' कहते हैं। अब साधक मानों उस पीर का अंग बन जाता है और उसकी सम्पूर्ण दिव्य शक्ति का अधिकारी बन जाता है। तीसरी अवस्था में मुर्शीद (गुरू) उसको पैगम्बर के निकट पहुँचा देता है और साधक सभी वस्तुओं में पैगम्बर ही देखने लगता है। इस अवस्था को 'पैगम्बर में लय' होना कहते हैं। चौथी अवस्था में साधक परमात्मा तक पहुँच जाता है और सभी वस्तुओं में वह परमात्मा का दर्शन करने लगता है और इस प्रकार वह उसके साथ एकत्व प्राप्त करता है। इस अवस्था में पहुँचने के बाद मुर्शीद (गुरू) और फिर उसकी प्रथमावस्था में पहुँचा देता है और सबसे ऊपर उठकर, सबसे अछूता रहकर वह फिर से साधारण मनुष्य की तरह इस्लाम के नियमों का पालन करने लगता है। वह सहज भाव से अपना जीवन व्यतीत करने लगता है। अब उसे संसार के माया मोह नहीं छू पाते। वैसे इस चौथी मंजिल तक पहुँचना बहुत ही कठिन है।[11] सूफियों का विश्वास है कि पीर (गुरू) में यह सामर्थ्य है कि यह मुरीद के भीतर आध्यात्मिक शक्ति का प्रवेश करा दे। इसके लिए एक क्रिया होती है, जिसका प्रयोग गुरू करता है। इस क्रिया को 'तवज्जह' कहते हैं। इसमें ध्यान के द्वारा गुरू अपने अन्तर से शिष्य के हृदय में आध्यात्मिक शक्ति पहुँचा देता है। गुरू में ऐसी शक्ति होती है कि अगर वह किसी अजनबी की ओर दया–दृष्टि से देख ले तो वह उसका अपना बन जाता है। जुनैद के बारे में कहा जाता है कि एक बार बगदाद में उन्होंने एक सुन्दर ईसाई युवक को देखा। परमात्मा से उसके लिए उन्होंने प्रार्थना की। उसके थोड़ी ही देर बाद वह उनके पास आया और इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गया। बाद में बड़े सन्तों में गिना गया।[12]

'जिक्र के दो प्रकार हैं। एक में साधक जोर–जोर से अल्लाह के नाम का उच्चारण करता है। जोर–जोर से ऊँची आवाज में नाम लेने का उद्देश्य यह है कि परमात्मा के नाम के सिवाय अन्य कोई ख्याल साधक के मन में न आवे; इसे 'जिक्र–जली' कहते हैं। जोर–जोर से नाम लेने के अलावा और भी कितनी शारीरिक क्रियाएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं। दूसरा प्रकार ठीक इसके उल्टा है। इसे 'जिक्र खफी' कहते हैं। इसमें साधक चुपचाप शान्त भाव से मन–ही–मन परमात्मा का स्मरण करता रहता है। 'जिक्र खफी' के आविर्भाव के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पैगम्बर और अबूबक्र दुश्मनों के कारण एक गुफा में छिपे हुए थे। वहीं पर पैगम्बर ने कहा था कि 'दुःखी मत होओ, परमात्मा हम लोगों के साथ हैं।' इसी वचन से 'जिक्र–खफी' की उत्पत्ति मानी जाती है। नक्शबन्दी सम्प्रदाय के फकीरों में जिक्र–खफी का प्रचार है और चिश्ती या कादिरी

सम्प्रदाय में 'जिक्र जली' का।

'जिक्र अली' की क्रियाओं के सम्बन्ध में दिल्ली के शाह वली अल्लाह ने अपनी पुस्तक 'कौलुल जमील' में इस प्रकार से लिखा है– साधक सहज भाव से बैठ जाता है और जोर से 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करता है। पहले अपनी आवाज को बायें पार्श्व से खींचता है और बाद में अपनी गले से। इसके बाद प्रार्थना की मुद्रा में बैठकर पहले से भी अधिक उच्च स्वर में वह 'अल्लाह' शब्द दुहराता है। इस बार दाहिने घुटने से वह प्रथमतः आवाज को खींचता है और इसके बाद अपने बांये पार्श्व से। फिर पैरों को मोड़कर और भी अधिक ऊँचे स्वर में वह 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करता है। प्रथमतः दाहिने घुटने से, इसके बाद बायें पार्श्व से उसकी आवाज इस बार आती है। इसी मुद्रा में बैठा हुआ वह और भी अधिक जोर से 'अल्लाह' शब्द कहता है और इस बार उसकी आवाज का क्रम यों रहता है; पहले बायें घुटने से, फिर दाहिने घुटने से, इसके बाद बायें पार्श्व से और अन्त में सम्मुख से। आवाज का सुर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसके बाद मक्काकी दिशा में मुँह फेरकर साधक प्रार्थना की मुद्रा में बैठ जाता है और अपनी आँखें बन्द कर लेता है। आवाज को नाभि से खींचकर बाँयें कन्धे की ओर ले आता है और 'ला' शब्द का उच्चारण करता है; तब वह 'इल्लाह' कहता है। मानों वह अपनी आवाज मस्तिष्क से खींचता है और अन्त में बाँयें पार्श्व से आवाज को जैसे खींचता है और पूरी शक्ति लगाकर 'इल्ला' 'लल्लाहु' कहता है। इनमें से एक के बाद दूसरी सीढ़ी का वर्णन है। उनमें से प्रत्येक को 'जर्ब' कहते हैं। ये 'जर्ब' सैकड़ों बार दुहराए जाते हैं।

'जिक्र खफी' की क्रियाओं का क्रम इस प्रकार है– इसमें साधक बहुत धीरे–धीरे अथवा मन–ही–मन शब्दों का उच्चारण करता है। आँखें और जिह्वा बन्द कर लेता है और इसके बाद मानों वह अपने हृदय की जिह्वा से कहता है–

अल्लाहु समीयून (परमात्मा जो सुनता है)

अल्लाहु बसीरुन (परमात्मा जो देखता है)

अल्लाहु आलीमुन (परमात्मा जो जानने वाला है)

पहले को वह नाभि से हृदय तक ले जाता है, दूसरे को हृदय से मस्तिष्क तक और तीसरे को मस्तिष्क से अन्तरिक्ष तक और फिर उसी क्रम से पीछे लौटता है। इसी प्रकार से वह बार–बार करता है। वह धीमे स्वर से 'अल्लाह' कहता है। पहले दाहिने घुटने से और तब बाँयें पार्श्व से। प्रत्येक बार जब वह साँस छोड़ता है वह 'ला इलाहा' कहता है और जब साँस खींचता है तब 'इल्ला ल्लाहु' कहता है। यह तीसरा जर्ब बहुत ही श्रम–साध्य है और इसे सैकड़ों, हजारों बार दुहराया जाता है और बहुत ही महत्व का और पुनीत माना जाता है।

औरतें भी साधना कर सकती हैं। इसलिए उनको दृष्टि में रखकर 'जिक्र' के लिए स्थान और समय निर्धारित करते हैं। टाइटस का कहना है कि इस देश में उसकी स्त्री ने बिजनौर जिले के किसी स्थान पर किसी के अन्तःपुर में इस तरह के लोगों को जिक्र के लिए इकट्ठे होते देखा था। भारतवर्ष में साधारणतः 'जिक्र' के लिए वृहस्पतिवार की राषि में लोग इकट्ठे होते हैं।[13]

साधना और संगीत से संबंध

बाद में चलकर सूफियों ने देखा कि भावाविष्टावस्था केवल जिक्र (स्मरण), ध्यान आदि से ही नहीं उत्पन्न होती बल्कि नृत्य, संगीत आदि से भी होती है। नृत्य संगीत आदि का सम्मिलित नाम 'समा' से प्रकट किया जा सकता है। 'समा' का अर्थ वास्तव में 'सुनना' है, वैसे इस 'सुनने' और साधारण बोलचाल की भाषा में जो 'सुनने' का प्रयोग किया जाता है, उसमें थोड़ा अन्तर है। इसमें सुनने का मतलब यह है कि सुनने वाला जिस चीज को सुन रहा है उसमें तन्मय हो जाय, जैसे संगीत का सुनने वाला संगीत में तल्लीन हो जाता है लेकिन सूफी इसका एक विशेष अर्थ में प्रयोग करते हैं। सूफियों के अनुसार इसका अर्थ संगीत, गायन समस्वर से पाठ आदि है जिनमें एक या सबके सम्मिलित प्रभाव द्वारा भावाविष्टावस्था की उत्पत्ति होती है। यह अर्थ धीरे–धीरे विकास को प्राप्त हुआ है। भक्ति साहित्य के 'श्रवण' के अनुरूप यह है। इस शब्द का प्रयोग कुरान में नहीं मिलता लेकिन पुरानी अरबी भाषा में संगीत और गायन के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।[14]

सूफी इस बात में विश्वास करते हैं कि परमात्मा ने जगत के सभी प्राणियों को अपनी–अपनी भाषा में उसका गुणानुवाद करने की शक्ति दी है। इस प्रकार से सृष्टि की जितनी ध्वनियाँ हैं वे स्तुति–वादन का रूप ले लेती है। अतएव परमात्मा ने जिसके अन्तर को खोल

दिया है और आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की है वह सर्वत्र उसकी आवाज सुनता है। यही कारण है कि मुअजिन के लय–सुर वाले संगीत को सुनकर अथवा हवाली आवाज या चिड़ियों के सुरीले संगीत आदि को सुनकर वह भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है। सूफी कवियों ने भी बहुत जगह कहा है कि इस सृष्टि में आने के पहले जब आत्मा, परमात्मा से अलग नहीं हुआ था और उस समय उसने जो स्वर्गीय संगीत सुना था उसको इस संसार का संगीत जाग्रत कर देता है। संगीत सुनकर वह इस संसार से परे होकर उस स्वर्गीय संगीत को सुनने लगता है और उसे पूर्वावस्था (जिसमें आत्मा, परमात्मा से अलग नहीं था) प्राप्त हो जाती है। वह भावाविष्टावस्था को प्राप्त हो जाता है और उसका नस (आत्मा का वह अंश जो कुप्रवृत्तियों की ओर ले जाता है) पिंजड़े के पक्षी की तरह पिंजड़े से छुटकारा पाने के लिए छटपट करने लगता है (इब्नुलफरीद)।

संगीत को धर्मानुमोदित मानने के पक्ष या विपक्ष में बहुत–सी हदीसों का हवाला दिया जाता है। इसे धर्मानुमोदित साबित करने के लिए अबू अब्दुल रहमान अल–सुलमी ने बहुत–सी हदीसों का संग्रह अपनी पुस्तक किताब अल–समा में किया है। चाहे जो हो, बहुत से सूफियों और दरवेशों के सम्प्रदायों ने इसको अपना लिया और इसको एक विशिष्ट स्थान दिया। भारतवर्ष में चिश्ती–सम्प्रदाय में इसका अत्यधिक प्रचलन है। इसी प्रकार उलेमाओं के विरोध के बावजूद भी रिफाई, मौलवी, बदावी, सादी तथा अशरफी सम्प्रदाय वालों ने इसे अंगीकार किया। धीरे–धीरे बहुत से वाद्य–यन्त्रों को भी स्वीकार कर लिया गया। रोज का कहना है कि कादिरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अब्दुल कादिर जिलानी के ठीक बाद होने वाले उनके उत्तराधिकारी साद शम्सुद्दीन ने साधकों द्वारा किये जाने वाले नृत्य के साथ संगीत का समावेश किया। रोज का अनुमान है कि सम्भव है कि मुसलमानों में इस प्रकार के नृत्य का प्रचलन मिस्र, ग्रीक तथा रोम के धार्मिक नृत्यों से ही आया हुआ हो। उर्स के समय समा का उपयोग विशेष रूप से होता है।[15]

संगीत, वाद्यादि से भावोल्लास उत्पन्न होने पर सूफी–साधक अकेले या सम्मिलित रूप से नृत्य करना शुरु कर देते हैं जिसे 'रक्स' कहते हैं। हुजवीरी के मत से नृत्य न धर्मानुमोदित है और न सूफियों ने ही उसे कोई स्थान दिया है लेकिन भावोल्लास के समय जब हृदय आनन्द से धड़कता रहता है उस समय औचित्य अनौचित्य का प्रश्न दूर हो जाता है। उस समय साधक न 'नृत्य करता रहता है और न पायबाजी' बल्कि उस समय उसका 'अहं' भाव जाता रहता है। उसे जो नृत्य समझते हैं वे अत्यन्त भूल करते हैं। वह ऐसी अवस्था है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। उस अवस्था में कपड़े के टुकड़े–टुकड़े कर देने या वैसे ही निकालकर फेंक देने की बात सूफियों में पायी जाती है। उस कपड़े का क्या उपयोग होना चाहिये, इस पर हुजबीरी ने पूरा प्रकाश डाला है। वह कपड़ा या तो दरवेशों के काम में आता है या गाने वाले को मिल जाता है या शेख जिसे दे दे, उसे ही प्राप्त हो जाता है।

सूफी साधना में लतायफी सित्ता के सिद्धान्त का भी प्रचलन है। कहा जाता है कि इस सिद्धान्त के प्रवर्तक शेख अहमद हैं जो नक्शबन्दी सम्प्रदाय के थे। वे ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में हुए। लतायफ का सिद्धान्त बहुत कुछ कुंडलिनी चक्रों के सिद्धान्त जैसा है। शेख अहमद ने मनुष्य के शरीर में छः अवस्थानों का जिक्र किया है जो एक–दूसरे को घेरे हुए हैं। ये छः निम्नलिखित हैं–

1. नस– इसका स्थान नाभि के नीचे है।
2. कल्ब– छाती के बाँयी ओर अवस्थित है।
3. रूह– छाती के दाहिनी ओर अवस्थित है।
4. सिर्र– कल्ब और रूह के बीच में है।
5. खफी– इसका स्थान ललाट है।
6. अख्फा– मस्तिष्क में अवस्थित है।

कुछ लोगों के मतानुसार अख्फा छाती के मध्य स्थित है और सिर्र का स्थान कल्ब और अख्फा के बीच है और खफी का स्थान रूह और अख्फा के बीच है। इनके रंगों तथा प्रत्येक स्थान के देवता की भी कल्पना की गयी है। जैसे कल्ब का रंग पीला है और वह आदम के कदमों के नीचे स्थित है। सिर्र उजला, खफी काला और अख्फा हरे रंग का है और ये क्रम से मूसा, यीशु और मुहम्मद के पैरों के नीचे अवस्थित हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि नस नील वर्ण का है। सूफी साधकों का कहना है कि जब नस पूर्ण रूप से अदृश्य हो जाता है तब उज्ज्वल वर्ण का आधिपत्य हो जाता है। साधक जिस अवस्था को प्राप्त होता है वह उस

रंग का शिरस्त्राण धारण करता है और उस रंग को देखकर उस साधक की आध्यात्मिक यात्रा की मंजिल का पता चलता है। साधारणतः रूह का रंग हरा हो जाता है। कहा जाता है कि जैसे–जैसे सालिक ऊपर की ओर बढ़ता जाता है वह भिन्न–भिन्न रंगों को देखता है। आखिरी मंजिल वह है जब सम्पूर्ण भाव से वर्णहीनता आ जाती है अर्थात् कोई भी रंग नहीं रह जाता। साधक उस समय फनाकी अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसे सूफी 'आलमे' हैरत कहते हैं।[16]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त सम्पूर्ण अध्ययन सूफी–साधना और संगीत के सम्बन्ध का विस्तार है ।

संदर्भ सूची :

1. अलहुजवीरी; द कश्फ अल महजुब ट्रॉन्स. आर.ए. निकोल्सन, 1911 पृ. 235–236
2. वही, पृ. 213
3. तिवारी, राम पूजन, 'सूफी मत साधना और साहित्य वही, पृ. 334–36
4. वही, पृ. 337–338
5. निकोल्स, आर.ए., द मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम 1914 पृ. 129
6. अहमद, जुहिरूद्दीन, ग्लोसरी ऑफ पंजाब, ट्राईब्स एण्ड कास्ट्स, 1919 पृ. 524
7. तिवारी, राम पूजन, 'सूफी मत साधना और साहित्य वही, पृ. 346
8. अलहुजवीरी; द कश्फ अल महजुब ट्रॉन्स. आर.ए. निकोल्सन, 1911 पृ. 288
9. वही, पृ. 147
10. वही, पृ. 146
11. निकोल्स, आर.ए., द मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम 1914 पृ. 131
12. तिवारी, राम पूजन, 'सूफी मत साधना और साहित्य वही, पृ. 352
13. वही, पृ. 353–354
14. वही, पृ. 359
15. वही, पृ. 365–368
16. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, खण्ड–7, पृ. 121

सितार वाद्य की विविध वादन शैलियाँ

शिव नारायण कुशवाहा*

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में सितार वाद्य को लोकप्रिय बनाकर स्वतंत्र वादन योग्य वाद्य का स्वरुप देने का श्रेय पूर्ण रुप से तानसेन के वंशजों, अमृत सेन, निहालसेन, रहीम सेन को जाता है। कालान्तर में बीसवीं शताब्दी के समय तक सितार वाद्य का पूर्णरुपेण विकास हो चुका था। तानसेन के वंशजों ने सितार वाद्य पर मूल परिवर्तन किये, इन्होंने ही तारों का विकास करते हुए सितार के तीन तारों की जगह 5 तारों को क्रमशः म, सा, प, सा, सा, म मिलाया तथा यह प्रचलन अब तक है। सितार में वर्तमान समय में मुख्य तारों की संख्या 6 से 7 एवं 11 तरबों के तारों की संख्या है। सितार वाद्य में कालान्तर में समय–समय में हुए परिवर्तन में सितार के बाज में जोड़ आलाप आदि के साथ गत वादन में भिन्नता दिखायी देने लगी। जैसे कि गम्भीर अंग सितार पर आ जाने के कारण सितार–वादन में कतिपय परिवर्तन आये। पं0 रविशंकर, उस्ताद विलायत खां और उस्ताद हलीम जाफर खां ने वीणा का कृन्तन, ख्याल और ठुमरी, अंग, वीणा की अनुकृति कर बायें हाथ की उंगुलियों को कठिन कर, सितार की वादनशैलियों में परिवर्तन किया, जिन्हें विशेष शैली या बाज का नाम नहीं दिया जा सका। अतः वादनशैली के प्रमुख दो या तीन नियामक कहे जा सकते हैं जो क्रमशः मसीतखानी और रजाखानी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें अधिक से अधिक इमदाद खानी शैली और जोड़ी जा सकती है। यद्यपि इनके अतिरिक्त भी शैलियाँ आयीं, जैसे अमीरखानी, मिश्रबानी, सितारखानी, जफरखानी आदि परन्तु वे अधिक समय तक प्रचार में नहीं रहीं।

कीवर्ड– *सितार, वादन, शैली, गत, राग, वाद्य*

प्रविधि– *विभिन्न पुस्तकों के अध्ययनोपरान्त विश्लेषण के बाद शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

भूमिका

सांगीतिक ध्वनि को 'नादब्रह्म' कहा गया है। ब्रह्म की इस सत्ता को अलग–अलग रूपों एवं धर्मों में विश्व के समस्त प्राणी मानते हैं। गीत, वाद्य और नृत्यसंगीत कला के अन्तर्गत इन तीनों स्वतंत्र कलाओं का अलग–अलग महत्व एवं प्रयोजन रहा है। नृत्य से श्रेष्ठ वाद्य और वाद्य से श्रेष्ठ गान कहा गया है। मन की अवस्थाओं का सूक्ष्म चित्रण गीत, वाद्य, नृत्य अर्थात् संगीत द्वारा आसानी से किया जा सकता है। प्राचीन काल से लेकर 18वीं शताब्दी तक भारतीय शास्त्रीय संगीत में जो स्थान वीणा को प्राप्त था, 18वीं शताब्दी के बाद वही स्थान सितार वाद्य ने प्राप्त किया।[1] प्राचीन काल में संगीत ग्रन्थों में हमें वाद्यों की उत्पत्ति का वर्णन किसी–न–किसी देवी–देवताओं से सम्बद्ध प्राप्त होता है। भारतीय संगीत में वाद्यों की तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन इन चार वर्गों में विभाजित किया गया है। भारत की गौरवमयी संस्कृति का दर्शन वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद में कई स्थानों पर बाण, कर्करी, गर्गर, गोधा तथा अधारी आदि तन्त्री वाद्यों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में तन्त्री वाद्यों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आज भी विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों पर इनका वादन किया जाता है। तन्त्री वादकों का समाज में गौरवपूर्ण स्थान है।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि देवी सरस्वती ने प्रदोष कालिक पूजा पर वीणा वादन किया था और आज भी हम सरस्वती के हाथ में वीणा देखते हैं जिसे ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। धर्मशास्त्र में भी तन्त्र वाद्यों को ज्ञान का प्रतीक माना गया है, इसलिए वीणावादिनी श्वेत पद्मासना, सरस्वती को संगीत की अधिष्ठात्री देवी मानकर पूजा और अर्चना की जाती है। वीणा के बिना देवी सरस्वती के ध्यान व पूजा की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

*शोध छात्र, संगीत विभाग, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वाद्य–संगीत में वादन–शैली को ही 'बाज' कहा जाता है। वादन शैली में परिवर्तन होने पर भिन्न–भिन्न शैलियों में बाज की संरचना होती है। उदाहरण के लिए सेनिया बाज, मसीतखानी बाज (दिल्ली), पूर्वी बाज या रज़ाखानी बाज आदि सितार बाज के विकास के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के अलग–अलग विचार है।

यद्यपि 18वीं शताब्दी के सितार वादकों ने नियमबद्ध बारह प्रकार की वादन–क्रियाओं के आधार पर सितार बाज को विकसित किया गया, सितार वादन को बनाया एवं उसे पहचान दिलाई गई। इस शताब्दी के बाज में मुख्य रूप से विलम्बित लय तथा मध्य लय का प्राधान्य था सितार–वादन क्रिया को ध्रुपद और वीणा के नियमों के आधार पर अलंकृत किया गया।

वर्तमान समय के सितार वादन में मीड़, गमक, मुर्की, कृन्तन, खट्का, ज़मज़मा, सूत आदि सौन्दर्य उपकरणों के वादन के साथ–साथ सपाट तान–क्रिया प्रथा अत्यधिक प्रचार में है। वर्तमान सितार–वादन क्रिया में प्रचलित अलंकरण सभी तन्त्री वाद्यों में पूर्णतः एक साथ सम्भव नहीं है परन्तु इन क्रियाओं के वादन के कारण सितार वादकों ने समय–समय पर इसमें इच्छानुसार परिवर्तन किए। इसी के परिणामस्वरूप वर्तमान सितार अपने परिष्कृत रूप में हमें प्राप्त हुआ। सितार के अन्य अंग डॉड, तबली, लंगोट, गुल, तारगहन व खूटियों में भी जो परिवर्तन आए उनका सम्बन्ध पूर्ण रूप से वादन की सरलता व अधिक ध्वनि प्राप्त करने के लिए ही था। तार व तुम्बों के समान ही वादन की सरलता के लिए परदों की संख्या में वृद्धि हुई। पहले के सितार में 16 परदे ही होते थे। आवश्यकतानुसार इसमें 17 व 18 परदे लगाये जाने लगे तथा 19वीं शताब्दी के अंत में सितार में 19 परदों का प्रचलन होने लगा।

सितार वाद्य में पर्दे होते हैं जिन पर अँगुलियों से तार दबाकर अथवा खींचकर स्वर की उत्पत्ति की जाती है। जबकि सरोद में पर्दे नहीं होते हैं। वहाँ स्टील की प्लेट होती है जिस पर नाखून का स्पर्श कर, स्वरों को निर्मित करते हैं। उल्लेखनीय है कि इतना अन्तर होने पर भी दोनों ही वाद्यों पर सुमधुर स्वरों की उत्पत्ति होती है। जबकि वादन तकनीक में बहुत अन्तर है। किसी भी वाद्य को बजाने का प्रमुख साधन हाथ ही होता है। भारत के प्राचीन संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों में भारतीय तन्त्र वाद्यों में हाथ के अलग–अलग हिस्सों से और विभिन्न उंगलियों के द्वारा आघात कर विविधता उत्पन्न करने की बड़ी अनूठी और अत्यन्त विकसित पद्धति का उल्लेख हुआ।

आधुनिक काल में प्रचलित सितार वाद्य 18वीं शताब्दी से विकसित होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप में पहुँचा एवं तानसेन की मृत्यु के बाद दो भाग में विभाजित हो गये। उनके वादक वंशज जिन्हें 'बीनकार' और 'रबाबिया' कहा गया, बारह प्रकार की वादन–क्रिया वादकों ने अपनाईं, जैसे– 1. आलाप 2. जोड़ आलाप 3. ठोंक झाला 4. झाला 5. गुत्थाव 6. लड़ी 7. तोड़ा 8. गत 9. लड़ गुत्थाव 10. लड़ लपेट 11. कत्तर 12. तार परन आदि।[2] उपयुक्त बारह प्रकार के वादन–कौशल में से पहला नौ क्रियाओं के वीणा वादकों ने तथा शेष क्रियाएँ लड़ लपेट, कतर और तार परन को रबाब कलाकारों ने ग्रहण किया। बीनकारों ने स्वर को तथा रबाबियों ने ताल को प्रधानता दी। वीणा का मौलिक रूप सौन्दर्य आलाप, झाला, जोड़ आलाप है।

यद्यपि वादन–क्रिया का प्रमुख वाद्य सितार के बाज पर वीणा अंग का प्रभाव पड़ा। समयान्तर में वीणा वादकों ने उपर्युक्त बारहों प्रकार की क्रियाओं में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली। धुपद अंग से वादन के आलाप भाग को सितार वादकों ने अपने बोल–बांट के समस्त कार्य को रबाब और बीन अंग से दर्शाया अथवा सितार वादन में गत आलाप जोड़ आलाप लड़ी तान में वीणा की वादन–शैली का पूरा प्रभाव बना रहा। भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि शुरू से शिक्षा ग्रहण करके विधार्थी अपनी तरफ से कुछ समावेश करता ताल और राग के नियम का पालन करते हुये कलाकार वादन की एक विभिन्न शैली का निर्माण कर सकता है। तार–परन के पहले सितार–वादन में गत–रचना का मुख्य आधार धुपद माना गया है। रबाब की प्रमुख वादनक्रिया तारपरन है। रबाब वाद्य की देन बोल प्रधान गतकारी है। यह कहना गलत न होगा कि गत बोलबांट का काम बीन और रबाब अंग तथा सितार का आलाप भाग ध्रुपद अंग से ही किया जाता है। दिलरुबा, सारंगी आदि की वादन–शैलियों का भी प्रभाव सितार–वादन पर वीणा और रबाब के अतिरिक्त रहा है। ज़मज़मा का वादन दिलरूबा वाद्य का ही अनुसरण है। सितार वाद्य के अनेक चरणों में

इस प्रकार पुस्त–दर–पुस्त नये वादन क्रियाओं का समावेश होता गया, तथा विभिन्न प्रकार की वादन शैलियाँ उभरकर सामने (आगे) आयीं। शैली अगर श्रोताओं को पसन्द आती है तो उस कलाकार के शिष्य भी उस शैली को ग्रहण करते हैं। इसी के साथ नवीन शैली की परम्परा का निर्माण धीरे–धीरे होता है।

इसी प्रकार, 18वीं शताब्दी से वर्तमान समय तक सितार शैलियों का प्रचलन सितार के कई वादकों ने किया। इन शैलियों की बन्दिशों में विशिष्ट प्रधानता है। बन्दिशों को सुनकर ही सितार वादकों के घराने तथा शैलियों का नाम बता सकते है कि ये इस घराने के कलाकार हैं। बन्दिशों (गतों) के आधार पर गतों की वादन–शैली में आज तक प्रमुखतः (निम्न) कई प्रकार के बाज विकसित हुए हैं–

मसीतखानी

तानसेन के वंशजों में फिरोज़ खाँ के सुपुत्र मसीत खाँ ने मसीतखानी गत वादन–शैली का आविष्कार किया। 18 शताब्दी से ही इस गत शैली का प्रचार–प्रसार माना जाता है लेकिन मसीत खाँ दिल्ली में बस गये थे, अतः इस बाज को दिल्ली व पश्चिमी बाज भी कहा जाने लगा।

मसीतखानी गत वादन–शैली की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है'' यह (मसीतखानीगत) विलम्बित में बजाया जाता है, तीन ताल में ही मसीतखानी गत बजायी जाती है, मसीतखानी गत बारहवीं मात्रा से शुरू की जाती है, इसकी निर्धारित जगह मानी जाती है, मसीतखानी गत के बोलों में परिवर्तन नहीं होता है, जैसे–दिर दा दिर दा रा दा दा रा, दिर दा दिर दा रा दा दा रा, मसीतखानी गत में स्थायी तथा अन्तरा होते हैं। स्थायी एक आवर्तन तथा अन्तरा दो आवर्तन के होता है, मीड़, कण, गमक, तान, मुर्की आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।

मसीतखानी गत को बजाने के पहले आलाप, जोड़ आलाप, झाला को विस्तारपूर्वक बजाने के बाद गत का स्थायी, अन्तरा, स्थायी में तान व अन्तरे में तान को बजाया जाता है तथा मिज़राब के बोलों का कई प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

राग काफी–मसीतखानी गत

(तीन ताल)[3]

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											रेप	ग	रेरे	ग	म
											दिर	दा	दिर	दा	रा
ᒪ	प	प	मम	ध	नीनी	ध	म	प	ग	रे					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
x				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											निध	म	पप	ध	नि
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सं	सं	सं	धनी	रें	रेंरें	गं	रें	सांरें	नि	ध	रेंमं	गं	रेंरें	सां	रें
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			

रज़ाखानी

लखनऊ के निवासी गुलाम रज़ा खाँ ने 18वीं शताब्दी के अन्त में रज़ाखानी गत वादन–शैली का आविष्कार किया। रज़ाखानी गत की वादन–शैली में मध्य तथा द्रुत लय होती है। रज़ाखानी गत वादन–शैली को पूर्वी बाज या लखनवी बाज के नाम से जाना जाता है। रज़ाखानी गत के बोल निश्चित होते हैं तथा इनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही किया जाता है।

रज़ाखानी के बोल इस प्रकार है

दा दिर दिर दिर दा दा रा दा रा दा दा दा रा दा रा

रज़ाखानी गत को किसी भी मात्रा से शुरू किया जा सकता है। इस गत में भी स्थायी और अन्तरा का होना आवश्यक है। रज़ाखानी गत का उदाहरण इस प्रकार है–

राग गौड़सारंग–रज़ाखानी गत'[4] (रचनाकार उस्ताद मुश्ताक अली खाँ)

तीन ताल

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
सा	ऩी	रे	सा	ग	रे	म	ग	ग	मम	पम	धप	रे–	रेऩी	–ऩी	सा
दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
x				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
म	पप	पप	सं	–	रें	सं	नी	ग	मम	पम	धप	रें–	रेंनी	–नी	सं
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
x				2				0				3			

फिरोज़खानी गत वादन–शैली–

फिरोज़खानी गत वादन–शैली के प्रवर्तक फिरोज़ खाँ थे, जो तानसेन के ही वंशज सदारंग के भतीजे थे और इन्होंने ही त्रितन्त्री वीणा पर ध्रुपद–शैली का अनुकरण कर, चार ताल में निबद्ध एक विशेष गत वादन–शैली को जन्म दिया जिसे ध्रुपद अंग की भाँति ही जोड़ आलाप के बाद बजाया जाता था। इसी वादन–शैली को फिरोज़खानी गत वादन–शैली के नाम से जाना जाता है।

फिरोज़खानी गतों के साथ संगति के लिए पखावज को लिया जाता है। फिरोज़खानी गत वादन–शैली में मीड़ तथा गमक की प्रबलता रहती है। 14वीं से 16वीं शताब्दी तक फिरोज़खानी गतें अधिक लोकप्रिय हुईं।

अमीरखानी गत वादनशैली–

अमीरखानी गत वादन–शैली का निर्माण तानसेन के प्रपौत्र तथा निहाल सेन के भाई सेनी घराने के अमीर खान माने जाते हैं। अमीरखानी बाज का प्रचलन आजकल दिखाई नहीं देता। कोई भी वादक सितार का वादन करते समय यह नहीं कहता कि वह अमीरखानी बाज प्रस्तुत करने जा रहा है। सभी वादक मसीतखानी या रज़ाखानी बाज ही अपनी क्षमता के अनुसार बजा रहे हैं। अमीर खाँ ने इस खास गत वादन–शैली के निर्माण से मसीतखानी गत के बोल दिर दा दिर दा रा5 का गठन कर मध्यकाल में निर्माण किया। इस शैली को जयपुरी बाज भी कहते हैं। अमीरखानी गतों की बन्दिशों की लय मध्यलय होती है। परन्तु आजकल इसका प्रचलन न होने के कारण यह कहीं सुनने को नहीं मिलता।

सितारखानी गत वादन–शैली–

सितारखानी या पंजाबी ठेके के नाम से प्रसिद्ध, इन गतों की लय माहौल को गरमा देती है। ज्यादातर

सितारखानी गतें पीलू, भैरवी, काफी, झिंझोटी, खमाज़ आदि रागों में बजाई जाती है। उस समय के वादकों ने अपने वाद्यों के आधार पर प्रचलित ठुमरी अंग की गतों का निर्माण किया। इस गत के विस्तार में ठुमरी अंग के साथ बोल बनाव होता था, तथा छोटी–छोटी तानों का प्रयोग होता था।

मिश्रबानी बाज–शैली –

मिश्रबानी गत वादन–शैली अधिकतर देखा जाता है कि सितार में बजायी जाने वाली गत तीन ताल में निबद्ध होती है। कई उच्चकोटि के कलाकार तीन ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में बजाते है, जैसे–झपताल, रूपक आदि में। रूपक ताल में निबद्ध गत के लिये दा रा दा रा दा रा एवं दा रा दा दा रा दा रा दा दा रा आदि मिज़राब के बोल बजाये गत (द्रुतलय) में बजाये जाने वाले ताल आड़ा चार ताल है। इनकी रचनाएं अत्यन्त सुन्दर तथा कर्णप्रिय लगती है। मिश्रबानी के उदाहरण निम्न हैं–

राग श्याम कल्याण– आड़ा चारताल (मध्य लय) मिश्रबानी गत[6]

स्थायी

रे	म॑म॑	प	ध	म॑	प	म॑	पप	गग	मम	रे	रेनि़	–नि़	स		
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	–र	दा		
नि़	सस	रे	स	नि़	स	म॑	पप	ध	प	गम	–रे	–रे	स		
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दरा	–दा	–र	दा		
x		2		0		3		0		4		0			

अन्तरा

रे	म॑म॑	प	ध	म॑	प	सं	–	–	सं	–	रे	सं	–
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	–	–	दा	–	रा	दा	–
गं	मंमं	रें	सं	नि	सं	ध	पप	म॑	प	ग	मम	रे	स
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x		2		0		3		0		4		0	

ज़ाफरखानी गत वादन–शैली –

सितार वादक अब्दुल हमीर जाफर खाँ के ज़ाफरखानीगत (बाज) घराना की एक यह विशेषता थी कि एक ही स्टोक पर 12 तथा 16 स्वरों के पहले झालों का वादन भी किया जाता है। ज़मज़मा का प्रयोग बड़ी बारीकी से किया जाता है। इसकी अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें बायें हाथ का काम तथा मिज़राब से लगे बोलों की भी प्रधानता रहती है, दिर के बोल को बजाये जाते है तथा इस गत की लय द्रुत गति में है जिस लय में झाला को बजाते है। तत्पश्चात् उन गतों को बजाया जाता है। उस्ताद जाफर खाँ द्वारा सितार वादन–शैली में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न क्रियाएँ मीड़, कण, खट्का, कृन्तन, ज़मज़मा, घसीट, कम्पन कहलाती हैं। इन सभी के संयुक्त रूप के क्षेत्र में विभिन्न परम्पराएँ बनीं, जिन्हें शास्त्रीय शब्दावली में 'घराना' माना जाता है।

सितार वादन–शैली में मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक आने वाली शैलियों में मसीतखानी, रज़ाखानी, फिरोज़खानी, मिश्रबानी, सितारखानीगत प्रचार में आईं। इनमें विशेष रूप से मिज़राब के बोल अलग हो जाते हैं, जिससे इसकी विशेषता और विशिष्टता स्पष्ट होती है। 19वीं शताब्दी के पश्चात् इन तत् वाद्यों में विशेषकर सितार ने विशेष रूप धारण किया है। सितार व किराना घरानों की परम्परा शास्त्रीय परिपेक्ष्य पर आधारित है जो तानसेन के घराने से सम्बन्ध रखती है और इसी

समय से ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी शैलियों का प्रभाव भी सितार की शैलियों पर पड़ा और वाद्य वादन, सितार अंग और ख्याल अंग, दो रूपों में विस्तार प्राप्त कर मिज़राबों के विचित्र प्रयोग से राग का विस्तार किया। ख्याल गायन के ढंग से सितार पर गतकारी की जाती है। आजकल सितार वाद्य पर इनकी विशेष लोकप्रियता है।

संदर्भ सूची :

1. कसेल, डॉ. जवजोत, वादन संगीत का शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, पृ. 30, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2009
2. वही, पृ. 29
3. वही, पृ. 32
4. चौहान, डॉ. देवी सुमिषा, सितार वादन में गत का विकास, पृ. 128, संजय प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2018
5. श्रीवास्तव, डॉ. नैन्सी, सितार वादन प्रविधि एवं शैली संग्रह, पृ. 73, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2011
6. मिश्र, डॉ. लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 333, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पंचम संस्करण 2019

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों की पारस्परिक निर्भरता

प्रो. संगीता पण्डित **मनोहर कृष्ण श्रीवास्तव***

सारांश

शास्त्रीय संगीत का अर्थ है, वह संगीत जो शास्त्र पर आधारित हो, पर वस्तु स्थिति यह है कि शास्त्र एवं व्यवहार दोनों क्षेत्र इतने व्यापक है कि एक ही व्यक्ति दोनों में पारंगत हो, ऐसा प्रायः असंभव होता है। संगीत के क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास तो आज भी संगीत घरानों में पर्याप्त मात्रा में हो रहा है जबकि विद्यालयीय शिक्षा में, शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष के साथ–साथ शास्त्रीय पक्ष पर भी समान रूप से महत्व देते हैं। संगीत के क्रियात्मक पक्ष को क्रियान्वित करने लिए कुछ प्रमुख सांगीतिक तत्वों नाद, श्रुति, स्वर पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

मुख्य शब्द : *शास्त्रीय संगीत, नाद, श्रुति, स्वर, प्रायोगिक, सैद्धान्तिक*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है ।*

''नाद'' शब्द समान्यतः नद् धातु से व्युत्पत्ति की जाती है जिसका अर्थ होता है अव्यक्त ध्वनि। इस अव्यक्त ध्वनि के ही व्यक्त रूप है वर्ण, पद, वाक्य तथा स्वर इत्यादि। इसकी उत्पत्ति प्राण, तत्व एवं अग्नि तत्व के संयोग से होती है।

संगीत के विषय तत्व का निर्माण शब्द, काल, वाक् के संयोग से परिलक्षित होता है जो संगीत में नाद का निर्माण करता है तथा जिसका विषयी रूप आत्मन है। जो कर्ता, ज्ञाता और भोक्ता के रूप मे प्रगट होता है। ''नाद'' के निर्माण तत्वों में शब्द काल, वाक् का संगीत की दृष्टि से संक्षिप्त मूल्यांकन करना आवश्यक है। ध्वनि ही नाद है, यही स्फोट का व्यञ्जक है। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का मूल तत्व होने के कारण विभिन्न दर्शनों में नाद को आपार महत्व दिया गया है। आध्यात्म की दृष्टि से नाद आगम विषय है।[1] भारतीय चिन्तन परम्परा में इसी शब्द के ध्वनि, स्फोट, शब्द, ब्रह्म भी कहा गया है।

स्वच्छन्द तन्त्र में नाद जो स्वयं ध्वनि रूप है, आठ भेदों में व्यक्त है–घोष, राव, स्वप्न, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार, झंकृत ये आठ व्यक्त नाद है।[2] यह शब्द लौकिक नहीं है। बिन्दू से लेकर उन्मना पर्यन्त नव कलाओं की समुदित रूप में 'नाद' यह संज्ञा है। विन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते (प्रथम अंशवीर वस्यारहस्य)[3] संगीत के ग्रन्थों में ध्वनि को नाद की प्रथम अवस्था होने के कारण सर्वत्र जगत का कारण कहा गया है।

सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से संगीत की अभिव्यक्ति में तीनों विधाएँ गायन–वादन एवं नृत्य 'नाद' के अधीन है। 'नाद' संगीत का अमृत रूप है इसलिए नाद को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है।[4] तत्पश्चात् ब्रह्मग्रन्थि को ब्रह्म का, जिसे स्थान कहा गया है, उसमें प्राण अवस्थित होता है।

नाद के प्रकार

1. अनाहत नाद – 'अनाहत शब्द ज्योति परमात्मना'[5] अर्थात् योगी जब साधना करता है तब आहत ध्वनि के सभी प्रवेश मार्गों– कान, नाम, आँख, मुँह आदि को बन्द कर लेता है, तब ऐसी अवस्था आती है जब उसे 'अनाहत' नाद सुनाई पड़ने लगता है और वह अपने भीतर उस परम ज्योति का दर्शन भी करता है। यहाँ दर्शन और श्रवण दो प्रमाण बताये गये है। संगीत के अध्यात्मिक स्वर 'सगुण' तथा 'निर्गुण' के रूप में जाने जाते है।[6] सगुण एवं निर्गुण रूप को ही संगीत में आहत एव अनाहत की संज्ञा दी गई है। अनाहद नाद होने के कारण इसका सम्बन्ध योगियों से माना गया है अर्थात् सिद्धि की पूर्ण प्राप्ति, साधना में लीन होकर मिलती है। इसमें शब्द–ब्रह्य की उपासाना निहित है, इसलिए यह अत्यन्त सूक्ष्म होने के साथ अत्यन्त कठिन एवं शुष्क साधना द्वारा सम्भव है। जिस अनुभुति में शब्द और प्रकाश की संवेदना एकीभूत होकर आती है और उसका परोक्ष या अतीन्द्रिय, उस आहत नाद की पूर्ण परिणति योग है।

संगीत भी एक योग साधना है उसका लक्ष्य

*शोधार्थी, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परमानन्द है, जो सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म की प्राप्ति करता है। योगी अनाहद नाद का प्रत्यक्ष अनुभव करते है, किंतु संगीत साधक स्वर, लय और नाद की एकाकार में लीन हो जाते है। उसे वाह्य जगत का ध्यान विस्मृत हो जाता है। वह अनाहत नाद की अखण्ड ध्वनि में अखण्ड आनन्द का आस्वादन करने लगता है। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव की रस प्राप्ति हो जाती है। इसी से यह मानना पड़ता है कि नाद में ऐसी कोई शक्ति सन्निहित है जो शब्द की वाचक शक्ति की सहायता के बिना ही अर्थ, भाव या रस की प्रतीति करा देती है।[7]

2. आहत नाद – आहत संज्ञा आघात को दर्शाती है, संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में भी आहत नाद की प्रक्रिया इस प्रकार बनायी गई है कि बोलने की इच्छा होने पर आत्मा मन को प्रेरित करता है। मन, देह स्थित अग्नि पर आघात करता है और वह वायु तब उर्ध्वगामी होकर चलने लगता है तथा नाभि, हृदय, कण्ठ, मूर्द्धा तथा मुख में ध्वनि उत्पन्न करता है।[8] 'संगीत दामोदर' में आहत नाद के तीन विभाग किये गये है–[9]

1. सजीव द्वारा उत्पन्न सजीव ध्वनि
2. निर्जीव द्वारा उत्पन्न निर्जीव ध्वनि
3. सजीव–निर्जीव द्वारा उत्पन्न मिश्रित ध्वनि।

परन्तु मानव शरीर में अन्तर्भूत शब्द या ध्वनि के पाँच प्रकार का क्रमिक विकास गुणों के आधार पर, जिसे मतंग एवं शारंगदेव ने भी स्पष्ट किया है, इस प्रकार है–[10]

अन्तर्भूत	**मतङ्ग मुनि**	**शारंगदेव**
नाभि	सूक्ष्म	अतिसूक्ष्म
हृदय	अतिसूक्ष्म	सूक्ष्म
कण्ठ	अतिव्यक्त	पुष्ट
मूर्द्धा	व्यक्त	अपुष्ट
आस्य	कृत्रिम	कृत्रिम

श्रुति

भारतीय स्वर सप्तक का मूल आधार 'श्रुति' है। श्रुति अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि है। ऐसी ध्वनि जो रंजक होकर आनन्दित करे। इसलिए संगीतज्ञों ने स्वर के सूक्ष्मान्तरों के निर्देशन का साधन श्रुति माना है। सर्वप्रथम 'श्रुति' का स्वरूप मतंगकृत 'वृहद्देशी' से प्राप्त होता है। श्रुति शब्द श्रवणार्थक 'श्रु धातु में 'किन्' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है जो सुनने योग्य हो।[11]

आहत नाद श्रुति के रूप में संगीतोपयोगी बन जाता है। श्रुति की चर्चा 'नाट्यशास्त्र' में उपलब्ध है परन्तु श्रुति की परिभाषा व नामों का उल्लेख नहीं किया गया है। 22 श्रुतियों के सिद्धि के सन्दर्भ में निरूपित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य भरत श्रुति को संगीतापायोगी सूक्ष्म ध्वनि मानते थे।

स्वर

मूल 'नाद' सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है और 'स्वर' उसका अंग है, इसलिए संगीत का आधार 'स्वर' है। 'नाद' आकाश का गुण है अर्थात् धर्म होने के कारण 'स्वर' की अभिव्यक्ति शब्दोच्चार से ही हुई है। सामान्य रूप में भाषा के अन्तर्गत 'स्वर' वे ध्वनियाँ है जो व्यंजनादि ध्वनियों से जुड़कर वर्ण को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सहायक होती हैं। व्याकरण की दृष्टि से 'स्व' उप पदपूर्वकः राज्' (दिप्ति अर्थ वाली) धातु से :अच् या अप प्रत्यय लगाने पर 'स्वर' शब्द निष्पन्न होता है।[12] महाभष्यकार ने स्वर का लक्षण देते हुए कहा है ''जो स्वयं सुशोभित हो वही स्वर है।[13] स्वर की महत्ता बताते हुए कहा कि जिस गुण के कारण ध्वनि में मधुधारा अथवा वैतधारा जैसी अखण्डता एकतारता आ जाती है ऐसे चैतन्य भाक्ति रूप नाद (ध्वनि) विशेष को 'स्वर' कहते है।[14]

सौन्दर्यात्मक दृष्टि से संगीत में स्वर का 'स्व' अर्थात धन है। 'स्व' और 'र' में 'स्व' का अर्थ है 'स्वयम्' और 'र' का अर्थ है 'राजन्ते'। इसलिए शारंगदेव ने स्पष्ट करते हुए लिखा है 'स्वतो राजयति श्रोतृ चितं स स्वर उच्यते'[15] अर्थात् जो सहज स्वरूप से श्रोताओं के चित्त का अनुरंजन करता है, लेकिन यह अनुरंजन स्निग्ध और मधुर होना चाहिए।[16]

स्वर की व्याख्या करते हुए अभिनवगुप्त ने पहली बार 'अनुरणन' शब्द का प्रयोग किया। उसके अनुसार श्रुति स्थान पर आघात के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली घ्वनि जो आवश्यक रूप से अनुरणनयुक्त, स्निग्ध तथा मधुर हो, स्वर कहलाती है।[17]

इस प्रकार अतिशय माधुर्य एवं सुन्दर ढंग से जो मन को पिघलाकर अपने रूप में समाहित कर ले, वही स्वर है। इसके अतिरिक्त जो स्वयं जाति, राग, भाषा भेद से दिप्त या सुशोभित हो उठे, वही स्वर है इसी को 'कुम्भा' ने 'संगीतराज' में स्पष्ट किया है।

संगीत का मूलभूत उपादान स्वर है। संगीत चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य, स्वर पर ही आधारित होता है। स्वरों के विभिन्न समुदायों से संगीत का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में स्वर वह नाद है, जो रंजक हो और जिसका अन्य नादों के बीच विशिष्ट स्थान हो । केवल नाद के रंजक होने की वजह से नाद स्वर नहीं बदल सकता । स्वर कहलाने के लिए उसका अन्य नादों या ध्वनियों से कोई सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। स्वर की स्थिति या सत्ता अन्य स्वरों से निरपेक्ष नहीं हो सकती। कोई ध्वनि, ऋषभ या गांधार या मध्यम कहलायेगी, जब षड्ज की सत्ता हमारे मन में स्थिर हो जाए।[18]

संगीत–संबंधी चिन्तन के लिए हमारे यहाँ शब्द है 'संगीतशास्त्र' यानी संगीत–संबंधी सिद्धांत, नियम, विवरण, विधि–विधान वगैरह का समूह। शास्त्र दो रूपों में रहता है–एक तो निबद्ध यानी बँधा हुआ रूप और दूसरा अनिबद्ध यानी जो पूरा का पूरा बँधा हुआ नहीं होता बल्कि बँधे हुए रूप का पूरक होता है जो मौखिक या वाचिक परम्परा को प्राप्त होता है। शास्त्र का वह हिस्सा जो व्यवस्था के कारण या देश और काल में संगीत में होने वाले परिवर्तन और प्रचलित रूप के कारण बढ़ता–जुड़ता रहता है यानी जो मुख्यतः मौखिक रूप है और जिसे 'सम्प्रदाय' कहा जाता है। इसे लक्षण की गुरू–परम्परा कह सकते हैं यानी सिद्धान्त वही हो लेकिन व्यक्तियों द्वारा अपने–अपने ढंग से इसकी व्याख्या की जाय और इसकी भी एक परम्परा बन जाय। इस प्रकार, निबद्ध और अनिबद्ध, सिद्धान्त और व्याख्या लिखित और अलिखित से मिलकर शास्त्र का सम्पूर्ण रूप बनता है।

निबद्ध और अनिबद्ध धाराएँ जैसे शास्त्र में होती है इसी तरह क्रिया में भी होती हैं। जैसे किसी राग का एक निश्चित यानी नियमबद्ध रूप होता है लेकिन इन नियमों के भीतर रहते हुए उसका 'बर्ताव' हर संगीतज्ञ अपने–अपने ढंग से करता है। ये संगीत की क्रिया के निबद्ध और अनिबद्ध रूप हैं।

शास्त्र मूलतः क्रिया के पीछे चलता है क्योंकि नियम या सिद्धान्त किसी क्रिया के लिए होते है लेकिन जब एक बार शास्त्र बन जाता है तो कभी–कभी वह क्रिया को प्रभावित भी करता है। कभी क्रिया के आधार पर सिद्धान्त को समझना पड़ता है तो कभी सिद्धान्त के द्वारा क्रिया को करना और सिद्ध करना पड़ता है। दोनों में कोई विरोध नहीं है लेकिन देश–काल के अनुसार जब क्रिया का आकार या स्वरूप बदलता है तो इसे ध्यान में रख कर सिद्धान्त की ऐसी व्याख्या जरूरी हो जाती है जिससे दोनों में विरोध न दिखाई दे और दोनों में परस्पर संगति बनी रहे। यह काम शास्त्र करता है। क्रिया को ठोस आधार दने का, उसे भटकने से बचाने का, उसका मार्गदर्शन करने का और लक्ष्य–लक्षण में अर्थात् क्रिया और सिद्धान्त में कोई विसंगति आ जाय तो उसे दूर करने का महत्त्वपूर्ण काम शास्त्र करता है।[19]

प्राचीन काल से ही संगीत में प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों की परस्पर सहभागिता के साक्ष्य प्रमाण सामवेद, गान्धर्व गान, मार्ग एवं देशी संगीत, जाति–गायन, गीतक के प्रयोग इत्यादि में समान रूप से मिलते है। इसके अलावा नाद, श्रुति, स्वर, वर्ण, अलंकार, स्थाय, रागांग वर्गीकरण और प्रबन्ध इत्यादि के प्रयोग में भी लक्ष्य एवं लक्षण का समान रूप से समावेश रहता है। अति प्राचीन ग्रंथो से लेकर मध्यकालीन ग्रन्थों, जैसे– 'संगीत रत्नाकर' 'रागतरंगिणी', 'राग विबोध', 'संगीत परिजात', 'हृदय कोतुक' एवं 'हृदय प्रकाश' इत्यादि ग्रन्थों में भी लक्ष्य–लक्षणों की चर्चा समान रूप से की गई है। चाहे कोई व्यक्तिगत संस्था (घराना) या शिक्षण संस्थाएं हो, सबसे सम्बन्धी शब्दों को मौखिक रूप से समझना अति आवश्यक होता है। जिसके लिए सिद्धान्त अथवा शास्त्र के लिए क्रिया की मजबूत नींव का होना आवश्यक है। कभी–कभी कलाकार अपने द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे गायन–शैली में भाव–विभोर होकर गीत के शब्दों की व्याख्या का प्रदर्शन करते–करते विभिन्न स्वरों का प्रयोग करने लगते है जिससे शास्त्र पक्ष थोड़ा कमजोर दिखाई देने लगता है। कभी–कभी यह देखने को मिलता है कि कुछ कलाकार दूसरे कलाकारों को मात्र सुनकर ही अपने आप को कलाकार समझने लगते है तो शास्त्र पक्ष पर इसका विपरीत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शास्त्र पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष का समुचित सत्य निर्वाह हेतु किसी अच्छे गुरू या अध्यापक से संगीत

की शिक्षा लेना आवश्यक है। बिना गुरू मुख से सुने हुए स्वर अपभ्रंश हो सकते है। संगीत जैसे विषय में गुरू मुख से ही शिक्षा लेना आवश्यक है ताकि कलाकार शास्त्र तथा क्रियात्मक दोनों पक्षी को समान रूप से सरलतापूर्वक प्रस्तुत कर सके।

प्रस्तुतिकरण के प्रत्येक अंग का अपना महत्व होता है। राग प्रस्तुत करते समय कलाकार राग की सीमाओं में बँधकर राग7विस्तार करते समय बिल्कुल स्वतंत्र रहता है। यह विस्तार उसकी स्वयं की प्रतिभा राग के चलन के अतिरिक्त श्रोता के सृजन पर भी निर्भर करता है। श्रोता व कलाकार दोनों एक–दूसरे को प्रभावित व प्रेरित करते रहते है जबकि अन्य कलाओं में सब कुछ पहले ही तय होता है।[20]

शास्त्रीय संगीत में आलापचारी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। राग का स्वरूप या राग की गहराई इसी से प्रकट होती है। गायक वादक की क्षमता कितनी है वह कितना सजीव कर सकता है, यह आलाप से ही ज्ञात होता है। गायन में आलाप करते समय आ, इ, उ शब्दों का आश्रय लिया जाता है या फिर नोम्, तोम् शब्दों का तथा फिर बोल आलाप, बंदिश के शब्दों के माध्यम से किये जाते हैं। रागों को आलाप तान, मींड, अलंकार विभिन्न लयकारियाँ, घसीट, आंदोलन, कण, खट्का, गमक, जमजमा, सूत आदि अलंकरणो से सजाया जाता है। यह सब कलाकार की स्वयं की साधना, संस्कार और अनुभूति पर निर्भर करता है।

मंच–प्रदर्शन में श्रोता कलाकार से कुछ अन्य गायन शैलियों (ठुमरी, दादरा, भजन) इत्यादि को सुनने का आग्रह करते हैं। यही जो लिपिबद्ध होता है वह शास्त्र पक्ष के अंतर्गत लाया जाता है। इस स्थिति में कलाकार को इन शैलियों का भी प्रयोगात्मक रूप से ज्ञान होना चाहिए क्योंकि कार्यक्रम चाहे किसी तरह का हो श्रोताओं के रूप में शास्त्रीय संगीत के कलाकार विद्वान संगीत के छात्र, छात्राएँ तथा अन्य रसिक भी बैठते हैं। उनमें कोई दादरा पसंद करते हैं, कोई टप्पा पसंद करते हैं। इसलिए इन सब गायन–शैलियों का भी ज्ञान कलाकार को होना अति आवश्यक है।

प्रत्येक प्रत्यक्ष कला में कलाकार का उद्देश्य श्रोता या दर्शक के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन कर उनके ह्रदय में सुप्त (सोये हुए) कोमल भावनाओं को जागृत करना होता है, क्योंकि कलाकार का प्रमुख संबंध जन–साधारण श्रोता के ह्रदय तक पहुँचना होता है, इसलिए संगीत भी इससे अछूता नहीं है। संगीत के मंच–प्रदर्शन के लिए श्रोताओं का होना अनिवार्य है। संगीतशास्त्र तथा संगीत प्रदर्शन दोनों एक–दूसरे के पूरक है, एक शरीर है तो दूसरा प्राण है, दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।[21]

संगीत के इतिहास में कला और शास्त्र दोनों का विवेचन अभीष्ट है, संगीत कला तथा शास्त्र दोनों संगीत का माध्यम नाद ही है और यही नादात्मक कलाकृति प्रस्तुत करने के लिए तत्सम्वत् नियमों का अनुसरण आवश्यक है। शास्त्र से अभिप्राय केवल नीरस और निष्प्राण नियमों की तार्किक प्रतिपादन मात्र से नहीं अपितु कला की निरन्तरता बढ़ाने वाले तत्व चिन्तन से है। 'संगीतरत्नाकर' के शब्दों में–

यद्धालक्ष्यप्रधानानि शास्त्रान्येतानि भवन्ते।
तस्माल्लक्ष्यविरूद्ध यन्तच्छास्त्र नियमन्यया।

संगीत मूलतः एक क्रियात्मक कला है परन्तु संगीत के परिपेक्ष्य में केवल क्रियात्मक कला की चर्चा होना असंगत प्रतीत होता है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परागत सुदृढ़ सिद्धान्तों पर प्रतिस्थापित है जिसका एक सुदीर्घ विकासक्रम है। यही सिद्धान्त लक्षण को प्रदर्शित करते हैं तथा इन्हीं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर मंच–प्रदर्शन लक्ष्य कहलाता है।

मंच–प्रदर्शन के दौरान कलाकार को राग के अवयव, तत्वों की जानकारी तथा उसका प्रयोग करने में कुशलता होनी चाहिए अर्थात् राग के इन तत्वों (जाति के लक्षण, वर्ण, स्थाय, गमक, अलंकार, तान इत्यादि) का समावेश मंच–प्रदर्शन में तभी हो सकता है जब इनका स्वरूप कलाकार सैद्धान्तिक रूप से जाने। सैद्धान्तिक पक्षों की उपेक्षा करते हुए मंच–प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है। जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल इत्यादि का गायन सैद्धान्तिक नियमों से बँधा होता है। एक गायक कलाकार को प्रस्तुत किये जा रहे राग के प्रत्येक पक्ष की गहरी जानकारी होनी चाहिए। जब कलाकार कोई राग प्रस्तुत कर रहा है तो उसका गायन समय क्या है? इस राग का स्वरूप और चलन कैसा है? उसमें कौन–कौन से स्वर लगते है इत्यादि सबकी जानकारी होने पर प्रदर्शन सफल

माना जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. प्रत्यभिज्ञा ईश्वर, विमर्श विमर्शिनी, पृ. 85
2. अवस्थी डॉ. शिवशंकर, मंत्र और मात्रिकाओं का रहस्य, पृ. 31
3. वही, पृ. 57
4. मंतग, वृहद्देशी, श्लोक 19, पृ. 6
5. रमैनी, डॉ. जयदेव सिंह एवं डॉ. वासुदेव, पृ. 10
6. वही, पृ. 11
7. ठाकुर, पं. ओम्कारनाथ, प्रणव भारती, पृ. 18
8. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रथम अध्याय, श्लोक 3/4, पृ. 64
9. सान्याल, डॉ. ऋत्विक, फिलॉसफी ऑफ म्यूजिक, पृ. 76
10. मतंग, वृहद्देशी, श्लोक 5, पृ. 64
11. वही, श्लोक 54, पृ. 8
12. चौधरी, सुभद्रा, संगीत संचयन, पृ. 69
13. महाभाष्यकार, 1/2/30
14. वही,
15. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रथम अध्याय, पृ. 82
16. वही
17. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय 28, पृ. 11
18. परांजपे, शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बोध, पृ. 22
19. नादार्चन, संगीत वार्षिकीय, 1996, पृ. 45–46
20. जौहरी, सीमा, संगीतायन, पृ. 108
21. तिवारी, डॉ. हरीश, मंच प्रदर्शन में कलाकार एवं श्रोता, पृ. 92

राजस्थान का लोकगीत
(संस्कार गीतों के विशेष संदर्भ में)

प्रो. संगीता सिंह** **अभिषेक कुमार सोनी***

सारांश

राजस्थान राज्य जो स्वयं अपने आप में एक सांस्कृतिक अखण्डता का प्रतीक है तथा यह कालांतर से भारतीय परम्परा से जुड़ा हुआ है। विभिन्न भौगोलिक वातावरण एवं विविधतापूर्ण सौंदर्य वाले इस भूखण्ड में राजपूत राजाओं की देखरेख में लोक कलाओं का सतत् विकास होता रहा है। राजस्थानी लोकगीतों में मानवजीवन के प्रमुख संस्कारों, तीज–त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों, ऋतुओं आदि का चित्रण प्राप्त होता है। राजस्थानी संगीत के मुख्यतः दो रूप मिलते हैं– प्रथम श्रेणी में वे लोकगीत आते हैं जो जनसाधारण के द्वारा विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं, जैसे– संस्कार संबंधी लोकगीत तथा दूसरी श्रेणी में वे लोकगीत आते हैं, जो व्यवसायिक जातियों जैसे–ढोली, मिरासी, लंगा, दाढ़ी, मवाई आदि द्वारा गाये जाते है। इस शोध–पत्र में राजस्थान के संस्कार गीतों का अध्ययन करेंगे ।

मुख्य शब्द : *राजस्थान, लोकगीत, संस्कार गीत, संगीत*

प्रविधि : *पुस्तकों के अध्ययन के उपरान्त विश्लेषण कर शोध–पत्र प्रस्तुत किया गया है।*

मानवीय हृदय का भाव जब उन्नत स्थिति में आरोहावरोह के साथ भाषा में बद्ध होता है, तब गीत बनता है और यही गीत–परम्परा जब लोकवाणी में गतिशील होती है तब लोकगीत बन जाता है। लोकगीत हमारे देश की सभ्यता व संस्कृति के परिपालक है। इसका सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वाभाविक रीति से होता है। अतः इसमें जनसमुदाय के निश्छल, सरल और स्वाभाविक भाव, गीतों के बोल बनकर निःसृत होते हैं। लोकगीतों का वर्ण्य विषय व्यक्ति के आसपास का वातावरण, खेत–खलिहान, नदी, पहाड़, आदि होते है।[1] लोकगीत स्वतः संभूत है। यह अपनी अक्षुण्ण धाराओं में मनुष्य के जन्म से लेकर आज तक व्याप्त है। लोकगीतों में मनुष्य की सभी प्रकार की भावनाओं, हर्ष, उल्लास, शोक, प्रेम, भय, घृणा, आश्चर्य, भक्ति आदि का सरल एवं सरस रूपों में दर्शन होता है। लोकगीतों में कोई बन्धन नहीं होता। यह अपने आप में स्वच्छंद होता है।

राजस्थान में लोकगीतों का अपार भण्डार है। संस्कार से संबंधित गीतों की लम्बी श्रृंखला है।

संस्कार–संबंधी लोकगीत–

'संस्कार' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर सुट् के आगम सहित निष्पन्न होता है। संस्कार के संबंध में जैमिनी कृत पूर्व मीमांसा में एक सूत्र का उल्लेख प्राप्त होता है– ''संस्कारो नाम संभवति यस्मिन्जाते पदार्थो भवति योभ्य कस्यचिदर्थस्य''[2] अर्थात् किसी पदार्थ में योग्यता को धारण कराने वाली क्रियाएँ संस्कार कहलाती है।

भारतीय हिन्दू सभ्यता में संस्कार एक अनिवार्य धार्मिक कार्य माना गया है। संस्कारों के माध्यम से मनुष्य की मानसिक, शारीरिक व बौद्धिक उन्नति होती है। राजस्थानी लोकगीत विशुद्ध धार्मिकता से अभिभूत होने के कारण उसमें समाहित विभिन्न संस्कार विषयक गीत हमारे कर्णेन्द्रियों को आनन्द की अनुभूति कराते हैं।

आदिकाल से वर्तमान समय तक मुख्य रूप से संस्कारों की संख्या सोलह ही मानी गई है। इन संस्कारों को प्रमुख रूप से पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है, जो निम्नांकित है[3]–

(1) प्रथम भाग : इसमें बच्चे के जन्म के पूर्व तीन संस्कार आते हैं– (क) गर्भाधान (ख) पुंसवन (ग) सीमान्तोन्नयन

(2) द्वितीय भाग : इस भाग में बच्चे के जन्म के बाद के

*शोध छात्र, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
**आचार्य, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

छः संस्कारों का समावेश है–

(क) जातकर्म (ख) निष्क्रमण (ग) नामकरण (घ) अन्नप्राशन (ङ) चूड़ाकर्म (च) कर्ण भेद

(3) तृतीय भाग : प्रस्तुत खण्ड में तीन संस्कार आते हैं, जो शिक्षा से जुड़े हुए हैं–

(क) यज्ञोपवीत (ख) वेदारम्भ (ग) समावर्तन या स्नान

(4) चतुर्थ भाग : इस खण्ड में आगे के श्रेष्ठ तीन संस्कार आते हैं जो विभिन्न आश्रमों से संबंधित हैं–

(क) पाणिग्रहण (ख) वानप्रस्थ (ग) सन्यास

(5) पंचम भाग :– इस खण्ड में मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् का अंतिम संस्कार आता है, जिसे अंत्येष्टि संस्कार कहते हैं।

राजस्थानी लोकभाषा में प्रथम गर्भाधान संस्कार के गीतों को 'हाकरिया' और अंतिम अंत्येष्टि संस्कार के गीतों को 'पाक्' या 'सापो' कहते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में समाहित सभी सोलह संस्कारों के गीतों के विषय–वस्तु को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा हैं–

(1) गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान संस्कार एक ऐसा संस्कार है, जिससे संस्कार गीतों का प्रारम्भ होता है। यह शिशु के जन्म के पहले का संस्कार है। इन गीतों की विषयवस्तु में शिशु के माता–पिता अच्छी सन्तान की कामना करते है।[4] इस प्रकार के लोकगीतों में गर्भवती महिला के पहले महीने से लेकर नौवें अथवा दसवें महीने के समयान्तराल के दौरान उत्पन्न होने वाली खाद्य–पदार्थों से संबंधित इच्छाओं एवं अन्य इच्छाओं का विवरण प्राप्त होता है। उपरोक्त तथ्यों का उदाहरण इस गीत में प्राप्त होता है–

''राजे तीजो महीना जब लागिये,
बाको खीर खाण मन आइयें।
ए बाइ पाँचवा महीना जब लागिये,
बाको काले के आम मगाइये''....।।[5]

इसी प्रकार, भारत के कई राज्यों में मांस व मछली खाने का काफी प्रचलन है तो उदाहरण के लिए भाभी से ननद पूछती है कि

''ननद पूछे ठाढ़ि आंगन में सलोनी तुझे क्या भाता है...।।

तो भाभी ननद को उत्तर देती है:–

''आर पार की माछर भावै और विसेधा नहिं भावे।''[6]

गर्भवती स्त्री को शिशु के जन्म के पहले या बाद में खाने के लिए ऐसे खाद्य–पदार्थ दिये जाते हैं जो दैनिक जीवन में प्रयोग नहीं होते, जैसे– सोठ–गिरी के लड्डू, हरीरा, पिपरी आदि।

(2) पुंसवन संस्कार

गर्भवती महिला के बच्चे के समुचित विकास के लिए गर्भ के तीसरे महीने में यह संस्कार किया जाता है। पुराणों में भी ओजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए पुंसवन संस्कार का उल्लेख मिलता है। यह संस्कार तब होता है जब गर्भ में पल रहे शिशु के भौतिक शरीर का निर्माण प्रारम्भ होता है। पुंसवन संस्कार का एकमात्र प्रयोजन होता गर्भस्थ शिशु को पुत्र रूप देना है किन्तु वर्तमान समय में इस संस्कार विषयक गीत राजस्थान में प्रायः विलुप्त हो गये हैं।

(3) सीमान्तोन्नयन संस्कार

पुंसवन संस्कार के पश्चात् जब गर्भिणी स्त्री का सातवां महीना शुरू हो जाता है, तब सीमान्तोन्नयन संस्कार किया जाता है। इस संस्कार में गर्भवती स्त्री को सोलहों श्रृंगार से अलंकृत कर उसकी गोद को नारियल, सुपारी, फल, मेवा आदि से भरा जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों के लोकभाषा में इस संस्कार के भिन्न–भिन्न नाम मिलते हैं, जैसे –सतमासा, साध पूजना, साध पहनना, अगरणी, खोल भरई आदि। इस संस्कार के समय राजस्थान में गाये जाने वाले एक गीत का उदाहरण निम्नवत् है–

''पहिले साध मेरी सासु पुरई हैं,
हमारे ससुर से बात चलइ है।
और साध मोरी ससुर पुरई है,
बाम्हन बुलाय के समुन पुछइ है।।[7]

गर्भवती स्त्री के खान–पान–सम्बन्धी इच्छाओं को राजस्थान में 'दोहद' कहते हैं और इन इच्छाओं को पूर्ण करने की सारी जिम्मेदारी पति की होती है। राजस्थानी लोकगीतों में बड़ा सुंदर चित्रण मिलता है। कालीदास ने अपने संस्कृत महाकाव्य 'रघुवंशम्' में महाराज दिलीप की पत्नी महारानी सुदक्षिणा के ''दोहद'' का बड़ा सुंदर वर्णन किया है, जो निम्न है–

'न मे हिया शंसति किञ्चिदीप्सितं, स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमाद तः प्रियासखीरूत्तरकोसलेश्वरः।।[8]

अर्थात् महाराज दिलीप कहते हैं कि महारानी सुदक्षिणा लज्जा से अपनी इच्छा मुझसे नहीं कहती है। महाराज महारानी के इच्छाओं को जानने के लिए सुदक्षिणा के सखियों से आदरपूर्वक बार–बार पूछते हैं कि वह किन–किन वस्तुओं को चाहती हैं।

(4) जातकर्म संस्कार

किसी भी देश या जाति में पुत्र के जन्म अवसर को बहुत ही शुभ माना जाता है। भारतीय सभ्यता में ऐसी मान्यता है कि वंश के अस्तित्व को रखने के लिए अर्थात् वंश की मान–मर्यादा व वंश का विस्तार पुत्र के द्वारा ही होता है। हमारे भारतीय समाज में ऐसा अपभ्रंश है कि जिसका वंश नहीं चलता उसकी मुक्ति नहीं होती है। इस संस्कार को गीत के रूप में इस प्रकार कहा गया है–

''उतरेगा अवसर पा कभी पूर्ण पुरुषों के ऋण का भार
सभी कर देगा अभीष्ट इसी से करते अमित दुलार।''
''नारी के इस भग्न हृदय में, कौन शान्ति सरसाता
यदि आधार न उसका बनकर, शिशु मुस्काता आता
जीवन मरू के नीरस पथ पर कैसे नारी चलती
शिशु की प्यार भरी चितवन यदि नहीं सुधारस भरती।''[9]

राजस्थान में पुत्र के जन्म के अवसर को किसी त्योहार या उत्सव की तरह मनाया जाता है। पुत्र–जन्म के समय राजस्थान में सोहर गाया जाता है, जिसके बोल हैं–

यांकी तो दाई पिया कदियन आवे
यांकी तो माता कदियन आवे
म्हारा पीयरिया सू जायर दाई लावो
जी थे जाओ पिया।
लाल पलंग पर गेरी पीड़ा आवे...।[10]

(5) निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण का अर्थ होता है, शिशु के जन्म के छठे दिन देवर द्वारा प्रसूता महिला को प्रसूति गृह से बाहर निकाला जाना है। इस कार्य के लिए देवर को नेग भी मिलता है। उसी दिन प्रसूता महिला स्नान आदि कर शुद्ध होती है। लोक भाषा में इस दिन को 'छठी' भी कहते है। राजस्थान में छठी के गीतों में काफी विविधता पायी जाती है। उदाहरणार्थ के लिए एक गीत है–

''लालन मेरो झूले री पलने में, जी पालने में
भाभी जी आयीं कुर्ता, टोपी लायी कि पहनो ललना।''

(6) नामकरण संस्कार

शिशु के जन्म के दसवें दिन उस बच्चे का नामकरण किया जाता है। इसे दष्टोन भी कहते हैं। उस दिन पंडित जी के द्वारा बच्चे की जन्मपत्री बनाई जाती है और जन्मपत्री के नक्षत्रों के अनुरूप उस शिशु का नाम रखा जाता है। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है–

''मथुरा नगर से बुलायो, धरा रही लला का नाम।''[11]

(7) अन्नप्राशन संस्कार

अन्नप्राशन संस्कार को चटावन या पसनी भी कहते हैं। जब बच्चा छः मास का हो जाता है तो दादा या नाना बच्चे को गोद में लेकर खीर चटाते हैं। उस समय घर की स्त्रियाँ विविध प्रकार के लोकगीत गाती है, जैसे–

''आज मोरे लीपन पोतन, और अन्न प्रासन हो।
अरगन नेवतह परगन नैहर सासुर
और अहज याउर और ननियाउररे....।''[12]

(8) चूड़ाकर्म संस्कार

चूड़ाकर्म को मुण्डन भी कहते हैं। राजस्थान में इसे 'जडूल्या' कहते हैं। जब शिशु दो या तीन वर्ष का हो जाता है तो यह संस्कार होता है। कालांतर में पाँच वर्ष की आयु तक चूड़ा किया जाता था। इस संस्कार में बच्चे को बुआ की गोद में बैठाकर मुण्डन किया जाता था। इस संस्कार से संबंधित राजस्थान के बूंदी जिले के हाड़ौती सभ्यता में एक लोकगीत काफी देखने व सुनने को मिलता है।

झालर मेरी ओ लाओं, झालर मेरी ओ लाओं।
झालर को है सोहलो
ऊँचा तो देऊँ माता बैठणां ओ माई, दूदा पखारूँगी पांय
भुआ बाई चाली है रिसावत ओ माय
लीनी छै सासरिया की बाट
भुवा बाई ने लाओ मनाय के, ओ बाई
चीर ओढ़ घर जाय
जढुल्यां झेल घर जाय....।[13]

(9) कर्णभेद संस्कार

कर्णभेद संस्कार में शिशु के कान छेदे जाते हैं तथा इसमें अधिकतर विवाह के ही गीत गाये जाते हैं। यह संस्कार बच्चे के जन्म से छठे या सातवे महीने अथवा तीसरे या पाँचवे या सातवे, विषम वर्षों में किया जाता है।

(10) यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार को राजस्थानी भाषा में 'बरूआ' कहते हैं। उपनयन का अर्थ है, ले जाना। इस संस्कार में जब बच्चा 8 या दस वर्ष का हो जाता था तो उसे विधि–विधानपूर्वक उपनयन संस्कार द्वारा यज्ञोपवीत देकर गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेज दिया जाता था। इस संबंध में राजस्थानी लोकगीत इस प्रकार है–

"लालाखां (कहां) रग्यो छो
खां र लगाई अतनी देर
जनेऊ बेला टल रही
गरुजी मूँ रग्यो छो बाबा जी की पोल
लायू मायड़ न दीदो बसणो
लाला बैठो र राइ दलीचा राल
जीमो न मीठी लापसी।[14]

(11) वेदारम्भ या विद्यारम्भ संस्कार

यह संस्कार यज्ञोपवीत संस्कार के बाद शिशु के गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण के अवसर पर होता है। जब शिशु गुरुकुल में जाता है तो सबसे पहले गुरु पाटी (पट्टी) पूजन कराता है। पट्टी पूजन हो जाने के बाद गुरु शिष्य से लकड़ी की पट्टी पर ओम् (ॐ) लिखवाते हैं, उसके पश्चात् पट्टी पर गुरु श्री गणेशायः नमः लिखवाते हैं। फिर इसके बाद गुरु हिन्दी वर्णमाला अ, आ, इ, ई आदि अक्षर लिखवाना शुरू कर देते हैं। इसी संदर्भ में एक गीत प्रस्तुत है :–

"मेरे पढ़ने को जावेंगे नंदलाल, पंडित बन आओ जी
पाँच बरस के हो गयो लाल कृपा करो किरपाल
भेजो पंडित बुलवाओ पाटी पुजवाओ
कुछ दक्षिणा देऊँ हाल।।[15]

(12) समावर्तन संस्कार

गुरुकुल से शिक्षा ग्रहण करके जब ब्रह्मचारी अपने घर लौटता है तो उस अवसर पर होने वाले संस्कार को समावर्तन संस्कार कहते हैं। कहीं–कहीं इसे 'पदवी दान' भी कहते है।

(13) पाणिग्रहण संस्कार

पाणिग्रहण संस्कार को विवाह संस्कार भी कहते है। विवाह शब्द दो शब्दों 'वि' और 'वाह' से मिलकर बना है। 'वि' का अर्थ है 'विशिष्ट' एवं वाह का अर्थ है वहन करना अर्थात् विशिष्ट रूप से अपने जिम्मेदारियों का निर्वहन करना ही विवाह है। पाणिग्रहण संस्कार का मूल स्त्रोत ऋग्वेद में मिलता है। भारतीय समाज में विवाह संस्कार क्यों आवश्यक है, इसके लिए हमारे ऋषि–मुनियों ने तीन कारण बताये हैं–

(1) पुत्र प्राप्ति – जिससे अंत्येष्टि या श्राद्ध से संबंधित कार्य सम्पन्न हो सके।

(2) धर्म कार्य – जिससे धार्मिक अनुष्ठान आदि कार्य सम्पादित हो सके।

(3) रति सुख :– जिससे कामेच्छा की पूर्ति हो सके।[16]

भारत के सभी राज्यों की तरह राजस्थान में भी पाणिग्रहण को एक मुख्य संस्कार माना जाता है। इसमें विवाह से संबंधी कई प्रकार के संस्कारों का समावेश होता है। विवाह संस्कार के प्रकारों में प्रत्येक संस्कार की अपनी एक अलग विषय–वस्तु होती है तथा उसी से संबंधित कुछ प्रमुख राजस्थानी लोकगीतों का उद्धरण प्रस्तुत कर रहा हूँ–

विनायक गीत

किसी भी शुभ कार्य में प्रथम पूज्य गणेश जी की वंदना की जाती है। इसी प्रकार, राजस्थान में जब सगाई हो जाती है फिर उसके बाद विवाह व विवाह का मुहूर्त निश्चित किया जाता है, जिसमें सर्वप्रथम गणेश जी की स्थापना की जाती है। इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा विनायक गीत गाया जाता है जो निम्न है–

पूरब दिशा में सूर्य देवजी समरतजी
हां जी देवा सहस किरण ले उगसी।
मालिक तुम बिन और नहीं आसी
वेग पधारो राणी गोरां का गणपतजी...।[17]

मायरा गीत

राजस्थान में पाणिग्रहण के अवसर पर लड़की के मामा के यहाँ से मायरा अर्थात् वस्त्र, आभूषण आदि आते हैं तो उस समय यह गीत गाया जाता है–

वीरा रे चोवटे ने पेरायो, चौरासी सरायो,
मायरो पेराओ पहला म्हारे सेरिया मे,
पाडोसी सरायो मायरो।
वीरा ओ पहली म्हारा सासू जी ने पेराओ,
सूसराजी सरायो मायरो....।[18]

बिनोलो गीत

राजस्थान में विवाह से पूर्व वर या वधू को अपने रिश्तेदारों द्वारा भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है, जिसे बिनौला या बिन्दौरा कहते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'बिनोलो' कहते है।

झिर–झिर झिर–झिर मेहवो बरसे, मोतीडा झड़ लागा।
म्हें थाने पूछू कुंवर लाड़ला, थारो बिनोलो कुण न्योत्यो।
ईसर घर बहू गोरा, म्हारों बिनोलो उण न्योत्यो।
सूरज घर बहू रोहणी, म्हारो बिनोलो उण न्योत्यो...।[19]

सेवरो गीत

विवाह के समय दूल्हे के सिर पर मौर बाँधते समय सेवरो (सेहरा) गाया जाता है।

आज म्हारे दादाजी री पोल्या मालण ऊभी ओ राज
सुण सुण ए मालिड़ा री बेटी कई कई बिक्री लाई ए?
फूल मोगरो केल केवड़ो गूथी लाई ओ राज।
आज म्हारे काकाजी री पोल्या मालण ऊभी ओ राज।
सुण सुण ए मालिड़ा री बेटी कई कई बिक्री लाई ए?
फूल मोगरो केल केवड़ो सेवरड़ो गूंथी लाई ओ राज....।[20]

पाणिग्रहण के अवसर पर राजस्थान में विभिन्न लोक गीत, जैसे–कामण, कलश, पीठी, साकडी, निकासी, घोड़चढी, तोरण, फेरा, कँवर कलेवा, जुआ जूई, विदाई, पडला, पैसारा, कस्तूरी, रतजगा आदि गाये जाते हैं।

(14) वानप्रस्थ संस्कार

हिन्दू धर्म में वानप्रस्थ संस्कार का अत्यधिक महत्व है। यह मनुष्य के आश्रमों में तीसरा आश्रम है। मनुष्य का पूरा जीवन–काल 100 वर्षों का माना जाता है जिसे 25–25 वर्षों में विभक्त किया गया है। इसमें से मनुष्य 50 वर्षों तक ब्रह्मचर्य और गृहस्थ जीवन का पालन करता है। वानप्रस्थ वह अवस्था है जिसमें मनुष्य अपने सभी पारिवारिक उत्तरदायित्वों को अपने उत्तराधिकारी को सौंपकर अपने आगे का जीवन समाज को समर्पित करने का संकल्प लेता है।

(15) सन्यास संस्कार

वानप्रस्थ के 25 वर्ष पूर्ण होने के पश्चात् आश्रमों में अन्तिम आश्रम सन्यास का होता है। मनुष्य जब 75 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है तो हिन्दू धर्म–ग्रन्थों के अनुसार उसे विधि–विधानपूर्वक सन्यास आश्रम में प्रवेश कराया जाता है। इसका मृत्युपर्यन्त उसे पालन करना होता है। यही सन्यास संस्कार कहलाता है। सन्यास मानव–जीवन की अंतिम अवस्था मानी जाती है जिसका एकमात्र उद्देश्य होता है मोक्ष की प्राप्ति करना।

(16) अंत्येष्टि संस्कार

हिन्दू धर्म–ग्रन्थों के अनुसार सोलह संस्कारों में सबसे अंतिम संस्कार 'अंत्येष्टि' होता है। यह मनुष्य के जीवन का अंतिम संस्कार है। राजस्थान के लोकगीतों का हर संस्कार में अपना एक विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार के गीतों में मृत व्यक्ति के गुणों का गान किया जाता है। राजस्थान में इस संस्कार संबंधित बहुत कम गीत पाये जाते हैं। एक गीत निम्न हैः–

''थे तो चालो न सगी जी मसाण
सोवण न सीढ़ी त्यार
कांध देवा न बेटो त्यार
हांडी लेवण न पोतो त्यार
थांने ढोक देवण न बहू त्यार
थे तो चालो न सगी जी मसाण।[21]

इसी प्रकार, मृत्यु के समय गौ दान का भी इन गीतों में उल्लेख मिलता है, जो निम्न लोकगीत में प्रस्तुत है–

''काए कारन गऊ दई, काए के दीए गऊ दान।
पार के काजै गऊ दई, और तरन कूँ दए गऊ दान।''[22]

निष्कर्ष :

इस प्रकार, हम देखते हैं तो राजस्थानी लोकगीतों की विषय–वस्तु यहाँ के सोलह प्रकार के संस्कारों में समाहित है। राजस्थानी लोकगीतों पर अगर दृष्टिपात किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजस्थानी संस्कार संबंधित लोकगीतों का स्वरूप बहुत विस्तृत है। इन गीतों में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक एवं वहाँ के रीति–रिवाज परिलक्षित होते हैं। राजस्थानी लोकगीतों से जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा है।

संदर्भ सूची :

1. चौहान, डॉ. विद्या, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. 74
2. जैमिनी कृत पूर्व मीमांसा सूत्र, 3/1/3 की शबर द्वारा की गई व्याख्या
3. मनुस्मृति, 10/127
4. उपाध्याय, डॉ. चिन्तामणि, मालवी लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. 84
5. डॉ. सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 120
6. वर्मा, श्रीमती राजरानी, हमारे संस्कार गीत संग्रह, पृ. 24
7. डॉ. सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 119
8. मल्लिनाथ कृत सञ्जीवनी टीका, आचार्य धारादत्त मिश्र कृत संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद तथा श्री जनार्दन पाण्डेय कृत उपोद्घात सहित, महाकवि कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य (सम्पूर्ण), तृतीय सर्ग, पृ. 05
9. मोजा, कुमार उषा, कश्मीरी तथा हिन्दी लोकगीतों का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, 1966, पृ. 47
10. डॉ. सत्येन्द्र, हाड़ौती लोकगीत, पृ. 313
11. भार्गव, श्रीमती मंजूला, बृज लोकगीतों में जनजीवन का चित्रण, पृ. 56
12. त्रिपाठी, श्री, ग्राम–साहित्य, भाग प्रथम, पृ. 224
13. सत्येन्द्र, डॉ., हाड़ौती लोकगीत, पृ. 314–315
14. वही, पृ. 315
15. विनोद, बैजनाथ सिंह, भोजपुरी लोक साहित्य का एक अध्ययन, पृ. 108–109
16. शर्मा, डॉ. लवली–खिंची, डॉ. ईश्वर सिंह, राजस्थानी लोकगीतों की शास्त्रीयता, पृ. 47
17. मेनारिया, डॉ. पुरूषोत्तमलाल, राजस्थानी लोकगीत, पृ. 12–13
18. वही, पृ. 13–14
19. वही, पृ. 14–15
20. वही, पृ. 16
21. डॉ. सत्येन्द्र, हाड़ौती लोकगीत, पृ. 317
22. शर्मा, डॉ. लवली–खिंची, डॉ. ईश्वर सिंह, राजस्थान लोकगीतों की शास्त्रीयता, पृ. 48

भाषा के अधिग्रहण में संगीत की भूमिका

प्रो. प्रवीण उद्धव** **मृणाल रंजन***

सार

भाषा और संगीत, मानव संवाद के दो महत्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध माध्यम हैं, और इन दोनों के बीच गहरा संबंध है। संगीत एक ऐसी कला है जो स्वरों के माध्यम से, भाषा के बिना भी, सीधे हृदय पर प्रभाव डाल सकती है। भाषा के विकास के संदर्भ में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है जो अधिकांश लोगों के लिए समझने और सीखने की क्रिया को सरल और आनंदमय बना सकता है। प्रारंभिक शिक्षा में संगीत को भाषा के साथ जोड़कर अत्यधिक ज्ञानवर्धक विकास हो सकता है। बच्चों को संगीत के माध्यम से भाषा के ध्वनियों को अच्छी तरह समझने और सही तरीके से उच्चारण करने में मदद मिलती है। गीत, छंद, और रागों के साथ वाक्यांश बनाने से भाषा का अधिग्रहण और संवाद क्षमता बढ़ती है। संगीत की शिक्षा भाषा के अधिग्रहण को समृद्ध करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। यह भाषा की संरचनाओं को समझने में मदद करता है और भाषा के उच्चारण और वाक्यविन्यास में सुधार करता है। संगीत की लयबद्ध संरचना और वाक्यविन्यास भाषा में मौजूद नियमों और संरचनाओं के समानांतर होते हैं, जो भाषाई वाक्यविन्यास और व्याकरण की समझ एवं उसके विकास को बढ़ावा देते हैं। विभिन्न अध्ययनों ने दिखाया है कि संगीत के संपर्क में आने से, विशेष रूप से गायन के माध्यम से, नए शब्दों को सीखने और याद रखने की क्षमता बढ़ती है। संगीत ध्वनि–संबंधी निर्देश के पालन में भाषा के विकास को सुदृढ़ करने में सहायक होता है और ध्वनि की पहचान के साथ विकसित संज्ञानात्मक लचीलेपन को बढ़ावा देता है। संगीत और भाषा दोनों ही एक–दूसरे को समृद्ध करने वाले अनमोल संसाधन हैं। विभिन्न सांगीतिक गतिविधियों के माध्यम से भाषा का अधिग्रहण और संवाद की क्षमता को विकसित कर, संगीत भाषा के साथ एक समृद्ध संबंध बनाने का अवसर प्रदान करता है।

मुख्य बिन्दु : *भाषा, संगीत, विकास, खेल, व्याकरण, राग, लय*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लिए द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

संगीत और भाषा, संचार के दो अलग–अलग रूप हैं, फिर भी आपस में गहराई से संबंधित हैं। यद्यपि भाषा विचारों को व्यक्त करने के लिए आवश्यक है, तथापि भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में संगीत एक अद्वितीय भावनात्मक और सौंदर्यपूर्ण आयाम के रूप में अभिप्रमाणित होता है। संगीत सदियों से मानव संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। प्राचीन सभ्यताओं से लेकर आधुनिक समाज तक संगीत ने भाषा की बाधाओं को पार किया है। एक सार्वभौमिक भाषा के रूप में संगीत लोगों को भावनाओं, विचारों और विचारों की एक श्रृंखला को भी व्यक्त करने और अनुभव करने की अनुमति देता है। यद्यपि भाषाएँ शब्दों और स्वर के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त कर सकती हैं, तथापि वे संगीत के समान भावनात्मक तीव्रता का स्तर प्राप्त नहीं कर सकती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अलग–अलग प्रतीत होने वाले ये दोनों क्षेत्र इस प्रकार से आपस में बंधे हुए हैं कि बाल्यकाल में भी भाषा कौशल के विकास में योगदान करते हैं।

ध्वनि की समझ और भाषा की ध्वनियों को पहचानने और उनमें हेर–फेर करने की क्षमता भाषा के अधिग्रहण के लिए मौलिक कौशल है। इस संबंध में संगीत लय, स्वर–माधुर्य और पिच (आधार स्वर) पर बल देने के साथ ध्वनि–संबंधी समझ को विकसित करने और परिष्कृत करने के लिए एक आदर्श माध्यम प्रदान करता है। गॉर्डन, एवं साथी (2015)[1] द्वारा किये गए अनुसंधान ने प्रदर्शित किया कि संगीत के प्रशिक्षण से शिक्षार्थियों में ध्वनि–संबंधी कौशल में सुधार होता है। गायन, ताली बजाना या वाद्य–यंत्र वादन जैसी गतिविधियों में सम्मिलित होने से ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता बढ़ सकती है, जिससे अंततः भाषा के विकास में लाभ होता है। ध्वनि की पहचान एक महत्वपूर्ण मूलभूत कौशल है जो भाषा के विकास पर

*शोधार्थी, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशक, वाद्य विभागाध्यक्ष, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आवश्यक प्रभाव डालता है। इसका संबंध शब्दों के सृजन में सहायता करने वाली ध्वनियों की इकाइयों को पहचानने और उनमें आवश्यक बदलाव करने की क्षमता से है। शक्तिशाली ध्वन्यात्मक सूझ बेहतर वर्तनी, शब्दावली और पढ़ने की समझ से जुड़ी है। हाल के वर्षों में, शिक्षकों और शोधकर्ताओं ने युवा शिक्षार्थियों में ध्वनि–संबंधी समझ बढ़ाने के लिए विभिन्न मार्गों की खोज की है। एक अभिनव और प्रभावी दृष्टिकोण की मानें तो ध्वनि–संबंधी निर्देश के पालन में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। संगीत की शिक्षा भाषा के अधिग्रहण को समृद्ध करने के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप सिद्ध हो चुकी है। संगीत और भाषा प्रसंस्करण एक ही तंत्रिका मार्ग को उपयोग करते हैं, विशेष रूप से मस्तिष्क के उन क्षेत्रों में जो श्रवण–धारणा और प्रसंस्करण के लिए जिम्मेदार हैं। संगीत और भाषा दोनों में लयबद्ध पैटर्न, वाक्य की माधुर्यपूर्ण रूपरेखा और अन्य सांगीतिक विविधताएं शामिल हैं। ये समानताएँ ध्वनि की पहचान से संबंधित कौशल को सुदृढ़ करने के माध्यम के रूप में संगीत का लाभ उठाने का अवसर प्रदान करती है। अध्ययनों से पता चला है कि संगीत के संपर्क में आने से, विशेष रूप से गायन के माध्यम से, नए शब्दों को सीखने और याद रखने की क्षमता बढ़ती है। सिंह, एवं साथी (2017)[2] द्वारा आयोजित एक अध्ययन से पता चला कि जो बच्चे संगीत–आधारित गतिविधियों में लगे थे, उन्होंने उन लोगों की तुलना में बेहतर शब्दावली कौशल का प्रदर्शन किया जो ऐसा नहीं करते थे। संगीत में सीखे गए लयबद्ध पैटर्न और सुमधुर धुन भाषा अधिग्रहण के लिए स्मृति आधारित रास्ते बनाते हैं जिससे नए शब्दों के भंडारण और पुनर्प्राप्ति में सहायता मिलती हैं।

संगीत और भाषा के बीच का संबंध व्यक्तिगत शब्दों के दायरे से आगे तक फैला हुआ है। संगीत की अमूर्त प्रकृति विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं की अनुमति देती है। संगीत के एक ही टुकड़े से अलग–अलग श्रोता अलग–अलग भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त कर सकते हैं या अलग–अलग अर्थ समझ सकते हैं। यह अस्पष्टता संगीत को रहस्य का तत्व देती है और व्यक्तिगत और व्यक्तिपरक अर्थों की अनुमति देती है। इस प्रकार संगीत अभिव्यक्ति का एक समृद्ध और व्यक्तिगत माध्यम बन जाता है। संगीत की लयबद्ध संरचना और वाक्यविन्यास भाषा में मौजूद नियमों और संरचनाओं के समानांतर होते हैं, जो भाषाई वाक्यविन्यास और व्याकरण की समझ एवं उसके विकास को बढ़ावा देते हैं। मौखिक भाषाएँ, यद्यपि विशिष्ट अर्थ व्यक्त करने में सक्षम हैं, फिर भी भाषा की जटिलताओं के कारण इनमें अस्पष्टता की परतें हो सकती हैं। शब्दों में अर्थ, रूपक और प्रतीकात्मक अर्थ हो सकते हैं जिनकी व्याख्या करने के लिए दृष्टिकोण में विविधता होने की आवश्यकता होती है। पटेल (2008)[3] के शोध से पता चलता है कि शिक्षार्थियों को संगीत के संपर्क में लाने से उनके मस्तिष्क को पदानुक्रमित संरचनाओं को पहचानने और व्याख्या करने के लिए प्रशिक्षित करके भाषा में वाक्यात्मक प्रसंस्करण को बढ़ाया जा सकता है। संगीतमय जुड़ाव के माध्यम से विकसित संज्ञानात्मक लचीलेपन और पैटर्न पहचान के पहचान करने की क्षमताओं के परिणामस्वरूप वाक्य निर्माण और व्याकरण में लाभ हो सकता है। संगीत का उपयोग कर के भाषा की समझ बढ़ाने के कुछ विशेष लाभ निम्नलिखित हैं–

उन्नत श्रवण : संगीत शिक्षार्थियों को तीव्र श्रवण कौशल विकसित करने में मदद करता है, क्योंकि वे लय और विभिन्न स्वरों के बीच अंतर करना सीखते हैं। यह बढ़ी हुई श्रवणशक्ति बोली जाने वाली भाषा में अलग–अलग स्वरों को पहचानने की शक्ति देती है।

लय की समझ : संगीत लय के अधीन है, और यह शिक्षार्थियों को शब्दों में शब्दांश विभाजन की भावना विकसित करने में मदद कर सकता है। किसी गाने की धुन पर ताली बजाने या थप–थपाने से शिक्षार्थियों को शब्दों के लयबद्ध पैटर्न को समझने में मदद मिल सकती है।

तुकबंदी की पहचान : कई गानों में तुकबंदी वाले बोल होते हैं, और इस तुकबंदी के साथ गाने से शिक्षार्थियों को तुकबंदी वाले शब्दों को पहचानने और अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में मदद मिल सकती है। पढ़ाई के प्रारंभिक विकास के लिए यह कौशल महत्वपूर्ण है।

ध्वन्यात्मक फेर–बदल : ऐसे सांगीतिक खेल, जिनमें धुनों या गीतों को बदलना निहित है, शिक्षार्थियों को स्वरों में हेरफेर करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जिससे उनकी ध्वन्यात्मक समझ में सुधार होता है। उदाहरण के लिए, किसी गीत में किसी शब्द की प्रारंभिक ध्वनि को बदलना शिक्षार्थियों के लिए एक मजेदार अभ्यास हो सकता है।

सूझ–बूझ और प्रेरणा : संगीत में शिक्षार्थियों को लुभाने और संलग्न करने की प्राकृतिक क्षमता होती है। संगीत के साथ ध्वन्यात्मक सूझ–बूझ के लिए बढ़ावा देने वाली गतिविधियों को एकीकृत करने से सीखने में आनंद आता है तथा भाषा सीखने और पढ़ाई के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है। संगीत भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संगीत एक सांस्कृतिक और सामाजिक माध्यम है जो भाषा के साथ गहरा संबंध रखता है।

संगीत द्वारा शब्दों की पहचान : संगीत में शब्दों का उपयोग किया जाता है और इससे शिक्षार्थियों को नए शब्दों की पहचान और उनका अर्थ सीखने में मदद मिलती है। ध्वनि और वाक्य रचना के संगीतीय अंशों के माध्यम से, बच्चे वर्णमाला की समझ, शब्दों के अर्थ, और वाक्यों के तंत्र को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता का विकास : संगीत की मदद से बच्चे विभिन्न ध्वनियों के बीच अंतर और समानताओं को समझने और पहचानने की क्षमता विकसित कर सकते हैं। यह उन्हें ध्वनियों के उच्चारण में सटीकता के साथ वर्णमाला के विभिन्न वर्णों का ताना–बाना समझने में मदद कर सकता है।

भाषा की लय : संगीत के माध्यम से, शिक्षार्थियों में वाक्यों के संयोजन और उसकी लय की समझ और वाक्य रचना की उत्पत्ति के विषय में संवेदनशीलता विकसित की जा सकती है। यह उन्हें वाक्यों के अंतर को समझने और शब्दों को सही क्रम में व्यवस्थित करने में सहायता कर सकता है।

भावनात्मक संवेदनशीलता का विकास : संगीत में भावनात्मकता महत्वपूर्ण होती है और वह भाषा के साथ जुड़ी भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम होता है। संगीत के माध्यम से, बच्चे वाणी और भाषा के भावों को समझने, व्यक्त करने, और उन्हें वाक्यों और गीतों में साझा करने की क्षमता विकसित कर सकते हैं।

संगीत के माध्यम से भाषा के विकास को समर्थन करने के लिए, शिक्षकों को गानों, गीतों, और संगीत के विभिन्न तत्वों का उपयोग करना चाहिए। यह उन्हें उत्साहपूर्वक भाषा के अंग जैसे शब्द, वाक्य, ध्वनि, और ताल को समझने और संवाद करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। संगीत के साथ भाषा का इस रूपांतरण शिक्षार्थियों के भाषा संबंधित कौशल और अभिवृद्धि में मदद कर सकता है, जो उनके भविष्य के शिक्षा और संचार में मददगार साबित हो सकते हैं। संगीत के जरिए भाषा की समझ और उसके विकास को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित खेलों पर भी विचार किया जा सकता है–

शब्द–सरगम : इस खेल में, सरगम के साथ शब्दों की जुगलबंदी की जा सकती है। शिक्षक एक शब्द का उच्चारण करते हैं, और छात्रों को उस शब्द का समान या ध्वनियों में अंतर करने के लिए कहते हैं।

ध्वनि बिंदु : इस खेल में, विभिन्न ध्वनियों को एक साथ रख कर बच्चों को उस ध्वनि का नाम बताने के लिए कहा जाता है जो उन्हें सुनाई देता है।

शब्द और ताल : इस खेल में, विभिन्न शब्दों को ताल के साथ गाया जा सकता है। शब्दों को ताल के अनुसार गाने के लिए बच्चों को प्रेरित किया जा सकता है।

राग–ताल मेल : इस खेल में, बच्चों को एक राग या ताल दिया जा सकता है और उन्हें उसी राग और ताल में अलग–अलग शब्दों को गाने के लिए कहा जाता है।

रिमझिम : इस खेल में, शिक्षक बच्चों को दो या तीन ध्वनियों के बीच में अंतर करने के लिए कहते हैं। बच्चों को उस ध्वनि का नाम बताने के लिए कहा जाता है जो उन्हें सुनाई देता है।

रिमझिम शब्द : इस खेल में, बच्चों को ध्वनियों के बीच में अंतर करने के लिए कहा जाता है। उन्हें उस ध्वनि का नाम बताने के लिए कहा जाता है जिसमें वे अंतर करना चाहते हैं।

राग दर्शन : इस खेल में, बच्चों को एक राग दिया जाता है और उन्हें उस राग में अलग–अलग शब्दों को गाने के लिए कहा जाता है।

गीत बनाना : इस खेल में, बच्चों को वाक्य बनाने के लिए विभिन्न शब्दों का उपयोग करने के लिए कहा जाता है और उन्हें उन शब्दों को गीत का रूप देने के लिए प्रेरित किया जाता है।

धुन बनाना : बच्चों को ध्वनियों को संगीतीकृत करने और उन्हें ध्वनियों के अलग–अलग पक्षों को समझने के लिए कहा जाता है।

रचनात्मक गीत : बच्चों को खुद के रचनात्मक गीत बनाने और गाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे उन्हें भाषा को समझने और व्यक्त करने में सक्रिय बनाया जा सकता है।

ये सांगीतिक खेल बच्चों को भाषा के माध्यम से संवाद करने, ध्वनियों को समझने, और भाषा के अंगों को समझने में मदद कर सकते हैं। इन गतिविधियों को शिक्षा में शामिल करके बच्चों के भाषा विकास को बढ़ावा मिल सकता है।

निष्कर्ष : संगीत भावनाओं की एक सार्वभौमिक भाषा के रूप में कार्य करता है जो व्यक्तियों को शब्दों की सीमाओं से परे भावनाओं को व्यक्त करने और व्याख्या करने की अनुमति देता है। संगीत और भाषा के बीच यह भावनात्मक संबंध भाषा–संबंधी अक्षमताओं या विकासात्मक विकारों वाले व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से लाभप्रद हो सकता है। वैज्ञानिक अध्ययनों, जैसे कि लिम्ब और ब्रौन (2008)[4] द्वारा किए गए एक अध्ययन, से संकेत मिलता है कि संगीत के संपर्क में आने से मस्तिष्क के भावनात्मक प्रसंस्करण से जुड़े क्षेत्र सक्रिय होते हैं, जिससे व्यक्तियों को भावनात्मक अभिव्यक्ति और संचार में सहायता मिलती है। संगीत की भावनात्मक शक्ति का लाभ उठाकर भाषा सीखने वाले शिक्षार्थी समग्र संचार कौशल को बल प्रदान करते हुए भावनाओं को व्यक्त करने और समझने की अपनी क्षमता बढ़ा सकते हैं। संगीत और भाषा विकास के बीच गहरा संबंध अनुसंधान का एक रोमांचक क्षेत्र है जो भाषासंचार की हमारी समझ को उजागर करता है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में, संगीत और मौखिक भाषाएँ दोनों ही भावनाओं के संचार और रचनात्मकता के लिए अमूल्य उपकरण हैं। संगीत की अमूर्त प्रकृति और सार्वभौमिकता एक सीधा भावनात्मक संबंध प्रदान करती है, जबकि भाषाएं विशिष्ट विचार और उन विचारों को व्यक्त करने के लिए आवश्यक सटीकता और व्याकरणिक संरचना प्रदान करती हैं। प्रत्येक माध्यम के अद्वितीय गुणों को पहचानकर और उनकी सराहना करके हम अपनी समझ को समृद्ध कर सकते हैं और एक दूसरे के साथ गहन स्तर पर संवाद करने और जुड़ने की अपनी क्षमता को बढ़ा सकते हैं। संगीत भाषा के विकास के लिए एक मूल्यवान उपकरण के रूप में कार्य करता है जिससे भाषाई क्षमता के विभिन्न पक्षों को विकसित करने के लिए एक अद्वितीय और आकर्षक दृष्टिकोण प्राप्त होता है। भाषा सीखने के माहौल में संगीत को सम्मिलित कर, शिक्षक और बच्चे एक जीवंत तथा प्रभावी अनुभव अर्जित करने के लिए इसकी शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों ने लगातार भाषा–अधिग्रहण के विभिन्न पहलुओं पर संगीत के सकारात्मक प्रभाव को प्रदर्शित किया है, जिसमें ध्वनि संबंधी जागरूकता, शब्दावली अधिग्रहण, वाक्यविन्यास और व्याकरण कौशल और भावनात्मक अभिव्यक्ति शामिल हैं। शिक्षार्थियों को संगीत के कार्यक्रमों के अनुभव दिलवा के शिक्षक और माता–पिता उन के लिए भाषा के विकास के सामंजस्यपूर्ण प्रवेश द्वार को खोल सकते हैं तथा उनमें विचारों की व्यापकता एवं समृद्ध भावाभिव्यक्ति का पोषण कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. Gordon RL, Fehd HM, McCandliss BD. Does Music Training Enhance Literacy Skills? A Meta-Analysis. Front Psychol. 2015;6:1777. doi:10.3389/fpsyg.2015.01777
2. Singh L, Fu CS, Rahman AA, Hameed WB, Sanmugam S, Agarwal P, et al. (2017). Music training enhances phonological awareness and vocabulary skills in young children. Frontiers in Psychology, 8, 183. doi: 10.3389/fpsyg.2017.00183
3. Patel, A. D. (2008). Music, language, and the brain. Oxford University Press.
4. Limb, C. J., & Braun, A. R. (2008). Neural substrates of spontaneous musical performance: An FMRI study of jazz improvisation. PLOS ONE, 3(2), e1679. doi: 10.1371/journal.pone.0001679

संगीत का परिवर्तनशील स्वरूप एवं परिवर्तन के कारण

डॉ0 संगीता पंडित** **डॉ0 अभिनव नारायण आचार्य***

सारांश

किसी भी वस्तु में परिवर्तन रूपी विकास का यह क्रम अनवरत चलता रहता है परंतु प्रति क्षण कितना विकास हुआ, इसका हिसाब नहीं रखा जा सकता। जब परिवर्तन अथवा विकास अधिक मात्रा में हो जाता है तभी वह मनुष्य के द्वारा अनुभवगम्य हो सकता है। संगीत भी परिवर्तन के इस शाश्वत नियम का अपवाद नहीं है तथा इसे भी समय के साथ–साथ परिवर्तन की अवस्था से गुजरना पड़ता है। आज विश्व संगीत का कोई भी रूप अपने उसी रूप में नहीं गाया या बजाया जाता जिस रूप में आज से हजार वर्ष पहले गाया–बजाया जाता रहा होगा तथा निश्चय ही एक ही संगीत के हजार साल पहले के रूप तथा आज के रूप में इतना पर्याप्त अंतर आ चुका है कि इन दोनों को एक साथ समझ पाना संभव नहीं है। अतः संगीत में होने वाले परिवर्तन के कारणों एवं उसके परिवर्तनशील स्वरूप का विस्तृत विवेचन–विश्लेषण आवश्यक है।

संकेत शब्द– *भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, वैयक्तिक*

शोध प्रविधि– *द्वितीयक माध्यमों की मदद से शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

भूमिका– परिवर्तन प्रकृति का एक अटल नियम है तथा सृष्टि की कोई भी वस्तु व्यक्ति अथवा पदार्थ इससे अछूता नहीं रह सकता है। अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पदार्थ की जो तीन अवस्थाऐं होती हैं– उत्पत्ति, विकास एवं विनाश ये तीनों मूलतः परिवर्तन के ही अलग–अलग नाम हैं अर्थात् उत्पत्ति भी परिवर्तन का ही नाम है, विकास भी परिवर्तन का ही नाम है तथा विनाश भी उसी का। यद्यपि संसार की सभी वस्तुओं में परिवर्तन की स्थिति होती तो अवश्य है तथापि सभी वस्तुओं में परिवर्तन की गति एकसी नहीं होती। जैसे फसलों आदि का विकास हम आसानी से देख सकते हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति, विकास एवं विनाश की तीनों अवस्थाएँ कुल चार–पाँच महीनों के अंतराल में ही हो जाती है। परंतु स्वयं मनुष्य के शारीरिक तथा बौद्धिक विकास की गति इतनी मंद होती है कि उसे चार–पाँच महीनों के अंतराल में देख पाना संभव नहीं होता। अपनी पूर्ण लंबाई को प्राप्त करने में उसे बीस–पचीस वर्ष का समय लग जाता है तथा बौद्धिक विकास भी इसी तरह मंद गति से ही होता है।

वास्तव में संगीत में परिवर्तन की यह प्रक्रिया तो प्रतिपल चलती रहती है परंतु प्रतिपल उसे नापा नहीं जा सकता तथा जब पूँजीभूत मात्रा में परिवर्तन की यह प्रक्रिया हो जाती है तभी इसे अनुभवगम्य समझा जा सकता है तथा यह प्रक्रिया सैकड़ों वर्षों में संपन्न होती है। उदाहरणार्थ– अपभ्रंश हिंदी की ही पूर्ववर्ती भाषा है परंतु वर्तमान समय में इसे समझने वाले लगभग समाप्तप्राय ही हैं अथवा चालीस–पचास वर्षों के अंतराल के बाद हम बचपन के किसी परिचित साथी को भी पहचान नहीं पाते हैं क्योंकि उसके जिस रूप से हम परिचित होते हैं वो इतने समय में पूरी तरह बदल चुके होते हैं। ठीक यही स्थिति संगीत की भी है।

जिस प्रकार संगीत कहने पर स्वर, लय, ताल का बोध होता है उसी प्रकार संगीत के परिवर्तन से भी इन्हीं तीनों का परिवर्तन अभिप्रेत है। परिवर्तन–संबंधी कारण वैसे तो कई हो सकते हैं परंतु इन्हें मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. बाह्य कारण
2. आभ्यंतर कारण

परिवर्तन के कुछ कारण तो संगीत की प्रकृति में ही विद्यमान रहते हैं इसीलिए उन्हें अंतर्निहित या आभ्यंतर कारण कह सकते हैं। कलाकार का शारीरिक वैशिष्ट्य, अपने गुरू अथवा आदर्श व्यक्ति के अनुकरण की क्षमता, स्वरों का लगाव तथा मानसिक स्तर आदि इसी कोटि में आते हैं क्योंकि इनका संबंध किसी भी अन्य व्यक्ति से नहीं होता। परंतु संगीत एक परिवेश–सापेक्ष धर्म भी है

*संगीत शिक्षक, सेन्ट्रल हिन्दू ब्वायज स्कूल, कमच्छा, वाराणसी
**प्रोफेसर, गायन विभान, संगीत एवं मंच कला संकाय, का.हि. विश्वविद्यालय, वाराणसी

फलस्वरूप इस पर बहुत सारे बाहरी तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है जिनमें भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृेतिक, वैज्ञानिक आदि प्रभाव आते हैं। चूँकि इनका संबंध समाज से होता है अतः इन्हें बाह्य कारण कह सकते हैं। आगे हम संक्षेप में कुछ प्रमुख कारणों पर विचार करेंगे।

बाह्य कारण

1. **भौगोलिक प्रभाव** : कुछ विद्वान जैसे कोलित्स तथा हाइनरिख आदि का मानना है कि जलवायु का प्रभाव मनुष्य के केवल शारीरिक गठन पर ही नहीं पड़ता बल्कि उसके चरित्र एवं ध्वनि पद्धति पर भी स्पष्ट रूप से पड़ता है। पहाड़ी भागों अथवा मरूभूमि के निवासी जैसे अफगानी, पंजाबी, राजस्थानी आदि कठिन जीवन–शैली के कारण अधिक मेहनती होते हैं जिसके कारण उनका शरीर दृढ़ तथा सुगठित होता है। स्वभावतः इसका प्रभाव उनके शरीर, चरित्र, भाषा, तथा कला दृष्टि पर भी पड़ता है। उनकी भाषा तथा संगीत आदि में पौरूष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जबकि जो समतल मैदान के निवासी हैं जैसे बंगाली आदि तथा जहाँ जीवन–शैली में श्रम की बहुत अधिकता नहीं होती उनके व्यक्तित्व में एक प्रकार की कोमलता देखी जाती है जो उनके संगीत में भी परिलक्षित होती है। मनुष्यों में ही नहीं बल्कि पशु–पक्षियों तथा वनस्पति आदि के विकास में भी भौगोलिक परिस्थितियों का स्पष्ट रूप से प्रभाव देखा जा सकता है। यदि जलवायु का असर मनुष्येतर जातियों में इतना स्पष्ट होता है तो मनुष्य का ध्वनि तंत्र भी भौगोलिक परिस्थितियों से अवश्यंभावी रूप से प्रभावित होता है। यद्यपि संगीत पर पड़ने वाले इस भौगोलिक प्रभाव की मात्रा प्रायः कम ही रहती है तथापि उसके प्रभाव को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

2. **ऐतिहासिक प्रभाव** : संगीत के परिवर्तन में भूगोल का प्रभाव तो बहुत सूक्ष्म रूप से पड़ता है परंतु इतिहास का प्रभाव बहुत ही स्थूल एवं स्पष्ट रूप से पड़ता है। ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण, राजनैतिक उथल–पुथल तथा व्यापारिक संबंध आदि को रखा जा सकता है। आज उत्तर भारतीय संगीत में ख्याल, टप्पा, ठुमरी, कजरी, चैती आदि कई विधाएँ बन गई हैं जिनमें उनके नाम (जैसे ख्या्ल) के साथ ही साथ गायन शैली में भी विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है (जैसे टप्पा में अफगानी संगीत का प्रभाव) तथा कुछ मिश्रण तो इतना सहज और स्वाभाविक बन गया है कि उनमें विदेशी छवि अथवा प्रभाव खोज पाना असंभव–सा हो गया है। गायन विधाओं तक ही यह परिवर्तन सीमित नहीं है बल्कि पद–रचना आदि में भी यह मिश्रण देखा जाने लगा है। इन सारे परिवर्तनों का निदान देशी घटनाओं में नहीं मिलता बल्कि विदेशी संपर्कों में मिलता है। चाहे वे संपर्क राजनीतिक रहे हों अथवा व्यापारिक, धार्मिक रहे हों अथवा सांस्कृतिक। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाये तो हम देखते हैं कि आधुनिक पद रचनाओं में बहुत कम तत्सम् शब्द मिलते हैं बल्कि खड़ी बोली तथा उर्दू के कई शब्दों का प्रयोग बहुतायात में देखने को मिलता है। ये शब्द कैसे और क्यों आये, इसका उत्तर इतिहास देता है। बहुत दिनों तक भारत पर मुसलमानों का शासन रहा जिसके फलस्विरूप उनकी बोली के हजारों शब्द हिंदी में प्रविष्ट होकर उसके अभिन्न अंग बन गये। संगीत में हुए परिवर्तनों के इन पक्षों की व्याख्या इतिहास ही कर सकता है, इसीलिए संगीत में परिवर्तन के कारणों पर विचार करते समय ऐतिहासिक प्रभाव पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

3. **सांस्कृतिक प्रभाव** : सांस्कृतिक प्रभाव की चर्चा भी इतिहास के ही अंतर्गत की जा सकती है क्योंकि सांस्कृतिक प्रभाव भी ऐतिहासिक घटनाओं का ही एक हिस्सा होता है, फिर भी तथ्यों में स्पष्टता के आग्रह से उस पर अलग से विचार किया जा सकता है। दूसरे यह भी है कि यह बिल्कुल भी जरूरी नहीं है कि दो संस्कृतियों के संगम के पीछे हमेशा राजनीतिक कारण ही होते हों। क्योंकि भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में कई बार सांस्कृतिक जागरण हुये हैं तथा रूढ़ि एवं पुरातनता को त्याागकर जनता ने नवीन धर्मों को अपनाया है। हमारे भारतीय संगीत की मंदिरों से राज–दरबारों तक की यात्रा इसी सांस्कृतिक प्रभाव के कारण ही संपन्न हुई है तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप ही संगीत साधन से साध्य बन गया। इन सबके अलावा रचना, प्रस्तुतिकरण, जनरुचि आदि सभी चीजों में ऐसे परिवर्तन अवश्य आये है जिनके कारण के लिए सांस्कृतिक प्रभाव को ही जिम्मेदार माना जा सकता है ।

4. **साहित्यिक प्रभाव** : संगीत के परिवर्तन में कभी–कभी साहित्यिक प्रभाव भी जिम्मेदार होते हैं। मध्ययुगीन भारतीय इतिहास हमारी इस बात की पुष्टि करता है। भारत में संस्कृत प्रमुख साहित्यिक भाषा थी परंतु भक्ति आंदोलन के फलस्वरूप जनरूचि में इतना आमूल–चूल

परिवर्तन हुआ कि तत्कालीन रचनाकार संस्कृत को छोड़कर लोक भाषाओं में रचना करने लगे। संभवतः जनरूचि के इसी परिवर्तन के फलस्वरूप संगीत में भी विशिष्ट शास्त्रीय संगीत की जगह लोक धुनों को स्थान मिला जिसके फलस्वरूप ठुमरी, कजरी, चैती जैसी उपशास्त्रीय विधाओं का जन्म हुआ। यह एक प्रकार से सांगीतिक आभिजात्य पर सांगीतिक लोकतंत्र की विजय मानी जा सकती है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक समग्र भारत में इस लहर का प्रभाव देखा गया जिसके फलस्वरूप कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि ने हिंदी की विभिन्न बोलियों में अपनी रचनाएँ कीं तथा उन्हें लोक धुनों के ही आधार पर संगीतबद्ध किया गया जो एक अदृष्टपूर्व परिवर्तन था।

5. **वैज्ञानिक प्रभाव** : विज्ञान की विभिन्न शाखाओं ने लगभग पिछली तीन शताब्दियों में अभूतपूर्व उन्नति की है जिसके फलस्वरूप असंख्य नई वस्तुओं का आविष्कार हुआ तथा संगीत भी अपने आप को इस वैज्ञानिक प्रभाव से दूर नहीं रख सका तथा संगीत में भी कई वैज्ञानिक मशीनों को जैसे– लहरा मशीन, तानपूरा, स्वरपेटी आदि को स्थान मिला जिसके फलस्वरूप संगीत के स्वरूप में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। जिन जगहों पर कलाकार को अंदाजा लगाकर काम चलाना पड़ता था, जैसे तानपुरा पर षड्ज की स्थापना करना आदि, उसकी जगह मशीनों के द्वारा स्थिरता आ गई। अतएव हम यह कह सकते हैं कि विज्ञान ने मनुष्य को ही नहीं बल्कि संगीत को भी रूपांतरित कर दिया है। अतः संगीत–संबंधी परिवर्तनों पर विचार करते समय विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

6. **वैयक्तिक प्रभाव** : संगीत के विकास में समाज का तो योगदान रहता ही है परंतु व्यक्ति का महत्व भी स्वीकार करना ही पड़ता है और कभी–कभी ऐसे युग–पुरूष भी उत्पन्न होते हैं जो अपने निजी व्यक्तित्व से संगीत की गतिविधियों को बहुत दूर तक प्रभावित कर देते हैं, उदाहरणार्थ– पंडित रविशंकर, उन्होंने शास्त्रीय संगीत के प्रदर्शन में कई प्रयोग किये जिनमें संगतकार तबला वादक के साथ सवाल–जवाब की शैली का अविष्कार हुआ जिसने शास्त्रीय संगीत को आम जनता के समक्ष मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत करने की शैली को विकसित किया तथा आज लगभग सभी कलाकार अपने प्रदर्शन में इसका प्रयोग करते देखे जाते हैं।

साधारणतः बाह्य कारणों के अंतर्गत इन्हीं कारणों को रखा जा सकता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि संगीत पर पड़ने वाले प्रत्येक प्रभाव की मात्रा सदा एक–सी नहीं रह सकती एवं कभी तो यह प्रभाव लक्षित होता है और कभी–कभी अलक्षित भाव से ही संगीत को प्रभावित करता है। कभी–कभी यह भी होता है कि इन प्रभावों के फलस्वरूप होने वाला परिवर्तन हमें तत्काल दृष्टिगोचर नहीं होता किंतु समय पाकर वह धीरे–धीरे स्पष्ट होता है।

आभ्यंतर कारण

हर वस्तु के विकास के पीछे बाह्य कारण और परिस्थितियों का भी योगदान रहता है परंतु कुछ कारण ऐसे होते हैं जो स्वयं उस विषय अथवा वस्तु की प्रकृति में ही विद्यमान रहते हैं जिन्हें परिवर्तन का आभ्यांतर कारण कहा जाता है। अगर किसी वस्तु में बाह्य परिस्थितियाँ एक समान होने के बावजूद उस वस्तु के विकास की श्रेणी में अंतर दिखाई देता है तो ऐसा आभ्यंतर कारणों के चलते ही संभव है। उदाहरणार्थ– एक ही वृक्ष में फलित होने वाले तथा विकास के लिये एक से वातावरण को प्राप्त करने वाले एक वृक्ष के सभी फल एक जैसा विकास नहीं करते। अथवा एक समान वातावरण एवं समान उपचारों के द्वारा पोषित व्यक्तियों में से भी कोई व्यक्ति सबल होता है, कोई निर्बल होता है, कोई दीर्घायु तथा कोई अल्पायु। इसका कारण मनुष्य के अंदर की वह अंतर्निहित शक्ति होती है जो सभी मनुष्य में होती तो अवश्य है परंतु एक–सी नहीं रहती। इसी प्रकार संगीत के विकास व परिवर्तन में भी बाह्य कारणों का तो प्रभाव रहता ही है किंतु स्वयं संगीत एवं संगीतकारों की प्रकृति भी उस परिवर्तन की भूमिका निर्धारित करने में बड़ा योगदान देती है। अतः जो कारण संगीत की प्रकृति, स्वरूप अथवा संगीतकारों की प्रकृति या व्यवहार से संबंधित हैं उन्हें अभ्यंतर कारण कहा जा सकता है। वे निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. **अपूर्ण अनुकरण**– कभी भी कोई दो व्यक्तियों की शारीरिक संरचना तथा उनके अंगों का निर्माण एक जैसा नहीं होता। इसी कारण दोनों की आकृति मेल नहीं खाती। शारीरिक संरचना की यह भिन्नता जैसी बाहर दिखाई पड़ती है वैसी ही भिन्नता भीतर भी अवश्य होती है। अंतर केवल यही है कि संरचना की बाहरी भिन्नता को हम आसानी से देख सकते हैं परंतु अंदरूनी भिन्नता को नहीं अर्थात् दो व्यक्तियों के सभी अंदरूनी अंग (हृदय, फेफड़े, स्वंर तंत्री आदि) भिन्न क्षमताओं के हुआ करते हैं।

उन्हें केवल तभी चिन्हित किया जा सकता है जब वह व्यक्ति उनका उपयोग करे। जैसे किसी व्यक्ति की आवाज बहुत मधुर होती है और किसी की बहुत ही कर्कश, किसी की आवाज सुनकर जी नहीं भरता और किसी की आवाज सुनने को एकदम जी ही नहीं चाहता। आवाज के इस अंतर का कारण वागेंद्रियों की भिन्नता ही है। इस भिन्नता के कारण ही शब्दों के उच्चारण एवं स्वरों के अनुकरण में भी भिन्नता आ जाती है। संगीत सुनकर सीखने वाला विषय है लेकिन जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि सभी मनुष्यों के मस्तिष्क के निर्माण में अंतर होने के कारण उनकी बुद्धि तथा ग्रहण क्षमता भी अलग–अलग होती है। अब कोई तीव्र बुद्धि वाला मनुष्य किसी राग को जिस रूप में ग्रहण करेगा उसी रूप में कोई मंद बुद्धि वाला नहीं कर सकता। ग्रहण अर्थात् अनुकरण में भेद हो जाने से उस राग के बर्ताव में भी भेद हो जाया करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आंगिक एवं मानसिक संघटन तथा अज्ञान जैसे कारकों के चलते ध्वनियों का सम्यक अनुकरण नहीं हो पाता, जिसके कारण कई बार संगीत में भी परिवर्तन हो जाता है। इस अपूर्ण अनुकरण के लिये वक्ता तथा श्रोता दोनों समान रूप से उत्तररदायी माने जा सकते हैं तथा यह हम देख चुके हैं कि यह अपूर्णता जानबूझकर नहीं होती बल्कि शारीरिक तथा मानसिक सीमाओं के द्वारा नियंत्रित होती है। अपूर्ण अनुकरण क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होता जाता है। इस तरह कई पीढ़ीयों के बाद जब अनुकरण की अपूर्णता काफी व्यापक रूप ले लेती है तब स्वाभावतः संगीत में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है।

2. **मनोवृत्ति की भिन्नता**– जिस प्रकार हर व्यक्ति के सोचने की क्षमता अलग–अलग होती है उसी प्रकार हर कलाकार की मनोवृत्ति भी अलग होती है तथा इस भिन्न मनोवृत्ति का प्रभाव भी उनके संगीत पर अवश्य पड़ता है। तथा यह देखा जाता है कि एक ही राग को अलग–अलग कलाकार अपनी मनोवृत्तियों के हिसाब से अलग–अलग ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं। जैसे यदि कोई कलाकार नियमों के प्रति अधिक सजग होता है तो वह अपने संगीत में भी नियमों को विशेष वरीयता देता है तथा कोई कलाकार रोचकता को महत्वपूर्ण समझता है तो वह अपने संगीत में नियमों का विशेष आग्रह नहीं करता बल्कि उसे रोचक बनाने के लिये नियमों का उल्लंघन भी कर देता है। यह सभी करण धीरे–धीरे संगीत में भी परिवर्तन के रूप में दिखाई देने लगते हैं। संगीत में विभिन्न घरानों का जन्म के मूल में भी मनोवृत्ति की भिन्नता ही होती है। चूँकि हर कलाकार की मनोवृत्ति अलग होती है, इसीलिए इसे भी संगीत के परिवर्तन के अभ्यंतर कारणों के अंतर्गत ही रखा जाना चाहिए।

3. **प्रयत्न–लाघव**– प्रयत्न–लाघव का सीधा अर्थ होता है– प्रयास में कमी अर्थात् अधिक श्रम न करना। न्यूनतम श्रम से अधिकतम लाभ उठाने की मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है अर्थात् मनुष्य हमेशा से यह चाहता है कि कैसे कम मेहनत में अधिक–से–अधिक लाभ हो जाये। कई बार यह भावना सांगीतिक प्रयोग को भी प्रभावित करती है एवं इसके कारण भी संगीत में कई उल्लेखनीय परिवर्तन आये हैं। उदाहरणार्थ– तबले में तीनताल के ठेके को अधिक लय में बजाने में कलाकारों को बहुत श्रम एवं बहुत अधिक अभ्यास करना पड़ता है जो सभी कलाकार नहीं कर पाते हैं परिणामस्वरूप तीनताल के ठेके में कई परिवर्तन हो गये तथा द्रुत लय में लगभग सभी कलाकार अपनी–अपनी तरह से इस ठेके का वादन करते हैं एवं इसी प्रकार अति द्रुत लय में भी ध्वनि साम्य के आधार पर कोई ऐसा ठेका बजाया जाता है जो सुनने में ना धिं धिं ना का ही आभास देता है परंतु वास्तव में वह तीनताल का ठेका होता नहीं है। इस प्रकार के कई उदाहरण संगीत में देखने को मिलते हैं। ये सब प्रयत्न–लाघव के अंतर्गत ही आते हैं।

4. **सादृश्य**– किसी प्रयोग को देखकर, उसके मूल में गये बिना उसी के आधार पर दूसरा प्रयोग कर बैठना सादृश्य के अंतर्गत आता है। इसे एक तरह से प्रयोक्ता के अज्ञान का परिणाम कहा जा सकता है। संगीत एक गुरूमुखी विद्या है तथा यह आवश्यक है कि इसकी हर एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी को गुरूमुख से सावधानीपूर्वक सुनकर प्राप्त किया जाना चाहिए परंतु कई बार ऐसा देखा जाता है कि कुछ विद्यार्थी दूसरे अन्य कलाकारों की मंचीय प्रस्तुति से प्रेरणा लेकर या ऐसा कहा जाय कि सीखकर उसे आत्मसात कर लेते हैं जिस कारण सीखे गये पाठ में त्रुटि की संभावना बनी रहती है। चूँकि सादृश्य के आधार पर किये गये परिवर्तन अज्ञानमूलक होते हैं इसीलिए उन्हें आभ्यंतर कारणों के अंतर्गत रखना ही उचित है।

5. **व्यक्तिगत रूचि एवं प्रयोगवादी मनोवृत्ति**– कई बार संगीतज्ञ अपनी व्यगक्तिगत रूचि एवं प्रतिभा से संगीत में कुछ नये प्रयोग भी करते हैं तथा इन प्रयोगों में

से सभी तो सफल नहीं होते परंतु कुछ अवश्य ऐसे भी हो जाते हैं जिनका अनुकरण अन्य संगीतज्ञों द्वारा भी होने लगता है। चूँकि यह प्रयोगवादी मनोवृत्ति हर कलाकार में अलग–अलग होती है इसीलिए इसे भी आभ्यंतर कारणों के अंतर्गत ही रखा जायेगा।

उपसंहार–

उपरोक्त विवेचन–विश्लेषण से स्पष्ट रूप से यही तथ्य निकलकर सामने आता है कि ऐसे कई महत्वपूर्ण कारक होते हैं जिनके कारण संगीत सहित सभी ललित कलाओं की प्रकृति स्वाभाविक रूप से परिवर्तनशील होती है एवं इनके किसी भी प्रचलित स्वरूप का स्थाई रूप से ध्रुवीकरण नहीं हो सकता अर्थात् जिस प्रकार समय के साथ मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों की प्रकृति में परिवर्तन आ जाते हैं उसी प्रकार कलाएँ भी समय के साथ–साथ अपने मूल स्वरूप में परिवर्तन करती रहती हैं। कलाओं की यही परिवर्तनशील प्रकृति ही उन्हें समय से निरपेक्षता प्रदान करती है। अतः संगीत में भी Change is only constant वाली कहावत चरितार्थ होती है। यद्यपि कब, क्या, परिवर्तन होगा यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता परंतु कुछ न कुछ परिवर्तन होगा यह निश्चित रूप से माना जा सकता है। यद्यपि कलाओं में परिवर्तन की यह प्रक्रिया अवश्यंभावी होती है तथापि इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि किसी कला के आधारभूत मौलिक सिद्धांतों में भी परिवर्तन होता है। बल्कि किसी भी कला के आधारभूत मौलिक सिद्धांत (स्वर, लय, ताल) आदि शाश्वत होते हैं एवं किसी भी युग एवं परिस्थिति में परिवर्तनशील नहीं होते।

वर्तमान युग विज्ञान के प्रभुत्व का युग है तथा कलाओं पर भी इसके प्रभुत्व के लक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं जिसका सबसे बड़ा एवं प्रत्यक्ष साक्ष्य यही है। एक ओर जहाँ प्राचीन समय में कलाओं के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की गति बहुत अधिक मंथर होती थी वहीं आधुनिक समय में यह परिवर्तन बहुत ही तीव्र गामी होते जा रहे हैं। मानव जीवन पर मशीनों आदि के बढ़ते प्रभाव के कारण जन रुचि में भी बहुत शीघ्रता से परिवर्तन देखा जा रहा है फलस्वरूप कलाओं के प्रचलित स्वरूप में भी परिवर्तन जल्दी–जल्दी देखा जाने लगा है।

निष्कर्षतः हम यही कह सकते हैं कि संगीत की प्रकृति भी अन्य ललित कलाओं की भांति परिवर्तनशील ही हुआ करती है तथा इन परिवर्तनों को किसी निश्चित काल–क्रम में बांधना संभव नहीं है। साथ ही इन परिवर्तनों के संपूर्ण कारणों को भी सूचीबद्ध करना असंभव ही है तथापि बहुत दूर तक ऊपर उल्लिखित कारणों को ही परिवर्तन के प्रमुख प्रायोजक कारण समझा जा सकता है एवं लगभग अस्सी प्रतिशत कारणों को इन बिंदुओं के अंतर्गत समायोजित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, डॉ. निधि, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत एवं समाज, राधा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2016
2. कौर, डॉ. भगवन्तय, परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत : गायन एवं वादन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्री ब्यूटर्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2002
3. जौहरी, सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन्सो, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2003
4. शर्मा, प्रो. स्वतन्त्र, भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, सर्वोदय नगर, अल्लापुर, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण– 2014
5. सिन्हा, डॉ. ज्योाति, भारतीय शास्त्रीय संगीत में संगीत–सेवियों की स्थिति, ओमेगा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2011
6. चन्द, डॉ. हुकम, आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, संस्करण– 1998
7. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण– 1991
8. मनकान, डॉ. गुरमीत सिंह, उत्तर भारतीय संगीत (उत्तर भारतीय संगीत के विकास का क्रमिक अध्ययन), महामाया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण– 2006
9. चौबे, डॉ. सुशील कुमार, हमारा आधुनिक संगीत, अवध पब्लिशिंग हाउस, नव ज्योति प्रेस, पानदरीबा, लखनऊ, तृतीय संस्करण– 2005
10. बैनर्जी, डॉ. असित कुमार, हिन्दुस्तातनी संगीत : परिवर्तनशीलता, शारदा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, संस्करण– 1992
11. श्रीवास्तव, पं. हरिशचंद्र, संगीत निबंध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, प्रयागराज, एकादश आवृत्ति– 2015
12. मिश्रा, डॉ. जया, वर्तमान सामाजिक परिवर्तन में संगीत की नई भूमिका, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, सर्वोदय नगर, अल्लांपुर, प्रयागराज, प्रथम संस्करण– 2012
13. माथुर, डॉ. निशि, भारतीय संगीत कलाकार (वंशानुक्रम और पर्यावरण), पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, प्रथम संस्करण– 2001

The Dashabatar Tas of Bishnupur : A Form of Visual Art where Religion, Culture, Entertainment Assimilated in Medieval Bengal

Ramyajit Sarkar*

Abstract

The Malla kings ruled a vast land of south west Bengal centring their capital at Bishnupur for over thousand years. During the Mogul period, The Malla kings by helping Moguls to subdue the Pathans in Bengal, became associated with the Mogul court and became known about Mogul culture. In the sixteenth century, Gaudiya Vaishnavism reached Bishnupur. There was already a cultural flow in Bishnupur. The assimilation of three cultures gave a new current which developed art, architecture, literature, music and other parts of culture and society. The Dashabatar Tas was one of their inventions where the game of cards became merged with Vaishnavism and Lord Vishnu whose ten incarnations are the main subject of the Dashabatar Tas. In this paper, I will be trying to focus on this unique art of Bishnupur.

Keywords : *Bishnupur, Dashabatar cards, Faujdar, Malla kings, Rama Body*

Research Methodology: *Mainly, my paper deals with a unique art of Bishnupur i.e. Dashabatar Tas. So I have to take help from the artisans of it mainly SitalFauzdar and saw the style and dedication of them to make the cards. I have also taken help of some secondary sources to write the paper.*

Study Area

The study mainly focuses on the culture of Bishnupur, one of the most important centres of culture in medieval Bengal which was the capital of the Malla kings who ruled a vast land of south west Bengal and under their patronage, the cultural arena of south western Bengal developed. Dashabatar Tas is one of the most important arts, developed in Bishnupur which is not only part of art, but was also a part of Bengal's lost games and also a part of Bengal's culture. The article is a deep research on the history of Dashabatar Tas through the passage of time.

Discussion

Bishnupur in Bankura district is a treasure trove of art and architecture of Bengal. Its diversity and prosperity have made Bishnupur popular all over the world. Dashabatar Tas is one of the jewels in that treasure trove. The speciality of Dashabatar cards is not only in playing cards but also in the beauty of the cards. Malla kings used to play cards in their leisure time. The making of Dashabatar Tas (Cards) is almost same of making patachitras.

Pata chitra to Dashabatar Cards

Pata chitra is one of the ancient arts of Bengal.The essence of painting is to bring out the shape of the object in the embrace of colour on the pot with the help of brush. The only painting of folk style follows the painting method of Tulichitra.

Many scholars believed that the invention of Patachitrafrom religious consciousness - the experts in the historical research have revealed its meaning. Rabindra Majumdar wrote that the story of Buddha's biography and Jataka were told in Patachitra to promote Buddhism. He is introduced in the play

*M.A. (Student), History Department, Saldiha College, Bankura

'Mudrarakshas' by Vishakhdatta of the 8th century. He also said that Patidars in Bengal in the middle Ages re-introduced it to promote Vaishnavism. According to him, Krishnalila gained prominence in Pot's imagery. According to Gurushadai Dutta, Bengali Patachitra and Patua Sangeet are spiritual. Jampat is mentioned in the 7th century poem 'Harshacharita' by Banabhata. The Patuas of Bengal are showing their composure at the end. He thought that the potters of Bengal were the successors of the painters of the Buddhist era. Dr. Dineshchandra Sen said that the ancestors of the Patuas were Buddhist monks with the title of 'Maskari' who painted Patachitra and propagated Buddhism from the time of Buddha. It would be easier to preach religion with the help of pictures to people of different languages. The pictures are drawn with the help of color picker.

In Bishnupur, the patuas also began to draw pats from the religious consciousness by patronage of the Malla kings. Still date during worship of Devi Durga in Bengali month of Aswin-Kartik, three pats of Devi Durga killing the demon Mahisashura with her two sons Ganesha and Kartika and two daughters Laxmi and Saraswati are taken to Mrinmoyee temple of Bishnupur to worship. It is noted that Devi Mrinmoyee was the tutelary deity of the Malla dynasty. These three pats of Devi Durga are worshipped as "BoroThakurani", "Mejo Thakurani" and "Choto Thakurani". Not only in Bishnupur, there has been tradition of worshipping Devi Durga in pat in various zamindar families of Bankura district who mostly were the feudal kingdoms under the Malla kingdom. When Gaudiya Vaishnavism reached in Bishnupur in sixteenth century, the Malla kings became devotees of lord Krishna and Sri Radha who are the incarnations of lord Bishnu and Devi Laxmi and tried to take various incarnations of lord Vishnu in cards which turned out to be Dashabatar cards in Bishnupur.

Dashabatar Images in the Temples of Bishnupur

During Malla period, the Malla kings built a large number of temples in various parts of their kingdom. Though there are temples of Shiva, Shakti but Vaishnava temples outnumbered them. Most of these temples are made of brick or laterite stone. Bishnupur, the capital of the Malla kingdom also showed building of a large number of temples. The temples of Bishnupur began to build from seventeenth century. The temples are mostly of ratna or chala styles of Bengal architecture. There are terracotta panels in the walls of the temple. The scenes of these terracotta panels are mostly from Vaishnava scripture. Dashabatar images are most important of them. There is hardly any temple which does not have these Dashabatar images in the terracotta panels of the walls of the temple. The style of the images vary temple to temple like in most cases in the image of Baraha avatara, he is seen to hold the Earth in its general round form by his nose, but in the Modonmohan temple, in the terracotta panel of the Baraha avatara, the Earth is seen as the form of a women i.e. devi Bhudevi. So it is clear that Dashabatar images are very popular in Bishnupur during Malla period.

History of Dashabatar cards

DashabatarTas is an almost forgotten chapter in history of Bengal art. It started in Bishnupur under the patronage of the Malla kings. It is generally believed to have originated in Bishnupur during the time of the Malla king Bir Hambir. Two important events in the history of the Malla dynasty of Bishnupur took place during the reign of Bir Hambir, the 49th Malla king of the dynasty. One is the friendship between hero Hambir and Akbar and his general Man Singha and on the other hand Srinivas Acharya's arrival at Bishnupur. A great Vaishnava saint of late medieval Bengal was

Srinivas Acharya, who is recognized by many in the Bengali Vaishnava community as the second Chaitnya. Hero Hambir and his wife Sulakshana came in contact with him and accepted Vaishnavism.

On the other hand, due to his connection with the Mughal court, Bir Hambir became aware of the game of cards and his adoption of Vaishnavism gave the game a unique form, giving rise to Dashabatar cards.

However, Haraprasad Shastri thinks that this sport was born in the earliest period of the Malla kings about twelve hundred years ago. He says, "I full believe that the game was invented about eleven or twelve hundred years before the present date."Shastri mentioned that this card game originated about eleven hundred and twelve years ago. As such, the origin of Dashabatar cards is the seventh-eighth century. He gave few arguments in support of this decision. First of all, it is seen in the traditional card list that Jagannath or Buddha is placed ninth, before Kalki. But the place of Jagannath or Buddha is 'fifth' in the avatar arrangement of cards. The traditional style of playing cards was introduced in the 12th century under Jayadeva or in the 11th century under Kshemendra. The original Dashabatar cards are even older than that. It seems that the Dashabatar card was introduced at a time when Buddha was considered the fifth avatar among avatars. The reason for being considered as the fifth incarnation of Buddha is consistent. Buddha image i.e. Jagannath image in Dashabatar cards has only head and hands. So he can comfortably occupy the space between Nrisimha (half-male and half-animal) and dwarf (full male). Therefore, Jagannath i.e. Buddha's place is fifth in the evolution from the lowest living fish to the full human. Secondly, the symbol of Buddha in the Dashabatar card is the lotus flower. So the Dashabatar card was developed at a time when the Buddha became known as 'Padmapani'. The lotus became his symbol. It happened between 800 and 1000 AD during the period of dominance of Mahayana Buddhism in Bengal. Therefore, the Dashabatar cards were invented by any earlier Malla kings before Bir Hambir as Adi Malla or Raghunath Malla founded the dynasty in 695 A.D.

According to one opinion, Dashabatar card came from 16th century as a name change of "Dashabatar Ganjika" popular in states like Rajasthan, Odisha, Madhya Pradesh, Andhra Pradesh etc. According to another view, the Mughal royal court's affinity with the Malla king Bir Hambir followed their customs, sports practices, etc., resulting in the development of Dashabatar cards in Bishnupur. However, the Dashabatar card, though associated with the Mughal court, became the dominant form of the Malla kings. Now the question is why did Veer Hambir become interested in creating Dashabatar cards? One purpose of this sporting invention must have been entertainment; another purpose was probably to promote Vaishnavism among the inhabitants of the Mallabhum state. But the Malla king, initiated into Vaishnavism, may have practiced this sport as an alternative to cruel pastimes like hunting or killing animals.

Dashabatar Cards and Its Artisans

The Dashabatar card is based on the ten incarnations of Lord Vishnu. These are Matsya, Kurma, Baraha, Nrisimha, Vamana, Balarama, Parashurama, Rama, Buddha (alternately Jagannath) and Kalki. Twelve cards are assigned to each incarnation.Matsya avatar, Nrisimha avatara, Balarama avatara are white coloured. The card of Rama is associated with Hanuman. Mainly Matsya, Kurma, Baraha, Nrisimha, Jagannath are with four hands where Vamana, Rama, Parashurama, Balarama and Kalki are with two hands. A deck consists of one hundred and twenty cards. There are twelve cards for each incarnation. So there are 10 * 12 = 120

cards for ten avataras. Among the twelve cards assigned to each avatara, the first card is the king; the second card is the wazir. The king card has a picture of the avatar seated in deul. On either side of the avatar are two standing companions of the avatara. The wazir card contains the image of the avatara only. The other ten cards of each suit use symbols from one to ten of that avatara. The symbol of the Matsya avatara is Fish, the symbol of the Kurma avatara is tortoise, the symbol of the Baraha avatara is conch, the symbol of the Nrisimha avatara is chakra or the flower of the banana, the symbol of the Vamana avatara is kamandulu, the symbol of Balarama is club, the symbol of Parashurama is battle axe, the symbol of Rama is arrow, the symbol of Jagannath avatara is lotus and the symbol of Kalki avatara is sword.

The Faujdar family of Bishnupur got the chance to make Dashabatar cards. The first craftsman in the family was Kartik Faujdar. He got the patronage of the Malla king Bir Hambir. It is said that Bir Hambir ordered him to make this type of cards. Now Shital Faujdar and Bidyut Faujdar make these cards. So far these cards have been made by artisans of the Faujdar family of Bishnupur. Artists from the Faujdar family of Bishnupur are experts in making these cards. They also make various types of pots especially the Durga pats. The three pats of the Mrinmoyee temple are drawn by the artisans of the fouzdar family. They also build different types of earthen sculptures. The women of the Faujdar family build a special type of earthen doll i.e. the Hingul doll. But the Dashabatar cards are very special and unique and globally famous.

Making of Dashabatar Cards

The clothes are arranged in three folds and glued together. Gum is tamarind gum or gum. The tamarind gum is well coated with clay and dried. The clay coating is given several times to dry. After this dries, a layer of chalk dust is applied to the cards. Then the surface is smoothed as far as possible by rubbing with sand stone. This is called decking. It takes a lot of time to prepare the soil. After the soil is formed, they are cut in cycles. The cards are then cut into 4.5-inch radius circles. Then the painting begins. All images are drawn from ten to ace along with various avatars, their viziers and symbols. The pictures are painted with various colours and the colours are naturally prepared. After the painting is finished, the back of the card is made by drawing vermilion and gala. On one side of the card is the picture, and on the other side this mat has a coating of vermilion and gall. It's not too much to call the cards a suit. The cards are painted on a different coloured background, keeping a strange harmony of all the different colours.

How to play Dashabatar Cards

Now let's talk about the process of playing Dashabatar cards. The game is usually played by five players. The game starts with the player who gets the most points on the first card that is dealt to him in the deal. He takes the whole bundle of cards and divides it into two parts by his colleague sitting on the right and deals four cards at a time starting from the bottom half of a bundle. Thus each player gets twenty four cards. Whoever gets the card of Rama or Raghunath avatar, rules the game. It should be noted here that the game starts in the morning with the cards of Ram. The evening begins with a card game of Nrisimha Avatar. At night the game begins with the playing cards of Matsya Avatar. On a rainy day, Kurma started playing Avatar. The starter receives two cards from each player at a time. He then plays any other avatar he holds and receives one card from each player each time. Then when all his avatars are exhausted, he instructs the others to play a particular avatar. The player holding that avatar plays and receives a card from each player. The

second player plays another avatar he holds or if all players have exhausted all avatars, he plays a minister. If the other players have other avatars in hand, even though he has nothing, he directs the other players to play a specific avatar. Thus the play starts from highest to lowest cards. At the end all players count their cards, winning during the game. Each player must win at least twenty-four cards; otherwise he would be at a loss, as he would have to win more than twenty-four cards and buy cards from others.

Conclusion :

Nowadays people don't play Dashabatar cards. They buy it to decorate the house. But, the Malla kings used them for entertainment. Kings used to play this game with their queens or courtiers. Queens and other royal women also played the game among themselves in the household. Sometimes, at the beginning of the game, each card was assigned a certain value, but this never turned into gambling. The money won in the game was used for the overall enjoyment of the players. After the arrival of Vaishnavism in Bishnupur, the Malla kings tried to spread Vaishnavism in every sphere of life. They built temples for Vaishnava deities. They renamed various places in their kingdom after various Vaishnava centres and places associated with Sri Radha and Sri Krishna. In short, they tried to make Bishnupur a second Vrindavan. Hence Jayananda, the poet of Chaitnya biographical literature, called Bishnupur, the capital of the Malla kingdom, "Gupta Vrindavan". Dashabatar cards were also an example of this effort of the Malla kings to spread Vaishnavism in every part of their kingdom. But not only spreading the Vaishnavism and its ideal nonviolence, the art of these cards are very unique which reflects that the tradition of painting these unique cards has still go on through the passage of time from medieval or its early period till date. In today's technology-centric world, we are running in a rat race, slowly forgetting our old traditions. But to face the present and the future well, we must remember our heritage. Dashabatar cards are also our pride and a unique art form which can be seen from different perspectives. It is our duty to save this heritage to provide it for our future generation to tell them our glorious cultural past.

References :

1. Chandra, Manoranjan. *Mallabhum Bishnupur*. Kolkata : Mitra And Ghosh Publishers, 2002. Print.
2. Mallik, Pada, Abhaya. *History of Bishnupur Raj*, Kolkata: Kuntaline Press, 1921. Print.
3. Singha, Maniklal. *Paschima Rada Tatha Bankura Sanskriti*. Vishnupur, 1384 B.S. Print.
4. Malley, O', L.S.S. *Bengal District Gazetteers Bankura*. Kolkata: The Bengal Secretariat Book Depot. 1908. Print.
5. Bandyopadhyay, Jitendranath, *Bankurar Lokjiban o Sanskriti*. Kolkata: Tathya o Samskriti Bivag, Paschimbanga Sarkar, 2004. Print.
6. Ghosh, Benoy, *Paschimbanger Sanskriti*.vol – 1. Calcutta: Prakash Bhaban, 1950. Print.
7. Mukherjee, Radhakamal. *The Culture and Art of India*. London: George Allen & Unwin, 1959. Print.
8. Samanta, Rabindranath. *SilparupamaiBakura*, Kolkata: Pustak Bipani, 1991. Print.
9. Karmakar, Fakirnarayan, Sree. *Bishnupurer Amarkahini*. Kolkata: Anima Prakashani,1394 B.S. Print.

संगीत शिक्षा के उपागम

डॉ के.ए. चंचल** **विनय कुमार***

शोध सारांश

शिक्षा मानव की सर्वांगीण उन्नति का एक ऐसा आधार है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास का कारण बनती है। किसी बालक में अंतर्निहित जन्मजात शक्तियों का परिष्कार कर के उनमें से दोषपूर्ण शक्तियों का निराकरण कर तथा आंतरिक गुणों को निखार कर शिक्षा ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। तथापि बालक से लेकर वृहद तक सभी प्राणी अपने–अपने अनुसार आंतरिक सुख के लिए स्वतः ही गा–बजा लेते हैं। परन्तु एक संगीतज्ञ शिक्षण के उपरान्त ही उसको परिष्कृत रूप में अपनाता है, यद्यपि संगीत शिक्षा का लक्ष्य मानव का सर्वांगीण विकास करना शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व नैतिक विकास कर उसे कला–प्रेमी, स्वावलम्बी व विकासशील बनाता है।

वस्तुतः मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षण एक अविछिन्न भावात्मक सत्ता है। इसके अभाव में मनुष्य के मन की अमूर्त उदात्मक भावनाएँ न तो प्रस्फुटित होती है, न मनुष्य की कलात्मक आकांक्षाएँ तृप्त हो पाती है। संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांस्कृतिक परंपराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। यह आदिम काल से ही जन–जीवन के आत्मिक उल्लास और सुख अनुभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का विशिष्ट माध्यम रहा है। अतः संगीत जैसी सम्मोहक कला जो मानव जीवन से इतना सामीप्य रखती है, की शिक्षा प्राप्त करना अति आवश्यक है।

मुख्य शब्द : *संगीत, शिक्षा, मानव, संस्थागत, संस्कृति, व्यक्ति*

प्रविधि : *द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित कर शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

भूमिका

मानव जीवन में शिक्षा का बहुत महत्व है। शिक्षा का कोई–न–कोई उद्देश्य होता है। शिक्षा के उद्देश्य छात्र–छात्राओं को अपनी सफलता का ज्ञान कराने तथा सीखने के लिये किये गये प्रयासों को बढ़ाने के लिए प्रेरित करते है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आत्म–चिंतन तथा आत्म–ज्ञान माना गया है। मानव के आंतरिक गुणों का विशलेष्णात्मक अध्ययन तथा समाज की दृष्टि से नैतिक कर्तव्यों का पालन करना व जीवन की परिणीति के रूप में परमात्मा प्राप्ति ही शिक्षा का उद्देश्य माना गया है। उद्देश्य एक चेतनाभूत प्रक्रिया है जिसको प्राप्त करना उस विषय के अध्ययन का मुख्य ध्येय है। लक्ष्य–निर्धारण कर लेने से योजना क्रमबद्ध होती है। किसी भी विषय के अध्ययन के लिए उद्देश्यों को देखते हुए ही योजना बनाई जाती है।

डा. वी आर आठवले के शब्दानुसार, शिक्षा का मतलब अनुकरण नहीं बल्कि व्यक्ति का मुक्त विकास करना और स्वतंत्र विचार के लिए उद्यत करना शिक्षा का उद्देश्य है।[1]

गुरूदेव रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि वह सत्य की खोज कर सके तथा उसे सर्वत्र व्यक्त कर सके।[2]

ऐडम्स के अनुसार, शिक्षा एक सुनियोजित प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति के विकास करने के लिए उस पर दूसरे व्यक्ति का मन, वाणी एवं कर्म के द्वारा प्रभाव पड़ते रहता है।[3]

संगीत शिक्षा न केवल व्यक्तिगत रूप से वरन् सामूहिक रूप से भी महत्वपूर्ण है। समूहगान, समूह नृत्य तथा वाद्यवृन्द आदि के माध्यम से उत्पन्न आनन्द परस्पर सहयोग की भावना जागृत करता है तथा समाज में एक–दूसरे के प्रति प्रेम व सौहार्द की भावना जागृत करता है तथा सामाजिक सम्पर्क के महत्व को भी दर्शाता है। व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति के अन्दर ज्ञानात्मक, क्रियात्मक व भावानात्मक तीनों विकास

*शोध छात्र, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशक, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

का परस्पर संतुलन हो। संगीत का सम्बन्ध यद्यपि तीनों से है परन्तु प्रमुख रूप से भावानात्मक विकास से है। संगीत शिक्षा से साधना, शक्ति व संयम पल्लवित होता है। कंठ संगीत की प्रवाहात्मकता दीर्घ श्वांस प्रक्रिया से, वाद्य संगीत अंग विशेष में संचालन की प्रक्रिया से तथा नृत्य शारीरिक अंगों व भाव–भंगिमाओं की प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध रखता है, परन्तु भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए यह तीनों ही शिक्षार्थी की वैयक्तिक प्रतिभा व कला–कौशल की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि शारीरिक व मानसिक वृत्तियों का समन्वय ही भावनात्मक व रचनात्मक क्रियाशीलता को परिपक्व कर आत्मभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है।[4] संगीत–शिक्षा मानव की मूल प्रवृत्तियों को सही मार्ग दे कर उसका सामाजिकरण करती है। यह एक ऐसा आधारभूत ज्ञान है जिसके चारों ओर ज्ञान की अन्य शाखाएँ विकसित हुई है, संगीत शिक्षण भाषा, साहित्य, दर्शन, धार्मिक चेतना, छंद शास्त्र, अलंकार शास्त्र इत्यादि का ज्ञान अपरोक्ष रूप से प्रदान करता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिसके अर्न्तगत कल्पना, सूझ, सन्तुलन, स्वाभाविक, आत्मभिव्यक्ति, आत्म नियंत्रण, गति, व्यायाम तथा अन्य गुण समाहित है। संगीत शिक्षा का समाज के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहा है। भारत में समय–समय पर जनमानस को धर्म, अध्यात्म, भक्ति तथा अन्य प्रकार की उपदेशात्मक शिक्षा या प्रेरणा संगीत के द्वारा दी जाती थी। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, महाकाव्यों आदि के आधार पर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में संगीत शिक्षा एक अनिवार्य विषय के रूप में था।

संगीत–शिक्षा, उत्तम नागरिक अर्थात् सुसंस्कृत व्यक्तित्व निर्माण करने के लिए आवश्यक मानी जाती थी। संगीत शिक्षण से शारीरिक बुद्धि का विकास, भावों का मार्गदर्शन, धैर्य प्रदर्शन की योग्यता आदि के उद्देश्य प्राप्ति के लिए दृढ़ इच्छा का विकास होता है। इसी कारण जीवन के साथ शिक्षा के समुचित सामंजस्य के लिए शिक्षा में संगीत की व्यापक व्यवाहिरक शिक्षा को अनिवार्य माना गया है। संगीत शिक्षण से विद्यार्थियों में साधना, शक्ति व संयम विकसित होता है तथा एक सुसभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की गरिमा के परिचायक के रूप में संगीत का प्रयोग होता है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक संगीत को अपने पाठ्यक्रम का विषय बनाया गया है। यद्यपि संगीतशिक्षा का ध्येय संगीत का व्यापक प्रचार तथा प्रसार करना है, साथ ही, इसी के साथ प्राथमिक स्तर पर संकल्पनाओं के विकास के लिए, माध्यमिक स्तर पर भावनात्मक विकास के लिए तथा स्नातक/स्नातकोत्तर स्तर पर व्यवसायिक तथा अनुसंधान के दृष्टिकोण से संगीत शिक्षा का अत्यन्त महत्व है। संगीत विषय को कला रूप से बदल कर व्यवसायिक रूप दिये जाने के कारण संगीत शिक्षा के रूप में भी आज काफी मात्रा में बदलाव हुए हैं। संगीत जैसे पारम्परिक विषय की शिक्षा में बदलाव दिखाई दे रहे हैं। बदलती परिस्थितियों के अनुसार छात्राओं को अत्याधुनिक शैक्षणिक सुविधाएँ संगीत संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जा रही है। संगीत शिक्षा की वर्तमान शिक्षा पद्धतियों में पारम्परिक गुरू–शिष्य–परम्परा के साथ ही, दूरस्थ शिक्षा प्रणाली, वर्चुअल शिक्षा, मुक्त शिक्षा, मिश्रित शिक्षा पद्धति व भारतीय संस्थागत शिक्षा–प्रणाली के माध्यम से संगीत शिक्षा से विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे है।

गुरू शिष्य परम्परा – प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक इस पद्धति का उपयोग संगीत–शिक्षा हेतु किया जा रहा है। संगीत गुरू–मुखी विद्या होने के कारण गुरू के सामने बैठ कर विद्यार्जन करना अति उत्तम माना गया है। मध्य काल में प्रचलित घराना पद्धति में भी इसी प्रकार की परम्परा रही है।

दूरस्थ शिक्षा – इस प्रकार की शिक्षा–पद्धति में छात्र शिक्षा प्राप्त कर संस्था या विश्वविद्यालय से परीक्षा उत्तीर्ण कर उपाधि प्राप्त करता है। वर्तमान समय में राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय ग्वालियर, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय व इग्नु आदि से इसी पद्धति द्वारा उपाधि प्राप्त होता है।

वर्चुअल शिक्षा – आधुनिक समय में संगीत शिक्षा प्राप्त करने का यह लोक माध्यम है। इसे 'ई लर्निंग' भी कहा जाता है। वर्तमान समय में ई लर्निंग के माध्यम से सुदूर स्थानों में रहने वाले व्यक्तियों से इंटरनेट के विभिन्न प्रकार के ऐप्स के द्वारा गूगल मीट, टीच मिण्ट आदि के माध्यम से व्यक्ति सीखने व सिखाने का कार्य करता है। यह पद्धति कोरोना काल में अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई।

मिश्रित शिक्षा पद्धति – इस शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी गुरू–शिष्य–परम्परा, घरानेदार, संस्थागत संगीत शिक्षा,

भारतीय संगीत संस्थागत शिक्षण प्रणाली द्वारा प्राप्त संगीत शिक्षा (BPA, MPA, Ph.D.) व अन्य माध्यमों से प्राप्त संगीत शिक्षण पद्धति इस मिश्रित शिक्षा पद्धति के अंतर्गत आती है।

इस समय देश में संगीत शिक्षा हेतु विभिन्न प्रकार में विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा दी जा रही है –

– केवल संगीत शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में केवल संगीत की शिक्षा दी जाती है, विज्ञान इंजीनियरिंग आदि नहीं। जैसे कि इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़, राजा मानसिंग तोमर संगीत विश्व विद्यालय ग्वालियर, भातखण्डे विश्वविद्यालय, लखनऊ आदि।

– अनेक विश्वविद्यालयों में संगीत विषय के अध्ययन के साथ समस्त विज्ञान श्रेणी, मानविकी श्रेणी, वाणिज्य श्रेणी, पत्रकारिता जनसंचार के साथ विभिन्न भाषाओं का अध्ययन आदि होता है, जैसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, इन विश्व विद्यालयों में संगीत विषयों के साथ अन्य विषयों का अध्ययन होता है।

निष्कर्ष :

यह कहा जा सकता है कि संगीत शिक्षा स्वतंत्र भारत की विशिष्ट उपलब्धि रही है। जहां संगीत घरानों की चहारदीवारी से निकल कर माध्यमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा तथा शोध आदि हेतु जन–साधारण के लिए उपलब्ध हुआ। वर्तमान समय में सरकार की उन्नत नीतियों के फलस्वरूप संगीत संबन्धी विभिन्न संस्कृति मंत्रालय की जूनियर/सीनियर फेलोशिप विश्वविद्यालयों में JRF, SRF व IGNCA, NCPA के द्वारा विभिन्न योजनाओं से विद्यार्थी प्रोत्साहित होते रहते है।

सन्दर्भ सूची :

1. संगीत पत्रिका, मार्च 1972, पृ. 98
2. दत्रा डॉ. पूनम, भारतीय संगीत शिक्षा और उद्देश्य, राजपब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 27
3. पाण्डे डॉ. राम सकल, शिक्षा के मूल सिद्धांत, श्री विनोद पुस्तक मन्दीर आगरा, संस्करण 2010, पृ. 18
4. सक्सेना डॉ. मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, हरियाण साहित्य अकादमी चंडीगढ़, संस्करण 1990, पृ. 40

अवधी लोकगीत एवं मनोविज्ञान

डॉ0 रामशंकर** **अशोक कुमार***

सारांश

'लोकगीत' किसी समुदाय की आकांक्षाओं, मनोवृत्तियों और सांस्कृतिक मूल्यों की आलंकारिक अभिव्यक्ति है। जहाँ तक समूहों द्वारा की गई होगी, फिर प्रश्न है लोग मानते थे कि इनकी रचना समूहों द्वारा की गई होगी, फिर धीरे–धीरे ये माना जाने लगा कि ये व्यक्तियों द्वारा रचित होंगे और समुदाय द्वारा प्रयोग किये जाने के दौरान इनमें निरन्तर परिष्कार होता रहा होगा। अवधी लोकगीतों में प्राचीन परम्परा पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोकमानस से सम्बन्ध स्थापित करते हुए वर्तमान समय तक आ पहुँची है। यहाँ लोकगीत जन–जीवन की व्यापकता से जुड़े है, सामान्य जन के बीच है और जिस प्रकार सहज संवाद की भाषा है, वैसी ही स्थिति लोकगीतों में है।

संगीत का रसास्वादन एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। माने हुए मानवीय व्यवहार की एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि कलाकार का कलात्मक दर्शन व श्रोता का संगीत–रसास्वादन दोनों ही मनोविज्ञान के अन्तर्गत आते हैं; क्योंकि मनोविज्ञान द्वारा, मानव के आन्तरिक भावों का अध्ययन किया जाता है। कलाकार व श्रोता दोनों कला द्वारा आन्तरिक रूप से प्रभावित होते हैं यह अंतरंग प्रक्रिया कलाकार, श्रोता व सर्वमान्य मानव में भी प्राप्त होती है।

सूचक शब्द : *लोकगीत, मनोविज्ञान, अवधी, जनमानससस, कला, कलाकार*

प्रविधि : *विभिन्न द्वितीयक माध्यमों का उपयोग कर शोध–पत्र तैयार किया गया है।*

भूमिका–

अवधी लोकगीतों में अवधी भाषा के गीतों का विशेष महत्व रहा है। लखनऊ की सभ्यता बहुत प्राचीन है मोहनलाल गंज तहसील के हुलासखेड़ा और भाटपट् टिकेरिया ऐना और मदोई नामक स्थानों पर हुए उत्खनन में प्राप्त अवशेषों से कुषाण, शुंग व गुप्त आदि राजवंशों के समय हुय सभ्यता, संस्कृति के विकास व समृद्धता पर प्रकाश पड़ता है। उपर्युक्त स्थापनों पर मोरवरियों, गुर्जर प्रतिहारों आदि के सिक्के व अवशेष प्राप्त हुये है।[1] तुर्कों के प्रारम्भिक आक्रमणों के बाद यह क्षेत्र कन्नौज के गहड़वालों और उनके बाद भाट और परसियों के अधीन आया। भारों की सत्ता समाप्त होने पर इस क्षेत्र में राजपूतों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।[2]

अवध अयोध्या का अपभ्रंश है, वह अयोध्या जो पुराणों में माक्षदायिनी सप्तपुरियों में सबसे पहले गिनी गयी है–

अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः।।

अयोध्या को अज्+युद्ध = ब्रह्मा का अजेय नगर या अ+युद्ध= अपराजिता नगरी माना गया है।

ह्वेनसांग के यात्रा–संस्मरण के अनुसार इसका प्राचीन नाम कौशल या कोसल प्रदेश रहा है। 'रघुवंश' के पाँचवे सर्ग और दसवें सर्ग में इसे कालिदास ने उत्तर कोसल का नाम दिया है जिसके मध्य से होकर आदि गंगा, गोमती प्रवहमान है। सन् 1847–48 में लखनऊ के रेजीडेंट सहायक मेजर बर्ड ने अपनी पुस्तक ''अवध की लूट'' में बाल्मीकि रामायण का उदाहरण देकर अवध की महत्ता सिद्ध की है कि यहाँ की भूमि हरी–भरी, वन–उपवनों और फल–फूलों से सम्पन्न रही है जिसकी सारी–की–सारी धरती खेती उपयुक्त है।

अवध की सीमाएँ इतिहास क्रम में कुछ–न–कुछ घटती–बढ़ती रही हैं परन्तु इसकी नयी सीमा मूल अवध को आज भी अभिव्यक्त करती हैं। यह सीमा–निर्धारण भाषा, संस्कृति और परम्परा के आधार पर किया गया है, जिसका क्षेत्र हिमालय की तराई से लेकर गंगा–तट तक

*शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है। इसी क्षेत्र में नैमिष और अयोध्या जैसे प्रसिद्ध तीर्थ हैं और ललिता देवी, पट्टन देवी शक्ति पीठ हैं। यहाँ श्रावस्ती, लखनावती जैसे प्राचीन स्थान थे तो आज फैजाबाद, लखनऊ जैसे नामी शहर भी हैं। कालान्तर में अकबर ने अवध को एक इलाके में दुबारा समेटा जिसमें पाँच जिले या सरकारें थीं। अब इसी क्षेत्रफल को बारह जिलों में बाटा गया है– लखनऊ, बाराबंकी, फैजाबाद, गोण्डा, बहराइच, लखीमपुर–खीरी, सीतापुर, हरदोई, उन्नाव, रायबरेली, सुल्तानपुर तथा प्रतापगढ़।[3]

समय–समय पर अवध में कई शासक हुये है। यहाँ अवध के आखिरी बादशाह वाजिद अली शाह जनता में जान–ए–आलम के नाम से मशहूर थे। उनका समय लखनऊ में ललित कलाओं के चरमोत्कर्ष का युग था, उस समय इस नगर की सभ्यता व संस्कृति अपने पूरे शबाब पर थी। यहाँ की सबसे बड़ी तारीफ यह रही है कि तहजीब का दामन अगर बादशाहों और महलदारों के हाथ में थी तो जनता के हाथों में भी था। शेर कहने की तमीज बादशाह को थी तो उसे समझने की तमीज आम अवाम को भी थी। जान–ए–आलम के शासन–काल में साहित्य, संगीत और कला को पूरा राजाश्रय प्राप्त था, उससे इस दौर में ठुमरी, कत्थक, मर्सियाख्वानी, दास्तानगोई और नाट्याभिनय का यहाँ भरपूर विकास हुआ। अवध में नवाबी के अन्त के साथ ही यहाँ भी जंग–ए– आजादी के शोले भड़क उठे थे। 1857 के गदर में यहाँ की जनता ने एकजुट होकर फिरंगी सरकार से जमकर मोर्चा लिया था। बेगम हजरत महल उस प्रथम स्वाधीनता संग्राम की अविस्मरणीय मिसाल रही हैं और उन्होंने लखनऊ को पतनशील संस्कृति के धब्बों से बेदाग किया।

लखनवी संस्कृति में जो सामाजिक सहिष्णुता है, वही इसका प्राण है। इस भावना भूमि पर ही यहाँ आपसी मेल–मिलाप, स्थापत्य, साहित्य और संगीत के नये आयाम स्थापित किये गये। लखनवी तहज़ीब में हिन्दू, मुस्लिम सभ्यता की गंगा–यमुनी झलक के साथ संवेदना की सरस्वती भी अन्तर्निहित है। इसी संस्कृति की धूम सारे सभ्यता पसन्द संसार में है।[4]

अवधी लोकगीतों में विभिन्न प्रकार के संस्कार गीत पाये जाते हैं जिनका वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. **संस्कार गीतः** सोलह संस्कारों के गीत–गर्भाधान संस्कार के गीत, मुंडन के गीत, यज्ञोपवीत के गीत, विवाह के गीत, द्विरागमन (गौना), मृत्यु संस्कार के गीत।
2. **ऋतु गीतः** बारहमासा, चौमासा, बंसत ऋतु के गीत (फगुआ, चौताल, डेढ़ताल, चहका, चहूता) ग्रीष्म ऋतु के गीत, शिशिर ऋतु के गीत।
3. **श्रम–परिहार के गीतः** जाँत के गीत (जँतसार), निर्वाही (सोहनी), रोपनी, कोल्हुई, पालकी ढोने के गीत, खलिहान के गीत आदि।
4. **जातीय गीतः** अहीरों के गीत, धोबियों के गीत, कहारों के गीत, नाइयों के गीत, तेली–भड़भूजों के गीत, मालियों के गीत दलितों के गीत, जोगियों के गीत, गड़रियों के गीत।
5. **मुस्लिम संप्रदाय के गीतः** हर्षदायक अवसरों के गीत, शोकगीत, (दाहारोना या ताजिए के शोकगीत)।
6. **धर्म दर्शन, वृत अनुष्ठान और पूजन आदि के गीतः** वृत, उपवास, त्योहार, दान, स्नान एवं पर्व आदि के गीत, विभिन्न देवी–देवताओं के गीत, आध्यात्मिक तथा पूजा व दार्शनिक भावना के गीत, मंत्र–तंत्र, जादू–टोना, तथा आवाहन के गीत, शुभ संस्कारों पर मंगल हेतु प्रार्थना के गीत।[5]

लोकगीतों के कुछ उदाहरण–

विवाह गीत

बैठी नौरंगिया की डर, कोयल एक बोलै हो
ए हो बेटी के हियरे के भेद मन्द–मन्द खोलै हो
पहला मगन बेटी माँगै, जो माँगै सो पावै हो
बेटी माँगै अवधपुर राज, जनकपुर नइहर हो
दूसरा मगन बेटी माँगै, जो माँगै सो पावै हो
बेटी माँगै कोसिल्या जैसी सास, ससुर राजा दसरथ हो
तिसरा मगन बेटी माँगै सो पावै हो
बेटी माँगै लखन जैसा देवर सबहीं बीच समरथ हों
चौथा मगन बेटी माँगै जो माँगै सो पावै हो
बेटी माँगै पति राजा राम, अगर फल पावै हो[5]

बसन्त गीत

पिया आई बसन्त बहार, कोयलिया कुहुक उठी
घना धरती ने कीन्हा सिंगार, कोयलिया कुहुक उठी....
महकै लाग दयाखौ अमरइया, बौर मार झुक गई डरियाँ
बहै चहुँ दिसि बसन्ती बयार, कोयलिया कहुक उठी.....
ख्यातन मा सरसों है फूली, पहिर चुनरिया धरती झूमी
द्याखौ फूलि उठी कचनार, कोयलिया कुहुक उठी....
कोयल मीठी तान सुनावै, गुन गुन गुन भँवर गावै
अरे हुलसे है जियरा हमार, कोयलिया कुहुक उठी....
तोहरी बतियाँ रस बरसावै, ढण कै मनवाँ पिरितिया जगावै
घना थिरकि कै नाँच दिखाव, कोयलिया कुहुक उठी[6]....

वर्षा कालीन गीत

''सावन भादों चवै दुखइया पहार हो।
गोरी बिनु सून अँगनवा हमार हो
कतिक आस लै तोहँके बियाहेन,
काहें बइठ्यू नइहरवाँ जाइ हो।
बिजुली चमकै बादर गरजै,
बाबा मोर हरकैं, बिरन मोरा बरजै,
जिनि गावा अइसन सावनवाँ।।[7]

इस प्रकार बहुत सारे अवधी लोकगीत हैं।

इन गीतों में मन का रंजन है तो व्यथा–कथा भी है । जो कुछ कहने–सुनने की आवश्यकता है उसका सहारा ही ये लोकगीत बने हैं। एक मुंडन गीत में स्त्री के लिए क्या निषेध है इस गीत से समझा जा सकता है। यह गीत मुंडन के साथ–साथ कर्णछेदन में भी गाया जाता है। दोनों अवसरों पर माँ को सचेत करता है ये गीत–

जो पूता होव्यौ बारे औ गभुआरे–
लाल पियर नहिं पहिनै तौ माया तुम्हांरि।
कोलिया छेडियाँ न झाँकै तौ माया तुम्हांरि।
माँसु मद्दरिया न खये तौ माया तुम्हारि।
रतुली पलंगिया न सोवै तौ माया तुम्हारि।

हँसते–हँसते औरतें ये गीत गाती हैं और बच्चे की माँ शर्माती–सकुचाती है। ये निषेध गीतों–ही–गीतों में प्रचारित–प्रसारित किये गये। स्त्रियों की प्रतिक्रिया गीतों के माध्यम से कितनी महत्वपूर्ण हो गयी, यह देखने योग्य है। फैमिली प्लानिंग का इससे अच्छा और क्या संदेश हो सकता है। समाज के मूल्य गीतों में ही परिलक्षित हो जाते है। लोकगीत वस्तुतः लोक जीवन के अंग हैं। उनका मूल प्रयोजन जीवन से जुड़ा है। वह जन्म का अवसर हो, विवाह हो या कोई अन्य मांगलिक कार्य, खेती–व्यवसाय हो या अन्य श्रम–साध्य, ऋतु–पर्व हो या अन्य उत्सव किसी–किसी के साथ उनकी लय मिली हुई है, यह बात कोल्हू के गीत की टेक पर भी लागू होती है। निरवाही और रोपनी के गीतों का विराम एक–एक पाती के लिए कार्य पूरा होने की टेक भी झूले की पेंग के साथ तालबद्ध होती है।[8]

हमारी लोक परम्परा में हरा–भरा फलदायक वृक्ष काटना निषिद्ध है, वह जवान पुत्र का प्रतीक है। एक बार महीयसी महादेवी वर्मा से किसी ने कहा कि आपके लॉन का अमुक वृक्ष बहुत बड़ा हो गया है, उसे कटवा दीजिए। महादेवी जी ने कहा कि ''यदि मेरा पुत्र खूब बड़ा हो गया होता तो क्या उसके लिए भी आप ऐसा कहते? मैंने उसे लगाया है, पाला–पोसा है, वह मुझे पुत्र से कम प्रिय नही है''।

यदि विशाल संवेदना अपनी लोक–परम्पराओं से जुड़कर ही व्यक्ति को मिला सकती है। आज वृक्ष कटते जा रहे हैं। जंगल–के–जंगल साफ होते जा रहे हैं क्योंकि मानव की बढ़ती जनसंख्या के लिए आवास और खेती के लिए अधिक भूमि चाहिए, अधिक लकड़ी चाहिए और इसी अंधी विकास–दौड़ में किसी को यह देखने का समय नहीं है कि जो पेड़ कट रहे हैं, वे हरे–भरे हैं फलदायक हैं या ठूँठ हैं। जिस देश में साँझ के बाद फूल–पत्ती तोड़ना भी वर्जित था, वहीं दिन–रात पेड़ों पर आरे चल रहे हैं। हम यह समझते हैं कि दूषित पर्यावरण की रक्षा में वृक्ष सबसे अधिक उपयोगी हैं, पर फिर भी हम इस विध्वंस को रोक नहीं पा रहे हैं। आज की गाँव भी बड़ी–बूढ़ियों के मन में एक हूक उठती है, पेड़ चिड़ियों का बसेरा है उसे मत काटो, पेड़ चिड़ियों का बसेरा ही नहीं, वह उल्लास मात्र का बसेरा है, वह मानव–परिवार की भरी पूरी जिंदगी है। लोकगीतों में साहित्य की संवेदना को ठीक तरह से समझेंगे और उसे अपनाकर फिर से एक सम्पूर्ण जीवन–दृष्टि से समस्याओं का समाधान पाने का प्रयत्न करेंगे।[9]

मनोविज्ञान– जिस समय सारी सृष्टि अंधकार के गर्भ में छिपी हुई थी, मानव व पशु जीवन में कोई अन्तर नहीं था। उसी समय एक आश्चर्य चकित कर देने वाले नाद ने

समूची सृष्टि को गुंजारित कर दिया। यहीं 'अनहत' नाद संगीत सृष्टि का मूलधार है। हमारे वेद, शास्त्र एवं उपनिषद् आदि ग्रंथों का अस्तित्व इसी नाद पर अवलम्बित है। यह अनहद नाद ईश्वर की वाणी से निसृत माना गया है। जिसको हमारे आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुंचे हुए ऋषि–मुनियों ने सुना और ग्रहण किया इसको अक्षय बनाए रखने का श्रेय उन्हीं महापुरुषों को है। उन्हीं तपोजयी साधकों की कृपा से आज तक संगीत की यह महत्तम विरासत हमारे लिए सुरक्षित रह सकी है। आज जो सारे विश्व में भारतीय संगीत की यशोगाथा गूँज रही है वह हमारे पूर्वजों की तपश्चर्या की देन है। 'पंचमस्वरसंहिता' के अनुसार, एक समय शंकर पार्वती संभाषण में लीन थे। अनायास ही भंगवान शंकर के मुख से पाँच रागों की तथा देवी पार्वती के मुख से एक रागिनी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने इन रागों को सीखकर चार उपवेदों की रचना की, वे हैं आयुर्वेद, स्थापत्यवेद और संगीत व भाषा का जन्म हुआ जिनके विकास की उपलब्धियाँ आज हमारी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक निधियाँ बनी है। वैज्ञानिक इस सत्य को स्वीकार करने लगे हैं कि संगीत के माध्यम से मनुष्य और प्रकृति को वशीभूत किया जा सकता है।**[10]**

संगीत में शारीरिक कसरत भी है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। मानसिक दृष्टि से भी स्वास्थ्य प्राप्त करने का साधन संगीत को कह सकते हैं। यही बात वाद्यसंगीत के लिए भी लागू है क्योंकि वहाँ भी नियन्त्रण है। नृत्य से शरीर–सौष्ठव प्राप्त होता है। शारीरिक व मानसिक कसरत के साथ–साथ आनन्द की भी प्राप्ति होती है और उसके लिए अलग प्रयास नहीं करना पड़ता है। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति का साधन भी संगीत है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो हम यह कह सकते हैं कि, भावों की अभिव्यक्ति का सूक्ष्म व प्रभावी साधन संगीत है स्वभावतः ही मनुष्य अपने भावों को हमेशा व्यक्त करना चाहता है। भावों का दमन संगीत नहीं करता बल्कि अभिव्यक्ति में सहायभूत महत्वपूर्ण तत्व है। संगीत यह ध्येय भी रखता है कि यह अभिव्यक्ति सुन्दर हो, उसकी विधि भी सुन्दर हो, और अन्तिम परिणाम भी सुन्दर हों। कई भावों को सुसंवादी बनाना, विभिन्न तत्वों को एकत्रित कर सुसूत्र बनाना, जीवन में यह कार्य संगीत का है। यह भावात्मक एकता संगीत से ही साध्य है, यानि There is unity in variety. विविधता में एकता दृष्टिगोचर होती है।''[11]

सामाजिक व धार्मिक त्यौहारों को ज्यादा सुखद तथा मंगलकारी बनाने का कार्य संगीत भी करता है। जीवन में उमंग लाने का, सामाजिक उत्साह–वर्धन करने का काम संगीत का है। क्योंकि मानव–जीवन का हर क्षण संगीत–मय है। त्रैलोक्य में उसका संचार है। जीवन को सुन्दर बनाने का ही लक्ष्य कला का होता है। संगीत भी इसका अपवाद नहीं है। मानव–जीवन में संगीत हमेशा रहेगा। क्योंकि जीवन के लिए संगीत एक वरदान है। वैयक्तिक, सामाजिक, आध्यात्मिक सभी स्तरों पर संगीत का एक–सा महत्त्व है। संगीत के बिना मानव–जीवन अधूरा है। ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। दूसरे शब्दों में जीवन की पूर्णता करवाने में संगीत का बड़ा योगदान है।

संगीत त्रिकालाबाधित सत्य है। देशकाल के बंधन उसको बांध नहीं सकते। आज भी हम देखते हैं कि, ज्ञान–विज्ञान से परिपूर्ण मानव जगत में नित्य नये प्रयोग होते रहते हैं। संगीत स्वयं एक विज्ञान है परन्तु अभी उसकी सिद्धि के लिए कुछ तपस्या आवश्यक है। कुछ समय से वैज्ञानिकों का ध्यान संगीत की तरफ गया है। संसार 'परमाणु' की सत्ता स्वीकार कर चुका है। नाद के गुण से भी यह परिचित है।[12]

एक श्रेष्ठ संगीतकार में स्मरण–शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। किसी एक राग का सीखना, फिर सुनना तथा समय आने पर उसे उसी तरह या उससे भी अच्छे ढंग से प्रस्तुत करने में ही उस संगीतकार की श्रेष्ठता है। अगर उसकी स्मरण–शक्ति अच्छी नहीं होगी तो वह राग के सब नियम–कानून ही भूल जायेगा और यदि राग का एक भी स्वर गलत लग गया तो राग का सम्पूर्ण अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा और इस प्रकार उसका प्रस्तुतिकरण व्यर्थ होगा। अतः एक उच्च कोटि के संगीतकार के लिए स्मरण शक्ति का होना बहुत जरूरी है।

कल्पना– कल्पना भी स्मृति के समान ही मानसिक प्रक्रिया है। कल्पना–शक्ति हर मनुष्य की अपने सामर्थ्य के अनुसार अलग–अलग होती है और यह कल्पना शक्ति अलग–अलग दिशाओं में होती है। इस कल्पना–शक्ति के सहारे ही एक कलाकार राग आदि के नियमों का प्रयोग करता है। राग गाते समय स्वर का लगाव, बोल तानों का प्रयोग, कण, मींड आदि का प्रयोग अपनी कल्पना के अनुसार करते हैं।

अतः संगीतकार के पास कल्पना–शक्ति का बड़ा भण्डार होना जरूरी है।

चिन्तन/ध्यान– चिन्तन करना भी एक मानसिक अवस्था है। चिन्तन के लिए, जो किसी भी एक राग का निश्चित रूप तथा नियमों का ध्यान रखकर अपनी पूरी तैयारी के साथ गायेगा, उसका गायन ही श्रेष्ठ होगा। यदि एक नियम ध्यान से परे हो जायेगा तो सारा संगीत भ्रष्ट होता है। संगीत में ध्यान–चिन्तन का होना जरूरी है क्योंकि चिन्तन से ही ज्ञान प्राप्ति होती हैं।[13]

निष्कर्ष :

अवध में लोकगीतों की भरमार है । ये गीत विभिन्न अवसरों पर आनन्द तो देते ही हैं इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष भी बहुत मजबूत है जो मानव को जोड़ने का कार्य करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. लखनऊ मण्डल में 1857 का
2. बिसरिया, डॉ. राकेश कुमार, स्वतन्त्रता संग्राम, पृष्ठ–1, 2
3. प्रवीन, डॉ. योगेश, बहारे अवध, पृष्ठ–1
4. वही, पृष्ठ–4
5. सिंह, डॉ. विद्या बिंदू, अवधी लोकगीत विरासत, पृष्ठ–67
6. श्रीवास्तव, डॉ. अनामिका, अवधी लोक धरोहर, पृष्ठ–58, 59
7. वही, पृष्ठ–91
8. वही, पृष्ठ–XIV
9. सिंह, डॉ. विद्या बिंदू, अवधी लोकसाहित्य में प्रकृति पूजा, पृष्ठ–34
10. कुलकर्णी, डॉ. वसुधा, भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, पृष्ठ–19
11. वही, पृष्ठ–24
12. वही, पृष्ठ–25
13. वही, पृष्ठ– 89

समकालीन चित्रकला का बढ़ता दायरा

डा. क्षमा द्विवेदी*

सारांश

समकालीन अर्थात वर्तमान समय के साथ चलते हुए आधुनिक कला अर्थात 19वीं शताब्दी में कला का नया दौर आया वह आधुनिक कला के रूप में जाना गया यही वह दौर था जब कला के क्षेत्र में आंदोलन आत्मक तरीके से बदलाव आया था तदुपरांत कला को एक नई स्वतंत्र अभिव्यक्ति प्रदान की गई हालांकि पाठशाला का सम्मिश्रण भी था फिर एक दौर ऐसा आया जब कला में आधुनिकता की परिभाषा बदल गई और कलाकारों ने विचारों का आदान–प्रदान समूहों के माध्यम से शुरू किया इन समूहों में यंग तुर्क समूह कोलकाता समूह पेग समूह आदि अनेक ग्रुप स्थापित हुए इसके द्वारा भारतीय कला को नई दिशा प्राप्त हुई लगभग इसी समय के आसपास छापा कला में भी आंदोलन की प्रवृत्ति जागी और भारत में छापा कला को महत्वपूर्ण आयाम मिले इस प्रकार भारतीय समकालीन कला की पूरी परिभाषा बदल गई आज समकालीन भारतीय कला में सभी कलाओं का वर्चस्व विद्यमान है समकालीन भारतीय कला समसामयिक में कई परिवर्तन नजर आते हैं एक समय ऐसा था जब समकालीन भारतीय कला पश्चिमी अंधानुकरण की ओर आकर्षित थे परंतु समकालीन समय में सभी कलाकार पूर्ण रूप से स्वतंत्र है कई प्रकार के प्रयोग कलाखेत्र में देखने को मिल रहा है कलाकार स्वतंत्र रूप से अपने भाव का सृजन कर रहा है आज की समकालीन कला में कंप्यूटर डिजिटलीकरण मिक्स मीडिया आदि सभी प्रकार के नए नए प्रयोग हो रहे हैं ललित कला अकैडमी का समकालीन कला में अथक प्रयास रहा है कला की प्रगति के लिए नए–नए आयोजन किए जाते हैं आज कलाकार मानसिक और भावनात्मक रूप से पूर्णता स्वतंत्र है।

मुख्य शब्द– *चित्रकार, समकालीन, संस्कृति, चित्रकला*

प्रविधि– *वर्णात्मक शोध ।*

महाजनक जातक, अजंता गुफा सं. 1

हमारा भारत देश अनेक संस्कृतियों की प्रखंड विरासत है। शास्त्रीय कलाएं हो या लोक कला इन कलाओं के द्वारा भारत की अपनी प्रसिद्धि है। इन्हीं कलाओं की श्रृंखला में भारतीय चित्रकला अपना सानी नहीं रखती।[1] हजारों वर्ष पूर्व आदिमानव के साथ चली आ रही यह कला समय समय पर अपना समकालीन स्वरूप ग्रहण कर लेती है। प्रस्तुत शीर्षक के द्वारा समकालीन महामारी के बीते दौर में चित्रकला में बढ़ती गतिविधियों को सबके समक्ष प्रस्तुत करना है। कहा जाता है कि योग्यता को किसी अवसर की प्रतीक्षा नहीं पड़ती उसी प्रकार समकालीन समय में महामारी के बीते हुए दौर में चित्रकला एवम चित्रकार के विचारों ने स्वयं को ऊपर उठाया है। भारतीय चित्रकला विश्व की सभी कलाओं में अलग स्थान बनाए हुए हैं। समय–समय पर चित्रकला के क्षेत्र में अनेक क्रांति आई और इसका सकारात्मक परिणाम देखने को मिला है।[2] उदाहरण स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि शुरू में बर्तनों पर की गई चित्रकारी सिंधु सभ्यता की संस्कृति के अन्तर्गत मोहनजोदड़ो, लोथल में भली प्रकार देख सकते है। तत्पश्चात मौर्य काल में देखने पर हमें चित्र कलाओं का स्वरूप अलग ही अंदाज में दिखने लगता है, इस काल के आसपास में हम चित्रकला के विकास को जोगीमारा के चित्रों से समझ सकते हैं। इसी क्रम में आगे की ओर बढ़ने पर गुप्तकालीन कला को भारतीय कला का स्वर्ण काल माना जाने लगता है। इस

*चित्रकार, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

काल में चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला के साथ साहित्य कला भी अत्यधिक विकसित हुई। सामान्यतः चित्रकला के साक्ष्य प्रागैतिहासिक काल से परिलक्षित होता है। परंतु यदि मुख्य रूप से देखा जाए तो चित्रकला का विकास गुप्त काल में देखने को मिलता है। गुप्त काल में चित्रकला की शास्त्रीय शैली प्रमुख रूप से विकसित हुई। गुप्तकाल में चित्रकला सामूहिक रूप से की जाती थी। गुप्तकाल मे भित्ती चित्रों के सुंदर उदाहरण देख सकते हैं। जैसे अजंता, बाघ। भारत में लघु चित्रों की शुरुआत पल शैली और जैन शैली में मुख्य रूप से आरंभ हुई। इस समय साहित्य और चित्रकला का अनोखा संगम होता है। तथा इसी काल में कलाकारों के नाम ज्ञात होने लगते हैं। कहने का आशय यह है कि बढ़ते समय के साथ चित्रकार ने समय की मांग को ग्रहण किया या फिर यूं कहें कि समय को अपने में समेट लिया। और फिर समीक्षक उसे उस काल की शैली का नाम दिया। हर बदले हुए दौर के साथ चित्रकला चली आ रही है।

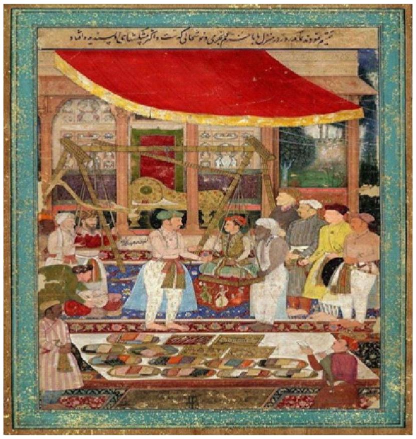

मुगल लघुचित्र, मुगल काल

उत्तर मध्यकाल में प्रवेश करने पर हमें चित्रकला का मुगलिया स्वरूप दिखलाई पड़ता है। जो मुख्य रूप से ईरानी और भारतीय शैली को दर्शाता है। इसी समय यूरोपीय तथा भारतीय कला का सम्मिश्रण हुआ है। भारतीय चित्रकला में अन्य कलाओं की झलक दृष्टिगोचर होती है। परंतु उसकी आत्मा भारतीय है। भारतीय संस्कृति को जानने के लिए चित्रकला का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुगल काल के उपरांत अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय चित्रकला पर गहरा असर डाला।[3] ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1609 कोलकाता में हुई और उसी के साथ चित्रकला का परिवर्तन शुरू हो गया, अर्थात भारतीय पाश्चात्य संस्कृति भारतीय कला में घुलने लगी। अंग्रेजो की सत्ता के कारण कलाकार बाध्य होते थे उनके अनुसार चित्रों का निर्माण करने के लिए। परंतु इन भारतीय चित्रकारों की कृतियों में भारतीयता के लक्षण को बखूबी देखा जा सकता है। हालांकि अच्छी बात यह है कि विदेशी संस्कृति की गुणवत्ता भारतीय चित्रकला में समाहित होती रही। समय के साथ भारतीय चित्रकला करवटें बदलती हुई अपने मूल स्वरूप को लेकर समय के साथ साक्ष्य को दर्शाती हैं।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में कलाकारों की प्रमुख शाखाएं विलुप्त हो चुकी थी। 1807 में कैमरे का भारत में लगभग प्रवेश हो चुका था। साथ ही छापाखाना की स्थापना के साथ चित्रकारों का रुझान फोटोग्राफीनुमा यथार्थवादी शैली में होने लगा। भारत पर अंग्रेजों का शासन हो गया। पटना हर दृष्टि से समृद्ध होने के कारण अंग्रेजों का केंद्र बन गई। कलाकारों को अंग्रेजों ने आश्रय दिया और उसके एवज में उनको अपनी विदेशी शैली में कार्य करने को बाधित किया। इस कारण इस शैली को पटना शैली, कंपनी शैली एवं जान शैली नाम दिया गया। तत्पश्चात कालीघाट या बाजार शैली उभर कर आई। कोलकाता के काली मंदिर में धार्मिक चित्र भक्तो की मांग पर बनाए जाने लगे। धार्मिक चित्रों के साथ दैनिक जीवन पर आधारित चित्र बनाए गए और उन्हें बेचा जाने लगा। बाजारीकरण के कारण इसे बाजार शैली नाम दिया गया।[4] 19वीं सदी में अंतिम दशक में कोलकाता स्कूल में ई वी हैवल प्रधानाचार्य होकर आए एवम उन्होंने भारतीय कला की भूरी भूरी प्रशंसा की। उन्होंने चित्रकारों को भारतीय परंपरागत कला से प्रेरणा लेने को कहा। ई वी हैवल, अवनींद्रनाथ, गगनेंद्रनाथ साथ मिलकर इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट की स्थापना की। अवनींद्र नाथ एवं उनके शिष्यों ने इस शैली को देशव्यापी स्तर पर पहुंचाया। कोलकाता के काली मंदिर में शुरू की गई चित्रकारी यथार्थवादी स्वरूप में विकसित हुई। इस समय चित्रकारी में व्यवसाय प्रमुख रहा और चित्र बेचे खरीदे जाने लगे। समय बीतने के साथ भारत के अनेक प्रांत की लोक कलाएं अपनी शैली को लेकर समाज में समक्ष प्रस्तुत होने लगी। उदाहरणस्वरूप तंजौर चित्रकला, उड़ीसा के पट चित्र, बिहार की मधुबनी शैली आदि लोक कलाएं प्रबल रूप से परिलक्षित होने लगी

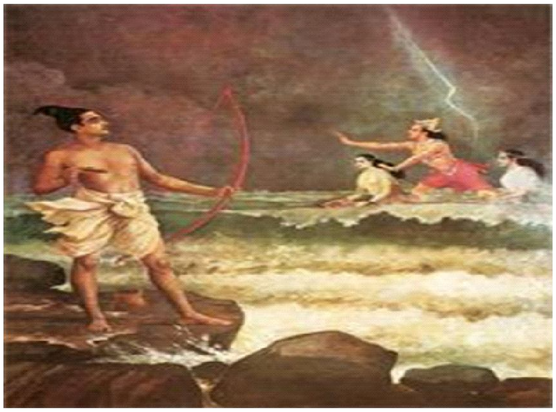

राम द्वारा समुद्र का मान भंग, चित्रकार राजा रवि वर्मा

19वीं सदी में चित्रकला के क्षेत्र में भारतीय चित्रकला में राजा रवि वर्मा ने क्रांति का बिगुल बजाया। भारत में पौराणिक चित्रों की शुरुआत का श्रेय राजा रवि वर्मा को जाता है। राजा रवि वर्मा ने अपने चित्रों के द्वारा भारतीय देवी–देवताओं को घर–घर में पहुंचाया। इनकी शैली यूरोपियन जरूर थी परन्तु विषय भारतीय ही रहा।[5] कोलकाता में शांति निकेतन की स्थापना रविंद्र नाथ टैगोर ने की। इनके छोटे भाई अवनिंद्र नाथ टैगोर ने कला में मुगल, चीनी, जापानी सभी शैलियों का सम्मिश्रण कर भारतीय वाश शैली को जन्म दिया। जिस समय भारत में स्वतंत्रता आंदोलन आरंभ हुआ, तात्कालीन कला के क्षेत्र में कलाकार स्वतंत्रता की खोज करने लगा। और चित्रकला किसी शैली में ना बंध कर स्वतंत्र रूप ग्रहण कर चुकी थी।

बीसवीं सदी में समाज में चित्रकला और चित्रकार दोनों का सम्मानीय स्थान था। भारत में हर एक शताब्दी की चित्रकला का अपना अलग महत्व है। आधुनिक कला में प्रवेश करते ही बंगाल दुर्भिक्ष तथा बंगाल विभाजन का चित्रकारों पर बहुत गहरा असर हुआ। अवनींद्र के शिष्यों ने भारत के सभी कोने में कला महाविद्यालय में अपनी सेवाएं दी और कला को बढ़ावा दिया। बंगाल विभाजन को चित्रित करने वाले कलाकारों में रामकिंकर बैज, प्राणनाथ नाथ मागो, सतीश गुजराल, जैनुअल आबेदीन, अब्दुल रहमान चुगताई आदि सुप्रसिद्ध कलाकार थे। कलाकार अपनी करुण भावनाओं को कैनवास पर उतार रहा था और इस अंधकारमय जीवन को चित्रित कर अपने मन की व्यथा को चित्रों में पिरो दिया। परंतु विचार करने वाली बात यह है कि विषम परिस्थिति में कलाकारों की कूची और विचार निरंतर चलता रहा। समाज की उथल पुथल को कैद करता रहा। बीते हुए समय के अच्छे और बुरे पहलुओं को समाज और संस्कृति को कृतियों में स्थान दिया। वक्त और अंतराल सभी परिस्थितियों में चित्रकार कभी थका नहीं कभी हारा नहीं। अर्थात महामारी की बिकट परिस्थिति होने के बाद भी कलाकार और अधिक वैचारिक होता गया। समाज में कला को प्रदर्शित करने का नया माध्यम ऑनलाइन, इंटरनेट सफल मार्ग बना। कहने का आसय यह है कि परिस्थिति कैसी भी हो कलाकार अपनी कला को प्रदर्शित करना जानता है। महामारी के बीते दौर में चित्रकार ने साबित कर दिया कि परिस्थितियां कैसी भी हो परंतु आशा की किरण होती है। जिसकी खोज हमें करनी होती है। साधारण दिनों में जहां चित्रकार अपनी साधना में कुछ परेशानियों का सामना करता था, वही इस दौर में चित्रकार को भरपूर समय मिला अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए। अपने अंतर्मन में चल रहे विचारों को दृह्ण संकल्प के साथ सशक्त रूप से चित्र को प्रदर्शित कर रहा था। माहामारी का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ की जनसाधारण में भी चित्रकला के प्रति प्यार स्नेह की भावना ने स्थान बनाया है। घरों में कैद लोग चित्रकला के प्रति खासा आकर्षित हुए। जनमानस क्षमता के अनुसार कृतियों का निर्माण कर रहे थे। इस दौर में चित्रकला के सामने एक नई चुनौती थी इसे चित्रकारों ने सहर्ष स्वीकार किया। अंधेरे काल को आनलाइन माध्यम से नई सोच के साथ नहीं शुरुआत हुई। स्वयं को सुरक्षित रखते हुए कलाकार अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत कर रहा था। चित्रकार हो अथवा दर्शक ऑनलाइन माध्यम से चित्रकला का आनंद समान रूप से था। जनमानस में चित्रकला के प्रति रुझान को बढ़ावा मिला। इस दौर में जहां लोग अपने घरों में कैद हो गए थे वही चित्रकला ऊंची उड़ान भर रही थी। इस कठिन परिस्थिती में ऑनलाइन एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। समय की बचत के साथ आर्थिक समस्याओं में भी हितकर साबित हुआ है। समय की मांग को देखते हुए कलाकार हर स्थितियों में स्वयं को उत्कृष्ट रूप से समायोजित करना सीख चुका है। कलाकार अपनी कला के द्वारा वर्तमान समय और

समाज को वक्त में प्रदर्शित कर रहा है। धन्यवाद ऐसे कलाकार गुरुजनों को और भावी कलाकारों को जिन्होंने महामारी मे चित्रकला की गरिमा बनाए रखा और निरंतर प्रयास की ओर अग्रसर रहे। कहने का तात्पर्य है कि हमारा वर्तमान परिवेश भारतीय संस्कृति के साथ नित नए प्रयोग के साथ आगे बढ़ रहा है। रौशनी हमे प्रकाशित करती है और अंधेरा हमें चौकन्ना बना देती है। विख्यात समकालीन चित्रकार कंवल कृष्ण के कहे गए ये शब्द यहां चरितार्थ हो रहे हैं। मैं डाक्टर क्षमा द्विवेदी यह कामना करती हूं कि भविष्य में चित्रकार एवम चित्रकला का दायरा इसी प्रकार बढ़ता रहे।

धन्यवाद!

सन्दर्भ सूची :

1. गैरोला, वचस्पति, भारतीय चित्रकला, प्रथम संस्करण, मिश्र प्रकाशन प्रा. लि. इलाहबाद, पृ.– 69–71
2. जोशी, ईसा नारायण, मालवा की लोक चित्रकला, प्रथम संस्करण, विश्व भारती प्रकाशन, पृ.– 2–3
3. मधुकर, गोपाल, भारतीय चित्रकला, प्रथम संस्करण, 1989, पृ. 25–26
4. श्रीवास्तव, विमल मोहिनी, प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, आई एस बी एन– 8171243134, प्रथम संस्करण, 2002, पृ.– 4–5
5. शर्मा, डॉ हरिद्वारी लाल, कला दर्शन, प्रथम संस्करण, 1997, प्रकाशन साहित्य संगम इलाहाबाद, पृ.– 37–38

काशी की सांगीतिक वैशिष्ट्य परम्परा

डॉ0 कुमार अम्बरीष चंचल** **संदीप मुखर्जी***

सार

काशी नगरी अनादि काल से ही ज्ञान–विज्ञान, कला–संस्कृति, धार्मिक–आध्यात्म का अभिकेन्द्र के रूप में सुप्रसिद्ध रही है। काशी नगरी को प्राचीनतः जीवन्त नगरी, हिन्दू धर्म का लघु ब्रह्माण्ड, सास्वत नगर आदि विशेषताओं से सम्बोधित किया जाता है। काशी की कला संस्कृति (संगीत कला) परम्परा में यहाँ का संगीतमय वातावरण काशी के मानव जीवन–शैली में रचा बसा है। विभिन्न राग–मंत्र व गायन–वादन इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। सांगीतिक महोत्सव–बुढ़वा मंगल, गुलाब बाड़ी, संकट मोचन संगीत समारोह, ध्रुपद मेला, गंगा महोत्सव एवं सुबह–ए–बनारस जैसे अनेकानेक सांगीतिक समारोह होते रहते हैं। इन सभी समारोहों व कार्यक्रमों में काशी के घरानेदार कलावंतों व संगीत एवं मंच कला संकाय के शिक्षकों–कलाकारों का बड़ा योगदान है। काशी की संगीत परम्परा को निरन्तर गतिमान बनाए रखने हेतु यहाँ की गायक–गायिकाओं व बाईयों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। काशी के सांगीतिक वैशिष्ट्य में यहाँ की संगीत कला चतुर्मुखी रही है। यहाँ प्रबन्ध–गायन से लेकर विष्णु पद, ध्रुपद, धमार, स्वरार्थ प्रबन्ध, ख्याल, टप्पा, तराना, चतुरंग त्रिवट, ठुमरी, होरी आदि विधाओं की अपनी एक मौलिक विशेषता है और कालांतर में संगीत की शैलियों एवं प्रवृत्तियाँ में जो नये–नये परिवर्तन होते गये, उनको यहाँ के संगीतज्ञों ने समय के साथ अपनाया और परम्परागत शैलीगत विशिष्टताओं के साथ सामंजस्य स्थापित किया। काशी की सांगीतिक विशिष्टताओं में गायन के अतिरिक्त तबला, वादन, सितार वादन, सारंगी वादन, शहनाई वादन, बाँसुरी वादन, वायलिन वादन, कत्थक नृत्य व संगीत–शास्त्र की भी अपनी एक मौलिक परम्परा रही है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास में अप्रतिम योगदान की ओर उन्मुख होती है।

सूचक–शब्द : *काशी, संगीत, गायन, घराने, नगर, वैशिष्टता, परम्परा*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यमों से सामग्री एकत्र की गई है ।*

विषय प्रवेश

संसार की पुरा–प्राचीन नगरीयों में अद्भुत असीम सर्वविद्या की राजधानी के रूप में काशी विश्वविख्यात है। काशी भारत की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में भी सुविख्यात है। काशी की महत्ता धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व अध्यात्मिक दृष्टि से हर युग में रही है। पुरा–प्राचीन भारतीय ग्रन्थादि में बहुतायत रूप में काशी के प्रसंग मिलते हैं, साथ ही इनमें काशी के महत्त्व की भी चर्चा है। स्कंदपुराण[1] के काशी खण्ड में कहा गया है कि "काशी सात पुरीयों में सबसे प्राचीन व पवित्र है एवं मत्स्य पुराण में काशी को अल्कापुरी की संज्ञा दी गयी है। काशी भगवान शिव की नगरी के रूप में विदित है, इसके अतिरिक्त वैदिक, पौराणिक परम्परा के विभिन्न सम्प्रदायों, जैसे– वैष्ण सम्प्रदाय, गाणपत्य सम्प्रदाय; साथ ही, श्रवण परम्परा के दो प्रमुख धर्मों बौद्ध एवं जैन धर्म के दृष्टि से भी काशी का विशेष महत्व है। बौद्ध–परम्परा में महात्मा बुद्ध के प्रथम उपदेश स्थली के रूप में काशी सर्वविख्यात है। इसी प्रकार, जैन धर्म के चार प्रमुख तीर्थंकरों के कल्याणक भूमि के रूप में काशी की मान्यता है। सभी प्रमुख धर्मों के केन्द्र के रूप में काशी सर्वधर्म समभाव की उच्च भावना का परिचायक है। इस प्रकार, काशी भारत के सभी प्रमुख धर्मों की प्रश्रय स्थली रही है जिसके कारण काशी को भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक नगरी के रूप में मान्यता मिली। "काशी" के शब्द में ही कामधेनु और कल्पतरु आस्वासनदायी शक्ति और क्षमता अन्तर्निहित मानी जाती है। काशी नामकरण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि विवस्वान के पुत्र श्राद्धदेव थे जिनके वंश में पुरुवा नामक राजा हुए उन्होंने उर्वशी नामक अप्सरा से

*शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विवाह किया, जिससे आयुर नामक पुत्र को जन्म दिया और आयुर के पुत्र क्षत्रवृद्ध तथा क्षत्रवृद्ध के पुत्र काश्य और काश्य के पुत्र काशी हुए, काशी का ही वर्तमान नाम वाराणसी नगर है।[2]

काशी को लघु भारत भी कहा जाता है। जहाँ अनेकता में एकात्मकता का दर्शन होता है। प्रत्येक का अपना पहनावा, खान–पान और भाषा–विभाषा है तथापि यहाँ के लोग काशी वाशी ही बन कर रहते है। युगों–युगों से काशी एक तीर्थ स्थल के रूप में मान्य है जो तन्त्र–मंत्र, साहित्य–कला एवं संगीत साधना की भूमि है। काशी सुदूर अतीत से लेकर वर्तमान (वाराणसी) तक प्रवाहमान संस्कृति की जीवन धारा के पुंजीभूत रूप में विश्व के पुरातन नगरों में से एक है। काशी नगरी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत धर्म, कला, साहित्य, व्यापार, शिल्प, संगीत, दर्शन विचार आदि आते हैं। इस नगर की महत्ता को बढ़ाने के लिए यहाँ के गुणी, पण्डित, सन्त, साधक, औलिया, फकीर, साहित्यकार, चित्रकार, कवि, लेखक, नाटककार, संगीतज्ञों की पीढ़ी का विशेष योगदान सदैव स्मरणीय रहा है। काशी की संगीत–परम्परा यहाँ के इतिहास जैसे ही प्राचीन है। यह प्राचीन काल से ही संगीत नगरी के रूप में विख्यात रही है। संगीत यहाँ के जन–जीवन में सदैव घुला–मिला रहा। यहाँ मंत्रोच्चारण, पदगान, भजन, कीर्तन के रूप में संगीत तथा धर्म का प्राचीन काल से ही अभिन्न सम्बन्ध रहा है। यह नगर कई शताब्दी ई. पू. से ही संगीत का प्रमुख केन्द्र था। 'कुटटनीमत में तत्कालीन काशी की गायिकाओं का विस्तृत उल्लेख है।[3] बौद्धकालीन विवरण में नगर वधुएँ सुलसा, श्यामा, चित्ररेखा आदि गायिकाओं की चर्चा है। जातक कथाओं में काशी राज ब्रह्मदत्त के समय में काशी के वीणाकर गुप्तिल द्वार, संगीत प्रतियोगिता में उज्जैन के मुसिल को परास्त करने का उल्लेख है।

काशी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा में कलाकार को दूर–दूर से आकर काशी को ही अपनी साधना–भूमि बनाने के लिए आकर्षित किया है। यही कारण है कि मिर्जापुर के प्रसिद्ध सांरगी वादक पं. शम्भू नाथ मिश्र, कत्थक नृत्याचार कलिका प्रसाद के वंशज हंडिया तहसिल इलाहाबाद के, पं. दिलाराम मिश्र के वंशज गोण्डा बलरामपुर से काशी आये, पं. दरगाही मिश्र के वंशज रामगढ़ हरहिया जिला आजमगढ़ से काशी आये। पं. राम सहाय, जौनपुर से काशी आये, पं. छन्नूलाल मिश्र जी के वंशज हरिहरपुर आजमगढ़ जिले से काशी आये, नेपाल दरबार से पं. सुखदेव महाराज, दिल्ली दरबार के ध्रुपद गायक उस्ताद निसार अली खाँ, ख्याल गायक उस्ताद साहिक अली खाँ, टप्पा गायक उस्ताद अकबर अली खाँ, दिल्ली से ही तानसेन घराने के प्यारे खाँ तथा भूपत खाँ, लखनऊ से निर्मल शाह, डुमरॉव से उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने काशी को ही अपनी संगीत की साधना स्थली बनाई।[4]

काशी में शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लोक संगीत की भी अपनी विशेषता रही हैं। वर्तमान समय में भी काशी में लोक संगीत अधिकतर 'घरों में मांगलिक आयोजनों में और ऋतुओं के अनुसार यथासमय उल्लासित होता रहता है। प्रमुखरूप से यह कजरी, चैती, झूला, चैता गौरी, होरी, बारहमासा आदि लोक संगीत की प्रमुख लोक शैलियाँ है। कजरी के साथ–साथ झुमरी गाने और नाचने की परम्परा रही है। अभी हाल के कुछ दशकों पूर्व तक बनारस के कजरी रतजगें में ठुमरी का नाच–गाना होता था, अब यदा–कदा ही ग्रामीण क्षेत्रों में होता है। श्रावण के शुक्ल पक्ष का एक नाम हिंडोल है। देश के सभी मंदिरों में विशेषतः बनारस में आज भी श्रावण शुक्ल पक्ष के अंतिम पाँच दिन देवमूर्ति का हिंडोलोत्सव मनाया जाता है। इसे झूलनोत्सव भी कहते हैं। इस अवसर पर झूला, हिंडोल आदि गाने की परम्परा रही है। इसी क्रम में बनारस में बसंत पंचमी से सोहिनी और बसंत गाने की प्रथा रही है। फाल्गुन महीने के महाशिवरात्रि के पर्व से बनारस में होली के पदों का गायन होता रहा है। बनारस की गायकी में चैती गाने की विधि अलग है। इसी का दूसरा प्रकार 'घाटो' के नाम से गाया जाता है जिसे वर्तमान में 'चैता' कहते हैं। लोक संगीत के चैता को गौरी से जोड़कर बनारस में 'चैत गौरी' के नाम से भी गाने की परम्परा है। लोकसंगीत के अतिरिक्त काशी की शास्त्रीय गायकी में विष्णु पद, स्वरार्थ प्रबन्ध, ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराना चतुरंग, त्रिवट, टप्पा आदि बनारस घराने की विभिन्न–विभिन्न प्रकार की बन्दिशों को अलग–अलग ढंग से गाने की प्रथा है। बनारस के शास्त्रीय घराना में पियरी, रामापुरा, तेलियानाला आदि घरानों की प्रमुख भूमिका है, इन घरानों के अतिरिक्त सांगीतिक क्षेत्र में काशी की बाईयों (तवायफ) की भी भूमिका रही है, जैसे– बड़ी मैना बाई, विद्याधरी बाई, हुस्नाबाई,

टामी बाई, राजेश्वरी बाई, बड़ी मोती बाई, काशी बाई, रसूलन बाई, कमलेश्वरी, तारा बाई, मलका बाई आदि।[5]

शास्त्रीय संगीत एवं उप–शास्त्रीय संगीत के प्रमुख गायकों में, जैसे– पं. दिलाराम मिश्र, प्रसिद्ध–मनोहर मिश्र, पं. शिवा–पशुपति मिश्र, पं. भद्दू, पं. सजीले जी, पं. दाऊ जी मिश्र, पं. हरिशंकर मिश्र, पं. ओंकार नाथ ठाकुर, पं. सुरेन्द्र मोहन, पं. राजन–साजन मिश्र, पं. राजेश्वर आचार्य, श्रीमती वन्दमाला पर्वतकर, प्रो. शारदा वेलंकर, पं. ऋत्विक सान्याल, प्रो. संगीता पण्डित, प्रो. रेवती साकलकर, डॉ. मधुमिता भट्टाचार्या, डॉ. रामशंकर, डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल तथा गायकी के अतिरिक्त काशी में तबला के भी प्रख्यात वादक रहे है, जैसे– बनारस घराने के संस्थापक पं. राम सहाय, पं. गुदई महाराज, पं. किशन महाराज, पं. कुबेर मिश्र, पं. पुण्डरीक भागवत, पं. किशन राम डोहकर, पं. कामेश्वर नाथ मिश्र, पं. किशोर मिश्र, पं. रामकुमार मिश्र, पं. शुभ महाराज आदि; सितार वाद्य के प्रमुख वादको में– पं. शिवनाथ मिश्रा, पं0 अमरनाथ मिश्र, श्री रामदास चक्रवर्ती, श्रीमती कृष्णा चक्रवर्ती, पं. विरेन्द्र नाथ मिश्रा, पं. प्रेम किशोर मिश्र आदि; सारंगी वादको में पं. हनुमान प्रसाद मिश्र, पं. कन्हैया लाल मिश्र, श्री सन्तोष मिश्र, श्री शम्भू नाथ मिश्र, श्री वैजनाथ मिश्र, श्री अनीश मिश्र आदि; शहनाई वादकों में श्री नन्दलाल, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, श्री रमाशंकर आदि हुए तथा बाँसुरी वादकों में श्री श्याम लाल, पं. राजेन्द्र प्रसन्ना, पं. भोलानाथ प्रसन्ना, प्रो. राधेश्याम जायसवाल, डॉ. प्रहलाद नाथ आदि। कत्थक नृत्यकारों में श्री सुखदेव महाराज, श्रीमती अलखनंदा देवी, नटराज गोपी–कृष्ण, श्रीमती सितारा देवी, जयन्तिमाला–प्रिया माला, पं. लोकनाथ मिश्रा, पं. माता प्रसाद मिश्र, पं. शम्भू महाराज, श्री विशाल कृष्णा मिश्र आदि । इस प्रकार सदियों पुरानी अमूल्य धरोहर गायन–वादन एवं नर्तन की भारतीय विशिष्ट संगीत परम्परा के अतिरिक्त धीरे–धीरे विकसित नयी शैलियों को भी अपने में आत्मसात करते हुए अपनी विद्वता, मौलिकता से उसे काशी का बना लेने की विशेष क्षमता के फलस्वरूप यहाँ की विभिन्न विधाओं, घरानों के कलावन्तों ने अप्रतिम योगदान दिया।

काशी की सांगीतिक ख्याति को लोकप्रिय व समृद्ध बनाने के लिये यहाँ के मंदिरों व घाटों तथा समारोहों आदि के अतिरिक्त संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय व संगीत विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ आदि जैसी शैक्षणिक संस्थाओं का भी योगदान रहा है। काशी में होने वाले प्रमुख समारोहों में जैसे बुढ़वा मंगल, गुलाब बाड़ी, संकटमोचन संगीत समारोह, ध्रुपद मेला, दुर्गा मन्दिर संगीत समारोह, चिन्तामणि संगीत समारोह, गंगा महोत्सव, सुबह–ए–बनारस आदि समारोहों व महोत्सवों एवं विश्व विद्यालय में होने वाले संगीत समारोहों एवं संगोष्ठियों का भी अभूतपूर्व योगदान है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार यह निष्कर्षतः प्रतीत होता है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, संगीत, अभिनय इत्यादि अनेकानेक कलाओं के उन्नयन और विकास में तीनों लोकों से न्यारी काशी का अपना विशेष स्थान है। प्राचीन काल से ही काशी संगीतज्ञों की साधना भूमि रही है, तथा सभी सांगीतिक विभूतियों का अपने समय में संगीत के क्षेत्र में विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कुछ कलाकार ध्रुपद–धमार के सिद्धस्थ थे तो कोई ख्याल तो कोई टप्पा–ठुमरी में मर्मज्ञ थे। इस प्रकार, काशी की शताब्दियों पूर्व की सांगीतिक धारा को निरन्तर गतिमान बनाए रखने हेतु यहाँ के मन्दिर घाट सांस्कृतिक संस्थाओं, पर्व–त्यौहारों, संगीत विद्यालयों, वंश–परम्परा के कलाकारों व संगीत–शिक्षकों आदि का सहज सांगीतिक अनुराग और काशी के सांगीतिक वातावरण व काशीवासियों की सहज जीवन–शैली ने संगीत के उन्नयन में अपना सक्रिय योगदान दिया है।

संदर्भ सूची :

1. स्वामी दण्डी, सरस्वती शिवानन्द, काशी कण्ड, पृ. सं.–47, श्री विष्णु प्रकाशन वाराणसी चतुर्थ संस्करण
2. जैन, सुशील, राजभाषा रूपाम्बरा काशी अंक, पृ. सं.–20, संगीत नाटक अकादमी दिल्ली, अंक–6, अक्टूबर 2014–मार्च 2016
3. रेणू, डॉ. जौहरी, भारतीय संगीत जगत में वाराणसी का योगदान, पृ. सं.–15, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, संस्करण–2004
4. वही, पृ. सं.–16
5. मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा, पृ. सं.–72, 73, 74, ल्यूमिनस बुक्स वाराणसी, संस्करण–2018
6. पं. कामेश्वर नाथ मिश्र जी से साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त।

भोजपुर प्रान्त के भोजपुरी लोकगीतों के प्रकार : एक अध्ययन

डॉ० रश्मिका मिश्रा**

दीपक कुमार यादव*

शोध सार

अनादिकाल से ही भारतीय संगीत में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिककाल से लेकर वर्तमान काल तक मानव अपनी भावनाओं को लोकगीत के माध्यम से प्रकट करते आया है। लोकगीत की प्रकृति जन्म से लेकर मरण तक जनरुचि में समाहित रहता है। लोकगीत अपने–अपने क्षेत्र में रहनेवाले समाज की आईना है। प्रस्तुत शोध–पत्र के अंतर्गत भोजपुर प्रान्त के भोजपुरी लोकगीतों के प्रकार तथा इसकी समृद्धि के बारे में बताया गया है।

सूचक शब्द : *लोकगीत, भोजपुर, भोजपुरी, लोकसंगीत, गीत, रस*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों से सामग्री संकलित की गई है ।*

भूमिका :

भारतीय जीवन में सांस्कृति और संगीत का अतुलनीय संबंध रहा है। संस्कृति के उदय और विकास के साथ ही संगीत का प्रारंभ और प्रगति देखा जा सकता है। हमारा संगीत मानव–जीवन के नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। संगीत कला भौतिक उत्कर्ष और ख्याति के अलावा धर्मनिष्ठ और मानसिक आनंद, संतोष का भी साधन मानी जाती रही है। लोकसंगीत या लोकगीत की जब हम चर्चा करते हैं तो हम पाते हैं कि जब मानव की उत्पत्ति हुई, और जैसे– जैसे मानव का विकास हुआ, वैसे–वैसे लोकसंगीत का भी विकास हुआ। भारतीय संगीत के मूल में जाएँ तो हमें यह प्राप्त होता है कि संगीत का मुख्य नायक लोकसंगीत ही है। मनुष्य का स्वभाव रहा है, कि अपने सुख–दुख की भावनाओं को प्रकट करने हेतु वाणी का सहारा लेता रहा है। लोकगीत समाज के व्यावहारिक पक्ष के आधार पर समृद्ध होने वाले नाना प्रकार के उत्सवों में गाया जाता है।

लोकगीत दो शब्दों का मिश्रण है– लोक+गीत

अर्थात् इसका सामान्य अर्थ है लोक के गीत। लोक शब्द की वास्तविकता यह है कि यह अंग्रेजी के Folk का पर्याय है जो नगर और ग्राम (गाँव) के समस्त साधारण जन का घोतक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है। बल्कि नगर व गामों में फैली हुई समुची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथियाँ नहीं है । ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि–सम्पन्न तथा संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभयस्थ है।

'लोक' शब्द का वर्णन ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है जिसे "देहिलोकम" के नाम से जाना जाता है।[1] जिस प्रकार आजकल पुत्रजन्मोत्सव, यज्ञोपवीत, शादी के अवसरों पर गीत गाये जाते हैं उसी प्रकार वैदिक युग में भी इन शुभ उत्सवों पर मनोहर गीतों के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

सामाजिक उत्सवों के समय हर्ष प्रकट करने के लिए अपने–अपने क्षेत्रीय भाषा के गीतों की रचना की गई थी, जैसे– विवाह, जन्मोत्सव, मुण्डन, कर्ण–छेदन, झूमर, बारहमासा, खेमटा, कजरी, फाग, होरी, चैती इत्यादि।

भोजपुर क्षेत्र के भोजपुरी लोकगीत बहुत ही समृद्ध हैं जिसमें जन्म के पूर्व से लेकर निर्गुण तक के गीत हैं। यहाँ लगभग प्रत्येक कार्यों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के लोकगीतों का प्रयोग होता भाषा एवं भोजपुरी लोकगीत का मुख्य केंद्र बिहार और उत्तरप्रदेश रहा है।

किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैभव का परिचायक वहाँ का लोकसाहित्य और संगीत होता है जिसमें उस राष्ट्र के सभी प्रकार के गीत को वाणी द्वारा प्रदर्शित किया

*शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, सहायक आचार्य, गायन अनुभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जाता है। यूं तो प्रायः प्रत्येक देश में लोकगीतों की एक सुदीर्घ परंपरा होती है परंतु अधिकतर देशों में लोकगीत एकाध भाषा में ही सिमट कर रह जाते हैं। हमारा भारत इस मामले में सौभाग्यशाली है, क्योंकि यहाँ हर प्रान्त या क्षेत्र की बोली, धुन, रहन–सहन का एक अलग ही महत्व है । यहाँ एक कहावत है– "कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी"

यहाँ कोस–कोस पर लोकगीतों के अलबेले रंग रूप क्रीड़ा करते हुए देखे जा सकते हैं। भोजपुर प्रान्त का नामकरण मध्यकाल के राजपूतों द्वारा राजा भोज के नाम पर हुआ। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक जार्ज ग्रियर्सन ने यह स्पष्ट किया है कि भोजपुर परगना के नाम पर भोजपुरी भाषा का नाम पड़ा।[2] आज हम जिसे भोजपुर प्रान्त के नाम से जानते हैं इस प्रान्त का नामकरण होने से पहले यहाँ सात जनपदों का अस्तित्व था। ऐसा हमें बौद्ध साहित्य में मिलता है, यथा– 1. कपिलवस्तु के शाक्य 2. राम ग्राम के कोलिय 3. पिप्पली बन के मौर्य 4. कुशी नगर के मल्ल 5. अल्लकप्प के वुलि 6. काशी प्रदेश 7. संसुमार गिरी के भाग

भोजपुर प्रान्त की पवित्र भूमि अनेक संतों, दार्शनिकों, महर्षियों की कर्मस्थली रही है, जैसे– महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कबीर, तुलसीदस, सूरदास इत्यादि।[3] भोजपुर प्रान्त महर्षि विश्वामित्र की नगरी है जहाँ से श्री राम–लक्ष्मण ने (दोनों भाई) आकर शिक्षा ग्रहण किये। भोजपुरी लोकगीत की समझ या बोलने, सुनने वालों को देखा जाए तो इसकी संख्या भारतवर्ष में सबसे अधिकतम बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। भोजपुर प्रान्त का विस्तार बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश और छतीसगढ़ के कुछ हिस्सों में और दूसरे देशों की बात की जाय तो मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल के तराई वाले इलाके के कुछ हिस्सों में भोजपुरी बोली और सुनी जाती है। भोजपुरी लोकगीत बहुत ही प्राचीन और समृद्ध है। इसे मुख्यतः छः भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा– 1. संस्कार गीत 2. ऋतु गीत 3. पर्व गीत 4. जाति गीत 5. श्रम गीत 6. विविध गीत[4]

1. **संस्कार गीत** : भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। धर्म ही भारतीयों का प्राण है। हमारे धार्मिक जीवन में विभिन्न संस्कारों का बहुत महत्व है। भोजपुरी लोकगीतों में जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक की अवधि में अनेक संस्कार गीतों के माध्यम से भाव प्रकट किये जाते हैं, जैसे : सोहर, छठी, अन्नप्राषन, मुंडन, जनेऊ, विवाह, मृत्यु इत्यादि।

सोहर : शिशु–जन्म के समय सोहर गीत गाते हैं। रचना–कौशल में स्त्री–सुलभ कोमलता रहती है। इसमें शिशु की शुभकामना रहती है।

छठी गीत : शिशु के जन्म होने के छठे दिन छठी मनाई जाती है। पूरे परिवार को इकट्ठा कर सूर्य, चंद्र, गंगा–यमुना, गृह–देवता, ग्राम–देवता के चित्र की पूजा करते हैं। लोगों को कच्चा भोजन खिलाकर छठी के गीत गाते हैं, जिसमें बालक के लिए शुभकामनाएँ रहती हैं।

अन्नप्राशन गीत : छः माह के बाद अन्नप्राशन किया जाता है। इसमें भी कुटुम्बियों को बुलाकर पूजा के साथ गीत गाते हैं। इसमें भी शिशु की शुभकामनाएँ होती है।

मुंडन गीत : इसमें चूड़ाकर्म–संस्कार किया जाता है। यह शिशु के जन्म के विषम वर्षों (एक, तीन, पांच, सात) में होता है। इन गीतों में बुआ को धन, आभूषण मिलने का वर्णन होता है।

जनेऊ गीत : शिशु के थोड़ा बड़े हो जाने पर उपनयन–संस्कार होता है। इसके गीतों की लय, ध्वनि और टेक बहुत ही सुंदर होती है।

विवाह गीत : विवाह लोक–संगीत के आयोजन के लिए सबसे सुंदर अवसर है। इसमें विविध कर्मों में विविध प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जैसे : द्वार पूजन, जयमाल, भाँवर, कोहबर, विदाई, गौना आदि। इसमें श्रृंगार रस, हास्य रस, और करुण रस के गीत होते हैं।

मृत्यु गीत : इसमें मृतक की सुंदरता (कर्म) और कोमलता का चित्रण होता है तथा उसके अभाव के कारण घर में आर्थिक संकट की परिस्थितियों का चित्रण होता है।

2. **ऋतु गीत** : ऋतु एक वर्ष से छोटा कालखंड है जिसमें मौसम की दशाएँ एक खास प्रकार की होती हैं। यह कालखण्ड एक वर्ष को कई भागों में विभाजित करता है। भारत में कुल 6 ऋतुओं का वर्णन मिलता है–

क. वसन्त, ख. ग्रीष्म, ग. वर्षा, घ. शरद्, च. हेमन्त, छ. शिशिर। सामान्यतः एक ऋतु में दो मास होते हैं। इन ऋतुओं से सम्बन्धित गीतों को ही ऋतुगीत अथवा ऋतु–संबंधी गीत कहते हैं। प्रत्येक ऋतु के अलग–अलग गीत होते हैं। जैसे : कजरी, हिंडोला, वसंत, बारहमासा, फागुन, चैता, चैती इत्यादि।

कजरी : सावन माह में भोजपुर प्रान्त में कजरी (कजली) गाने की प्रथा है। मिर्जापुर की कजरी तो बहुत ही प्रसिद्ध है। वर्षा ऋतु आने पर लोगों के दिल में हर्ष और आनंद का आगमन होता है तथा इसी समय कजरी गाते हैं।

हिंडोला गीत : सावन के महीने में हिंडोला गाते है जिसमें सुख–दुःख के रंगों से मानव–जीवन की अनेक भावनात्मक स्थितियों का समावेश रहता है।

फगुवा गीत : फागुन के महीने में होली गीत गाते हैं जिसे 'फगुवा' भी कहते हैं। इन गीतों में ज्यादातर भगवान श्रीकृष्ण और राधाजी, श्री सीता–राम जी के होली खेलने का वर्णन रहता है। इन गीतों से उल्लास तथा आनंद की अभिव्यक्ति होती है।

चैती गीत : चैत्र मास में चैती गाने की प्रथा है। यह मास हिंदूधर्म में नववर्ष का माह होता है जिसमें श्रृंगार रस के गीत प्रायः होते हैं।

3. **पर्व गीत** : हर व्रत के साथ कोई–ना–कोई लोक विश्वास, धार्मिक, पौराणिक बातें जुड़ी हुई हैं । इसका पूर्णतः श्रेय नारियों की व्रतनिष्ठा और धर्मनिष्ठा को ही जाता है। इन गीतों का अवशेष घर की बड़ी उम्र वाली औरतों के ही पास है, जैसे : छठ गीत, नागपंचमी गीत, बहुरा गीत, पिडिया गीत, गोधन गीत इत्यादि।

छठ गीत : यह पर्व चार दिनों का होता है। भैयादूज के तीसरे दिन से यह आरम्भ होता है। पहले दिन सेन्धा नमक, घी से बना हुआ अरवा चावल और कद्दू की सब्जी प्रसाद के रूप में ली जाती है। अगले दिन से उपवास आरम्भ होता है। व्रति दिनभर अन्न–जल त्याग कर शाम करीब 7 बजे से खीर बनाकर, पूजा करने के उपरान्त प्रसाद ग्रहण करते हैं, जिसे खरना कहते हैं। तीसरे दिन डूबते हुए सूर्य को अर्घ्य यानी दूध अर्पण करते हैं। अंतिम दिन उगते हुए सूर्य को अर्घ्य चढ़ाते हैं। पूजा में पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है– लहसुन, प्याज वर्जित होता है। जिन घरों में यह पूजा होती है, वहाँ भक्तिगीत गाये जाते हैं। अंत में लोगों को पूजा का प्रसाद दिया जाता हैं। इसमें विशेष प्रकार के नारियों द्वारा सूर्य के उदय होने का वर्णन मिलता है।

नागपंचमी गीत : श्रावण शुक्ल पंचमी को 'नागपंचमी' भी कहा जाता है। गांवों में यह पचौया के नाम से जाना जाता है। इस दिन नाग या सर्प देवता को दूध पिलाया जाता है तथा उनकी पूजा की जाती है। जहाँ सारी औरतें एकत्र होकर नागपंचमी का गीत गातीं हैं।

गोधन गीत : कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोधन (गोवर्धन) का व्रत मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियां गोबर से प्रतिमा बनाती है और इसे मूसल से कूटती हुई गोधन गीत गातीं हैं। यह गीत बहनों द्वारा भाइयों का पारस्परिक प्रेम की अभिवृद्धि करता है।

4. **जाति गीत** : अनादिकाल से जो हमारी जाति–व्यवस्था है उसमें उसी जाति के लोगों द्वारा गाए जाने वाले गीत होते हैं जो समाज में नयी सीख देता है। इसमें अलग–अलग जाति के अपने गीत होते हैं। जैसे : अहिरों के गीत, कहारों के गीत, गोड़ों के गीत, दुसाधों के गीत, धोबियों के गीत इत्यादि ।

अहीरों के गीत : भोजपुरी लोकगीतों में बिरहा की अपनी एक अलग पहचान है। यह बड़ा ही लोकप्रिय गीत है। अहीर लोगों का तो यह जातीय गान ही है। जब अहीर जवान ललकारते हुए बिरहा गाता है तो श्रोताओं के हृदय में एक विचित्र उत्साह पैदा हो जाता है। गायों को चराते समय, लाठी लेकर खेत पर जाते हुए सर्वत्र अहीर बिरहा को गाकर अपनी थकावट को मिटाते रहते हैं। इसके गायकी में दो दल होतें है तथा दोनों दलों में प्रतिद्वंद्विता होती है। जो दल बिरहा गाने में असमर्थता प्रकट करता है वह दल पराजित समझा जाता है। इसकी गायकी इतिहास में हुई घटनाओं पर आधारित होती है तथा इसमें वीर रस की प्रधानता होती है।

कहारों के गीत : अब यह प्रथा लुप्त होने के कगार पर है। इसे गाँवों में कहीं–कहीं देखा जा सकता है। कहार डोली या पालकी ढोने का कार्य करते हैं।

दूल्हा को दुल्हन के घर और दुल्हन को दूल्हा के घर पहुँचाने का काम भी कहार करते हैं। कहार पालकी उठाकर जब चलते हैं तब श्रृंगार–रस के रसीले गीतों से अपनी सवारी को रास्ते भर गुदगुदाते चलते हैं। इनके गीतों को "कहरूवा" भी कहते हैं। ये नाचते समय हुडुक बजाते हैं।

गोड़ों के गीत : इस जाति का पुरूष वर्ग पानी भरता है, लकड़ी चीरता है, मजदूरी करता है। इनकी स्त्रियाँ भाड़ झोंकने का कार्य करती हैं। ये विशेष अवसरों पर एक प्रकार का 'नाच' नाचते हैं जिसे 'गोड़ऊ' नाच कहा जाता है। इसमें हुडुका वाद्य का प्रयोग करते हैं। यह नाच लोक नृत्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

5. **श्रम गीत** : श्रम गीत में पुरूष या स्त्री कार्य करते समय जो गीत गाते हैं तथा इस गीत में उस कार्य का वर्णन करती रहती हैं वो श्रम गीत कहलाता है। जैसे : जांत, रोपनी, सोहनी, चरखा, दवनी, कटनी इत्यादि।

जांत के गीत : चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें जांत के गीत या 'जँतसार गीत' कहते हैं। जांत के गीत आटा पीसने की थकावट को दूर करते हैं। इसमें श्रृंगारिक शब्द और स्त्रियों द्वारा गायकी में मधुरता सुनने को मिलती है।

रोपनी के गीत : गाँव में स्त्रियाँ धान की रोपनी करते समय जो गीत गाती हैं उसे 'रोपनी' गीत कहते हैं। रोपनी के समय में स्त्रियाँ धान के हरे पौधों को लेकर खेत में रोपती जाती हैं और अपने सुंदर गीतों से जलसिक्त श्रोताओं को रस सिक्त बनाती जाती हैं।

सोहनी के गीत : खेत में आषाढ़ में बोये हुये पौधे जब अच्छी तरह से जम जाते हैं तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे व्यर्थ पौधों को खुरपी या हसियां से काट कर फेंक दिया जाता है।इसी कार्य को करते वक्त स्त्रियाँ थकावट को दूर करने के लिए कलकंठ से गीत गाती जाती हैं तथा उनका समय भी अच्छे से कट जाता है।

6. **विविध गीत** : कुछ ऐसे गीत जो उपर्युक्त वर्गीकरण के अंतर्गत नहीं आते, उन गीतों को उस वर्गीकरण में रखा जाता है। इस गीत में अधिकांशतः श्रृंगार रस, करुण रस,वीर रस और हास्य रस के तत्वों को पाया जाता है। इन गीतों की भाषा–शैली स्थानीय जनपदीय होती है। इसके अन्तर्गत भजन, निर्गुण, कथाएं ,पूर्वी, इत्यादि आते हैं।

भोजपुरी लोकगीतों को इकट्ठा करने में कई विद्वानों ने योगदान दिया है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक जार्ज ग्रियर्सन (The Linguistic Survey of India) ने कुछ भोजपुरी लोकगीत को इकट्ठा किया।[5] इसमें श्रृंगारिक शब्द और मधुरता स्त्रियों द्वारा गायकी में देखने को मिलती है।

निष्कर्ष :

भोजपुर प्रान्त के भोजपुरी लोकगीत बहुत ही समृद्ध हैं। जिसमें जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक के लोकगीत समाहित होते हैं तथा जीवन यापन के जो विभिन्न कार्य हैं उनके भी लोकगीत मिलते हैं। ये भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। इसका मौखिकी रूप ही ज्यादातर प्राप्त होता है। वर्तमान स्थिति में अब लोकगीतों का स्वरूप बदलता जा रहा है । अब ये केवल गांवों में सुनने को मिलते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. उपाध्याय, डॉ० कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ. 111
2. वही, पृ. 12
3. कपूर, डॉ० विजय, भोजपुर क्षेत्र की प्रचलित गीत विधायें, लुमिनस बुक्स, वाराणसी, 2016, पृ. 3
4. उपाध्याय, डॉ० कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ. 124
5. वही, पृ. 45

Helping SDG for health through Social Media : Analysis of Instagram reels

Dr. Paramveer Singh** **Mayank Bhardwaj***

Abstract

Thebroad goal of this study was to understand the Instagram reels uploaded by different accounts that are making content related to health and health literacy.It is a netnography. Five Instagram accounts were selected by different hashtags related to health #healthtips, #pregnancy, #menstrualhygiene, and #menstruation. The first ten reels from each account were selected and analysed.Reels of home remedies were mainly found. Apart from that, dos, and don'ts during pregnancy and in daily life were also a major theme. Breaking the taboo about the period was also found in these reels. Social media can be used for the promotion of health literacy and these accounts are doing so but mis/disinformation is also associated with the path of health literacy through social media.

Keywords : *digital health literacy, health literacy, health communication, social media, content creators*

Methodology : *The study uses qualitative content analysis of Instagram reels to identify patterns, schemas, and themes using an inductive approach. A total of five Instagram accounts were identified for the study using the following filters:*

(1) Created by an Indian content creator.

(2) Hashtags used: #healthtips, #pregnancy, #menstrualhygiene, #menstruation.

(3) Language: Hindi and English

(4) Follower count: 20,000 and above

The paper engages Instagram account analytics to establish the reach of the same and then analyses the first ten reels from the grid of the respective accounts for qualitative analysis. The videos were watched by two separate coders and themes were developed using inductive method.

Introduction

In 2017, affordable internet was introduced in India with 4G services by different telecom operators. This event not only brought pocket-friendly internet, but the internet has become faster. This incident accelerated mobile phone ownership across the country. The government also put its efforts into covering the country with the Internet. The corona pandemic was a very big reason for the boom in mobile phone ownership and the pandemic also increased the stats of internet usage. With the combined effects of these incidents, internet access, as well as mobile phone ownership in India, is the highest in history in current[1]. According to the Telecom Regulatory Authority of India, as of August 2022, total telephone subscribers are 1175.08 million and the total number of broadband subscribers is 813.94 million[1].

The increase in mobile phone ownership and internet access resulted in the increase of users of different social networking sites like Facebook, Instagram, and WhatsApp among others. Currently, Facebook, Instagram, and WhatsApp are 314.6 million, 229.55 million, and 487.5 million respectively[3-5]. With digital health literacy, patients can keep their health at a higher level. The benefits are many with digital health literacy, telemedicine, and tele-consultancy,

*Junior Research Fellow, Department of Mass Communication and Media Studies, Central university of Punjab, Bathinda

**Assistant Professor, Department of Mass Communication and Media Studies, Central university of Punjab, Bathinda.

being some prominent benefits along with awareness. The penetration of mobile phones at such a large level can be very helpful in the promotion of health literacy[6]. International organizations like UNICEF, WHO etc. to Indian government are focusing on digital media to enhance the health situation. The World Health Organisation has a Global Strategy for Health 2020-2025, to achieve health-related SDG but with the help of digital media as well as UNICEF suggests that there should be a common organizational vision for digital health[7,8]. Tracking vaccination through apps and websites, providing frontline health workers like ANM, ASHA, etc. with different apps, Aayushman Bharat Mission, and use of electronic health records among others are some digital health initiatives by the Indian government[9,10].

Different formats of content can be very helpful for promoting health literacy. Such a format is the podcast. A podcast is a conversational audio recording available online[11]. There are other formats also available in social media ranging from animated videos to texts[12]. In this race, small videos called reels are gaining much popularity among users. Reels are videos in portrait style up to 90 seconds long. They now feature a suite of editing tools and audio tracks as well as trending voice and sound snippets. Reels allow you to add captions, stickers, and backgrounds; upload multiple video clips; use a range of filters; and load more[13].

Social media and health

Social media can be used by health professionals, patients as well as the public. It is a very promising tool in health promotion. The top social media platforms have unique qualities which people must utilize to educate people[14]. Social media has benefits like it increases interactions with others, more availability of information, it widens access to health information, support from a peer group, surveillance of public health and it can also influence public policy making. Social media can be very effective in developing and transmitting target-based tailored messages and at the same time, the social media users can give their fast feedback[15]. Comment, share, contribute, and remix the existing content differentiate social media from other communication mediums. It helps health communication in messaging one-to-one and many-to-many simultaneously. The users are not passive consumers, but they are also content creators[16]. Social media can make it more likely that screening or treatment interventions are accessed when necessary, including information on where to get care, when to get it, and how to get it if you get sick. Social media platforms and networks offer peer support that can lessen symptom burden and improve quality of life for noncommunicable diseases like diabetes, chronic communicable diseases like HIV, and mental health disorders like depression. They also spread knowledge about efficient treatments and aid in the promotion of recovery from illness[17]. Social media has improved communication within organisations and between people, and it has the potential to improve communication about public health. The state health departments of USA are using social media platforms; at least they are using one social media platform. These social media platforms are being used by state health departments to distribute and circulate information rather than creating direct conversations and engaging with the audience[18].

Social media adds a new dimension to healthcare by providing a platform for communication about health issues between the public, patients, and healthcare professionals, with the ability to perhaps improve health outcomes. Social Media is a potent instrument that fosters user participation and serves as a platform for social contact for a variety of people.Although there are many advantages to

using social media for health communication, the material shared must be checked for validity and dependability, and users' privacy and confidentiality must be protected.

Instagram is very popular among adults and participants engagement and can build community support. Instagram accounts can influence their decision-making also. So, it can be very helpful for digital health literacy[19]. The popular education on Instagram involves critical dialogue facilitation, creating educational content that is emotion on Instagram involves the facilitation of critical dialogue, the creation of educational content that is emotional and rooted in people's lived realities, and the complex negotiation of tensions in knowledge production. Is a bell Koinig in his research suggests that people want to consume those contents that either boost their esteem or carry a "human touch" in them[20-21].

Social media is very helpful for the promotion of health as established in different earlier studies. The popularity of Instagram reels can be very helpful for us. This paper will analyse Instagram reels that are on the theme of health and health awareness.

Finding and discussion

Since the Instagram accounts were searched through five different hashtags, the accounts were found to be uploading reels based on the theme and the name of their account. The metrics of the pages are mentioned in Table 1. Home remedies are a big theme of the reels. There are many advice for day-to-day life as well as disease centred in these accounts. The first account @healthy_india._has all the reels of home remedies whereas, in @Pregnancy.tips[22], precautions during pregnancy are the major theme. The account also helps first-time mothers in some reels. the page is very helpful for mothers. @periodtalkindia describes aspects of the period like unexpected timing of the period, PMS, mood swings, etc. The account also takes into consideration of menstrual literacy in its reels by teaching the use of menstrual cups. The fourth account is @ menstrual_hygienes. This account also uploads reels related to menstrual literacy. The reels of this account are about menstrual health and hygiene sessions in different schools among girls. The last account selected is @ pregnancytipsninfo. This account has reels related to home remedies. An interesting thing that was found in this account is that some of the reels are related to superstitious or traditional knowledge like dos and don'ts during pregnancy during an eclipse.

Home remedies appeared as the most common thing in these reels. Generally, home remedies are simply in the masses with tradition among people. So, it is very easy to communicate with others. The accounts are using both English as well as Hindi languages. It is helping in reaching a lot of audiences. Menstruation is still taboo in India. The accounts are tackling this problem very efficiently. The accounts are teaching the female students; this step will surely increase health literacy. Due to a lack of knowledge about periods, young girls are getting different diseases. Similarly, new mothers can get help through mentioned reels. However, the authenticity of information is a very prominent issue. Misinformation and disinformation can be highly dangerous in case of health.

Conclusion

Social media is highly growing all around the globe. the reach of social media can be used for promoting health literacy. Reels are very popular among social media users. In the analysis of Instagram reels of five health-related accounts, searched with different hashtags like pregnancy, period, menstruation, etc. home remedies appeared as a major theme of these reels. these home remedies are related to daily lifestyle, menstruation, pregnancy along with the taboo of periods. The reels are helping in breaking the taboo associated with periods.

However, in this era of social media, mis/disinformation is a major challenge that mustn't be overlooked.

Funding

This research did not receive any specific grant from funding agencies in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

The authors report there are no competing interests to declare.

References :

1. Katsumata S, Ichikohji T, Nakano S, Yamaguchi S, Ikuine F. Changes in the use of mobile devices during the crisis: Immediate response to the COVID-19 pandemic. Computers in Human Behavior Reports. 2022;5:2-12. doi:10.1016/j.chbr.2022.100168
2. TRAI. Highlights of Telecom Subscription Data. Press Release. 2022;67. Accessed April 26, 2023. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.trai.gov.in/sites/default/files/PR_No.67of 2022.pdf
3. Statista. Countries with most Instagram users 2023. Published 2023. Accessed April 26, 2023. https://www.statista.com/statistics/578364/countries-with-most-instagram-users/
4. Statista. WhatsApp users in selected countries 2021. Published 2021. Accessed April 26, 2023. https://www.statista.com/statistics/289778/countries-with-the-most-facebook-users/
5. Statista. Facebook users by country 2023. Published 2023. Accessed April 26, 2023. https://www.statista.com/statistics/268136/top-15-countries-based-on-number-of-facebook-users/
6. Desouza SI, Rashmi MR, Vasanthi AP, Joseph SM, Rodrigues R. Mobile Phones-The Next Step towards Healthcare Delivery in Rural India. PLoS One. 2014;9(8). doi:10.1371/journal.pone.0104895
7. World Health Organization. Global Strategy on Digital Health 2020-2025.; 2021.
8. UNICEF. UNICEF's Approach to Digital Health.; 2018.
9. Chellaiyan V, Rajasekar H, Taneja N. Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana -Ayushman Bharat. Indian J Community Health. 2020;32(2):337-340.
10. Niti Aayog. Vision 35: Public Health Surveillance in India A White Paper.; 2020. doi:10.6084/m9.figshare.14093323
11. Lowe-Calverley E, Barton M, Todorovic M. Can we provide quality #MedEd on social media? Trends Mol Med. 2022;28(12):1016-1018. doi:10.1016/j.molmed.2022.08.002
12. Devereux E, Grimmer L, Grimmer M. Consumer engagement on social media: Evidence from small retailers. Published online 2019. doi:10.1002/cb.1800
13. Day C. Instagram Reels: What Are They? And Do They Matter? | Agorapulse. Agorapulse. Published 2023. Accessed April 25, 2023. https://www.agorapulse.com/blog/instagram-reels/
14. Cooper BR, Concilla A, Albrecht JM, et al. Social Media as a Medium for Dermatologic Education. Curr Dermatol Rep. 2022;11(2):103-109. doi:10.1007/s13671-022-00359-4
15. Korda H, Itani Z. Harnessing Social Media for Health Promotion and Behavior Change. Health PromotPract. 2013;14(1):15-23. doi:10.1177/1524839911405850
16. Norman CD. Social media and health promotion. Glob Health Promot. 2012;19(4):3-6. doi:10.1177/1757975912464593
17. Schillinger D, Chittamuru D, Ramírez AS, Chittamuru FD, Ram?´rez AS. From "Infodemics" to Health Promotion: A Novel Framework for the Role of Social Media in Public Health AJPH METHODS. Am J Public Health. 2020;110:1393-1396. doi:10.2105/AJPH.2020
18. Thackeray R, Neiger BL, Smith AK, Van Wagenen SB. Adoption and use of social media among public health departments. BMC Public Health. 2012;12(1). doi:10.1186/1471-2458-12-242
19. Thomas VL, Chavez M, Browne EN, Minnis AM. Instagram as a tool for study engagement and community building among adolescents: A social media pilot study. Digit Health. 2020;6. doi:10.1177/2055207620904548
20. Koinig I. Picturing Mental Health on Instagram: Insights from a Quantitative Study Using Different Content Formats. Int J Environ Res Public Health. 2022;19(3). doi:10.3390/ijerph19031608
21. El-Zoheiry R. A Netnography of Digital Popular Education on Instagram: Arabic Sexual and Reproductive Health Education.; 2021.

Table 1: Metrics of the selected Instagram accounts

S. No.	Account name	Account id	Number of Followers	Number of total posts	About	No. of average views of reel*	No. of average shares of reel*
01	HEALTHY INDIA स्वदेशी	healthy_india._	222k	486	Daily Health & beauty tips Health Knowledge	89,289.1	1,378.3
02	PreGify??	Pregnancy.tips22	59.7k	193	Digital creator #newparent #pregnancytips #influencer #Nurse and midwife	29,680	178
03	Period Talk India	periodtalkindia	46.5k	2464	Breaking period stigma and smashing the shame around it.	24,031.3	300.4
04	Kusuma Rajput	menstrual_hygienes	82.6k	689	Give "Menstrual session"	12,780.6	30.4
05	Pregnancy Tips & Information??	pregnancytipsninfo	180k	1052	I Share Pregnancy Tips & Information for a healthy pregnancy as per my personal experience.	4,84,360	5,012.75

#First ten reels from 01-05-2023

अवध की लोक कला एवं लोक संगीत : एक अध्ययन

डॉ मधुमिता भट्टाचार्य** सविता पाण्डेय*

सारांश

लोककलाएँ, लोकमानस की अपनी सहज और सरल अभिव्यक्ति हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनी मौलिक परंपरा के द्वारा यह हस्तांतरित होती रहती है। लोक में प्रचलित कलाओं का अपना अलग महत्व है, जो हमारी भारतीय संस्कृति को और अधिक समृद्धशाली बनाती है। लोक कलाओं को आगे बढ़ाने में ग्रामीण अंचल का अधिक योगदान है। हमारे यहाँ की महिलाओं को इनके संरक्षण और संवर्धन का श्रेय देना उचित होगा। लोककला सिर्फ लोकमानस के सौंदर्यबोध की ही अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है अपितु लोकगीत, लोक नृत्य, लोक कथाएँ, लोक विश्वास, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ सभी सम्मिलित हैं। लोक कला जनसाधारण की कला है, जिसका भाव स्वच्छंद है और यह 'परजन सुखाय' यानि दूसरों के मनोरंजन का उद्देश्य इसमें निहित है।

सूचक शब्द : *अवध, लोक, कला, गोदना, महावर।*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों से सामग्री संकलित की गई है ।*

प्राचीन काल से ही अवध की पवित्र भूमि ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध रही है। अवध उत्तर प्रदेश का एक सुप्रसिद्ध अंचल है जिसकी लोककलाएँ एवं लोकसंगीत विश्व विख्यात है। अवध को 'कोसल', 'महाकोसल' कहकर भी सम्बोधित किया जाता था। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में राजा दशरथ को कोसलेस कहकर सम्बोधित किया गया है–

''कोसलेस दसरथ के जाए, हम पितु वचन मानि बन आए''।।[1]

इसी प्रकार, अवध का वर्णन चौपाइयों में भी प्राप्त होता है–

अवधपुरी मम पुरी सुहावनि, उत्तर दिसि सरजू बह पावनि।।[2]
अवधपुरी अति रुचिर बनाई, देव सुमन बृष्टि झरि लाई ।।[3]

अवध श्रीराम की जन्मस्थली है, जो पवित्र सरयू नदी के किनारे बसी हुई है। अवध क्षेत्र में गंगा, यमुना, घाघरा, गोमती, सरयू, राप्ती, गण्डक आदि कई नदियाँ प्रवाहमान हैं। यह एक धार्मिक और आध्यात्मिक भूमि है, जिसकी चर्चा गुणीजन करते रहते हैं।

बुद्ध के समय में कोसल के दो भागों का वर्णन प्राप्त होता है –'उत्तर कोसल' तथा 'दक्षिण कोसल'। कालिदास ने 'रघुवंश' में अयोध्या को उत्तर कोसल की राजधानी कहा है। उत्तर कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी और यहीं महाराजा वशिष्ठ और भृगु के आश्रम भी स्थापित थे। राजा दशरथ की रानी कौशल्या संभवतः दक्षिण कोसल (रायपुर, बिलासपुर) की राजकन्या थी ।

''कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान।
निविष्टः सरयू तीरे प्रभूत धन धान्यवान।।[4]

कोसल सरयू नदी के किनारे बसा एक धन धान्यवान देश था। 'निविष्टः' शब्द से यह ज्ञात होता है कि यह देश सरयू के दोनों किनारों पर बसा था। माना जाता है कि मानव जीवन में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना को जिसने जागृत किया वह महामानव ''मनु'' ही थे। महाराज मनु ने अयोध्या को ही अपनी राजधानी बनाया जिसे संसार के राजनीतिक इतिहास में प्रथम राजधानी होने का दर्जा प्राप्त हैं।

''मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयं''।।[5]

'अवध' अयोध्या का अपभ्रंश है। अवध की राजधानी प्रारम्भ में अयोध्या थी और 1920 ई से इसकी राजधानी 'लखनऊ' हो गयी हैं।

अवध क्षेत्र में 'अवधी' बोली जाती हैं। अवधी में प्रेम, सद्भावना और नैतिकता जैसे गुणों का समुचित संग्रह देखा जा सकता है। अवधी को साहित्यिक गरिमा का गौरव प्राप्त हैं। गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस'

*शोध छात्रा, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध–निर्देशिका, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हो, 'गीतावली' हो या मलिक मोहम्मद जायसी की 'पद्मावत' हो, ये अवधी के गौरव ग्रंथ हैं जिनमें अवध की छवि पूर्णतया देखने की प्राप्त होती हैं। इस भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रेष्ठतम साहित्य का विशेष दर्जा प्राप्त हैं। 20वीं शताब्दी के आधुनिक अवधी साहित्यकारों ने इस भाषा को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अवध को 'मध्य देश' भी कहा गया है। इस कारण यहाँ चारों दिशाओं से सुंदर संस्कृतियों का समाहार भी देखा जा सकता है। विश्वभर के सुंदर विचार अवध के भीतर प्रवेश करते हैं। अवध में विभिन्न प्रकार की लोक कलाएँ प्रचलन में है।

वेदों में प्राचीन अवध की वास्तुकला का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है–

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पुरअयोध्याः।
तस्या हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।[6]

इसमें कहा जा रहा है कि अयोध्या में आठ महल, नवद्वार और लौहमय धन भंडार है एवं इसकी रचना स्वर्ग की भाँति समृद्धिपूर्ण हैं। प्राचीन काल के इस श्लोक से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि अवध (अयोध्या) का इतिहास अत्यंत समृद्धपूर्ण रहा हैं। यहां की कलाओं का अपना अलग ही अस्तित्व रहा है जो वर्तमान में भी स्वयं को सुशोभित कर रहा हैं।

'लोक' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है संसार। अंग्रेजी में इसे FOLK कहते हैं। सामान्यतः लोक शब्द के दो अर्थ प्रचलित है पहला समाज और दूसरा जन समुदाय। जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान के अनुसार, इस ब्रह्माण्ड में तीन लोक हैं। कहा जाता है कि स्वर्ग, नर्क और धरती या पृथ्वी ये तीन लोक है। विष्णु पुराण के अनुसार धरती के नीचे भी 7 लोक है– अतल, वितल, सुताल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

''डॉ0 सत्येन्द्र के अनुसार, लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्व की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।।[7]

लोक के बाद लोक से जुड़ा एक सुंदर शब्द आता है 'कला', दोनों को जोड़नें पर 'लोककला' शब्द का निर्माण होता है। लोक कला, लोक या जन समुदाय की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। अधिकतर लिखित तौर पर यह नहीं रहती पर मौलिक परम्परा के द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है। लोक कला, लोक शब्द से ही जुड़ा हुआ है और लोक को आगे बढ़ाता है। अंग्रेजी में इसे 'FOLK ART' कहते हैं।

'Folk Art Creation is a free and unfetterd record of The Human Spirit and The Human Mind' - (Karel Saudek)

गोस्वामी तुलसीदास के विभिन्न ग्रन्थों में अवध की लोक–कला का वर्णन देखने को मिल जाता है। प्राचीन काल से ही भारत में लोक कलाओं को सहेजने का कार्य किया जाता रहा है। लोक–कला किसी भी युग की सभ्यता के प्रतीक को खुद में समाहित किये होती है।

इस लोक–कला की परम्परा को आगे बढ़ाने में हमारे ग्रामीण अंचल की महिलाओं का बहुत योगदान हैं। लोक–कला समाज के रीति–रिवाजों पर आधारित हैं। इसका सम्बन्ध परम्परागत धाराओं, विश्वासों, आस्थाओं और संकेतों पर केंद्रित है। हमारी सांस्कृतिक भावनाओं से भी ये लोक कलाएँ जुड़ी हुई हैं।

समाज के विभिन्न रीति–रिवाजों, विवाह संस्कार, धार्मिक समाज, पूजन इत्यादि अवसरों पर इन लोक कलाओं को शामिल किया जाता है एवं समयानुसार रीतिरिवाजों में परिवर्तन होने पर लोककला में भी परिवर्तन देखने को मिलता हैं। लोककला के लिए विशेष शिक्षा–दीक्षा की आवश्यकता नहीं होती अपितु परम्परागत रूप से प्रचलित रीतियों, मान्यताओं एवं अलंकारों को कलाकार स्वयं में समाहित कर लेता है। लोक–कला को स्थानीय कला भी कह सकते हैं। किसी भी अंचल की लोक कला वहाँ के तत्कालीन लोक मानस, सामाजिक–धार्मिक परिस्थितियों एवं रीतियों पर निर्भर करते हैं।

अवध में प्रचलित कुछ मुख्य लोक–कलाएँ इस प्रकार हैं–

नवरात्रि में देवी चौक पूजन– नवरात्रि एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है 'नौ रातें'। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक 'नौ दिन' नवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है। ये नौ दिन धार्मिक दृष्टि से बड़े ही पवित्र माने जाते हैं । इन दिनों 'दुर्गा' जिसे 'शक्ति' के रूप में हम सभी विधा–विधान से पूजते हैं। इनके पूजन के लिए पवित्र स्थान से मिट्टी

लाकर वेदी बनायी जाती है, और उसमें जौ व गेहूं बोया जाता है। वेदी पर पीतल, ताँबे या मिट्टी का कलश स्थापित कर उसमें शुद्ध जल भरा जाता है। कलश पर स्वास्तिक बनाया जाता है जिसे भारतीय संस्कृति में मंगल–प्रतीक चिन्ह के रूप में जाना जाता है। कलश को पवित्र जल से भरकर आम्र के पत्तों से उसको ढकते हैं एवं स्थापित कलश को गोबर से गोठते भी हैं । उसके पश्चात् कलश पर घी या तिल के तेल का दीपक जलाते है और भगवती का आह्वान करते हैं।

कलश स्थापना मंत्र –

ऊँ आजिग्घ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरुर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्त्रं धुक्ष्वोरूधारा
पयस्वती पुनर्मा विराताद्रयिः ।।[8]

कलश को स्थापित करते समय महिलाएं विभिन्न प्रकार के प्रचलिए देवी गीतों को भी गाती हैं जैसे–

सोने के मंदिरवा से निकरै शीतला मईया हो
चमकत आवे ना, चमकत आवे ना
वनके सिर के चुनरिया हो
चमकत आवे ना।
निमिया की डरियाँ मैया डारी हैं हिंडोलवा कि झूलि–झूलि ना
मइया गावै लागी गितिया कि झुलि–झूलि ना।

थाप चित्रण– इस अंचल की लोकसंस्कृति में मांगलिक कार्यों में थाप लगाने की लोक कला प्रचलित है। इसमें हाथ के पांचों अंगुलियों को हल्दी या चंदन के गाढ़े पानी या लेप में डुबाया जाता है और इसके बाद चित्र दीवार पर उभारे जाते है। लड़की विवाह के बाद जब वह ससुराल जाती है तो इस अवसर पर नई बहु से यह रीति करवाने की परम्परा हैं।

गांवों में मुख्य द्वार के दोनों ओर थापों के द्वारा घेरा बनाया जाता है जिससे घर अलंकृत तथा सुरक्षित रहे। थापों का प्रयोग आशीर्वाद, देवप्रतीक, कल्याण, मंगल सूचना तथा अलंकरण के रूप में होता है। इसका संबंध देवी पार्वती के हाथों के छाप से माना गया है। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को वट सावित्री का व्रत सुहागिन औरतों के द्वारा अटल सुहाग की कामना के लिए किया जाता है जिसमें सुहागिनें वट वृक्ष को थाप लगाकर पूजन–अर्चन करती हैं। इस प्रकार लोक में थाप अलंकरण का विशेष महत्व हैं।

अपने अमर सुहाग के लिए महिलायें गीत गाती हैं–

जैसे– बरगद बाबा कै फेरी लगावौं।
पहिली फेरी म माँगों माँगि कै सेन्हुरा,
दूसरी फेरी म चूड़ी भरि बाँहि,
बाबा कै फेरी लगावौं।[8]

गोदना– गोदना इसे 'अंकन' या 'पछेना' भी कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में गोदना प्राचीन प्रथा है। एक समय था जब स्त्रियाँ शरीर के खुले अंगों को लीला गुदवाने वाली से लीला गुदवा कर अलंकृत करती थी। राम की कथाओं और भगवान कृष्ण की लीलाओं में भी गोदना वाली कथा का वर्णन है। भारत में ग्रामीण वातावरण की महिलायें गोदना गोदवाना अधिक पसंद करती हैं। आजकल आधुनिक समय मे यह TATOO के नाम से बहुत प्रसिद्ध है एवं पुरुष और स्त्रियां दोनों ही इसमें रुचि लेने लगे हैं। हमारे यहाँ लीला गुदवाने की प्रथा अति प्राचीन है। पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने भी लीला गुदवाने वाली का रूप धारण किया था। अरब, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका, पोलिनेशिया आदि देशों में भी शरीर गुदवाने की प्रथा हैं। हमारे यहाँ इसे सौभाग्य का सूचक माना जाता है। महिलायें किसी पर्व, मेले, पर जब जाती हैं तो गोदना गोदवाती हैं। इसमें अपना, अपने नाम का पहला अक्षर, ऊँ या कोई भी प्रतीक चिन्ह, देवी–देवताओं का नाम, फूल –पत्ती, अपने माता–पिता का नाम आदि गोदवाया जाता है। अयोध्या क्षेत्र में गोदना के लिए एक कहावत प्रसिद्ध है– 'गोदना कै दाम गोहनवे जाय' अर्थात् सब पैसा, धन–दौलत भौतिक वस्तुएं यहीं रह जाएंगी परंतु जो पैसा गोदना गोदवाने में लगा है वह मृत्यु के बाद भी शरीर के साथ जाता है। इसीलिए एक हाथ में ससुराल के पैसे से तथा दूसरे हाथ में मायके के पैसे से बहु–बेटियाँ हाथ में गोदना–गोदवाती है। गोदना का एक प्रचलित गीत–

"गोदनवा गोदइबे रे गोदना
गोदै गोदनहारी रे
माथे पे लिख दे
राम लला, तीरथ सारी बखान दे
राम के माथे रची रची दे, सूरजवंशी आन रे"।।

महावर– यह सोलह श्रृंगार के अंतर्गत आता है। अवध में यह लोक कला स्त्रियो द्वारा व्रत, त्योहार पूजा–पाठ एवं शुभ कार्यों में प्रयोग किया जाता है। पुरुषों को भी शुभ

कार्यों में महावर लगाया जाता है। गुलाबी और पीले रंग को मिलाकर रंग बनाया जाता है जिसे 'आलता' कहते हैं। यह सुहागिन स्त्रियों के सुहाग की निशानी है। जिन स्त्रियों का विवाह नहीं हुआ रहता वह पूरी एड़ी भरकर रंग नहीं लगाती। विवाह के बाद ही एड़ी भरकर रंग लगाया जाता है। महावर लगाने की अनेक विधि प्रचलित हैं– चिरैया, लहरिया, अंगूठे वाला, छल्ला वाला आदि। महावर की कला पैरों को सुसज्जित करती हैं। इससे पैरों की शोभा बढ़ जाती है। पूजा पाठ, विवाह, कथा, त्योहारों आदि पर स्त्रियाँ महावर लगाती है। विवाह के समय एक लोकरीति है, जिसे 'नहछू' कहा जाता है। इस रीति में नाउन सबसे पहले मंडप में बैठी दुल्हन के नाखून काटती है तथा महावर लगाती है –

"बन्नी बैठी मंडप के बीच
नाउन चाची रंग लगाए
रंग लगाए, नेग नेहछू मांगे
दादी रानी रुपइया लुटाए"।।

इस प्रकार अवध क्षेत्र में कई सारी लोक कलाएँ प्रचलित हैं, जो हमारी संस्कृति की द्योतक है। इन लोक कलाओं से संबंधित लोकगीत बहुत ही मधुर हैं जो लोक के वातावरण को शोभित करते रहते है और हमारी परंपराओं को सहेजे हुए हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
2. वही, उत्तरकाण्ड
3. वही, उत्तरकाण्ड
4. देवी, राधिका, अयोध्या की लोक कला : एक अध्ययन, पृ. 48
5. वही, पृ. 47
6. अथर्ववेद, पृ. 102/31
7. सत्येन्द्र, (डॉ.), लोक साहित्य विज्ञान, पृ. 03
8. गीता प्रेस, नित्यकर्म, पूजा प्रकाश, पृ. 202
9. सिंह, डॉ. विद्या विंदु, अवधी लोकगीत विरासत, पृ. 134

मधुमेह टाइप–II के प्रबंधन में यौगिक चिकित्सा और लययोग : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. विजय कुमार श्रीवास्तव** **डॉ. कन्चन चौधरी***** **सोनिका***

सारांश

वर्तमान समय में मधुमेह टाइप–II बीमारी महामारी का रूप लेती जा रही है। जो भारत देश के साथ–साथ पूरे विश्व में भी तेजी से फैल रही हैं। मधुमेह टाइप–II एक चयापचय–संबंधी विकार है जो इंसुलिन नामक हार्मोन की मात्रा में कमी से होता है । प्रस्तुत शोध मधुमेह टाइप–II कैसे होता है, क्या है एवं उसके कारण व लक्षणए लययोग और यौगिक चिकित्सा का अध्ययन किया गया है। अमेरिकन डायबिटीज एसोसिएशन के अनुसार विश्व में 2020 में मधुमेह टाइप–II का प्रसार 537 मिलियन था, जो 2030 तक 643 मिलियन और 2045 तक 783 मिलियन तक बढ़ने का अनुमान है। वर्तमान समय में मधुमेह टाइप–II रोग एक गंभीर समस्या है। आसन व प्राणायाम यौगिक चिकित्सा मधुमेह टाइप–II केउपचार प्रबंधन में सहायक हो सकते है। यह शोध–पत्र मधुमेह टाइप–II के प्रबंधन में लययोग और यौगिक चिकित्सा की उपयोगिता के लिए प्रस्तुत किया गया है।

कूट शब्द : *मधुमेह टाइप–II, यौगिक चिकित्सा, आसन, प्राणायाम, लययोग।*

प्रविधि : *पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों के अध्ययन के बाद विश्लेषण कर शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

प्रस्तावना–

वर्तमान समय में मधुमेह टाइप–II एक बड़ी चुनौती बन चुकी है इसकी प्रस्तावित चिंता दुनिया भर में तेजी से बढ़ रही है। अमेरिकन डायबिटीज एसोसिएशन के अनुसार दुनिया भर में 537 मिलियन लोग मधुमेह टाइप–II से रोग से ग्रसित हैं जबकि भारत देश में 77 मिलियन मधुमेह रोगी है 2045 तक भारत में 134 मिलियन लोग मधुमेह टाइप–II रोग से ग्रसित हो जाएगें।[1] मधुमेह टाइप–II एक ऐसी बीमारी है जिसमें शरीर में रक्त शर्करा का स्तर बढ़ जाता है और इंसुलिन नामक हार्मोन्स शर्करा का संपादन करने में असमर्थ रहता है । यदि हमारे शरीर में रक्त शर्करा काफी अधिक मात्रा में बढ़ जाए तो मधुमेह से सबंधित बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे हृदय रोग, किडनी रोग आदि । मधुमेह एक असंतुलित जीवनशैली–संबधी रोग है जिसके कारण मधुमेह रोग उत्पन्न होता है । मधुमेह के इलाज में यौगिक चिकित्सा के साथ–साथ यौगिक दिनचर्या भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[2]

अध्ययन की आवश्यकता–

मधुमेह टाइप–II वर्तमान समय में महामारी का रूप लेती जा रही है। पूरे विश्व के साथ–साथ भारत में भी इसके आँकड़े दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। मधुमेह टाइप–II रोग में बढ़े हुए ग्लूकोज स्तर को आसन व प्राणायाम के अभ्यास से कम किया जा सकता है जिसके लिए वर्तमान समय में वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। इसलिए वर्तमान समय में यौगिक चिकित्सा को मधुमेह टाइप–II के प्रबंधन के लिए अपनाया जाना चाहिए।

मधुमेह क्या है?

मधुमेह एक चयापचय–सम्बन्धी रोग है जिसमें शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उपयोग ईधन के रूप में नहीं हो पाता है। जब भी कोई पदार्थ हम अपने भोजन में ग्रहण करते हैं, तो हमारा शरीर उसे ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है। यही ग्लूकोज शरीर के सभी अंगों, कोशिकाओं व विभिन्न प्रक्रियाओं को चलाने हेतु ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। ग्लूकोज को कोशिकाओं के अंदर

*पीएच. डी. (योग शोधार्थी), पंचकर्म विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सहायक आचार्य, पंचकर्म विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
***सहायक आचार्य, स्वास्थ्यवृत एवं योग विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रविष्ट होने के लिये इन्सुलिन हार्मोन्स की आवश्यकता होती है । यदि इन्सुलिन का उत्पादन अल्प मात्रा में होता है तो कोशिकाएँ ग्लूकोज के होते हुए भी ईधन रूप में उसका उपयोग करने में असमर्थ होती है, इसके परिणामस्वरूप कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पाने से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ने लगती है। इसी अनियमित एवं उच्च शर्करा स्तर की अवस्था को मधुमेह कहा जाता है।[3]

मधुमेह के प्रकार–

टाइप–I डायबिटीज– यह मुख्यतः बच्चों में पायी जाती है। इस अवस्था में पैंक्रियाज इन्सुलिन का उत्पादन बंद कर देती है। इस स्थिति में कोशिकाओं को ग्लूकोज मिलना बंद हो जाता है जिससे उन्हें दैनिक इंसुलिन इंजेक्शन की आवश्यकता पडती है। इस प्रकार के मधुमेह को टाइप–I मधुमेह कहा जाता है।

टाइप–II डायबिटीज– पाचन तंत्र और पैंक्रियाज ग्रन्थि का सुचारू रूप से कार्य ना कर पाने के कारण यह डायबिटीज होता हैं। इस अवस्था में पैंक्रियाज इन्सुलिन का स्राव तो करती है लेकिन शरीर की आवश्यकता से कम करती हैं या कोशिका स्तर पर इन्सुलिन की निष्क्रियता पाई जाती है जिसके कारण शरीर में रक्त शर्करा का स्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है और फिर इस रोग की जटिलताएँ विभिन्न अंगों में दिखाई पड़ने लगती है। यदि रोगी पुनर्जीवन प्रदान करने वाले योगाभ्यास को नियमित रूप से करे तो इस रोग से सम्बन्धित स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त कर सकता है।

मधुमेह टाइप–II के कारण–

1. अनियत्रितं जीवन शैली– अत्यधिक भोजन एवं व्यायाम की कमी, मोटापा, अनियत्रितं जीवन शैली के फलस्वरूप पाचन प्रणाली निर्जीव हो जाती है। भोजन में अत्यधिक शर्करा तथा वसायुक्त पदार्थो का उपयोग करना भी इसका मुख्य कारण है। जिसके कारण बढ़े हुए रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने हेतु पैंक्रियाज को अत्यधिक मात्रा में इन्सुलिन स्रावित करना पड़ता है। इसी बढ़ी हुई रक्त शर्करा की मात्रा को मधुमेह टाइप–II की अवस्था कहा जाता है।[4]
2. मानसिक स्तर पर तनाव ग्रस्त होना– आधुनिक मनुष्य प्रणाली तकनीकी उपकरणों पर आधारित है, जिसके कारण मनुष्य में तनाव, चिंता, अवसाद, जैसे– मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं। आज आरामदायक जीवनशैली के कारण उसका मानसिक अभिव्यक्तिकरण नहीं हो पाता है जिसे तनाव भौतिक स्तर के साथ–साथ मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर स्थानांतरित हो जाता है जिसके कारण व्यक्ति के शरीर में हार्मोन्स सबंधित बदलाव होते हैं। तनाव रक्त प्रवाह को अनियंत्रित करता है जिसके कारण शरीर के रक्त प्रवाह में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है।
3. कोशिका द्वारा ग्लुकोज अवशोषित न करना– इन्सुलिन पैंक्रियाज ग्रन्थि की बीटा कोशिका से निकलता है इसका कार्य ग्लूकोज को कोशिकाओं में प्रवेश कराना है। वर्तमान समय में व्यक्ति की जीवन–शैली अस्त व्यस्त हो गई है जिससे व्यक्ति शारीरिक अभ्यास नहीं कर पाता है जिसके कारण इन्सुलिन हार्मोन शरीर में पर्याप्त मात्रा में होने के बाद भी वह ग्लूकोज को अवशोषित नहीं कर पाता है और शरीर में ग्लूकोज का स्तर बढ़ता जाता है।[5]

यौगिक चिकित्सा और लय योग द्वारा मधुमेह टाइप–II का उपचार–

मधुमेह टाइप–II के प्रबंधन में आसन और प्राणायाम का महत्वपूर्ण योगदान है। आसन के अभ्यास से कोशिकाओं की ग्लूकोज ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाई जा सकती है और इसके साथ–साथ प्राणायाम द्वारा रक्त में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ने से रक्त की शुद्धि होती है। महर्षि पंतजलि ने योगसूत्र में आसान के बारे में चर्चा की है।

''स्थिरसुखमासनम्।'' 2/46 (यो0 सू0)

अर्थात् स्थिर और सुखपूर्वक जिस स्थिति में बैठा जाए वह आसन है। आसन से हमें शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है और शरीर में दृढ़ता आती है।[6]

मधुमेह टाइप II के प्रबंधन लिए योग आसन :

1. **पवनमुक्तासन विधि**– सर्वप्रथम पीठ के बल लंबवत लेट जाएँ, दोनों घुटनों को मोड़ते हुए श्वास छोड़े तथा दोनों घुटनों को अपने वक्षस्थल की ओर लेकर आएं। दोनों हाथो की उगंलियों को आपस में मिलाते हुये पैरों को पकड़े और नासिका को घुटने से लगा दे। इस स्थिति को पवनमुक्तासन कहते है।

लाभ–

यह पैंक्रियाज ग्रथिं की सक्रियता को बढ़ाता है।

पेट के आंन्तरिक अंगो एव पाचन प्रणाली को सक्रिय करता है।

2. **पश्चिमोत्तानासन विधि**– जमीन पर दोनों पावों को सामने फैलाते हुए दण्ड आसन में बैठ जाएं और दोनो अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर, ललाट प्रदेश को घुटनों पर अच्छी तरह रखे इसे पश्चिमोत्तानासन कहा जाता है।[7]

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दोर्भ्या पदाग्रद्धितय गृहीत्वा।
जानूपरिन्यस्तललाटदशो वसेदिंद पश्चिमतानमाहुः।।
1/28 (ह0/प्र0)

लाभ–

यह आसन सम्पूर्ण अमाशय के रोगों को नष्ट करता है।

योग चिकित्सा में इसका उपयोग मधुमेह, यकृत कोलाइटिस के उपचार के लिये किया जाता है।

3. **भुजंगासन विधि**– सर्वप्रथम पेट के बल लेट जाएँ, दोनों हाथो को कंधों के नीचे रखिये तथा अपने दोनों पैरों को आपस में मिला लें। धीरे–धीरे श्वास अंदर लेते हुये सिर और छाती को नाभि क्षेत्र तक ऊपर उठाएं। इस अभ्यास को भुजंगासन कहा जाता है।[8]

अङगुष्ठनाभिपर्यन्तमधोभूमौ च विन्यसेत्।
धरां करतलाभ्यां धृत्वोर्ध्वशीर्श फणीव हि।।
देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्,
जागर्ति भुजग्डीदेवी भुजग्ङासनाधनात् ।। 43।।

लाभ–

यह आसन इन्सिुलिन हार्मोन्स के स्राव को बढ़ाता है।

शरीर में रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करता है।

लययोग द्वारा मधुमेह टाइप–II की चिकित्सा–

लययोग एक प्राचीन योग मार्ग पद्धति है। लय योग के संबध में योगराज उपनिषद् में वर्णन मिलता है–

साध्यते मन्त्रयोगस्तु वत्सराजदिभिर्यथा ।
कृशणद्वैयनाधैस्तु साधितो लयसंज्ञितः।।

लययोग का अर्थ–मन को लय कर देना है। मन को लय करने के पश्चात् साधक अर्न्तमुखी होकर भीतरी शब्दों को सुनने का प्रयास करता है, जिसे नाद भी कहा जाता है। जिसका वर्णन नाद बिन्दु उपनिषद में मिलता है। इस नाद को सुनने के लिए दाहिने अँगूठे से दाहिने कान को और बाँये अँगूठे से बाँयें कान को बंद कर नाद को सुना जाता है।

जिससे व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। मधुमेह टाइप–II के रोगियों में ग्लूकोज स्तर बढ़ने का कारण तनाव भी है। लय योग के अभ्यास से तनाव के स्तर के साथ–साथ ग्लूकोज के स्तर को भी कम किया जा सकता है। अगर मधुमेह टाइप–II रोगी अपनी दिनचर्या में लय योग के अभ्यास को अपनाते हैं तो वह मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ शारीरिक स्वास्थ भी प्राप्त कर सकते है और बढ़े हुए ग्लूकोज स्तर को कम कर सकते हैं।

परिचर्चा– मधुमेह टाइप–II एक चयापचय–सबंधी विकार है जिसमें शरीर की कोशिकाएं ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पाती है। जिसे इन्सुलिन रेजिस्टेंस भी कहा जाता है। जिसके कारण शरीर में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। यौगिक अंजलि देशपांडे (2018) में मधुमेह रोग और यौगिक चिकित्सा का अध्ययन किया गया था जिसमें यह पाया गया कि मधुमेह सहित विभिन्न जीवनशैली–संबंधी बीमारियों में यौगिक उपयोगी हैं।[9] अन्य शोधकार्य में यह भी पाया गया कि योगाभ्यास से इन्सुलिन की संवेदनशीलता में सुधार होता है और कोशिकाओं को पुर्नजीवित किया जा सकता हैं।[10] अगर सामान्य व्यक्ति लय योग और यौगिक चिकित्सा को अपनी दिनचर्या में शामिल करता हैं तो वह निश्चित रूप से असंतुलित जीवनशैली–संबधी सभी रोगो का निवारण तथा प्रबंधन कर सकता है।

निष्कर्ष : उपरोक्त विषय का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि आसन और प्राणायाम के अभ्यास से समग्र स्वास्थ्य प्राप्त होता है। यौगिक चिकित्सा द्वारा मधुमेह टाइप–II रोग में बढ़े हुए ग्लूकोज स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है। जिसमें आसन, प्राणायाम के अभ्यास द्वारा नाना प्रकार के रोगो से बचने की भी चर्चा की गई है। अतः यह स्पष्ट है कि यौगिक चिकित्सा और लययोग मधुमेह टाइप–II रोग में अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगी। मधुमेह टाइप–II रोग असंतुलित जीवनशैली से संबधित रोग है असंतुलित जीवन शैली से होने वाले

रोगों के निवारण के लिए यौगिक चिकित्सा का वर्णन योग के ग्रन्थों में किया गया है। लय योग और आसन के अभ्यास से शरीर में बढ़े हुए ग्लूकोज स्तर को कम किया जा सकता है। मधुमेह टाइप–II के जोखिम कारकों से भी बचा जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. अमेरिकन डायबिटीज एसोशिएसन (2021), स्टैण्डर्ड ऑफ मेडिकल साइंस केयर इन डायबिटीज।
2. कुमार, अखिलेश (2018), मधुमेह का आयुर्वेदिक एवं यौगिक प्रबंधन एक समीक्षात्मक अध्ययन, इटरनेशनल जरनल ऑफ रिसर्च इन मैडिकल साईस एण्ड टेक्नोलॉजी
3. भनोट, डॉ0 पिंकी, रविकांत खरे (2011), योग एवं आयुर्वेद, सत्यम् पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली,
   ISBN 978-93-80190-69-3
4. सरस्वती, डॉ0 स्वामी कर्मानन्द (2013), रोग और योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुगेंर, बिहार, भारत,
   ISBN-978-81-86336-12-0
5. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (1662), दमा और मधुमेह, बिहार योग विद्यालय, मुगेंर, भारत, ISBN- 978-93-80190-69-3
6. दशोरा, नन्दलाल (2018), रणधीर प्रकाशन हरिद्वार,
   ISBN-081-86955-17-18
7. दिगम्बरजी, स्वामी, (2016), हठप्रदीपिका स्वमी कुवलयानंद मार्ग, लोनावाला पूणे, ISBN 978-818-948-5122
8. सरस्वती, स्वामी निरजानन्द (2011), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुगेंर बिहार, भारत,
   ISBN 978-81-86336-95-9
9. देशपांडे, अंजलि, जोशी, शशांक, अर्कियथ वेहिल रवीनन्द्रनाथ, (2018) टाइप–II मधुमेह में योग की चिकित्सीय,इण्डोक्रोनोलॉजी एण्ड मेटाबॉलिज्म, eISSN 2093-5978
10. सहाय, बी के (2007), मधुमेह मे योग की भूमिका, जर्नल आफ द एसोसिएशन ऑफ फिजिशियन ऑफ इंडिया 55,121–126

भारतीय अभिव्यंजनात्मक वास्तु–शिल्पों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनका विकासात्मक स्वरूप

अंकित सोमवंशी*

सारांश

भारतीय अभिव्यंजनात्मक वास्तु–शिल्पों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनके विकासात्मक स्वरूप के सारांश की बात की जाय तो मूल रूप से उसके अन्दर यह जानने और समझने का प्रयास किया गया है कि वास्तुकला में अभिव्यंजना क्या है? एवं इसके शुरुआती लक्षण या उत्पत्ति भारतीय परिप्रेक्ष्य में कहाँ देखने को मिलती है एवं उसके विकास क्रम में किन–किन तत्वों की अहम भूमिका रही। साथ ही इस बिन्दु पर भी विचार करने का प्रयास किया गया है कि रूप के मनोविज्ञान की क्या भूमिका इन सब में है। आधुनिक वास्तुकारों की रचना–प्रक्रिया एवं रचना पर भी विचार किया गया है कि भारतीय परिदृश्य में वे किन बिन्दुओं पर खरे नजर आते हैं।

शब्द कुंजी : *अभिव्यंजना, रूप का मनोविज्ञान, मूर्तिगत रूप, वास्तुकला*

शोध प्रक्रिया : *इस शोध–पत्र के अध्ययन व लेखन में प्रयुक्त अभिलेख मुख्य रूप से साहित्य पर आधारित एवं वास्तुशिल्पों के दृश्यगत रूपों पर आधारित डेटा है। प्राप्त डेटा को उपयोग के लिए कई शोध–विधियों का सहारा लिया गया है जिनमें मुख्य रूप से तुलनात्मक विश्लेषण, दृश्य विश्लेषण–जिसमें दृश्य तत्वों का गहन विश्लेषण शामिल है, जो मुख्यतः वास्तुशिल्पों में मूर्तिगत विशेषताओं की पहचान व समालोचना करता है। साथ ही ऐतिहासिक शोध प्रक्रिया को भी शामिल किया गया है ताकि भारतीय समकालीन वास्तुशिल्पों के क्रमिक विकास को समझा जा सके।*

साहित्य समीक्षा :

साहित्य समीक्षा के रूप में जिस पुस्तक को चुना गया है वह पुस्तक है डी.के. चिंग द्वारा लिखित व सम्पादित ''फार्म, स्पेस एण्ड आर्डर'' यह एक क्लासिक और अत्यधिक प्रशंसित पुस्तक है जिसका व्यापक रूप से वास्तुशिल्प शिक्षा में उपयोग किया गया है; साथ ही, वास्तुकला के छात्र व पेशेवर वास्तुकार दोनों ही इसका अध्ययन करते हैं क्योंकि यह वास्तुकला में प्रयोग होने वाले प्राथमिक नियमों एवं प्राथमिक संरचना के निर्माण व उसके उत्पन्न होने की घटनाओं का दृश्यगत एवं साहित्यिक दोनों ही रूपों में विवरण प्रदान करती है। वह भी पूरे विश्व के महत्वपूर्ण वास्तुशिल्पों के सचित्र उदाहरण के साथ यह पुस्तक दृश्य कला एवं वास्तुकला में प्रयोग होने वाली प्रमुख शब्दावलियों का भी बड़ी गहराई से विश्लेषण एवं विवेचना करती है, जैसे–रेखा, अंतराल, रूप व आकार।

इस पुस्तक में एक और बात पर जोर दिया गया है, वह है वास्तुशिल्पों का ऐतिहासिक सन्दर्भ, जैसे–ग्रीक, रोमन, गोथिक के साथ–साथ एशिया एवं मध्य एशिया के स्थापत्य शैलियों की चर्चा इस सन्दर्भ में कि उनमें प्रयोग ज्यामितिक तत्व जिनका हमारे ऊपर क्या मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। इस शोध विषय ''अभिव्यंजनात्मक वास्तुशिल्पों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उनके विकासात्मक स्वरूप'' को समझने में मददगार साबित हुई है।

शोध क्षेत्र :

हम जिस विकसित मानव सभ्यता में हम रह रहे हैं उसको इस रूप में पहुँचाने में लाखों साल की यात्रा करनी पड़ी और इसमें निरंतर बदलाव होते रहे। इन बदलावों के बीच जो दो प्रमुख चीजें हमेशा हमारे बीच रही वे हैं– भोजन व रहने की जगह। मेरा शोध इस दूसरी महत्वपूर्ण चीज पर आधारित है पर इसका सन्दर्भ रूप और उसके प्रभाव पर केन्द्रित है। मैं उन वास्तुशिल्पों की बात करने वाला हूँ जिनका उद्देश्य मात्र उपयोगिता न होकर एक बड़े अर्थों में वह किसी विचार, दर्शन या भावना को अभिव्यक्त करें और उस वास्तुशिल्प के उद्देश्य में यह

*शोध छात्र, मूर्तिकला विभाग, दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

उद्देश्य भी उतना ही महत्वपूर्ण हो जितना उसकी उपयोगिता।

परिचय :

इंसान ने सबसे पहले अपने काम में इस्तेमाल होने वाली चीजों का निर्माण प्रारम्भ किया जिसमें सबसे पहले औजार, फिर संग्रह करने के लिए पात्र, उसके बाद रहने के लिए घर इन सभी चीजों को गढ़ने के पीछे पहला एवं प्राथमिक विचार रहा होगा उपयोगिता पर समय के विकास क्रम में इनके रूपों में निरन्तर बदलाव आये। साथ ही, इनमें एक और बदलाव आना शुरु हुआ, वह था– इनके बाहरी रूप पर, उदाहरण के तौर पर पत्थर के अनगढ़ औजार से प्रारम्भ होकर सोने चाँदी की नक्काशीयुक्त मुठ वाली तलवार तक, वहीं मिट्टी से बने पात्र बदले चमकदार अलंकरण से युक्त पात्र के रूप में, वहीं गुफाओं से महलों तक का सफर।

इन सब में एक बात सामान्य थी वह है उपयोगिता के अलावा सौन्दर्य जहाँ अपने मनोभावों, मनोविचारों, अपने दर्शन को इन वस्तुओं के द्वारा सम्प्रेषित करना अर्थात् कहीं–न–कहीं मन के विचारों को अभिव्यंजित करना। यहाँ एक बात गौर करने वाली है कि सुसज्जित करने एवं अभिव्यंजित करने में एक फर्क है वह है अभिव्यंजना । यह एक बड़ा वृह्द शब्द है जिसके अन्दर सुसज्जित करना, संयोजित करना, अलंकरण करना, ये सब आते हैं।

जैसे जब हम किसी वास्तुशिल्प कि तरफ रुख करते हैं और जो पहला परिचय हमसे होता है वह है उसका बाहरी रूप और यह हम पर एक गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है। **शिल्प की रुपगत विशेषताओं का अध्ययन यहाँ किया जाएगा। चूँकि मेरी पृष्ठभूमि मूर्तिकला रही और मेरा वास्तविक अनुभव मूर्तिकला में है इसलिए मेरा शोध का सन्दर्भ भी मूर्तिगत रूपों से है।** मूर्तिगत रूपों मेरा तात्पर्य है वह वास्तुशिल्प रूप के स्तर पर कहीं न कहीं मूर्तिगत आकार धारण करते हैं। बहुत से मामलों में वह किसी मूर्तिशिल्प या किसी कला आंदोलनों से प्रभावित होते हैं या उनके पीछे की अवधारणा में यह कारक महत्वपूर्ण होते हैं। यह शोध यह जानने का भी प्रयास करेगा कि कैसे एक मूर्तिकार और वास्तुकार रूपों की परिकल्पना करते हैं। एवं उनके रचना–प्रक्रिया में क्या–क्या समानता एवं भेद है एवं उनकी रचना–प्रक्रिया का आधार क्या होता है और उनकी परिकल्पना रूप लेते वक्त किन बदलाव का सामना करती है और उनमें क्या बदलाव आते हैं।

आज जो वास्तुशिल्पों में जो रूप देख रहे है उसकी यात्रा बहुत पीछे से प्रारम्भ होती है। लगभग वहाँ से जहाँ से सभ्याताओं ने जन्म लिया। इसलिए यदि हम समकालीन भारतीय वास्तुशिल्पों की चर्चा करना चाहते हैं तो हमें निश्चित रूप से अपनी वास्तुकला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना व समझना होगा। किस विकास क्रम में इनमें रुपगत एवं वैचारिक बदलाव प्रारम्भ हुए। इसलिये सबसे पहले हम अपनी सभ्यता के सबसे पुराने मानव बसावट के केन्द्रों पर नजर डालते हैं और यह है सिन्धु घाटी सभ्यता।

भारत के पुरातन वास्तु का साक्ष्य : सिन्धु सभ्यता

उत्कृष्ट नगर नियोजन एवं स्थापत्य–कला सिन्धु की प्रमुख विशेषता थी। सैन्धव लोगों का सौन्दर्य–बोध उनकी शिल्प कला में सर्वाधिक स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है। इस सभ्यता के अधिक स्पष्ट एवं विपुल रूप में अवशेष मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा, चाँहुदड़ो एवं लोथल आदि से प्राप्त हुए हैं। सैन्धव लोग सभ्य, उच्च कोटि के अभियन्ता एवं वास्तुशिल्पज्ञ थे। प्रमुख नगरों का निर्माण उन्होंने नियोजित योजना के आधार पर किया था। सैन्धव जनों ने अपने नगरों के निर्माण में शतरंज पद्धति (चेशबोर्ड) को अपनाया जिसमें सड़कें सीधी एवं नगर सामान्य रूप से चौकोर होते थे। सड़कें बिछाने की समस्या मकानों के निर्माण से पहले ही हल कर दी जाती थीं। मुख्य मार्ग उत्तर से दक्षिण जाता था एवं दूसरा मार्ग पूरब से पश्चिम उसे समकोण पर काटता था। मोहनजोदड़ो में राजपथ की चौड़ाई दस मीटर थी सड़कें कच्ची थीं।

सिन्धु के बाद का सफर

सिन्धु–घाटी के बाद जो वास्तविक प्रमाण मूर्तिकला एवं वास्तुशिल्प के मिलते हैं वे हमें प्राप्त होते हैं मुख्य रूप से मौर्य काल में, जहाँ भारतीय कला अपने चरमोत्कर्ष पर होती है। किसी कला के चरमोत्कर्ष तक पहुँचने में जो सबसे महत्वपूर्ण चीज होती वह है शांति और समृद्धि। समृद्धि से तात्पर्य मात्र आर्थिक समृद्धि नहीं अपितु बौद्धिक भी है। मौर्यकाल में संतुलित परिवेश भारत के राजनैतिक इतिहास में मिलता है। इनके संरक्षण में हमें प्रस्तर मूर्तिशिल्प, काष्ठ राजप्रासाद, मौर्य स्तंभ, स्तूप व गुफाओं (चैत्य एवं विहार) के निर्माण की परम्परा रूप लेती नजर आती है। और बाद के शासन काल में इनका

उत्थान व पतन भी देखने को मिलता है। इन्हीं वास्तुकला की अवधारणा से प्रेरित होकर विभिन्न नये वास्तुरूपों का निर्माण भी प्रारम्भ होता है। वास्तुकला का रूप शासकों के पंथ, विचारधारा व संस्कृति के अनुरूप निरन्तर बदलता नज़र आता है। इस कड़ी में हिन्दू राजाओं, मुगल शासकों, एवं अंग्रेजी हुकुमत के शासन के दौरान वास्तुकला में निरन्तर रुपगत एवं निर्माण सामग्री व तकनीक दोनों ही रूपों में बदलाव हुआ।

बौद्ध धर्म के स्थायित्व, धर्म प्रचार, बुद्ध के महत्व व उनके अस्थियों को सजाने के लिए मिट्टी के ढूहों का निर्माण हुआ। बाद में राजकीय संरक्षण मिलने पर इन्हें पक्के इंटों, पत्थरों, और अलंकरणों से सुसज्जित किया गया। यहाँ हम पाते हैं कि कैसे उपयोगिता धीरे–धीरे एक सम्प्रेषण के माध्यम में रूपांतरित होती गई। और वह कैसे एक पतीकात्मक रूप धारण कर रही है। अब यह स्तूप मात्र अस्थियों को संरक्षित करने वाली इमारत नहीं अपितु बुधत्व की भावना का प्रतिबिंबित रूप है वह भी एक खास तरह के रूपक के माध्यम से।[1]

वास्तुकला में बदलाव का परिचायक : मौर्य काल

मौर्य–शासन के आगमन के साथ–साथ भारतीय कला में शतमुखी निर्माण के युग का प्रारम्भ होता है। प्रारम्भिक मौर्य सम्राटों का घनिष्ठ सम्बन्ध विदेशी साम्राज्यों से था। अतः यह अनुमान गलत नहीं है कि पत्थर का प्रयोग यूनानी या ईरानी प्रभाव था। निःसंदेह एशिया में कला माध्मय के रूप में पत्थर का पहला महान् उपस्थाता हखामनी सम्राट् दारा महान् था जिसने प्रथम मौर्य सम्राट् से लगभग दो शती पूर्व पत्थर के विशाल प्रासाद, सभा भवन, मंदिर तथा समाधि स्थलों आदि का निर्माण प्रारम्भ किया था।

यहाँ एक बात गौर करने योग्य है कि मौर्य–काल में वास्तुकला के मूलभूत ढांचों पर जो कार्य हुए उसका और भी परिष्कृत रूप हमें आगे के साम्राज्यों में देखने को मिला, जैसे– शुंग, कुषाण, सातवाहन और गुप्त जैसे राजवंशों में इसी कड़ी के कुछ स्तंभों स्तूपों, चैत्य व विहार की चर्चा करने वाले हैं।

मौर्य स्तम्भ तथा शीर्षक

मौर्य स्तम्भ की चर्चा करने से पहले हमें यह समझना होगा कि भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में यह पहला मौका था जब कोई मूर्तिशिल्प स्वतंत्र रूप से किसी वास्तु से अलग होकर एक स्वतंत्र भूमिका निभा रहा था और इसमें वह पूरे वास्तु नहीं, अपितु वास्तु के एक भाग स्तम्भ की सहायता ले रहा था और यह उस स्थिति में था जब यह न तो पूरा मूर्तिशिल्प है और न हि पूरा वास्तु जहाँ एक तरफ यह अशोक के राज्य–विस्तार का प्रतीक था वहीं दूसरी तरफ यह बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार का भी। बहुत से विद्वानों का मानना है कि यह पूर्ण रूप से भारतीय नहीं है पर मौर्य कलाकारों ने इसे एक भारतीय कलेवर में प्रस्तुत किया, एक नए प्रतीक चिन्ह के रूप में।

सारनाथ सिंह–स्तम्भ

सारनाथ से, जहाँ बुद्ध के धर्मप्रवर्तन और चार आर्यसत्यों के व्याख्यान की पुण्यभूमि थी, प्राप्त अशोक द्वारा स्थापित चार सिंहों वाला स्तम्भ–शीर्ष मौर्य कला का प्रसिद्ध और सर्वोत्तम उदाहरण है। इसकी यष्टि कई टुकड़ों में खण्डित अपनी मूलावस्था में आज भी मौजूद है जिस पर अशोक का 'संघ–भेद' लेख खुदा है। शैलयष्टि से अब संग्रहालय में सुरक्षित सिंह शीर्षक स्थापत्य और शिल्प की पराकाष्ठा का अप्रतिम प्रतीक है।

स्तूपों का महत्व एवं उनकी रचना प्रक्रिया

भारतीय कला के इतिहास में स्तूपों का विशिष्ट स्थान है और प्रारम्भिक बौद्ध–कला के साथ उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है कि सामाान्यतः भारतीय कला के सन्दर्भ में स्तूप तथा तद्वर्ती कला को सान्दर्य का अभिन्न अंग समझा जाता है। वैसे स्वयं 'स्तूप' शब्द शुद्ध के जन्म से पहले का है और जैनों ने भी स्तूपों की रचना करवाई थी।

'स्तूप' का अर्थ है 'ढेर'। मिट्टी या अन्य पदार्थ के ढेर या एकत्र किए गए समूह को स्तूप कहते थे। पाली साहित्य में इसके रूप 'धूप', 'थूह' या 'चूहा' या 'धुव आदि हैं। बौद्ध–धर्म तथा कला से सम्बन्धित रूप में 'स्तूप' उस स्मारक को कहा जाता है जो महापुरुष या बुद्ध के अवशेष पर खड़ा किया गया विशाल ढेर होने के साथ–साथ विभिन्न अलंकरणों और भागों से युक्त होता है।

धमेख स्तूप

धमेख स्तूप का निर्माण बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के लगभग 200 साल बाद 249 BC में अशोक के द्वारा कराया गया। यह मूल रूप से ईंट एवं लाल बलुआ पत्थर से बना हुआ है। अशोक के बाद कनिष्क, हर्षवर्धन एवं पाल राजाओं ने इसके निर्माण व विस्तार में अहम् योगदान दिया जिसकी छाप इसकी बाहरी दीवारों पर उकेरे गए ज्यामितिक आकारों एवं अलंकरणों में साफ तौर पर देखने को मिलती हैं। स्तूप के चारों तरफ आठ आले हैं जो कभी गुप्त–काल के मथुरा–शैली की बोधिसत्व मूर्तियों से सुशोभित हुआ करते थे। चीनी यात्री व्हेन सांग अपने संस्मरणों में बताते हैं कि यह स्थान 30 मीटर ऊँचे स्तूप, शीशे के समान ओप वाले मौर्य स्तम्भों एवं 1500 बौद्ध भिक्षुओं से जीवंत था। इसके परिसर में और भी महत्वपूर्ण इमारतें मिलीं जैसे– धर्मराजी का स्तूप, मूलगंध कुटीर, बौद्ध बिहार एवं सबसे महत्वपूर्ण मौर्यकालीन अशोक स्तम्भ जो बाद में चलकर देश का राष्ट्रीय चिन्ह भी बना, वह भी यहीं से प्राप्त हुआ।

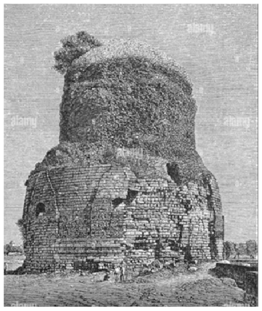

धमेख स्तूप

मंदिर वास्तुकला एवं उसका विकासात्मक स्वरूप

जब हम भारतीय हिन्दू मंदिर वास्तुशिल्प की बात करते हैं तो हम पाते हैं कि कैसे समूचे भारत में इनके विभिन्न प्रकार एवं शैलियाँ हैं, किस प्रकार से मंदिर वास्तुशिल्प के रूप निरन्तर बदलते रहते हैं, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक बदलाव के साथ गौर करने की बात है कि माध्यम में आये बदलावों के कारण इनके रूप भी बदलते हैं। जैसे उत्तर भारत के मंदिर वास्तु में मूल रूप से जोड़ने वाले पत्थरों का इस्तेमाल हुआ वहीं दक्षिण में हम पाते हैं कि कुछ ऐसे भी प्रयोग हुए जहाँ सम्पूर्ण चट्टान में ही मंदिर वास्तु को काटकर बनाया गया जिसके कारण उनके रूप में बदलाव आये, पर मूल रूप से ये सम्पूर्ण वास्तु शिल्प एक खास तरह की संरचना को अपना आधार बनाकर रूप लेता है जिसे आम तौर पर मंदिर वास्तु पुरुष के नाम से जानते हैं जहाँ जंघा, ग्रिवा, गर्भ गृह जैसी परिकल्पना रूप लेती नज़र आती है। कहने का तात्पर्य है कि मंदिर वास्तु भी मूल से मनुष्य की शारीरिक संचना को ध्यान में रखकर ही गढ़ा गया यानि मनुष्य के रूप या मूर्तिरूप को एक वास्तुरूप में बदलने की घटना मंदिर वास्तु के जन्म के पीछे की घटना है।

मंदिर वास्तु के नवीन प्रयोग

आधुनिक वास्तुशिल्प का सम्बन्ध हमेशा से अपने पुराने वास्तु से होता ही है पर कुछ वास्तु की परिकल्पना इतनी आकर्षक व व्यवहारिक होती है कि अपने समय से आगे होती हैं और जिनका प्रयोग भविष्यमुखि रूप में निरन्तर बना रहता है। इसका एक उदाहरण हमें आज भी देखने को मिलता है। मध्य प्रदेश के मुरैना में स्थित योगिनी मंदिर जो 13वीं सदी में बना, एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जिसके वास्तु रूप का इस्तेमाल हमें लुटियन के द्वारा 1927 में संसद भवन की वास्तु–योजना में बहुत हद तक देखने को मिलती है। कहने का तात्पर्य है कि शास्त्र आधारित उस मंदिर वास्तु में जिन रूपकों का इस्तेमाल किया गया उनकी दृश्यगत प्रस्तुति इतनी परिपक्व है कि समसामयिक परिवेश में भी वह पुरातन नहीं अपितु नवीनता को धारण किए हुए है। ऐसे बहुतेरे वास्तु शिल्प एवं वास्तुकार हमें नजर आ ही जायेंगे जिनका सम्बन्ध पुरातन वास्तुशिल्प के सिद्धान्तों पर आधारित है।

चौसठ योगिनी, मुरैना   संसद भवन, नई दिल्ली

इण्डो–इस्लामिक वास्तुकला एवं रूपगत बदलाव

वास्तुकला के ऐतिहासिक विकास–क्रम में एक नया अध्याय जुड़ता है इण्डो–इस्लामिक वास्तुकला का, जहाँ अरब, स्पेन जैसे देशों से मुस्लिम आक्रांताओं का आना प्रारम्भ हो गया और समय के साथ इन्होंने भारत पर विजय प्राप्त कर दिल्ली में अपनी राजधानी बना कर इस देश पर हुकुमत शुरू किया और साथ ही, वास्तुशिल्प का

निर्माण भी। इनकी निर्माण–प्रक्रिया भारत में पहले से चली आ रही निर्माण–प्रक्रिया से बहुत से मामलों में अलग थी। बाद में मौजूदा भारतीय वास्तुकला और इस्लामिक वास्तुकला ने एक नया रूप धारण किया। संरचना और अलंकरण दोनों दिशाओं में इस्लामिक वास्तुकला की जो अपनी देन थी वह मूल रूप से दो चीजें थीं– पहली थी मेहराबों की निर्माण–कला और इन्हीं मेहराबों की वजह से गुम्बदों का निर्माण सम्भव हो पाया। दूसरी महत्वपूर्ण चीज थी, वास्तुकला में ज्यामितिय आकृतियों व संरचनाओं का भरपूर इस्तेमाल और यह शायद इसलिए भी था क्योंकि इस्लाम मजहब में जीवित रूपों को उकेरने की मनाही थी। मेहराबों, गुम्बदों और ज्यामितिक संरचना के मिलने से जो वास्तुशिल्प निकल कर आये उनमें अब कुछ ज्यादा ही आयामों के फलक दृश्यगत होने लगे और गुम्बदों के कारण हमें आयतन का भी प्रभाव पहले से बढ़ गया। चूँकि इस्लाम वास्तु–शिल्पों में सीधे तौर पर मूर्तियाँ लगाने की मनाही थी इसलिए अभिव्यक्ति के तौर पर दो चीजों का सहारा लिया गया– पहला, सुलेखन व दूसरा, संरचना को ही अभिव्यक्ति के रूप में इस्तेमाल करना।

हुमायूँ का मक़बरा, दिल्ली

वास्तुकला एवं रूप का मनोविज्ञान

जब हम रूप के मनोविज्ञान की बात करते हैं तो हमारे मन में जो बात आती है वह यह है कि रूप क्या है तो आमतौर पर रूप को फार्म के रूप में जानते हैं अर्थात् ऐसी वस्तु जिसके पास लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई हो यानी जो एक आयतन रखता हो अपने आकार में और यह आयतन हर एक त्रिआयामी वस्तु में होता है चाहे वह हमारे आसपास की कोई रोजमर्रा की वस्तु हो या कोई मूर्तिशिल्प या वास्तुशिल्प उन हर चीज में ये विद्यमान है। अब बात करते हैं इसके मनोविज्ञान की, वह कोई आज की घटना नहीं है। यह बहुत पुरानी बात है। यह उतनी पुरानी है जब आदमी गुफाओं में रहता था और उसके मन में रूप और रंग इन सबके प्रति समझ पैदा होने लगी; एक धारणा तय होने लगी, जैसे नुकीली वस्तु से भय, गोलाकार वस्तु में गति चौकोर वस्तु में स्थिरता, आग की गर्मी से सुरक्षा। और, यदि हम गौर करें तो इतने लाखों साल बाद भी हम इस रूप की भावना को महसूस कर पाते हैं।

अहमदा वादिनी गुफा

गैलरी वास्तुकला और कला के एक अद्वितीय मिश्रण का प्रतिनिधित्व करती है। गुफा जैसी भूमिगत संरचना में कई परस्पर जुड़े हुए गुंबदों से बनी छत है, जो टाइलों के मोज़ेक से ढकी हुई है। अंदर की तरफ, अनियमित पेड़ जैसे स्तम्भ गुम्बदों को सहारा देते हैं। इसे पहले हुसैन दोशी गुफा के नाम से जाना जाता था। विशेष पेंटिंग प्रदर्शनियों और फिलों को प्रदर्शित करने की सुविधाएँ हैं। गार्डन और एक कैफे जमीन के ऊपर स्थित है।

संरचना समकालीन वास्तुकला, प्राचीन और प्राकृतिक विषयों पर आधारित है। गुम्बद कछुओं के और साबुन के बुलबुले से प्रेरित हैं। छत पर मोज़ेक टाइल गिरनार के जैन मंदिरों की छतों पर पाए जाने वाले अलंकरण के समान हैं, और मोज़ेक साँप हिन्दू पौराणिक कथाओं से है। अजंता और एलोरा की बौद्ध गुफाओं की आन्तरिक संरचना ने इंटीरियर डिजाइन करने के लिए प्रेरित किया, बल्कि हुसैन की दीवार पेंटिंग पालीओलिथिक गुफा कला से प्रेरित हैं।

अहमदा वादिनी गुफा, अहमदाबाद, गुजरात

संजय पुरी के डिजाइन, दर्शन के उन जगहों को बनाना है जो सामाजिक सम्पर्क के बढ़ावा देते हैं और लोगों को समग्र रूप से जोड़ते हैं। संजय पुरी का डिज़ाइन मंत्र है, किसी भी डिज़ाइन को दोहराना नहीं। उनकी प्रत्येक परियोजना अद्वितीय है और साइट की स्थिति और सन्दर्भ के प्रति उत्तरदायी है। उनका दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक परियोजना को साइट के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया देनी चाहिए और उनका मानना है कि सूर्य और हवा की दिशा को ध्यान में रखकर इमारतों को स्थायी रूप से डिजाइन किया जा सकता है।

वास्तु–शिल्पीय शैली

संजय पुरी की स्थापत्य–शैली को अवांट–गार्डन के रूप में वर्णित किया जा सकता है, एक ऐसी शैली जो प्रयोग, विशिष्टता और नवीनता पर केन्द्रित है। पुरी इमर्सिव और परिप्रेक्ष्य कला से प्रेरणा लेते हैं, जिससे उनकी अधिकांश संरचनाएँ मूर्तिकला और अमूर्त होती हैं। अपनी शैली को वास्तविकता में लाने में उन्हें काफी समय लगा क्योंकि एक ग्राहक को उस तरह की वास्तुकला के बारे में समझाना मुश्किल था, जिसमें वह विश्वास करता था और निष्पादित करना चाहता था। पुरी मोंटेनेग्रो में एक 600 साल पुराने गांव, स्वीटी स्टीफन से प्रेरित हैं रहने के अनुभव ने पुरी को ऐसे स्थान बनाने के लिए प्रेरित किया जो प्रत्येक उपयोगकर्ता को संरचना में एक अलग अनुभव प्रदान करते हैं। पुरी का यह भी मानना है कि नियोजित, ज्यामितीय स्थानों की तुलना में जैविक स्थान कहीं अधिक रोचक और संवादात्मक हैं।

ओरोविल की वास्तु–परिकल्पना

आरम्भ में, पांडिचेरी (अब पुडुचेरी) नामक एक छोटे से डच, पुर्तगाली, अंग्रेजी और अंत में फ्रेंच से औपनिवेशिक शासकों के अपने चेकर्ड इतिहास के साथ, एक महिला रहती थी जिसने मानव को समर्पित एक अन्तर्राष्ट्रीय शहर का सपना देखा था । अपने आदर्श शहर की कल्पना करने के लिए एक वास्तुकला को चुना, रोजर एंगर, इकोले डेस बेक्स–आर्ट्स से ''वास्तुकला की अकादमी'' के 1940 के दशक के अंत के आंदोलन से उभरा, जहाँ प्रतीकवाद और आकृतियों के साथ ''बोलने की वास्तुकला'' पर, रूपों के अंत–क्रिया पर, कला और मूर्तिकला पर जोर दिया गया था। यह ऑरोविल के बाहर निकला हुआ प्रतीत होता है, जो एक नई चेतना के जन्म का प्रतीक है। यह 'शांति' नामक एक बड़े खुले क्षेत्र में स्थित है, जिसे अलग–अलग वातावरण बनाने वाले सुंदर भू–भाग वाले बगीचों की जगह बनाने की योजना है, जहाँ से विकसित टाउनशिप बाहर की ओर विकीर्ण होने लगती है।

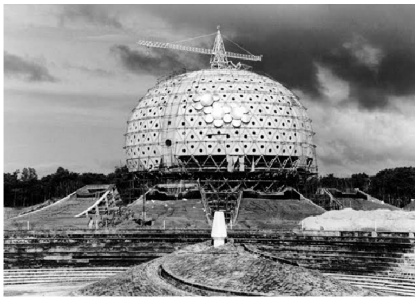

मातृमंदिर, ओरोविल

निष्कर्ष :

इस शोध–प्रक्रिया के दौरान हमने जाना कि वास्तुशिल्प का उद्देश्य मात्र उपयोगिता न होकर एक बड़े अर्थ में वह किसी विचार, दर्शन या भावना को अभिव्यक्त करता है और उस वास्तुशिल्प के उद्देश्य में यह उद्देश्य भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना उसकी उपयोगिता। जैसे जब हम किसी वास्तुशिल्प की तरफ रुख करते हैं और जो पहला परिचय हमसे होता है वह है उसका बाहरी रूप और वह हम पर एक गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है। इस पूरे अध्ययन के दौरान हमने पाया कि रूप के माध्यम से अभिव्यक्ति का सफर कोई नवीन घटना नहीं है बल्कि यह तो हज़ारों वर्षों से मानव–सभ्यता का अंग बनी हुई है और निरंतर इसमें बदलाव व उन्नति जारी है। एक और बात गौर करने की है कि यह कोई एक सभ्यता, संस्कृति या शासक की देन न होकर एक मिली–जुली व समृद्ध परम्परा है जिसकी पहली शर्त ही विविधता है। तभी भावनाओं का सम्प्रेषण रूप के माध्यम से सम्भव हो पाता है।

सन्दर्भ सूची :

1. टोनी जोसेफ़, आरम्भिक भारतीय, (अनुवाद) मदन सोनी पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल, 2018.
2. युवाल नोआ हरारी, ''2 वीं सदी के लिए 2 सबक'' (अनुवाद) मदन सोनी, मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल, 2020.
3. युवाल नोआ हरारी, ''होमो डेयस आने वाले कल का संक्षिप्त इतिहास (अनुवाद) मदन सोनी, मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल, 2015.

4. Rudolf Arnheim, "The Dynamics of Architectural form", univesity California Press, London, second edition, 2009.
5. Mark Z. Danielewski, "The poetict of spae", Translated by Maria Jolas Penguin Books, 2009.
6. Francis D. K ching, "Architecture, From, space, and order", John Wiley and sons, 3 Edition, New Jersey, 2007.
7. Peter scriver and Amit Srivsatava, "India modern archiectures kn history", Reaktion Books Ltd, London, 2015.
8. Swati mitra, "World Heritage seris Fatehpur sikri", Archaeological survey of India, Good Earth publication, New Delhi, 2002.
9. Hans Ulrich Obrist "Lives of the Artists, Lives of the Architects, Penguin Books, UK, 2015.
10. Frank Fassbender, "Auroville Architecuture towards new form for a new Consciousness", Prisma, Tamil Nadu, 2014.

चित्र फलक सूची :

https://www.insightsonindia.com/indian-heritage culture/architecture/indus-civilization/

https://commons.m.wikimedia.org/wiki/File: Great_bath_view_Mohenjodaro.JPG

https://commons.m.wikimedia.org/wiki/File: Photograph_of_the_Lion_ Capital_at_Sarnath,_Uttar_Pradesh_ quora.com/ Where-is-the-64-Yogini-Temple-located-What-are-some-amazing-facts-related-to-this

https://www.reddit.com/r/delhi/comments/10d9jlx/aerial_view_of_parliament_house/

https://www.alamy.com/stock-photo/parliament-of-india-aerial-view.html?sortBy=relevant

https://www.oldindianphotos.in/2014/10/humayuns-tomb-humayun-ka-maqbara-delhi.html

scaranoarchitect.com/manchester-grand-hyatt-san-diego-announces-new-director-of-marketing/

भारतीय समकालीन महिला चित्रकार : अर्पणा कौर

प्रो. पाण्डेय राजीव नयन** **राक्क्षी पासवान***

सारांश

भारतीय समकालीन महिला कलाकारों में अर्पणा कौर का मुख्य स्थान है । इन्होंने अपनी कलाकृतियों के माध्यम से समाज में एक नई चेतना एवं ऊर्जा का संचार किया है। कलाकार अर्पणा कौर की कलाकृतियों के विषय–वस्तु में कबीर, गुरूनानक, सोनी महिवाल, पर्यावरण, एवं भगवान गौतम बुद्ध मुख्य हैं। कलाकार अर्पणा कौर ने इन सभी विषयों पर कई चित्र श्रृंखलाएँ बनायी है एवं समाज में घटित हो रही घटनाओं पर अधारित विषयों को लेकर कई चित्रों का अंकन किया है। अर्पणा कौर ने महिलाओ की दशाओं पर भी विविध कलाकृतियों का सृजन की है। भारतीय समकालीन महिला कलाकारो में अर्पणा कौर कलानिधि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, अर्पणा कौर ने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कलाकृतियों की प्रदशर्नियाँ अयोजित की है ।

मुख्य शब्द : *भारतीय समकालीन, कलाकृति, श्रृंखला, महिला*

प्रविधि : *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यम*

भारतीय समकालीन महिला कलाकार अर्पणा कौर का जन्म 4 सितम्बर 1954 ई. को दिल्ली में हुआ है इनकी माता का नाम अजीत कौर पंजाबी लेखिका हैं जो पद्मश्री से सम्मानित है। अर्पणा कौर को बचपन से ही कला में रूचि थी एवं घर के खुले परिवेश में पली–बढ़ी और बचपन से ही आस–पास साहित्य, कला, संगीत एवं सांस्कृतिक परिवेश मिला। इसलिए उनकी रूचि संगीत, कला और साहित्य की रचनाओं में ज्यादा थी। मात्र 9 वर्ष की अवस्था में तैल रंग से 'मदर एण्ड डॉटर' नामक चित्र कलाकार अमृता शेरगिल से प्रभावित होकर बनाया था, अर्पणा कौर स्वयं प्रशिक्षित कलाकार हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा शिमला के क्रिश्चियन स्कूल से प्राप्त की, दिल्ली आकर लेडी श्रीराम कालेज से लिक्टेचर में एम. ए. किया। कालेज के समय से ही कला–प्रर्दशनियो में भाग लेतीं, कालेज में 79 ग्रुप शो में हिस्सा लिया, एल. एस. आर. कालेज में युवा कलाकारो के पेन्टिग्स चयन हेतु भेजी, इन्होंने अपनी तीन पेन्टिंग्स भेजी जिसे चयनित कर लिया गया और ग्रुप शो त्रिवेणी आर्ट गैलरी में आयोजन किया गया। यहीं से इन्हें अपनी चित्रकार का पहला ब्रेक मिला । सन् 1979 ई. में लंदन में सेंट मार्टिन स्कूल ऑफ आर्ट में प्रवेश लिया, किसी कारणवश पूरा नहीं कर सकीं इन्होंने सन 1982 ई. में गढी स्टूडियो से एंचिग की विधा सीखी कलाकर अर्पणा का मानना है कि कलाकार को कैनवास को रंगना ही कला नहीं, बल्कि उन्होंने चित्रकला को जीवन का दर्शन माना है ।

अर्पणा कौर के जीवन पर उनकी माता का प्रभाव भी पड़ा। उन्हें अपनी भारतीय कला–संस्कृतियों एवं विरासत में रूचि रही। प्राचीन सभ्यताओ के अध्ययन करने के लिए बहुत–सी यात्राएँ की, जैसे– महाबलीपुरम, हम्पी, कोणार्क, अजन्ता, एलोरा, पुरी एवं बोधगया आदि। कलाकार ने विदेशों के कई स्थानो की यात्राएँ की। कलाकार अर्पणा कौर ने अपनी कला–सृजना में कई माध्यमों की कलाकृतियाँ बनायी हैं, जैसे– म्यूरल, पेस्टल, ऐक्रलिक रंग, तैल रंग, पेपरवर्क, बुक इस्टालेशन, स्कल्पर आदि। साक्षात्कार के दौरान कलाकार अर्पणा कौर बताती हैं कि "मैने कला को अध्यात्मिक नजर से ही देखा है, चाहे किसी भी सदी की हो या कोई मूर्ति हो या अजन्ता, एलोरा गुफाओं की दीवार पर बनी चित्रकला हो, कला का आध्यात्मिकता से गहरा सम्बन्ध रहा है। आपने अपनी अभिव्यक्ति से कला का चुनाव किया, यह ईश्वर का एक बहुमूल्य उपहार है कि कलाकार अपनी कला–शैली को आध्यात्मिकता से जोड़कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। एक महान लेखक ने कहा है कि मैंने कविता या कहानी को नहीं रचा, मेरी कविता और कहानियों ने मुझे

*शोध छात्रा, ललित कला विभाग, डा. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ
**शोध निर्देशक, ललित कला विभाग, डा. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

रचा। ठीक वैसे ही मेरे साथ भी है मेरी कलाकृतियो ने मुझे गढ़ा है।'' कलाकार अर्पणा कौर ने पेन्टिग के अलावा पुस्तकों का रेखांकन एवं आवरण के अंकन भी किये हैं तथा स्कल्प्चर एवं म्यूरल पर भी कार्य किया है। आपने खुशवत सिंह की किताब पर इंस्टालेशन प्रगति मैदान में किया है। आप के द्वारा दिल्ली, बैंगलौर, काठमांडू और हैम्बर्ग जैसे बड़े शहरों में (नान कमर्शियल) भित्ति चित्रों को भी बनाया गया है। इन्होंने 'नानकः द गुरू' पुस्तक (माया दयाल) के लिए सिख गुरूओं के भजनों का चित्रण किया है। इनके द्वारा सचित्र 'समय' नाम की कविता एवं चित्र बनाये गये हैं। कलाकर अर्पणा ने अपने कई चित्रों में 'कैची' 'धागे' का प्रयोग किया है। कैची को प्रतीक के रूप में दिखाया है एवं धागा जो बन्धन को दर्शाता है। गायत्री सिन्हा के अनुसार "अर्पणा कौर के चित्रो में अभिव्यंजना में कामुकता का कोई संकेत नहीं मिलता है। इनके चित्रों में महिला और प्रकृति दोनों ही संजीवता के रूप में कथित खतरे और अनिश्चिता नवीनकरण के घेरे में बंधी है । आध्यात्मिक एवं पौराणिक विषयों को लेकर कई श्रृंखलाओं में कलाकृतियों की सर्जना की है। महिलाओं पर आधारित कई भावुक विषयों को लेकर कई कलाकृतियाँ बनाई है, जैसे– सोनी महीवाल पर कई श्रृंखलाए हैं, भोल्टर्ड वुमेन, नौकरानी, स्टार लेट रूप, बाजार, निर्भया कांड आदि। 1987 ई. में वृन्दावन स्थल के भ्रमण के दौरान वहां विधवाओं की मनोदशा देखकर काफी दुःखी हुईं, इस विषय को भी लेकर आपने वृन्दावन पर कई चित्रों की श्रृंखला बनायी, यथा– विडोज ऑफ वृन्दावन, इसमें वृन्दावन की विधवाओं की मनोदशाओं का चित्रण किया है। कलाकर ने पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए कई पेन्टिंग्स बनायी है जिनमें से 'एक धरती' नामक चित्र–श्रृंखला मुख्य है।

कला विषयों में सोनी महीवाल, कबीर गुरू नानक, भगवान गौतम बुद्ध मुख्य हैं। भगवान गौतम बुद्ध पर कलाकार अर्पणा कौर की पेंन्टिंग्स जीवन्तता एवं यथार्थवाद को दर्शाती है, भगवान बुद्ध पर आधारित चित्र 'द ग्रेट डिपार्चर', 2015 में कैनवास पर तैल रंग से बनाया गया है। यह चित्र भगवान गौतम बुद्ध के महाप्रस्थान के दृश्य को दर्शा रहा है, जिसमें बैंकग्राउंड लाल रंग का है जिसमें बुद्ध को सफेद आकृति में खड़े हुए दिखाया गया है। बुद्ध की पीठ के पीछे दीवार को दिखाया गया है जो लाल एवं काले रंग से बनी हुई है। बुद्ध की आकृति में उन्हें एक पैर आगे की ओर बढाते हुए दिखाया गया है जो महाप्रस्थान को दर्शाता प्रतीत हो रहा है। बुद्ध आकृति के सामने सफेद एवं नीले रंग की दीवार ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर प्रस्थान करते हुए दिखाई गयी हैं । बुद्ध की आँखें निमिलित दर्शा रही हैं, इस दृश्य को शायद ही किसी कलाकार ने बनाया होगा। बुद्ध के विषय पर ही चित्र 'क्रिएटर एंड डिस्ट्रायर' है जिसमें बुद्ध को सृष्टि की रचना और विनाश दोनों स्वरूपो में दिखाया गया है, इस चित्र में नीला रंग से बैकग्राउण्ड काल को दर्शा रहा है और कैंची काल के सामर्थ्य को दर्शा रही है। कलाकार ने इस दृश्य को बहुत ही सुन्दरता के साथ दिखाया है, बुद्ध विषय को लेकर अनेक कलाकृतियों में एक अन्य चित्र 'बुद्ध एण्ड अशोक' चित्र–श्रृंखला मुख्य है जिसे कलाकार ने कई श्रृंखलाओं में बनाया है। बुद्ध एण्ड अशोक श्रृंखला का एक चित्र है, इस चित्र को मैप की तरह बनाया है। भगवान बुद्ध ने जहां–जहां भ्रमण किया एवं बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ, उस स्थान को पेन्टिग में दिखाया गया है; कलाकार ने चित्र में बुद्ध हेड भी बनाया है जो भगवान गौतम बुद्ध को दर्शाता है, यह सफेद एवं आसमानी रंग का बना है। चित्र में नीचे की तरफ एक तलवार भी दिखाया गया है जो गोल्डन रंग की है। ये तलवार सम्राट अशोक को दर्शा रही है, सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध–धर्म अपनाया था। 'बुद्ध एण्ड अशोक' चित्र–श्रृंखला में एक चित्र बिहार म्यूजियम में रखा हुआ है। भगवान बुद्ध पर अधारित कलाकृतियों में माया देवी का स्वप्न, 2002 में कैनवास पर एक्रेलिक रंग, स्टेपिंग आउट, कैनवास पर तैल रंग से, अर्थ एण्ड स्काई, कैनवास पर तैल रंग, 2014, ट्री ऑफ स्फरींग ट्री ऑफ एन्लाइमेन्ट, 1999, कैनवास पर तैल रंग, इस पर कलाकार ने कई चित्र श्रृंखलाएँ बनायी है। ऐस्सेंन नामक चित्र पर कलाकार ने कई श्रृंखलाए बनायी है। कलाकार ने भगवान बुद्ध पर आधारित कई म्यूरल भी बनाये हैं, जैसे– 'म्यूरल आन टाइल्स', 'आउटर वॉल ऑफ सार्क सचिवालय कांठमाडू', 'बुद्ध म्यूरल ऑन आउट वॉल ऑफ हैब्बर रोरिच म्यूजियम, बैंग्लौर' आदि।

अर्पणा कौर भारतीय समकालीन महिला कलाकारों से भिन्न हैं क्योकि वे पहली ऐसी कलाकार हैं जिसने अपनी कला में लोक कला को स्थान दिया है। लोक कला के स्वरूप, जैसे– गोदना, पहाड़ी लघु कला एवं बिहार मधुबनी लोक कला की झलक दिखती है। आपने लोक कला–प्रतीकों का प्रयोग अपनी चित्रकारी में किया है, जैसे– पेड़, बादल, मानव आकृतियाँ, पानी, धागा आदि। आपने

लोककला के द्वारा नवीन अंतरायाम का विस्तार किया है। कलाकार अर्पणा कौर ने भगवान बुद्ध पर अधारित अन्य कई चित्रो में लोक–कला के तत्वों को दिखाया है जिसमें एक चित्र है 'ट्री ऑफ स्फरिंग', 'ट्री ऑफ एन्लाइटमेन्ट', कैनवास पर तैल रंग से इस चित्र में भगवान बुद्ध को लेटे हुए दिखाया गया है। साथ में, इस चित्र में बिहार की लोक कला मधुबनी का भी चित्रण किया है। कलाकार अर्पणा कौर को कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है । इनके द्वारा बनाए गए चित्रों के संग्रह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सुप्रसिद्ध संग्रहालयों में संरक्षित किये गये हैं, जैसे विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यजियम, लंदन; रॉकफेलर संग्रह न्यूयार्क; सिंगापुर आर्ट म्यूजियम; म्यजियम ऑफ कंटेपरेरी आर्ट, लॉस एंजिल्स; नेशनल गैलरी ऑफ मार्डन आर्ट, दिल्ली आदि।

निष्कर्ष :

भारतीय समकालीन महिला कलाकारो में अर्पणा कौर अपने कला–सृजन के द्वारा कला समाज में मुख्य भूमिका निभा रही हैं, अपनी कलाकृतियों के द्वारा कला जगत में नित नये आयामों के साथ कला को प्रसारित कर रही हैं जिससे समाज व भारतीय समकालीन कला को उचित मार्ग प्रशस्त होंगे। वर्तमान समय में कलाकार अर्पणा कौर सिरी फोर्ट, नई दिल्ली में निवास करती हैं और कलासृजना में क्रियाशील हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. चौधरी, देव प्रकाश, (2016), जिसका मनरंगरेज, अकारो से पूरे संसार में, पब्लिकेशन अन्तरा इन्फोमिडिया प्राइवेज लिमिट, जयपुर राजस्थान, अर्पणा कौर
2. कौर, अर्पणा, घड़ी, जुगनू प्रकाशन,
   ISBN 978-93-2873-81-2
3. नयार, उमा, (2015), 'बुनाई की रूपरेखा', दैनिक जागरण
4. माई पेन्टिंग माई लाइफ, (2012), अर्पणा कौर
5. प्रसाद, डा मंजु, (2020), 'कला विशेष हितकारी मानवतावाद से प्रेरित चित्रकारी अर्पणा कौर के चित्र'
6. मेरी पेन्टिगा मेरी जिन्दगी, (2012), सखी
7. शुक्ला, राजेश कुमार, (2005), 'अर्पणा की आध्यात्मिकता', समकालीन कला, ललित कला अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं 47,
8. भाटिया, वीणा, 'विडोज ऑफ वृन्दावन से दुनिया में पहचान', पत्रिका भोपाल यूज इन हिन्दी
9. अमर उजाला, (2022), 'एक खुशी को विदा करने आयी दूसरी खुशी', अर्पणा कौर चित्रकार, नई दिल्ली
10. मागो, प्राणनाथ, (2021), 'भारत की समकालीन कला एक परिपेक्ष्य', राष्ट्रीय पुस्तक व्यास, भारत प्रकाशन, पृ.सं. 179

बज्जिकांचल का त्योहार 'फगुआ' और इसके गीत

डॉ. ममता कुमारी** **रणजीत कुमार***

सारांश

'बज्जिकांचल' बिहार का वह पावन भू–भाग है जो अपनी संस्कृति, महत्वपूर्ण उपलब्धियों और विशेषताओं के कारण श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। यहीं पर विश्व की प्रथम गणतांत्रिक व्यवस्था कायम हुई। प्राचीन काल से ही बज्जिकांचल के सभी धार्मिक अनुष्ठान तथा सभी पर्व–त्योहार गीत–संगीत से भरे हैं, जैसे– छठ के गीत, फगुआ के गीत, सामो–चकेवा के गीत, नवरात्र के गीत आदि। इन्हीं गीतों में से एक प्रकार 'फगुआ' गीत का वर्णन इस शोध–पत्र में किया जा रहा है।

मुख्य शब्द : *संस्कृति, गीत, बज्जिकांचल, फगुआ*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यम का उपयोग इस शोध–पत्र में हुआ है ।*

ऐतिहासिक दृष्टि से बज्जिकांचल का महत्वपूर्ण स्थान है । जैन धर्म के प्रणेता भगवान महावीर का जन्म यहीं हुआ। बौद्ध धर्म के भगवान महात्मा बुद्ध की यह निर्वाण स्थली है। प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को 'वज्जि' या 'वृज्जि' कहा जाता था। यहां की बोलचाल की भाषा बज्जिका कहलाई, जो एक प्राचीन भाषा है।[1] यह क्षेत्र आज के वैशाली, मुजफ्फरपुर, शिवहर, सीतामढ़ी, चंपारण के कुछ पूर्वी भाग, नेपाल का तराई क्षेत्र, दरभंगा, समस्तीपुर के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ है।[2]

बज्जिकांचल में होली के त्योहार को 'फगुआ' के नाम से जाना जाता है। यह त्योहार फाल्गुन मास के पूर्णिमा तथा चैत्र मास के कृष्ण प्रतिपदा तिथि को मनाया जाता हैं। पूर्णिमा तिथि के रात्रि की 'होलिका दहन' मनाया जाता है।[3] मान्यतानुसार, होलिका असुरराज हिरण्यकश्यपु की बहन थी, जिसको वरदानस्वरुप एक चादर प्राप्त था, जिसे ओढ़कर आग के प्रभाव से बचा जा सकता था। इसका दुरुपयोग करते हुए छलपूर्वक होलिका अपने भाई के कहे अनुसार भक्तराज प्रहलाद को आग में जलाने का कुप्रयास की। दैवकृपा से एक हवा का झोका आया जो होलिका के शरीर से चादर को उड़ाकर प्रहलाद को ठक दिया जिससे प्रहलाद बच गए और होलिका जल गई। तभी से होलिका दहन का प्रचलन शुरू हुआ। बज्जिकांचल में इसे 'सम्मत' फूंकने के नाम से जाना जाता है, जो बुराई पर अच्छाई के विजय का प्रतीक है। बज्जिकांचल में होलिका दहन को सम्मत फूंकने के नाम से जाना जाता है। फगुआ एक ऐसा त्योहार है जिसमें सभी लोग धर्म, संप्रदाय, जाति के बंधन से ऊपर उठकर आपसी भाईचारे का सन्देश देते हैं। इस दिन सभी लोग आपसी बैर को भूलकर एक–दूसरे के गले मिलते हैं और गालों पर गुलाल लगाते हैं। हालांकि, होली हिन्दुओं का त्योहार माना जाता है, फिर भी पूरी दुनिया में विभिन्न समुदाय के लोग इसे बड़े धूमधाम से जोश और उत्साह के साथ मनाते हैं।

बज्जिकांचल में होली गीतों को 'फाग' और त्योहार को 'फगुआ' कहते हैं, 'होरी' भी कहते हैं। फगुआ त्योहार आपसी प्रेम और सौहार्द का त्योहार है। फाग का गायन बसंत पंचमी अर्थात् सरस्वती पूजा के दिन से ही शुरू हो जाता है जो पूरे फाल्गुन मास तक चलता है। फगुआ अर्थात् होली में सभी अपने आपसी बैर को भुलाकर एक–दूसरे से गले मिलते हैं। फाल्गुन महीना के पूर्णिमा तिथि को रात्रि में होलिका दहन होता है। होलिका दहन के समय सभी लोग उसके चारों ओर घूम–घूमकर फगुआ गाते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि होलिका दहन को बज्जिकांचल में सम्मत फूंकना कहा जाता है। फगुआ गीतों का यह सिलसिला तब तक चलता रहता है जब तक कि होलिका पूर्ण रूप से जलकर बुझ न जाए।[4]

---

*शोध छात्र (संगीत), वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

**शोध–निर्देशिका,, अध्यक्ष, संगीत विभाग, एम.आर.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा

सम्मत के समय गाए जाने वाले फाग इस प्रकार हैं–

1. लंका जारे हनुमान, लंका जारे हो,
   लंका जारे हनुमान राम जी के बैरी रवनवा।
2. लंका अइहें भगवान, लंका अइहें हो
   लंका अइहें भगवान, धीरज धरा हे माता जानकी।
3. लंका से जाई छहू हो हनुमान,
   लंका से जाई छहू हो हनुमान।
   मोरो परनाम राम जी से कहिह,
   मोरो परनाम राम जी से कहिह।
4. राम खेले होरी लक्ष्मण खेले होरी,
   राम खेले होरी लक्ष्मण खेले होरी।
   लंका गढ़ में रावण खेले होरी,
   लंका गढ़ में रावण खेले होरी।

होलिका दहन के फाग गीतों में ज्यादातर लंका दहन, हनुमान और रावण का उल्लेख मिलता है। कुछ फगुआ गीतों में प्रहलाद का भी उल्लेख है–

सियाराम जी सहाय कहे प्रह्लाद पिता से
सियाराम जी सहाय, सियाराम जी सहाय कहे प्रहलाद पिता से,
हममें तुममें खर खंभे में सब में व्याप्त राम
कहे प्रह्लाद पिता से, सियाराम जी सहाय कहे प्रहलाद पिता से।

सम्मत फूंकने के बाद चैत्र प्रतिपदा के दिन सुबह सम्मत की राख से 'धूरखेल' होली खेली जाती है। सभी लोग एक–दूसरे के गालों पर राख लगाकर गले मिलते हैं और डंफ, झाल, मजीरा, के साथ फाग गाते हैं–

हो मिलन आए हो मिलन आए, कुसुमा रंग राम मिलन आए।

इसके बाद स्नान–ध्यान कर नए–नए वस्त्र धारण कर धूम–धाम से होली का त्योहार मनाते हैं। छोटे अपने से बड़ों के पैरों पर अबीर चढ़ाकर प्रणाम करते हैं। बड़े छोटों को अबीर से तिलक लगाकर आशीर्वाद देते हैं। उसके बाद सभी एक–दूसरे को रंग और गुलाल लगाकर फगुआ खेलते हैं।

शाम को फाग गाने वालों की टोली ढोलक, डंफ, झाँझ, मजीरा, झाल लेकर निकल पड़ती है जो गांव के माई स्थान (देवी मंदिर) से फाग गायन की शुरुआत करते हुए, गांव–टोला के हर दरवाजे पर जाती है। ये फाग गीत ज्यादातर एक कड़ी वाले होते हैं जिन्हें बार–बार दोहराया जाता है, और विभिन्न लयकारियों में गाया जाता है। दो या दो से अधिक कड़ी वाले फाग (होली) गीत भी गाए जाते हैं। फाग गीत के कुछ प्रचलित पद निम्नलिखित हैं–

भक्ति रस के पद

1. ब्रह्मा जी का फाग–

बरहमा (ब्रह्ममा) रखिह शरणमा के लाज एही नगरिया के बरहमा।

2. देवी जगदंबा का फाग–

आ गेली रउरी शरणीया मैया हे, अब पत राखहूं हे जगदंबा।

3. भगवान शिव के फाग–

पट खोल द बाबा हो चढ़ाएब शिशिया पट खोल द
के ही चढ़ावेले अक्षत चंदन के ही चढ़ावे बेल बेलपतिया।।
पट खोल द...
पंडित चढ़ावेले अक्षत चंदन हमहू चढ़ाएब बेल बेलपतिया।।
पट खोल द...

4. भगवान राम के फाग–

राम जी के धोतिया रंगा द भरत हो, होली खेले राम जनकपुर जइहे।

5. भगवान कृष्ण के फाग–

लरिका हो गोपाल कूदी पड़े जमुना में
कूदी परे जमुना में कन्हैया, कूदी परे जमुना में।। लरिका...
जमुना में कूदले, काली नाग नथले, फनवा पर भइले असवार हो,
हो हो फनवा पर भइले असवार, कूदी परे जमुना में।। लरिका...

6. भगवान हनुमान के फाग–

लंका से जाई छहू हो हनुमान, मोरो परनाम राम जी से कहिह।

श्रृंगार रस के पद

1. केसिया संवार जुड़वा बांध के ननदिया,
   होली खेले अतउ देवर ननदोसिया।
2. थोर भेल सरसों बहुत भेल तोरी,
   अब कईसे मथवा बन्हईबू ए गोरी।
3. ले भागा हो ले भागा, नकबेसर कागा ले भागा।
   संईया अभागा न जागा, नकबेसर कागा ले भागा।
   उड़ी उड़ी काग कदम चढ़ी बईठे, जोबन के रस ले भागा।

झूमरा–

1. चुअइअ बंगला हो चुअइअ बंगला,
   सावन–भादो में बलमुए हो चुअइअ बंगला
   पांच रुपैया पिया पटना से भेजे,
   बंगला छबाउ की सीआउ लहंगा,
   सावन–भादो में बलमुए...

पारंपरिक बज्जिका होली गीत

1. गोली लाव न अबीर मड़वा में घुमे चारो भईया
   ***   ***   ***
2. आहो राजा, आहो राजा जनक जी के परम सुंदरी,
   गिरिजा पूजनमा के जाए । हो हो हो राजा...
   गिरिजा पूजी महेश मनाए, गिरिजा पूजी महेश मनाए
   वर मांगे भगवान, आहो लाला वर मांगे भगवान

बज्जिकांचल के फगुआ गीतों में अधिकांशतः भक्ति रस तथा श्रृंगार रस के पद होते हैं। इसके अलावा विरह के भी पद मिलते हैं। ये पद अधिकतर धमार तथा दीपचंदी तालों में बंधे होते हैं। कुछ फाग गीत कहरवा तथा दादरा तालों में भी मिलते हैं। उन गीतों में शब्द कम होते हैं। ज्यादातर फगुआ केवल एक स्थाई वाले या एक स्थाई एवं एक अंतरा वाले होते हैं। बहुत कम पद ही ऐसे हैं जिसमें स्थाई तथा दो, तीन या चार अंतरे होते हैं। इसके साथ ढोलक, डंफ, झाझ, मजीरा, झाल आदि वाद्य यंत्रों से संगत की जाती है। समूह में फगुआ का गायन करते हैं। बीच–बीच में "होरी हो, होरी हो" का उच्चारण करते हैं। भिन्न–भिन्न लयकारियां भी दिखलाई जाती हैं। हर पद के बाद "भाई बोलो द्वारिकानाथ सियावर रामचंद्र की जय" बोलकर समाप्त किया जाता है।

उपसंहार :

आधुनिकता की अंधी आंधी में हमारे ये अमूल्य पारंपरिक धरोहर गुम होते जा रहे हैं जिन्हें संवारने और सहेजने की अत्यधिक आवश्यकता है जिससे हमारी आने वाली पीढ़ी प्रेम और सौहार्द की इस परंपरा को समझे और आगे बढ़ाए।

सन्दर्भ सूची :

1. सिंह, उदय नारायण, बज्जिका भाषा आ साहित्य के इतिहास, पृ. 16
2. वर्मा, ब्रजनंदन, बज्जिकांचल, पृ. 27
3. किरण, डॉ. उषा, बज्जिका लोक मर्यादा के गीत, पृ. 91
4. वही

Role of Over The Top (Ott) Platforms in The Promotion and Dissemination of North Indian Music

Amandeep Kaur*

Abstract

Uttar Bhartiya sangeet includes shastriya sangeet, loksangeet, upshastriya sangeet, sugam sangeet, film sangeet etc. Whose various mediums of promotion and dissemination are included. This includes electronic, written, and other forms of media. Internet is playing an important role in this, in which today social media and other platforms are the subject of discussion.

Over the top became more popular among people after covid-19. There are many types of films and web series in which music is getting promoted. Ott has played a special role in the promotion of music in today's era.

Keywords: *over the top, Platform, music, Ott, Indian music, internet.*

Methodology : *Analytical, Survey, data collection*

Music is a powerful and beautiful means of expression of human feelings. From a spiritual point of view, music is a strong way to attain eternal bliss and joy.' Therefore, spiritual happiness can be attained by imbibing the sound waves of music. The main purpose of music is to plant sublime feelings in the heart so that the feelings of the heart can be expressed in a spiritual form. Music as an expressive art awakens consciousness. Similarly, Indian music consists of two systems. North Indian which is called Hindustani music and South Indian which is known as Carnatic music. South Indian music which is prevalent in the states of Tamil Nadu, KaKrnataka, Andhra Pradesh, Kerala etc. in South India. North Indian music system is prevalent all over India (except Tamil Nadu, Karnataka, Andhra Pradesh, Kerala).

At present, the form of North Indian music has been found very wide. North Indian music extends to genres such as classical music, sub-classical music, folk music, light music, film music, etc., where folk music and classical music are considered to be the main categories and light music and film music fall under the popular category. "Classical music" is an integral part of Indian music.[1] There is seriousness, spirituality and interiority in its charm. Swara, Laya and Taalbound according to the rhythmic raga, singing and playing in sequence, alap tan, boltan, is mandatory to follow the rules like sargam etc. Singing styles like Dhupad, Dhamar, Khayal, Tarana, Trivat, Chaturang, Sadra etc. are included under classical music. "Semi-Classical Music" is also called Sub-Classical Music. Under this music compositions like Thumri, Dadra, Chaiti, Kajri, Hori etc. are included. The meaning of folk music is the music prevalent in the common people, especially in rural areas. In this, tableaus of centuries-old customs, wedding songs, rain songs, songs of separation, lullabies, Mahiya-Bhatiyali There are folk songs like Manjhi etc. In today's time, the popularity of "Sugam Sangeet" is unprecedented all over India. Songs, ghazals, and bhajans are types of light music. The "movie" that moves on the screen is called a movie. Film tunes are melodious, catchy and simple.

*Research Scholar, Panjab University, Chandigarh-160014

Various types of music require the support of media for presentation to the masses. By means of dissemination, any object, principle or information should be conveyed to the maximum number of people. Propaganda consists of using a wide range of materials and media to convey messages, including paintings, cartoons, posters, pamphlets, films, radio shows, TV shows and websites, as well as the invention of new techniques. Publicity includes written medium, media letters, electronic medium, other medium etc. Written media include magazines, newspapers, pamphlets, souvenirs, books/books, circulars, telegrams, etc. Similarly two types of instrument medium are there (1) audio medium (2) audio-visual medium.[2] In audio medium radio, gramophone, sound plates, tape recorder, radio and audio-visual media which can be received by seeing and hearing the material or program displayed by the visual and auditory senses. For example, Doordarshan, cinema, computer, video disc, motion picture, mobile phone, etc. All of them are helpful in the promotion of music.

In modern times, the main means being used to make music accessible to the masses through the visual technology of sound films is the Internet. The Internet is called the Internet or the International Computer System. In this computer, tablet, mobile, smart TV. etc. come. It is a simple and pleasant facility by which a person can listen to any type of information at any place. We can easily find the smallest thing through Google, which provides us with truthful and quick information about the information we are searching for.[3] Similarly Internet telephony, instant messaging, video conferencing, online programs, watching and reading courses and education and self-improvement through access to workshops, job search, increased ability to share endless information conversations, collaboration in working from home, ability to amplify a message effect, backing up data with cloud storage and sharing, instant monitoring and control of bank accounts, access to unlimited sources of entertainment such as movies, music, videos and games are possible. Social media is also a part of this. Social media are interactive technologies that facilitate the creation and sharing of information, ideas, interests, and other forms of expression through virtual communities and networks. User-generated content such as text posts or comments, digital photos or videos, and online interactions are shared through social media. Social media refers to a collection of sites and platforms that involve activities such as creating and joining social networks, creating and sharing content, using the preferences of other Internet users to find content, etc.[4] Most social media services are free to all users and rely on advertising for revenue. Social media provides advertisers with targeted demographic information to direct their advertising. In modern times, the promotion of music is highly dependent on social media.

In today's era especially during the Covid-19 pandemic, Over the Top (OTT) platforms have rapidly come and become popular among the masses. The beginning of Ott is believed to be in the 2000s. India's first OTT platform was Bigflix which was launched by Reliance Entertainment in 2008. Ditto TV (Zee) and Sony LIV were launched in India in 2013. Similarly Disney Hotstar in India in 2015 and it is one of the most watched platforms. Netflix started its operations in India in 2016. Because it's a simple feature, which streams audio and visual on its platform through the Internet. This includes feature films, document

saries series etc. They offer a wide range of movies, TV shows and original content that can be accessed anytime on a variety of devices such as smartphones, tablets, smart TVs. OTT platforms have gained popularity due to their convenience, affordability and ability to personalize content consumption. Users can choose what they want to watch and when and enjoy a diverse selection of entertainment options at their fingertips.

Various types of OTT platforms are used by the users in India. Like Amazon Prime Video Netflix, Hotstar, Zee5, Sony Liv, Voot etc. In terms of music, if we go towards films, there are many such films which are completely set on music. Some of them are such that they have been released on the OTT platform only and they are present on the OTT platform only, like 'The Disciple' and 'Qula' etc. There are many films in which music is present in abundance. Similarly web series on OTT platform which have a specific story or theme and are shown in the form of multiple episodes similar to traditional television series. Web series have gained popularity in recent years due to their accessibility, creative freedom and ability to reach a global audience. It mainly includes a variety of genres including drama, comedy, science fiction, fantasy, documentary. Some notable web series are also included. If we consider the subject of music, there are many web series which are fully involved in the promotion of music, one of them is "Bandish Bandits". There are many web series which include music. Just as Covid-19 has affected various aspects of our lives. Similarly, OTT services became increasingly popular due to the influence of the Covid. The demand for OTT services skyrocketed during this period as people sought entertainment and distraction while following stay-at-home orders and social distancing guidelines. The closure of movie theaters and the cancellation of live events further increased the popularity of "streaming platforms". OTT platforms have made theatrical content more accessible to a wider audience. Live theater performances are limited to specific venues and often require tickets and physical presence. However, streaming platforms allow people to watch theatrical productions from the comfort of their homes, expanding the reach of theater experiences.

Similarly Over The Top (OTT) has changed the way people watch television content. Traditional television relied on scheduled programming where viewers had to tune in at specific times to watch their favorite shows. OTT platforms offer on-demand streaming, allowing viewers to watch content whenever and wherever they want. This change in habits has led to a decline in traditional TV viewership. Over the Top (OTT) platforms have made music more accessible than ever. Users can explore and discover a wide range of music genres, artists and albums from all over the world. This has led to a decline in physical music sales but allows artists to freely release their music on streaming platforms. Overall, the over the top (OTT) platform can be considered a major player in enabling music discovery, empowering independent artists, and increasing the dissemination of Indian music.

Conclusion: -

Ott is popular all over the world today. Everyone is using ott. People are entertaining themselves by watching movies and web series on Ott. People of almost all age groups are liking Ott. If we talk in the field of music, Ott is playing a very important role. Music is abundantly present in the movies and web series on Ott. Films and web series have no taste without

music, so they include music. In this way, we see that the amount of Indian music is found in abundance in them. All type of Indian music is there. Due to which the promotion and dissemination of Indian music is possible through Ott. Due to which Ott's huge contribution in the promotion of Indian music can be considered in today's time.

References :

1. Harte Lawrence, OTT and Streaming TV, published (25th June, 2019).
2. Lobate, R. (2017), Netflix Nations, The geography of Digital distribution, Critical Cultural Communication, NYU Press (January 8, 2019)
3. Malyalam Prakash, The Complete Roadmap to Launching an OTT Platform and Monetizing it, April 6, 2022.
4. Williams, D (2012), Web TV series. How make and market them, old caste, Creative Essentials, (19 September, 2012).
5. Wolk Alan, Over the Top, Atlantic Publishers and Distributors and Delivered by Amazon, Createspace Independent Pub (29 May 2015).

LINKS:

1. https://communicationcrafts.in (Indian OTT Platforms, Report 2021, Center for Media & Entertainment Studies)
2. www.sathyabama.ac.in (OTT Platform and Social media-SVCA520)
3. https://www.trustradius.com (List of Top OTT software, 2023)

ठुमरी गायकी में प्रयुक्त रागों का सौन्दर्य

डॉ. ममता कुमारी** **सुरभी कुमारी***

सारांश

ठुमरी श्रृंगार–रस–प्रधान गायकी है जिसका सौन्दर्य अतुलनीय है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विश्व की सांगीतिक चेतना में भारतीय संगीत की यह शैली विशिष्ट स्थान रखती है। सांगीतिक इतिहास की धारा जो भारत में चिर काल से अविरल प्रवाहित हो रही है, उसमें कई परिवर्त्तन हुए। मानसिक चेतना का विकास संगीत की विभिन्न धाराओं को प्रस्फुटित करता है। वैदिक काल के मन्त्रोच्चारण में निहित संगीत को ऋषियों, मुनियों, संगीतज्ञों, संत कवियों द्वारा संरक्षित कर नए–नए आविष्कार किए गए। स्वरों की खोज से लेकर विभिन्न रागों का निर्माण, फिर उन रागों में निबद्ध संगीत–शैलियों ने एक लम्बी यात्रा तय की। आचार्य भरत ने स्वरों एवं उनसे उद्भूत रसों के ऊपर विस्तृत चर्चा 'नाट्यशास्त्र' के छठवें एवं सातवें अध्यायों में किया है– 'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' अर्थात् रस के बिना कोई भी कर्म प्रवृत नहीं होता है। काव्य साहित्य में भी श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। काव्य और संगीत दोनों ही कलाओं की आत्मा रस है। इसी रसात्मक पृष्ठभूमि पर ठुमरी–शैली पदार्पित हुई। नृत्य की भाव–भंगिमा को गीत में प्रकट करने की कला ठुमरी है। गायन में ठुमरी के लिए अनेक उपयुक्त रागों द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है ।

मुख्य शब्द : *संगीत, ठुमरी, राग, सौन्दर्य, गायकी*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों द्वारा इस लेख के लिए सामग्री संकलित की गई है ।*

अधिकतर विद्वानों ने ठुमरी शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'ठुम' एवं 'री'– इन दो शब्दों से 'ठुमरी' शब्द बना है। 'ठुम' का साधारण अर्थ ठुमकना एवं 'री' सखी का द्योतक है। कुछ लोग 'री' को सम्बोधन भी मानते हैं। उसी प्रकार जैसे री, अरी, हेरी संबोधनात्मक शब्द प्रयुक्त होते हैं। शब्दों के भावों को सौन्दर्यपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करना ठुमरी की विशेषता है। ''विस्तृत रूप से अर्थ विचार करने पर ठम, ठमक अथवा ठुम, ठुमक शब्दों के अन्तर्गत तीन गुण दिखाई पड़ते हैं। पहला हर्षोल्लास या उमंग, दूसरा थोड़े–थोड़े समय के अन्तर पर रूकावट और तीसरा आघातमूलक गुंजनपरक ध्वन्यात्मकता। अतएव ठम अथवा ठुम का समष्टिगत अर्थ 'उमंग सहित थोड़–थोड़े समय के अंतर पर होने वाली आघातमूलक गुंजनपरक ध्वनि' होता है।''[1] ठुम के साथ र्‌ई=री (स्त्रीलिंग) प्रत्यय संयुक्त होकर 'ठुमरी' शब्द बनना अधिक तर्कसंगत एवं स्वाभाविक है, जिसका व्यापक अर्थ नृत्य के साथ गाई जाने वाली या नृत्य करते हुए गाई जाने वाली गेय रचना है।''[2]

ठुमरी के विकास में अवध के नवाबों का विशेष योगदान रहा है। नवाब वाजिद अली शाह ने उर्दू एवं फारसी भाषाओं में कई गीत रचनाएँ बनाईं। ''बादशाह ने कृष्ण का रास, जो हिन्दुओं में प्रचलित है, देखा था और श्रीकृष्ण की लीला ऐसी पसन्द आ गयी थी कि उस रास से ड्रामे के तौर पर खेल बनाया था, जिसमें वे खुद कन्हैया बनते, बेगमें गोपियाँ बनतीं और नाचरंग की महफिलें गर्म होती।''[3]

ठुमरी लखनऊ और बनारस में विकसित हुई। इस शैली के गायकों में नवाब वाज़िद अली शाह (अख्तर पिया), नवाब वज़ीर मिर्जा वाला (कदर पिया), उस्ताद सादिक अली, तवक्कुल हुसैन (सनद पिया) विशेषतः उल्लेखनीय हैं। डॉ. गौतम ने कुछ विशेष चरित्रों पर प्रकाश डाला है। 'ललनपिया' को ठुमरी का मूर्धन्य कलाकार बताते हुए उन्होंने कहा कि ''फरूखाबाद के निवासी ललनपिया ने अधिकतर मध्यलय एवं द्रुत लय में ठुमरियाँ बनाई। ताल का उन्हें अद्भुद ज्ञान था। कई बार संगत करने वाले तबला कलाकारों को वे भ्रमित कर देते थे। इसी प्रकार 'सनदपिया' की ठुमरियों की विशेषता थी कि वे वाद्य के छन्दों को अपनी ठुमरी–रचना में बाँध लेते थे। उनके समकालीन रामपुर दरबार के संगीतकार बहादुर

*शोध छात्रा, संगीत, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
**शोध निर्देशिका, अध्यक्ष, संगीत विभाग, एम.आर.एस.एम. कॉलेज, आनन्दपुर, दरभंगा

हुसैन एक सरोद वादक थे। सनदपिया ने इनकी कई गतों को ठुमरियों में बाँधा था। इसी प्रकार, कदरपिया जो कवि चित्रकार एवं संगीतज्ञ थे, उन्होंने साधारण बोल–चाल की भाषा को ठुमरियों के लिए उचित समझा। लखनऊ के हिन्दुओं के घरो में तथा आस–पास के गाँवों में वही भाषा बोली जाती थी।''[4] उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ललन पिया की ठुमरियाँ' में उनकी ठुमरियों का संकलन है, जिसके संकलनकर्त्ता एवं लिपिकार भारतेन्दु वाजपेयी हैं। ध्यातव्य है कि ये संकलित ठुमरियाँ हमीर, गौड़सारंग, केदार, सरपरदा, खमाज, खम्बावती, गौड़ मल्हार, देशमल्हार, नायिकी कान्हडा, भैरवी, शहाना, सोहनी, काफी, गारा, हिण्डोल इत्यादि रागों मे लिखी गयी हैं। ठुमरी में शृंगार रस की प्रधानता होती है, जो संयोग एवं वियोग दोनों रूपों में वर्तमान रहता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रबन्ध, ध्रुपद, ख्याल–शैली के बाद ठुमरी–गायकी का विकास हुआ है। ध्रुपद एवं प्रबन्ध कठिन नियमों में बँधे होते थे। उसकी अपेक्षा ख्याल–शैली में कलाकार स्वतंत्रतापूर्वक अपनी कल्पना द्वारा विभिन्न स्वर–समूहों को लेकर अपनी प्रस्तुति कर सकता था। यद्यपि ख्याल–गायन रागों में बद्ध होते थे एवं तालों में भी, तथापि इस शैली में रागों में लगने वाले स्वरों के विविध स्वर–संयोजनों का प्रावधान होता है। मानव के विकसित मन में कल्पनाओं को और अधिक विस्तार मिला, ठुमरियों के रूप में। प्रेम, शृंगार जैसे भावों से ओत–प्रोत ठुमरियों के बोल एवं स्वर विभिन्न रसों की निष्पत्ति करते हैं। श्रृंगार–रस के अतिरिक्त भक्ति, प्रेम, अनुराग, हर्ष, आशा, करूण रस आधारित ठुमरियाँ रची गयीं। विभिन्न स्वर तथा काव्य दोनों ठुमरी के सौन्दर्य पक्ष को सुदृढ़ करते हैं, क्योंकि जब स्वर एवं काव्य एक–दूसरे के पूरक बनकर प्रस्तुत किए जाते हैं तभी कोई भी प्रस्तुति सफल होती है। साथ ही साथ, कलाकार एवं श्रोता के बीच साधारणीकरण हो जाता है। रसानुभूति तभी सम्भव है जब कलाकार और अनुभव करने वाले के बीच की दूरी समाप्त हो जाय।

ठुमरी का साहित्य एवं विषय–वस्तु

किसी भी वातावरण अथवा घटना की सम्पूर्ण प्रस्तुति के लिए संगीत में काव्य की आवश्यकता होती है। स्वरों को साहित्य मिल जाता है तो रसानुभूति अधिक होती है। 'जिस प्रकार रीतिकाल में काव्यशास्त्र के अनुसार कविता–कामिनी सुन्दरतम अलंकृत रूप में साहित्य के मंच पर आयी, उसी प्रकार शास्त्रीय नियमों में आबद्ध संगीत भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया।''[5] भारतीय संगीत अनिवार्य रूप से काव्य को महत्व देता रहा है। संगीत और काव्य एक–दूसरे के पूरक बने और इन्हें यथोचित लय में बाँधकर अद्भुत रचनाओं की सृष्टि हुई। आचार्य वृहस्पति ने कहा है– ''साहित्य की अपनी सत्ता है। गद्य भी श्रेष्ठ साहित्य हो सकता है परन्तु यदि भावानुकूल छन्द साहित्य को मिल जाय तो उसमें कसाव आ जाता है। व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार की ध्वनियाँ नाद की विभिन्न उपाधियाँ हैं। शब्द और स्वर का मूल एक है, इनमें जन्मजात सम्बन्ध है।''[6] साहित्य भावनाओं को निर्मल बनाता है और संगीत उन भावनाओं को अधिक संवेदना प्रदान करता है। संगीत अपने विभिन्न अंगों–राग, काव्य, लय एवं ताल के साथ मध्यकाल में स्थापित हो चुका था। ठुमरियों में ब्रजभाषा, अवधि, भोजपुरी या इन तीनों का मिश्रण प्राप्त होता है। स्त्रियोचित भावनाओं में श्रृगांर एवं प्रेम का प्रदर्शन होता है। कृष्ण एवं राधा की रासलीला इसका प्रमुख विषय रहा है। मध्यकालीन प्रमुख विषय नायिका–भेद उभर कर ठुमरियों में वर्णित होता है।

नायिका के साथ उसकी वेश–भूषा, स्थान, भाव, अलंकार का वर्णन भी ठुमरियों में प्राप्त हैं। ''अधिकांश ग्रन्थों में नायक–नायिका–भेद–सम्बन्धी वर्णन में दूती और सखी का वर्णन किया गया है। ये उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। उद्दीपन के रूप में ये रस के नायक–नायिका आलम्बनों की सहायता करती हैं, इसलिए उनको इस विषय के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। नायिकाओं के अलंकार तथा भाव, जो प्रायः अनुभाव रूप में स्वीकृत किये गए हैं, इसी विषय के अन्तर्गत आते हैं।''[7] इस विषय का आधार लेकर कई ठुमरियाँ गायी जाती हैं।

ठुमरी के प्रकार :–

ठुमरी के दो भेद होते हैं– बोल–बाँट की ठुमरी और बोल–बनाव की ठुमरी। बोल–बाँट की ठुमरी गति–प्रधान होती है और बोल–बनाव की ठुमरी भाव–प्रधान होती है। बोल–बाँट की ठुमरी के शब्दों के साथ लय की प्रधानता होती है। बोल–बनाव की ठुमरी में भाव का स्थान सर्वोपरि है।

''बोल–बाँट की ठुमरियों का प्रसार–क्षेत्र लखनऊ के पश्चिम में स्थित फर्रूखाबाद, इटावा, बरेली, रामपुर, मथुरा व दिल्ली आदि स्थानों की ओर अधिक होने के

कारण कभी–कभी इन्हें 'पछाहीं ठुमरी' के नाम से भी संबोधित किया जाता है।''[8]

बोल–बाँट की ठुमरी का द्रुतलय में गायन अत्यंत सौन्दर्यपूर्ण होता है। इसे बंदिश की ठुमरी भी कही जाती है। इन ठुमरियों पर लोक धुनों का प्रभाव है।

बोल–बनाव की ठुमरी में भाव और शृंगार तथा करूण, शांत और भक्ति रस–प्रधान गायकी होती है। बोल–बनाव में हम बंदिश से अधिक गायकी को भावपूर्ण होकर गाते हैं। इसमें शब्दों को भावपूर्ण तरीके से गाकर सुंदर कल्पना प्रकट की जाती है। बोल–बनाव ठुमरी का एक अलग ही आंनद है, इसमें ब्रज, अवधि और भोजपुरी के कुछ शब्द उर्दू में भी गाये जाते हैं। ठुमरी के किसी भी प्रकार में स्वरों का लालित्य एवं मधुरता आवश्यक है। कलाकार अपनी कल्पना–शक्ति से अपनी प्रस्तुति को आकर्षक बनाता है। ''इन दो प्रकारों के अलावा रहस्य मार्गीय प्रेमभक्ति की ठुमरियाँ भी हैं, जो सुनने में लौकिक नर–नारी के प्रेम को दर्शाती हैं, लेकिन उनका गूढ़ार्थ अलौकिक रहता है, जो ईश्वरीय प्रेम की ओर इंगित करता है। ये ठुमरियाँ द्विअर्थक होती हैं– इसकी एक उत्कृष्ट रचना है, जो सुनने में लौकिक जान पड़ती है लेकिन यथार्थ में इहलोक और परलोक की बात कही गयी है, यथा–

स्थायी– बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाए
अन्तरा– चार कहार मिल डोलिया मँगावो
अपना बेगाना छूटो ही जाए।''[9]

'कुछ ठुमरियों में तो काव्यात्मक चमत्कार भी देखने को मिलता है, जैसे–घनाक्षरी ठुमरी, अधर बन्द ठुमरी इत्यादि। घनाक्षरी ठुमरियों के काव्य में घने और अनुप्रासयुक्त शब्द समूह होते हैं। अधरबन्द ठुमरियों के काव्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनमें ओठों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। फर्रुखाबाद के 'ललनपिया' ऐसी ठुमरी रचनाएँ करने में सिद्धहस्त थे।[10] 'ललनपिया की ठुमरियाँ' पुस्तक में पृष्ठ 47 पर राग खमाज (अधरबन्द) त्रिताल में यह ठुमरी संकलित हैः–

सखि सैंया की सुरतिया जियरा हरे
ऐसो नैना अनियारे खंजन से खरे
चारु हरेन चतुर अधिक ललित दसन हँसन न्यारी
कहि न सकत सुधरवाई
ललन छैल रसिया रंगीले ठाढ़ो तीर तरू तरे।

ठुमरी के लिए चयनित राग–

राग का सीधा संबंध रंजकता से होता है। रंजकता उसे कहते हैं जो मन को आह्लादित करने का गुण रख सके। इसी दृष्टिकोण से विभिन्न संगीतविदों ने राग को परिभाषित किया है। 'रंजयति इति रागः' के आधार पर विभिन्न भावों एवं रसों को निष्पन्न करने वाले स्वर–समूहों द्वारा विभिन्न रागों का निर्माण हुआ।

मध्यकाल की एक विशेषता यह भी रही है कि रागों के वैज्ञानिक पक्ष पर सम्यक् शोध किए गए, फलतः प्रत्येक राग की प्रकृति का चित्रण हुआ। रागों का समय–विभाजन भी मानव के सतो–रज–तम गुणों के आधार पर किया गया है। राग–रागिनी वर्गीकरण रागों की प्रकृति और विशिष्ट गुणों के आधार पर किया गया। राग टक्का, मालवा, अभिरास, पहाड़ी, बंगाली अपने–अपने क्षेत्रों में गाए जाने वाली धुनों पर आधारित राग हैं। इसी प्रकार राग काफी, साज़गिरी, फिरदौस्त, इमन जैसे फारसी रागों को हिन्दुस्तानी संगीत में सम्मिलित किया। इस मिश्रण के कारण भी राग एक नए रूप में उभर कर आए और संगीत जो मानवाभिव्यक्ति का संचार करता है, उसमें कलात्मक वृद्धि मानव के मन–मस्तिष्क से और भी करीब होती चली गयी। इन रागों में ध्रुपद, ख्याल जैसी शास्त्रीय संगीत–शैलियाँ एवं ठुमरी, दादरा, टप्पा जैसी उपशास्त्रीय शैलियों में रचनाएँ होने लगीं। प्रत्येक शैली का भी अपना स्वभाव होता है। ध्रुपद–शैली अधिक गंभीर होती है। उसमें दरबारी, भैरव, नायिकी कान्हड़ा, श्री, मालकौंस जैसे राग प्रमुख थे। ख्याल गायन का क्षेत्र अधिक विस्तारित था जिसमें गंभीर एवं चंचल प्रकृति के रागों को भी स्थान मिला। ध्रुपद जहाँ भक्ति, वीर आदि रसों में निबद्ध थे, वहीं ख्याल में शृंगार रस को भी भरपूर स्थान मिला।

बोल–बाँट की ठुमरियाँ जो मध्यलय की बंदिशों से साम्य रखती थीं, उनमें तो कई रागों, जैसे– भीमपलासी, बागेश्री, हिन्डोल, काफी, सोहनी, गारा, खमाज, देश, भैरवी आदि में बंधी ठुमरियाँ प्राप्त हैं परन्तु बोल–बनाव की ठुमरी जो गायकी–प्रधान अधिक है उसमें कुछ सीमित राग ही प्रयोग किए गए हैं। माँड़, पहाड़ी, गारा, पीलू, काफी, भैरवी, खमाज, सिन्ध भैरवी जैसे राग इन ठुमरियों में अधिक पाए जाते हैं। ठुमरी की विशेषता यह है कि इसकी बंदिशें किसी राग विशेष में बंधी होती हैं, जो ठुमरी के स्थायी एवं अन्तरा दोनों अंगों में विद्यमान रहती है

परन्तु यह छूट होती है कि वह अपनी कल्पनानुसार अन्य रागों का मिश्रण आविर्भाव एवं तिरोभाव करते हुए बंदिश प्रस्तुत करें। यहाँ कलाकार की कल्पना–शक्ति एवं प्रतिभा विशेष स्थान रखती है।

ठुमरी में राग–सौन्दर्य

संगीत कला की सौन्दर्य–वृद्धि में उसके सांगीतिक तत्त्व सहायक होते हैं। ठुमरी–गायकी में ये तत्त्व काव्य, राग, ताल एवं लय हैं। तालों में भी ठुमरी के साथ दीपचन्दी, जत् आदि तालो का प्रयोग होता है। त्रिताल में बंदिश की ठुमरी बनी है। अद्धा ताल में भी ठुमरियाँ गायी जाती हैं। ठुमरी की ही तरह एक शैली दादरा है, जिसमें दादरा ताल का ही प्रायः प्रयोग होता है। कहीं–कहीं कहरवा ताल का भी प्रयोग होता है। ताल किसी भी बंदिश को सुन्दर बनाने में विशेष महत्व रखता है। यथोचित ताल एवं राग का समन्वय ठुमरी में सौन्दर्य वृद्धि करता है। यह ठुमरी का सौन्दर्य पक्ष ही था जिसने तवायफों को कोठियों से उठाकर इसे शास्त्रीय संगीत के मंचों पर सुशोभित किया।

ठुमरी गायकी की विशेषताएँ और उसके गुण उसे एक ऐसे धरातल पर ले आते हैं जहाँ रमणीयता, लावण्य, वैचित्र्य, लालित्य पूर्णरूप से प्रस्फुटित होते हैं। सौन्दर्यशास्त्र की व्याख्या में आध्यात्मिक, बुद्धिवादी, रूपवादी, भाववादी, उपयोगितावादी कई दृष्टिकोणों से की गई, जिसके विचारक कई हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण में आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है और यह अलौकिक आनन्द ही सौन्दर्य है। बुद्धिवादी दृष्टिकोण में बुद्धि एवं विचारों की महत्ता है। ''सौन्दर्य का सम्बंध भौतिक अस्तित्व से नहीं किन्तु रसिक के मस्तिष्क से है। सौन्दर्य, पदार्थ एवं वस्तु में निहित नहीं है। मानवबुद्धि और विचारधारा जिसको सुन्दर की उपमा देती है वही सौन्दर्य है।''[11] ठुमरी गायकी में यह क्षमता है, क्षमता ही नहीं बल्कि उसका उद्देश्य ही है मानव मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित करना जहाँ कलाकार की कल्पना एवं प्रतिभा सहृदयों को पूर्णतः आह्लादित कर दे। ठुमरी–गायकी में विभिन्न रसों की निष्पत्ति होती है। भाववादी दृष्टिकोण से भी कलाकार और श्रोता के बीच एक तारतम्य स्थापित होता है और अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है।

निष्कर्ष :

ठुमरी में प्रयुक्त रागों की अभिव्यंजना–शक्ति इस आनन्द की अनुभूति कराने में सहायक होती है। राग के स्वर और उनसे अभिव्यक्त भाव गायन की विभिन्न शैलियों में सौन्दर्यवृद्धि में सहायक होते हैं। यद्यपि हर एक राग का अपना सौन्दर्य एवं रस है, तथापि ठुमरी के लिए प्रयुक्त रागों में स्त्रियोचित कोमलता होती है। वर्त्तमान में ठुमरी गायकी काफी, खमाज, गारा, भैरवी, पीलू इत्यादि रागों में सर्वत्र गूंजायमान है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि शास्त्रीय रागों का यथोचित ज्ञान ही उपशास्त्रीय शैलियों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने में सफलता प्रदान करेगा। कलाकार की सृजन–शक्ति की ठुमरी–गायकी या किसी भी अन्य गायकी में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कलाकार संगीत की गहराईयों में जितना डूबेगा उतना ही ऊँचा उसका संगीत होगा।

संदर्भ सूची :

1. शुक्ल, शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ–8
2. वही, पृष्ठ–14
3. शरर, अब्दुल रहीम – गुलिस्ता लखनऊ, पृष्ठ–52–53
4. गौतम, डॉ. एम.आर., म्यूजिकल हेरिटेज ऑफ इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ–49
5. भटनागर, हेम, श्रृंगार–युग में संगीत काव्य, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ–45
6. वृहस्पति, आचार्य, संगीत चिन्तामणि, पृष्ठ–231
7. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोष, पृष्ठ–432
8. शुक्ल, शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, पृष्ठ–278
9. वही, पृष्ठ–277
10. सहाय, रीना, पं. लोचन कृत रागतरंगिणी, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, पृष्ठ–78–79
11. महाजन, डॉ. अनुपम, भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौंदर्यशास्त्र, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, पृष्ठ–6

Rituals and Customs associated with Dev Samaj Culture in Mandi, Himachal Pradesh

Dr. Rohita Sharma** **Nivedita Gautam***

Abstract

Mandi is a one of the culturally richest, district of Himachal Pradesh. The rural areas of Mandi are culturally known for folk religious practices related to the worship of Devi and Devta. Deities in Pahadi region are represented as demi gods who are given the status of head in the society. Thus, the area to which they belong is governed by their rule and principle. The people have so deep immense faith in them that each member of the village abides by the rule laid by the Devtas. The deities are regarded as living soul and throughout the year to please the them various regional fair and festivals are celebrated. Fair and festival related to deities are essential part of Dev Samaj culture and they portray the ritual and practices that are connected to the traditional folk religious cultural practice. The paper focuses on the traditionalcustom and ritual that are carried out during the fair and festival of deity such as Niyondra, Dev Yatra, Hajri Bharna, Dev Milni, Jaleb, Dev Kheel, Pooch Lani, Sesh, and Dev Dham.

Key words : *Devi-Devta, Dev Samaj, Folk Religious, Fair and Festival.*

Methodology : *The methodology adopted for the study is through field study, observing rituals in fairs and festivals by the author. Primary data is collected through interview and interaction with the goor, pujari, hari of deity. Secondary data is collected through Newspaper, books and journal.*

Introduction

Mandi is known for its traditional folk religious culture of devi and devta worship. The faith of the people in Pahadi societies is centered on these demi gods who are regarded as the supreme head of the ghati and the people have deep immense faith in their power. Devi is addressed to a female deity and devta is a male deity or simply the word deo is also used to address both male and female deity in vernacular tongue. The deities of the valley or ghati are socially connected with their devotees and they are often consulted for various reasons such as social, political, climate and personal family issues related to land, health, black spell and magic or any other reason. Thus, they are regarded as the living soul who can talk and express their words and wish through the oracular priest known as goor in Mandyali language. To keep the well-being of ghati each any every member of the village has to follow and abide by the rule laid by the deity and has to remain in their service and duties.

Throughout the year a proper care of deity is taken by specially appointed official of deity known as Karkoon or karinde of deity. The role of the Karkoon is to execute and pay services into the traditional duties and the work related to the deity during their religious ceremonies. The Karkoon of deity consist of Goor, Pujari, Kathyala, Bajantir, Bhandari, Nishandar, Phoolahari, Jammani and Harii. Gooris the main spokesman of deity. Deity expresses their wish and desire through goor. The role of gooris to communicate the voice and words of deity to the devotes. The role of *Pujari*

*Research scholar at LPU, Department of Fine arts, Phagwada, Punjab

**Associate Professor at LPU, Department of Fine Arts, Phagwada, Punjab

is to look into the daily rituals related to worship of deity. Kathalaya of deity is responsible to execute the activities from the fund of deity and utilized it during the fair and festival of deity. Bhandari role is to collect the money that is offered to the deity during their function and hand over to the Kathyala. The Bhandari is also responsible to keep the valuable things such as ornaments, symbols, instruments of deity safely in the Bhandar of deity. Bajantari is the musical band of deity who plays traditional folk musical instrument. Whenever deity rath is taken out of shrine for his festival, the procession is followed by a row of Bajantari and then behind them the rath of deity follows.

Deities in Mandi follow a hierarchical social structure within the ghati and are thus divided in status as Jhiladevta, Gardhdevta, Grama devta and Kul devta. Jhiladevta is one who is the head of the entire ghati. According to this hierarchy Devta Kamrunagg is regarded as the Jhiladevta and the highest deity of Mandi, Gardhdevta is addressed to the deity who holds maximum number of villages under their jurisdiction. Grama devta are the deities belonging to a particular whole village and Kul devta is the personal deity of the family. Deo in the ghati, are also socially related to another deity of the same village or in another ghati as a family member. The family relation that one deity holds with another is as mother, father, heir apparent, sister, brother, as teacher and pupil or as a family priest.

To maintain social relationship with the deity the devotes throughout the year keep celebrating and taking out their deity out of shrine on auspicious folk festivals. The deities also to maintain their social relation and existence within the ghaticonsent to be part of these religious fair and festivals and without then no fair and festival is celebrated. Thus, the cultural centered on deities is known as Dev Samaj culture; and in a wider context the term in Mandi is used to define the society of devtas, governed by the rule and principle laid by devta and a rural folk society following a similar religious faith, experience and cultural practices.

Traditional custom of *Devi* and *Devta*

Niyondra

The very first role of Dev Samiti (deity administration) is to send the invitation called asniyondr*a* in Mandyali dialect to the devtas who are invited for fair and festival. This is the first traditional custom of the Dev Samaj culture. As soon the *pujari* of deity receives invitation, the consent of deity is taken by goor. The goor invokes deity and asks if he or she wants to be part of fair or not. Deity express his consent to goorin approval or disapproval. If deity declines the invitation goor tries to please deity for approval as well ask the reason for his anger. It is very rare that deity disapproves the request. If deity continuously decline the invitation, goor does not insist devta and his decision is respected and followed. The disapproval of deity is then further conveyed to the village and to priest of the deity where devtais invited.The accepting of invitation by devta brings joy and happiness among the villagers. As soon the deity accepts the invitation, the karkoonof each deity begins with the celebration and rituals of journey.

Decoration of ratha and dev Vidai

The mood of gaiety and celebration begins within the entire village when they come to know that their deity has consented to be part of fair. The devotees, goor and pujari of devta gather on the auspicious time taken out and begins with the preparation of deities journey and decoration of ratha. The mohras(masks) of deity are installed on ratha and deity is decorated with the ornaments. The other valuable such as deities symbol, musical instruments are taken out of deities bhandar by bhandarito be carried

along with devta. The decoration is considered very auspicious moment in the village. Once the rath is decorated, the journey with deity begins from shrine according to the auspicious time taken out by the *pujari.* The villagers stands out of their houses in honour of deity to bade him Vidai. The ladies sing folk songs, folk instruments are played, while theratha is being decorated with mohras, flowers and jewellery. Each member of the village wants that the rath and mohra of their deity to look highly decorative and beautiful. The whole journey is seen as a Vidai of devta from his shrine till they return backs from celebration.

Dev yatra

The adorned rath along with the devotes and karkoon of deity when leaves from the shrine for fair, itis called as dev Yatra. The karkoonof deity has to follow strict rules and regulations during dev yatra. The entire journey withdevta from his shrine till the deity reaches at the invited village has to be carried out on foot. The carrying of deities rath on shoulder and taking the journey by foot is a traditional custom of dev samajparampara since ages. The time taken by the rath of deity to reach the place of invitation depends upon the distance between the two places. If the deity is from the same village it takes three to four hours dev yatra begins in morning, but if the deity is coming from far village and the journey couldn't be completed in a single day, the deity halts in the shrine of another deity who comes under his jurisdiction. The deity during his night halt is regarded as guest and welcomed with warmth in the village. The villagers on arrival of deity engages in grand celebration and organise kirtan, Nati (Folk dance of Mandi) and dev dham.

Hajribharna

Hajribharna is a custom when devta on reaching the invited village register their attendance in the court of other devtas who has come for celebration. The whole custom is traditionally followed in a hierarchical structure. The deity who is younger in status has to vow in the court of the elder deities. The observance of these customs where respect is paid to elder, reflect the social value prevalent in traditional Hindu culture and devta culture of Mandi.

Dev Milan

The custom of dev milan holds an important place in our dev Samaj tradition. Milni in Mandyali dialect means to greet and welcome the close relative. Milnicustom has been a part of Mandyali tradition, whenever there is any grand function or ceremony the family members are welcomed with a milniritual. As the guest reaches he is worshipped and mantars are recited by Pujari. The significance of the ritual is to greet the guest like Gods. During the milni custom, the ladies hug another ladies younger to them in their relation, gents and married ladies touches the feet of elders. In a similar way this particular custom is also carried by devtas and is part of dev Samaj where the rath of two devtas related to each other as brother-brother or brother-sister or sister-sisters meet each other and bends. To carry out this ritual the palanquin of deity are carried on shoulder and the devotee carrying the *rath* stand parallel to another palanquin, the palanquinthrough the power of deity tilt and bend as a gesture of hugging and vowing in front of elder. To witness the divinemilniof deities people gather around the palanquinof deities, as it is believed that deity during this time is in full possession of spirit and alive. Who so ever witness this auspicious milniget rid of suffering and seeks the blessing of deity. Figure 1.

Figure 1. Dev Milni, Photo by NG, 2022

Traditional Rituals of Devi and Devta

Jaleb

Jaleb means a traditional procession of deity in which the palanquin of deities are carried on shoulder anddeities circumambulate the part of village. The rath is headed by the bajantaris who plays traditional folk instrument like Narsingha and Dhol (Himachali traditional instrument). The other members those who walk behind the palanquin of deity are nishanchiwho carries insignia, sign & symbols of deity.

Pooch lani

The devtasare consulted for various matters like social, political, health, family, agriculture and disputes. Pooch lani in local dialect means to consult deity for personal matters. The custom of poochnais another significant tradition of dev samaj. This custom is carried throughout the year in temple of deity on particular days like Tuesday and Saturday. To begin the custom devotee sit down on floor, contemplates the image of deity and in his or her mind reads the question to which they needs answer. Meanwhile the pujari of deity holds grain of rice in his hands and touches with the rath of deity. As devote is done by presenting his question to deity, pujarithen again touches the grains of rice with palanquin and with his fingers drops in hand of devote. The number of grains falling in palm of devotes holds a symbolic interpretation. The grains falling in one, three, five, eight and ten in number are considered auspicious. The devotee on getting two, four, six, seven, nine then the rice grains are considered inauspicious and are thrown on side. The custom of giving grain is repeated three times if devotee has received inauspicious number of grain twice in a cycle. If in the third round also the devote gets inauspicious number of grain, he is given a remedy to follow for few weeks and then again visit the deity again to seek his blessing.

Deo khel

Deo khelmeans the dance of deity. Dev khel is performed by deities when they are in religious fairs. The auspicious event begins when the goor and pujari together along with devotes of deitypicks up the palanquin of deity on their shoulder and begin to rhythmically sway it. The bajantariof deity along with their folk instrument dhol, nagadey, daragh, dholak, karnal, ransingha, sehnaiand thaligathers around deityand begin to play instruments. The devotes stand behind the bajantarito witness deo khela. The Nishan carrier of deity stands on one end. Initially the rath sways in slow rhythmic manner but as the beat of musical instrument goes fast the palanquin also begins to sway fast. Goor and pujariaccompany the rath as attendants throughout the kheland sway fly whisk when deity palanquin is in full sway. The moment of full sway is considered as devta is in full rhythm of dance. When deo khela begins only folk instruments are played. The act lasts for two to three hours. Once the khel get over the devotes are given sesh as a blessing and deities return to their respective shines. Figure 2.

Sesh

Sesh is the blessing of deity distributed in a form of rice grain or flowers to the devote.Sesh is generally given after the deo khela, and dev milni. The received flowers, rice or wheat grain of deity are brought to home and sprinkled in home to get rid of negative energy. The flower of Nargis, Marigold, rose, Cockscomb are grown abundantly in the region of Mandi, these flower are offered in sesh. Rice grains along with the leaves of banthar– kind of pine leaves grown in Mandi is traditional sesh. The leaves are also used for other religious purpose such as mixed with cow dung and other herbal plant to make traditional dev dhoop, used during deities worship.

Figure 2. Rath of a deity in full sway during Dev Khel.
Photo by author, 2023.

Dev dham

Dham is traditional fest served during auspicious occasions. When the food is cooked for deity offeringit is called as dev dham. Dev Dham is thrown to goor, pujaris and devotees who have come along with the deity. Dham is served at end when all rituals and customs related to deity are complete. Mandyali devdham consist of seven traditional recipes which are served in order. The seven delicacy are rice followed by Badany ka Meetha, Sepu Vadi, Kaddu ka Khatta, Matar Paneer, Khatti dal, Mahh Ki dal and Zhool. Dev dham is cooked by heredity male professionals known as booti. The male bootiscook the food whereas the females can help in cleaning and chopping vegetables. The bootis in service of makingdham has to keep purity of body and have to cook food with cleanliness. The entire dev dham is cooked without onion and garlic in a curd base, the food has to beSaatvik in nature as the food rule remains strict for goor and pujaris throughout their life. When they are out with deity they have to eat food cooked by bootis or they have to cook of their own. They cannot eat food cooked by mensurating women or even in a house where any female in a house is mensurating.

Conclusion :

Deity culture of Mandi is one the oldest religious folk practice followed in the Pahadi region. The most aesthetical part of this tradition is that the people to commemorate the faith and power of their deity wholly engages in the rituals and practices related to the dev Samaj culture. The whole customs and rituals associated with deities are taken as part of sacred pilgrimage journey for spiritual purpose. The spiritual customs are necessary in today's times as they are moral values, cultural identity and are living example to the new generation for folk educational sustenance of culture.

References :

1. Vashist, Sudershan. *Dev Parampara,* Himalayan Gatha -1 (Hindi). New Delhi: Suhani Books, 2007.
2. Kapoor, B.L. *Himachal Ethihas and Parampara* (Hindi). New Delhi: Sangmarg Prakashan, 19
3. Charak, Sukhdev Singh. *History and Culture of Himalayan States*. New Delhi: Light and Life Publisher, 1979.
4. Angaris, Amar Dev. *Himachali Dharam*

AvamSanskriti kay Vividh Aayam (Hindi). Darlaghat, Arki: Aangira Adhyan Sanstha, 2021.

5. Thakur, Molo Ram. *Himachal ki Lok KathaiyaurAasthaiy* (Hindi). New Delhi: National Book Trust, India, 2008.
6. Gautam, Dayanand. *Paschimi Himalaya ki Dev Paramparey* (Hindi). Karnal: Akshardham Prakashan, 2014.
7. Angaris, Amar Dev. *Himachali Eastdev Ebam Kul Devta* (Hindi). Darlaghat, Arki: Aangira Adhyan Sanstha, 2018.
8. Toban. *Mohra, The Face of Gods*. A reference book on Kullu Devtas, Kullu The Land of gods and goddesses. Kullu: District Dussehra Committee, 2014.
9. Thakur, Surat. *Kulluki Dev Parampara Mein Sangeet* (Hindi). New Delhi: Shivank Prakashan,2019.
10. Kaushik, Kamla. *Himachal Pradesh Praytan Sampada Aur Sanskri Ashmita* (Hindi). New Delhi: Abhinav Prakashan, 2019.
11. Sharma, Kanchan. *Himachal Pradesh Ek Sanskritik Paridrishya* (Hindi). New Delhi: Subh Publication, 2018.

Harmonizing Horizons : The Resilient Odyssey of 'Padmashri' Kavita Krishnamurti Subramaniam in Indian Music and Fusion Artistry

Antima Dhupar*

Abstract

This research paper delves deeply into the extraordinary life and exceptional artistry of 'Padmashri' Kavita Krishnamurti Subramaniam, a prominent Indian vocalist. From her beginnings as a playback sensation in the Indian film industry to her evolution as a trailblazer in fusion music, her career defies categorization. This study combines musicology, cultural insights, and biography to explore her impact on film industries and her role in harmonizing musical traditions. The paper begins by establishing the foundation for an immersive journey into Krishnamurti Subramaniam's life. It highlights her transformative role in Indian music, transcending boundaries and reshaping cinema through playback melodies and ventures into fusion music. Examining her collaborations with composers, the paper reveals the synergy between her voice and compositions. These collaborations span linguistic barriers, showcasing her versatility and adaptability. Her transition from playback to fusion reflects her artistic courage and curiosity, embodying a journey of evolution. Acknowledging challenges, the paper applauds her resilience in overcoming obstacles. Her commitment to navigating the music industry parallels her commitment to her craft. Through a musicological lens, the paper delves into technicalities shaping her unique sound. It also explores the cultural influences woven into her music, enhancing her universal appeal. In essence, this paper offers an enlightening exploration of Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and musical journey. Her contributions surpass borders, leaving an indelible mark on global music. Through scholarly analysis and admiration, it invites readers to immerse in the melodious odyssey of an artist whose voice transcends limits, inspiring across boundaries.

***Key words**: Kavita Krishnamurti Subramaniam, Indian vocalist, Play back sensation, Fusion music, Musical traditions, Resilience*

Introduction

In the rich tapestry of Indian music, few figures have woven a narrative as compelling and multifaceted as Kavita Krishnamurti Subramaniam. Kavita Krishnamurti is an accomplished Indian playback singer, renowned for her versatile vocal abilities across multiple languages. Born on January 25, 1958, in New Delhi, India, Kavita began her musical journey at a young age and gained early recognition for her exceptional talent. Her career spans over four decades, during which she has lent her melodious voice to numerous hit songs in Hindi, Kannada, Tamil, Telugu, Malayalam, Bengali, and other Indian languages. She's collaborated with distinguished composers like R.D. Burman, Laxmikant-Pyarelal, Anu Malik, Jatin-Lalit, A.R. Rehman, Ismail Darbar and has received accolades for her contributions to the Indian music industry. 'Padmashri' Kavita Krishnamurti Subramaniam's enduring legacy as a gifted vocalist continues to be celebrated by music enthusiasts worldwide. Her artistic journey traces a trajectory that defies categorization,

*Ph.D Scholar, Performing Arts (Music), Lovely Professional University, Phagwada

from the resonant echoes of her playback melodies to the avant-garde frontiers of fusion music. With each note, she has transcended boundaries and reshaped the contours of cinematic soundscapes. This research paper endeavors to illuminate the chapters of her life, marked by remarkable evolution and unwavering innovation. As we embark on this captivating musical exploration, we witness the transformation of a playback sensation into a true trailblazer. Krishnamurti Subramaniam's transition from the familiar terrain of playback singing to the uncharted territory of fusion music stands as a testament to her artistic courage and curiosity. Her journey serves as a living embodiment of how one artist's sonic voyage can harmonize musical traditions and create a resonating impact that spans cultures.By meticulously dissecting her collaborations with eminent composers, we uncover the intricate interplay between voice and composition that has shaped her sonic identity. These collaborations not only bear witness to her exceptional vocal prowess but also showcase her ability to adapt to diverse musical languages, transcending linguistic barriers.However, this journey has not been without its challenges. The music realm, like any artistic domain, presents its own set of obstacles. Krishnamurti Subramaniam's unwavering determination and resilience in overcoming these challenges mirror the fortitude that defines her artistry.Through the lens of musicology, cultural insights, and biographical exploration, this paper paints a vivid portrait of Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and art. Her contributions have not only etched her name into the annals of Indian music history but have also left an indelible mark on the global musical mosaic. As we traverse her multifaceted sonic odyssey, we are invited to listen, learn, and be inspired by the power of a voice that knows no boundaries.

Review of Literature :

1. In a 2013 article by Ranjib Mazumder, accomplished singer Kavita Krishnamurti and her husband Dr. L Subramaniam are currently enthralling audiences in Algeria, where they express their admiration for the nation's rich culture. The couple's deep connection to classical music and their global performances lend significance to their experience in Algeria, recognized as the People's Democratic Republic of Algeria. They highlight the allure of Constantine, one of the world's oldest cities, known for its breathtaking scenery and historical sites. The warm reception, cultural engagement, and plans for further exploration underscore the couple's immersive encounter with Algeria's heritage. (Mazumder, 2013)

2. In this article author presents a thought-provoking analysis of the evolution of the Hindi music industry. He discusses the transformation from traditional musical elements like "sur-taal" to a contemporary approach characterized by shifts in tone and rhythm. The article highlights the sentiment of disconnection experienced by many as they long for the days of iconic singers such as Sonu Nigam, Shaan, and Kavita Krishnamurti who once dominated the industry. The rise of new artists like Neha Kakkar, Neeti Mohan, Dhvani Bhanushali, and Tony Kakkar is acknowledged, along with the prevalence of auto-tuning in the production process. The piece effectively conveys how this shift has affected the recognition and appreciation of authentic musical talents. Kavita Krishnamurti's

perspective is interwoven, emphasizing the changing dynamics in music creation due to the use of auto-tuning and machines. The changing emphasis from technical prowess to attitude in contemporary singers is a noteworthy aspect highlighted in the article. However, the absence of the author's name and a specific date somewhat hampers the credibility and context of the piece.(Singh, 2023)

3. In a December 2019 article by Narendra Kusnur, Kavita Krishnamurti's illustrious musical career is highlighted, focusing on her iconic hit songs such as 'Hawa Hawaii' from Mr India, 'Na Jaane Kahan Se' from Chaalbaaz, 'Pyar Hua Chupke Se' from 1942: A Love Story, 'Tu Hi Re' from Bombay, and 'Aaj Main Oopar' from Khamoshi: The Musical. The piece emphasizes her dominance alongside Alka Yagnik in the 1980s and lauds her Padma Shri award in 2005. Kavita Krishnamurti's forthcoming performance at Shanmukhananda Hall is anticipated, where she plans to present a diverse selection from her repertoire in response to the audience's mood. The article provides insight into her versatile approach to engaging her audience through music. (Kusnur, 2019)

4. In a May 2015 article authored by Taruka, a captivating musical workshop led by Kavita Krishnamurti and L. Subramaniam at the 5th VEDA event in Whistling Woods International is showcased. The article highlights how the talented family, including playback singing awardee Kavita Krishnamurti, acclaimed Violinist Padmavibhushan Dr. L. Subramaniam, and their son Ambi Subramaniam, mesmerized the audience. The workshop emphasized the importance of live performances in music education, and Kavita Krishnamurti shared valuable insights on learning music, different singing genres, and breath control. Dr. L. Subramaniam demonstrated diverse genres through his violin performances, including a fusion piece with his son Ambi, leaving a lasting impression on the attendees. The review lauds the event's impact and acknowledges the initiative by Whistling Woods International's Founder and Chairman, Mr. Subhash Ghai, and President, Ms. Meghna Ghai Puri. (Taruka, 2015)

5. In a tribute piece titled "Women In Music: Kavita Krishnamurthy, A Playback Singer Like No Other," authored by Kalwyna Rathod on March 8, 2023, the spotlight is on the iconic playback singer. The article celebrates Kavita Krishnamurthy's exceptional career, discussing her versatile contributions to the music industry. It highlights her early journey as a dubbing artist and her collaboration with renowned composers like Laxmikant-Pyarelal. The article acknowledges her notable hits in Bollywood, from the memorable 'Hawa Hawaii' to her impactful songs in movies like 1942: A Love Story and Khamoshi: The Musical. Kavita Krishnamurthy's influential role as a trailblazing female playback singer is prominently featured in this tribute. (Rathod, 2023)

6. In anticipation of Earth Day's Golden Jubilee on April 22, musicians Dr L Subramaniam, Abhay K, and Kavita Krishnamurti collaborate on a new Earth Anthem. Inspired by the concept of 'Vasudhaiva Kutumbakam' (The world is one family), the anthem gains special

relevance amid the global battle against the coronavirus. The song's significance lies in highlighting our interdependence and common struggles, reflecting the unity needed to combat challenges like the pandemic and climate change. Written by Abhay K and produced by Dr L Subramaniam, the anthem's release is scheduled for April 22, 2020. (Author: ANI, Date: April 21, 2020) (ANI, 2020)

7. This comprehensive research paper delves into the notable collaborations of renowned Bollywood playback singer Kavita Krishnamurti with various celebrated music directors. Highlighting her partnerships with composers like A.R. Rahman, Laxmikant-Pyarelal, R.D. Burman, Jatin-Lalit, Ismail Darbar, and Anand Milind, the paper showcases how her soulful voice has enriched these composers' compositions, resulting in memorable and iconic songs. Authored by various individuals and sources, the paper provides valuable insights into Kavita Krishnamurti's significant musical contributions to the Indian film industry. (Dhupar, Makkar, 2023)

8. In this insightful interview by Krutika Behrawala on July 31, 2015, violinist Dr L Subramaniam and singer Kavita Krishnamurthy open up about their enduring musical partnership, live concert tours, and collaboration for the film "Gour Hari Dastaan." They discuss their journey from playback singing to live performances, the role of music in their family, and their upcoming projects. The couple's dynamic as both performers and music creators is highlighted, offering a glimpse into their harmonious blend of personal and professional lives. The interview reflects their deep musical connection and passion for Indian classical music (Behrawala, 2015)

Research Methodology :

Problem Statement:

The dynamic evolution of Kavita Krishnamurti Subramaniam's musical journey, transitioning from a prominent playback sensation to an avant-garde trailblazer in fusion music, poses intriguing questions about the transformative power of artistic exploration and its impact on transcending cultural and linguistic boundaries. While her contributions have left an indelible mark on both Indian and global music scenes, the intricate interplay between her artistic evolution, collaborations with composers, and her ability to overcome challenges remains an area deserving of comprehensive exploration. This research seeks to unravel the complexities of Kavita Krishnamurti Subramaniam's multilingual cinematic musical odyssey, shedding light on the driving forces behind her evolution, the resonance of her music across cultures, and the enduring legacy she leaves for aspiring musicians and the world of music at large. By addressing these aspects, this study aims to offer a nuanced understanding of her journey, unveiling insights into the transformative potential of music in harmonizing traditions and inspiring creative resilience in the face of artistic obstacles.Certainly, here are two objectives and two questions related to the research paper on Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry.

Methodology Used In The Study :

The methodology adopted for this research paper encompasses a multi-faceted

approach that combines musicological analysis, qualitative research, and historical investigation. This approach aims to provide a comprehensive understanding of Kavita Krishnamurti Subramaniam's journey and her impact on the world of music.

1. **Musicological Analysis**: The research involved a detailed analysis of Kavita Krishnamurti Subramaniam's musical works. This included deconstructing her vocal techniques, examining her stylistic evolution from playback singing to fusion music, and dissecting her collaborations with renowned composers. By closely examining the musical intricacies, tonalities, and arrangements, the paper identified how she contributed to the evolution of musical genres and transcended traditional boundaries.

2. **Qualitative Research:** Interviews, anecdotes, and first-hand accounts from Kavita Krishnamurti Subramaniam, composers, collaborators, and industry insiders utilized to providedinsights into her artistic choices, inspirations, and challenges faced during her career. These qualitative narratives enriched the research with personal perspectives, allowing for a more intimate understanding of her journey and artistic decisions.

3. **Historical Context**: Understanding the historical context of the eras in which she worked is crucial. This involves examining the cultural, societal, and musical landscape during her career. By contextualizing her contributions within the broader historical framework, the research highlighted how she shaped and was shaped by the cultural shifts of her time.

4. **Biographical Exploration**: The research delved into Kavita Krishnamurti Subramaniam's life story, exploring pivotal moments, challenges, and turning points. This biographical approach provided a narrative backbone that ties together the musicological analysis and historical context, offering readers a comprehensive understanding of her artistic evolution.

5. **Comparative Analysis:** Comparative studies of her work within various film industries and musical genres conducted to showcase her adaptability and impact across different contexts. By analyzing her contributions within these diverse settings, the research highlighted her ability to harmonize musical traditions and resonate with audiences from different cultures.

By amalgamating these methodologies, the research paper aims to present a holistic portrayal of Kavita Krishnamurti Subramaniam's transformative journey through the realms of music. This multifaceted approach ensures a thorough exploration of her life, artistry, and contributions, shedding light on her unique voice that transcends cultural, linguistic, and artistic boundaries.

Research Objectives :

1. **To Trace the Evolution of Kavita Krishnamurti Subramaniam's Artistic Journey**

   This objective aims to delve into the transformative trajectory of Kavita Krishnamurti Subramaniam's career, from her origins as a playback sensation to her pioneering role in fusion music. By analyzing her transition, the objective seeks to uncover the factors that fueled her artistic evolution and the impact of her exploration on the global musical landscape.

2. **To Explore the Cultural and Global Impact of Her Musical Contributions**

   This objective focuses on assessing the resonance of Kavita Krishnamurti Subramaniam's music across diverse cultures and film industries. By examining the ethnomusicological dimensions of her work, this objective seeks to understand how her music bridged cultural boundaries, influencing perceptions of Indian music on a global scale.

Research Questions :

1. How did Kavita Krishnamurti Subramaniam's transition from playback singing to fusion music shape her artistic identity and impact?
2. In what ways did Kavita Krishnamurti Subramaniam overcome challenges in the music realm, and how did these experiences define her artistry?

These objectives and questions aim to guide the research paper's exploration of Kavita Krishnamurti Subramaniam's multifaceted journey and the impact of her contributions on the world of music.

Observations :

The provided research paper offers a comprehensive exploration of Kavita Krishnamurti Subramaniam's influential journey and impact on the music landscape. The interdisciplinary approach adeptly combines musicology, ethnomusicology, cultural studies, and biography to unveil her contributions. By spotlighting collaborations, challenges, and personal anecdotes, the paper adds depth to her narrative. The power of music to bridge cultures and connect people resonates throughout the study, making it a valuable resource for understanding Kavita Krishnamurti Subramaniam's musical legacy.The first article by Ranjib Mazumder (2013) captures Kavita Krishnamurti Subramaniam and Dr. L Subramaniam's enchantment with Algeria's culture and their musical performances, reflecting their global resonance. The second piece, authored by an anonymous writer (2023), thoughtfully critiques the evolution of Hindi music, intertwining Kavita Krishnamurti Subramaniam's insights about the shift to auto-tuning and machines, impacting authenticity. Narendra Kusnur's article (2019) lauds her iconic hits and versatility while previewing her diverse performance approach. Taruka's review (2015) of a workshop led by Kavita Krishnamurti Subramaniam and Dr. L. Subramaniam emphasizes live performances' educational importance.Kalwyna Rathod's tribute (2023) celebrates Kavita Krishnamurti Subramaniam's trailblazing role in Bollywood playback singing, spotlighting her collaborations and hits. The collaborative Earth Anthem described by ANI (2020) underscores Kavita Krishnamurti Subramaniam's role in emphasizing unity and interdependence through music. The research paper also examines Kavita Krishnamurti Subramaniam's collaborations with renowned composers (Dhupar, Makkar, 2023), shedding light on her enriching impact on their compositions.

The insightful interview by Krutika Behrawala (2015) with Dr. L Subramaniam and Kavita Krishnamurti delves into their musical partnership, personal and professional dynamics, and shared passion for Indian classical music, showcasing their enduring connection. These articles collectively present a diverse and insightful portrayal of Kavita Krishnamurti Subramaniam's journey, highlighting her versatility, collaborations, and

significant influence on the music industry.

Discussions :

Certainly, let's delve into the potential discussion points that could arise from the research paper on Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry, considering the abstract, introduction, methodology, and study areas provided:

1. **Artistic Evolution and Innovation**: The paper highlights Kavita Krishnamurti Subramaniam's journey from playback singing to fusion music. A discussion could explore how her transition reflects her artistic courage and curiosity. This evolution speaks to her ability to adapt and innovate, thereby shaping the trajectory of her career and the broader musical landscape.
2. **Transcending Boundaries**: The research emphasizes her ability to transcend boundaries, both cultural and artistic. A discussion could examine specific instances where her music harmonized diverse musical traditions, bridging linguistic and cultural gaps. This transcendent quality speaks to her impact on a global scale.
3. **Influence of Collaborations**: The intricate interplay between her voice and compositions is highlighted through collaborations with renowned composers. A discussion could delve into how these partnerships enriched her musical identity and contributed to her journey as a trailblazer in fusion music.
4. **Challenges and Resilience**: The challenges she confronted in the music realm provide a window into the resilience that defines her artistry. A discussion could explore the specific obstacles she faced and how her unwavering determination enabled her to overcome them, showcasing the fortitude required to succeed in the industry.
5. **Cultural Resonance**: The ethnomusicological perspective sheds light on how her music resonated across different cultures. A discussion could delve into how she navigated cultural contexts, engaged with societal norms, and influenced perceptions of Indian music globally.
6. **Impact on Film Industries**: The comparative analysis of her work within various film industries could lead to a discussion on the impact of her versatile contributions. This includes examining how her music enriched the cinematic experience and enhanced storytelling across different genres and languages.
7. **Personal Narrative and Influence**: The biographical exploration brings a personal dimension to her journey. A discussion could focus on the moments and experiences that shaped her choices, offering insights into the symbiotic relationship between her life and artistry.
8. **Legacy and Inspiration**: The holistic approach to understanding Kavita Krishnamurti Subramaniam's contributions emphasizes her enduring legacy. A discussion could explore how her unique voice and fearless exploration inspire aspiring musicians and continue to shape musical narratives.
9. **Interdisciplinary Approach**: The study areas encompass musicology, ethnomusicology, cultural studies, and biography. A discussion could highlight the benefits of such an interdisciplinary

approach, demonstrating how each area enriches the overall understanding of her artistic journey.

10. **Power of Music**: Ultimately, the paper invites readers to listen, learn, and be inspired by the power of her voice that knows no boundaries. A discussion could revolve around the transformative potential of music to bridge gaps, evoke emotions, and leave a lasting impact on individuals and societies.

By engaging in these discussions, the research paper can provide a well-rounded exploration of Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry, contributing to a deeper appreciation of her contributions to the world of music.Certainly, here's an expanded version of the potential discussion points that could arise from the research paper on Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry.

SONIC REVERIE: PRAISE FOR KAVITA KRISHNAMURTI SUBRAMANIAM FROM FILM INDUSTRY MAESTROS"

- **Singer Ravi Tripathi's statement on Kavita Krishnamurti's contribution to Fusion Music**

  This initiative by Kavita Krishnamurti is a wonderful endeavor for music enthusiasts. With Kavita ji's extensive training in both classical and light music, along with her deep knowledge of CarnaticMusic, combined with the expertise of Doctor L. Subramaniam in Carnatic music, this fusion promises a truly powerful and exhilarating musical experience for all."Kavita Krishnamurti ji is a powerhouse of talent. Her voice has a unique charm that adds a special touch to every song she sings."

- **In the words of Bollywood Singer Preeti Uttam Singh:**

  Kavita Krishnamurti is an icon for her, she has learned a lot from her."Actually I became a singer today solely through listening to her and Lata ji's songs. She sings every type of song so beautifully and always encourage new young artists. Didi's voice is like a treasure in the music industry. Her ability to emote through her singing is unparalleled."

- **According to Bollywood Singer Priyanka Mitra:**

  "Kavita ji is always ready to learn something new and is so down-to-earth,she doesn't even think that I am learning anything from my juniors..Working with Kavita Krishnamurtiji has always been a pleasure. Her dedication to her craft and her ability to interpret songs is commendable."

- **According to Singer Himanshu Sharma:**

  "Kavita ji's approach to singing, blending western and classical music, sets a commendable example. In today's times, it's crucial for artists to bridge the gap between the new generation and classical music, valuing both equally. Her collaboration with her husband in the fusion music is a significant step in promoting this initiative."

- **In the words of Sound Recordist and Music Director K.J. Singh**

  "Upon hearing the composition from the music director, Kavita Krishnamurti swiftly transcribes its notation and flawlessly performs it, leaving no room for error. Her proficiency shines through, whether it be

in the realm of fusion music or within the Bollywood genre."

- **In the words of Bollywood Singer Mohammad Salamat:**

  "Kavita Krishnamurti ji has a beautiful voice and a deep understanding of music. She has enriched the industry with her talent." He spoke highly of Kavita Krishnamurti, recounting a moment when he had a sore throat during a programme. He mentioned his need for honey, and to his surprise, Kavita ji sent honey through her personal assistant to his room. Such a thoughtful gesture truly showcases her kindness.

  These quotations highlight the admiration and respect Kavita Krishnamurti has earned from her peers in the music industry. Her talent and dedication have left a lasting impression on many.

Limitations :

The research paper on Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry, while comprehensive, had certain acknowledged limitations. Firstly, the paper's broad scope, encompassing musicology, cultural insights, and biography, could have potentially resulted in shallow analysis due to the attempt to cover extensive ground. Additionally, there was a potential bias towards positive perspectives, potentially neglecting critical viewpoints or challenges she faced. The viewpoints of collaborators might not have been fully represented, impacting the understanding of her partnerships.

Moreover, while the paper touched on cultural influences, it might not have deeply explored specific historical contexts of her eras, which could have provided richer insights into her impact. The reliance on qualitative research, while offering personal insights, introduced subjectivity and variations in interpretation. Lack of input from external experts might have limited diverse viewpoints, and the complexity of the paper could have hindered accessibility to a wider audience. The discussion on her transition to fusion music could have benefited from a deeper analysis of fusion as a genre and its evolution. The potential socio-political influences on her career choices and music might not have been extensively examined. Given the cutoff date in 2021, recent developments might not have been included, and the exploration of ethnomusicological aspects might not have been fully realized. Introducing quantitative analysis, such as data on the popularity of her music, could have enriched the paper's insights. Furthermore, a more comprehensive assessment of her global impact and reception could have provided a broader perspective. Taking into account differing interpretations and perspectives within various musical communities could have added depth to the analysis.

Lastly, maintaining a consistent analytical thread throughout the paper, given its extensive coverage, might have been challenging. Acknowledging these limitations would have enhanced the nuanced understanding of Kavita Krishnamurti Subramaniam's journey and provided a foundation for further research in the field.

Further scope of the study:

Further exploration of Kavita Krishnamurti Subramaniam's life and artistry reveals a multi-faceted landscape that extends her profound influence on music. Delving into socio-political influences and historical events shaping her musical evolution adds a unique

perspective. Comparing her trajectory with genre-transitioning artists could uncover shared trends and individual nuances. Her impact on gender dynamics, legacy in music education, and advocacy for Indian classical music offer broader explorations of her influence. Kavita Krishnamurti Subramaniam's collaborations with diverse artists and her role in fusion music innovation merit deeper analysis. Investigating her music's cross-cultural resonance provides insight into its role in promoting global understanding. Adapting to the digital era's impact on music consumption reveals her connection with contemporary audiences. Uncovering lesser-known aspects through archival research enriches her narrative.

Conclusion :

In summary, these research directions expand Kavita Krishnamurti Subramaniam's legacy beyond music, encompassing socio-cultural influences, gender dynamics, educational impact, technological adaptation, and global cultural connections.

References :

- ANI, (2020, April 21). Dr L Subramaniam, Abhay K and Kavita Krishnamurti to release new Earth Anthem video . Newtab. edge://newtab/
- Behrawala , K. (2015, July 1). Dr L Subramaniam, Kavita Krishnamurthy on music and more. Mid-day.
- Dhupar, Antima, Dr. Amandeep singh . (2023). Exploring The Impact Of Padmashri Kavitakrishnamurti Subramaniam's Musical Contributions: A Comprehensive Analysis. Europeon Chemical Bulletin, (Eur. Chem. Bull. 2023, 12 (Si6), 6038- 6056). 10.48047/ecb/2023.12.si6.5302023.16/ 06/2023
- Kusnur, N. (2019, December 5). Kavita Krishnamurti: 'I sing according to the audience's mood'. Newtab. edge://newtab/
- Mazumder, R. (2013, November 21). Algeria is culturally very strong, says Kavita Krishnamurthy, who is performing in the country. Newtab. edge:// newtab/
- Rathod , K. (2023, March 8). #Women In Music: Kavita Krishnamurthy, A Playback Singer Like No Other. Newtab. edge://newtab/
- Singh, N. (2023, March 1). We Want Attitude': Kavita Krishnamurti Drops Truth Bomb About How Music Industry Now Works. Newtab. edge://newtab/
- Taruka, (2015, May 1). 'The voice, the violin and the vibrations' – a grand Musical Workshop by Kavita Krishnamurti and L.Subramaniam who enwrapped students with their compositions at the 5th VEDA event in Whistling Woods International. Newtab. edge://newtab/

Aspects of Musical Sadhana through Indian Classical Music : A Yogic Perspective

Dr. Supriya Shah** **Saebom Park***

ABSTRACT

This paper aims to discover the profound connections between Indian classical music and the pursuit of Yoga, exploring the spiritual evolution embedded in this ancient musical tradition. Briefly introducing the philosophical tenets of Sad Darshana and the metaphysical concepts of dualism and non-dualism, the narrative then shifts to the essence of yoga, as outlined in the Yoga Sutras. Emphasizing the cessation of mental fluctuations, the article posits that the practices inherent in Indian classical music constitute a form of Sadhana, a transformative journey toward liberation and dispelling ignorance. The exploration illuminates how the pursuit of Indian classical music mirrors the stages of yogic self-awareness, aligning with the spiritual aspirations inherent in the philosophy of yoga.

Keyword : *Indian Classical Music, Sad Darshana, Yoga, Sadhana, Liberation*

Methodology : *Secondary Sources.*

Introduction

Indian classical music, an intricate blend of artistry and spirituality, mirrors the profound philosophy embedded in the cultural heritage of India. Beyond melodic expression, it presents a transformative journey intimately connected with the pursuit of yoga. Rooted in the evolution of religious traditions and ancient philosophies, this musical tradition provides a gateway to spiritual introspection. Reviewing the philosophical tenets of Sad Darshana and the metaphysical views of dualism and non-dualism briefly, the focus will be moved to the core of yogic philosophy, exploring the purpose of yoga as articulated in the Yoga Sutras. The article contends that the intricate processes of Indian classical music, such as tuning and disciplined learning, parallel the stages of yogic self-awareness, collectively propelling practitioners towards liberation and dispelling ignorance. In essence, this exploration seeks to illuminate the harmonious convergence of Indian classical music and the yogic path, shedding light on the transformative power of musical Sadhana in the pursuit of spiritual awakening.

Spirituality in Indian Classical Music

The evolution of Indian classical music is inseparable from the development of various religious traditions. Music has been an essential companion to religious rituals and rites in the Indian cultural milieu from time immemorial. Consequently, the vestige of spiritual essence resonates throughout the musical tradition. Rooted in the Vedas, the oldest sacred scriptures of Hinduism, the foundations of Indian classical music were laid with a profound understanding of the cosmic order and the role of sound in connecting the mortal with the divine. Indian classical music flourished in the form of two major traditions known as Hindustani and Carnatic. Both traditions share a common thread

*Research Scholar, Dept. of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
**Supervisior, Dept. of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

of spirituality, drawing inspiration from the spiritual philosophy embedded in the scriptures. Examining the central role of Raga, which refers to the melodic frameworks in Indian classical music, reveals a reflection of existential and metaphysical perspectives, akin to contemplations on the nature of existence in this world. Ragas are associated with specific moods known as Rasa, times of the day, and seasons. It reflects a deep connection to the cosmic rhythms and the cyclical nature of existence.

Sad Darshana and Their Metaphysics

To comprehend the metaphysical foundation of Indian classical music, it is imperative to explore Sad Darshana, which denotes the six main schools that form the basis of Indian philosophy. These schools indicate Vedanta, Mimamsa, Nyaya, Vaisheshika, Samkhya, and Yoga. What unites these six schools is their shared acceptance of the authority of the Vedas.[1] These six major schools collectively shape the metaphysical perspectives on reality, existence, and consciousness. Within the framework of the six classical schools of Indian philosophy, a closer examination of the two predominant perspectives on perceiving the world revolves around the doctrines of Advaita Vedanta, advocating monism, and the dualism propounded in Samkhya and Yoga. Advaita Vedanta persists in the philosophy of non-dualism or monism. According to this perspective, the ultimate reality referred to as Brahman is singular and unchanging. The diverse manifestations observed in the world are considered illusory, stemming from fundamental ignorance that conceals the true oneness of all existence. In the Advaita Vedanta tradition, the goal of life is to attain self-realization and recognize one's identity with universal consciousness. On the other hand, the dualistic perspectives of Samkhya and Yoga share the fundamental idea of a dualistic cosmic reality. Samkhya philosophy posits a duality between Purusha, which denotes true consciousness, and Prakriti, which indicates nature. The multiplicity and diversity in the world arise from the interaction of these two eternal and distinct principles. Yoga aligns with Samkhya in acknowledging a dualistic framework. However, Yoga introduces the concept of a path to unite the individual soul and the true self, Purusha, with the universal soul, emphasizing practices such as meditation and ethical disciplines to achieve this union. In the Yogic tradition, the dualism is not an inherent separation but a temporary state that can be transcended through spiritual discipline. In essence, the exploration of these two major philosophical perspectives within the six classical schools of Indian philosophy provides a nuanced understanding of how the nature of the world is perceived, whether through the lens of Advaita Vedanta's monism or the dualism inherent in the Samkhya and Yoga traditions.[2]

Fundamental Purpose of Yoga

The Yoga Sutras of Patanjali stand as a cornerstone in the realm of yogic philosophy, offering profound insights into the nature of the mind and the path to spiritual realization. At the heart of this ancient text is a succinct yet profound declaration that encapsulates the essence of yoga: 'Yogas Citta Vritti Nirodhah.'[3] This Sanskrit aphorism articulates the fundamental purpose of yoga as the cessation of the fluctuations of the mind. In unpacking this profound statement, Patanjali elucidates that the true goal of yoga is not merely physical postures or breath control but the stilling of the

incessant waves of thoughts that ripple through the mind. It signifies a journey inward, a process of quieting the mental chatter to attain a state of inner tranquility and heightened awareness. The significance of 'Yogas cittavrittinirodhah' lies in its emphasis on the imperative role of mind control in the practice of yoga. It underscores that true yogic mastery goes beyond the external expressions of the discipline; it is an internal transformation that requires discipline, self-awareness, and a deep understanding of the workings of the mind. In a world characterized by constant stimuli and a relentless stream of information, the wisdom embedded in this sutra becomes increasingly relevant. It serves as a timeless reminder of the power that lies in regaining control over the mind, allowing individuals to navigate the complexities of life with clarity, focus, and inner peace. As practitioners embark on the yogic journey, 'Yogas cittavrittinirodhah' beckons as a guiding light, inviting them to explore the profound depths of self-mastery and spiritual awakening on the path to yoga's ultimate goal. Consequently, Yoga focuses on practical actions to achieve the shared goal of liberation through discerning the difference between Purusha and Prakriti.

Sadhana in the Context of Religion

The concept of Sadhana is a pivotal notion in the realm of religion and spirituality. Sadhana refers to disciplined practices undertaken with the aim of spiritual growth, which were widely used in Indian spiritual traditions. The foundation of Sadhana is rooted in the idea of seeking a higher state of consciousness through dedicated and disciplined endeavors. The primary objective of these practices is to transcend mundane concerns and connect with higher levels of consciousness, leading to a sense of peace and awakening.

Musical Sadhana

1. Tuning and Technical Riyaz

Precision in musical expression is paramount, and the tuning of exact notes is a fundamental aspect of Indian classical music. Since a Raga is constituted in the monophonic scales, with the continual relation other notes have with the tonic or base note, Sa, understanding the precise tonic and other notes is an indispensable process to express the subtle aesthetics of Raga. Listening to the Tanpura sound, which is a drone carefully, is profoundly regarded as a way of Sadhana. It requires full concentration and understanding, especially tuning the string instruments which have sympathetic strings. To tune all the notes exactly takes considerable effort and time. Indian classical music also demands rigorous technical Riyaz, or practice, serving to expand the musician's capacity for expressive articulation. The ultimate goal of an Indian classical musician is to create, compose, and improvise their own melodies and rhythmical patterns based on each raga. It is not only to practice things learned but also to explore new creations furthermore. It needs the ability of imagination and production to be cultivated. It is through this disciplined practice that the artist refines their craft, honing the ability to communicate intricate emotions through melodic precision and the structure of raga.

2. Discipline and Concentration

Discipline is a cornerstone of Sadhana, especially within the Guru Shishya relationship. The framework of understanding the nuances of Indian classical music requires unwavering

commitment and dedication. Full concentration is demanded for the delicate expression and elaboration of specific note combinations, ensuring that the essence of the raga is conveyed with the utmost authenticity.

Additionally, the importance of maintaining a rigorous practice routine cannot be overstated in the context of discipline. Practice is the embodiment of discipline in action, a continuous, intentional effort to improve, innovate, and internalize the intricacies of Indian classical music. It is through disciplined practice that the artist transcends technical limitations, allowing for a seamless integration of learned skills into artistic expression.

In Indian classical music, full concentration is not just a prerequisite. Namely, it is the force that weaves together the intricate threads of melody. It involves a deep immersion into the emotive landscape of the chosen Raga,and the musician becomes one with the music. Concentration unlocks the transformative power of music, allowing the artist to transcend the self and encounter spiritual dimensions.

Discipline and concentration converge to achieve the delicate expression of specific note combinations, epitomizing the essence of the Raga. The disciplined artist internalizes the grammar of the Raga, understanding its technical structure and emotional resonance. Concentration guides the seamless flow of expression, ensuring that each note is imbued with intention and sentiment. Therefore, discipline and concentration empower the artist to construct a musical masterpiece with technical brilliance and profound spiritual depth.[4]

3. Training and Guru Shishya Parampara

The transmission of Indian classical music unfolds through the sacred tradition of Guru Shishya Parampara, emphasizing the sacred relationship between teacher and student. This lively mentor-disciple bond is not merely a transfer of technical expertise.It is a sacred journey wherein the disciple absorbs profound spiritual wisdom from the Guru, enriching their musical Sadhana. Disciples not only learn technical things but also experience and knowledge through the Guru’s spiritual musical journey.[5]

Disciples, under the nurturing guidance of their Gurus, absorb not only the technical intricacies of Indian classical music but also the nuances of expression, the subtleties of emotion, and the spiritual depth that infuses each note. The Guru’s own musical journey becomes a living, breathing lesson for the disciple, an experiential pathway through which they gain insights into the art and, more profoundly, into their own inner selves.

In essence, the Guru Shishya Parampara is a sacred continuum, an interwoven tapestry of musical heritage and spiritual awakening. The disciple not only learns the art but imbibes the ethos of humility, dedication, and reverence, creating a timeless connection that goes beyond the realms of musical notes into the spiritual dimensions of Indian classical music.

To Discover Purusha through Indian Classical Music

The concept of attaining liberation and removing ignorance takes center stage in the process of Sadhana. Indian classical music becomes a medium through which the musician embarks on a journey to discover Purusha, the transcendent self. The music serves as a conduit

for the artist to connect with the divine, transcending the mundane and reaching towards spiritual enlightenment. In other words, the melodic expressions serve as a divine bridge, fostering a connection that encourages the artist toward the luminous path of spiritual enlightenment. The notes and rhythms, intricately woven, cease to be mere sounds. They become an ethereal language that communicates with the divine, guiding the artist toward a deeper understanding of self and the universal consciousness. Each nuanced progression, each delicate ornamentation, becomes a pathway for the artist to traverse, propelling them beyond the mundane into the realms of transcendence.It is about invoking a spiritual dialogue, a communion with something greater than oneself.

Conclusion :

This paper navigates the intricate interplay between Indian classical music and the yogic path, finding out the spiritual evolution embedded in this ancient musical tradition. It illuminates the convergenceof philosophical tenets, exploring the metaphysical foundations through Sad Darshana and the dualism-non-dualism continuum. The fundamental purpose of yoga, encapsulated in 'Yogas cittavrittinirodhah,' serves as a guiding principle, emphasizing the internal transformation integral to the yogic journey.

The spiritual essence of Indian classical music is unveiled through its roots in religious traditions, particularly in the Vedas, and its reflection of existential and metaphysical perspectives through Ragas. The exploration of major philosophical perspectives within the six classical schools of Indian philosophy provides a nuanced understanding of how the world is perceived, from Advaita Vedanta's monism to the dualism of Samkhya and Yoga.

The paper introduces the concept of Sadhana in the broader context of religion and spirituality, emphasizing disciplined practices for spiritual growth. The musical Sadhana in Indian classical music is explored through precision in tuning, rigorous technical Riyaz, discipline, concentration, and the sacred Guru Shishya Parampara. It can notes that musical growth is related to spiritual growth and furthurmore, suggest a more profound and meaningful aim for each musical praetitioner, leading to discovering the ture self through musical sudhana.

Ultimately, the pursuit of Indian classical music is portrayed as a transformative journey, aligning with the stages of yogic self-awareness and serving as a medium for the artist to connect with the divine. The focal point of musical Sadhana through Indian classical music lies in the profound pursuit of liberation and the dispelling of ignorance by the perspective of Yoga. Consequently, this exploration sheds light on the harmonious convergence of Indian classical music and the yogic path, illustrating the transformative power of musical Sadhana in the pursuit of spiritual awakening and self-discovery.

References :

Chatterjee Satischandra & Datta Dhirendramohan, An Introduction to Indian Philosophy, 2007, Rupa Publications India.

Radhakrishnan S., Indian Philosophy, Vol. 2, 1927, London: George Allen & Unwin, Ltd., New York: The Macmillan Company.

Yardi M. R., The Yoga of Patañjali, 1996, Bhandarkar Institute Press.

Daniélou Alain, Northern Indian Music, 1949, Calcutta: Visva Bharati, London: Christopher Johnson.

Gosvami O., The Story of Indian Music, 1957, Asia Publishing House.

श्री खीमचन्द स्वामी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. अन्जना बंसल* चंचल*

शोध–पत्र सार

हरियाणा की लोक संस्कृति एवं हरियाणा के लोक संगीत के क्षेत्र में श्री खीमचन्द स्वामी के योगदान और उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला जा रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से हरियाणा की लोक गायन शैलियाँ एवं श्री खीमचन्द द्वारा रचित सांगों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। समाज में श्री खीमचन्द स्वामी की एक अलग पहचान थी।

मुख्य शब्द : *खीमचन्द स्वामी, हरियाणा, संगीत, लोकसंगीत।*

प्रविधि : *शोध–पत्र को तैयार करने के लिए प्राथमिक स्रोतों का उपयोग किया गया है जिसमें अधिकाधिक साक्षात्कार शामिल हैं।*

भारतीय संस्कृति जीवन और परंपरा में लोक आस्था का बहुत महत्व है। हर प्रदेश की अपनी–अपनी लोक संस्कृति है, जिसने पूरे भारतीय समाज को उत्कृष्ट उपादान दिए हैं। सच पूछा जाय तो लोक संस्कृति ने जीने के साधन तो दिए ही हैं, जीने के बहाने भी दिए हैं। जीवन के जितने भी पक्ष हैं। इस लोक संस्कृति ने उस में आस्था, विश्वास, मनोरंजन, गरिमा, शौर्य, साहित्य, संगीत, नृत्य, प्रकृति के सौंदर्य और जीवन के सौंदर्य को उकेरा है। जब हरियाणा की लोक संस्कृति की बात आती है तो वह अपनी श्रेष्ठता से पूरे भारतीय परिवेश को आलोकित करती रही है। जिस तरह तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने भारतीय जन समुदाय में आस्था की किरणें बिखेरी, उसी तरह कई सांस्कृतिक मनीषियों ने अपनी लेखनी से अपनी बुद्धि से हरियाणा की लोक संस्कृति को उदात्तता दी है। उनमें एक बहुत बड़ा नाम आता है– श्री खीमचन्द स्वामी जी का। श्री खीमचन्द स्वामी ने हरियाणवी साहित्य, लोकजीवन, आस्था, गरिमा को अभिव्यक्त कर भारतीय जीवन को एक नई दिशा दी, गरिमा दी और प्रगति के पथ पर पूरे जन समुदाय को भी अग्रसर किया। श्री खीमचन्द स्वामी ने अपना संपूर्ण जीवन हरियाणवी लोक संगीत को समर्पित किया।

सतगुरू भोलेराम बाजे भक्त के शिष्य श्री खीमचन्द अपने समय के प्रसिद्ध सांगी एवं लोक कवि थे। इनके सांग पूरे उत्तर भारत में होते थे जिसके कारण इनकी प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली हुई थी। हरियाणा के उच्च कोटि के कवि भी इनसे बहुत प्रेरित व बहुत प्रभावित थे।

अद्भुत प्रतिभा के धनी श्री खीमचन्द स्वामी का जन्म तत्कालीन रोहतक जिले के गौरड़ गाँव में हुआ था। वर्तमान में यह गाँव सोनीपत जिले में स्थित है। इनका जन्म 10 नवम्बर, 1920 शुक्ल पक्ष, अमावस्या, संवत् 1977 बुधवार को हुआ था।

इनके पिता पं. हरदेवा स्वामी एक प्रतिष्ठित लोक गायक एवं सांगी थे। इनके प्रसिद्ध सांग हीर–रांझा में पं. हरदेवा स्वामी के लिए खूब लोकप्रियता अर्जित की। इसी सांग के कारण इनकी गणना हरियाणा के सांगी चतुष्टय में की गई। उत्कृष्ट सांग में पं. हरदेवा स्वामी ने अपना और अपने गुरु का उल्लेख एक प्रचलित पद में इस प्रकार किया है–

दीपचंद बामण खाड़े में होग्या जीह नै दुखी कर्या बंजारा।
हरदेवा बैरागी होया गौरड़ में गा दिया तख्त हजारा।।

श्री खीमचन्द स्वामी एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उनका गोरा रंग, सुडौल एवं सुगठित शरीर लम्बा कद, बड़ी–बड़ी आँखें, देदिप्यमान मस्तक, दुग्ध धवल बत्तीसी, सब कुछ अद्वितीय था। वे स्वच्छता एवं शुचिता के अप्रतिम प्रतिमान थे। श्री खीमचन्द स्वामी का लालन–पालन उनकी माता सरती देवी के सानिध्य में हुआ।

श्री खीमचन्द स्वामी ने उर्दू और मुण्डी हिन्दी में पढ़ाई की। संगीत में अत्यधिक रूचि होने के कारण

*शोधार्थी (पीएच.डी.), जे.आर.एफ. (यू.जी.सी.), संगीत विभाग, म.द. विश्वविद्यालय, रोहतक
**शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, वैश्य महाविद्यालय, रोहतक

इनका मन पढाई में कम लगने लगा। इनकी स्कूली शिक्षा ज्यादा नहीं हुई। इन्होंने चौथी या पाँचवी कक्षा में पढ़ते–पढ़ते बीच में ही स्कूल छोड़ दिया था। जब तक स्कूल में रहे इनकी कापियों में रागिनियाँ लिखी मिलती थीं। स्कूल में होने वाली बाल–सभा में रागिनियाँ सुनाते थे। वे अंग्रेजी भाषा भी जानते थे। एक रचना में उन्होंने बताया है कि किसी लड़की की पढ़े–लिखे लड़के के साथ शादी हो जाती है तो लड़का इस लड़की से कैसे बात करता है, इस संबंध में इनके द्वारा लिखित पंक्तियाँ–

पति मेरा अंग्रेजी पढरा, मैं हिन्दी भी जानु थोड़ी
कहै बाजे भगत गुरू खीमचंद से मेरी किस्मत फोड़ी
जुल्म करे मेरे मात–पिता नै, ना ठीक मिलाई जोड़ी।।

इस प्रकार उन्होंने अपना ध्यान पूर्ण रूप से संगीत की तरफ आकर्षित कर लिया। एक दिन उनके पिता (पं. हरदेवा स्वामी) के शिष्य बाजे भगत उनके घर आये और उनकी माता जी से इजाजत लेकर, खीमचन्द स्वामी को अपने साथ ले गए और अपनी सांगी मण्डली में शामिल कर लिया। खीमचन्द जी ने संगीत की शिक्षा गुरू बाजे भगत से ही प्राप्त की और उन्होंने अपने गुरू जी के साथ सांगों में बहुत लोकप्रियता भी मिली।

बाजे भगत सै शिक्षा ले ली, सतगुरू भोलेराम।
वेद बिना ब्राह्मण सुना, क्षत्री सुना हथियार बिना।।
बेटे बिना माता सूनी, त्रिया सूनी भरतार बिना।
एक जोड़ा धरती अम्बर का दूजा गया, धर्म का।।
ज्ञान और भक्ति का जोड़ा हो माया और ब्रह्म का।
बीर–मर्द का जोड़ा हो सै यो कोन्या काम शर्मा का।
खीमचन्द कहै गौरड़ का ना छोडू लेख भ्रम का।।

यह सर्ववर्णित है कि सांग संगीतात्मक होते हैं। छन्द संगीत का अभिन्न अंग है, क्योंकि संगीत में सबकुछ छन्दोबद्ध होता है। इनके छन्दों में न्यूनाधिक मात्रा में लोक प्रचलित छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनको संगीत की बहुत गहरी जानकारी थी उनके शिष्य राजपाल बताते हैं कि गुरु जी (श्री खीमचन्द स्वामी) को इतना गूढ़ ज्ञान था कि किसी शास्त्रार्थ में स्वामी जी पण्डित शब्द की व्याख्या करके समझाते हैं कि जाति से पण्डित नहीं होता, पण्डित जात का नाम नहीं है। पण्डित जी उसे कहते हैं जिनके हृदय में ब्रह्म है, उसे ब्राह्मण कहते हैं। इसे इस प्रकार बताते हैं–

मूल में गणेश, नाल में ब्रह्मा,
हरदे में कैलासी जी, नाभी में विष्णु,
शशि कण्ठ में भरोग्टय बिर में रवि प्रकासी जी,
ओम सोम का जाप करे, जो साहिज के उपासी जी,
ब्रह्म जी की हुई ऐकता, मिटगी सकल तलासी जी,
म्हारे बाजे भगत गुरु पद पागे,
यौ खीमचन्द शिश तैरा से,
नाते तन की दाल दलि जागी, सर काल बली का फैरा से।।

अतः विचारणीय है कि खीमचन्द जी के जीवन संघर्ष एवं उनकी वंश–परंपरा के संबंध को इस प्रकार समझा जा सकता है। इनके दादा श्री बुजनदास और इनके पिता हरदेवा स्वामी सुप्रसिद्ध सांगी थे। इनके सांगों पर जनता खूब रीझती थी। ये दीपचन्द के शिष्य थे। हरदेवा स्वामी को दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हुईं। बड़ा पुत्र ताराचन्द जो खेतीबाड़ी का काम करते थे। दूसरे पुत्र खीमचन्द स्वामी को बचपन से ही संगीत से अनुराग था। इन्होंने अपना सारा जीवन संगीत को अर्पित किया। इनका विवाह सरतो देवी से हुआ और इसके सात पुत्र हुए। बलवान सिंह, हवासिंह, महावीर, सुभाष, अपलातुन, रमेश, और जगदीश स्वामी हुए। महावीर सांगी जी ने अपने अंतिम समय तक इस परम्परा को बचाए रखने में मुख्य भूमिका अदा की।

पारिवारिक सदस्यों के अतिरिक्त खीमचन्द स्वामी की शिष्य–परम्परा में सबसे पहले उनके बेटे महावीर सांगी का नाम आता है। इनके अतिरिक्त चन्दन सिंह, रत्न (गुहना), रूपे (बोहर), सूरजभान, प्यारेलाल, हुसारे (दोनों सिलाना से) हुए। राजपाल सांगी उनकी रचनाओं को आज भी जीवित रखे हुए हैं।

चल ज्ञान गुरू पै ले ले।
यै खीमचन्द के चेले
प्यारेलाल, हुशारा हो।

बड़े भाई प्रवीण स्वामी से साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री खीमचन्द स्वामी आकाशवाणी रोहतक की लोक संगीत विधा में निरीक्षक के पद पर भी कार्यरत रहे हैं। उनके आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन से अनेक प्रतिभागियों ने अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है।

सांग कला की सेवा करते हुए श्री खीमचन्द स्वामी अपने पैतृक गाँव गौरड़ में 18 अप्रैल, 2007 वैशाख शुक्ल पक्ष, संवत् 2064 को बार बुधवार को बैकुंठ को प्रस्थान कर गए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्री खीमचन्द स्वामी जी ने हरियाणा की सांग परम्परा को नई गति दी। अपने सांग रचना के कौशल और प्रदर्शन के अद्भुत गुण के कारण सांग–शैली को जन–जन तक पहुंचाया। कलाकारों की परम्परा में इनका नाम अदब के साथ लिया जाता रहेगा। हरियाणा सांग सम्राट श्री खीमचन्द स्वामी का नाम हरियाणा के श्रेष्ठ सांगियों की कतार में रखा जाता है एवं वे सांग–परम्परा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। समाज को अपनी रचनाओं के माध्यम से जागरूक करने वाले श्री खीमचन्द स्वामी (खीमागौरंडिया) को संगीत के साथ–साथ साहित्य संसार कभी नहीं भूल सकता।

सन्दर्भ सूची :

1. श्री अपलातून स्वामी (खीमचन्द स्वामी के पुत्र) 20 जुलाई, 2022 को प्रातः 11 बजे, उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
2. श्री राजपाल सांगी (खीमचन्द स्वामी के शिष्य) 12 जुलाई 2022 को प्रातः 10 बजे, उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
3. श्री सुभाष स्वामी (खीमचन्द स्वामी के पुत्र) 17 जुलाई 2022 को प्रातः 10 बजे, उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
4. श्री जगदीश स्वामी (खीमचन्द स्वामी के पुत्र) 7 अक्टुबर 2022 को मध्याह्न 12 बजे उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
5. श्री अपलातून स्वामी (खीमचन्द स्वामी के पुत्र) 10 अक्टुबर 2022 को प्रातः 10 बजे, उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।
6. श्री प्रवीन कुमार (खीमचन्द स्वामी के पौत्र) 12 नवम्बर, 2022 को सायं 5 बजे, उनके निवास पर शोधार्थी के द्वारा साक्षात्कार से प्राप्त सूचना के आधार पर संकलित।

हिन्दी सिनेमा में भारतीय संगीत

प्रो० पं० प्रेम कुमार मल्लिक**

मनीषा भारती*

सारांश

प्राचीन काल से हिन्दी सिनेमा में भारतीय संगीत, संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक और मार्गदर्शक रहा है। गीत–संगीत ने धार्मिक और सामाजिक ढाँचे को पूर्णरूप से विकसित करने का कार्य किया है। पुराने समय से लेकर वर्तमान समय तक हिन्दी सिनेमा संगीत में अनेक तरह के परिवर्तन हुए है।

70 से 80 दशक के संगीत में शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रयोग किया जाता था। इसलिए संगीत अर्थपूर्ण तथा मधुर हुआ करता था। इसका संशोधन करने के लिए संगीतकार व निर्देशक काफी समय दिया करते थे। लेकिन समय के साथ–साथ संगीत में तकनीकों के बढ़ते उपयोग के कारण हिन्दी सिनेमा का संगीत बेजान–सा हो गया।

21वीं सदी तक आते–आते भारतीय और पश्चिमी दुनिया के कलाकारों के बीच आदान–प्रदान हुआ तथा मिश्रित संगीत का काफी प्रचलित हुआ। पुराने समय की तरह आजकल के सिनेमा के संगीत में भाव, गुणवत्ता और संगीत के पकड़ में कहीं–न–कहीं कमी दिखाई पड़ती है।

मुख्य शब्द : *भारतीय संगीत, फिल्म संगीत, शैक्षणिक तकनीक, केन्द्रीय एवं राज्य पुस्तकालय ।*

प्रविधि : *पुस्तकों के अध्ययन के बाद शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

हिन्दी सिनेमा में भारतीय संगीत का महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। हिन्दी सिनेमा पूरे देश–विदेश तक हिन्दुस्तानी संगीत के माध्यम से फैला हुआ है। हिन्दी सिनेमा देखने से हमें आनन्द की अनुभूति होती है। क्योंकि बिना गीत–संगीत के सिनेमा (फिल्म) व्यर्थ–सा महसूस होता है। जब हम शोक में रहते हैं, तो स्वर, लय और ताल के माध्यम से गीत–संगीत हमारे मन को 'शान्ति' प्रदान करता है।

भारतीय संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों का समावेश मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार–

''गीतंवाद्यंतथानृत्यं त्रयंसंगीतमुच्यते ।''

अर्थात् संगीत में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का समावेश होता है और हिन्दुस्तान में नृत्य तथा नाट्य परस्पर सम्बन्धित माने जाते है। कुछ विद्वानों ने संगीत उत्पत्ति (जन्म) पक्षियों से मानी है, जैसे– पं० दामोदर जी के अनुसार मोर से सा, चातक से रे, बकरा से ग, मध्यम से कौआ, कोयल से प, मेंढक से ध, एवं हाथी से नि स्वर की उत्पत्ति मानी गयी है।

"आज का हमारा सिनेमा अतीत और वर्तमान तथा देश–विदेश के जीवन के यथार्थ सत्यों को लेकर चल रहा है। हिन्दी भाषा इस विस्तार को अभिव्यक्त कर रही है।[1] हिन्दी के पास सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारों, भावा और भाव मुद्राओं को रंगमंच पर मूर्त रूप प्रदान करने की क्षमता है। हिन्दी की शब्द–सम्पदा देश–विदेश के शब्दों को ग्रहण कर बहुत विकसित हो गयी है।

नई पीढ़ी में इन गीतों के प्रति एक तरह का दिवानापन देखने को मिलता है। इस तरह सिनेमा ने गीतों के माध्यम से हिन्दी को सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में लोकप्रियता एवं विस्तृत विवरण प्रदान किया है। सिनेमा ने हिन्दी को सैकड़ों मधुर एव सुन्दर गीतों एवं करूण सजल गजलों ने जन–मन को अपने भाव सौन्दर्य से मुग्ध किया है, जैसे–

"गुनगुना रहे हैं भोरे, खिल रही हैं कली–कली" (फिल्म–आराधना) गायकों में लतामंगेशकर, आशा भोंसले, मोहम्मद रफी, मुकेश, मन्ना डे का बहुत योगदान है।

*शोधार्थी (क्रेट), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**शोध–निर्देशक, पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज

''संगीत कंवल विनोद या मनोरंजन की वस्तु नहीं बल्कि एक ऐसा चिरस्थाई आनन्द है, जिससे हमें आध्यात्मिक सुख मिलता है। संगीत से तात्पर्य केवल शास्त्रीय संगीत आदि सभी से है।''[2] "भारतीय सिनेमा आज जिस रफ्तार से राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर रहा है, उसके मूल में गीत और संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। गीत एवं संगीत के कारण फिल्में अपनी ऊँचाई को प्राप्त करती है, और जन–जन की जुबान पर छा जाती हैं। जिन फिल्मों में गीत एवं संगीत की जितनी बेहतर प्रस्तुति होती है, उन फिल्मों की उतनी ही अधिक प्रसिद्ध होती है"[3]

संगीत साधकों की साधना को आम–आदमी तक पहुँचाने के लिए फिल्म संगीत की आम लोगों तक पहुँच होती है। परन्तु फिल्म संगीत के द्वारा कम–से–कम समय ज्यादा–से–ज्यादा मधुर संगीत का रसास्वादन किया जा सकता है। अतः पूर्णरूप से शास्त्रीय संगीत पर आधारित गीत, चाहे वे भजन तथा कव्वाली हों, फिल्मों में संगीत निर्देशन किसी भी विधा का बिना रोक–टोक प्रयोग करने में पूर्णरूप से स्वतन्त्र होता है।

हिन्दी की प्रथम बोलती फिल्म 'आलमआरा' 1931 में बनी थी। इस फिल्म के निर्देशक तथा निर्माता "खान बहादुर अर्देशिर ईरानी" थे। ये संगीत के लिए क्रान्ति बनकर आ गई। इस फिल्म में 7 गीत थे। इसमें **"दे दे खुदा के नाम पर प्यारे"** एक गीत था। इस गीत को प्रथम बार ध्वनि देकर वजीर मोहम्मद खाँ प्रथम पार्श्व गायक बन गये।

गुलाम हैदर के निर्देशन संगीत में 1948 ई० में खेमचन्द प्रकाश ने फिल्म 'तानसेन' के लिए संगीत दिया जिसने पूरे देश में खूब धूम मचाया किन्तु 'महल' फिल्म का गीत **'आएगा आने वाला'** से लतामंगेशकर जी गायिकी विश्व में छा गयी।

सन् 1945 की अवधि को फिल्मी संगीत का स्वर्ण–युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। परन्तु धीरे–धीरे फिल्म संगीत एवं गीत 1970 के बाद अपना माधुर्य खोने लगी। पिछले चार दशकों में हिन्दुस्तानी हिन्दी फिल्मी संगीत अधिक बदला है। 1940 के दशक में अमर के०एल० सहगल के गाए गीत और आज भी अमर है। उनके निर्देशकों के पास 'वाद्य–वृन्द' के साधन अधिक नहीं थे। वे गीतों की गुणवत्ता बढ़ाने पर विशेष बल देते थे, जिसे वे संगीत में स्थापित करना चाहते थे।

यह सुनिश्चित है कि उन दिनों खेमचन्द, गुलाम हैदर, नौशाद एवं रोशन जैसे संगीत निर्देशकों ने अपनी धुनें बनाने में कठिन परिश्रम किया। जब पूरे गीत की रचना हो जाती थी, तब सारे आवश्यक यन्त्रों की सज्जा होती थी, गायक–गायिकाओं से पूर्वाभ्यास कराया जाता था क्योंकि उसमें जो रिकार्ड बने उसमें कोई कमी न हो। यही वजह है कि आज भी वे गीत अमर हैं ।

आज तकनीकी दृष्टि से फिल्मों ने अधिक उन्नति की है जिससे फिल्म संगीत भी अछूता नहीं रहा है। फिल्म संगीत का कम्प्यूटराईजेशन हो गया है। अब पार्श्व गायकी ज्यादा आसान हो गयी है। आज पहले धुनें तैयार होती हैं, और उन पर गीत लिखा जाता है। जबकि पहले गीत पर धुनें बनायी जाती थीं। यही कारण माना है कि आज भी 'बाबरे नैन' 'अन्दाज' 'अवारा' 'आग' 'बैजू बवरा', 'आह', 'झनक–झनक पायल बाजे' आदि के गीत–संगीत को भुलाया नहीं जा सकता। खेमचन्द्र प्रकाश, अनिल बिस्वास, नौशाद, सी०रामचन्द्र, रोशन, शंकर–जयकिशन, एस०डी०वर्मन, ओ०पी०नाय्यर आदि का संगीत आज भी स्मरणीय है ।

पहले सामाजिक और प्रेम कहानियों पर अधिकांश फिल्में बनती थीं, जिनमें संगीत की अधिक गुंजाइश थी। लेकिन 1970 के पश्चात् हिन्दी फिल्मों ने एक नवीन मोड़ ले लिया। नायक–नायिका कमजोर, असहाय और निराश प्रेमी नहीं रहे। अब नायक एक नवीन रूप में आया किन्तु कुछ संगीतकारों ने पुरानी धुनों को चुराया और कुछ ने लोकगीतों की आड़ में द्विअर्थी एवं अश्लील (असभ्य) गीतों से क्रान्ति कर दी। यह सन्तुष्टि की बात है कि आज कुछ नये संगीतकारों ने मधुर एवं कर्णप्रिय धुनें बनाकर संगीत–प्रेमियों को राहत प्रदान की है परन्तु आज भी फिल्म संगीत के शौकीनों को शान्ति वर्षों पुराने फिल्मी गीतों से ही मिलती है।

1990 का दशक क्रान्ति व बदलाव का माना जाता है। इसने सिनेमा जगत के गीत, संगीत, गायन क्षेत्र में कई प्रतिभावन कलाकार दिए। इसके पहुँच के साथ ही आनन्द–मिलिन्द, नदीम–श्रवण, दीपक सेन–समीर सेन, जतिन–ललित, ए०आर० रहमान, नवाब आरजू–समीर, रानी–मलिक, जावेद अख्तर, जैसे कलाकारों के कामयाबी का दौर प्रारम्भ हुआ। इन कलाकारों ने 'बेटा', 'दिल', 'साजन', 'आशिकी', 'रंग', 'दिल तो पागल है', 'हम आपके हैं कौन', 'राजा हिन्दुस्तानी' इत्यादि अनेक फिल्मों को

गीत–संगीत से सजाया तथा कामयाबी मिली ।

2000 के आगमन के पश्चात् हिन्दुस्तानी गीत, संगीत के परिप्रेक्ष्य को देखा जाय तो परिवर्तन अवश्य हुआ है। अब शोर तथा तेजी से बजने वाले गाने भी गवाते या चलाते हैं।

वर्तमान संगीत में समाज के हर वर्ग के लोग महत्वपूर्णरूप से रूचि लेने लगे हैं अथवा पसन्द कर रहे है।

विश्वविख्यात 'भारतरत्न' पं० रविशंकर जी इडियन पीपुल्स थिएटर ऐसोसिएशन इप्टा की फिल्म 'धरती का लाल' में प्रथम बार संगीत दिया। ख्वाजा अहमद अब्बास के निर्देश में 1946 में बनी इस फिल्म की खास बात यह थी कि इसमें जोहरा सहगल ने अभिनय किया था। उसी साल चेतन आनन्द के निर्देशन में बनी और कान फिल्म समारोह में दिखाई गई । पं० रविशंकर ने 'नीचा नगर' फिल्म में संगीत दिया, तथा आपके भाई पं. उदयशंकर 1948 में नृत्य नाटिका पर आधारित हिन्दुस्तान की एक कल्पना फिल्म बनाई । इसमें पं० रविशंकर ने संगीत देने के अलावा सत्यजीत राय की बंगला फिल्म 'पाथेर पांचाली' 'अपूर संसार' तथा उनकी प्रथम फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' में भी संगीत दिया । (इसके बहुत पहले भारत की पहली "मूक फिल्म" एवं "कथा फिल्म'' 'राजा हरिश्चन्द्र' थी। इसका प्रदर्शन 3 मई 1913 ई० को हुआ।)

पुराने जमाने में एकमात्र माइक्रोफोन पर गाना एवं कोरस रिकार्ड किये जाते थे परन्तु आज 100 से भी अधिक वाद्य रिकार्ड किये जाते हैं। इतना ही नहीं, तकनीक, आधुनिक उपकरण, सुव्यवस्थित साउण्ड सिस्टम, स्टूडियो आदि की गुणवत्ता बहुत बढ़ गई है ।

निष्कर्ष :

भारतीय गीत–संगीत की मधुरता पूरी दुनिया में विख्यात है। गीत–संगीत मानव के लिए प्रकृति का अनूठा वरदान है, पूरे विश्व में हिन्दी सिनेमा में हिन्दुस्तानी संगीत का महत्व संगीतकारों व शास्त्रीय कलाकारों के स्वर, लय और ताल के माध्यम से सुप्रसिद्ध है।

सन्दर्भ सूची :

1. बिसरिया, पुनीत, भारतीय संगीत का सफरनामा, पृ०सं०–122
2. जौहरी, सीमा, फिल्म संगीत निर्देशन रोशन व उनके समकालीन संगीतकार, पृ०सं०–1
3. बिसारिया, पुनीत, भारतीय सिनेमा का सफरनामा पृ०सं०–164

 यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

भारतीय संस्कृति में संगीत

प्रो. राजेश शाह** **अद्विता पाण्डेय***

सारांश

संगीत हमेशा से भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। इसका उपयोग भावनाओं को व्यक्त करने, कहानियाँ सुनाने और यहाँ तक कि संदेश संप्रेषित करने के लिए भी किया जाता है। संगीत को अक्सर परमात्मा से जुड़ने के एक तरीके के रूप में देखा जाता है और इसका उपयोग धार्मिक समारोहों और अनुष्ठानों में किया जाता है।

संगीत ने समाज, सभ्यता और संस्कृति के ऐतिहासिक रूप को सर्वदा ही एकता प्रदान की है। भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों में संगीत का समावेश है। दैनन्दिन प्रत्येक क्रिया–कलाप, संस्कार व्रत–त्योहार, रीति–रिवाजों में संगीत विद्यमान है जिसका व्याख्या हमारे ग्रन्थों में उपलब्ध है।

सूचक शब्द : *संगीत, संस्कृति, संस्कार, समाज, रीति*

प्रविधि : *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यम का उपयोग हुआ है।*

भारतीय संस्कृति–

आदिम मानव–समाज से लेकर वर्तमान मानव–समाज की सामयिक यात्रा अनेक परिवर्तनों से परिपूर्ण है। ये परिवर्तन ऐसे विद्वान महर्षियों, मुनियों, सद्विचारकों द्वारा समय–समय पर सुझाए गए सर्वमान्य सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने पर हुए। प्रजा, राजा की राजाज्ञाओं से अनेक बार मानसिक रूप से सहमति नहीं रखती थी, ऐसी दशा में संवेदनशील राजा को भी नेक सलाह एवं ज्ञान की आवश्यकता होती थी।

मनुष्य आनन्द की अवस्था में रहना चाहता है। यह मानव स्वभाव है, परन्तु अनेक कार्यों से प्राप्त अल्पावधि आनन्द से भी उसका अन्तर्मन पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हो पाता। व्यक्ति व समाज के विचारों में संघर्ष अनवरत चलता रहता है। ज्ञानालोक से पूर्ण व्यक्ति समाज के अन्य अनेक प्रकार के कष्टों से ग्रसित व्यक्तियों को मुक्ति दिलाना चाहता है।

ब्रह्मानंद, परमानन्द, कृष्णानन्द, रामानन्द, नित्यानन्द को प्राह्त साधुजनों का स्वभाव ''पर दुख द्रवहिं संत नवनीता'' का–सा हो जाता है। ''केनोपायेन चैतेषाम् दुख नाशो भवेत् ध्रवम्'' का चिन्तन करते हुए देवर्षि संस्कार युक्त संस्कृति का सामाजिक निर्माण करते हैं, जो हमारी संस्कृति के मील के पत्थर बनते चले जाते हैं। इसी चिन्तन श्रृंखला का परिणाम हमारी भारतीय संस्कृति है। इस संस्कृति को ही हम जीते हैं। जन्म धारण से पूर्व ही हमारे संस्कार प्रारंभ होकर जीवन पर्यन्त हर मोड़ पर संस्कारित, परिभाषित रहते हुए मरणोपरान्त तक चलते रहते हैं। यह अवश्य ही पराज्ञान एवं अपरा का अद्भुत सम्मिश्रण है।

शरीरगत इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पूर्ण ज्ञान नहीं है, परन्तु इन्द्रिय ज्ञान उत्कण्ठा जागृत करता है। अतिन्द्रिय ज्ञान पराज्ञान है। पराज्ञान ईश्वरीय है। एकेश्वर बोध अत्यन्त कठिन एवं सिद्ध महापुरूषों का प्राप्त ज्ञान है। अनेक महापुरूषों ने भगवान् वेद–व्यास रचित चार वेदों– (1) ऋग्वेद, (2) अथर्ववेद, (3) यजुर्वेद, (4) सामवेद, को सामान्य जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। वेद ज्ञान अत्यन्त कठिन है एवं तपस्या का विषय है। वेदों की रचना लगभग 5000 वर्ष पूर्व मानी जाती है।

शब्द श्रवण उसका संवेदन, आनन्दानुभूति व उसका शब्दों में सटीक वर्णन लगभग असंभव हो जाता है, इस वर्णनातीत स्थिति को संगीत (सामवेद) संभालता है। तदनन्तर काल में वेद के ऋचाओं की व्याख्या करने हेतु उपनिषदों की रचना हुई। मुक्तिकोषोपनिषद् के अनुसार, कुल उपनिषदों की संख्या 108 है, परन्तु प्रामाणिक एवं

*शोध–छात्रा, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**शोध–निर्देशक, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

महत्वपूर्ण उपनिषदों की संख्या 11 (ग्यारह) है, जो निम्नलिखित हैं।

1. ईश उपनिषद, 2. केन उपनिषद, 3. कठ उपनिषद, 4. प्रश्न उपनिषद, 5. मुण्डक उपनिषद, 6. माण्डूक्य उपनिषद, 7. तैत्तरीय उपनिषद, 8. ऐतरेय उपनिषद, 9. छान्दोग्य उपनिषद, 10. वृहदारण्यक उपनिषद, 11. श्वेताश्वतर उपनिषद

इनके अध्ययन हेतु शास्त्रज्ञान आवश्यक है। भारतीय संस्कृति के छः शास्त्र निम्नलिखित हैं– (1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) व्याकरण, (4) निरूक्त, (5) छन्द, (6) ज्योतिष।

उपनिषदों का ज्ञान भी कठिन प्रतीत हुआ, जन–मानस तक पहुँचाना असंभव–सा प्रतीत होने पर स्मृतियों का निर्माण हुआ। साथ ही, जीवनोपयोगी कर्म–काण्ड एवं रीतियों को प्रायोगिक जीवन में अंग संस्कार के रूप में उतारने का प्रयास हुआ। कुल चौबीस (24) स्मृतियाँ हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

(1) मनु–स्मृति, (2) विष्णु स्मृति, (3) अग्नि स्मृति, (4) हरीत स्मृति, (5) याज्ञवल्क्य स्मृति, (6) उश्ना, (7) अंगिरा, (8) यम, (9) आयस्तम्ब, (10) सर्वत, (11) कात्यायन, (12) वृहस्पति, (13) पराशर, (14) व्यास, (15) सांख्य, (16) लिखित, (17) दक्ष, (18) शाता–तप, (19) वशिष्ठ

ये भारतीय संस्कृति के मूलाधार है।

संगीत–

संगीत भाव–प्रधान विद्या है। संगीत की मिठास मानस में अमृत रस घोलती है जिसका रसास्वादन हम भाषा से परे अव्यक्त रूप से कर लेते हैं। संगीत से आनन्द का योग अवर्णनीय है। संगीत अन्तर्मन के आनन्द को भाव भंगिकाओं से अभिव्यक्त करते हैं, पूरा शरीर गद्–गद् आत्मविभोर हो उठता है। कुछ हँसते हैं तो कुछ के आंसू निकलने लगते हैं, ये पश्चाताप के आंसू या अविद्या से स्वयं को ग्रसित होने के आँसू होते हैं। ये आँसू उन्हें मुक्ति दिलाने के लिए प्रेरित करते है। कलुषित मन व्यथित होकर आत्म–ज्ञान खोजने लगता है।

वाद्य–यंत्रों से निकला संगीत अपने मन के तन्त्रियों को ऐसा झंकृत करता है कि व्यक्ति अनुभवित आनन्द को गायन रूप में प्रकट करने को विवश हो उठता है। व्यक्ति का एकाकीपन समाप्त हो जाता है। वह अपने को पूरे समाज की इकाई मान ही बैठता है।

रामायण की हर चौपाई, दोहा एवं छन्द संगीतमय होकर ही सही अर्थ में मानस संप्रेषण करते हैं। सामवेद ज्ञान की सांगीतिक अभिव्यक्ति है। संगीत पशु–पक्षियों एवं वनस्पतियों को सु–प्रभावित करती है। संगीत शान्तभाव से परिपूर्ण वातावरण को पुलकायमान करता है। संगीत द्वारा जल–दृष्टि या ताप–वृद्धि संगीतज्ञों ने प्रयोगात्मक रूप से कर दिखाया है। संगीत का क्षेत्र असीमित है।

भारतीय संस्कृति में मूर्ति पूजा एवं संगीत

सामर्थ्यवान गुरू द्वारा प्राप्त योग–दर्शन की प्रक्रिया में समय–समय पर आत्म–दर्शन में ऐसे परालौकिक चित्र मानस पटल पर दिखते हैं, जिन्हें पराज्ञान का अंश माना जाता है, साधक इन चित्रों को पुनरावृत कर साधना करना चाहता है। इस अवस्था को सीधे–सीधे दूसरे को पारेषित नहीं किया जा सकता। उन चित्रों के अनुरूप मूर्ति बनाकर मंत्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठित करके पूजा, अर्चना, वन्दना, सुमधुर संगीत अर्पण करते हैं। मूर्ति को संदेशवाहक मानकर परम सत्ता से स्व–कल्याण व समाज कल्याण की प्रार्थना करते हैं। व्यक्ति अपने मन की व्यथा किसी अन्य व्यक्ति से कहने में असमर्थ होता है, परन्तु मन्दिर में मानसिक तरंगों द्वारा, मूर्ति को अंतर्यामी समझकर, कह देता है। अनेक की मनोकामना पूर्ण होती है। वे श्रद्धावनत होकर मूर्ति, मन्दिर व देवस्थान को अन्तर्मन में स्थान दे ही देते है। मंदिर में संगीत हेतु डमरू, घंटी, घण्टा, मृदङ्ग, शहनाई शंख, नगाड़े काल व स्वभावानुसार प्रयोग करते है। संकीर्तन हेतु ढोल, झाल, करताल इत्यादि का प्रयोग करते हैं। माया के वशीभूत होकर व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा में अनेक व्यक्तियों की सहायता, उपकार कर बैठता है। यह उसे स्वयं को संतोष प्रदान करते हैं। परन्तु तदनन्तर काल में जब उपकृत व्यक्ति सहृदयता प्रस्तुत न कर विरोधी होता है, तो उपकारी विस्मयभरा कष्ट अनुभव करता है। इस वेदना को किससे कहें, कोई तो केन्द्र में सही अर्थ में सुनने वाला हो तो उसे पूजित मूर्ति ही दिखती है।

मूर्ति से कैसे कहें, कौन–सी याचना, कौन–सी प्रार्थना किस मूर्ति के सम्मुख कहें, यह भी प्रश्न है। इनका समुचित उत्तर सरल भाषा में पुराणों में वर्णित है।

भारतीय संस्कृति में पुराण –

पुराणों में जन कल्याण हेतु अनेक उपाय, आराधना के माध्यम से वर्णित है। मन में विश्वास रखकर भक्तिभाव से ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। अनेक प्रकार के कष्टों का शमन पुराणों द्वारा सम्भव है।

मुख्य पुराण निम्नलिखित हैं–

1. ब्रह्म पुराण 2. पद्म पुराण 3. विष्णु पुराण 4. वायु पुराण 5. भागवत् पुराण 6. नारद पुराण 7. मार्कण्डेय पुराण 8. अग्नि पुराण 9. भविष्य पुराण 10. ब्रह्म–वैवर्त पुराण 11. लिङ्ग पुराण 12. वराह पुराण 13. स्कन्द पुराण 14. वामन पुराण 15. कूर्म पुराण 16. मत्स्य पुराण 17. गरूड़ पुराण और 18. ब्रह्माण्ड पुराण

देव पूजन–अर्चन में देव–भाषा ही उचित भाषा है। देव भाषा का आविष्कार भी संगीत से हुआ।

पाणिनी के 14 (नवपंच) माहेश्वर सूत्र

माहेश्वर सूत्र (संस्कृतः शिव सूत्राणि) को संस्कृत व्याकरण का आधार माना जाता है। माहेश्वर सूत्र (शिव सूत्र) की उत्पत्ति भगवान नटराज (शिव) के द्वारा किए गए ताण्डव नृत्य से मानी गयी है।

''नृत्तावसाने नटराजराजो ननादढक्कांनवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामो सनकादिसिद्धार्नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।''[1]

अर्थात्, नृत्य (ताण्डव) के अवसान (समाप्ति) पर नटराज (शिव) ने सनकादि ऋषियों की सिद्धि और कामना का उद्धार (पूर्ति) के लिए नवपंच (चौदह) बार डमरू बजाया। इस प्रकार चौदह शिव सूत्रों का ये जाल (वर्णमाला) प्रकट हुआ। डमरू के चौदह बार बजाने से 14 सूत्रों के रूप में ध्वनियाँ निकली, इन्हीं ध्वनियों से व्याकरण का प्राकट्य हुआ। इसलिए व्याकरण सूत्रों के आदि–प्रवर्तक भगवान नटराज को माना जाता है।

14 माहेश्वर सूत्र निम्नलिखित हैं–

1. अ, इ, उ, ण्। 2. ऋ, लृ, क्। 3. ए, ओ, ङ्।
4. ऐ, औ, च्। 5. ह, य, व, र, ट्। 6. ल, ण्।
7. ञ, म, ङ्, ण, न, म्। 8. झ, भ, ञ्। 9. घ, ढ, ध, श्।
10. ज, ब, ग, ड, द, ष्। 11. ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, व्। 12. क, प, य्। 13. ष, श, स, र। 14. ह, ल्।

भारतीय संस्कृति में व्रत, तीज, त्योहार–

हमारे व्रत, तीज, त्योहार आध्यात्मिक शुद्धता से अभिप्रेरित ज्योतिषीय गणना द्वारा निर्धारित समयानुसार वार्षिक चक्र पूरा करते हैं। प्रत्येक त्योहार अपनी–अपनी आध्यात्मिक कथा कहानी से युक्त है। इनमें मौसम, ऋतुओं सामाजिक रचनाओं का ध्यान महर्षियों ने रखा है। त्योहारों के अनुसार ही गीत, संगीत, धुन हैं, जैसे वर्षा ऋतु के गीत कजरी को होली के मौसम में समाज पसन्द नहीं करता तथा होली गीतों को वर्षा ऋतु में जगह नहीं है। हमारे मुख्य व्रत–त्योहार निम्नलिखित हैं–

(1) होली, (2) वासन्तिक नवरात्र (व्रत एवं देवी पूजन), (3) राम–नवमी व नवमी पूजन, (4) नाग–पंचमी, (5) कृष्ण जन्माष्टमी, (6) पितृ–पक्ष, (7) देव–पक्ष शारदीय नवरात्र (दुर्गा–पूजन), (8) वसंत पंचमी, (9) महाशिवरात्री।

1. होली– शरद् ऋतु का अंत, लोग अतिशीलता से उबर कर समशीतोष्णता का अनुभव करते हैं, नव ऊर्जा से संचारित समाज, अलाव जलाने से मुक्त होता है। वसंत पंचमी को ही पवित्र होलिका स्थापित की जाती है। जनमानस के मस्तिष्क में भक्त प्रह्लाद की कथा प्रेरणास्रोत है। ईश्वरीय शक्ति सर्वोपरि है, यह आस्था ही होली के मूल में है। रंग, गुलाल, गायन, एक–दूसरे से मिलन सामाजिकता का सुदृढ़ीकरण करता है।

2. वासंतिक नवरात्र – यह आध्यात्मिकता लेते हुए, माँ के अनेक रूपों के पूजन, व्रत अनुष्ठान, हवन, दीप प्रज्जवलन, देवी गीतों एवं संगीतों से गुंजायमान 9 दिन तक चलने वाला त्योहार अनुष्ठान होता है।

3. रामनवमी – पूरा देश इस राम–नवमी को भगवान राम की पूजा करता है। नवमी पर महिलाएँ कलश रखकर आदिशक्ति माँ की आराधना करती हैं।

4. नागपंचमी – सावन महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को महिलाएँ नाग देवता का प्रतीक बनाकर गाय का दूध व लावा (धान का लावा) का भोग अर्पण करती हैं। कजरी का आयोजन कर झूला गीत प्रायः महिलाएँ गाती है।

पुरूष वर्ग विभिन्न खेल स्पर्धा एवं कुश्ती प्रतियोगिता करता है।

5. कृष्ण जन्माष्टमी – कृष्ण जन्माष्टमी पर प्रत्येक

देवालय अपनी–अपनी सजावट करते हैं। देवालयों में शाम से अर्द्धरात्रि तक भजन, गीत–संगीत एवं नृत्य के कार्यक्रम चलते रहते हैं। संगीत समारोह आयोजित होते हैं, कलाकार अपने गायन–वादन द्वारा अपनी भावांजलि भगवान को समर्पित करते हैं। भगवान को 56 भोग अर्पित होता है, प्रसाद वितरण होता है।

6. पितृ पक्ष – यह पक्ष अपने पितरों को याद करने, उनकी संतुष्टि हेतु श्राद्ध अर्पण करने, उनके प्रति आदर करने का होता है। पूरे भारत से लोग श्राद्ध हेतु गया (बिहार–प्रदेश) पहुँचते है। लौटकर काशी–स्नान के साथ पूरा करते है, संगीत परम्परा नहीं है।

7. देव–पक्ष (शारदीय नवरात्र) – देवों के राजा इन्द्र को गायन, वादन एवं नृत्य प्रिय है, अतः इस नवरात्र में संगीत समारोह, व्रत–पूजन, अनुष्ठान बहुतायत होते हैं।

8. वसंत पंचमी – माघ–मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को 'वसंत पंचमी' कहा जाता है। इस दिन विद्या की देवी हंसवाहिनी की पूजा विद्यालयों एवं नगरों में होती है। विद्यारम्भ के लिए उचित तिथि भी मानी जाती है, यदि भद्रा काल न हो। पूजा में वीणा, सितार, तबला वादन उचित होते है।

9. महाशिवरात्रि – इस दिन प्रत्येक शिवालय भक्तों से भर जाता है, शिवालयों के पास मेले का आयोजन होता है। शिवालय पुष्प से भर जाता है, दूध एवं गंगा जल भगवान शिव को अर्पण होता है। यह पर्व देश के कोने–कोने तक फैला है। जन–मानस में शिव के प्रति अपार श्रद्धा एवं विश्वास दिखता है। घंटे एवं डमरू की ध्वनि प्रधान होती है।

भारतीय संस्कृति में संस्कार –

हिन्दू संस्कारों के स्वरूप तथा संख्या के विषय में बड़ा मदभेद है। ''संस्कारों की संस्था गृह सूत्र के अनुसार 11, गौतम धर्म सूत्र के अनुसार 40, वैश्वनाथ के अनुसार 18, स्मृति चन्द्रका के अनुसार 16 है। सामान्यतः संस्कारों की संख्या 16 है।''[2]

निम्नलिखित 16 (सोलह) संस्कार है–

1. गर्भाधान 2. पुँसवन 3. सिमतोन्नयन 4. जाति–कर्म 5. नाम–करण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. मुण्डन 9. कर्ण–वेधन 10. विद्यारम्भ 11. उपनयन 12. वेदारम्भ 13. केशान्त 14. सम्वर्तन 15. विवाह 16. अन्त्येष्टि

भारत एक विशाल देश है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ की संस्कृति की अनेक विशेषताओं, सिद्धान्तों के कारण ही भारत को एक गरिमामय स्थान प्राप्त है। यह स्वाभाविक है कि कलाएँ किसी भी देश की संस्कृति का आधार होती हैं; बोलचाल की भाषा में सभ्यता और संस्कृति, ये दोनों शब्द साथ–साथ प्रयुक्त किये जाते हैं। सभ्यता जहाँ शरीर है वहीं संस्कृति उस जगह की आत्मा है। सभ्यता किसी भी स्थान के व्यक्ति के बाह्य रूप को प्रकट करती है। जबकि संस्कृति उस व्यक्ति के आचार–विचार और संस्कारों का वर्णन करती है। कलाओं के द्वारा केवल सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति ही नहीं, अपितु ये समग्र रूप से जीवन के यथार्थ, मानवीय चिंतन, व्यक्ति और देश की पहचान को मूर्त रूप प्रदान करती है। और, ''ललित कलाओं में संगीत का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भारत वर्ष में, संगीत कला की परम्परा वैदिक युग से ही चली आ रही है। सामान्यतया संगीत कला के तीन पक्ष माने गये हैं– गायन, वादन और नृत्य।''[3] ''प्राचीन काल से ही संगीत का सम्बन्ध धर्म तथा आध्यात्मिकता के साथ माना गया है।''[4] संगीत न केवल मनोरंजन का साधना था, अपितु मानव के मस्तिष्क के विकास के लिए तथा आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयोग किया जाता था।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति के उपर्युक्त परिदृश्य का हम आकलन करते हैं तो पाते हैं कि संस्कृति के प्रत्येक पग पर संगीत का साहचर्य विद्यमान है। इसकी व्याख्या हमारे प्राचीन ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक की गई है जो भारतीय संगीत की विशालता का परिचायक है।

संदर्भ सूची :

1. पाणिनी, शिवसूत्रजालम्, माहेश्वर सूत्र
2. तिवारी, हर्ष कुमार (डॉ.), अवधि लोकगीतों में सांस्कृतिक चेतना, पृ.सं. 75.
3. लाठ, मुकुन्द, संगीत और संस्कृति (संगीत नृत्त, नाट्य पर विमर्श लेख), पृ.सं. 405.
4. 'पर्वतीय', लीलाधर शर्मा, भारतीय संस्कृति कोश, पृ.सं. 425

दुर्लभ अवनद्ध वाद्य 'दुक्कड़'

डॉ. बी. सत्यवर प्रसाद** **राजन***

सारांशिका

संगीत का इतिहास केवल विभिन्न रचनाकारों की उपलब्धि ही नहीं है, बल्कि विभिन्न वाद्यों का विकास व विभिन्न गायन–शैलियों का विकास भी उसी के अन्तर्गत आता है। वर्तमान में उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा में अवनद्ध वाद्य के रूप में तबला तथा पखावज वाद्य प्रायः देखने को मिलते हैं। ऐसा एक दुर्लभ अवनद्ध वाद्य है 'दुक्कड़' जो मंगल वाद्य शहनाई के साथ 'संगत वाद्य' के रूप में देखा जाता है और प्रचलन में है। अतः विलुप्त प्रतीत होता यह दुर्लभ अवनद्ध वाद्य 'दुक्कड़' का विकास बनावट तथा स्वरूप पर चर्चा कर इस वाद्य को संगीत सुधियों के समक्ष रखने का एक सूक्ष्म प्रयास इस शोधपत्र द्वारा किया जा रहा है।

सूचक शब्द : *दुक्कड़ वाद्य, तबला, त्रिपुष्कर वाद्य, पटाक्षर, लोकवाद्य, सुषिर वाद्य*

प्रविधि : *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यम*

भूमिका :भारतीय संगीत का इतिहास अत्यन्त समृद्धिशील है। वह आज भी विभिन्न आयु एवं वर्ग के जिज्ञासुओं की रूचि एवं प्रेरणा बना हुआ है। भारतीय संगीत हमारी संस्कृति का गौरव है, जो वैज्ञानिक शास्त्र पर आधारित है। इसके शास्त्रीय एवं प्रायोगिक लक्ष्य एवं लक्षण के पीछे एक गौरवपूर्ण इतिहास है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उसके इतिहास पर भी दृष्टि डाली जाए। संगीत के इतिहास पर अधिक दृष्टि डालने या समझने के प्रयास के पीछे मुख्य उद्देश्य यह है– 'उस कला को और अधिक समझने का प्रयास'। भारतीय संगीत के इतिहास एवं विभिन्न कालों में लिखे गये ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा संगीत सम्बन्धी जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर संगीताचार्यों एवं विभिन्न विचारकों द्वारा जो विचार प्रकट किए गए हैं। उनका अध्ययन एक नई अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इतिहास के अध्ययन ने विभिन्न तथ्यों को उजागर कर संगीत–जगत की विभिन्न भ्रांतियों का निराकरण और सत्य को प्रकाशित किया है।[1] भारतीय धारणा के अनुसार अवनद्ध वाद्य का आविष्कार शिव द्वारा किया गया है। शिव का 'डमरू' एक अवनद्ध वाद्य है। महर्षि पाणिनी की अष्टाध्यायी ग्रन्थ के अनुसार शिव के डमरू वादन से ही देवभावा संस्कृत के समस्त वर्णों की उत्पत्ति हुई है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार मृदंग नामक प्राचीन अवनद्ध वाद्य के आविष्कारक भी शिव ही हैं।

भारतीय संगीत का प्राचीनतम आधार ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' को ही माना गया है। इसके रचयिता भरत मुनि के युग में त्रिपुष्कर वाद्य सर्वप्रथम अवनद्ध वाद्य था, जिसके आविष्कार की प्रेरणा स्वाति मुनि को वर्षा ऋतु में पुष्कर तालाब में बड़े, मध्यम व छोटे आकार वाले कमल पत्तों पर गिरती हुई वर्षा के जल की बूँदों से उत्पन्न 'पट पट' शब्द की विभिन्न गंभीर व मधुर ध्वनियों से मिली थी। इसलिए इन्हें 'पुष्कर' वाद्य कहा गया। पुष्कर वाद्य सबसे पहले विश्वकर्मा जी की सहायता से दुन्दुभि वाद्य के आधार पर आंकिक, उर्ध्वक तथा आलिंग्य इन तीनों रूपों में मिट्टी से बनाये गये थे। अतः तीनों रूपों में निर्मित होने के कारण मृदंग या मुरज भी कहा गया।

महर्षि भरत मुनि ने अवनद्य वाद्यों की संख्या 100 बतलाई है। किन्तु 'त्रिपुष्कर' के अतिरिक्त अन्य अवनद्ध वाद्यों में जिसमें दुन्दुभि भी था, मुख पर मढ़े चर्म की शिथिलता होने के कारण केवल ध्वनि–गांभीर्य मात्र ही था। इन वाद्यों में स्वर, प्रहार, अक्षर (बोल) व मार्जना (स्वर में मिलाना) संयोजन की व्यवस्था न होने से इन्हें न तो निर्दिष्ट स्वरों में मिलाया जा सकता था और न विभिन्न प्रकार के आघातों से ध्वनि के विभिन्न रूपों व पाटाक्षरों (बोलों) को उत्पन्न करते हुए बजाया जा सकता था। इस सम्बन्ध में भरत का कथन है–

*शोध छात्र, (यू.जी.सी.–नेट), वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सहायक आचार्य, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

एतेषां तु पुनर्भेदाः शतसंख्याः प्रकीर्तिताः।
किन्तु त्रिपुष्करस्यास्य लक्षणं प्रोच्चतेमया।।
शेषाणां कर्म बाहुल्य यस्मादस्मिन्न दृश्यते।
न स्वरा न प्रहाराश्च नाक्षराणि न मार्जनाः।।[2]

अतएव यह कहना सर्वथा उचित होगा कि 'त्रिपुष्कर' वाद्यों का आविष्कार भारतीय अवनद्ध वाद्यों के इतिहास में ऐसी महत्वपूर्ण घटना थी, जिससे आगे चलकर आज के उत्तर भारतीय पखावज व तबला तथा अन्य अवनद्ध वाद्य इत्यादि समस्त अवनद्ध वाद्यों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ, जो स्वर, मार्जना, प्रहार, पाटाक्षरों (बोलों) व विविध लयकारियों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होने के साथ–साथ अपनी कल्पनात्मक श्रेष्ठता के कारण विश्व के समस्त अवनद्ध वाद्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

'वाद्य' शब्द का अर्थ

'वदति इति वाद्यं' अर्थात् जो बोलता है उसे 'वाद्य' कहते हैं। संस्कृत भाषा के 'वद्' धातु (जिसका अर्थ बोलना होता है) में 'णिच' और 'यत्' प्रत्यय के योग से वाद्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है 'बोला हुआ'। इस प्रकार निष्पादक यंत्र वाद्य हुआ। ध्वनि बोध के लिए उत्पादक, माध्यम और ग्राहक इन तीनों का अस्तित्व अनिवार्य है।

वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार जब दो पदार्थ आपस में टकराते हैं, तब आस–पास के वातावरण में वस्तु के कम्पन्न के द्वारा तरंग उत्पन्न होता है, और जब यही तरंग हमारे कर्ण यंत्रों द्वारा ग्रहण की जाने पर मस्तिष्क द्वारा अनुभव की जाती है तो यह अनुभूति ध्वनि कहलाती है। परन्तु सभी ध्वनियाँ संगीतोपयोगी नहीं होती है। जब कम्पन्न अनियमित होते हैं तो उत्पन्न कर्ण–कटु ध्वनि संगीतानुपयोगी होती है एवं जब कम्पन्न नियमित होते हैं तो उत्पन्न ध्वनि कर्णप्रिय होती हैं तथा संगीतोपयोगी मानी जाती है। अतः संगीतोपयोगी ध्वनि ही नाद है। संगीतोपयोगी ध्वनि नाद तथा गति को प्रकट करने वाला उपकरण 'वाद्य' कहलाता है।

दुक्कड़ वाद्य का परिचय

यह एक लोक अवनद्ध वाद्य है। यह छोटी–छोटी दो नगड़ियों की जोड़ी वाला वाद्य है, जो शहनाई के साथ संगीत में खूब प्रयोग किया जाता है। इसके दोनों भाग लगभग एक सी ऊँचाई, चौड़ा मुख और नीचे का भाग सामान्य नुकीला होता है। इसका मुख्य आधार अंग मिट्टी का बना होता है। इसके दाहिने भाग में मोटी खाल तथा बाएँ भाग में पतली खाल मढ़ी जाती है। इसके दाहिने चमड़े को जालदार चमड़े की डोरियों से कसा जाता है। खाल की भिन्न मोटाई के कारण एक का स्वर ऊँचा तथा दूसरे का स्वर नीचा होता है। इसमें स्याही या मसाला का प्रयोग केवल बायें भाग पर ही होता है। चमड़े के भीतरी भाग पर तथा दाहिने भाग पर स्याही का प्रयोग नहीं किया जाता। इसकी वादन विधि तथा शैली तबला के समान है। इसे खड़े होकर भी बजाया जाता है और ऐसी स्थिति में वाद्य के दोनों भाग को कमर में बाँधकर या कसकर वादन किया जाता है। दुक्कड़ को किसी विशेष स्वर में नहीं मिलाया जाता। अतः यह एक प्रत्यंग श्रेणी का वाद्य है।[3]

दुक्कड़ वाद्य की वादन–विधि

दुक्कड़ एक ऐसा अवनद्ध लोक वाद्य है जो पहले आमजन में प्रयोग किया जाता था लेकिन वर्तमान समय में यह वाद्य शास्त्रीय संगीत में भी प्रयुक्त होने लगा। सुषिर वाद्य शहनाई के साथ इस वाद्य का उत्तर भारतीय संगीत में बखूबी से प्रयोग किया जाता है। शहनाई एक पारम्परिक लोक वाद्य है जिसको मंगल वाद्य भी कहा जाता है। 'भारतरत्न' उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ साहब ने इस पारम्परिक लोक वाद्य को अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम के बल पर विश्व पटल पर लाकर स्थापित किया यह अविस्मरणीय है। वे अपने कार्यक्रम में प्रायः दुक्कड़ वाद्य को प्राथमिकता देते थे। परम्परा के अनुसार, दुक्कड़ वाद्य भी पारम्परिक तरीके से शहनाई के साथ संगति प्रदान करता है तथा परम्परा के अनुसार दुक्कड़ वाद्य संगति प्रदान करने वाला वाद्य है।

यह वाद्य दिखने में अत्यन्त साधारण–सा जान पड़ता है। यह विलुप्त होता हुआ अत्यन्त दुर्लभ वाद्य है। सुषिर वाद्य शहनाई के साथ इस वाद्य की संगति बखूबी झलकती है तथा तबला के साथ भी इस वाद्य का युगल संगति वादन अत्यन्त आकर्षणपूर्ण दिखाई देता है परन्तु सुषिर वाद्य शहनाई पर अवनद्ध वाद्य दुक्कड़ का अद्भुत प्रभाव है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि दोनों एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं तथा सुषिर वाद्य शहनाई एवं अवनद्ध वाद्य दुक्कड़ एक–दूसरे के पूरक हैं।

विलुप्त होता यह वाद्य डुग्गी या दुक्कड़ एक भारतीय ड्रम है जो केतली या ड्रम के आकार का होता है।

जिसे हाथ की अंगुलियों तथा हथेली से बजाया जाता है। यह उत्तर प्रदेश और पंजाब में एक लोक वाद्य ढोल के रूप में भी जाना जाता है।[4]

शहनाई में इसका वादन ताल संगत प्रदान करता है परन्तु वर्तमान समय में शहनाई के साथ तबला–वादन की भी भूमिका इसमें होती है। दुक्कड़ वाद्य के पहनावों में इसका हिस्सा दो ड्रम होता है जैसे तबला और बाँयां लेकिन आकार में छोटा होता है। परन्तु इस वाद्य में न तो तबले की गूंजती हुई गुणवत्ता होती है और न हि तबले की तरह इसको एक स्वर की आवृत्तियों को बनाये रखने की खासियत।

इस वाद्य का प्रयोग बंगाल के क्षेत्र में बाउल गान संगति में भी किया जाता है। यह वाद्य केवल उत्तर भारत में ही प्रयोग में लाया जाता है। दक्षिण भारत में इस वाद्य का कोई प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता परन्तु दक्षिण भारत में नागस्वरम वाद्य के साथ खंजीरा, तविल जैसे वाद्य की संगति की जाती है, जो अत्यन्त पृथक् है।

दुक्कड़ वाद्य के पाटाक्षर

पाटाक्षरों की उत्पत्ति :

संगीत के प्राप्त ग्रन्थों में 'मानसोल्लास', 'संगीतरत्नाकर', 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', 'संगीत सार' आदि में पटह के जिन वर्णों का तथा उनके वादन क्रिया का जो वर्णन किया गया है वह पटह के सथ–साथ मृदंग, मर्दल, हुडुक्का आदि से भी सम्बन्धित है। प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्य में बजने वाले बोलों को 'पाट' या 'पाटाक्षर' कहा जाता था।

पाटाक्षर के नामों की उत्पत्ति के बारे में यह मत है कि परम्परानुसार पाँच मुख्य पाट शिवजी के मुख से उत्पन्न हुए हैं जिनके नाम निम्न हैं–

1. नागबन्धन – जो संद्योजातमुख से उत्पन्न हुआ।
2. स्वास्तिक – जो वाम देव मुख से उत्पन्न हुआ।
3. अलग्न – जो अघोर मुख से उत्पन्न हुआ।
4. शुद्धि – तत्पुरुष से शुद्धि उत्पन्न हुआ।
5. समस्खलित – ईशान मुख से उत्पन्न हुआ।

इन पाटों के देवता भी माने गये हैं, जैसे–

1. नागबन्ध के ब्रह्मा
2. स्वास्तिक के विष्णु
3. अलग्न के शिव
4. शुद्धि के सूर्य
5. समस्खलित के चन्द्र

अवनद्ध वाद्य दुक्कड़ पर बजने वाले पाटाक्षर मूलतः तबला के होते हैं तथा दुक्कड़ वाद्य या बोलों के निकास का तरीका भी लगभग तबला जैसा ही होता है, लेकिन ध्वनि का इसमें पूरा–पूरा अन्तर होता है। अवनद्ध वाद्य दुक्कड़ में तबले की तरह गूँजती हुई गुणवत्ता नहीं है तथा इस वाद्य में गूँज की कोई सम्भावना भी नहीं देखी जा सकती है। इसलिए अवनद्ध वाद्य तबला से यह वाद्य बिल्कुल भिन्न है।

दुक्कड़ वाद्य पर बजने वाले पाटाक्षर कुछ इस प्रकार है–

(A) दाहिने हाथ से निकलने वाले पाटाक्षर

(i) ता (ii) ती (iii) ते (iv) टे (v) तुं (vi) दीं

(B) बायें हाथ से निकलने वाले पाटाक्षर

(i) क या कत्त (ii) घे या ग

(C) दोनों हाथों से निकलने वाले पाटाक्षर –

(i) धा (ii) धीं

दुक्कड़ वाद्य पर बजने वाले कुछ मुख्य बोल समूह इस प्रकार हैं– तिरकिट, कतेटे, धेत्, क्रधा तेटे, दीं दीं तेटे तेटे, धा तूना, धेतेटे इत्यादि। इस वाद्य पर शास्त्रीय संगीत के लिए मुख्य रूप से बड़ा ख़्याल, एक ताल, तीन ताल, रूपक ताल, झपताल तथा उपशास्त्रीय संगीत में दादरा ताल, दीपचंदी ताल, कहरवा ताल, अद्धा तीनताल तथा जतताल इत्यादि बजाया जाता है।[5]

दुक्कड़ वाद्य के निर्माण में प्रयोग होने वाले उपकरण

दुक्कड़ वाद्य का दाहिना भाग गाय के चमड़े की पतली बद्धियाँ से गूँथा होता है तथा इसका गाय या भैंस के चमड़े से मढ़ा जाता है व बायाँ भाग बकरे के चमड़े से मढ़ा जाता है। इस वाद्य को बनाने वाले स्वयं ही इसको बनाते हैं तथा बजाते भी हैं। हाल ही में संगीत नाटक अकादमी की ओर से दिल्ली में आयोजित दुर्लभ वाद्य यंत्रों पर आधारित कार्यशाला में कई देशों में दुक्कड़ वाद्य की प्रस्तुति से मन मोह चुके श्री मंगल प्रसाद जी को आमंत्रित

किया गया उन्होंने इस कार्यशाला में दुक्कड़ को बनाया तथा बजाया भी। उनकी यह तीसरी पीढ़ी इस क्षेत्र में काम कर रही है।

इस वाद्य को बनाने में सर्वप्रथम मिट्टी का कोहा लिया जाता है, जो त्रिभुजाकार दिखाई देता है, जिसे हम जील कहते हैं। जील को गाय या भैंस के चमड़े से बनाया जाता है। इसके निर्माण में 10 से 15 दिन का समय लगता है। जील के निचले भाग में चमड़ा का जाल बनाकर रखा जाता है जिसको बनाने में गाय के चमड़े की जरूरत होती है। इसमें स्याही की जरूरत नहीं होती, इसलिए इसमें गूँज की गुंजाइश नहीं होती।

दुक्कड़ वाद्य के बायें भाग को अत्यन्त नरम तथा मुलायम बकरे के चमड़े द्वारा मढ़ा जाता है। इस वाद्य का बायाँ भाग भी मिट्टी का बना होता है। परन्तु वर्तमान समय में कलाकार पीतल के कोहे का भी प्रयोग कर रहे हैं। कभी–कभी तबले के बायें डग्गे को भी दुक्कड़ वादक प्रयोग में लाते हैं। दुक्कड़ के बायें भाग में डोरियों द्वारा तबले की तरह चौबन्दी बांध कर कसा जाता है। इसके भीतरी सतह में स्याही का प्रयोग किया जाता है जो गीला होता है। यह तबले की स्याही की तरह सूखा नहीं होता, यह लेई की तरह गीला होता है।

दुक्कड़ वाद्य की स्याही रेड़ के पेड़ में लगे फल के बीजों से बनायी जाती है। जब इसके बीच सूख जाते हैं तो उसके बीजों को निकालकर प्रयोग में लाया जाता है। जो अत्यन्त चिपचिपा तथा लसमदार होता है। इस प्रकार इसका निर्माण किया जाता है। मिट्टी से बनने वाला यह वाद्य कुम्हार द्वारा गढ़ा जाता है तथा इसके नाप का आकार बहुत सटीक लिया जाता है, तब यह बनकर तैयार होता है तथा प्रयोग में लाया जाता है।[6] इस प्रकार यह वाद्य तैयार होता है ।

निष्कर्ष :

विलुप्त होते इस दुर्लभ वाद्य का अस्तित्व संकट में जान पड़ता है। परन्तु संगीत नाटक अकादमी की ओर से इस वाद्य का अस्तित्व बचाने का प्रयास किया जा रहा है। इस वाद्य के सुप्रसिद्ध कलाकार जिनके इस वाद्य पर अधिकार प्राप्त है, वे इस प्रकार है–

स्व0 गोपाली जी, स्व0 राम जी, स्व0 पंचम लाल, स्व0 बसारत मियाँ, स्व0 रामलाल (उर्फ कतवारू), श्री मंगल प्रसाद, श्री प्यारे लाल, श्री प्यारे जी, श्री दिलीप जी, ये सभी कलाकार बनारस में रहकर ही दुक्कड़ जैसे वाद्य को विश्व पटल पर स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. भार्गव, डॉ. अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, भाग–2, पृ. 01
2. आब्दी, डॉ. फात्मा, उत्तर भारत के लोक वाद्य, भाग–1, पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, पृ. 02
3. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, ताल कोश, भाग–2, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 169
4. मिश्र, डॉ. लाल मणि, भारतीय संगीत वाद्य, भाग–2, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 370
5. पटेल, जमुना प्रसाद, ताल वाद्य परिचय, प्रिया कम्प्यूटर्स, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़), पृ. 77
6. पं. मंगल प्रसाद, रामापुरा, वाराणसी से साक्षात्कार के आधार पर

पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा रचित ग्रन्थों का संगीत क्षेत्र में महत्व

पलक सूद*

शोध सार

हिन्दुस्तानी संगीत के प्रथम शास्त्रकार पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे हैं, जिनके ग्रन्थ न केवल प्रामाणिक हैं बल्कि इन्हीं ग्रन्थों में हमें पं. भातखण्डे से पूर्व के संगीत ग्रन्थकारों के नाम, रचना काल, तिथि, वर्ण्य–विषयों तथा ग्रन्थों का तुलनात्मक विवरण मिलता है। पण्डित जी ने अपने ग्रन्थों द्वारा भयंकर तूफान में फँसी हुई संगीत कला को निकालकर प्रतिष्ठित दर्जा दिया। आज के संगीत विद्वान उन्हीं के संगीत ग्रन्थों के झरोखे से संगीत के प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन संगीत ग्रन्थों और उनके वर्ण्य विषयों की जानकारी प्राप्त करता है। आज विद्यालयों और विश्वविद्यालयों तथा संगीत–संस्थाओं का सामूहिक शिक्षण भातखण्डे संगीत ग्रन्थों के आधार पर दिया जाता है, जो उनके ग्रन्थों की आवश्यकता, उपयोगिता एवं प्रमाणिकता का ज्वलन्त उदाहरण है। आज के संगीत शिक्षक उनके ग्रन्थों के बिना आगे नहीं बढ़ पाते ।

सूचक शब्द : *संगीत, ग्रंथ, क्रियात्मक, सैद्धांतिक*

प्रविधि : *ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, सवेक्षणात्मक*

पं. एस.एन. रतन्जनकर ने ''संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन'' की भूमिका में लिखा है ''यदि पंडित भातखण्डे जी ने इस प्राचीन संगीत–साहित्य का अध्ययन कर उन ग्रन्थों में वर्णित परस्पर विरोधी गुप्त और झंझट मतलब बातों को सुलझाने का प्रयत्न न किया होता तो यह विषय आज भी हमारे लिए दुर्बोध ही रहता।'' "Notable contribution towards the study of music was made by men like the late Pt. V.N. Bhatkhande"[1]

पण्डित जी का जन्म महाराष्ट्र के ब्राह्मण परिवार में 10 अगस्त 1860 ईसवीं में श्री कृष्णजन्माष्टमी के दिन बम्बई के बालकेश्वर नामक स्थान में हुआ। पं. जी के पिता श्री नारायणराव बम्बई में ही एक जागीर के यहाँ मुनीम थे। संगीत के संस्कार पण्डित जी में जन्मजात थे। उन्हें संगीत में रुचि दिलाने वाली उनकी माता थीं। अपनी माता के कंठ से सुनी हुई सुमधुर लोरियों, भजन आदि का प्रभाव इनकी आत्मा पर सर्वाधिक पड़ा तथा अपने जीवन कार्य की प्रेरणा भी मिली। पं. भातखण्डे का मूल उद्देश्य तत्कालीन उत्तर भारत के संगीत का पुनरुद्धार कर उसे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के रूप में प्रामाणिक और शास्त्रोक्त व्यवस्था देन था। पं. जी ने समस्त भारत में फैले हुए संगीत का अध्ययन तथा अध्यापन किया, परन्तु मूल रूप से उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित किया क्योंकि यह संगीत मुस्लिम संगीत और संस्कृति से अधिक प्रभावित होने के कारण अपने वास्तविक रूप से पर्याप्त मात्रा में अलग हो चुका था। संगीत का शास्त्र यदि संस्कृत ग्रंथकारों के हाथ में था तो उसका क्रियात्मक और प्रत्यक्ष रागदारी उस्तादों और खाँ साहबों की गिरफ्त में था। तत्कालीन संगीत में व्याप्त इन अंतरालों और अव्यवस्थाओं को दूर करने के लिए पण्डित जी ने ''महर्षि भरत'' और ''संगीत रत्नाकार'' जैसे संगीत के सर्वग्राही और सर्वमान्य स्वरूप की व्यवस्था करने का संकलन किया, जिसमें एक ओर तत्कालीन गायक वादकों की प्रायोगिक–अदायगी का लिपिबद्ध ढाँचा और दूसरी ओर संस्कृत ग्रंथकारों के संगीत सिद्धांतों का क्रमानुसार स्पष्टीकरण था जिससे संगीत के क्रिया और शास्त्र पक्ष में बराबर सामंजस्य बना रहे। भातखण्डे जी से पूर्व अर्थात् लगभग 9वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शती तक संगीत की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही। पं. जी ने प्राचीन संगीत सिद्धांतों का आधार लेते हुए 15, 16, 17 और 18वीं शती में प्रचलित संगीत के प्रत्यक्ष गायन और संगीत के शास्त्र ग्रंथों का अध्ययन करना अपना उद्देश्य माना क्योंकि इस काल के संगीत का सीधा संबंध वर्तमान संगीत–व्यवस्था पर पड़ता था।

पं. भातखण्डे द्वारा प्रदत्त संगीत साहित्य अपने आप में बहुत विशाल है जिसमें उन्होंने अपने निजी ग्रन्थ संस्कृत, अंग्रेज़ी और मराठी भाषा में लिखे हैं। पं. जी ने

*शोधार्थिनी, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

मूल रूप से दो प्रकार के ग्रंथों की रचना की :

1. संगीत के सैद्धांतिक ग्रंथ
2. संगीत के क्रियात्मक ग्रंथ

संगीत के ये ग्रंथ अधिकांशतः उन्होंने अपनी मातृभाषा ''मराठी'' में लिखे, कुछ ग्रंथ संस्कृत भाषा में और अपने भाषणों को उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में लिखा।

संगीत के सैद्धान्तिक ग्रन्थ

प्रथम तीन ग्रंथों की रचना पं. जी ने प्राचीन संगीत की परंपरानुसार संस्कृत में की।

''श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'' : इस ग्रन्थ की रचना प्राचीन संगीत ग्रंथों की भांति 'सूत्र ग्रंथ' के रूप में संस्कृत भाषा में की गई है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1910 ई. और वर्ण्य–विषय स्वर, श्रुति, थाट आदि है। इसकी पृष्ठ संख्या 17 है।

अष्टोत्तर शततालक्षणम : यह सांगीतिक ग्रंथ ताल शास्त्र पर आधारित है। इसका रचनाकाल 1911 है तथा पृष्ठ संख्या 17 हैं।

अभिनवरागमंजरी : इस ग्रंथ का रचनाकाल 1921 है और पृष्ठ संख्या 45 है।

संगीत सिद्धांतों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए पण्डित जी ने मराठी और गुजराती भाषा में 4 भाष्य ग्रंथों की रचना प्रश्नोत्तर प्रणाली पर की। इन चार ग्रंथों में भातखण्डे जी ने अपने उपनाम 'विष्णु शर्मा' और 'चतुर पण्डित' के नाम से लेखन किया। हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र की संपूर्ण व्याख्या सोदाहरण है बल्कि आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत के ये चारों भाष्य 'आधार–ग्रन्थ' हैं।

भातखण्डे संगीत शास्त्र (भाग 1) : इस ग्रंथ का रचनाकाल 1910 है तथा पृष्ठ संख्या 394 है। इसमें राग का वर्ण्य–विषय, स्वर, श्रुति, संगीत, राग, थाट, से सम्बद्ध सांगीतिक शब्दों की परिभाषा तथा उनकी व्याख्या है। इसका हिन्दी अनुवाद विश्वम्भरनाथ भट्ट ने किया। इस ग्रन्थ में लिखा है– ''योग्य स्वर ज्ञान हुए बिना संगीत का औपपत्तिक अथवा शास्त्रीय भाग समझ में नहीं आता।[2]

भातखण्डे संगीत शास्त्र (भाग 2) : इस ग्रंथ का रचनाकाल 1914 है। भाषा मराठी तथा पृष्ठ संख्या 500 है। इसके हिंदी अनुवादक सुदामा प्रसाद दुबे हैं, जिसमें आरंभ के 150 पृष्ठों में श्रुति, स्वर चर्चा तथा प्राचीन ग्रंथकार भरत, नारद, मूंडक आदि के मतों का सूक्ष्म अध्ययन तथा बाद के पृष्ठों में भैरव थाट के समस्त रागों की विस्तृत विवेचना की गई है।

भातखण्डे संगीत शास्त्र (भाग 3) : इस ग्रंथ का रचनाकाल भी 1914 है। भाषा मराठी तथा पृष्ठ संख्या 478 है। इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक श्री भूषण संगीताचार्य हैं जिसका वर्ण्य–विषय रे ग ध नि स्वरों का महत्व, सन्धि प्रकाश प्रवेशक राग आदि, Rilter और Blasserna आदि विद्वानों के विचार तथा व्यंकटमखी के 72 मेल, पूर्वी थाट के रागों का विवेचन है।

भातखण्डे संगीत शास्त्र (भाग 4) : इसकी मूल भाषा मराठी है तथा प्रकाशन काल 1932 तथा ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या 1136 है। पण्डित जी के सभी ग्रंथों में से यह सर्वाधिक विशाल ग्रन्थ है। इसके हिन्दी अनुवादक कई हैं। काफी थाट के रागों का रागांगानुसार विवरण, ग्वालियर, रामपुर और जयपुर घराने के अनुसार प्रत्येक राग की व्याख्या, मूर्च्छना शब्द के उपयोग और अर्थ तथा प्राचीन ग्रंथकारों के मतों का विवरण इस ग्रन्थ का वर्ण्य–विषय है।

A Comparative Study of Some of the Leading Music systems of 15th, 16th, 17th and 18th Centuries : पण्डित जी की यह अंग्रेज़ी पुस्तक हिंदी में ''संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन'' के नाम से प्रचलित है। इस ग्रंथ का रचनाकाल 1930 है तथा पृष्ठ संख्या 112 है। इसके हिन्दी अनुवादक श्री भगवत् शरण शर्मा है। इसमें 15, 16, 17, 18वीं शती के सभी संगीत ग्रंथकारों के ग्रंथों के वर्ण्य–विषयों का तुलनात्मक विवरण दिया गया है।

A Short Historical Survey of the Music of Upper Indian : हिन्दुस्तानी संगीत पर पंडित जी का यह अंग्रेजी भाषण है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री अरुण कुमार सेन ने किया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1916 तथा पृष्ठ संख्या 51 है।

भातखण्डे दैनंदिनियाँ : संगीत के सैद्धान्तिक ग्रंथों की श्रृंखला में पण्डित जी की सांगीतिक यात्राओं के अनुभवों पर लिपिबद्ध की गई चार दैनंदिनियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है :–

माझा पश्चिमेचा प्रवास
माझा दक्षिणेचा प्रवास
माझा पूर्वकडील प्रवास
माझा उत्तरेचा प्रवास

संगीत के क्रियात्मक ग्रंथ

पण्डित जी ने अपने क्रियात्मक ग्रन्थों के आधार के लिए तत्कालीन परंपरा प्राप्त रचनाओं और दुर्लभ उस्तादी बंदिशों का संकलन किया और उसी के आधार पर संगीत के शास्त्र का भी निर्धारण किया। उनके क्रियात्मक ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है–

स्वर मालिका संग्रह : इस ग्रंथ का रचना काल 1909 है तथा मूलभाषा मराठी है और पृष्ठ संख्या 140 है। इस पुस्तक में "स्वरचित सरगमों" या स्वरमालिकाओं का संग्रह है। रागों का 10 थाट में विभाजन, रागों के प्रत्यक्ष उदाहरण, उनका स्वरूप तथा चलन को स्पष्ट करने वाली तालबद्ध सरगमें इस पुस्तक के वर्ण्य–विषय हैं।

लक्षणगीत संग्रह : इस पुस्तक का रचना काल 1911 है और पृष्ठ संख्या 125 हैं। यह 3 भागों में है। कल्याण, बिलावल और खमाज थाट के रागों के लक्षण गीत इस संग्रह में है।

गीतमालिका संग्रह : इस ग्रंथ का प्रकाशन काल 1916 से 1923 तक है तथा पृष्ठ संख्या 575 है। इस पुस्तक में रागदारी चीजों, बंदिशों की स्वरलिपियों का संग्रह है।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 1) : इस प्रयोगात्मक पुस्तक का रचनाकाल 1919 है तथा भाषा मराठी और पृष्ठ संख्या 60 है। इसके हिन्दी अनुवादक श्री नत्थोपंत भट्ट है। संगीत की प्रारंभिक शिक्षा में शुद्ध व विकृत स्वरों के विभिन्न पल्टे तथा 10 थाटों के आश्रय रागों के आरोह, अवरोह, पकड़ स्वरमालिका तथा गीतों की रचनाएँ हैं।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 2) : इस ग्रंथ की रचना 1921 में हुई, मूलभाषा मराठी है। इसकी पृष्ठ संख्या 500 है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में संगीत शास्त्र सम्बंधित आश्रय राग, आलाप तथा 10 थाटों के परिचय, आलाप, आरोह–अवरोह, पकड़ तथा छोटे ख्याल, लक्षणगीत, ध्रुवपद, धमार आदि की स्वरलिपियाँ संग्रहित हैं। इसके हिन्दी अनुवादक श्री वामन नथोपंत तथा अन्य संगीत विद्वान हैं।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 3) : इस ग्रन्थ का प्रकाशन काल 1922 है तथा यह मराठी भाषा में है और पृष्ठ संख्या 786 है। आरंभ में आवश्यक संगीत शास्त्रीय विवरण तत्पश्चात् 15 रागों की 512 घरानेदार बंदिशों की स्वरलिपियाँ, आलाप आदि संग्रहित हैं। इसके हिन्दी अनुवादक श्री प्रभुलाल गर्ग है।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 4) : इस ग्रंथ का प्रकाशन 1923 में तथा मराठी भाषा में है। इसके हिन्दी अनुवादक श्री प्रभुलाल गर्ग हैं। इसके अंतर्गत संगीत का शास्त्र, रागों के बंदिशों की स्वरलीपियाँ, शास्त्रीय राग परिचय, पारिभाषिक संगीत के शब्द, आलाप आदि के विवरण है। रामपुर, ग्वालियर आदि घरानों की परंपरा से प्राप्त दुर्लभ चीजों का संकलन है।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 5) : इसका प्रकाशन 1937 में हुआ तथा मूल भाषा मराठी और पृष्ठ संख्या 477 है। इसके वर्ण्य–विषय के रूप में बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, कल्याण थाटों के रागों के 251 खानदानी चीजों की स्वरलिपियाँ, आलाप आदि हैं।

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 6) : इसका रचनाकाल 1937 और पृष्ठ संख्या 500 है। भाषा मराठी है। इस ग्रंथ में मारवा, काफी, आसावरी, तोड़ी और भैरवी थाटों के रागों की 237 चीजों की स्वर लिपियाँ, आरोह–अवरोह, पकड़ तथा आलाप आदि का संग्रह है।

गीतों का संग्रह करने तथा सीखने के लिए पण्डित जी को स्वयं बहुत परिश्रम करना पड़ा, न जाने कितने उस्तादों से तालीम प्राप्त की, कितने रिकार्ड्स बनवाए, कितने उस्तादों के अपशब्द और फटकारें सुनीं। इनके ग्रंथों को देखते हुए इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक संगीत का कोई भी ग्रंथकार ऐसा नहीं हुआ जिसने इस कला के शास्त्र और प्रयोग पर इतनी प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन किया हो, जितना पं. भातखण्डे ने किया है। आज संगीत–शिक्षण उन्हीं के ग्रंथों का आधार लेकर चलता है। इस प्रकार उनके 9 शास्त्र ग्रंथ, 4 दैनंदिनियाँ, 3 गीत व लक्षण गीत

संग्रह और 6 क्रमिक पुस्तक मालिकाएँ हैं अर्थात् कुल 22 संगीत ग्रंथ और अनेक सुदीर्घलेखों का लेखन पं. जी द्वारा किया गया है।

उपसंहार

पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे के ग्रंथों की आज इसलिए सर्वाधिक रूप से मान्यता है क्योंकि इनके ग्रंथों में संगीत के शास्त्र और क्रिया से संबंधित जो भी सामग्री हैं, वे अपने आप में न केवल प्रामाणित है अपितु तत्कालीन अनेक विद्वत् मडंलियों के द्वारा प्रतिपादित किया हुआ साहित्य है। आज उनके ग्रंथों और कृतित्व का योगदान यही है कि संगीत के अनुसंधानकर्ता को बिना अधिक परिश्रम और खोज किए एक ही साहित्य में संगीत के तत्कालीन संगीत ग्रंथों के नाम, उनके ग्रंथकारों का समय व अनुमानित तिथि तथा वर्ण्य–विषयों के समस्त विवरण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। 'भरत' के बाद संगीत के शास्त्र और इनके ग्रंथों का तुलनात्मक और सहज रूप से संगीत के वर्ण्य–विषयों को लेकर चलने वाला यदि कोई शास्त्रकार संगीत के इतिहास में सामने आया तो वह पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे ही हैं जिन्होंने अपने से पूर्व प्रचलित संगीत ग्रंथों की पूरी जानकारी अपने संगीत साहित्य में दी है। हिंदुस्तानी संगीत के संदर्भ में जितने भी ग्रंथ उपयोगी हो सकते हैं, उन ग्रंथों, उनके ग्रंथकारों तथा ग्रंथों में वर्णित विषय–वस्तु की तुलनात्मक विवेचना को सरल तथा सहज भाषा में अपने ग्रंथों में पण्डित जी ने स्थान दिया है। ''भातखण्डे स्मृति ग्रंथ'' के अनुसार उन्होंने लगभग ''अठारह संगीत शास्त्र और क्रियात्मक ग्रंथों'' का सृजन किया तथा उत्तर–दक्षिण–पूर्व–पश्चिम भारत की यात्राओं के सांगीतिक अनुभवों से दैनंदिनियाँ (डायरियाँ) लिखीं तथा संगीत से संबंधित अनेक प्रपत्र तैयार किए, जो आधुनिक संगीत के शास्त्रोक्त आधार हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. शर्मा, डॉ. स्वतंत्र, भारतीय संगीत एवं ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ. 335
2. भारतखंडे संगीत शास्त्र, भाग–एक, पृ. 1

संदर्भ ग्रंथ :

1. Nayar, Sobhana, BHATKHANDE'S CONTRIBUTION TO MUSIC : A Historical perspective, Popular Prakashan Pvt. Ltd., 35-C, Pandit Madan Mohan Malaviya Marg, Bombay-400 034.
2. डॉ. आकांक्षी, पं. विष्णुनारायण भातखण्डे एवं पं. ओंकार नाथ ठाकुर का सांगीतिक चिंतन, 2009 मनीष प्रकाशन बी. 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी. एच. यू., वाराणसी।
3. चिंचोरे, श्री प्रभाकर नारायण, भातखण्डे स्मृति–ग्रंथ, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, म. प्र.
4. रातंजनकर, डॉ. श्रीकृष्ण नारायण, क्षीरसागर दीपक, भारतीय संगीत को पं. विष्णु नारायण भातखण्डे का योगदान, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गटे, जोधपुर (राज.), प्रथम संस्करण : 2011
5. शर्मा, डॉ. जया, पंडित भातखण्डे के ग्रन्थों का संगीत–शिक्षण में योगदान, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4697/5–21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012
6. भटनागर, कु. प्रज्ञा, विष्णु नारायण भातखण्डे जी द्वारा संकलित ऋतुपरक रचनाओं में रसाभिव्यक्ति एक विवेचनात्मक अध्ययन, (शोध प्रबंध) महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ. प्र.) 2007

ठुमरी गायन–शैली के साथ तबला–संगति

डॉ0 विनायक शर्मा** **निशांत कुमार सिंह***

शोध सारांश

ठुमरी गायन–शैली में शब्द तो कम प्रयुक्त होते हैं किन्तु शब्दों के हाव–भाव द्वारा गीत का अर्थ प्रकट करना ठुमरी गायन शैली की विशेषता मानी जाती है। ठुमरी गायन विलम्बित लय अथवा मध्य लय में प्रारम्भ कर बढ़त की जाती है। यह पंजाबी, चांचर, त्रिताल, कहरवा, दादरा तथा रूपक आदि तालों में गायी जाती है। ठुमरी की संगति बड़ा ख्याल की भाँति विलम्बित लय में ताल की विभिन्न मात्राओं से छोटे बोलों को बजाकर करनी चाहिए। इस शैली की संगत अन्य शैलियों से कुछ अलग होती है। इसकी बढ़त में तबला वादक को चौगुन, अठगुन की लय में लग्गी और लड़ी बजाकर संगत करना चाहिए। इस प्रक्रिया से तबला वादक की उत्तमता का परिचय मिलता है। इस शैली में वादक को सुन्दर छन्द की लग्गी बजाकर सम पर ही समाप्त करना चाहिये। ठुमरी अधिकांशतः दीपचन्दी और जत्त ताल में गायी जाती है तथा ठुमरी की बढ़त के समय मुख्यतः कहरवा या दादरा का वादन किया जाता है। ठुमरी मुख्यतः श्रृंगार, करूण; कभी–कभी शांत रस–प्रधान भी होती है। बिलम्बित लय में गाई जाने वाली ठुमरियाँ जत और दीपचंदी तालों में गाई जाती हैं। विलम्बित ठुमरी के साथ ठेके का भराव गायन की चाल व वजन के अनुरुप विभिन्न प्रकार के चाँटी प्रधान बोलों से किया जाता है। भराव के अतिरिक्त गायक द्वारा अंतरा गाये जाने के बाद ठुमरी के मुखड़े के साथ कहरवा ताल की लग्गी बजायी जाती है। इसी बीच गायन में जैसे–जैसे मुर्की, खट्का, चलन, बोल–बाँट आदि का प्रयोग होता है उसी प्रकार विभिन्न रूपों में ठेका सजाकर वादन करने से गायन सरस होता है। इसके पश्चात् जब गायक विलम्बित लय समाप्त कर द्रुतलय में गायन प्रारम्भ करता है तब वहाँ तबला संगतकार को वादन का अवसर मिलता है। इसके साथ ही ठुमरी प्रकृति के अनुरुप लग्गी–लड़ी और उसको उलट–पुलट कर चौगुन या अठगुन लय में बजाकर तिहाई लेना गायन को चमत्कृत करता है। जबकि मध्यलय की ठुमरी के साथ, मध्यलय के ख्याल की भाँति ही संगत की जाती है। इस गायन शैली के साथ तबला वादक को अत्यन्त नाजुक चाँट और वजनदार घुमारे के बाँये का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही, बाँये पर दबाव घिसाव के जरिए ठेके की गति में विविध प्रकारों द्वारा उचित वादन किया जा सकता है। 'कि' अक्षर बजाते समय उसे फैले हुए पंजे से न बाजकर बंद मुट्ठी से या चुटकी से बजाया जाय तो वह ठुमरी के श्रृंगार में वृद्धि करता है। इस प्रकार ठुमरी गायन में विभिन्न प्रकार की लग्गियाँ, वजनदार तथा तैयारी के साथ बजायी जानी चाहिए। इस प्रकार ठुमरी के साथ विभिन्न ढंग से सफल संगत की जा सकती है।

मुख्य शब्द : *ठुमरी, संगीत, गायन, संगति, तबला।*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है।*

भारतीय संगीत में गीत को प्रधान माना गया है एवं वाद्य व नृत्य का कार्य गीत का उपरंजन करते हुए उसे सम्यक बनाना है। इसलिए वाद्य को गीत का अनुवर्ती या अनुगामी कहा गया है, जिसका प्रयोजन गीत व नृत्यादि को लय–तालबद्धकर सौन्दर्याभिवृद्धि करते हुए लोक रंजन करना है। इस प्रकार संगीत में व्यवहार किए जाने वाले सभी वाद्यों (स्वर–लय–ताल) का आविष्कार मूलतः संगति के लिए ही हुआ। अतएव अवनद्ध वाद्य भी प्रथमतः संगति वाद्य है। सभी प्रकार के अवनद्ध वाद्य मूलतः लय और तालप्रधान वाद्य होते हैं और उनका कार्य गायन, वादन और नर्तन में ताल व लय की संगति करना होता है।

तबला भी एक ताल प्रधान अवनद्ध वाद्य है। स्वतंत्र–वादन की भव्य परम्परा होते हए भी यह संगति वाद्यों में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। अतः इसका भी प्रमुख कार्य विविध ध्वनि उत्पन्न करते हुए गायन, वाद्य और नृत्य की संगति करना है।

*शोधार्थी, ललित कला संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

**शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, ललित कला संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

फलस्वरूप विभिन्न संगीत शैलियों, प्रकृति एवं कलाकार की कला एवं क्षमता के अनुरुप संगत के कई प्रकार सामने आये जिसे संगत की शब्दावली में अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया गया। इस सभी संगत–प्रकारों का प्रयोग भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न रूपों में किया जाता है। जहाँ जैसी उपयोगिता होती है संगतकार वहाँ उसी प्रकार की तबला–संगति प्रस्तुत करता है।

उपशास्त्रीय संगीत की एक अत्यन्त सुरीली, सुमधुर और लोकप्रिय गायन शैली है ''ठुमरी''। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में 'ठुमरी' शब्द को एक विशेष गायन–शैली के लिए व्यवहार किया गया है। ठुमरी में बोलबाँट, बोल–बनाव, स्वर–लालित्य, लचकदार ठेका, बोलों के द्वारा शब्दों को लेकर बोल आलाप करना इत्यादि पर अधिक प्राधान्य दिया जाता है। सुगम संगीत की विधाओं में सुन्दरता व्यक्त करने के लिए ठुमरी गायन को ही सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। ठुमरी को ललित शास्त्रीय संगीत भी कहा जाता है। ठुमरी में श्रृंगार एवं करूण रस की प्रधानता होती है। भक्ति रस ने भी ठुमरी में अपना एक स्थान बना लिया है। ''पहले राजदरबारों में ठुमरी नृत्य के साथ गाई जाती थी, इसलिए श्रृंगार की प्रधानता रहती थी, परन्तु महफिल की ठुमरी में सभी रस पाए जाते हैं। ठुमरी में प्रयुक्त विशिष्ट राग विशिष्ट रसों का निर्माण करता हैं।''

'ठुमरी' की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न संगीत विद्वानों के मत भिन्न–भिन्न हैं परन्तु अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि लगभग 1847 ई0[1] में अवध के नवाब वाजिद अलीशाह के समय लखनऊ दरबार में 'ठुमरी' गाई जाती थी। 'ठुमरी' एवं नवाब 'वाजिद अली शाह' का नाता अटूट है। वाजिद अली शाह कवि भी थे। उन्होंने अख्तर पिया एवं अली नाम से अनेक ठुमरियों की रचना की। ठुमरी की प्रधानता बढ़ने पर 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में ठुमरी के विकास में कई राजा–बादशाह, गुणी कलाकार, साथ ही कई सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी अवदान था।

ठुमरी की दो प्रधान शैलियाँ मानी गई हैं– 1. बोलबॉट की ठुमरी एवं 2. बोल–बनाव की ठुमरी। बोल–बनाव की ठुमरियों में गायन शैली के अनुसार दो अंग माने गए हैं। ये दो अंग हैं 1. पूरब अंग की ठुमरी एवं 2. पंजाब अंग की ठुमरी[2]। पूरब अंग की ठुमरी में गायन ढंग, प्रकृति एवं रचना प्रणाली के आधार पर इनके लखनवी शैली एवं बनारसी शैली दो नाम हैं। बनारस अंग की ठुमरी के कलाकारों में बड़े रामदास जी, छोटे रामदास जी, भोलानाथ भट्ट, बड़ी एवं छोटी मोती बाई, महादेव प्रसाद मिश्र, सिद्धेश्वरी देवी, हुस्ना बाई, गौहरजान, कृष्णा बाई, अख्तरी बाई, विद्याधरी बाई, रसूलन बाई, सरस्वती बाई, मंग बाई, सुग्गन बाई, गिरिजा देवी, शोभा गुर्टू, सविता देवी, नैना देवी, पूर्णिमा चौधरी, रीता गांगुली आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।'' ''पंजाब अंग की ठुमरी के कलाकारों में बरकत अली, नज़ाकत अली, नज़ाकत–सलामत अली, बेगम अख़्तर, निर्मला अरूण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

ठुमरी के लिए चंचल प्रकृति के राग ही उपयुक्त माने जाते हैं, जैसे– खमाज, देश, पीलू, मांड, काफी, तिलंग, तिलककामोद, भैरवी, गारा, झिंझोटी, सिन्दूरा आदि।

ठुमरी की संगत तबले पर की जाती है। ठुमरी अधिकतर दीपचंदी, झपताल, पंजाबी, अद्धा, रूपक आदि तालों में गाई जाती हैं।

ठुमरी गायन में तबला संगति

ठुमरी एक ऐसी गायन शैली है जिसमें भावों की सूक्ष्मता, सुकुमारता पायी जाती है और जिसमें शब्दों के भावों को कोमलता और नजाकत से प्रस्तुत किया जाता है। ठुमरी एक माधुर्य गुण सम्पन्न श्रृंगारिक गेय विधा है। राधाकृष्ण की केलि–क्रीड़ा से लेकर सामान्य नायक और नायिकाओं के रस–भरे श्रृंगार तक सभी की अभिव्यक्ति इस गायन शैली में होती है। नर्तक व नर्तकियाँ इस गायन शैली पर नृत्य भी करते हैं। ठुमरी में स्वरों के माध्यम से वही भाव मुखर हो उठते हैं जो नृत्य में अभिनय के द्वारा व्यक्त होते हैं। अतः ठुमरी नृत्य का ही मुख्य रूप मानी जा सकती है। ''ठुमरी गीत नाजुक एवं चपल मिजाज का होने के कारण उसको गाने के लिए वैसे ही रागों को चुना जाता है। खमाज, काफी, मांड, बरवा, तिलंग, पीलू तथा भैरवी जैसे रागों में इसे गाया जाता है। दीपचन्दी, पंजाबी, जत, तीनताल, दादरा, कहरवा जैसे द्रुत लय के ताल इसके लिए विशेष अनुकूल हैं।

ठुमरी गायन कला की दृष्टि से विलम्बित ठुमरी साधारणतया चार भागों में विभक्त हो सकती है। पहला भाग 'छेड़' या 'पकड़' है जो केवल एक छोटा आलाप

होता है। दूसरे भाग में स्वर–विस्तार किया जाता है। इसमें गायक ठुमरी राग के विभिन्न स्वरों का क्रमिक विस्तार अपनी योग्यता–शक्ति के अनुसार करता है। यह विस्तार शब्दों के आधार पर होता है और इसमें स्वरों के मेल की तरकीब जो एक बार की जाती है यह दुहराई नहीं जाती। पहले स्थाई को लिया जाता है और उसके कुछ शब्दों को या शब्द–समुदायों को स्वरों के आधार पर गाया जाता है और उनको दूसरे शब्दों या शब्द समुदायों से मिला दिया जाता है। बोल व स्वरों के विभिन्न संयोग, शब्दों में निहित भावनाओं तथा काव्यात्मक विचारों के अनेक शब्द–चित्रों को प्रदर्शित करते हैं। शब्द–चित्रों को पूर्णरूपेण स्पष्ट करने के लिये छोटी–छोटी तानों तथा मुर्कियों आदि तथा दूसरे राग के स्वरों अथवा रागवाचक स्वरों के उतार–चढ़ाव का सहारा लिया जाता है। ध्वनि के उतार–चढ़ाव कभी पुकार या चीख, कभी कष्ट या खेद, कभी प्यार या चापलूसी, कभी फुसफुसाहट या आह, कभी छेड़–छाड़ या झुंझलाहट प्रकट करते हैं। इस प्रकार, सभी तरह के भावपूर्ण चित्र कान से होकर ह्रदय पटल पर अंकित हो जाते हैं। तीसरे भाग में फुटकर चालें या बहलावे की चालें होती हैं। इसकी प्रकृति और ध्येय दूसरे भाग के समान ही होते हैं अर्थात् ये दोनों भाग काव्य–भाव दिखलाते हैं और गीत कविता में भावों की व्याख्या करते हैं परंतु इसमें इस भाग की क्रमिक रीति का परित्याग कर दिया जाता है ।

गायक अपनी कुशलता को स्वतंत्र ढंग से प्रदर्शित करते हैं और स्वर–बोल की जो तरकीब जहाँ चाहे दिखलाते हैं। यह प्रदर्शन उन समस्त भिन्न भावों की जो स्थायी तथा अन्तर में निहित होते हैं, व्यक्त करता है।

ठुमरी गायन के प्रस्तुतिकरण अथवा प्रथम चरण में प्रायः गायक कलाकार द्वारा एक छोटा आलाप किया जाता है जिससे राग का स्वरूप स्थापित होता है। तत्पश्चात् जब गायक बंदिश का मुखड़ा प्रारम्भ करते हैं तब तबला संगतिकार के द्वारा सम का स्थान स्पष्ट होते ही उस निश्चित ताल का ठेका प्रारम्भ किया जाता है जिस ताल में ठुमरी की बंदिश स्वरबद्ध होती है तबला संगतिकार सम पकड़ने से पहले एक या दो मात्राओं का मुखड़ा अथवा मोहरा बजाकर संगति का आरम्भ करते हैं या कभी–कभी सीधा ठेका भी लगाना प्रारम्भ करते हैं। यह निर्भर करता है तात्कालिक वातावरण या गायक कलाकार का मिजाज जिनके साथ संगति कलाकार संगति करने बैठता है अथवा संगति कलाकार के खुद का मन–मिजाज पर क्योंकि एक ही संगतकार कभी मुखड़ा बजा कर ठेके की शुरूआत करते हैं तो कभी सीधा ठेका। ठुमरी गायन के प्रारम्भ में बजने वाला मुखड़ा या उठान कदापि बड़ा नहीं होना चाहिए।

ठुमरी के निर्वाह में स्वर–विस्तार की प्रक्रिया बहुत महत्व रखती है। इससे ठुमरी में क्रमबद्धता और पूर्णता आई जिसका इसमें पहले अभाव था। ठुमरी के बन्दिश के दो भाग होते हैं– स्थाई एवं अन्तरा। गायक कलाकार स्थाई को गाते हुए बन्दिश में प्रयुक्त शब्द राग और ताल की प्रकृति के अनुरूप निजी कल्पनाशीलता से आलाप करते हुए बार–बार मुखड़े पर आते हैं। स्थाई के बाद लगभग इसी तरह अन्तरा को भी गाने का प्रचलन है। स्थाई और अन्तरा में काम दिखाते समय या बढत करते समय सबला संगतिकार को ठेका का भराव इस तरह से करना चाहिए जिससे गायक को स्वर–विस्तार एवं भाव–संप्रेषण में कोई कठिनाई न हो। तबला संगतिकार को गीत के वजन अथवा भाव को समझकर ही ठेका का भराव करना चाहिए। बढ़त में तबला–संगति करते समय तबला–संगतिकार को अपनी तैयारी के प्रदर्शन की अपेक्षा ठेके की मधुरता, लोच और कोमलता का अधिक ध्यान रखना चाहिए। जब गायक उपज के द्वारा बोल–बनाव करे तब तबला संगतिकार को सीधा ठेका ही बजाना चाहिए। कभी–कभी सम पर मिलने के लिए छोटा–छोटा मुखड़ा या तिहाई भी बजाया जा सकता है।

ठुमरी–गायन की बढ़त में तबला संगति–कलाकार सीधा ठेका बजाये अथवा मोहरा, मुखड़ा के साथ ठेके का बोल सुस्पष्ट और आँस युक्त होना चाहिए। दो बोलों के बीच की जगह का भराव भी मूल बोलों के आँस से करना ज्यादा उपयुक्त होता है जिससे ठेके का स्थिर आकार और सुस्पष्ट सम होने से गायक को भाव प्रकट करने में आसानी हो।

पूरब अंग की ठुमरी प्रायः दीपचन्दी या जत ताल में निबद्ध होती है। कुछ बंदिशें आड़ा चारताल में गाए जाने का उल्लेख मिलता है परन्तु आड़ा चारताल में ठुमरी सुनने में नहीं मिलती[3]। ठुमरी गायन के आरम्भ में कलाकार उस राग का कुछ समय के लिए आलाप करते हैं जिस राग में ठुमरी है। बंदिश में सम से तबला संगतिकार ठेका

आरम्भ करता है। दो से चार मात्राओं का तिहाई या टुकड़ा बजा कर सम पर आते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि बोल–बनाव करते हुए जिस आवर्तन में गायक मुखड़ा पकड़ता है उसी आवर्तन में दो से चार मात्राओं का तिहाई या टुकड़ा बजाकर तबला संगतिकार सम पर आते हैं। जब गायक स्थाई, अंतरा का गायन करते हैं, ऐसे में तबला संगतिकार कभी भी कोई बोल का प्रयोग नहीं करते बल्कि सीधे–सीधे ठेका को भरकर वादन करते हैं। भगवत शरण शर्मा ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि गायक उपज द्वारा बोल–बनाव करते हैं तो तबला संगतिकार के लिए उस समय सीधा ठेका बजाना ही उचित होता है**4**।

स्थाई व अंतरा के पश्चात ठुमरी गायन के अंतिम चरण में लग्गी का वादन किया जाता है। यह ठुमरी का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस गायन में भिन्न–भिन्न स्वर–विन्यास एवं विस्तार के पश्चात् स्थाई की पुनरावृति के समय एक विशेष प्रकार का बोल बजाया जाता है जिसे 'लग्गी' कहते हैं। ठुमरी गायन में अन्तरा की समाप्ति के उपरांत गायक तबला संगतिकार को लग्गी प्रारम्भ करने का संकेत देता है। संकेत पाते ही तबला–संगतिकार तबला और डग्गा दोनों पर एक साथ लयबद्ध थाप देकर लग्गी प्रारम्भ करते हैं। ठुमरी में लग्गी बजाने की एक विशेषता यह भी है कि ठुमरी चाहे किसी भी ताल में गाई जा रही हो लग्गी हमेशा तीनताल अथवा कहरवा ताल में ही बजाई जाती है। लग्गी–वादन के प्रारम्भ में तीनताल का ठेका दुगुन लय में बजाई जाती है और इसी में विभिन्न प्रकार की लग्गी बजाई जाती है। लग्गी की लय और बोल–रचना हृदयस्पर्शी वातावरण का निर्माण करता है जिससे गायक और श्रोतागण भाव–विभार हो जाते हैं। बिलम्बित बोलबनाव में जहाँ तबला–संगतिकार केवल ठेका बजाते हैं, वहीं लग्गी–वादन में तबला–संगतिकार को अपनी कलात्मकता व निपुणता दिखाने का सुअवसर मिल जाता है। पं. बद्री महाराज की लग्गी उदाहरण के लिए प्रस्तुत है**5**–

लग्गी

धागे	नाधी	गती	नाड़ा	ताके	नाति	गधि	नाड़ा
X				0			

पल्टा–1

धागे	नाधी	गधी	नाधी	कधी	नाधी	गति	नाड़ा
X				0			

ताके	नाती	कती	नाती	कती	नाधी	गधि	नाड़ा
X				0			

ठुमरी गायक जब अंतिम चरण में मुखड़ा लेकर सम पर आता हैं वहीं से बंदिश तीनताल या कहरवा ताल में बदल देते हैं परन्तु जिस लय में ठुमरी गाते है उसी के दुगने लय में कहरवा या तीनताल में बंदिश को बदलते हैं। गायक बंदिश के स्थाई बोल को पकड़कर ही गायन करता रहता है। उस समय तबला संगतिकार को वादन के लिए पूरा समय मिलता है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि उपरोक्त लग्गी जिस लय में बजेगी अगर लय कम हो जाए तो वहाँ दूसरी लग्गी बजेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे अलग–अलग लय में बजने वाले वादन–सामग्री अलग–अलग होते हैं, उसी प्रकार अलग–अलग लय के लिए अलग–अलग लग्गियां हैं। प्रस्तुत है दूसरी लग्गी–

धाते	टधा	तेट	तिन	ताते	टधा	तेट	धिन
X				0			

'लग्गी' बजने के साथ–साथ जब गायक तिहाई लेता है तो साथ ही साथ तबला संगतिकार भी तिहाई लेकर सम पर आ जाते हैं। पूरब बाज के गायक तिहाई के साथ ही अपने कार्यक्रम की समाप्ति करते हैं परन्तु पंजाब अंग के ठुमरी गायक लग्गी के पश्चात् तिहाई लेकर सम पर आने के पश्चात् पुनः उसी स्थाई को विलम्बित में गाकर सम पर आते है और कार्यक्रम का समापन करते हैं।

अतः निःसंदेह ठुमरी–गायन के अंतिम चरण में 'लग्गी' का प्रयोग सौन्दर्य में वृद्धि करने के साथ–साथ तबला संगतिकार की अपनी कला का प्रदर्शन करने का अधिक अवसर प्रदान करता है। यहाँ भी संगतिकार को मुख्य कलाकार के साथ–साथ चलना होता है कि कलाकार गायक कब तिहाई लगा दे और संगतिकार को अपने वादन को बीच में ही रोककर तिहाई लगाकर सम पर आ जाना होता है।

द्रुत ठुमरी का वर्णन करने के पूर्व इन भागों के महत्त्व के विषय में जानना आवश्यक है जिनमें ठुमरी गायी जाती है. पहला भाग भूमिका के रूप में होता है 'छेड़', ठुमरी राग का परिचय देती है और उसके स्वरूप का अनुभव कराती है। दूसरे और तीसरे भाग ठुमरी के वास्तविक अंग हैं और उनकी प्रकृति तथा ध्येय समान होते हैं। इनमें ठुमरी गाने वाले का कर्म–कौशल प्रकट होता है अर्थात् यह कि वह क्या करता है? और यह कितना प्रभावशाली होता है? दोनों भागों में केवल यह अन्तर है कि पहला भाग क्रमिक और नियमित रूप से चलता है और दूसरे भाग में कोई क्रम या नियम नही होता है। यह पूर्ण रूप से अद्भुत अथवा रोमांचकारी होता है। जो कुछ भी हो ये दोनों भाग गाने वाले की आत्मा को प्रकट करते हैं। उनका ध्येय काव्य–भाव के बोल चित्रों को दिखलाना होता है, जिनको संगीतज्ञ बोल–बनाव कहते हैं। ठुमरी का सम्बन्ध उन भावों के प्रदर्शन से है जो स्थायी और अंतरा के शब्दों और वाक्य खण्डों में निहित है। गायक अपने हृदय के भावो को इन शब्दों और वाक्य–खण्डों के द्वारा विभिन्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकता है। चौथे भाग का उद्देश्य तबला वादक को अपनी तबला वादन की निपुणता को प्रदर्शित करने का अवसर देना होता है। जब तक दुगुन प्रारम्भ नहीं होता वह ठेका के विलम्बित लय तक सीमित रहता है। इसमें उसको गायक की इच्छानुसार ही चलना पड़ता है। ऐसी कोई चीज करने की आज्ञा नहीं है जो गायक को उलझन में डाल दे, मात्र गायक की संगति करना होता है। जब तक दुगुन आरम्भ नहीं होती, गायक केवल अपनी कुशलता को प्रदर्शित करता है। प्रदर्शन में गायक का स्थान प्रमुख तथा तबला वादक का गौण होता है, परन्तु जैसे ही दुगुन आरम्भ होता है तबला वादक को एक प्रकार की स्वतन्त्रता मिल जाती है और वह अपनी कला को इतनी पूर्णता से दिखा सकता है जितनी ठुमरी शैली और उसकी लय उसको अनुमति देते हैं। यह कहा जा सकता है कि दुगुन में गाने वाले का स्थान कुछ सीमा तक गौण हो जाता है क्योंकि वह साधारणतः स्थायी के बोलों के आधार पर सीधी चालें चलता है। इस समय तबला वादक अपनी इच्छानुसार मनोरंजक टुकड़ों आदि का प्रयोग करता है।

दुगुन के विषय में यह कह देना चाहिये कि साधारणतः पहले ठुमरी गायक दुगुन नहीं करते थे। ठुमरियों के जो पुराने ग्रामोफोन रेकार्ड्स हैं उनमें दुगुन नहीं मिलता। सम्भवतः दुगुन उस समय से किया जाने लगा जब किसी गायक को यह अनुभव हुआ होगा कि यदि ठुमरी में विलम्बित लय के पश्चात् थोड़े समय तक तेज लय को भी प्रयोग किया जाय तो उससे उसकी सुन्दरता और भी अधिक हो जायेगी। सम्भव है कि यह अनुभव द्रुत ख्याल से मिला हो जो विलम्बित ख्याल के बाद गाया जाता है। जो कुछ भी हो, अब दुगुन ठुमरी–प्रदर्शन का एक आवश्यक अंग है। दुगुन की अनुपस्थिति में कोई ठुमरी पूर्ण नही समझी जाती है।

यद्यपि चौथे भाग का उद्देश्य तबला वादक को अपनी कला का प्रदर्शन के लिए स्वतन्त्र करना होता है. इसका महत्व श्रोताओं के दृष्टिकोण से भी होता है। इससे श्रोताओं को ठेका–रेला तथा आवर्तियों का आनन्द भी प्राप्त होता है, जो इनमें प्रयोग किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त क्योंकि गाने वाला स्थायी के मुख्य शब्दों को एक समान लय में ध्वनि के भिन्न–भिन्न उतार–चढ़ाव के साथ गाता है तो वह उन शब्दों के काव्य–भाव में निमग्न प्रतीत होता है और क्योंकि यह स्थिति तबला की लग्गी–लड़ियों के साथ–साथ चलती है तो इससे सारा वातावरण एक प्रकार से कीर्तन के वातावरण के समान दिखाई देता है।

द्रुत ठुमरी

कोई भी ठुमरी जो दुत ताल में गायी जाती है उसको द्रुत ठुमरी कहते हैं। चाहे वह साधारण नृत्य ठुमरी हो या विकसित ठुमरी हो जो लखनऊ के बिन्दादीन महाराज, कालिकादीन महाराज और फर्रुखाबाद के ललन पिया इत्यादि ठुमरियाँ गाते थे या ख्याल प्रकार की ठुमरी हो। इस प्रकार हर एक ठुमरी कुछ समय पहले तक विशेषकर त्रिताल में गायी जाती थी परन्तु अब वह जत, कहरवा या दादरा तालों में भी गायी जाने लगी है। यह एक धुन भी है। वास्तव में प्रत्येक ठुमरी को कुछ वर्ष पहले धुन ही कहा जाता था।

इसके विषय में यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि (1) विलम्बित ठुमरी की तरह इसके भी दो भाग होते हैं– (अ) स्थायी और (ब) अंतरा। परन्तु उसके दूसरे भाग में कभी–कभी एक से अधिक अंतरे भी होते हैं। (2) यह सीधे ढंग से कभी नीची और कभी ऊँची

ध्वनि में विकसित की जाती है। इसमें शब्दों पर बल दिया जाता है, ताकि उनका साधारण प्रभाव स्पष्ट हो जाय। परन्तु उसमें बोल–बनाव बहुत ही कम होता है जो तानें लगाई जाती है वे थोड़ी तथा कुछ उलझी हुई होती हैं। साधारणतः ये बोल तानें होती हैं (3) इसमें बोल– बनाव कम होता है और इसकी लय कुछ तेज होती है, इसलिए इसका प्रसार अधिक नहीं किया जा सकता और यह अधिक समय तक गायी नहीं जा सकती है।

दादरा गायन–शैली ठुमरी के अति निकट होती है। उसका स्थान विलम्बित और द्रुत ठुमरी के बीच का है और चूँकि उसमें कुछ बोल–बनाव भी किया जाता है, इसलिए यह विलम्बित ठुमरी के निकट होता है और चूंकि उसका ताल कुछ तेज लय में होता है इसलिए वह द्रुत ठुमरी के निकट आ जाती है परन्तु इसमें अधिक बोल–बनाव नहीं किया जाता है क्योंकि यह विलम्बित ठुमरी के बाद गाया जाता है और विलम्बित ठुमरी में बोल बनाव काफी हो चुका होता है। इसलिए दादरा में बोल–बनाव की उस सीमा तक आवश्यकता नहीं समझी जाती। चूँकि यह ठुमरी की अपेक्षा कुछ तेज लय में गायी जाती है इस कारण इसमें विलम्बित ठुमरी के समान बोल–बनाव करना कुछ कठिन हो जाता है। इसकी कविता की प्रकृति ठुमरी के समान ही होती है और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस रीति का ऊपर वर्णन किया गया है वह एक साधारण रीति है। गायक अपनी इच्छानुसार इसके क्रम में परिवर्तन भी कर सकता है और वह अपनी कला–कुशलता को दिखा सकता है।

जिस समय ठुमरी नृत्य के साथ गाई जाती थी तब लग्गी का होना विशेष महत्व रखता था परंतु आगे ठुमरी गायकी और नृत्य इन दोनों ने साथ नहीं निभाया, भावनात्मक अर्थ की परवाह किए बगैर लग्गी तो ठुमरी के साथ जुड़ गई, लग्गी पहले जैसे ही बजती रही। वियोग और प्रतीक्षा को पूरी तरह अभिव्यक्त करने वाले काव्य का साथ लग्गी ने वैसे ही रखा। गतिमान लय और स्वरपुजों की विविध प्रकार की लड़ियों, बंदिश के मुखड़ों से शब्द अचूकता से चरमबिंदु का निर्माण करने के लिए लग्गी का प्रयुक्त होना आवश्यक हुआ। ठुमरी गायन में लग्गी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तबला एक प्रमुख संगति वाद्य है। तबला एक ओर जहाँ आध्यात्मिक वाद्य है वहीं दूसरी ओर श्रृंगार से भरपूर चंचल वाद्य है। किसी भी वाद्य के साथ, गायन के साथ संगति में यह ध्वनि साम्य के कारण उसका पर्याय बन जाता है। ठाह व विलम्बित लय में पूरी एकाग्रता से बजाए गए बोलों को पूरे वजन के साथ तन्मय होकर यह श्रोताओं पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ता है। यह गायन, वादन, नृत्य की जुगलबन्दी के साथ–साथ स्वतंत्र वादन में भी अग्रणी है। ख्याल और ठुमरी जैसी श्रृंगारिक एवं मधुर गायन शैली के साथ संगति हेतु तबला वाद्य अत्यंत ही उपयुक्त है। ठुमरी के साथ तबला–संगति की बात करें तो इसमें संगत का क्षेत्र काफी विस्तृत है। ठुमरी गायन में विभिन्न प्रकार की लग्गियाँ, वजनदार तथा तैयारी के साथ बजायी जाती हैं जो तबला की ध्वनि में बहुत ही आकर्षक प्रतीत होती हैं। अतः तबला वाद्य पर ठुमरी–जैसी गायन–शैली के साथ भी आकर्षक रूप से संगति की जा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. तिवारी, विदुषी (2014). भारतीय संगीत में ठुमरी एक विश्लेषण. निवाई राजस्थान : नवजीवन पब्लिकेशन, पृ0 24
2. वही, पृ0 4
3. स्वाति् (2021). भारतीय संगीत में संगत का महत्व. संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 67
4. वही
5. वही, पृ0 68

ग़ज़ल गायकी एवं संगीत

डॉ. संगीता श्रीवास्तव** **श्रुति मिश्रा***

शोध सारांश

साहित्य की प्रत्येक विधाओं की अपनी एक विशेषता होती है। उन्हीं विशेष्य कारणों के साथ ही उस विधा का जन्म होता है और धीरे–धीरे युग परिवर्तन के साथ उसका स्वरूप भी निखरता जाता है। इस प्रकार, उस विधा का विकास होता रहता है। ग़ज़ल के सम्बन्ध में भी यही हुआ। अरब तथा ईरान से होती हुई ग़ज़ल भारत में आई।

यद्यपि अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में आज की ग़ज़ल में प्रतीक के रूप में एक व्यक्ति या एक वस्तु को आधार माना जाता है किन्तु प्रभाव के स्तर पर उसका क्षेत्र सम्पूर्ण समाज और मानव जाति होता है। इसलिए वर्तमान काल की ग़ज़ल में हुस्न–इश्क और प्यार की अमराइयों की महक के साथ पारिवारिक प्रेम, देश–प्रेम और विश्व–प्रेम का व्यापक समावेश मिलता है।

ग़ज़ल को अगर संगीत की नज़र से देखा जाय तो इसे शास्त्रीय संगीत और सरल संगीत के बीच की कड़ी माना जा सकता है। ग़ज़ल गायन में ग़ज़ल का म्यूजिकल कम्पोजीशन सरल संगीत यानि सुगम संगीत को ख्याल में रखकर किया जाता है। मगर, साथ ही उसकी गायकी में शास्त्रीय संगीत के करीब–करीब सभी तत्वों, जैसे– राग, ताल, लय, आलाप, तान, बोल आलाप, बोल तान, गमक, मींड, मुर्की, खट्का, कण स्वर आदि का जाने–अनजाने में इतना इस्तेमाल होता है कि सुनने वालों को बहुत ही सहजता से शास्त्रीय गायकी का आभास होने लगता है और इसे सराहने भी लगते हैं। शास्त्रीय संगीत की इन खूबियों को अगर ख्याल गायकी, ध्रुपद–धमार गायकी के साथ पेश किया जाता है तो आम इंसान को थोड़ा उबाऊ लगने लगता है मगर इन्हीं खूबियों को ग़ज़ल के साथ पेश किया जाता है तो बहुत ही पसंद किया जाता है।

मुख्य शब्द : *ग़ज़ल, संगीत, राग, ताल, अरबी, साहित्य*

प्रविधि : *पुस्तकों के अध्ययन को इस शोध–पत्र का माध्यम बनाया गया है ।*

'ग़ज़ल' शब्द अरबी जुबान का है। लुगत में जिसका अर्थ स्त्रियों (औरतों) से बात करना या यूं कहा जाय कि महबूब से मोहब्बत भरी बातें करना। गज़ल का शाब्दिक अर्थ मुहब्बत के जज़्बात व्यक्त करना है। अच्छी ग़ज़ल वह है जिससे इश्को–मुहब्बत की बातें सच्चाई और असर के साथ ज़ाहिर की जाती हैं। ग़ज़ल की प्रभावात्मकता उसके भाव और भाव प्रदर्शन की शैली में है। सुन्दर कण्ठ तथा अच्छी गायन–शैली ग़ज़ल की सरसता को बढ़ाती है। अर्थ की रंगीनी, ग़ज़ल की मुख्य विशेषता है। ग़ज़ल हमारे जीवन के यथार्थ का प्रतिनिधित्व करती है। उर्दू–काव्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप ग़ज़ल है।

ग़ज़ल का अस्तित्व अरबी के 'कसीदा' नामक काव्य शैली में सदियों तक छुपा हुआ था। कसीदे का प्रारम्भिक भाग तशबीव[1] कहलाता था जिसमें किसी एक विषय पर शेर कहे जाते थे। इसमें विषय का क्रमबद्ध वर्णन होता था। इसमें वसंतोत्सव, निसर्गवर्णन, मदिरालय आदि विषयों पर काल्पनिक कलात्मकता की निर्मिति की जाती है। यही कसीदे का प्रारम्भिक तशबीब ही फारसी काव्य में आकर ग़ज़ल का मूलाधार बना। उस समय ग़ज़ल का रूप ग़ज़ले मुसललिस था। तदोपरांत ग़ज़ल का प्रत्येक शेर मुतफरिद बना तो उसे ग़ज़ले गैर–मुसललिस कहने लगे। अरबी में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ ताना–बुनना होता है। ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति 'ग़ज़ल' से भी स्वीकारी जाती है। तम्दीह (आरम्भ या भूमिका) को फारसी कवियों ने इस अंश को ग़ज़ल के नाम से एक स्थायी काव्यरूप बना दिया। स्पष्ट है कि अरबी के अनुकरण से ग़ज़ल

*शोधार्थी, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर
**शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग, दयानंद गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

फारसी से उर्दू में आई, जो प्रेम को व्यक्त करने का स्थायी काव्य रूप बन गई।

ग़ज़ल अरबी काव्य विधाओं के माध्यम से ईरानी साहित्य में प्रवेश तो पा गई परन्तु धीरे–धीरे यह उन काव्य विधाओं के प्रभाव से मुक्त होकर एक स्वतंत्र काव्य–शैली के रूप में विकसित होने लगी। इस प्रकार, ईरानी कवियों द्वारा ग़ज़लें लिखी जाने लगीं। बेशक ग़ज़ल का प्रारम्भिक स्वरूप हुस्न–ओ–इश्क की दास्तान बयान करता रहा, जिसमें श्रृंगार रस का प्रभाव साफ महसूस किया जा सकता है क्योंकि ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ भी औरतों की बातें करना या उनसे बातें करना रहा है। इसलिए वह यौवन–प्रेम, श्रृंगार, तड़प, बिरह आदि की अभिव्यक्ति तक सीमित रही और धीरे–धीरे जब उसका विकास हुआ तो हुस्न–ओ–इश्क के साथ उसमें जीवन के अन्य पहलुओं को भी जगह मिलने लगी। ईरान में पहले तो शायरों ने अरबी कसीदे को फारसी के रंग में सजाकर पेश करना शुरु किया और धीरे–धीरे एक हिस्से तश्बीब को ग़ज़ल के रूप में विकसित किया। शायरों की एक महत्वपूर्ण देन ये रही कि उन्होंने ग़ज़ल में तसव्वुफ का रंग पैदा किया जो सूफीवाद का प्रमुख लक्षण जिससे ग़ज़ल में इश्क–ए–हकीकी का महत्व बढ़ गया और सूफी शायरों ने खुद को आशिक और खुद को माशूक मानकर ग़ज़ल को एक पवित्र और ऊँचे दर्जे की विधा के रूप में स्थापित कर दिया। ग़ज़ल के इसी सूफियाना रंग ने आगे चलकर हिन्दुस्तान में ग़ज़ल की परम्परा को जन्म दिया।

भारत में ग़ज़ल की शुरुआत ईरान की अपेक्षा देर से हुई। ईरान में जहाँ इसकी शुरुआत 9वीं, 10वीं शताब्दी में हो चुकी थी वहीं हिन्दुस्तान में 12वीं, 13वीं शताब्दी में ग़ज़ल कहने की शुरुआत हुई।[2] अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी और प्रसिद्ध शायर अमीर खुसरो ग़ज़ल मर्मज्ञ थे और ग़ज़ल लिखते भी थे। फारसी के साथ–साथ हिन्दुवी या हिन्दी में ग़ज़ल कहने का तजुर्बा अमीर खुसरो ने व उनके समकालीन कवियों ने किया। मसउद साउद सलमान के पश्चात् अमीर खुसरो और अमीर हसन देहलवी हुए। इन्होंने अरबी, फारसी कलाम के साथ–साथ शौकिया तौर पर हिन्दवी में कुछ कलाम कहें, जिसमें कुछ रचनाएं ग़ज़ल विधा की हैं।

अमीर खुसरो के समय भारत में ग़ज़ल की परम्परा शुरुआती दौर में थी; यह कहना अनुचित न होगा। पहले ज्यादा ग़ज़लें केवल मुशायरों में तरन्नुतुम के साथ पढ़ी जाती थी और वे मुशायरे अधिकांश बादशाहों, जागीरदारों, नवाबों, रईस के दरबारों में ही हुआ करते थे जहाँ साधारण जनता की पहुँच नहीं होती थी। इसके अतिरिक्त पहले स्वयं रचित ग़ज़लों का ही पाठ होता था। मध्यकाल में शायरी के साथ–साथ ग़ज़ल गायकी का भी विकास हुआ। यह गजलियों के दायरे से निकलकर आम जनता को आकर्षित करने में सफल हुई। ग़ज़ल के प्रचार–प्रसार में तवायफों ने भी महती भूमिका निभाई है।

ग़ज़ल एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा मानी गयी है। इसमें दो राय नहीं है। मिर्जा गालिब ने इसे अपनी अभिव्यक्ति का एक ताकतवर ज़रिया समझा और अपनी बात लोगों तक पहुँचा दी। इतना ही नहीं, महाकवि निराला ने भी ग़ज़ल विधा को अपनाया और अपनी बात कही। दुष्यंत कुमार ने तो ग़ज़ल को ही अपनी अभिव्यक्ति का खास माह माना है। पर सर्वप्रथम ग़ज़ल फारसी साहित्य की एक विधा के रूप में जानी गई। बाद में इसे उर्दू साहित्य ने अपना लिया। उर्दू में यह विधा इतनी महत्वपूर्ण बन गयी कि इसे उसकी आत्मा के रूप में स्वीकारा जाने लगा। उर्दू शायरों ने ग़ज़ल को मुख्यतः प्रेम विष की अभिव्यक्ति का ही माध्यम चुना किन्तु कतिपय शायरों ने इसे अपनी तकलीफ को व्यक्त करने का माध्यम भी बनाया। मिर्जा गालिब इसके प्रमाण हैं। आधुनिक युग में मीर और फैजल जैसे शायरों ने भी इस ओर प्रयास किया है। वास्तव में ग़ज़ल एक विशेष प्रकार की रचना है। उसके कुछ कायदे हैं। इन कायदों को तोड़ा नहीं जा सकता। अगर इनको तोड़ दिया तो वह काव्य 'ग़ज़ल' नहीं हैं। एक ही छन्द में, एक ही काफिया (यमक) और दी की दो–दो पंक्तियों के शेर कम–से–कम सात, नौ या उनसे ज्यादा काव्य पंक्तियों (शेरों) की रचना यानि ग़ज़ल।[3] ग़ज़ल का एक शेर ह्रदय में गहराई से उतरने का सामर्थ्य रखता है। ग़ज़ल हकीकत में जज़्बात का मुरक्का (संग्रह) है। उसका हर शेर किसी इन्सानी जज़्बे की तस्वीर है और इन्सान के जज़्बात अपनी नैरंगियों (जुनून) में शुमार की हद में निकल जाते हैं।

ग़ज़ल मुख्यतः श्रृंगारपरक गीत है। कालान्तर में उसमें वीर–करूणापरक गीतों की रचनाएं होने लगीं। इसकी शुरुआत रचना अत्यन्त मधुर होती है और विषय के किसी भी मार्मिक प्रसंग को चुनकर गीत लिखे जाते

हैं। ग़ज़ल का अपना एक विशिष्ट ढाँचा होता है जिसमें शब्द–रचना की प्रधानता रहती है और राग, ताल प्रायः गौण हुआ करते हैं। विशेषकर दीपचन्दी और पश्तो इसकी प्रकृति के लिए उपयुक्त है। ग़ज़ल विशेषकर मध्यलय में बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। ग़ज़ल की विषय–वस्तु के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से विचार किया जाय तो ग़ज़ल में शायद जिन्दगी का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जिस पर न लिखा गया हो। कहा जाता है कि ग़ज़ल इश्क की अभिव्यक्ति है परन्तु वास्तव में ग़ज़ल में इश्क के दोनों ही पहलू अर्थात् संयोग–वियोग के साथ इन्सान का ईश्वर के प्रति लगाव भी समाहित है। महबूब के प्रति इश्क (लौकिक प्रेम) को इश्के–मजाजी और ब्रह्मा के प्रति इश्क (ईश्वर के प्रति प्रेम) को इश्के–हकीकी कहा गया है। यद्यपि उर्दू ग़ज़लों में विषय–वस्तु की विस्तृता एवं भिन्नता का एक मुख्य कारण यह है कि इसे सभी प्रान्तों, सभी धर्मों और सभी मतों और भाषाओं को बोलने वाले विद्वानों ने अपने पूर्ण ज्ञान और अनुभव से सजाया–संवारा है एवं इसके उत्थान में योगदान दिया है। ग़ज़लों में कवि अपना दुःख–दर्द, हर्ष–उल्लास, ग्लानि–क्षोभ, प्रायश्चित, देश–काल, तथा परिस्थिति के प्रति आत्म दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।

ग़ज़ल गायकी में सांगीतिक तत्व

ग़ज़ल मूल रूप में गीतिकाव्य का ही स्वरूप है। ग़ज़ल के अरूज में होने वाले अरकान की बुनियाद भी लय पर है। ये अरकान अलग–अलग प्रकार की लय की सृष्टि करते हैं जिस पर कहे जाने वाले शेर पूरी तरह से लयबद्ध होते हैं। ग़ज़ल होने के लिए उसका गेय होना जरूरी है। इसलिए ग़ज़ल के शेरों में संगीतात्मकता उसकी जान है। सुगम संगीत की एक महत्वपूर्ण विधा ग़ज़ल हे। ग़ज़ल–गायकी शुरु से ही शास्त्रीय संगीत के नजदीक रही, इसलिए इसमें रागों का प्रभाव होना स्वाभाविक है। जैसे–जैसे ग़ज़ल गायकी का विकास होता गया, रागों की सम्भावना बढ़ती गयी और ग़ज़ल गायकी एक स्वतंत्र गायन–विधा के रूप में अपना अस्तित्व कायम करने में समर्थ हो गयी। इसलिए इसमें और रागों के लिए गुंजाइश भी बढ़ती गई। बेगम अख्तर और मेंहदी हसन जैसे ग़ज़ल पुरोधाओं ने अनेक रागों को ग़ज़ल गायकी से परिचित कराया।

ग़ज़ल गायकी में रागों के प्रयोगार्थ–सम्बन्धी वक्तव्य प्रेम भण्डारी ने दिया है कि ग़ज़ल गायन–शैली में स्वातन्त्र्योत्तर काल से पूर्व तथा बाद में हिन्दोस्तानी शास्त्रीय संगीत के रागों का प्रयोग ग़ज़ल गायकों ने प्रचुर मात्रा में किया है। ग़ज़ल गायकों ने ग़ज़लों की सांगीतिक बंदिशें अधिकतर किसी–न–किसी राग को आधार मानकर ही तैयार की हैं। वैसे तो ग़ज़ल की बन्दिश के लिए रागों के चयन में किसी भी प्रकार की सीमा नहीं होती, फिर भी कुछ रागों का ग़ज़ल गायकी में अर्थात् ग़ज़ल की बन्दिशों में अधिकतर प्रयोग किया जाता है। प्रेम भण्डारी ने ग़ज़ल गायन में प्रयोग होने वाले रागों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् है[4]– भूपाली, यमन, देश, पहाड़ी, पीलू, सारंग, झिंझोटी, पटदीप, खमाज, काफी, बिलावल, गौडमल्हार, भीमपलासी, शिवरंजनी, पूरिया धनाश्री, तोड़ी, ललित, दरबारी, भैरवी, अहीर भैरव, बसंत।

मेंहदी हसन की अनेक ग़ज़लों में राग अपने मूल स्वरूप में अभिव्यक्त होते नजर आ जाते हैं–

> ‘शोला–सा जल बुझा हूँ, राग कीरवानी, शायर अहमद फराज
>
> ‘कू–ब–कू फैल गई बात शनासाई की’, राग दरबारी, शायर परवीन शाहिद
>
> ‘अब के हम बिछुड़े तो शायद कभी ख्वाबों में मिलें’, राग विभास, शायर अहमद फराज
>
> ‘मोहब्बत करने वाले कम न होंगे’, राग खमाज, शायर हफीज होशियारपुरी

मेंहदी हसन के अलावा दूसरे ग़ज़ल गायकों ने भी रागाधारित ग़ज़ल गायकी को पेश किया है जिनमें जगजीत सिंह का नाम महत्वपूर्ण है। इसके अलावा गुलाम अली, फरीदा खानम, चन्दनदास, अनूप जलोटा, ए. हरिहरन, मोहम्मद हुसैन, अहमद हुसैन आदि अन्य समकालीन कलाकारों ने अपनी ग़ज़ल गायकी में राग के स्वरूप में कुछ स्वतंत्रता भी ली है।

‘‘वर्तमान समय के ग़ज़ल गायक अपनी बन्दिशों’ को रागों के आधार पर ढालते हैं और प्रस्तुत भी करते हैं परन्तु शुद्ध रागों के आरोही–अवरोही क्रम में व्यतिरेक उत्पन्न कर राग के मूल स्वरूप से दूर हटने की चेष्टा भी करते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदा–कदा सम्बन्धित राग के वर्जित स्वरों का बखूबी प्रयोग कर प्रस्तुति में चंचलता, गम्भीरता, माधुर्य, ओज इत्यादि स्वातन्त्र्योत्तर ग़ज़ल गायकों द्वारा किया जाता है। अनेक

ग़ज़ल गायक अपनी ग़ज़ल गायकी के दौरान कई बार दूसरे राग की छाया भी दिखाते हैं, कुछ देर के लिए मूल राग से हटकर दूसरे राग का वातावरण बना देते हैं और फिर मूल राग में वापस आ जाते हैं। शास्त्रीय संगीत में यह प्रक्रिया आर्विभाव–तिरोभाव के रूप में प्रचलित है। कई बार ग़ज़ल में प्रयुक्त शेर की जरूरत के मुताबिक ऐसा प्रयोग उनकी गायकी को और प्रभावशाली और ग़ज़ल की धुन को अधिक आकर्षक बना देता है।

कई सुप्रसिद्ध ग़ज़ल गायकों ने अपनी ग़ज़ल की धुनों में हिन्दुस्तानी रागों का बखूबी प्रयोग किया है कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं[5]–

मिलकर जुदा हुए तो न सोया करेंगे हम
इक दूसरे की याद में रोया करेंगे हम
(गायक – जगजीत सिंह, चित्रा सिंह, शायर – कतील शिफाई, राग– तोड़ी)

हंगामा है क्यूँ बरपा थोड़ी–सी जो पी ली है,
डाका तो नहीं डाला चोरी तो नहीं की है
(गायक – गुलाम अली, शायर – रिफअत सुल्तान, राग– दरबारी)

खुदा का जिक्र करें या तुम्हारी बात करें
हमें तो इश्क से मतलब, किसी की बात करें
(गायक – चन्दन दास, शायर – इब्राहिम अश्क, राग– कल्याण)

वो इश्क जो हमसे रूठ गया, फिर उसका हाल सुनाएं क्या
कोई मेहर नहीं कोई कहर नहीं, फिर सच्चा शेर सुनाएं क्या
(गायिका – फरीदा खानम, शायर – अथर नफीस, राग– भैरवी)

इन्शा जी उठो अब कूच करो
इस शहर में जी को लगाना क्या।
(गायक – उस्ताद अमानत अली खाँ, शायर – इब्ने इंशा, राग– भैरवी)

चुपके–चुपके रात–दिन आंसू बहाना याद है,
हमको अपनी आशिकी का तो जमाना याद है।
(गायक – गुलाम अली, शायर – हसरत मोहानी, राग– काफी)

ऐ मोहब्बत तेरे अंजाम पे रोना आया
जाने क्यूं आज तेरे नाम पे रोना आया
(गायिका – बेगम अख्तर, शायर – शकील बदायुंनी, राग– दरबारी)

शोला हूं भड़कने की नुमाइश नहीं करता
सच मुँह से निकल जाता है कोशिश नहीं करता
(गायक – जगजीत सिंह, शायर – मुज्जफर वारसी, राग– कल्याण)

ग़ज़ल संगीत की गीत गायन–शैली की अपेक्षा अधिक गम्भीर कही जा सकती है और इसमें गीत की अपेक्षा स्वर–विस्तार की भी अधिक सम्भावना होती है और ग़ज़ल में उन सभी तालों का प्रयोग भी अधिक होता है जो गीत में इस्तेमाल होते हैं। ग़ज़ल की बहरें इस बात का इशारा खुद–ब–खुद कर देती हैं कि उनमें कौन–सा ताल प्रयोग होगा। ग़ज़ल का छन्द जिसे बहर कहते हैं वह किसी न किसी ताल का संकेत देता है। सरल और छोटी तालों का प्रयोग होने के कारण भी ग़ज़ल गायकी साधारण श्रोताओं भी अधिक प्रभावित करती है।

ग़ज़ल गायकी में ताल ठेकों का विविधता के साथ प्रयोग हो रहा हैं। ग़ज़ल शैली में मुख्य रूप से ताल वाद्य के सन्दर्भ में तबला ही संगति का माध्यम रहा है। ग़ज़ल गायन में मुख्य रूप से जिन तालों का प्रयोग होता है, वह निम्नवत् है–

ताल का नाम	मात्रा
कहरवा	8
दादरा	6
रूपक	7
झपताल	10
दीपचन्दी	14
पंजाबी	16
कव्वाली	8

स्वतंत्रता से पूर्व की ग़ज़ल गायकी में स्थायी और अन्तरा की प्रस्तुति में ताल के मूल ठेका का ही प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। स्थाई या अन्तरा के समाप्त होने पर बीच के अन्तर में उसी ताल की दुगुन या चौगुन में कुछ

लग्गियाँ तथा लड़ियाँ बजाई जाती थीं, इसके पश्चात् एक सुन्दर–सी तिहाई मुखड़ा लेकर फिर से वही मूल ठेका बजाया जाता था। इस प्रकार की पुनरावृत्ति हर अन्तरा के बाद होती थी। ग़ज़ल–गायन के साथ तबला की इस प्रकार की संगत स्वतंत्रता से पूर्व की ग़ज़ल गायकी में सुनने को मिलती है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के ग़ज़ल गायन में ग़ज़लों की सांगीतिक बंदिशों में उनके वजन के अनुसार मूल ठेका के बोलों में परिवर्तन कर ताल ठेकों के नये रूप प्रयोग किये जाने लगे। आजकल ग़ज़ल गायक ताल को भी उतना ही महत्व देते हैं जितना गायन को। स्थाई और अन्तरा के मध्य के अन्तराल में लग्गी–लड़ियों का प्रयोग करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन ग़ज़ल गायन में ताल वाद्य के सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि एक ही ग़ज़ल की सांगीतिक प्रस्तुति में कई बार तीन तबलों को तीन स्वरों पर मिलाकर बारी–बारी से बजाया जाता है जिससे तबला अलग–अलग ध्वनियाँ निकलती हैं जो स्वर–संवाद के अनुसार बहत ही कर्णप्रिय होती हैं। तबला–वादन के इस तरीके में तबला को तार सप्तक, षड़ज, मध्यम अथवा पंचम और मध्यम, सप्तक के मध्यम अथवा पंचम स्वर पर मिलाया जाता है–

ग़ज़ल गायकी में प्रयुक्त मुख्य वाद्य

स्वतंत्रतापूर्व ग़ज़ल गायकी में गिने–चुने ही वाद्यों का प्रयोग सहायक साजों के रूप में होता था जिनमें हारमोनियम, सारंगी और तबला प्रमुख थे, परन्तु स्वतंत्रता के बाद निरन्तर संगत वाद्यों की वृद्धि होने लगी। फलस्वरूप ग़ज़ल गायकी की संगति में कई देशी–विदेशी साजों का प्रयोग होने लगा।

वर्तमान समय में ग़ज़ल गायकी में प्रयुक्त वाद्य इस प्रकार है– हारमोनियम, सारंगी, वायलिन, स्वरमण्डल, दिलरूबा, सितार, गिटार, स्पेनिश गिटार, बांसुरी, क्लारेनेट, संतूर, सिन्थेसाइजर, सरोद, तबला, मोरोकस, ढोलक, बोंगो–कोंगो। विविध वाद्य–यंत्रों के प्रयोग से ग़ज़ल गायकी के प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने व इसको लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ग़ज़ल की सांगीतिक बंदिश अमूमन किसी–न–किसी राग पर ही बनायी होती है। जब किसी गायक–गायिका उस ग़ज़ल को पेश करते हैं तो सुनने वालों को उस राग का नाम भी बताते हैं और थोड़ा आलाप भी करते हैं और इसी वजह से सुनने वाले उस राग के नाम के साथ–साथ उस राग का चलन भी समझने लगते हैं और उस राग की खूबियों के साथ–साथ उस राग की पहचान भी उन्हें होने लगती है और इन सबके बावजूद इन खूबियों की वजह से वो उस राग को गहराई से सुनने की इच्छा भी करने लगते हैं।

इस तरह हिन्दुस्तानी संगीत के रागों का ताउरूफ़, ग़ज़ल गायक, गायिकाएं आम लोगों को अपनी ग़ज़ल गायकी के जरिये आये दिन करवा रहे हैं और उनमें शास्त्रीय संगीत के लिए रूचि भी पैदा कर रहे हैं। कई ग़ज़ल सुनने वाले मेंहदी हसन की गाई ग़ज़ल ''रंजिश ही सही दिल ही दुखाने के लिए आ'' सुनते ही यमन राग का नाम बता देते हैं और यमन राग कैसा होता है– इसकी पहचान उन्हें आसानी से हो जाती हैं। इसी तरह ''ज़िन्दगी में तो सभी प्यार किया करते हैं'' सुनकर भीमपलासी राग को पहचान लेते हैं। ''हमें कोई ग़म नहीं था ग़म ए आशिक़ी से पहले'' सुनकर अहीर भैरव राग को पहचान लेते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि ग़ज़लें शुद्ध भावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। उनमें अनुभूति की आवेशमयी तीव्रता के दर्शन होते हैं जो भाव–सम्प्रेषणीयता को खोए बिना ही मूल आवेग की शक्ति के साथ प्रस्तुत की जाती है और प्रबुद्ध पाठकों को प्रभावित भी करती हैं। यद्यपि ग़ज़ल काव्यात्मक स्वभाव की बेचैन अभिव्यक्ति है जो मन से मन की गति का बोध कराती है। इसमें सबसे तेज गति सौन्दर्य की मानी गयी है। सौन्दर्य में बिम्बात्मकता, अलंकारिता, स्वभावोक्तिता होती है। भाव और रूप का सुन्दर सामंजस्य ग़ज़ल को आकर्षण प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :

1. बेचैन, डॉ. कुँअर, (2021). ग़ज़ल का व्याकरण. नई दिल्ली : अमन प्रकाशन, पृ0 39–40.
2. शास्त्री, प्रो. ईना (2018). संगीत प्रवाह. निवाई राजस्थान : नवजीवन पब्लिकेशन, पृ0 139
3. वाईकर, डॉ. विनय (2011). ग़ज़ल दर्पण. नागपुर : श्री मंगेश प्रकाशन, पृ0 8
4. भण्डारी, डॉ. प्रेम (2020). ग़ज़ल और ग़ज़ल गायकी. जोधपुर : राजस्थानी ग्रंथागार, पृ0 121
5. वही, पृ0 122–129

ग़ज़ल–शैली पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का प्रभाव

डॉ॰ शुचिस्मिता शर्मा ** **अरुण** *

शोध–आलेख सार

भारतीय संगीत में ग़ज़ल शैली की लोकप्रियता सभी गायन विधाओं में सर्वाधिक है। ग़ज़ल की उत्पत्ति 7वीं शताब्दी में अरब में हुई थी जो 12वीं शताब्दी में सूफी संतों और भारत में मुगलों के आगमन के साथ भारत में फैली । समय के साथ–साथ हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का प्रभाव ग़ज़ल पर पड़ा । जिस कारण यह गायन शैली और भी अलंकृत हो गई । शास्त्रीय संगीत से हमारा अभिप्राय ऐसे रूप से है जो कुछ नियमों और विनियमों से बंधा हुआ है, जिसका गायन या अभ्यास करने के विशेष सिद्धांत हैं और दूसरी तरफ ग़ज़ल गायन शैली की विशेषता सुगम संगीत है जो सरल व भावयुक्त होने के कारण आम जनता को अधिक उत्साह के साथ आकर्षित करती है परंतु ग़ज़ल शैली पर शास्त्रीय संगीत का गहरा प्रभाव पड़ा है। शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले सभी अंग, जैसे– राग, अलंकार, आलाप, वर्ण, ताल आदि के संयोग से ग़ज़ल गायन और भी उत्कृष्ट बन जाता है ।

यह शोध पत्र हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के सभी भागों पर चर्चा करेगा जिनका प्रभाव ग़ज़ल गायन–शैली पर पड़ा । समय के बदलते रूप के साथ ग़ज़ल गायन–शैली में शास्त्रीय प्रभाव के कारण नवीनता आती रही ।

मुख्य शब्द : *शास्त्रीय संगीत, ग़ज़ल, सूफी, गायन, राग, ताल*

प्रविधि : *मूल्यांकन शोध प्रविधि को अपनाते हुए इस शोध विषय का चयन किया गया है।*

भूमिका

हिन्दुस्तानी संगीत की सभी गायन–विधाओं में ग़ज़ल गायन–शैली की अपनी ही लोकप्रियता है। हिन्दुस्तानी संगीत की जितनी भी गायन शैलियां है उनमें ग़ज़ल–गायन शैली ही हर दौर, वर्ग और हर धर्म के मानने वालों में सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है। समाज का हर वर्ग चाहे वह आम श्रोता हो या कलाओं को समझने वाला। ग़ज़ल गायन को बड़े चाव से सुनता है। ग़ज़ल उर्दू साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा मानी जाती है। इसकी लोकप्रियता उर्दू भाषा में ही नहीं, अपितु भारत की दूसरी अन्य जुबानों में भी ग़ज़ल लिखी व गायी जाती है। अब ग़ज़लें पंजाबी, मराठी, गुजराती अन्य जुबानों में भी लिखी जाती हैं।

ग़ज़ल गायन–शैली पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है क्योंकि ग़ज़ल को शास्त्रीय संगीतज्ञों ने भी गाया है जिससे ग़ज़ल में शास्त्रीय संगीत का प्रभाव आया। ग़ज़ल गायन–शैली पर शास्त्रीय संगीत की राग–परम्परा का विशेष प्रभाव पड़ा। ग़ज़ल गायक व रचनाकार को शास्त्रीय संगीत का भी ज्ञान होता है जिससे वह भिन्न ग़ज़लों में भाव के अनुसार राग का प्रयोग कर ग़ज़ल की रचना करता है। ग़ज़ल गायन शैली पर शास्त्रीय व उपशास्त्रीय गायन शैलियों का प्रभाव भी स्पष्ट नजर आता है, विशेषकर ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली इत्यादि। पुरानी ग़ज़ल गायकी में ठुमरी अंग का प्रयोग किया जाता था।

ग़ज़ल की परिभाषा

हिन्दी साहित्य कोष (भाग–1) में ग़ज़ल के विषय में लिखा है, 'ग़ज़ल में प्रेम भावनाओं का चित्रण मिलता है। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है नारियों से प्रेम की बातें करना ।'[1] डॉ॰ नरेश के अनुसार, "ग़ज़ल काफिया, रदीफ के बंधन में रहकर एक लय खण्ड में रचे गए विभिन्न शेरों की माला होती है जिसका पहला मनका "मतला" और अंतिम मनका "मकता" होता है।"[2] ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए डॉ॰ कुअर बेचैन लिखते है, ग़ज़ल रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है।

---

*शोधार्थी, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
**शोध निर्देशिका, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

ग़ज़ल घने अंधकार में टहलती हुई चिंगारी है। ग़ज़ल नींद से पहले का सपना है। ग़ज़ल जागरण के बाद का उल्लास है। ग़ज़ल गुलाबी पँखुरी के मंच पर बैठी खुशबू का मौन स्पर्श है।[3]

भारतीय संगीत का आरंभ वैदिक काल से माना जाता है। इस बात से भी सभी परिचित है ''कि भारतीय संगीत हिंदू–मुस्लिम संस्कृतियों का श्रेष्ठ समन्वय है। चाहे कंठ संगीत, वाद्य संगीत हो अथवा नृत्य संगीत हो, दोनों संस्कृतियों का मेल–जोल स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

ग़ज़ल गायन–शैली के प्रसार में सूफियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। ग़ज़ल के द्वारा सूफी संतों ने विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। ग़ज़ल में ईश्वरीय प्रेम का समावेश करते हुए उसे सांगीतिक स्वरूप में प्रस्तुत कर सूफियों ने लोगों में प्रेम तथा दया के भाव को फैलाया। "सूफी संतों ने अपने प्रार्थना संगीत के लिए फारस के ग़ज़ल संगीत को अपनाया तथा उसे भारतीय संगीत के रागों और तालों में ढाल कर प्रस्तुत किया। भारतीय संगीत में ग़ज़ल गायन–शैली को प्रचार में लाने का बहुत बड़ा श्रेय इन्हीं सूफी संतों को जाता है।[4]

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का ग़ज़ल पर प्रभाव

'संगीत दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित (सन् 1625 ई॰) के मतानुसार संगीत की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई । अपने मत की पुष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है–

द्रहिणेत यदन्विष्ट प्रयुक्त भरतेन च।
महादेवस्य प्ररतस्तन्मार्गारत्य विमुक्तदम्।।

अर्थात् ब्रह्मा (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरत मुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है यह "मार्गी संगीत" कहलाता है।[5] हिन्दुस्तानी संगीत कला मुख्य रूप से तीन शाखाओं में बंट कर विकसित हुई– (1) गायन (2) वादन (3) नृत्य। गायन विधा में भी कई अलग–अलग शैलियां विकसित हुई हैं। ये शैलियां निम्नानुसार हैं– ध्रुवपद, धमार, ख्याल, दादरा, ठुमरी, टप्पा, कव्वाली, ग़ज़ल। हिन्दुस्तानी संगीत की ये भिन्न शैलियां देखने और सुनने में तो भिन्न प्रतीत होती है परंतु गौर देने पर पता चलता है कि ये सभी शैलियां एक–दूसरे से पूरी तरह प्रभावित हैं। गज़ल भी इनके प्रभाव से मुक्त नहीं है।

वर्ण प्रयोग

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में वर्ण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्णों की संख्या संगीत में चार है– स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी। ग़ज़ल गायन–शैली में सांगीतिक प्रस्तुति के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत के वर्ण के चारों प्रकारों का प्रयोग विद्यमान रहता है। इसलिए मानना पड़ेगा कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के वर्ण तत्व का प्रभाव ग़ज़ल गायन–शैली पर पड़ता है।

रागों का प्रयोग

ग़ज़ल गायन–शैली की विशेषता यह भी है कि हमारे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत परम्परा से उसने अपने आपको समृद्ध किया है। पूर्व में जिन रागों में ठुमरी गायी जाती थी। उन्हीं रागों में ग़ज़ल गायी जाती थी परंतु आधुनिक ग़ज़लों की रचना में अनेक रागों का प्रयोग होने लगा है, जैसे– भैरवी, किरवाणी, दरबारी, यमन, अहीर भैरव, काफी, मियां की तोड़ी, बागेश्री, ललित, झिंझोटी, चारूकेशी, भूपेश्वरी इत्यादि। कई अन्य रागों में भी ग़ज़लों की सांगीतिक रचना होने लगी हैं। जिन श्रोताओं को शास्त्रीय संगीत में गहरी रूचि नहीं होती, ग़ज़ल गायन शैली के माध्यम से राग–परम्परा के संस्कार भी उन्हें मिल जाते हैं। ग़ज़ल की धुन बनाते समय गायक या संगीतकार ग़ज़ल के शब्दों के भावों के अनुरूप ही राग का चयन करते हुए आवश्यकतानुसार अन्य राग की छाया डालते हुए धुन बनाता है।[6] जैसे–

कोई पास आया सवेरे–सवेरे।
मुझे आजमाया सवेरे–सवेरे।।[7]

(राग–ललित, गायक–जगजीत सिंह, शायर–सईद राही)

गुलों में रंग भरे बाद–ए–नौबहार चले।
चले भी आओ के गुलशन का कारोबार चले।।[8]

(राग–झिंझोटी, गायक–मेहंदी हसन, शायर–फ़ैज अहमद फ़ैज)

ग़ज़लों को मिश्रित रागों में भी बनाया जाता है। ग़ज़लों में भी शास्त्रीय संगीत की तरह वादी–संवादी स्वर तत्वों का प्रयोग ग़ज़ल गायकी में होता है। इसी प्रकार, ग़ज़ल गायन–शैली में रागों का प्रयोग हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की तरह होता है।

अलंकारों का प्रयोग

ग़ज़ल गायन–शैली में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की तरह ही अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। ग़ज़ल

गायन की सांगीतिक प्रस्तुति के समय इन आंतरिक तत्वों में मुख्यतः गमक, आन्दोलन, मींड, कण, तान, खटका, मुर्की आदि के प्रयोग से ग़ज़ल गायन की सुदंरता और भी बढ़ जाती है।

आलाप का प्रयोग

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की तरह ही ग़ज़ल गायन में भी आलाप का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान सभी ग़ज़ल कलाकार शास्त्रीय संगीत के इस तत्व का बखूबी इस्तेमाल करते हैं। आलाप का प्रयोग ग़ज़ल गायन में स्थाई गाने से पहले तथा अन्तरा के पहले मिसरे के साथ किया जाता है। आलापों के द्वारा ग़ज़ल गायक शब्दों में निहित भावों को उजागर करने का प्रयास करते हैं। ग़ज़ल गायक आलापों का प्रदर्शन शब्दों का आधार लेकर करते हैं जिससे ग़ज़ल गायकी की चमक कई गुणा बढ़ जाती है।

ताल प्रयोग

ग़ज़ल गायन–शैली में तालों का प्रयोग भी बेहद महत्त्व रखता है। पुरानी ग़ज़लों में ताल के ठेकों का प्रयोग सीधे–सीधे ढंग से होता था परंतु आज तालों के ढेकों का प्रयोग धुन की जरूरत के मुताबिक होने लगे हैं। ताल के बदले हुए ठेके आधुनिक ग़ज़लों में सुनने को खूब मिल जाते हैं। ग़ज़लों में प्रायः दादरा, कहरवा, रूपक, खेमटा, दीपचंदी, झपताल आदि तालों का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र में गुलाम अली, जगजीत सिंह, हरिहरण का विशेष योगदान है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में इन तालों के बदले हुए ठेकों का खूब इस्तेमाल किया है, जैसे–

"फासले ऐसे भी होंगे ये कभी सोचा न था।
सामने बैठा था मेरे और वो मेरा न था।[9]

(गायक–गुलाम अली ताल : रूपक)

ताल रूपक के प्रकार :

1	2	3	4	5	6	7		
तिं	तिं	ना	धिंधिं	नाना	धिंधिं	नाना	–	पहला प्रकार
तिं	तिंना	त्रक	धिं	नाना	धिं	नाना	–	दूसरा प्रकार
तिना	नातिं	नाना	धिंधिं	नाना	धिंधिं	नाना	–	तीसरा प्रकार
0			2		3			

निष्कर्ष :

ग़ज़ल गायन–शैली के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत के तत्वों के प्रयोग देखें तो ग़ज़ल गायन में रागदारी के शास्त्रोक्त बंधन में पूर्ण रूप से नहीं बंधने के बावजूद भी वादी–संवादी आदि स्वरों तथा रागों के प्रयोग को पूर्ण तरीके से निभाते हैं। अतः स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का ग़ज़ल गायन–शैली पर प्रभाव पड़ा है। सूक्ष्म विवेचन किया जाये तो ज्ञात होगा कि ग़ज़ल गायन–शैली हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की भिन्न–भिन्न शैलियों चाहे शास्त्रीय शैली हो या उपशास्त्रीय, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, कव्वाली आदि से प्रभावित है तथा आपस में कहीं–न–कहीं एक–दूसरे से जुड़ी हुई है।

सन्दर्भ सूची :

1. खराटे, डॉ॰ मधु, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़ले, विद्या प्रकाशन, 2021, पृ॰ 20
2. नरेश, (डॉ॰), हिंदी ग़ज़ल दिशा और दशा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2004, पृ॰ 12
3. बेचैन, डॉ॰ कुंवर, महावर इन्तजारों का, पंगति प्रकाशन, गाजियाबाद, 1983, पृ॰ 72
4. परांजपे, डॉ॰ श॰ श्रीधर, ग़ज़ल अंक (संगीत), सन् 1997, पृ॰ 8
5. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, वसंत संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, 2013, पृ॰ 12
6. भण्डारी, डॉ॰ प्रेम, हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी, 1995, पृ॰ 85
7. Paas Aye Sawere Sawere' Youtube, uploaded by Jagjit Singh, 2018, http://youtube/FDIRSO/BESW?si=dsG4Eci3x11-vwsx
8. Gulon Mein Rang Bhare-Mehndi Hassan- Top Ghazal/Songs, Youtube uploaded by Shemaroo, 2014, http://youtube/akwCwDP10y8
9. Fasle Aese Bhi Honge Yeh Kabhi Socha Na Tha, Ghazal, Youtube, uploaded by Ghulam Ali-Topic, 2014 http://youtube/ygFlvnOckq8.

Naarada – A Bridge between devotion and music

Voleti Chandrika Sailaja*

Abstract

Sage Narada is termed as Bhagavad Vibhuti (A personification of devotion towards God). He is not a historical person or a character in mythological stories. Narada born out of the mind / soul of Brahma always enjoys the bliss and is a prime person among Gandharvas.

"Thatho Ha Ha Hoo Hoo Scha Naradastumburu Statha
Upa Gayitu Maarabcha Gandharva Kushalaaravin
Shadja Madhyama Gandhara Grama Traya Visradah"

ततो हाहा हूहूश्च नारदस्तुंबुरुस्तथा।
उपगायितु मारब्धा गांधर्व कुशलाराविन्।
षड्ज मध्यम गांधार ग्राम त्रय विशारदाः।।

According to Markandeya Purana, "Sage Narada and Sage Tumbura are the beginners of Gandharva gana (mellifluous singing). These two are experts in all the three gramas such as Shadja, Madhyama and Gandhara". Devotion is a supernatural thing. Everyone in this world knew the fact that it is impossible to define what it is. However, Sage Narada had defined the term "devotion" with all his experience and spelled that experience through a dialogue for the benefit of this world. He preached the principle of different ways devotion by playing his veena called Mahati which had 100 strings, with a heart full of devotion for the benefit of the world. Sage Narada, who is said to be always travelling in all the three "Lokas" – Bhu Loka, Swarga Loka (Voordhva Loka) and Patala Loka (Adho Loka) had become the bridge between music and devotion. In the Vedas, Samaveda is the basis of music. This is also called Marga (way) and Gandharva (Mellifluous). There are two great texts (Granthas) that defined the characteristics of music called Naradeeya Shiksha and Narada Makaranthamu. These two texts are reportedly written by Sage Narada and are very ancient musical granthas. A musician called Narada of the 11th Century is said to be the incarnation of Sage Narada and had written the Naradeeya Shiksha. Lord Vishnu gets thrilled with the singing of Sage Narada and with his singing Sage Narada blooms the devotion and made the three lokas enjoy and learn what is devotion. Hence, Narada Vibhuti (the melodious singing of Narada) is the bridge between music and devotion.

Key words: *Sage Narada, Nama Sankeertanam, Vaidika Ganam, Loukika Ganam, Naradopasti Mantram*

Methodology : *This article is related to qualitative and ethnographic studies and this belongs to historical and descriptive research. Data collection method used in the study is by survey of related literature.*

Study area : *Bhakti and music aspects in carnatic music*

Purpose of research paper *– ganam is an instrument to practice Bhakti. The study is about the relation between two variables ganam and bhakti.*

The Concept

Kalau Naama Sankeertanam – In Kaliyuga the major instrument for devotion is Sankeertanam (glorification). Devotional singing with music as an instrument is the only way to glorify God to attain salvation. This was

*Music Teacher & Research Scholor, Sri Padmavati Mahila University, Tirupati

clearly stated by Sage Narada in his Bhakti Sutras (principles of devotion) as - Tasya Saadhanaani Gayantyaacharyaah (तस्याःसाधनानि गायंत्याचार्याः) 34th Narada Bhakti Sutra), Avyaavrita Bhajanaath (अव्यावृत भजनात्, 36th Narada Bhakti Sutra), Lokepi Bhagavadguna Sravana – keertanaath (लोकेऽपि भगवद्गुण श्रवण कीर्तनात्, 37th Narada Bhakti Sutra)

The origin of meaning (Vyutpatti) for Bhakti is – Bhaja Sevaayaam. Bhajana means singing the qualities of the Lord. One Ahobala praised Sage Narada in his Grantha named "Sangeeta Parijatam", that Narada is always immersed in an eternal bliss and gets drenched and interested in his Veena Music. The sloka will be as follows:

"*Aihikaa Mushmikaa Tyaktvaa Devarshi Rnaradaah Sadaa*
Brahmaanandopi Veenaayaam Vadaneni Yati Bhavet"

ऐहिका मुष्मिकांस्त्यक्त्वा देवर्षिर्नारदः सदा।
ब्रह्मानन्दोऽपि वीणायां वादने नियति भवेत्।।

The bridge between the Vedic singing and the mortal singing is "Naradeeya Siksha", a text. In this grantha it was explained that to praise the Lord, singing is an instrument. That truth is explained in the following sloka:

"Naaham *Vasaami Vaikunte, Na Yogi Hridaye Ravou Madbhaktaa Yatra* Gaayanti *Tatra Tishtami Naaradaa*!"

नाहं वसामि वैकुण्ठे, न योगि हृदये रवौ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

Lord Vishnu told Sage Narada that "Neither I stay in Vaikunta, nor in the hearts of Yogis. However, I keep sitting near the devotees who sing in praise of me." Sage Valmiki, took the word of Narada and learnt the complete Rama's history and took Rama Deeksha and written a great epic like Ramayana. The same epic was sung by Lava and Kusa in Rama's court by playing Veena at the same time. Several great devotees like Prahlada and Dhruva got the initiation of devotion from Sage Narada. When the achiever/accomplisher (Sadhaka) falls in the dark and lose his/her wisdom, Sage Narada advises him/her and bring them from dark to light. They later know what and where is God and later their story become an epic. In fact, it is Lord Vishnu who takes the incarnation as Sage Narada and exhorts the people in the whole world what is Bhakti, and who is God and keeps spreading the devotion. The basic purpose of this essay is to prove the truth that Sage Narada's devotion is the bridge between devotion and music.

Objectives: Sage Narada's incarnation and explanation

The way Sadguru Tyagaraja Swami praised Sage Narada in a total bliss in the form of *Narada Pancharatnas*, after getting the appearance of Sage Narada, who presented Tyagaraja two great boons like *Swararnavam* and *Varanaradeeyam*, after the latter impressed sage Narada with *Naradopasti* and gets the *Mantropasana Siddhi*.

Narada Maharshi:

The meaning of the word Narada is "The one who gives the knowledge about the Almighty (Paramatma). The word has a derivative like this: "*Naram Dadati Iti Naradah*" (नारं ददाति इति नारदः). Naram means knowledge. So the one who gives us the knowledge is Narada. Here knowledge means the philosophical knowledge.

We can find the mention of Sage Narada in different puranas (epics). A special purana is also there in the name of Sage Narada as "Brihannaradiya Puranam". Again there is a mention of Narada's name in Markandeya Puranam and Vishnu Puranam. In Rig Veda he was said to be "Kanva Gotrika", in Markandeya Purana he was said to be a beginner of

Gandharva Kausalam, in Ramayana, there is a mention of discussion between Narada and Valmiki, in Mahabharata, Narada has been mentioned as the maternal uncle to a Gandharva named Parvata.

He is the Guru for several Bhagavatas (staunch devotees of Lord Vishnu) who taught the devotional path (Bhakti Marga). In Rigveda also there is a mention about Narada. Manusmriti explains that Narada is the soul son of Brahma, Brahma manasa Putra. In this present Kalpa of Prakruta Brahman, Lord Maha Vishnu had 21 incarnations and the third incarnation is Sage Narada. Several epics narrate that Narada was first born as a son to a servant (house maid) but he served several great people and later took birth as Sage Narada. Several other Bhagavata stories clarify that when the achievers (Sadhakas) suffer from illusion, Narada comes to their rescue and teaches them the correct way and then God comes to their mind. This was revealed in various stories belongs to Bhagavatas. However, there are many worldly stories which claim that he is Kalaha Bhojana / Poru Tindi (a person who satisfies by creating rivalry between two individuals). However, when we look deep in the epics, all those rivalries proved that are truly helpful to the entire world.

Narada is the initiator of expert singing (Gandharva Kausalam) and teacher of devotional principles (Bhakti Sutras):

Holding a Veena named Mahati, Narada always sings the knowledge of God, and moves around all the three lokas. Sage Narada is the guru who always preaches the devotional path.

Mahati and its characteristics:

In a book titled *Kohaleeyam* there is a description about Sage Narada's Veena called Mahati. After Sage Bharata (Bharata Muni), another famous and best dance master is Kohaludu. He had written a book titled *Kohaleeyam.* As per that book Sage Narada's veena is similar to the 'Indian harp' of modern times.

Description of Narada's Mahati Veena:

Dandam Vamsamayam kaantam vartulam tumba yugmakam
Navamushti swarasthaanam chatra yatnena karayet
Tasmin Dande sapta sankhya motaneem sanniveshayet
Dakshine vinyeset anyat kshudra tantree dvayam kramaat
Vriksha vajramayee kaaryaa motanee danda vajrikaa
Taavacha bhramayet purvaam motaneencha shanaih schanaih
Asya stvashtadasa proktah sarikaah poorva suribhih
Yetastu taraa vadinyah tishtante padikopari
Madanasya chasthiksyacha yogena sudrudeekritah
Mahatyanama veenayaa yetallakshana muchyate

दंडं वंशमयं कांतं वर्तुलं तुंब युग्मकं
नवमुष्टि स्वरस्थानं चात्र यत्नेन कारयेत्
तस्मिन् दंडे सप्तसंख्या मोटनीं सन्निवेशयत्
दक्षिणे विन्येसेत् अन्यत् क्षुद्र तन्त्री द्वयं क्रमात्
वृक्ष वज्रमयी कार्या मोटनी च शनैः शनैः
अस्यास्त्वष्टादश प्रोक्ताः सारिकाः पूर्व सूरिभिः
एतस्तु तारा वादिन्यः तिष्ठन्ते पदि कोपरि
मदनस्य चास्थिकस्य च योगेन सुदृढीकृताः
महत्या नाम वीणया यतल्लक्षण मुच्यते।।

The dandamu of Mahati is made of bamboo and it had a polished coat. Two round shaped bottle gourd heads are fixed in both sides of that dandamu. There will be string steps for swara sthanas specifically in nine fists' distance. Such measurement is very substantial and is a laborious work. In that fixed frame, seven strings have to be attached / fixed. Such fixed frame is called Motany. And nine strings in total would be fixed to that Motany. The strings that were arranged on the right side are called Kshudra Tantris. Danda Vajrika / Motany / frame had to be made of wood / lacquer / lime / metal. While playing the Veena, one has to move his fingers on the strings in the Motany slowly and increase

the speed. For all these nine strings there should be 18 Sarikas (The plugs that are useful in pulling and fitting the string). As was described by the dance book titled *Kohaleeyam*, the strings will be near Taara Shadjamam and gradually it has to be arranged in descent mode and the string should be arranged at Aadhara Shadjamam which is double to the Taara Shadjamam. Later the lacquer and wax would be kept to strengthen it. And this is the characteristic of Mahati Veena as enunciated by *Kohaleeyam*, the science of dance, text book.

The guru and sishyas of Narada:

Sanatkumara the soul son (Manasa Putrudu) of Brahma is the Guru of Sage Narada. Brahma Vaivarta Purana says that Narada had received the Paramarthopadesam (the various ways to reach the God). Sage Vyasa is the disciple of Sage Narada. Following his guru's order he had written about various kinds of devotion in different books and gave it to the mankind. Sage Suka is the son of Veda Vyasa. He is the one who helped in publicizing the Bhagavatam. It is Sage Narada who was instrumental in inspiring Sage Valmiki to write Ramayanam. Of the popular trinity of music – Sadguru Tyagaraja Swamy had got the blessings of Sage Narada and because of constant recitation of Naradopasti mantra, he got the darshan of Sage Narada, who later gave two books called *Swurarnavam* and *Varanaradeeyam*, to the mankind. That is why Sadguru Tyagaraja Swamy terms Sage Narada as the Sadguru of the entire universe and praised that Sage Narada is the reincarnation of Lord Vishnu.

In Narada Pancharatnas written by Tyagaraja Swamy he wrote in Vijayasri Ragam a song (kriti) "Vara Narada"… In one of the charanams he praised like this:

"Sakala Lokamulaku Sadguruvanuchu
Sada Ne Natadanuchu Hariyu
Pradhamambuga Keerti Nosangene
Bhavuka Tyagaraja Nuta"

Which means that Tyagaraja praised Sage Narada that "Lord Srihari Himself reincarnated as Sage Narada, and he is he first and foremost Sadguru and became famous."

A good relationship between devotion and singing as per Narada Bhakti Sutras:

Sage Narada defined devotion as "Parama Prema Roopa" (The manifestation of great love). This is different from the mortal (worldly) love. This is beyond mortal (immortal), indispensable (nirvajyamu) and constant (Nischalam). The mortal feeling of lust is also called love. The word "Parama" (great) is the difference between mortal love and the love of God. Devotion means confidence that is unwavering.

Prema meera Bhadradri dhamudaina Raama vibhudu
Kamitaartha Phalamulichi Kaivalya Mosagaledaa
Enna Gaanu Rama Bhajana Kanna Mikkilunnadaa?

Bhadrachala Ramadasu explained that one could achieve all the four Purushaardhas, through the God's love, which is a divine experience.

In the first chapter of Narada Bhakti Sutras, which is a devotional book, he gave the definitions to the form of devotion, in the second chapter he dealt with Parabhakti Mahatyam (greatness of unpretentious devotion), in the third chapter he explains various instruments to achieve Bhakti (devotion), in the fourth chapter he tells about the characteristics of the Bhakti (devotion) and in the firth chapter he explains about the glories of Bhakti (devotion).

As enunciated above in the third chapter while explaining various instruments to achieve Bhakti (devotion), he indicated that singing is

one of the instruments of devotion.

* Tasyaah saadhanaani gayantyacharyaah (तस्याःसाधनानि गायान्त्याचार्याः)

Achaaryas (gurus) sang about the parabhakti sadhana or supreme devotional practices in Rukkus and slokas in the Vedic epics. Narada Bhakti Sutras also mention such practices. Avyaavrita Bhajanaath (अव्यावृत भजनात्, 34th Narada Bhakti Sutram), Lokepi Bhagavadguna Sravana Keertanaat (लोकेऽपि भगवदुण श्रवण कीर्तनात्, 36th Naarada Bhakti Sutram)

Bhajanam means a service done to the God with utmost love. The Bhakti (devotion) and bhajan can't be different and they won't leave one another.

The action form of Bhakti is Bhajan. While the devotion related to the internal side, the bhajan is the external affair. Tyagaraja Swamy had explained the specialty of Bhajan in various Kritis. Some of them are:

Bhajanaparula Kela Dandapaani Bhayamu Manasaa (-Surati Ragam, Roopaka Taalam) , Bhajana Seya Raadaa (Atana Ragam, Roopaka Taalam), Bhajana Seyave (Kalyani Ragam, Roopaka Taalam)

If we carefully look into one of the charanams of another kriti – "Kaddanu Vaariki" in Thodi raagam…

Niddura Niraakarinchi Mudduga Tambura Batti
Suddhamaina Manassuto Suswaramuto Paddu
Tappaka Bhajiyinche Bhaktapalanamu Seyu
Taddayasaalive Neeve Tyaagaraja Sannuta

In this Charanam, Tyagaraja Swamy did not advise people to sing in praise of God by avoiding sleep, holding a tambura and sing melodiously. He only said that one should have a pure soul and worship the God with a sweet voice, without wasting time. By saying "Paddu Tappaka Bhajiyinchu", he indicated that the devotion is like a stream of oil and melodious music is the instrument for the service to God. Both Sravana (listening) and Keertana (Singing in praise) – both have relationship.

"Naaham Vasaami Vaikunte, Na Yogi Hridaye Ravou
Madbhaktaa Yatra Gaayanti Tatra Tishtami Naaradaa!"

नाहं वसामि वैकुंठे, नयोगी हृदये रवौ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

–Says Lord Vishnu while explaining the greatness of singing to Narada personally. Not only singing in praise of God, even singing the epics which were enunciated in Aagama Sastras and other Vedic scriptures are also good instruments of devotion. Both the Keertanam (praising the Lord through songs) and Sravanam (by listening such devotional music) are also there in Nava Vidha Bhakti Margas (nine types of devotion) described in Bhagavatam. By practicing the devotion towards God through singing and listening several great personalities gained salvation and Sri Tyagaraja Swamy had praised all such great personalities.

"Patita Paavanudane Paratparuni Gurinchi
Paramaardhamagu Nijamaargamu Tonu
Paduchunu Sallapamuto Swaralayaadi
Ragamulu Teliyu Vaarendaro Mahanubhavulu

Several people who had depicted devotional issues about immortal knowledge through discussions and that great experience is being shared through musical knowledge by singing. There are several such great men, praised Sri Tyagaraja Swamy.

This charanam has a similar meaning of Tasya Saadhanaani Gayantyaacharyaah (तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः, 34th Narada Bhakti Sutra).

The Chaitanya (awareness) Ananda (happiness) and Vikasa (development) in the human heart would have to be energized / inflamed with Raaga Gnana coupled with Bhakti

(devotion). The one who could do that would enjoy eternal bliss.

Vedic Singing – Mortal Singing:

The Naradeeya Siksha is like a bridge between Vedic (Sama Veda) singing and mortal singing.

Sama Vedetu Vakshyami Swaranam Charitham Yadhaa
Alpa Grandham Prabhootardham Sravyam Vedanga Muttamam

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्प ग्रन्थं प्रभूतार्धं श्रव्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।।

A small grantha with the history of Samaveda Swaraas and it is a Vedangam. However, Naradeeya Siksha Grantham had an explanation about Shadja, Madhyama, Gandhara gramas.

Shadja Madhyama Gaandhaarau Graamah
Bhoorlokaa Jaayate Shadjah Bhuvarlokaascha Madhyamah
Swargaa Nanyatra Gaandhaaro Naaradasya Matam Yathah

षड्ज मध्यम गान्धारौ यो ग्रामाः।
भूर्लोका जायते षड्जः भुवर्लोकाश्च मध्यमः।
स्वर्गानन्यत्र गान्धारो नारदस्य मतं यथा।।

With this we can come to know from the Naradeeya Siksha that Gandhara Grama was emerged from Swarga. Gandhara Gramam has been a favourite to devatas (angels) and for Gandharvas it has become a livelihood. The Sama Gana swaras are almost equivalent to our Khara Hara Priya Raga swaras. Music was born in Samaveda and it has several names such as Marga Sangeetam, Vedik singing and Gandharvam. It is learnt that Kusa and Lava sung Ramayana written by Valmiki in Marga tradition (sampradaya) according to Marga Vidhana Samvada dialogue.

Explaining in detail about Shadja and Madhyama gramas in Naradeeya Siksha, Sage Narada stated that Madhyama gramam is most favourable for Pitru Devatas and the daily livelihood of Yakshas, while Shadja gramam is liked by Rishis and is their daily livelihood.

Mortal singing:

The most favourite musical instrument for Lord Sri Krishna is flute. The seven kinds of sounds (swaras) that come out of flute are equivalent to Samagana Swara Saptakam. The dances of Radha and Gopikas (romantic dances / Rasaleela Nrityam), the dances, ballets and dramas taught by Brihannala to Uttara Kumari in Virata's court have helped the expansion of mortal music among people during the Mahabharata times. The main reason behind this is Sage Narada who used to praise the Lord Krishna (Lord Vishnu) and who had presented the Bhakti Sutras and chanted the name of Narayana by playing Mahati Veena.

This explains that Sage Narada is the bridge between Vedic and mortal music. He exhorted that Shadja grama is mostly useful for the livelihood and the music is liked by the Rishis of ancient times. The text explained in detail about the Lakshya Sangeeta. For that text Naradeeya Siksha and Narada Makarandam are the two great grandhas which remained the testimony. The Naradeeya Siksha detailed about the Sapta Swaras, three gramas, 21 moorchanas, 49 tanas – all put together were termed as Swaramandalam in that great text. Narada Makarandam explained about Naadam, Shruti, Swara, Raaga, Veena, Taala, Nartana – the seven aspects in the music. Sangeeta Makaranda is one of the ancient music science texts in India. In the Mangala Sloka through which there is a praise for Lord Parama Siva, where it was sung with a lot of devotion, is termed as an instrument to achieve four kinds of Purasharthas.

Pranamya Sirasaa Devam Shankaram Loka Shankaram
Sangeeta Sastram Samgriha Vakshe Loka Manoharam
Dharmartha Kama Mokshana Mida Meva Saadhanam

प्रणम्य शिरसा देवं शंकरं लोक शंकरं
सङ्गीत शास्त्रं संगृह वक्षे लोक मनोहरं
धर्मार्थ काम मोक्षाणामिदमेव साधनं ।।

Singing with devotion will provide all the four kinds of Purushardha boons is the meaning of this mantra. Naradopaasti mantra – Tyagaraja Swamy gets darshan of Sage Narada. Sadguru Tyagaraja Swamy had received the auspicious Naradopasti Mantra from his guru Sri Ramakrishnananda and started chanting the mantra without a break and had the darshan of Sage Narada and the latter had presented him two great granthas such as Swararnavam and Vara Naradeeyam. Of them Swararnavam is the musicology that was taught to Parvati Devi by Lord Parameswara. Sadguru Tyagaraja Swamy praised in a kriti titled "Swara Raga Sudhayuta Bhakti" made in Sankarabharanam raagam and quoted Swararnavam and its greatness in that song.

Rajata Gireesudu Nagajaku Delpu
Swararnava Marmamulu
Vijayamu Gala Tyagaraju Derige
Viswasinchi Telusuko Manasaa!

In order to give all the musical secrets to the entire universe, Lord Parameswara had taught them to Parvati Devi. Those musical secrets were received by Sri Tyagaraja Swamy with the grace of Sage Narada guru swamy, and made it clear that the elixir of music should be built on a foundation called devotion. The swara raga sancharas which lack devotion would have no life and remain mechanical and could not earn salvation to the living being. This truth was made clear by Sadguru Tyagaraja Swamy.

All the sapta swaras should be understood very clearly and thoroughly and then they have to be practiced every day. Then it could be said as Narada Upasana. Sage Narada's darshan (auspicious sight of the sage) and the divine feeling was sung in five different kritis by Sadguru Tyagaraja Swamy. They have become infamous as Narada Pancharatnams.

The Narada Pancharatnams are:

1. Sri Narada Naada Saraseeruha Bhringa – Kanada Ragam
2. Vara Naarada – Vijayasri Ragam
3. Narada Guruswami – Darbar Ragam
4. Narada Muni – Pantuvarali Ragam
5. Sri Narada Mouni Guru Raya – Bhairavi Raagam

In above kritis Sage Narada was praised that he is the personification of Guru, and he is no different from the Lord Vishnu, besides praising his shape, nature and glory.

Conclusion:

Sage Narada is one among the Lord Vishnu's 21 incarnations. He is the bridge between the music and devotion. Sage Narada is the initiator of gandharva kaushalam in the Bhakti sutras.

References :

1. Chinmayananda Swamy, (1986) A commentary on Narada Bhakti Sutras, Chinmaya Publications, Telugu division, Proddutooru, A.P
2. Shastry Sri Kalluri Veerbhadra, (1948) Tyagaraja Keertanalu, savyakhyanamu, Andhra gana kala parishad Rajmundry
3. Sambamurty Prof. T., South Indian Music, Indian Music publishing house
4. Rao Sri Balantarapu Rajanikantha Andhra Vaggeyakara Charitra, Vol-1,2

The Folk Art Form 'Maruni'

Dr. Santosh Kumar** **Ms. Kaushila Chettri***

Abstract

This article explores Sikkim's rich cultural legacy with an emphasis on the Maruni art form. The goal of this paper is to investigate the historical, cultural, and aesthetic facets of Maruni, offering details on its genesis, development, musical components, choreography, and effects on Sikkimese society. This study clarifies Maruni's relevance, artistic methods, and function in maintaining Sikkim's cultural identity by examining it from a variety of angles.

In the Indian state of Sikkim, ladies execute the traditional folk-art form known as maruni. In order to shed light on Maruni's historical, cultural, and aesthetic significance, this study intends to analyse the numerous viewpoints linked with it. The examination of the melodic and rhythmic structures, as well as the instrumentation and vocal approaches used in the performances, are all included in the analysis of Maruni music.

Additionally, the study explores the symbolic meanings and cultural narratives associated with the sophisticated dancing gestures, motions, and storytelling techniques used by the Maruni. It also looks at Maruni's social dynamics, including its function in local festivals, marriages, and celebrations, as well as how tradition and modernity interact to keep this art form alive.

Keywords: *Maruni, Nepali music, folk dance, folk music, Sikkim tradition, Sikkim Music*

Methodology: *The research paper aims to delve into the rich cultural heritage of the folk-art form "Maruni," a traditional dance-drama originating from the Nepali culture in Sikkim. The research has used Ethnomusicological Approach and Participation observation for collecting data.*

i. *Ethnomusicological Approach : Utilizing an ethnomusicological approach involves the systematic study of Maruni's musical aspects, including its melodies, rhythms, and instruments. This involved interviews with traditional musicians, analysis of musical scores, and recordings of live performances to create a comprehensive understanding of the musical dimensions of Maruni.*

ii. *Participant Observation : Engaging in participant observation provided an in-depth understanding of the cultural and social contexts surrounding Maruni. The researcher actively participated in Maruni performances, attending rehearsals, interacting with performers and community members, and documenting observations through field notes and audiovisual recordings.*

Introduction

The Maruni art form holds a significant place in the cultural tapestry of Sikkim, a picturesque state nestled in the eastern Himalayas of India. Maruni encompasses both music and dance, combining graceful movements with melodious tunes. This art form has been an integral part of Sikkimese traditions for generations, serving as a means of cultural expression, social cohesion, and entertainment. As Sikkim undergoes rapid modernization and cultural shifts, there is a growing need to study

*(MPA), Folk, Contemporary and Hindustani Classical Music Singer, Sikkim
**Assistant Professor, Department of Music, Sikkim University

and understand the Maruni art form to ensure its preservation and continued appreciation.

It is said that the Terai area the Mithila region of Nepal is the origin of the Maruni traditional dance style, which incorporates elements of both Hindu and regional folklore. The "Maruniya" group of male dancers typically execute the dance, which is accompanied by live music played by antique instruments such the harmonium, tabla, and madal (a sort of drum). It is a well-known folk dance that is performed in different social and cultural gatherings, such as festivals, weddings, and religious rituals. The Maruni dance is distinguished by its elegant motions, colourful attire, and rhythmic music.

The Maruni dance is known for its rhythmic and elegant motions. To show off their talent and synchronisation, the dancers frequently develop different patterns and formations. The dance has narrative, mythological, and religious components, and the dancers convey narratives and emotions with hand gestures, face expressions, and body movements.

This dance has grown in popularity throughout time, not just in Nepal buteven abroad. It is frequently performed during events that promote cultural exchange and Nepali holidays that are observed by the Nepali diaspora around the world. The dance represents Nepali culture, legacy, and identity while showing the variety and wealth of the nation's traditions.

As a vital component of Nepal's cultural history, the Maruni dance is still loved and revered. It is a type of art that fosters intercommunal harmony, protects cultural norms, and offers a stage for creative expression.

The Dance form Maruni in Sikkim:

Maruni dance is frequently done in Sikkim throughout different festivals and events. It has a special connection to the Tihar holiday, commonly known as Diwali, which is widely observed in the state. Maruni troupes perform the dance in homes during Tihar to bestow blessings and good fortune on the residences. The performers, who are mostly young women, dress in colourful outfits and accessorise with antique jewellery.

In Sikkim, the Maruni dance tradition has been handed down through the years, and initiatives are being taken to protect and publicise it. Participating actively in the instruction and planning of Maruni dance performances are cultural organisations, educational institutions, and local communities. With performances being included at local and national cultural events, the dance style has acquired attention and acclaim outside of Sikkim.

The bansuri (bamboo flute) and other traditional musical instruments, like the harmonium, tabla, madal, and tabla, accompany the beautiful and rhythmic dancing motions. The dancers captivate the audience with their performance as they display their skill through precise footwork, hand gestures, and facial emotions.

The Maruni, the most significant community dance, is enjoyed by every Nepali, regardless of caste, religion, or tribe. The Nepali month of *Bhadaw* is the time of year when the song is typically sung. On the other hand, it is also performed during significant festivals like Tihar and Dasein. An attempt has been made to compare and contrast the Nepalese Maruni dance and the traditional Hindu dance, as Maruni dance is the foundation and development of Nepali shows (Sharma, 2021)

The dance begins the evening of the Laxmi puja and continues until the Ekadasi of the festival to celebrate Diwali (Tihar). This dance encompasses dance dramas like "*Vijaya*

Bharat," "*Sorati*," and "*Ghantu*," in additiontosinging and dancing.

Acting, dancing, and singing is all part of these dance dramas. The dancers (called "Maroonies") and the jester (called "Dhatwaray") are required to dress in accordance with certain pre-existing guidelines for each item of clothing. They sing favoring tunes for the family and finally They request absolution from the divine beings from paradise for them in blunders and offer their final appreciation to the lord of paradise (Subba, 2011).

As a result, Maruni is portrayed as a custom that helps the public grow by organizing the show energetically, preserving the social image, and emphasizing the significance of the diviner of bodies. through alterations to one's body that aim to maintain harmony and criticism, such as music and movements (Adhikari, 2022).

According to Gurung (2021), Maruni dance is mainly performed by Male wearing a Maruni dress. As maruni is performed for a week long and it has a complete ritual of songs before wearing, after wearing the cloths they complete within a week and they also have a complete ritual of opening the cloths once the maruni gets over (Gurung, 2021).

In Sikkim, people group society music and instruments have been essentially adjusted by modernization. It prevented local communities' folk music from receiving the same recognition as western and contemporary music by imposing sophisticated musical genres on them. Western music spans a vast spectrum, whereas folk music is restricted to a small population and area. This could be a significant factor in the daily lag in indigenous folk music and instruments. But despite this crisis, there are still people in the community who have been trying their hardest to get past it. As a result, they have taken a lot of steps to bring back their lost folk music and instrument culture. To deal with the crisis, the government is also organizing a number of events and programs (Amit, 2015).

Even though it is based on religion and performed after appropriately invoking the deities, this dance form has developed over time.Two male dancers carry the flower-adorned madal with the assistance of a strap around their necks in this modified dance. The pounding of the feet, the beat of the drum, and the radiant Mangar women in *chaubandicholos* with elaborate decorations create a charming atmosphere. Congruity in Maruni developments includes body swinging and turning, *gunyushaking* up to a final free for all, a slight bow, and unobtrusive hand signals(The Splendour of Sikkim, 2017)

Maruni dance has extraordinary significance in Magar culture and custom. The Magar community's typical folk dance is Madal, which is played for the Maruni. this dance is performed on *mangsirpurnima* with extraordinary dedicate to master goddess Shree Mahaankal Devi. This dance has a strong connection to mythology and is thought to be of divine origin. In this dance the primary artist wears a lady's dress. The main dancer is a young man who has never been married. In the entire maruni dance, the really male artist goes about as a female. Then there will be someone else who imitates the dance of the primary artist. In addition to the two dancers, another individual plays madal. The job of the individual beating the madal is viewed as the most significant, and, surprisingly, the person who mirrors the fundamental artist is really viewed as the defenders of the artist. When the dancers don their costumes, they are placed in a ritualistic position on a plate with flowers, rice, and other items. Following obeisance to all gods and goddesses, including Saraswati, Ram, and Sita, the dance begins with the worship of Madal, the

dancer's dress, and other ornaments. The dance comes to a ritualistic close with blessings for the family that has given money to the dancing group. Musical instruments like the Machet, Madal, Rani Madal, Salaijyo Damphu, and Naumati Baja, among others, are used to accompany dancing and singing. The dance ritual continues throughout the night and madal is played all the time. The villagers show their love for the dancers by giving them money, beautiful clothes, and other valuables at the end of the performance. On that evening all individuals light diyo on the sanctuary before the maruni dance begins. Bhakal is celebrated annually by everyone. On the following day of maruni, the diyo are taken to the close by stream or waterway for definite completion the ceremonies (Manger, 2020)

According the book 'Nepali Lok Barta' the writer said thatthe prominent Dancer in the performance of Sorethi is called Maruni.In local language, Maruni is associated with a Young Women. However, in the perspective of scholars, Maruni is believed to be the prolapse form of the term Maharani.The location of Maruni lies within two and nine. Maruni is performed in accordance with the lyrics of the song, the beat of the music and the guidance of the teacher. The skillful dance of the dancers is cheerfully enjoyed by the audience.

The outfit if the dancers show the speciality of the tradition of Puna magarjatilike, Chitgunyu, blue patuki (Knocks), Black teki, Makhamali chili, Barko, Sisnupote, Hathmachura (Bangles) Fuli, Golden rings, Hammel, red tilak on forehead, Sirful, and Dhungri (Acharya, 2016)

Musical Elements of Maruni

A variety of traditional instruments are used to accompany the Maruni music, enhancing the entire aural experience and enhancing the dancing steps. During Maruni concerts, these instruments are essential for establishing the beat, strengthening the melodic aspects, and generating an energetic mood.

Madal, Flute, Dhime, These instruments are used to provide a mesmerising and harmonic fusion of rhythmic rhythms, melodic songs, and expressive sounds in Maruni music. In addition to providing the dancers with accompaniment, the ensemble of instruments enthrals the audience and immerses them in the cultural diversity and aesthetic beauty of Maruni performances.

Maruni music occasionally uses traditional string instruments like the Sarangi and the Tungna. A plucked instrument, the Tungna, offers a rhythmic and melodic texture to the song, while the bowed Sarangi provides a rich and expressive melodic accompaniment.

Choreography of Maruni Dance, movements and Gestures, costumes and Props, choreographic techniques and styles

Maruni dance is known for its fluid, graceful, and delicate movements in its choreography. It is a very organised style of dancing that adheres to predetermined patterns and steps while being inspired by the rhythm and melody of the background music. The dance's overall aesthetics and storytelling components are greatly influenced by the choreographers of Maruni.

Maruni dances include a variety of expressive gestures and motions that are influenced by Sikkimese mythology, the natural world, and daily life. The dancers portray feelings, stories, and spiritual meaning through their bodies. The variety of the dancers' and the art form's motions, which span from soft and lyrical to lively and energetic, demonstrates their adaptability.

The visual appeal and story of Maruni dance are greatly enhanced by costumes and

props. The dancers are dressed in colourful, elaborate traditional outfits that frequently feature dexterous needlework, sequins, and ethnic jewellery. The historical customs and cultural identity of Sikkim are reflected in these clothes. To emphasise the dancing moves and provide visual appeal, props like fans, scarves, and sticks are further employed.

Maruni uses a variety of choreographic approaches, including as forms, group dynamics, and spatial configurations. To create aesthetically appealing performances, the choreographers use strategies including symmetry, mirroring, and coordinated movements. To give the dance depth and intensity, they also use rhythmic variations, tempo shifts, and dramatic pauses.

Maruni dance choreography mixes technical accuracy, creative expression, and cultural narrative to produce an engrossing and engaging experience for both performers and audience members. It is evidence of the Sikkimese people's great creative legacy and inventiveness.

Maruni music's vocal styles and methods add to the performances' overall aesthetic beauty and emotional richness. The singers' melismatic singing, call-and-response exchanges, and dynamic vocal range work in unison to enhance the dance motions, instruments, and costumes, giving the audience a seamless and enthralling experience.

Discussion:

Maruni is a traditional folk dance and musical performance that holds significant socio-cultural impact in Sikkimese society. It plays a role in shaping gender dynamics, identity formation, and contributes to rituals and festivals in the region. Let's explore each aspect in more detail:

Gender Dynamics: Maruni has traditionally been performed exclusively by men, knownas "Maruniya," who dress in female attire and portray female characters. This unique gender-bending element challenges traditional gender roles and expectations within the society. The performance allows men to embody and express femininity, blurring the lines between masculine and feminine identities. These dynamic challenges traditional notions of gender and contributes to a more inclusive understanding of gender roles.

Maruni holds a central place in Sikkimese rituals and festivals, particularly during the Nepali festival of Dashain and Tihar. The performance is an integral part of the festivities, bringing joy, entertainment, and spiritual significance to the celebrations. Maruni groups often travel from village to village, performing in homes and public spaces, spreading festive cheer and invoking blessings. It acts as a cultural bridge, fostering community cohesion and reinforcing shared values and traditions. Overall, Maruni's socio-cultural impact on Sikkimese society is multi-faceted. It challenges traditional gender dynamics, contributes to identity formation, and serves as a vital component of rituals and festivals, fostering community cohesion and preserving cultural heritage.

One must first become familiar with Maruni and participate in its resurgence. Conservation should come first, and modernity can come later. Modernization might not be feasible under the current situation, though. In future, Maruni, like many traditional dance forms, may face certain challenges in the context of accelerating modernization and shifting social dynamics. Some of the obstacles Maruni may encounter include:

- Changing Cultural Landscape: As societies modernize, traditional art forms often face the risk of being overshadowed by new

forms of entertainment and cultural expressions. Maruni may struggle to maintain its relevance and popularity among younger generations.

- Cultural Appropriation: With increasing globalization, there is a risk of culturalappropriation, where elements of Maruni may be borrowed or modified without proper understanding or respect for its origins and significance. This can dilute the authenticity and integrity of the dance form.
- Declining Participation and Expertise: If younger generations are not actively learning and practicing Maruni, there is a risk of a decline in participation and a loss of expertise. This can lead to a shortage of skilled performers and teachers, making it challenging to sustain the dance form.

To preserve and revitalize Maruni in the face of these challenges, various initiatives can be undertaken:

- Documentation and Research: Conducting comprehensive research and documentation on Maruni, including its history, techniques, music, costumes, and cultural significance, can help create a valuable resource for future generations.
- Education and Awareness: Promote awareness and understanding of Maruni through educational programs, workshops, and cultural events. Encouraging schools and community organizations to include Maruni in their curriculum or performance programs can help generate interest and appreciation among younger generations.
- Cultural Exchange and Collaboration: Organize cultural exchange programs, where Maruni artists can interact with dancers and performers from different regions and backgrounds. This can foster cross-cultural learning, inspire innovation, and create new avenues for the expression of Maruni.
- Funding and Support: Seek financial support from government bodies, cultural organizations, and philanthropic institutions to provide resources for training, performances, and infrastructure development related to Maruni. Grants, scholarships, and fellowships can also be established to encourage young artists to pursue Maruni.
- Intergenerational Transmission: Emphasize the importance of intergenerational transmission by creating mentorship programs and opportunities for experienced Maruni practitioners to pass down their knowledge and skills to younger generations.
- Digital Platforms and Media: Utilize digital platforms and media to promote Maruni to a wider audience. This can include online tutorials, performances, recordings, and social media campaigns that showcase the beauty and uniqueness of Maruni. By implementing these preservation and revitalization initiatives, Maruni can be safeguarded, its cultural significance can be celebrated, and it can continue to thrive even in the face of modernization and shifting social dynamics.

Authenticity and Integrity: It is crucial to prioritize the authenticity and integrity of Maruni during any commercialization efforts. Ensuring that the core essence of the dance form is preserved and presented accurately to tourists or commercial platforms is essential. Avoiding excessive modifications or dilution of the traditional elements is important to maintain its cultural significance.

References :

1. Sharma, L. C. (2021). Some Traditional Folk Songs and Dances of Sikkim Himalayas. *Asian Mirror - Volume viii, Issue II, 17 june -2021 ISSN*, 1-15
2. Adhikari, R. (2022). Nexus between Global and Local in Chitwan Magars' Performance Culture. *Interdisciplinary Journal of Innovation in Nepalese Academia, 1(1), 33-41*, 1-31.
3. Adhikari, R. (2022). Nexus between Global and Local in Chitwan Magars' Performance Culture. *Interdisciplinary Journal of Innovation in Nepalese Academia, 1(1), 33-41,* 1-31.
4. Gurung, N. (2021). Lokayan ma bachayka Nepali Lok Geet - Sangit. In N. Gurung, Lokayan ma bachayka Nepali Lok Geet - Sangit. Gangtok: Graphic Printing Siliguri.
5. Amit, M. (2015). Understanding Modernization and Cultural Resistance in Sikkim: A sociological Analysis of Folk Music. International Research Journal of Social Sciences, 1-8.
6. The Splendour of Sikkim . (2017). Gangtok: Cultural Affairs and Heritage Department , Government of Sikkim.
7. Manger, S. R. (2020, December 13). Retrieved from Google Scholar:

   https://elibrary.tucl.edu.np/bitstream/123456789/9266/4/All%20theshis.pdf
8. Acharya, G. (2016). Nepali Lok Warta Part 2. Nepal: Bhukuti Accadamic Publication.

गणितीय सूत्रों द्वारा फरमाईशी चक्रदार और कमाली चक्रदार बनाने के सिद्धांत

डॉ. संदीप कुमार पटेल*

सारांश

गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों विषयों का प्रस्तुतिकरण बंदिश के माध्यम से होता है। तबले का प्रस्तुतिकरण भी बंदिशों द्वारा ही होता है। कोई भी कलाकार स्वतंत्र तबला–वादन प्रस्तुतिकरण में दो प्रकार की बंदिशों का प्रयोग करता है। इन्हीं बंदिशों के माध्यम से स्वतंत्र तबला–वादन का विस्तार होता है। स्वतंत्र तबला–वादन के प्रभावकारक प्रस्तुतिकरण में ये दो बंदिशें निम्नलिखित प्रकार से हैं–

बंदिश

विस्तारक्षम बंदिश	***अविस्तारक्षम या पूर्णसंकल्पित बंदिश***
पेशकार, कायदा, चलन,	*टुकड़ा, परन, गत, फर्द,*
रेला, रौ, लग्गी,	*चक्रदार बंदिश, फरमाईशी चक्रदार,*
लड़ी इत्यादि।	*कमाली चक्रदार, तिहाई, नवहक्का इत्यादि।*

मुख्य शब्द : *तबला, प्रस्तुति, चक्रदार, फरमाइशी, कमाली*

प्रविधि : *व्यावहारिक एवं द्वितीयक माध्यमों का प्रयोग कर शोध–पत्र लिखा गया है ।*

उद्देश्य– प्रस्तुत शोध–पत्र फरमाईशी चक्रदार, कमाली चक्रदार बनाने के सिद्धांत पर आधारित है, जो स्वतंत्र तबला–वादन प्रस्तुतिकरण का मुख्य हिस्सा है। विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं तथा साक्षात्कार के अध्ययन के पश्चात् हमने पाया कि गणितीय सूत्रों द्वारा भी फरमाईशी चक्रदार, कमाली चक्रदार को बनाया जा सकता है। इन पूर्ण संकल्पित रचनाओं को किसी ताल में बनाने के लिए मुखड़ा, तिहाई तथा अवग्रह कितनी मात्रा का होगा ? इन सब स्थितियों को जानने के लिए हम गणितीय सूत्रों का प्रयोग करेंगे जो इस शोध–पत्र के माध्यम से प्रस्तुत है जिससे किसी भी ताल में सरलतापूर्वक फरमाईशी, कमाली चक्रदार बनाया जा सके।

पूर्व संकल्पित बंदिश फरमाईशी चक्करदार बनाने का सिद्धांत

विशेषता –

फरमाईशी चक्करदार की विशेषता यह होती है कि यह किसी भी ताल में पांच आवर्तन का होता है। चाहे वह रूपक ताल, झपताल, एकताल, पंचमसवारी या तीनताल हो, अन्य सभी तालों में फरमाईशी पांच आवर्तन का ही होता है, और इसकी यह विशेषता होती है कि पहले चक्र में तिहाई का पहला धा सम पर आता है, दूसरे चक्र में तिहाई का दूसरा धा सम पर आता है, और तीसरे चक्र में तिहाई का अंतिम धा सम पर आता है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं।

फरमाईशी चक्रदार के विषय में **भगवत शरण शर्मा** द्वारा लिखित पुस्तक '**ताल प्रकाश**' में लिखा गया है कि–''इनमें पहले चक्र में मुखड़े के पहले 'धा' पर, दूसरे चक्र में दूसरे मुखड़े के दूसरे 'धा' पर और तीसरे चक्र में तीसरे मुखड़े के तीसरे 'धा' पर सम आए, तो इन्हें फरमाईशी चक्रदार कहेंगे। इनका स्थूल रूप इस प्रकार होगा–

————	+ ————	+ ————	+ ————
बोल	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा
	x		
————	+ ————	+ ————	+ ————
बोल	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा
		x	
————	+ ————	+ ————	+ ————[1]
बोल	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा	मुखड़ा धा
			x

*संगीत विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, गैंगटॉक

इस सम्बन्ध में पं. सत्यनारायण वशिष्ठ द्वारा लिखित पुस्तक 'तबले पर दिल्ली और पूरब' नामक पुस्तक में लिखा गया है कि– ''ऐसे बोल समूह जिन्हें पखावजी या तबला वादक श्रोताओं के फरमाईश पर बजाते हैं, फरमाईशी परन कहलाता है। इस प्रकार के बोलों का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता है।''[2]

श्री मधुकर गणेश गोडबोले अपनी पुस्तक 'तबला शास्त्र' में लिखते हैं कि– ''फरमाईशी चीज, गत, परन, चक्रदार गत, टुकड़ा, तिहाई आदि सभी फरमाईशी होती हैं किंतु अधिकांश फरमाईशी चीजें गतों में मिलती हैं। इसलिए कुछ लोग तो फरमाईशी चीज के बजाय फरमाईशी गत का ही प्रयोग करते हैं।''[3]

डॉ. वसुधा सक्सेना द्वारा लिखित पुस्तक 'ताल के लक्ष्य लक्षण स्वरूप में एकरूपता' में लिखा गया है कि– ''फरमाईशी चक्रदार टुकड़ा या परन ही आ सकते हैं, जिसकी विशेषता तिहाई में निहित है। फरमाईशी चक्रदार में तिहाई के पहले पल्ले का पहला 'धा', दूसरे पल्ले का दूसरा 'धा' तथा तीसरे पल्ले का तीसरा 'धा' सम पर आए, फरमाईशी चक्रदार कहलाता है।''[4]

पं. छोटेलाल मिश्र द्वारा लिखित पुस्तक 'ताल प्रबंध' में फरमाईशी चक्रदार के विषय में लिखा है– ''इसके तिहाई का पहला 'धा' सम पर पर आएगा, दूसरे चक्र में तिहाई का दूसरा 'धा' सम पर पर आएगा और तीसरे चक्र का तीसरा 'धा' अर्थात् अंतिम 'धा' सम पर समाप्त होता है।''[5]

फरमाईशी चक्रदार बनाने के सिद्धांत में हम गणितीय सूत्र द्वारा यह जानने का प्रयास करेंगे कि फरमाईशी चक्रदार में एक पल्ला (एक चक्र) कितनी मात्रा का होगा? तिहाई कितनी मात्रा का होगा? मुखड़ा कितनी मात्रा का होगा? तथा प्रत्येक चक्र में अवग्रह कितना लगेगा? इन सब स्थितियों को जानने के लिए हम गणितीय सूत्रों का प्रयोग करेंगे जो इस प्रकार है–

उदाहरण–

आड़ाचारताल में फरमाइशी बनाने का सिद्धांत

मात्रा– 14, विभाग– 7, ताली– 1, 3, 7, 11 तथा खाली– 5, 9,13 पर।

ठेका–

धिं तिरकिट । धी ना । तू ना । क त्ता । तिरकिट धी ।
x 2 0 3 0
ना धी । धी ना ।
4 0

नियमानुसार जिस ताल में फरमाईशी चक्रदार बनाना चाहते हैं उस ताल का फरमाईशी चक्रदार के पांच आवर्तन में गुणा करके फरमाईशी का अंतिम धा यानि एक मात्रा जोड़ दिया जाता है। जैसे–

14 (आड़ाचारताल) x 5 (आवर्तन) =

70 + 1 (फरमाईशी का अंतिम धा) = 71 मात्रा

71 मात्राओं में फरमाईशी का तीनों चक्र सम्मिलित है जिसमें मुखड़ा तथा तिहाई का भाग आता है। इसलिए एक चक्र निकालने के लिए संपूर्ण मात्रा में तीन से भाग दिया जाता है । यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि फरमाईशी के तीनों चक्रों की मात्रा तीन से पूर्ण रूप से विभाजित हो जानी चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है तो 2 अथवा 4 मात्रा घटाया जा सकता है। 1, 3, 5 इत्यादि विषम संख्या नहीं घटाया जाता है क्योंकि अवग्रह लगाने में समस्याएं आती हैं। इसलिए हमेशा सम संख्या ही घटाया जाता है। जैसे–

71 – 2 = 69 मात्रा

69 / 3 = 23 मात्रा

23 मात्रा फरमाईशी चक्रदार का एक पल्ला है, जिसमें मुखड़ा तथा तिहाई दोनों सम्मिलित है। इसलिए फरमाईशी चक्रदार का तिहाई निकालने के लिए सर्वप्रथम फरमाईशी के एक पल्ले में से उस ताल यानि आड़ाचौताल (14 मात्रा) में एक मात्रा जोड़कर जैसे 14 + 1 = 15 मात्रा घटा दिया जाता है।

23 – 15 = 8 मात्रा

इस आठ (8) मात्रा में तिहाई का दो भाग सम्मिलित है। शेष एक भाग उस ताल में सम्मिलित है।

तिहाई का दो भाग = 8 मात्रा में

तिहाई का एक भाग = 8/2

= 4 मात्रा में

तिहाई का तीन भाग = 4 x 3

= 12 मात्रा

आड़ाचौताल में फरमाईशी चक्रदार की 12 मात्रा की तिहाई होगी तथा मुखड़ा निकालने के लिए फरमाईशी के एक पल्ले (चक्र) में से सम्पूर्ण तिहाई के भाग को घटा दिया जाता है। जैसे :

23 – 12 = 11 (मुखड़ा)

अतः आड़ाचौताल में फरमाईशी चक्रदार बनाने के लिए 11 मात्राओं का मुखड़ा, 12 मात्राओं का तिहाई तथा एक–एक मात्राओं का अवग्रह लगाकर फरमाईशी बनाया जा सकता है।

तीनताल में फरमाइशी चक्रदार बनाने का सिद्धांत

मात्रा– 16, विभाग– 4, ताली– 1, 5, 13 तथा खाली– 9 पर।

ठेका–

धा धिं धिं धा ।	धा धिं धिं धा ।	धा तिं तिं ता ।	ता धिं धिं धा ।
x	2	0	3

नियमानुसार फरमाईशी चक्रदार के पांच आवर्तन में तीनताल यानि 16 मात्राओं का गुणा करके उसमें एक मात्रा यानि अंतिम धा जोड़ने पर–

16 x 5 = 80 + 1 (अंतिम धा)

= 81 मात्रा

81 मात्राओं में फरमाईशी का तीनों पल्ला सम्मिलित है, इसलिए एक पल्ला निकालने के लिए 3 से भाग दिया जाएगा।

81 / 3 = 27 मात्रा

27 मात्रा फरमाईशी का एक पल्ला (चक्र) है। और इस मात्रओं में फरमाईशी का मुखड़ा तथा तिहाई दोनों सम्मिलित है। तिहाई का भाग अलग करने के लिए फरमाईशी के एक चक्र में से तीनताल में एक मात्रा जोड़कर 16 + 1 = 17 मात्रा घटा दिया जाता है।

27 – 17 = 10 मात्रा

10 मात्रे में तिहाई का दो भाग सम्मिलित है। तिहाई का एक भाग उस ताल में (तीनताल) में सम्मिलित है।

तिहाई का दो भाग = 10 मात्रा में

तिहाई का एक भाग = 10 / 2

= 5 मात्रा

तिहाई का तीन भाग = 5 x 3

= 15 मात्रा

तीनताल में फरमाईशी के लिए 15 मात्राओं की तिहाई होगी तथा मुखड़ा निकालने के लिए फरमाईशी के एक चक्र यानि 27 में से तिहाई के सम्पूर्ण भाग को घटा दिया जाता है, जैसे–

27 – 15 = 12 मात्रा

उपरोक्त फरमाईशी में गणितीय सूत्रों का प्रयोग करते हुए कहा जा सकता है कि तीनताल में फरमाईशी चक्रदार बनाने के लिए 12 मात्राओं का मुखड़ा तथा 15 मात्राओं की तिहाई होगी।

कमाली चक्रदार बनाने का सिद्धांत

पूर्णसंकल्पित या अविस्तारक्षम रचना में कमाली चक्रदार एक विशेष प्रकार की रचना होती है, जिसमें कुल 27 धा होते हैं, इसकी ख़ासियत यह होती है कि प्रत्येक तिहाई वाले भाग में तीन–तीन धा आते हैं, पहले चक्र में तिहाई का पहला 'धा' सम पर आता है, दूसरे चक्र में तिहाई का पांचवा 'धा' सम पर आता है, और तीसरे चक्र में तिहाई का अन्तिम 'धा' सम पर आता है। या, हम कह सकते हैं कि पहला, चौदहवां और सत्ताईसवां 'धा' सम पर आता है। इसकी एक और ख़ासियत होती है कि यह किसी भी ताल में कम–से–कम पांच आवर्तन तथा अधिक से अधिक सात आवर्तन का होता है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के विचारों को जानना अति आवश्यक है।

'ताल प्रबंध' नामक पुस्तक में लिखा गया है कि–''इसके एक चक्र में नौ धा होते हैं, जिसके प्रथम चक्र का पहला धा सम पर आता है, दूसरे चक्र का पांचवा धा सम पर आता है, और तीसरे चक्र का अर्थात् अंतिम धा

सम पर समाप्त होता है।''[6]

डॉ. वसुधा सक्सेना द्वारा लिखित पुस्तक 'ताल के लक्ष्य लक्षण स्वरूप में एकरूपता' में लिखा गया है कि– ''चक्रदार टुकड़ा परन की ही एक विशेषता है, इसके एक चक्र में कम–से–कम नौ धा होना आवश्यक है, इस प्रकार पूरे चक्र में 27 धा की अनिवार्यता है। इसमें पहले चक्र के पहले मुखड़े का पहला धा, दूसरे चक्र के दूसरे मुखड़े का दूसरा धा तथा तीसरे चक्र में तीसरे मुखड़े का तीसरा धा सम पर आना चाहिए।''[7]

कमाली चक्रदार के विषय में 'ताल प्रकाश' में लिखा गया है–''इन चक्रदारों के अंत में कम से कम तीन धा आते हैं। सम स्थान पहली बार तीनों धा में से पहले धा पर, दूसरे चक्र में तीनों धा में से बीच के धा पर और अंतिम बार तीनों धा में से अंतिम धा पर आता है। इसका स्थूल रूप निम्न प्रकार होगा–

––– + –––	धा धा धा + –––		धा धा धा	+ –––	धा धा धा		
बोल	मुखड़ा	x	मुखड़ा		मुखड़ा		
––– + –––	धा धा धा + –––		धा धा धा	+ –––	धा धा धा		
बोल	मुखड़ा		मुखड़ा	x	मुखड़ा		
––– + –––	धा धा धा + –––		धा धा धा	+ –––	धा धा धा		
बोल	मुखड़ा		मुखड़ा		मुखड़ा	x[8]	

ताल परिचय, भाग–3 में लिखित है–''कमाली चक्रदार परन एक विशेष प्रकार की ऐसी चक्रदार परन है, जिसमें फरमाइशी चक्रदार के सभी लक्षण तो रहते ही हैं और साथ–साथ उस रचना की तिहाई के सभी तीनों भागों में तीन–तीन 'धा' आते हैं, जैसे तेटेकता गदिगन धा धा धा, तेटेकता गदिगन धा धा धा, तेटेकता गदिगन धा धा धा। प्रथम चक्र में तिहाई के पहले भाग का पहला 'धा' सम पर आता है। द्वितीय चक्र में तिहाई के दूसरे भाग का दूसरा 'धा' सम पर आता है और, इसी प्रकार तृतीय और अंतिम चक्र में तिहाई के तीसरे भाग का तीसरा और अंतिम 'धा' सम पर आता है।''[9]

उदाहरण के लिए हम गणितीय सूत्रों द्वारा झपताल में कमाली चक्रदार बनाने के सिद्धांत को समझने का प्रयास करेंगे।

झपताल में कमाली बनाने का सिद्धांत

मात्रा– 10, विभाग–4, ताली– 1, 3, 8 तथा खाली– 6 पर ।

ठेका–	धी	ना	।	धी	धी	ना	।	ती	ना	।	धी	धी	ना	।
	x			2				0			3			

नियमानुसार कमाली चक्रदार के सात आवर्तन में उस ताल यानि झपताल (10 मात्रा) से गुणा करके कमाली का अंतिम धा यानी एक मात्रा जोड़ने पर–

10 x 7 = 70 + 1 (अंतिम धा)

= 71 मात्रा

71 मात्राओं में कमाली चक्रदार का तीनों पल्ला (चक्र) सम्मिलित है। इसलिए एक चक्र निकालने के लिए उसमें तीन से भाग दिया जाएगा। यहां यह ध्यान दिया जाता है कि वह संख्या तीन से पूर्ण रूप से विभाजित हो जानी चाहिए, अगर ऐसा नहीं होता है तो हमेशा सम संख्या घटाकर उस संख्या को पूर्ण रूप से विभाजित किया जाता है। यहां पर यह ध्यान दिया जाता है कि विषम संख्या कभी नहीं घटाया जाता है।

71 – 2 = 69 मात्रा

69 / 3 = 23 मात्रा

23 मात्राओं के कमाली चक्रदार का एक पल्ला (चक्र) है, जिसमें मुखड़ा तथा तिहाई दोनों सम्मिलित हैं। इस एक पल्ले में से तिहाई का भाग निकालने के लिए उस ताल (झपताल) में 3 मात्रा जोड़कर, एक पल्ले (चक्र) में से घटाने पर–

23 – 13 = 10 मात्रा

इन 10 मात्राओं में तिहाई के दो भाग सम्मिलित हैं, तिहाई का एक भाग उन 13 मात्राओं में सम्मिलित है।

तिहाई का दो भाग = 10 मात्रा में

तिहाई का एक भाग = 10/2

= 5 मात्रा

तिहाई का तीन भाग = 5 x 3

= 15 मात्रा

अतः झपताल में कमाली चक्रदार के लिए 15 मात्राओं की तिहाई होगी तथा मुखड़ा का भाग निकालने के लिए कमाली चक्रदार के एक पल्ले (चक्र) में से तिहाई के सम्पूर्ण भाग को घटाने पर–

23 – 15 = 8 मात्रा

अतः हम कह सकते हैं कि झपताल में कमाली चक्रदार बनाने के लिए 8 मात्राओं का मुखड़ा, 15 मात्राओं की तिहाई तथा एक–एक मात्राओं का अवग्रह लगाकर कमाली चक्रदार बनाया जा सकता है। इस गणितीय सूत्र का प्रयोग करके हम किसी भी ताल में कमाली चक्रदार बना सकते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध–पत्र, गणितीय सूत्र द्वारा फरमाइशी चक्रदार तथा कमाली चक्रदार बनाने के सिद्धांत पर आधारित है। जिसमें विभिन्न विद्वानों के विचारों को आत्मसात् करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस गणितीय सूत्र के माध्यम से किसी भी ताल में आसानी से इन रचनाओं को बनाकर महफिल में अपनी प्रस्तुतियां दे सकते हैं। कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी फरमाइशी चक्रदार तथा कमाली चक्रदार बनाने के सिद्धांत को रखा गया है। मैं यह समझता हूँ कि इस शोध–पत्र के माध्यम से निश्चित रूप से सभी विद्यार्थी लाभान्वित होंगे।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, भगवत शरण, (जून– 2019), ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं. 125
2. वशिष्ठ, पं0 सत्यनारायण, (अगस्त– 1994) तबले पर दिल्ली और पूरब, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं..69–70
3. गोडबोले, मधुकर गणेश, (जून–1974), तबला शास्त्र, अशोक प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, पृ.सं. 57
4. सक्सेना, डॉ0 वसुधा, (प्रथम संस्करण 2006), ताल के लक्ष्य लक्ष्य स्वरूप में एकरूपता, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 115
5. मिश्र, पं0 छोटेलाल, (प्रथम संस्करण 2006), ताल प्रबंध, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 49
7. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चंद्र, (जनवरी– 2013), ताल परिचय भाग– 3, रूबी प्रकाशन इलाहाबाद, पृ.सं. 28
6. वही, पृ.सं. 50
7. सक्सेना, डॉ0 वसुधा, (प्रथम संस्करण 2006), ताल के लक्ष्य लक्ष्य स्वरूप में एकरूपता, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 116
8. शर्मा, भगवत शरण, (जून– 2019), ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं. 127

तराना गायन–शैली में उस्ताद अमीर खां का योगदान

डॉ. शुचिस्मिता शर्मा** **सुरेश कुमार***

सारांश

वैदिक काल से चली आ रही संगीत की परंपरा में अनेक गायन शैलियों का उद्भव, विकास तथा पतन समयानुसार हुआ है। प्राचीन समय में प्रबन्ध, रूपक, वस्तु तथा जाति–गायन की परंपरा से लेकर वर्तमान में ख्याल, ठुमरी, तराना आदि गायन के मध्य अनेक गायन शैलियाँ विकसित हुईं। माना जाता है कि तराना गायन शैली का आविष्कार अमीर खुसरो (1253–1325) ने किया। तराना गायन–शैली को निरर्थक शब्दों की गायकी भी कहा जाता है। तराना गायन शैली के अविष्कारक के विषय में एक और मत सामने आता है, जिसमे कहा गया है कि यह गायन शैली भारतीय संगीत की प्राचीन गायन शैली है। इस गायन शैली का वर्णन ''निर्गीत या बहिर्गीत'' नाम से भरतरचित 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ जो पांचवीं शताब्दी में लिखा गया, में मिलता है। इस मतानुसार इसी निर्गीत या बहिर्गीत का बदला हुआ रूप ही है जिसको हम आज तराना गायन शैली के रूप में जानते हैं। श्रीपद बंदोपाध्याय के मतानुसार "तराना लोकप्रिय गायन का एक प्रकार है, जिसमें अर्थहीन शब्दों जैसे ता, ना, दा नी, दे रे ना, ओ दा नी आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए तराना गायन को निरर्थक शब्दों की गायकी भी कहा जाता है। इसके विपरीत इंदौर घराना के संस्थापक उस्ताद अमीर खान साहब के मत हैं कि तराना के बोल निरर्थक नहीं, सार्थक है। अमीर खां साहब कहते है कि तराने के बोल अरबी तथा फारसी भाषा के शब्द हैं, जो अर्थपूर्ण हैं। तराना गायन शैली मुस्लिम शासकों के भारत आने के बाद विकसित हुई। अमीर खान तराना गायन शैली अमीर खुसरो द्वारा निर्मित है। अरबी तथा फारसी भाषा का ज्ञान न होने के कारण तराना के बोलों को निरर्थक कहा गया है । उन्होंने स्वयं भी अनेक तरानों का निर्माण किया, जिनका प्रयोग वर्तमान में किया जा रहा है।

सूचक शब्द : *गायन शैली, तराना, ग्रन्थ, संगीत*

प्रविधि : *विभिन्न पुस्तकों, शोध–प्रबन्ध, पत्र–पत्रिकाओं तथा अन्य माध्यमों का अध्ययन इस शोध–पत्र हेतु किया गया है।*

साहित्यिक अवलोकन

अमीर खां साहब के इस शोध के विषय में पहले भी कुछ शास्त्रकारों तथा कुछ शोधार्थियों के द्वारा काम किया जा चुका है, शोध–पत्र के इस भाग में मैं उनके बारे में लिख रहा हूँ जिनका मैंने अध्ययन किया। "डॉ. आकांक्षा गुप्ता" द्वारा "तराना गायन शैली की प्राचीनता, प्रकार एवं प्रस्तुति" नामक पुस्तक 2017 में प्रकाशित की गई तथा उसमें तराना गायन–शैली के बारे में विस्तार से बताया गया है। "संगीत कार्यालय, हाथरस (उवप्रव)" द्वारा 1968 में "संगीत तराना अंक" नामक संगीत पत्रिका का विशेषांक प्रकाशित किया गया। इसमें तराना के विषय में जानकारी के साथ भिन्न–भिन्न रागों में अनेक तराने भी स्वरलिपियों सहित दिए गए हैं। "तेजपाल सिंह तथा प्रेरणा अरोड़ा" द्वारा लिखित पुस्तक "संगीत के देदीप्यमान सूर्य उस्ताद अमीर खां" 2005 में कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली के मध्यम से प्रकाशित हुई जिससे अमीर खां की जीवनी के साथ–साथ उनके द्वारा रचित बंदिशों एवं तरानों के विषय में जानकारी स्वरलिपियों सहित प्राप्त होती है। उस्ताद अमीर खां साहब द्वारा लन्दन व अन्य स्थानों पर दिए गए साक्षात्कारों के विडियो youtube पर उपलब्ध हैं। इनमें खां साहब ने अपने तराने के शोध से सम्बंधित कई बातें उजागर की हैं। कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान के शोधार्थी "दीपक बादल" ने "तराना गायकी के पुरोधा उस्ताद अमीर खां" नामक एक शोध–पत्र "श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका" फरवरी 2019 में प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने अमीर खां साहब के तराना शोध के विषय में लिखा तथा कुछ तराने सरलार्थ सहित लिखे।

*शोधार्थी, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
**शोध–निर्देशिका, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है कि भारतीय संगीत में बरसों से चली आ रही तराना गायकी के जिन बोलों को हम अर्थहीन समझते आए है, व सार्थक हैं।

भारतीय संगीत की गायन शैलियों में तराना गायन को सदाबहार गायन शैली भी कहा जा सकता है, क्योंकि तराना भारतीय संगीत में जब से शुरू हुआ है तब से आज तक इसकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है। स्वर, ताल, और वाद्यों के पाट तथा तेन अंगो से बनी हुई रचना, जो द्रुत लय में गाई जाती है, वह तराना नाम से पुकारी जाती है। एक मतानुसार अर्थ रहित त, न, री, दिर,तोम, ओ, ला, ली, आदि अक्षरों से निर्मित राग–तालनिबद्ध रचना 'तराना' कहलाती है। तराना गायन शैली को दक्षिण या कर्नाटक संगीत में 'तिल्लाना' नाम से जाना जाता है। तराना शब्द फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है गाना, नग्मा या एक विशेष प्रकार का गीत। इसी से मिलता–जुलता शब्द 'तरन्नुम', अरबी भाषा का शब्द है।

तराना पूर्णतः शास्त्रीय संगीत का एक प्रकार है। प्रचलित किसी भी राग में तराना गायन किया जा सकता है। तराना गाते समय सरगमों को नाना प्रकार की लय में गाने से एक अलग ही सौंदर्य की अनुभूति होती है। तराना में स्थाई व अन्तरा दो भाग होते हैं। मुख्यतः तराने को द्रुत ख्याल के बाद गाया जाता है। इसमें तानों की तैयारी का काम दिखाया जाता। चंचल प्रकृति होने के कारण तराना सुनने से श्रोतागण आनंद की अनूभूति करते हैं। इसमें सार्थक शब्दों का प्रयोग नहीं होता, केवल निरर्थक शब्द, जैसे– त, न, री, दिर, तोम, ओ, ला, ली, आदि लय, कल्पना और स्वर के संबल से श्रोताओं के ह्रदय पर प्रभाव डालते हैं। तराना गायन का लक्ष्य लयकारी का चमत्कार दिखाना है। तराना गायकी से उच्चारण में शुद्धता आती है तथा जिह्वा का अभ्यास पक्का होता है। अधिकतर तराने मध्य लय तथा द्रुत लय में ही गाये जाते हैं। तराना भाव–प्रधान गायन न होकर वैचित्र्य प्रधान है, ख्याल तथा ध्रुपद जैसी गंभीर शैलियों की गंभीरता को सुनने के बाद श्रोताओं को वैचित्र्यपूर्ण, चंचल और उत्साहवर्धक तराना की गायकी सुनने से अवश्य ही स्फूर्ति प्राप्ति होती है। नृत्य के साथ तराना की गायकी विशेष प्रभावशाली बन जाती है। तराना गायन की प्रसिद्धि के परिणामस्वरूप बहादुर हुसैन खां, तानरस खां,नत्थू खां, उस्ताद अमीर खां, पं. विनायक राव पटवर्धन आदि ने तराना गायकी में अपना सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया।

तराना आविष्कारक के विषय में विभिन्न मत

कहा जाता है कि इस प्रकार की गायकी के प्रवर्तक महान संगीतज्ञ अमीर खुसरो थे, जो अरबी के प्रकांड पंडित थे। दिल्ली में बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में उन्होंने महान संगीतज्ञ गोपाल नायक के मुख से संस्कृत शब्दों से युक्त कोई रचना सुनी। चुँकि अमीर खुसरो को संस्कृत भाषा का ज्ञान न था, इस कारण शब्दों के अर्थ तो न समझ सके पर उस संगीत रचना में प्रयुक्त स्वर–समुदायों को उन्होंने बेहद पसंद किया। इसी से प्रभावित होकर उन्होंने निरर्थक शब्दों को गढ़कर कर तरह–तरह से हिंदुस्तानी राग गाए जो "तराना" नाम से प्रसिद्ध हुए[1]।

दूसरे मतानुसार तराना गायकी के आविष्कर्ता के रूप में अमीर खुसरो को मानना एक अंधविश्वास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अमीर खुसरो को तराना गायन का आविष्कारक मानने का मुख्य आधार यही है कि पुराने लोग कहते आए हैं, इसलिए हम भी कहते हैं, तर्कपूर्ण विचार या प्रमाण इस मान्यता के साथ कुछ भी नहीं है । महत्वपूर्ण बात यह है कि आज अमीर खुसरो का साहित्य उपलब्ध है, परंतु उनके द्वारा रचित एक भी तराना या ख्याल उपलब्ध नहीं है । कई विद्वानों का तो यहां तक कहना है, कि खुसरो ने अपने जीवन चरित्र में इनका उल्लेख तक नहीं किया है। यदि कहा जाय कि उनके रचित तराने समयानुसार नष्ट हो गए हैं तो कहा जा सकता है कि उनकी कविताएं नष्ट क्यों नहीं हुई, रागस्वरूप में नहीं तो कम–से–कम शब्दकोश में तो उपलब्ध होती[2]।

अमीर खुसरो को तराना गायकी का आविष्कारक न मानने वाले विद्वानों का मत है कि "नाट्यशास्त्र" पांचवीं शताब्दी का एक सर्वसम्मति से माना गया ग्रंथ है, उसमें वर्णित अनेक गीत प्रकारों में 'निर्गीत' एक गीत प्रकार है। निर्गीत को ही 'बहिर्गीत' भी कहा गया है। इसे निरर्थक गीत भी कहते हैं और इसके आविष्कर्ता नारद माने गए हैं। निर्गीत में स्तोभाक्षरों या शुष्काक्षरों का प्रयोग होता है। स्तोभाक्षरों का उपयोग वैदिक काल से भारतीय संगीत में प्रचलित है। वैदिक मन्त्रों को भी स्तोभाक्षरों के माध्यम से बढ़ाया जाता है। शुष्काक्षरयुक्त छंद का रूप भेद भरत रचित नाट्यशास्त्र में मिलता है। यह भी एक प्रमाण है,

जिससे यह सिद्ध होता है कि निरर्थक शब्दयुक्त गीतों का गान भारतीय संगीत में प्राचीन काल से ही है।

विद्वानों में आविष्कारक के विषय में मतान्तर होने के कारण भले ही अमीर खुसरो को तराना गायन शैली का अविष्कारक न माना गया हो, परन्तु तराना गायन की विधा में नवीनता लाने का श्रेय सभी विद्वानों ने अमीर खुसरो को ही दिया है।

उस्ताद अमीर खां का तराना के विषय में शोध

बीसवीं शताब्दी के महान संगीतज्ञ और इंदौर घराना के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध उस्ताद अमीर खां शास्त्रीय संगीत के ऐसे साधक थे, जिन्होंने अपनी कला साधना और रियाज से भारत की संगीत कला को न केवल "अमीर" बनाया बल्कि "अमर" भी कर दिया । उन्होंने संगीत में भक्ति व तन्मयता संचारित कर सम्पूर्ण संगीत जगत को विमोहित कर दिया । उस्ताद अमीर खां ने जिस तरह अपनी समझ तथा लगन से मेरुखंड पद्धति का आविष्कार किया उसी तरह उन्होंने तराना गायन–शैली के विषय में शोध भी किया है ।

उस्ताद अमीर खां साहब का दृढ़तापूर्ण यह मानना था कि तराना गायन शैली 13वीं सदी के असाधारण प्रतिभा संपन्न हजरत अमीर खुसरो की ही देन है । खां साहब इस विचार के साथ बिलकुल भी नहीं है कि तराना गायन सिर्फ निरर्थक शब्दों का द्रुत गति से उच्चारण कर जिह्वा कौशल को प्रदर्शित करने का नाम है । उनके विचार में यह सार्थक शब्द है जिनको पुनरावृत्ति में जप कर अपने गुरु, पीर या भगवान को स्मरण किया जाता था। खां साहब कहते हैं कि तराना में जो बोल हैं वे अरबी तथा फारसी भाषा के निरर्थक शब्द नहीं, बल्कि सार्थक हैं, परन्तु कुछ संगीतज्ञों की अज्ञानता के कारण और कुछ अरबी तथा फारसी भाषा का ज्ञान न होने के कारण ही इनको निरर्थक समझ लिया गया । ''स्वयं अमीर खां साहब के शब्दों में, "तराना उन्होंने (अमीर खुसरो) अपने धर्म गुरु (हजरत निजामुद्दीन औलिया) के लिए बनाया था । उसमें कुछ खास शब्द रखे जिनकी पुनरावृत्ति होती रहती है"[3]।

उस्ताद अमीर खां के अनुसार तराना में शब्दों के अर्थ

तराना के विषय में अध्ययन तथा शोध के बारे में बात करते हुए खां साहब ने लन्दन में हुए अपने एक साक्षात्कार में कहा है कि एक बार खां साहब अपने एक बहुत अच्छे मित्र बिस्मिल सईदी के पास गए जो दिल्ली में रहते थे । बिस्मिल सईदी ने उनको अमीर खुसरो की अरबी व फारसी भाषा में लिखी हुई एक रूबाई (शायरी) सुनाई, उनके उस रुबाई के बोल कुछ यूँ थे, "दरा दरा दरतन, दरातदरतनदरतन"। उस्ताद अमीर खां का कथन है कि जब उनके मित्र ने उन्हें ये रुबाई सुनाई तो उन्हें ऐसा आभास हुआ जैसे रुबाई के बोलों का अर्थ "अंदर आओ, अन्दर आओ, तन के अंदर आओ" ऐसा कुछ हो। खां साहब ने इसके बाद 20–25 साल तक इस विषय में अनेक पुस्तकें पढ़ी तथा गहन अध्ययन कर यह ज्ञात किया कि तराना में बोल सार्थक होते हैं।बिहार अकादमी के द्वारा इस विषय पर शोध करने हेतु उन्हें फैलोशिप भी दी जा रह थी[4]।

'तराना' के शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं–

ओ दानी	– वह (ईश्वर) जानता है
तो दानी	– तू जानता है
ना दिर दानी	– तू सब कुछ जानने वाला
ता ना दिर दानी	– तन के अंदर भी जानने वाला
तोम	– मैं तुम्हारा
याला	– या अल्लाह
याली	– या अली
दर	– अंदर
दरा	– अंदर आओ
त न न दरा	– तन के अंदर आओ[5]

उस्ताद अमीर खां साहब राग हंसध्वनि का एक तराना बड़े चाव से गाया करते थे जो फारसी भाषा में इस प्रकार से है–

"इत्तिहादीस्त मियाने मनो तो
मनो तो निस्त मियां ने मनो तो"

इस तराना में लिखित शब्दों को समझाते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय में फारसी भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉ. शरीफ हुसैन कासमी बताते हैं,

इत्तिहादीस्त– मिलना/जोड़ना/ताल्लुक, मियांने – दरमियाँ में, मनो तो – तेरे–मेरे, नीस्त – नहीं है। अर्थात् तेरे और मेरे दरमियाँ एक ऐसा ताल्लुक है कि तेरे मेरे बीच मैं और तू का फर्क नहीं रह गया (मैंने तेरा इतना नाम लिया,

इतनी पूजा की है कि मैं और तू एक हो गए)।

राग दरबारी में एकताल में निबद्ध खां साहब द्वारा रचित यह तराना भी खां साहब द्वारा किये गए शोध को उजागर करता है–

"बे लबम रसीदा जानम, तो बिआ के जिन्दा मानम पस अज आं के मन ना मानम, बे छे कार खाही आमद"

बे – को, लबम – होठों, रसीद – पहुंचना, जानम – मेरी जिदगी, बिआ – आ जा, मानम – रह जाऊं, पस – बाद, अज आं – उस के, कार – काम, खाही – गा, आमद – आए। अर्थात्

मेरी जिन्दगी होठों पर पहुँच गयी है,
तू आ जा के मसीन जिन्दा रह जाऊं
उसके बाद कि जब मैं ना रहूँगा,
तू किस काम के लिए आएगा[6]।

इसी प्रकार, उस्ताद अमीर खां साहब ने भिन्न–भिन्न रागों में अनेक तरानों की रचना की है तथा उनमें लिखे गए शब्दों के अर्थ भी बताये हैं। खां साहब ने जोग, चंद्रकौंस, सुहा, अभोगी, मेघ, मारवा, गुर्जरी तोड़ी आदि रागों में भी तरानों की रचना की है।

निष्कर्ष :

उस्ताद अमीर खां के अनुसन्धान से यह ज्ञात हुआ है कि केवल भाषा की अज्ञानता के कारण यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है कि तराना के बोल निरर्थक हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। तराना के बोल अरबी और फारसी भाषा के शब्द हैं जो पूर्णतः अर्थयुक्त हैं। भाषा की जानकारी न होने के कारण कुछ प्राचीन संगीतज्ञों ने धा, किट, धूम, किट, धिन, तिन जैसे अर्थहीन शब्दों को जोड़ कर तराना के बोलों को निरर्थक बता दिया। तभी से तराना को निरर्थक गायन–शैली कहा जाने लगा। अब इस शोध–पत्र के माध्यम से शोधार्थी कहना चाहता है कि तराना को निरर्थक समझने की बजाय उसमें प्रयुक्त अरबी, फारसी भाषा के शब्दों को समझ कर उनके अर्थो को ईश्वरीय जाप के साथ जोड़ा जाय और संगीत–साधना के नए आयाम स्थापित किये जाएँ।

संदर्भ सूची :

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत तराना अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, जनवरी 1968, पृ.20
2. वही,
3. सिंह, तेजपाल एवं अरोड़ा, प्रेरणा, संगीत के देदीप्यमान सूर्य उस्ताद अमीर खां : जीवन एवं रचनाएँ, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005, पृ. 198
4. साक्षात्कार, यू–ट्यूब, Ustad Amir Khan, Interview in London. uploaded by Narayan Sarkar, on 10 August 2014.
5. वही, पृ. 199

नाट्‌य एवं कला के माध्यम से अधिगम प्रक्रिया में अध्यापकों की भूमिका (राष्ट्रीय शिक्षा–नीति–2020 के संदर्भ में)

डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र**

वंदना कुमारी*

सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा–नीति– 2020 प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में तैयार की गई है। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन हेतु नहीं बल्कि पूर्ण आत्म–ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना जाता रहा है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को स्थापित रखते हुए विश्वस्तरीय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात करती है। शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित, जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित हो शिक्षा। शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास कर सकें, उसके लिए पाठ्‌यक्रम में विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और फिटनेश, भाषाओं, साहित्य–संस्कृति और मूल्य का समावेश होना चाहिए।

नाट्‌य में कल्पनात्मक रूपांतरण तथा अनुभवों पर विमर्श सम्मिलित है, विद्यार्थियों के मस्तिष्क में आए विचारों पर कार्य करने की योग्यता में विस्तार में सहायता करता है। यह कौशल दैनिक जीवन में समस्या–समाधन, स्थितियों और विचारों के संगठन के लिए आवश्यक है। कक्षा, विद्यार्थी की क्षमता और पढाए जाने वाले विषयों के अनुसार अध्यापक दो तरह की नाट्‌य प्रविधियों– रेखीय नाट्‌य पद्धति एवं प्रक्रिया आधारित नाट्‌य विधि को अपनाता है। इस दिशा में शिक्षकों की भूमिका उनके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से अहम्‌ हो जाती हैं।

सूचक शब्द : *भारतीय ज्ञान, अधिगम–अनुभव वांछित–परिवर्तन, रचनात्मक, कल्पनाशीलता, आशु रचना।*

प्रविधि : *इस शोध–पत्र को विभिन्न द्वितीयक माध्यमों से प्राप्त सामग्री के बाद तैयार किया गया है।*

शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए शिक्षण युक्तियों का उपयोग शिक्षक कक्षा की परिस्थितियों तथा आवश्यकतानुसार करता है। शिक्षक युक्तियां छात्रों और शिक्षकों के मध्य अन्तः प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाती है। कला एवं नाट्‌य पाठ्‌यक्रम के संचालन के दौरान रचनात्मकता एवं कल्पनाशीलता को अभिव्यक्त करने का अवसर देती है। किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों के अपने परिवेश, संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानकि अनुभव भिन्न होते हैं। विद्यार्थी नाट्‌य, दृश्यकला, रंगमंच, लोककला संगीत, नृत्य आदि के विभिन्न रूपों में अनुभवों को प्रदर्शित करते हैं।

अधिगम प्रक्रिया के रूप में नाट्‌य और कला :

अधिगम सीखने की व्यवस्था कहलाती है। एक अच्छे एवं सुव्यस्थित शिक्षण का उदेश्य अच्छा अधिगम होता है जो सदैव उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्योन्मुख होता है। कौनवैक और डॉट्स के अनुसार 'अधिगम अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है'। डॉ कुलश्रेष्ठ के अनुसारश शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की क्रियाएं सम्पादित की जाती हैं। इन क्रियाओं के फलस्वरू शिक्षण और सिखाने वाली परिस्थितियों में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए शिक्षण युक्तियों का उपयोग शिक्षक कक्षा की परिस्थितियों तथा आवश्यकतानुसार करता है। शिक्षक युक्तियां छात्रों और शिक्षकों के मध्य अन्तः प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाती है। कला एवं नाट्‌य पाठ्‌यक्रम के संचालन के दौरान रचनात्मकता एवं कल्पनाशीलता को अभिव्यक्त करने

*शोध छात्रा, शिक्षा शास्त्र विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

**सहायक निदेशक, डी.डी.ई., ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

का अवसर देती है। किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों के अपने परिवेश, संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुभव भिन्न होते है। विद्यार्थी नाट्य, दृश्यकला, रंगमंच, लोककला संगीत, नृत्य आदि के विभिन्न रूपों में अनुभवों को प्रदर्शित करते हैं।

इसलिए कला को रोजमर्रा के अनुभवों से अलग नहीं किया जा सकता और फलस्वरूप इन अनुभवों के माध्यम से ही कला, विद्यार्थियों में, चारों ओर दुनिया की सराहना करने के लिए कलात्मक संवेदनशीलता विकसित करने में सहायक हो सकती है।

कक्षा बाहरवीं तक विद्यालय की पाठ्यचर्या में कला शिक्षा के लिए एक विषय के रूप में समेकन से बच्चे के व्यक्त्वि के सम्पूर्ण विकास में योगदान देने के अतिरिक्त निश्चित महत्वपूर्ण उद्देश्य है। कला–शिक्षा बच्चों को शिक्षण–अधिगम के आनंद को पूर्णतः अनुभव करने एवं इसकी सराहना करने के योग्य बनाती है और बच्चों के मानसिक विकास में सहायता करती है।

रेखीय नाट्य–प्रक्रिया में विद्यार्थियों को जोड़ने से पहले अध्यापक द्वारा नाट्य गतिविधियां प्राथमिकता, नियोजित और रूपरेखा रूप में तैयार कर ली जाती है। यह विद्यार्थियों द्वारा सर्जनात्मक योगदान देते समय अध्यापक को अधिक नियंत्रण प्रदान करता है।

विद्यार्थियों के अधिगम के संर्वद्धन के लिए अध्यापकों द्वारा रेखीय नाट्य उपागम में साईड–कोचिंग–तकनीक में अध्यापक पाठ की क्रिया को रोके बिना कौशलों के अधिगम की सुविधा प्रदान करता है। स्पॉट लाइटिंग और साझा तकनीक अनौपचारिक रूप से प्रतिभागियों को दूसरों के कार्यों को देखने, दूसरों के विचारों से प्रेरणा लेने और कार्य क्षणों को सुरक्षित रूप से साझा करने का मौका देती है। 'कहानी कहना' तकनीक का प्रयोग चरित्र को महत्वपूर्ण बना देता है। नाट्य में 'कहानी कहना' कला का प्रयोग नाट्य के सम्पूर्ण अनुभवों को जीवन्त बना देता है।

आशुरचना :

रेखीय नाट्य में समायन्यतः प्रयुक्त तकनीक विद्यार्थियों को आशुरचना करने का अवसर प्रदान करती है। इन तकनीको के अलावा, मुक्त अभिनय (विचार प्रस्तुतिकरण के बिना शब्दो में केवल शारीरिक चेष्टाओं, हावभाव एवं मुख्यभंगिमाओं पर निर्भर करते हुए नाट्य का प्रयोग, पूर्व ज्ञान को वर्तमान पाठ से जोड़ना इत्यादि है।)

प्रक्रिया आधरित नाट्य विधियों के माध्यम से जीवन के बारे में अधिगम पर केन्द्रित है। यह एक अत्यन्त प्रतिभागितापूर्ण विधि है, जहां प्रतियोगी और संसाधक दोनों ही नाट्य को रूप देते हैं। प्रक्रिया आधारित नाट्य–तकनीक अनुभवों को गतिविध्यिों में विभाजित किए बिना अधिगम को एक सम्पूर्ण अधिगम अनुभव की तरह लेती है। प्रक्रिया आधरित नाट्य में विद्यार्थी के लिए आरंभ, मध्य और अंत की अपेक्षा सम्पूर्ण अधिगम प्रक्रिया को एक सातव्यक के रूप में अनुभव करने का अवसर देना सम्मिलित है।

इसके अर्न्तगत प्रयोग में आनेवाली तकनीकों में– मैंटल आफ द एक्सपर्ट– इस विधि में प्रतिभागी एक सहयोगी वातावरण में कार्य करते हुए अपने रूचि क्षेत्रों को साझा करते हैं। सर्वधन तकनीक के अन्तर्गत– नाट्य को किसी एक निश्चित दिशा में मोड़े बिना नाट्य का मार्गदर्शन करने मे सहायता करता है। भूमिका–निर्वाह तकनीक में प्रतिभागी वास्तविक एवं विश्वासयोग्य चरित्रों की रचना करता है जिनकी चरित्र में ही रूचि होती है। अनुरूपण तकनीक वास्तविक जगत अनुभव का एक अनुकरण है इसमें संवर्द्धन वास्तविक अथवा कल्पनात्मक घटनाओं पर आधारित अनुरूपण विकसित करता है।

कलाएं सृजनात्मक, लेखन, नृत्य संगीत, सिनेमा और दृश्यात्मक कलाएं संसार के प्रति अपने अनुभवों को साझा, रिकार्ड एवं उन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। सृजनात्मक लेखन कई कला प्रकारों, काव्य, कहानी, गीत, नाट्य कला और नाट्य का मूल है जो विद्यार्थियों को इनके आस–पास के वातावरण का अन्वेषण करने एवं अपनी समझ व्यक्त करने में सहायता करता है। नृत्य एक ऐसी कला है जो विद्यार्थियों में अनुशासन, नियंत्रण, लय और शालीनता को जन्म देती है, उनमें गतिसंवेगी कौशल विकसित करने में सहायता करती है।

संगीत अधिगमकर्ता ध्वनि के माध्यम से अभिव्यक्ति की कला और सम्प्रेषण सीखते है। विद्यार्थी ध्वनि के स्रोत चाहे एकल हो अथवा समवेत, विभिन्न उपकरणों और ध्वनियों तथा उनके सम्बन्धों को बैंड, समूह और वाद्यमंडल और विभिन्न छोटे समूहों में पहचानना सीखते हैं।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य बच्चों का शारीरिक–भौतिक, संज्ञानात्मक, समाज–संवेगात्मक–नैतिक विकास, सांस्कृतिक विकास है जो नाट्य एवं कला तकनीक का प्रयोग करने का सुझाव देती है। नीति का उद्देश्य हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास कर उनमें अवधारणात्मक समझ, रचनात्मक और तार्किक सोच विकसित करना है। इस हेतु मुख्य रूप से लचीली, बहुआयामी, बहुस्तरीय, खेल एवं गतिविधि आधारित जिसके अन्तर्गत नाट्य एवं कला को भी सम्मिलित किया गया है, को शिक्षा में शामिल करना है। इस बुनियादी परिवर्तन हेतु शिक्षकों की अहम् भूमिका है जो अपने शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुँचा सकते हैं। इसके लिए शिक्षण अधिगम का सबसे सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम नाट्य एवं कला ही है।

संदर्भ सूची :

1. राष्ट्रीय शिक्षा–नीति 2020, पृष्ठ–9
2. नई शिक्षा नीति 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
3. कस्तुरीरंगन के 2021 'लिबरल एजुकेशन– ए ट्वेंटी पफर्स्ट सेंचरी, इन शिएटिव पन्द्रहवा स्थापना दिवस व्याख्यान' एनआईईपीए, नई दिल्ली, 11 अगस्त।
4. टैगोर, आर. (1917), दि पर्सनेलिटी न्यूयार्क, मैकमिलन कंपनी।
5. डी.बी.जे (1980), आर्ट ऐज एक्सपिरिएंसेज, न्यूयार्क, एनवाई, पैरिजी वुक्स।
6. गार्डनर, एच (1983), पफेमस ऑपफ माइंड, न्यूयार्कः वेसिक वुक इंक।

शास्त्रीय संगीत का अन्य विषयों से अन्तरानुशासनिक सम्बन्ध

डॉ. गौरीप्रिया सोमनाथ** **सविता मौर्या***

शोध सारांश

आज नवीन युग में संगीत शास्त्रीयता की परिधि के साथ–साथ अन्य विषयों में भी समाज एवं संस्कृति के साथ व्यक्ति की आवश्यकताओं में उपयोगी सिद्ध हो रहा है। वर्तमान परिवेश की वीथी में शास्त्रीय संगीत का अन्य विषयों से अन्तरानुशासनिक सम्बन्ध का विशेष महत्व है। अन्तरानुशासनिक शब्द से तात्पर्य है, दो या दो से अधिक विषयों के मध्य शिक्षा के माध्यम से ज्ञान, बोध एवं शोध को विकसित करना।

शिक्षाशास्त्र और मनोविज्ञान विषय के अन्तर्गत किण्डरगार्टन शिक्षा–प्रणाली में बालकों को खेलकूद के माध्यम से नृत्य एवं लय, ताल व काफिया मिलाने वाली छोटी–छोटी कविताओं के द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में ही संगीत की शिक्षा का ज्ञान देना और बालकों के संवेगों को सही दिशा में विकसित करने का कार्य शास्त्रीय संगीत की अन्य विषयों से अन्तरसम्बद्धता का ही परिणाम है। शास्त्रीय संगीत की तीन विधाएँ–गायन, वादन एवं नृत्य हैं। इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध अन्य विषयों, यथा–गणित, भौतिकी, सम्प्रेषण, रेडियो–टीवी, दूरदर्शन, दिव्यांगजनों की समावेशी शिक्षा, ध्वनि विज्ञान, मंच विधान, एनीमेशन, स्लाइड, प्रोजेक्टर, रूप–सज्जा, प्रकाश व्यवस्था की नवीन तकनीक आदि विषयों से है। वादन एवं नृत्य क्रिया में एक्यूप्रेशर विज्ञान विधान, स्वरों के उच्चारण एवं कण्ठ क्रिया में योगध्यान विज्ञान एवं दर्शन शास्त्र आते हैं। शास्त्रीय संगीत का संस्कृत और हिन्दी काव्य साहित्य एवं अन्य भाषा विज्ञानों के साथ अन्तर सम्बद्धता एक सिक्के के दो पहलू की भाँति है।

आज तीव्र तकनीकी इन्टरनेट के युग में लगभग सभी विषयों में बड़े पैमाने पर शोध एवं प्रयोग हो रहे हैं, जो व्यैक्तिक विकास के साथ सामाजिक उपयोगिता एवं प्रगति की दृष्टि से प्रवाहमान सिद्ध हो रहे हैं। अतएव संगीत की शास्त्रीयता को बनाए रखते हुए समय के साथ परिवर्तनशील और विकासपूर्ण क्रियायें संगीत के साथ अन्य विषयों की सांगोपागंता की समावेशिता के उद्देश्य को पूर्ण होने में सहयोगी सिद्ध हो रही है।

कुंजी शब्द : *संगीत, शिक्षा, अन्तरानुशासन, काव्य, साहित्य, विज्ञान*

प्रविधि : *विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के बाद इस शोध–पत्र को तैयार किया गया है ।*

वर्तमान परिवेश की वीथी में शास्त्रीय संगीत का अन्य विषयों से अन्तरानुशासनिक सम्बन्ध का विशेष महत्व है। अन्तरानुशासनिक शब्द से तात्पर्य है दो या दो से अधिक विषयों के मध्य शिक्षा के माध्यम से ज्ञान, बोध एवं शोध को विकसित करना, जिससे शास्त्रीय संगीत की दिशा में वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपयोगी परिणाम प्राप्त हो सकें। 'परिवर्तन' कालचक्र की परिधि है। काल विशेष की 'स्थिति' वातावरण से आवेशित होती है। स्थिति से तात्पर्य भूत, वर्तमान की तात्कालिक और भविष्य की आकस्मिक परिस्थिति से है। ये परिस्थितियाँ अपने–अपने परिवेश की सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अवस्थाओं से पूरी तरह प्रभावित होती हैं। इसी क्रिया का एक उदाहरण है, शास्त्रीय संगीत जो समय–समय पर फल–फूल कर वर्तमान में अपने परिवर्तित स्वरूपों में; किन्तु शास्त्रीयता की नींव पर प्रतिस्तम्भित हैं।

आज शास्त्रीय संगीत मानव की प्रथम आवश्यकता 'जीविकोपार्जन' में अन्य तकनीकी एवं शैक्षणिक विषयों के मध्य आधारभूत तत्व के रूप में वर्चस्व में है। शास्त्रीय संगीत का अन्य विषयों से अन्तरानुशासनिक सम्बन्ध से अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि गायन, वादन एवं नृत्य ये शास्त्रीय संगीत की तीन विधाएँ हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध अन्य विषयों, यथा– गणित, भौतिक, दर्शन, योग, स्वास्थ्य, भाषा, मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र, सम्प्रेषण, रेडियो–टी.वी., दूरदर्शन आदि विषयों से है।

*शोधार्थी, भरतनाट्यम विभाग (यू.जी.सी. नेट / जे.आर.एफ), राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
**शोध निर्देशक, विभागाध्यक्षा, भरतनाट्यम विभाग, राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

शास्त्रीय संगीत के अन्तः विषयक गुणों की विषेषता में नाद, स्वर, लय एवं ताल व ताल के दस प्राण आदि के मापन एवं विभाजन का आधार गणित एवं भौतिक विज्ञान विषय से सहसम्बद्धता पर आधारित है।

गायन, वादन एवं नर्तन क्रिया में क्रमशः कण्ठ क्रिया, स्वरोच्चारण, एक्यूप्रेशर, तथा पाद–विधान आदि में योग–ध्यान का विज्ञान एवं दर्शनशास्त्र आते हैं। शास्त्रीय संगीत का संस्कृत, हिन्दी आदि भाषा विज्ञानों में भी एक सिक्के के दो पहलू के रूप में होना प्रत्यक्ष है। इनमें उपलब्ध साहित्य कथानक के भाव का आधार बनता है।

आज नवीन युग के प्रवेश–काल से निरन्तर प्रगति करते हुए संगीत शास्त्रीयता की परिधि के साथ विज्ञान जगत में भी आवेशित है। रोगोपचार, भूमि की उर्वरक क्षमता को बढ़ाने में नित नवीन सांगीतिक एवं वैज्ञानिक प्रयोग हो रहे हैं। रागों एवं थाठों की प्रकृति रोगोपचारक भी हैं। यह सिद्ध भारतीय सिद्धान्त आज विश्वव्याप्त सत्य बनकर प्रसिद्ध हो रहा है। औपचारिक शिक्षा विधान में शिक्षाशास्त्र विषय के अन्तर्गत किण्डर गार्टन शिक्षा, प्रणाली में बालकों को खेलकूद में पी.टी. (Physical training) के माध्यम से नृत्य क्रियाएँ, Foot taping और clapping के माध्यम से शिक्षा में ताल–लय का आरम्भिक ज्ञान बालकों को प्रारम्भिक अवस्था से करवाया जाना, Poems और Rhym में सिखाने की प्रक्रिया के द्वारा शिक्षा में संगीत और संगीत में शिक्षा का पुट देखने को मिलता है। ये सभी उदाहरण संगीत की अन्य विषयों से सहसम्बद्धता की प्रारम्भिक अवस्था ही है।

मनोविज्ञान विषय के अध्ययन के अन्तर्गत यह भी सर्वविदित है कि बालक में शारीरिक विकास के साथ उनके संवेगों के उचित विकास के लिए बालकों की रूचियों को उनकी क्षमतानुरूप विकसित करने में शास्त्रीय संगीत की तीन विधाएँ–गायन, वादन व नृत्य की क्रियाएँ अपनी विशेष भूमिका निर्वाह करती है। लोगों में शास्त्रीय संगीत की अन्य विषयों के साथ सहसम्बद्धता के प्रति जागरूकता भी है। दूसरी ओर, शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र स्वयं इतना विशाल है कि इसमें होने वाले विभिन्न शोध अपर्याप्त हैं। निरन्तर नवीन सांगीतिक क्षेत्र में विशिष्ट शोधों की आवश्यकता भी है। साथ ही, आधुनिक युग में तकनीकी जगत की रफ्तार से शास्त्रीय संगीत में रेडियो, टी.वी. दूरदर्षन ने अपनी अलग ही अनूठी उपयोगिता स्थापित की है। ध्वनि विज्ञान, मंच विधान, रूप–सज्जा एवं प्रकाश की नवीन तकनीकी व्यवस्था में एनिमेशन, स्लाइड प्रोजैक्टर का व्यापक सहयोग है जिसके लिए इन तकनीकी विषयों के जानकारों का अपने विषय में अनुभवी एवं सिद्धहस्त होना अतिआवश्यक होता है। इस सिद्धहस्तता हेतु व्यक्ति शास्त्रीय संगीत का जानकार होता है तो इन तकनीकी विषयों का शास्त्रीय संगीत में और शास्त्रीय संगीत को तकनीकी विषयों में प्रयोग करना अत्यन्त सुविधाजनक एवं उपयोगी हो जाता है।

किसी भी विषय पर जब चिन्तन किया जाता है तो उस विषय से जुड़े अनेक रहस्य स्वयं प्रकट हो जाते हैं। शास्त्रीय संगीत के विषय में विचार करने पर बहुत से अन्य विषयों का संगीत के साथ एक परस्पर सम्बन्ध देखा जा सकता है। संगीत की आत्मा मूल रूप से ध्वनि है जो भौतिक विज्ञान का एक आवश्यक अंग है और ध्वनि संगीत का अभिन्न अंग या बीज–आधार है। मूलरूप से संगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते हैं। संगीत में ध्वनि की अनोखी व्यवस्था है। पौराणिक विवेचन में नाद के दो भेद बताए गए हैं आहत नाद एवं अनाहतनाद। अनाहत नाद विश्व में ब्रह्म की भाँति स्वयंभू है। अनाहत नाद की यह आलौकिक एवं मूर्त व्याख्या है। वहीं आहत नाद वह नाद है जो किसी भी प्रकार के संघर्षण (किसी भी प्रकार के आघात) के कारण उत्पन्न होता है। लौकिक अस्तित्व में यही आहत नाद संगीत का माध्यम है। किन्तु हर प्रकार का आहत नाद संगीत नहीं है। ठीक उसी प्रकार, जैसे हर बोला गया या लिखा गया शब्द साहित्य नहीं होता है। नाद के बाईस भेद हैं जो सुने जा सकते हैं। गाने की क्रिया में नाद के बाईस भेद होते हुए भी व्यवहार में नाद तीन प्रकार का माना जाना चाहिए। हृदय का 'मन्द्र', कण्ठ का 'मध्य' और मस्तिष्क का 'तार' जानना चाहिए। यह नाद एक–दूसरे से दूना ऊँचा समझना चाहिए अर्थात् मन्द्र का दूना मध्य, मध्य का दूना तार सप्तक का मान होता है, अब इस दुगुनत्व को नापने का साधन क्या हो? तब भैतिक विज्ञान के द्वारा किसी नाद के ऊँचेपन या नीचेपन के गुण को तारता (Pitch) द्वारा आँका जाता है। तारता को आँकने का साधन आवृत्ति या कम्पन्न संख्या प्रति सेकेण्ड है और मन्द्र, मध्य तथा तार सप्तक के नाद की आवृत्ति को कम्पन्न संख्या प्रति सेकेण्ड में नाप कर दोगुना कहा जाएगा। इसी क्रम में गणित एवं भौतिक विषय की संगीत के तीनो पक्षों से समरसता

अप्रतिम है। तालों की संख्या, विभाग, मात्रा, काल, गति आदि में गणित की निर्विवाद भूमिका है।

योग एवं दर्शन की विशेषताएं शास्त्रीय संगीत की आधारिक या तात्विक विशेषताएँ है। जब साधक प्राणायाम में श्वसन क्रियाओं का निष्पादन करते हैं तब अनुलोम–विलोम की रेचक एवं कुम्भक क्रियाएँ गायन हेतु मानव कण्ठ को सम्बल प्रदान करती हैं, स्वरोच्चारण एवं खरज आदि क्रियाओं के अभ्यास में निखार उत्पन्न करती हैं।

नृत्य के क्षेत्र में एक उदाहरण–भरतनाट्यम नृत्याँगना सुधारानी रघुपति का है उन्होनें अपनी संस्था 'भरतालय' में भरतनाट्यम् नृत्य की शिक्षा को मुख्य आधार बनाकर संगीत, साहित्य एवं योग जैसे विषयों की शिक्षा का अन्तरानुशासनिक समावेश किया।

दर्शन विज्ञान में परा–अपरा, लौकिक–परालौकिक, त्रिगुण धर्म सत–रज–तम जैसे शब्दों के तात्विक अर्थ को जीवन में उतार कर परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का आध्यात्मिक पक्ष शास्त्रीय संगीत के मूल तत्व को परिलक्षित करता है, शास्त्रीय संगीत में गायक, वादक व नर्तक अपनी–अपनी क्रियाओं में तल्लीन होते हुए परमात्मा की साधना करते है। वहीं वादक अपने वाद्य में जब एकाग्रता स्थापित करता है तब यह हृदयान्वित क्रिया मन पर सकारात्मक ऊर्जा का सृजन कर मानसिक स्वास्थ्य को प्रबल करती है और घुँघरू, वीणा, सितार, तानपुरा, तबला, मृदंग, ढोलक, मुरचंग, डाडछम, घटम, बांसुरी, पेंपा आदि हजारों वाद्यों को बजाने से गायक एवं वादक नर्तक के शरीर में रक्तचाप को सुचारू कर विभिन्न प्रकार से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करता है। साथ ही, वातावरण की वायु में सकरात्मकता का संचार कर दर्शकों के मानसिक स्वास्थ्य को भी सकारात्मकता एवं निर्मलता प्राप्त होती है।

विभिन्न नृत्य प्रकारों कथक, भरतनाट्यम, ओडिसी, कथकली, मोहिनीअट्टम, सत्रिय, मणिपुरी, ओजापाली, कुडियाट्टम्, कलरिपयट्टु आदि सैंकड़ों लोक नृत्यों भाव–भंगिमाओं एवं हस्त–क्रियाओं से नाड़ियों एवं धमनियों का सुचारू रूप से कार्य करना प्रारम्भ होता है। पैरों की थापों से एक्यूप्रेशर प्वाइण्ट्स में लाभ पहुँचता है, जैसे आँखों के रोग, अनिद्रा, उदासीनता, जुखाम, कमरदर्द, पीठदर्द, कब्ज, हार्निया कानों एवं दाँतों के रोग तथा थायराइड, हार्मोन्स आदि से सम्बन्धित प्वाइण्ट्स पर नृत्य क्रिया द्वारा जो प्रभाव पड़ता है वह स्वास्थ्य विज्ञान एवं शास्त्रीय संगीत की विशेष एकरूपता का उदाहरण है। इन सम्बन्धित विषयों पर देश एवं विदेश में बड़े पैमाने पर अनुसंधान हो रहे हैं।

विकलांग एवं दिव्यांगजनों को मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य भी शास्त्रीय संगीत को आधार बनाकर सुगमतापूर्वक किया जा रहा है। दिव्यांग लोगों को वार्तालाप हेतु सम्प्रेषण की भाषा में हस्त मुद्राओं का प्रयोग करना, मधुर संगीत एवं वाद्यों का प्रयोग आदि करना; जिसके स्पष्ट उदाहरण– पुनर्वास केन्द्र एवं विश्वविद्यालय देश–भर में स्थापित हैं। यहाँ दिव्यांगजनों को अन्य विषयों में धीरे–धीरे पारंगत करने का कार्य शास्त्रीय संगीत की अन्तर्सम्बद्धता से सिद्ध किया जा रहा है जिससे विकलांग एवं दिव्यांग वर्ग आत्मनिर्भर बन कर मुख्यधारा में स्थान प्राप्त कर सकें।

संस्कृत साहित्य एवं अर्न्तराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भरतनाट्यम, नृत्यांगना जयलक्ष्मी ईश्वर ने मूक–बधिर बालकों के साथ बहुत कार्य किया। हिन्दी काव्य प्रारम्भ से ही शास्त्रीय संगीत के आवरण से आच्छान्दित है फिर चाहे महाकवि कालीदास की रचनाएँ हों; जयदेव की अष्टपदि हो या फिर सूर, कबीर, तुलसी, मीरा की रचनाएँ हो या महादेवी वर्मा और मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद या निराला का लिखा काव्य। संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी भाषा का इतिहास संगीत के अप्रतिम उदाहरणों से भरा हुआ है जिसे कम शब्दों में सीमित कर पाना असम्भव है।

भाषा विज्ञान एवं शास्त्रीय संगीत की अन्तरानुशासनिकता का उदाहरण है जिसके अन्तर्गत संगीत और हिन्दी भाषा साहित्य को आधार बना कर हजारों शोध होने का क्रम जारी है। इसके परिणामतः निरन्तर समाज को कुछ–न–कुछ उपयोगी बातें हस्तगत हो रहीं हैं। ऐसे ही प्रयोग देश की अन्य भाषाओं एवं संगीत के मध्य किये जा रहे हैं, संगीत एवं काव्य में सौन्दर्यपरक तत्व रस, भाव आदि का समान रूप से महत्व है। यह विशेषता भी काव्य एवं शास्त्रीय संगीत की अर्न्तसम्बद्धता का भाग है।

शास्त्रीय संगीत का केवल दिव्यात्मक पक्ष ही नहीं बल्कि साहित्यिक पक्ष भी स्वयं में इतना विशाल है

कि इसकी समृद्धता का कोई दूसरा उदाहरण नहीं। शास्त्रीय संगीत से ही जुड़े हुए अन्य विषयों की सांगोपांगता का एक उदाहरण है संगीत के क्षेत्र में समीक्षकों, आलोचकों, इतिहासविदों की समृद्ध श्रृंखला का होना। भारत वर्ष की विशिष्ट संस्थाएँ एवं शिक्षण–संस्थान, जैसे– विश्वभारती, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, कलाक्षेत्र फाउण्डेशन, संगीत नाटक अकादमी, रवीन्द्र भारती, विभिन्न विश्वविद्यालय तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी संस्थाएँ है जिनका योगदान अविस्मरणीय है। मोहन खोकर जी ने नृत्य–प्रशिक्षण के साथ भारत सरकार के विभिन्न अधिकारी पदों को सम्भाला। रेडियो, दूरदर्शन एवं विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में नृत्य समीक्षक, परीक्षक, सलाहकार बन कर योगदान दिया। इसी श्रृंखला में विदुषी कपिला वात्स्यायन, सुनील कोठारी आदि नाम अविस्मरणीय हैं।

निष्कर्ष :

एक ओर शास्त्रीय संगीत के तीनों पक्ष बहुत ही समृद्ध हैं जिनका वर्णन सीमित शब्दों में कर पाना नितान्त असम्भव है, वहीं दूसरी ओर कितनी ही पत्रिकाओं में लेखन का कार्य अबाध गति से निरन्तर गतिमान है और वर्तमान तकनीकी जगत में कितने ही Online Portal एवं जर्नल, पुस्तकें, पुस्तकालय उपलब्ध हैं, जैसे– narthaki.com, www.nanthanam.in ये सब आधुनिक तकनीकी का शास्त्रीय संगीत की वर्तमान परिवेश के साथ गतिशील सृजनशीलता के ही उदाहरण हैं, अतएव वर्तमान समय में आज प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा–प्राप्ति के साथ–साथ कुशल जीवनयापन के लिए जीविकोपार्जन के उपायों का होना भी अत्यन्तावश्यक है। अन्ततः इसी दिशा में शास्त्रीय संगीत जैसे विशिष्ट विषय के साथ अन्य विषयों की समरूपता, समावेशिता मानव जीवन में मानसिक सुख के साथ ईश्वरोपरासना के मार्ग पर भौतिक जगत में जीवनयापन का सुखद साधन भी है।

सन्दर्भ सूची :

1. पलनीटकर, अलकनन्दा (डॉ.), (सम्पादक), शास्त्रीय संगीत शिक्षा समस्याएँ एवं समाधान, प्रथम संस्करण –2006, सक्सेना रोकशबाला (डॉ.) अध्याय–6 'वर्तमान सन्दर्भ में संगीत शिक्षा' : एक विवेचन ISBN 81-8877-94-0
2. पन्नालाल, मदन, संगीत शास्त्र विज्ञान, संशोधित संस्करण 1991, पृ. 141, 142, 145
3. द्विवेदी, आचार्य कपिलदेव (पद्मश्री डॉ.), संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, संस्करण : 2014, प्रकाशक – रामनारायण लाल विजय कुमार ।
4. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, भरतनाट्यम भाग–1, द्वितीय संस्करण–2008 जून, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस 204 101 (उ0प्र0)
5. कोठारी, कोमल, साहित्य संगीत व कला, संस्करण–1991, अध्याय– 'शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत', पृ. 146
6. मिश्रा, कान्ता प्रसाद, स्वर विज्ञान एवं गणित, अध्याय–9, पृ. 139 तथा 79

संप्रेषण–माध्यम के रुप में चित्रकला रूपों की समाज में भूमिका

धर्मवीर सिंह*

शोध सार

कला एवं समाज एक–दूसरे के अभिन्न अंग है। एक चित्र हजारों शब्दों को एक साथ अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है। जहां अभिव्यक्ति करने में शब्द भी मौन हो जाते हैं, वहाँ एक चित्र उसकी अभिव्यक्ति देता है। आदिकाल में अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम चित्र थे, यह अभिव्यक्ति सीमित क्षेत्र तक ही होती थी जिसमें समय के साथ परिवर्तन होते हुए आजकल डिजिटल युग में अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार हो गए और अभिव्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक होने लगी है। मीडिया का कला एवं संस्कृति के साथ आदिकाल से पारस्परिक सम्बन्ध रहा है। आज के डिजिटल युग में तो यह सम्बन्ध और भी गहरा और विस्तृत हो गया है, इसका विस्तृत रुप से वर्णन इस शोध–पत्र में किया गया है।

मूल शब्द : *कला, समाज, संप्रेषण, डिजिटल*

प्रविधि : *प्रस्तुत शोध को शोध की ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक विधि द्वारा सम्पन्न किया गया है। इसके अलावा विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्र, वेबसाइट इत्यादि से इनके बारे में अध्ययन कर इस शोध–पत्र को पूर्ण किया है।*

प्रस्तावना :

कलाकार का व्यक्तित्व समाज में ही निहित होता है। चित्रकार समाज में जन्म लेकर वहां की ही भाषा एवं संस्कृति को सीखता है। आदिकाल से ही चित्रकला रूपों के माध्यम से मानव ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। इसका इतिहास साक्षी है, कि जैसे–जैसे सामाजिक विकास हुआ है। उसमें चित्रकला रूपों का विशेष योगदान रहा है। अगर हमें चित्रकला रूपों का संप्रेषण के रुप में समाज को दिए योगदान के बारे में जानना है, तो सर्वप्रथम हमें कला और समाज के बारे में जानकारी होनी चाहिए।

कला :

किसी भी कार्य को कुशलता या निपुणता के साथ संपन्न करना, जिसमें आनन्द की प्राप्ति हो, उसे 'कला' कहते हैं, जैसे– चित्र बनाना, गीत गाना इत्यादि। लेकिन, गीत गाने को तभी कला कहा जाएगा जब उसे मधुर लय एवं ताल के साथ गाया जाए। और, चित्र बनाने को तभी कला कहा जाएगा, जब उसमें कोई विशेष भाव की निष्पति हो। कला को दो भागो में वर्गीकृत किया जाता है। ललित कला तथा उपयोगी कला। चित्रकला, ललित कला के अंतर्गत आती है। किसी भी देश की संस्कृति की वाहिका वहाँ की कला होती है।

समाज :

एक से अधिक का एक विशाल समुदाय जिसमें उनके विभिन्न आचरण, जीवन निर्वाह के विभिन्न क्रियाकलाप शामिल हों, उसे हम समाज कहते हैं।

कहा जाता है, कि कला समाज का दर्पण होता है। किसी भी समाज की संस्कृति, रहन–सहन, वेश–भूषा को कला के माध्यम से ही दर्शाया जाता है। डिजिटल युग में प्रत्येक वस्तु में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। इसके प्रभाव से कला एवं समाज भी अछूता नहीं है। जिस समय मानवीय सभ्यता की शुरुआत हुई। तब मानव को शब्दों का ज्ञान नहीं था। उस समय अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकों एवं संकेतों का उपयोग करते थे। आदिकाल में मानव ने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए पहाड़ों की सतह पर चित्रकारी की, जिसके माध्यम से उन्होंने अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाने का कार्य के रुप में उपयोग किया। उस समय मानव को भाषा का ज्ञान नहीं था। वह चित्र के माध्यम से विचारों को अभिव्यक्त करते थे जिससे उनके तात्कालीन जीवन के बारे में जानकारी मिलती है।

*शोधार्थी, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

चित्र सं.–1

इतिहास पर अगर हम दृष्टि डालें तो हमें मिलता है, कि आदिकाल से ही मीडिया का कला एवं संस्कृति के साथ गहरा नाता रहा है। प्राचीन काल में मानव डुगडुगी बजाकर गांव–गांव में जाकर अपने राजा अथवा सम्राट के आदेशों का प्रचार एवं प्रचार करते थे। उसके बाद राजा या सम्राट के आदेशों को अभिलेखों के माध्यम से प्रकट किया जाने लगा उन अभिलेखों को किसी कलाकार के माध्यम से भी निर्मित किया जाता था। उन अभिलेखों के चित्रकारी की जाती थी जिससे हमें उस समय के तत्कालीन जन–जीवन तथा उनकी संस्कृति के बारे में पता लगाता था। कलाकार ने अपनी कला के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक परिवेश की किसी–न–किसी रूप में प्रस्तुति दी है। कलाकार एक भावुक एवं सृजनशील प्राणी होता है। वह तत्कालीन समाज को अनुभव करता है, उसे ही चित्रित करता है। उसके द्वारा दी गई प्रस्तुति अनुभूति विषयगत रूप से अलग हो सकती है, लेकिन उसका एकमात्र लक्ष्य अपनी भावनाओं को दूसरे लोगों तक अवगत कराना होता है। कलाकार सत्य घटना को चित्रित करता है, और मीडिया उसको जन–मानस तक पहुंचाने का कार्य करता है। किसी चित्रकार द्वारा बनाया गया चित्र को टेलीविजन या सोशल मीडिया द्वारा प्रसारित किया जाता है। इसके अलावा किसी देश की वेश–भूषा तथा वहां के रीति–रिवाज दूसरे देशों में टेलीविजन या सोशल मीडिया के माध्यम से प्रसारित होते हैं। इसमें टेलीविजन सूचनाओं के प्रचार एवं प्रसार का एक साधन है जिसको हम मीडिया के उपकरण के रूप में भी कह सकते हैं। चित्रकार अपने चित्र के माध्यम से किसी भी घटना का संजीव अंकन करने में सक्षम है, जिसका वर्णन शब्दों से करना संभव होता है। एक चित्र अनेक शब्दों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए हम देखें तो कोई चित्रकार व्यंग्य चित्र बनाता है। इसको हम ओनोरे दोमीय के एक चित्र के मध्यम से समझते हैं। यह एक यथार्थवादी, फ्रांस का कलाकार था। इनका जीवन (1808–1879) ई. तक रहा। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं में चित्रकार के रुप में भी कार्य किया। इन्होंने सन 1831 ई. में गर्गेटुआ नामक चित्र को लिथोग्राफ में निर्मित किया। इसमें लुई फिलिप को अपने सिंहासन पर बैठे दर्शाया है, और उसके पूंजीपति वर्ग, गणमान्य व्यक्ति तथा विभिन्न नोकरशाहों का शोषण करते हुए दर्शाया गया है। इस चित्र को देखकर सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है, जिसको समझाने के लिए हजारों शब्द भी कम पड़ते हैं।

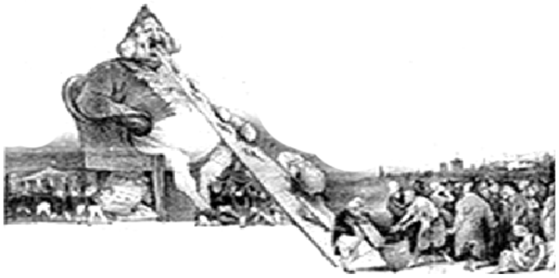

चित्र सं.–2

भारत ने पिछले 10,000 वर्षो के इतिहास में किसी दूसरे देश पर आक्रमण नहीं किया, फिर भी विदेशों में भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव रहा है। आज के डिजिटल युग में कला एवं समाज का क्षेत्र सीमित नहीं रहा। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल चुका है। आज अगर भारत में नवाचार या कोई नया आविष्कार हो रहा है, तो उसकी सूचना मीडिया के माध्यम से फ्रांस, अमेरिका, तथा इंग्लैंड इत्यादि विदेश में बहुत ही कम समय में पहुंच जाएंगी। पहले एक कलाकार अपनी भावनाओं को अभिभूत होकर एक चित्र बनाता है तो उसको केवल वे ही लोग देख सकते थे, जो प्रत्यक्ष रूप से वहां उपस्थित होते थे। लेकिन वर्तमान समय डिजिटल युग है, इसमें मीडिया विभिन्न माध्यम से कलाकारों के बनाए गए चित्रों को प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से उस चित्रों को क्षण–भर में ही लाखों लोगों तक पहुंचा सकते हैं। वे सभी इसके प्रत्यक्ष दर्शन कर पाते हैं और उस चित्रकार से संपर्क स्थापित कर उस चित्र की खरीददारी भी कर सकते हैं। डिजिटल युग में मीडिया के माध्यम हम सभी देश–विदेश के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं। कलाकार के सशक्त रंग तथा तूलिकाघात के पीछे एक विशेष संदेश छिपा होता है, जो तत्कालीन समाज से प्रभावित होता है। समाज में जब अव्यवस्था

फैलती है, तब आने वाले संकट से पूर्व ही एक चित्रकार अपने चित्रों के माध्यम से जन–मानस को आने वाले परिणामों से अवगत करा देता है जिसका एक सजीव उदाहरण विश्वविख्यात पाब्लो पिकासो की सुप्रसिद्ध पेंटिंग ग्वेर्निका में देख सकते है। इसमें प्रतीकात्मक रूप से जर्मनी का स्पेन के गाँव ग्येर्निका के ऊपर विध्वंस तथा रौद्र रूप को दर्शाया गया है। इसमें लड़की, बच्चा इत्यादि मानवों को चीखते हुए दर्शाया इसमें मानवता के विध्वंस को दर्शाया है। इसमें बैल, घोड़ा को दुख की पीड़ा में दिखाया है जिसके माध्यम से चित्रकार ने बताया है कि जब किसी क्षेत्र में बमबारी होती है तो वहाँ केवल मानवता का ही नहीं, बल्कि वहाँ रहने वाले पशु, पक्षियों तथा अन्य जीव–जन्तुओं का भी विनाश हो जाता है। इस चित्र में भयानकता, दयनीयता आतंक आदि स्पष्ट रुप से दिखाई दे रहे है।

चित्र सं.–3

वर्तमान डिजिटल युग में समाज का अर्थ केवल छोटे–छोटे समूह में नहीं रह गया है क्योंकि आज हम व्हाट्सएप, फेसबुक, यूट्यूब, ट्विटर तथा गूगल इत्यादि डिजिटल सॉफ्टवेयर के माध्यम से देश–विदेश से जुड़े हुए हैं जिससे किसी दूसरे देश की घटना से भी हम प्रभावित होते हैं। इसलिए कलाकार, कला और देश की सीमाओं से स्वतंत्र होकर समाज से प्रभावित होता है। वह तत्कालीन समाज को महसूस कर अपनी कलाकृतियों के माध्यम से वहां की परिस्थितियों की प्रस्तुति देता है।

यातायात एवं सड़क सुरक्षा के नियम जब बनाए जाते हैं, तो इन नियमों को आम जनता तक पहुंचाने के लिए चित्रकला का सहारा लिया जाता है। जैसा सभी को ज्ञात है कि जब हम गाड़ी को चलाते हैं तो उस गति में भी हम उस दिखाए गए चित्र को देखकर समझ जाते हैं कि सड़क पर क्या संकेत दिया गया है जिसको अपनाकर हम दुर्घटना से बच सकते हैं। इस प्रकार, वर्तमान में संप्रेषण के रूप में चित्रकला का उपयोग यातायात के नियमों को सरल एवं स्पष्ट रूप से समझने के रूप में होता है। इन चित्रों के स्थान पर अगर किसी लेख को लिख लिखकर समझाया जाए, तो वह इतना स्पष्ट एवं प्रभावशाली नहीं होगा, जितना चित्र की प्रस्तुति से होता है।

चित्र सं.–4

कार्टून एवं व्यंग्य चित्र भी विचारों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। उनके हाव–भाव समझने के लिए ज्यादा पढ़ा–लिखा होने की जरूरत नहीं है। इनको अनपढ़ व्यक्ति भी समझ सकता है। इसलिए यह भी मानव के विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। चित्रकारों ने समय–समय पर कार्टून के रूप में प्रशासनिक व्यवस्था का व्यंग्य–चित्रण कर अपनी अभिव्यक्ति दी है। इससे जन–समुदाय कार्टून को देखकर स्वयं ही आकलन कर लेता है कि इसमें क्या संदेश छुपा है। इसलिए यह अभिव्यक्ति शब्दों से अधिक प्रभावशाली होती है।

डिजिटल युग में दुनिया छोटी होती जा रही है अब हम किसी स्थान पर गए बगैर ही वहां की भाषा, कला एवं संस्कृति तथा वहाँ के रहन–सहन के बारे में जानकारी ले सकते हैं। हमें दुनिया के किसी भी कोने में संपर्क स्थापित करना हो तो वह इंटरनेट की शक्ति का प्रयोग कर, उनसे संपर्क स्थापित कर, चित्रकार कला रूपों के माध्यम से अभिव्यक्ति दे सकते हैं।

निष्कर्ष :

इस शोध के माध्यम से हमें संप्रेषण के रुप में समाज में कला के योगदान के बारे में पता चलता है। चित्र की अभिव्यक्ति शब्दों से बहुत अधिक प्रभावशाली होती है। चित्रों के मध्यमो से किसी भी रुपरेखा को समझना तथा समझाना सरल होता है। अभिव्यक्ति के रुप में चित्रकला रूपों का उपयोग आदिकाल से ही हो रहा है। यातायात के नियमों को सरल रुप से समझाने में चित्रों की विशेष भूमिका रही है। इनके अलावा व्यंग्य–चित्रों का उपयोग कर समाज में किसी के ऊपर कटाक्ष किया जा

सकता है। इसलिए हम संक्षेप में कह सकते हैं, कि संप्रेषण के रूप में कला का महत्व न तो पूर्व में कम था, न आज कम है और न हि आगे कम होगा। इसका पताका हर काल में आकाश में एक चमकते हुए सितारे की तरह विद्यमान रहेगा।

संदर्भ सूची :

1. वालिया, जे.एस. भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक इतिहास, अहम् पाल पब्लिशर्ज एन.एन. 11, गोपाल नगर, जालन्धर शहर, पंजाब, 2007
2. भारती, मीनाक्षी कासलीवाल. "भारतीय मूर्ति शिल्प एवं स्थापत्य कला" राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, सातवां संस्करण 2019.
3. सिंघानिया, नितिन, "भारतीय कला एवं संस्कृति" McGraw Hill Education (India) Private Limited, 4वां संस्करण, 2022
4. साखलकर, रत्नाकर विनायक, "यूरोपीय चित्रकला का इतिहास" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 16वा संस्करण, 2021
5. https%//www-jagran-com/lite/bihar/supaul-13170186-html (01-11-2023) 9 : 57pm
6. https%//hi-m-wikipedia-org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C#%~%teÛt¾%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%20%E0%A4%8F%E0%A4%95%20%E0%A4%B8%E0%A5%87%20%E0%A4%85%E0%A4%A7%E0%A4% BF%E0%A4%95%20%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%97%E0%A5%8B%E0%A4%82,%E0%A4%95% E0%A4%BE%E0%A4%AB%E0%A5%80%20%E0%A4%95%E0%A4%AE%20%E0%A4% AE%E0%A5%87%E0%A4% B2%E0%A4%9C%E0%A5%8B%E0%A4%B2%20%E0%A4%B0%E0%A4%96%E0%A4%A4%E0%A4%BE%20%E0%A4% B9%E0%A5%88%E0%A5%A4 (01-11-2023) 10 : 55 pm

संदर्भ चित्र :

1. वालिया, जे.एस. भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक इतिहास, अहम् पाल पब्लिशर्ज एन.एन. 11, गोपाल नगर, जालन्धर शहर, पंजाब, संस्करण 2007 पेज. न. 26
2. https%//images-app-goo-gl/yjUAaFd2NSNNsTj17 (19-10-2023), 6:10 am
3. https://www.wikiart.org/en/pablo-picasso (20-10-2023) 7:58pm
4. https://images.app.goo.gl/yuAyPUPj4641HGvE6 (01-11-2023) 9:47pm

मैहर घराना के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का सांगीतिक योगदान

डा० शोभित कुमार नाहर** **प्रज्ञा सिंह***

सारांश

विश्व संगीत जगत में विख्यात मैहर घराने की नींव रखने वाले बाबा अलाउद्दीन खां जिन्होंने अपनी कठोर संगीत साधना से अनेक शिष्य कलाकारों द्वारा मैहर घराने को नवजीवन दिया। बाबा अलाउद्दीन खाँ को अगर युग पुरुष कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बाबा अलाउद्दीन खाँ कहते थे, कि जब मैं बजाता हूं, तो बाहर नहीं देखता, आत्मा में झांकने का प्रयास करता हूं, वहीं तो भगवान है, उन्हीं को सुनाता हूं, स्वर से ही उनकी अर्चना करता हूं ,जब मग्न हो जाता हूं तो आंखों के सामने एक गुलाबी प्रकाश आ जाता है, स्वर मेरी चेतना को भर देता है। पूरे विश्व को भुला देता है, यह साधना ही धन है, फिर भी एक बात ध्यान में रखनी होगी कि भगवान की आराधना के रूप में ही साधना करनी चाहिए । इन्होंने सितार पर आलाप वादन शैली ध्रुपद अंग और बीन अंग तथा वीणा की मन्द्र और अनुमन्द्र आलापचारी से परिपूर्ण किया था। बाबा द्वारा विकसित वादन परंपरा को उनके शिष्यों ने आगे बढ़ाया ।

मुख्य बिंदु : *वाद्य, शिष्य, राग, ताल, मैहर घराना*

प्रविधि : *द्वितीयक माध्यमों का उपयोग कर यह शोध–पत्र तैयार किया गया है।*

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जन्म एक मध्य श्रेणी के मुसलमान परिवार में हुआ था, इनके पिता का नाम साधु खाँ तथा माता का नाम हरसुंदरी देवी था, प्यार से लोग 'आलम' कहकर पुकारते थे। उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ ने अपनी पुस्तक ''आमार–जीवनी'' में अपने वंश की परंपरा के बारे में बताया है।[1] इन्होंने सर्वप्रथम गायन की शिक्षा नूलो गोपाल भट्टाचार्य से ली, पंडित नंदलाल से तबला, मृदंग एवं पखावज की शिक्षा ली, श्री हबू दत्त से वायलिन सितार की शिक्षा ली, लोबो साहब से स्टाफ नोटेशन सीखा, शहनाई वादन की शिक्षा–श्री हजारी उस्ताद से ली, अंत में बाबा अलाउद्दीन खाँ रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ से गण्डा–बंधन कर गुरु–शिष्य–परंपरा में संगीत की शिक्षा ग्रहण की। वर्ष 1952 में संगीत नाटक अकादेमी ने उन्हें भारतीय संगीत के क्षेत्र में आजीवन विशेष योगदान के लिए अपने सर्वोच्च सम्मान स्वरुप 'संगीत नाटक अकादेमी फेलोशिप' प्रदान किया। वर्ष 1958 में भारत सरकार ने बाबा अलाउद्दीन खां को सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया। वर्ष 1971 में भारत सरकार द्वारा बाबा अल्लाउद्दीन खाँ को दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया।

बाबा का कहना था कि ''संगीत ही मेरी जाति और स्वर ही मेरा गोत्र है'' जिस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति के लिए मनुष्य ईश्वर दर्शन दो, शक्ति दो, कहते हैं और ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और इस आकांक्षा की प्राप्ति के लिए उसमें मग्न रहते हैं उसी प्रकार अलाउद्दीन खाँ स्वर प्राप्ति के लिए जीवन भर प्रयत्नशील रहे। इसके बाद भी वे कहा करते थे, संगीत एक रात में नहीं मिलता, साधना करो, मैंने पूरा जीवन साधना की किंतु स्वर नहीं मिला। सचमुच ही अनुभव के आधार पर कह रहा हूं , स्वर ब्रह्म को प्राप्त करना सहज नहीं, श्री भगवान की दया के बिना यह संभव नहीं।"[2] बाबा अलाउद्दीन खाँ अपने संगीत कार्यक्रम को प्रस्तुत करने के लिए भी धन केवल इसीलिए लेते थे, क्योंकि जीवन यापन के लिए धनराशि की आवश्यकता होती है इसमें भी वह बहुत ज्यादा धनराशि या निश्चित धनराशि ही लेते थे, जो जितनी देता था उसी को ठीक समझ लेते थे, उनके लिए कोई भाव–ताव नहीं करते थे।[3]

बाबा अलाउद्दीन खाँ के आलाप वादन–शैली का नोम्–तोम् गंभीरतापूर्वक प्रभावित करता है। राग की शुद्धता पर मैहर घराने में विशेष ध्यान दिया जाता है, स्वस्थान नियम का पालन तीनों सप्तकों के अतिरिक्त अतिमन्द्र में

*शोध छात्रा, संगीत, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
**असिस्टेंट प्रोफेसर, वाद्य विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

भी किया जाता है।[4] उनके प्रमुख शिष्य अली अकबर खाँ (पुत्र), अन्नपूर्णा देवी (पुत्री), पंडित रविशंकर (दामाद), तिमिर बरन, पंडित निखिल बनर्जी, वीरेंद्र किशोर राय चौधरी, शरण रानी, आशीष खान, ज्योतिन भट्टाचार्य आदि कलाकार थे। प्रत्येक आलाप की समाप्ति पर वे निम्न बोलों का वादन करते थे– दा ऽ दा ऽऽ दा दा दा ऽ दा ऽ। पंडित रविशंकर मैहर घराने के चमत्कारी एवं मूर्धन्य कलाकार थे, इनका वादन–तकनीक बहुत जटिल और श्रम–साध्य थी। उसे साध लेना तो संभव है, लेकिन उसे श्रोताओं को प्रभावित करना टेढी–खीर है। पंडित रविशंकर जी के वादन में आलापचारी ध्रुपद और बीन अंग से प्रभावित है। इनके आलाप–वादन में राग की शुरुआत किसी भी रागवाचक स्वर–समूह से की जाती है। पंडित जी की आलापचारी गंभीरता से ओत–प्रोत है।"[5]

ऐसे विद्वान् उ० अलाउद्दीन खाँ का निधन वर्तमान मध्य प्रदेश के मैहर में 6 सितम्बर, 1972 को हो गया । उस्ताद अल्लादिया खाँ का संगीत के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान है।

बाबा अल्लाउद्दीन खाँ द्वारा नवनिर्मित वाद्यः– नलतंरग, चन्द्रसारंग, सितार बैंजो, सारंगा, सरोद, सितार, वॉयलिन इत्यादि वाद्यों में नवीनीकरण लाकर मैहर घराने को उच्चस्तरीय बनाया जो एक संगीत साधक ही कर सकते हैं।

वृहद् शिष्य परंपराः– उस्ताद अली अकबर खाँ, सरोद वादक (उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के शिष्य एवं पुत्र), श्रीमती अन्नपूर्णा देवी, सितार–सुरबहार (उस्ताद अलाउद्दीन खां की पुत्री), पंडित रविशंकर, सितार (बाबा के दामाद), मैहर महाराज ठाकुर बृजनाथ सिंह जूदेव (सितार), पंडित निखिल बनर्जी (सितार), श्री अजय सिंह राव (सितार), पंडित पन्नालाल घोष (बांसुरी), पंडित तिमिर वरण भट्टाचार्य (सरोद), प० ज्योति भट्टाचार्य (सरोद), पंडित इंद्र नील भट्टाचार्य (सितार), श्री सुप्रभात पाल (सरोद), श्री श्याम गांगुली (सरोज), श्री रॉबिन घोष (वायलिन), श्रीमती शरण रानी (सरोद), श्रीपद बंदोपाध्याय (सितार), श्री विष्णु गोपाल जोग (वायलिन), पंडित जीवनधन मजूमदार (वायलिन), पंडित नलिन मजूमदार (गिटार), पंडित निहार बिंदु चौधरी (वायलिन), श्री एस० डी० डेविड (वायलिन), उस्ताद आशीष खाँ साहब (सरोज) इत्यादि कलाकारों को बाबा ने खुद तैयार किया।"[6] इन कलाकारों ने विश्व स्तर पर ख्याति अर्जित की और संगीत का प्रचार–प्रसार किया।

बाबा अलाउद्दीन खाँ द्वारा नवनिर्मित रागः– अल्लाउद्दीन खाँ नव–नव राग–रागिनियों की सृष्टि कर उन्होंने सर्जन के चरम उत्कर्ष का परिचय दिया है । राग–हेमंत, हेम–बिहाग, मदनमंजरी, माझ–खमाज, शुभावती, मुहम्मद, सुरसती, दुर्गेश्वरी प्रभाकाली, धवलश्री, हेमंत–भैरव, माधवगिरी, भगवती, मलुवा कल्याण, भुवनेश्वरी, गांधी, गांधी बिलावल, माधुरी, राजविजय इत्यादि रागों की रचना बाबा अल्लाउद्दीन खाँ की देन है।[7]

बाबा अल्लाउद्दीन खाँ द्वारा निर्मित तालः– मोहन ताल (साढ़े तीन मात्रा), राजवेश ताल (साढ़े चार मात्रा), उदय सिंह ताल (साढ़े पांच मात्रा), विजय ताल (साढ़े सात मात्रा), विजय आनंदनताल, उपराल ताल, विक्रमा ताल, लघुकीर ताल, रंग ताल, रंगवरण ताल, रंगरयात ताल, अभिनंदन ताल इत्यादि तालों की रचना मैहर घराने को बाबा की अप्रतिम देन है।

निष्कर्ष :

बाबा अलाउद्दीन खाँ संगीत के महान योगी थे जिन्होंने संगीत में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया, जिन्होंने अनेक दिग्गज कलाकारों को तैयार कर संगीत जगत को नया जीवन दिया। साथ ही उन्होंने कई नये रागों की रचना के साथ ही नये तालों की रचना की और आज भी इस घराना में नए रागो और नए तालों की रचना हो रही है।

संदर्भ सूची :

1. वर्मा डॉ० संजय कुमार, मैंहर घराने की संगीत परम्परा, पृ० 27, 28
2. जैन डॉ. प्रभा, भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, पृ० 13
3. कुमार, डॉ. राकेश, घरानागत सितार वादन में आलाप–जोड़ालाप की प्रकृति, पृ. 107
4. वही, पृ० 108
5. जैन डॉ. प्रभा, भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, पृ० 1
6. बहोरे, रविंद्र नाथ, भारतीय संगीत के प्रमुख स्तंभ, पृ० 22
7. वर्मा, डॉ० संजय कुमार, मैंहर घराने की संगीत परम्परा, पृ० 161

बिहार में ध्रुवपद–गायन के घरानों के मुख्य कलाकार

डॉ. किरण सिंह** **रेखा कुमारी***

शोध–सार

बिहार में संगीत का समृद्ध इतिहास है, खास तौर से ध्रुवपद गायकी के क्षेत्र में। बिहार के संगीत घरानों में देश भर में अपनी पहचान बनायी। बिहार में ध्रुवपद के तीन प्रमुख घराने बेतिया, दरभंगा और डुमराँव हुए। इनके बारे में जानकारी देते हुए देश भर में संगीत के संरक्षक के तौर पर पहचाने जाने वाले पद्श्री गजेंद्र सिंह बताते हैं कि बेतिया घराना में कुंजबिहारी मल्लिक, श्यामा मल्लिक, उमा चरण मल्लिक प्रसिद्ध गायक हुए। इसके साथ ही बेतिया राज घराने के महाराज आनंद किशोर तथा नवल किशोर दोनों ध्रुवपद के रचनाकार और प्रसिद्ध गायक थे। इसके अतिरिक्त डुमरांव घराना में भी अनेक कलाकार हुए ।

मुख्य शब्द : *संगीत, ध्रुपद, कलाकार, घराना, गायन*

प्रविधि : *पुस्तकों के अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत शोध–पत्र तैयार किया गया है।*

भूमिका :

ध्रुपद गम्भीर प्रकृति की गायन शैली है। प्राचीन काल में, इसके गायकों को 'कलावन्त' कहा जाता था। मध्यकाल में इसका प्रचलन अधिक था। ख्याल के प्रचार में आने के बाद ध्रुपद में रुचि कम होने लगी परन्तु पुनः यह स्थापित हो चुका है । नोम्–तोम् का आलाप, गमक, भीड़ और लयकारी की इसमें महत्ता है । आलाप के चार भाग तथा इसकी गायकी की चार बानियाँ है– डागुर, खण्डार, गोबरहार और नाहर ।

बिहार में ध्रुपद के तीन घराने बेतिया, दरभंगा और डुमरांव प्रख्यात हैं जिसके कलाकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हैं ।

बेतिया घराना

बेतिया घराना ध्रुपद का महत्वपूर्ण घराना है । इसके प्रमुख कलाकार निम्नवत् हैं–

कुंजबिहारी मल्लिक

कुंजबिहारी मल्लिक का जन्म लगभग 1865 ई0 में हुआ था। कुंजबिहारी मल्लिक ने ध्रुवपद का प्रारंभिक प्रशिक्षण अपने पिता से प्राप्त किया। उनके पिता गौहारबानी के व़िद्वान गायक थे। कुंजबिहारी को लड़ने–भिड़ने और कुश्ती दंगल में रमने के कारण उनको गौहरबानी गायकी रास नहीं आयी। इस वजह से पंडित मंगल मल्लिक ने उन्हें खंडारबानी में कठिन बंदिशों का अभ्यास कराया। इसके अतिरिक्त ताल की कुछ ऐसी विधि बतलायी कि उसमें दक्षता हासिक कर लेने के बाद कुंजबिहारी मल्लिक खंडारबानी के विकट गायक हो गये। उनकी तीन शादियाँ हुई थी। कुंजबिहारी मल्लिक अपने गायन के दौरान अक्सर ताल बदल लिया करते थे। जब वे चौताल में ध्रुवपद गायन आरम्भ करते, और परखावजी ताल पकड़कर संगत करने लगता तो वे तुरंत झपताल या कोई अन्य ताल प्रारंभ कर देते थे। इस तरह पखावजी को उनके साथ संगत करने में बहुत परेशानी होती थी। कुंजबिहारी मल्लिक ने ताल–संबंधी ज्ञान अपने गुरू से प्राप्त किया था। उसका रहस्य अपने शिष्यों को भी नहीं बताया। 80 वर्ष की आयु में उनका देहांत 1945 ई. में हो गया।

श्यामा मल्लिक

आज से लगभग पचास–साठ वर्ष पूर्व बेतिया घराना के ध्रुवपद गायक श्यामा मल्लिक का नाम ध्रुवपद के गुणीजनों के बीच बड़े आदर से लिया जाता था। उनका जन्म सन् 1881 ई0 में हुआ था। उनके पिता का नाम महावीर मल्लिक था। श्यामा मल्लिक को संगीत की शिक्षा अपने पिता, ज्येष्ठ भ्राता रामप्रसाद मल्लिक तथा बेतिया के प्रख्यात गायक कुंजबिहारी मल्लिक से प्राप्त हुई। ध्रुवपद की चारों बानियों में उन्हें दक्षता प्राप्त थी, कहा जाता है कि उन्हें साढ़े तीन हजार बंदिशे कंठाग्र थीं।

*शोधार्थी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
**प्रोफेसर, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

'बेतिया राज के पराभव के पश्चात् वह शिवहर और चंपानगर (बनौली) ड्योढ़ियों को अपने गायन से सुशोभित करते रहे। शिवहर जिला में उस्ताद फैयाज खाँ के साथ श्यामा मल्लिक की जुगल–बंदी हुई थी, जिसमे फैयाज खाँ उनकी गायकी से बहुत प्रभावित हुए थे। सन् 1950 ई० में आकाशवाणी दिल्ली द्वारा उनके गाये कुछ एक– अछोप रागों की दुर्लभ बंदिशों (राग देवसाख, लच्छा साख, मालश्री इत्यादि की रिकार्डिंग की गयी । साठ बंदिशे ध्वन्यांकित की गयी। 1960–61 में आकाशवाणी, पटना में भी अलभ्य ध्रुपदों को रिकार्डिंग की गई ।[1] सन् 1936 ई0 में मुजफ्फरपुर में आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह में राग खमाज में लगातार अठ्ठारह–बीस बंदिशें सुनाकर श्रोताओं और गुणीजनों को विस्मित कर दिया था। श्यामा मल्लिक को संगीत में पैठ और दक्षता का प्रमाण इसी से मिलता है। उनके प्रमुख शिष्यों में सुपुत्र महंथ मिश्र, शंकर लाल मल्लिक, राजाराम मल्लिक, बच्चा मल्लिक तथा विमल श्रीवास्तव हुए। सन् 1964 ई. में वह लकवे का शिकार हो गए, 7 सितंबर को उनका देहांत हो गया। श्यामा मल्लिक की वंश–परंपरा को उनके पौत्र इंद्रकिशोर मिश्र बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं।

उमाचरण मल्लिक

उमाचरण मल्लिक पंडित बच्चा मल्लिक के सुपुत्र तथा पंडित गोपाल मल्लिक के अनुज पंडित महावीर मल्लिक के पौत्र थे। उमाचरण मल्लिक का जन्म 1890 ई. में हुआ था। गौरवर्ण, छोटा कद के भारी शरीरवाले उमाचरण मल्लिक का व्यक्तित्व आकर्षक था। उमाचरण मल्लिक को कोई संतान नहीं रहने के कारण अपने शिष्यों को ही संतान की तरह प्रशिक्षण दिया करते थे। बाद के दिनों में बीमार होने के कारण उनका कहीं आना–जाना बहुत कम होता था। उमाचरण मल्लिक के पास अपने घराने की बंदिशों का भंडार तो था ही, अन्य घरानों की बंदिशों का भी खजाना था। उनके शिष्य तथा भांजे राजकिशोर मिश्र (मल्लिक) बताते हैं कि उनके संग्रह में बादशाह हुमायूँ से शाहजहाँ के दरबार तक की बंदिशे थीं।

उमाचरण मल्लिक की आवाज अत्यंत मधुर और पाटदार थी। ध्रुवपद की चारों बानियों में उन्हें महारत हासिल थी। उमाचरण मल्लिक गौहार एवं खंडार दोनों बानियों में माहिर थे। पडरौना (उ0 प्र0) के प्रसिद्ध धमार गायक रामप्रसाद उमाचरण मल्लिक के पास मार्गदर्शन के लिए आते थे। बेतिया घराने के मशहूर ध्रुवपदिया काले खाँ तथा श्यामा मल्लिक भी उनसे ध्रुवपद सीखने आते थे। बेतिया घराने के ध्रुवपद गायकी की परंपरा के अंतिम सशक्त गायक उमाचरण मल्लिक तथा बीनकारों की परंपरा में गोरख मिश्र हुए। उमाचरण गल्लिक को लगभग दस हजार बंदिशें कंठाग्र थीं। उनकी मृत्यु सन् 1959 में हुई।

दरभंगा घराना

दरभंगा घराना की ध्रुवपद गायन–शैली दुनिया भर में प्रसिद्ध है। इस घराना के कलाकारों ने देश–दुनिया में अपना परचम लहराया है। दरभंगा घराना राजस्थान से ताल्लुक रखता है, इसके संस्थापक पंडित राधा कृष्ण और पंडित कर्ता राम मल्लिक ने भूपत खाँ से ध्रुवपद गायन सीखा।[2] भूपत खाँ लखनऊ के नवाब सिराजुद्दौला के दरबारी गायक थे। इन्हें तानसेन का उत्तराधिकारी माना जाता है। दरभंगा घराने के मल्लिक ध्रुवपदियों में –

1. पं. रामचतुर मल्लिक
2. पं. सियाराम तिवारी
3. पं. अभय नारायण मल्लिक, अत्यंत ही प्रभावशाली गायक हुए हैं।

पं. रामचतुर मल्लिक

रामचतुर मल्लिक (1905–1990) का जन्म अमता ग्राम में हुआ। वर्तमान समय के ध्रुवपद गायकों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उनके पास ध्रुवपद की पुरानी बदिशों का खजाना था। उनकी आवाज दमदार पर माधुर्यपूर्ण तथा पाटदार थी। ध्रुवपद की पुरानी परम्परा. के अनुकूल बंदिश के चारों तुकों के रख–रखाव राग की शुद्धता तथा लय की उन्नत सूझ–बूझ के साथ उनका गायन भावानुकूल होता था।

20वीं सदी में उस्ताद फैयाज खाँ के बाद रामचतुर मल्लिक ही चारों पट के कुशल गायक हुए। उन्हें केंद्रीय संगीत नाटक आकादमी अवार्ड तथा 'पद्मश्री' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया था। संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ द्वारा मल्लिक जी को 'डाक्टरेट' की मानद उपाधि दी गई थी।

वर्ष 2017 में इस घराने की 12वीं पीढ़ी के पंडित रामचतुर मल्लिक ने अपने पुत्र डॉ० समित मल्लिक के

साथ लंदन के 'दरबार उत्सव में ध्रुवपद गायन प्रस्तुत कर अपनी ख्याति पायी है। रामचतुर जी को सुदूर यूरोपीय देशों मे भी ख्याति मिली। पंडित रामचतुर मल्लिक के नाम से दरभंगा के लहेरियासराय में 'ध्रुवपद संगीत गुरुकुल' भी स्थापित है।

पं. सियाराम तिवारी

पं. सियाराम तिवारी (1919) का जन्म बिहार के दरभंगा में हुआ। उन्हें ध्रुवपद की शिक्षा अपने नाना से दरभंगा घराने में ही प्राप्त की। पंडित सियाराम तिवारी ध्रुवपद के अग्रणी गायकों मे से एक थे। संगीत जगत में उनका नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। पंडित सियाराम तिवारी का सारा जीवन ध्रुवपद को समर्पित था। उन्होंने ध्रुवपद को ऐसे समारोहों में प्रस्तुत किया जो आज ध्रुवपद गायकी को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया गया। पंडित सियाराम तिवारी ने ख्याल, ठुमरी और भजन की शैली अपने पिता बलदेव तिवारी से प्राप्त की। इनकी गायकी मधुर स्वर, मींड, गमक और लयकारी युक्त होती थी।

पंडित अभय नारायण मल्लिक

दरभंगा घराना के प्रख्यात ध्रुवपद गायक पंडित अभय नारायण मल्लिक ध्रुवपद के अग्रणी गायकों में से एक थे। पूरे भारत में जहां भी ध्रुवपद की चर्चा होती है, पंडित अभय नारायण मल्लिक के नाम को सम्मान के साथ याद किया जाता है। पंडित जी ने अपना सारा जीवन ध्रुवपद को समर्पित कर दिया था। उन्होंने ध्रुवपद को ऐसे समारोहों में प्रस्तुत किया था, जिसने ध्रुवपद गायकी को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया। वे विद्वान् संगीतज्ञ के साथ ही कर्मयोगी भी थे।

पंडित अभय नारायण मल्लिक को संगीत की नगरी ग्वालियर में आयोजित तानसेन समारोह में कालीदास अलंकरण से विभूषित किया गया था। पंडित अभय नारायण मल्लिक ऑल इंडिया रेडियो के 'ए' क्लास के गायकों की सूची में भी शामिल थे। कहा जाता है कि जब रेडियो पर उनका कार्यक्रम प्रसारित होता था तो सभी अपने दैनिक कामकाज को छोड़कर उनकी गायकी को सुनते थे।

डुमरांव घराना

पांच सौ वर्ष पूर्व प्राचीन ध्रुवपद गायन की परंपरा वाले डुमरांव घराना की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इसे धनगाई घराना के नाम से भी जाना जाता है। डुमरांव आरा जिला के अन्तर्गत है, डुमराव का राज घराना ही संगीतकारों का संरक्षक रहा है । गौड़ ब्राह्मण यहाँ के संगीतकार हुए हैं।[3] शास्त्रीय गायन की जैसी क्लिष्ट बंदिशें इस घराना में सुनने को मिलती हैं, इसे संगीत जगत में अनूठा माना गया है। इस घराना के संस्थापक पंडित माणिकचंद दूबे व पंडित अनूप चंद दूबे हुए। इन्होंने संगीत की शिक्षा दक्षिण भारत में प्राप्त की थी। इनकी वंश–परंपरा को पंडित रामलाल दूबे डुमरांव महाराज के दरबारी गायक थे व पंडित सहदेव दूबे ध्रुवपद के महान् गुरु हुए। मुगल काल में सम्राट शाहजहां ने प्रसन्न होकर पंडित मणिकचंद व पंडित अनूपचंद दूबे दोनों भाईयों को कई गांव की जागीरदारी भेंट करते हुए फारसी में लिखा ताम्रपत्र प्रदान कर सम्मानित किया था एवं मल्लिक की उपाधि से विभूषित किया था। ''पं. घनारंग दूबे इस घराना के श्रेष्ठ कलाकार हुए जिन्होंने संगीत की शिक्षा अपने चाचा माणिक चन्द और पं. अनूपचन्द से प्राप्त की थी।''[4]

डुमरांव की प्रसिद्ध बंदिशों को आज भी संगीत की दुनिया में अनोखा माना जाता है, जिसे वाद्य–यंत्र पर बजा लेना अब भी कठिन है, विश्व प्रसिद्ध शहनाई वादक 'भारतरत्न' उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की जन्म–स्थली डुमरांव शुरू से ही कला संस्कृति की उर्वरा भूमि रही है।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि बेतिया घराना के कीर्तिमान को कायम रखने के लिए आज भी इन्द्रकिशोर मल्लिक एवं उनके कई शिष्य प्रयासरत हैं। उसी प्रकार दरभंगा घराना के पं. राम कुमार मल्लिक और प्रो. प्रेमकुमार मल्लिक के पुत्र–पुत्रियाँ एवं शिष्य इस घराने की समृद्धि को कायम रखने हेतु प्रयासरत हैं। डुमरांव घराना के कलाकार कमलेश कुमार दूबे और विमलेश कुमार दूबे तथा इनकी पुत्रियाँ परम्परा को आगे बढ़ा रही हैं।

संदर्भ सूची :

1. सिंह, गजेंद्र नारायण, बिहार की संगीत परम्परा, पृ. 56
2. वही, पृ. 59
3. प्रकाश, वेद, भारतीय संगीत : ध्रुवपद और दरभंगा घराना, पृ. 242
4. सिंह, गजेंद्र नारायण, बिहार की संगीत परम्परा, पृ. 56

बांग्ला रंगमंच के प्रथम निर्देशक

सुब्रत कुमार माजी*

सारांश

अंग्रेजी शब्द 'डाइरेक्टर' और 'डायरेक्शन' 'निर्देशक' और 'निर्देशन' हैं, जिसका अर्थ है जो निर्देशित करता है वह निर्देशक (संज्ञा) है और वह जिस कार्य को करता है वह 'निर्देशन' (क्रिया) है।

पहले निर्देशक के तौर पर एक ही नाम सामने आता है और वो हैं नाट्याचार्य शिशिर कुमार भादुड़ी। क्योंकि वे नाटक में एकल चरित्र बनाने के लिए सभी तत्वों को मिला सकते थे । सीता नाटक के माध्यम से बंगाल और भारत को एक आधुनिक रंगमंच निर्देशक मिला।

एक रसोइया रसोई में जो कार्य करता है, निर्देशक का यही काम होता है, अर्थात् अगर पांच लोग एक साथ एक ही सामग्री, एक ही मसाले के साथ भोजन पकाते हैं, तो उनमें से प्रत्येक का खाना पकाने में एक अलग स्वाद होगा। अतः निर्देशक की भूमिका की सौन्दर्यपरक उपलब्धि को चर्चा में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

दूसरी ओर, गिरीश घोष के "नीलदर्पण" के प्रदर्शन की चारों ओर सराहना हुई। हालाँकि, कुछ ने महसूस किया कि कार्यान्वियन की लागत के कारण मंच और दृश्यावली तथा प्रकाश व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। गिरीश घोष सिर्फ पेंटिंग्स पर निर्भर नहीं थे, उन्होंने त्रि–आयामी सेट भी बनाए। 'कमले कामिनी' नाटक में दर्शकों की आंखों के सामने एक पूरी समुद्री यात्रा घटित हो सकती थी।

सक्सोमिनिंगन द्वारा निर्देशित शब्दावली की स्थापना के बाद गिरीश घोष ने लगभग 37 वर्षों तक थिएटर करना जारी रखा, और 1893 में उन्होंने यूरोपीय मैकबेथ का निर्माण किया, जिसमें उनकी अभिनेत्रियों को दिखाया गया कि मैरी सिडेंस की छवि में मौखिक अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है, जिनका लेडी मैकबेथ से मोहभंग हो गया था।

अतः सुरक्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि गिरीश घोष बांग्ला रंगमंच के 'प्रथम निर्देशक' हैं और शिशिर कुमार भादुड़ी पहले 'मॉडर्न डायरेक्टर' थे।

शब्द सूचक : *निर्देशक, रंगमंच, सीता नाटक, सैक्समीनिंगेन,*

शोध–प्रविधि : *इस शोध आलेख के लिए विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं आदि द्वितीयक माध्यमों से सामग्री एकत्र की गई है।*

यह मुख्य रूप से बांग्ला रंगमंच के इतिहास पर केंद्रित एक शोध है, इसलिए बांग्ला रंगमंच की शुरुआत से डा. शिशिर भादुड़ी के समय तक बांग्ला रंगमंच के पहले निर्देशक के बारे में मिली जानकारी का विश्लेषण किया गया है, साथ ही रंगमंच आलोचना मूलक विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन और कुछ साक्षात्कार भी किए गए हैं। बंगाली रंगमंच के पहले निर्देशक के बारे में कुछ वर्तमान रंगमंच की हस्तियों के साथ साक्षात्कार के माध्यम से मिली जानकारी का विश्लेषण कर इस लेख को पूरा किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र : गिरीश घोष और शिशिर कुमार भाठुड़ी द्वारा निर्देशित नाटक समूह ।

अध्ययन विश्लेषण :

''आगे बढ़ो और जोर से बोलो'' ऐसी ही सोच का रंगमंच था, धोती पहने एक निहायत ही जाना–पहचाना चेहरा वाला एक स्वस्थ आदमी, जो बंगाली और भारतीय रंगभूमि रंगमंच का जनक है, इसलिए हम उन्हें निर्देशक कहने से हिचकिचाते है। हाँ वह गिरीश चंद्र घोष हैं। इस पर चर्चा करने से पहले, यह जानना होगा कि निर्देशक क्या है ! भरत के नाट्यशास्त्र में हमें प्रयोग या प्रयोग विज्ञान शब्द का संदर्भ मिलता है अर्थात् प्रोडक्शन शब्द व्युत्पत्ति में भारतीय है और काफी हद तक भारतीय नाटकीय है लेकिन 'प्रोडक्शन', 'मैनेजमेंट', 'डायरेक्शन'

*(शोध छात्र), रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय (कलकत्ता)

जैसे शब्द जो हम इस्तेमाल करते हैं, वे दरअसल अंग्रेजी के शब्दों के अनुवाद हैं। अंग्रेजी 'प्रोडक्शन' बंगाली 'प्रोडक्शन' है। अंग्रेजी शब्द 'निर्देशक' और "निर्देशन" बंगाली 'नाधक' और 'नाधिकाना' हैं, जिसका अर्थ है जो निर्देशित करता है वह निर्देशक (संज्ञा) है और वह जो कार्य करता है वह निर्देशन (क्रिया) है। अंग्रेजी के शब्द डायरेक्शन का मतलब होता है निर्देशन। परिचालक या निर्देशक, हम जो भी कहते हैं, वास्तव में विशेष जिम्मेदारी वाले व्यक्ति को संदर्भित करता है जो रचनात्मक कौशल के साथ थिएटर या किसी थिएटर प्रोडक्शन नामक जहाज को आगे बढ़ाता है।

अब अगर मैं 'पहला निर्देशक' कहूं तो सभी के दिमाग में एक ही नाम आता है और वह है नाट्याचार्य शिशिर कुमार भादुड़ी। ऐसे में जो बातें सामने आती हैं वे ये हैं कि उन्होंने 1923 के दिसंबर महीने में नाटक के सभी तत्वों जैसे परिदृश्य रचना, साज–सज्जा, रोशनी का प्रयोग, संगीत का उच्च कोटि का मिश्रण द्विजेन्द्रलाल राय की सीता में रचा। अभिनय। और उस संदर्भ में, रवींद्रनाथ टैगोर ने शिशिर कुमार को 'प्रयोगकर्ता' की उपाधि से सम्मानित किया, इसके अलावा, लेखक मोनीलाल गंगोपाध्याय को 12 वीं भाद्र 1331 के एक पत्र में उन्होंने कहा, ''शिशिर भादुड़ी के प्रयोग कौशल के लिए मेरे मन में विशेष सम्मान है। इसलिए मैंने उसे शत हो धर झकर अपने दो नाटक करने की जिम्मेदारी दी।'' बंगाली रंगमंच में प्रयुक्त होने वाला यह पहला शिल्प शब्द है। यहीं से प्रवर्तक शब्द आया है। वहीं से समकालीन रंगमंच के प्रयोगकर्ता शिशिर कुमार को पहला निर्देशक मानते हैं।

शंकर भट्टाचार्य की पुस्तक 'नाट्याचार्य शिशिरकुमार' में एक प्रत्यक्षदर्शी ने नाटक 'सीता' के बारे में लिखा है, – ''पर्दे के पीछे की पृष्ठभूमि में एक हाथ की घंटी एक अद्भुत लय में बजती है।'' गेट की आवाज बंद हो गई। यवनिका धीरे–धीरे दर्शकों की नजरों से दूर होती चली गई। मंच पर रोशनी कम है। मंच पर फैला हुआ गाढ़ा हरा प्रभामंडल। एक लंबी जगह पर खड़ी एक गीतमुखिता महिला आकृति। पृष्ठभूमि में दक्षिण से महिला आकृति पर प्रकाश की एक सीधी रेखा पड़ती है। इसलिए देवेश चट्टोपाध्याय ने इस ग्रन्थ में जो चित्र बनाया है वह मंच, प्रकाश व्यवस्था, वातावरण, वेशभूषा और अभिनय सब एक साथ मिला हुआ है। वह निर्देशक का काम है, नाटक में एक एकल चरित्र बनाने के लिए सभी तत्वों को मिलाना। सीता नाटक के माध्यम से बंगाल और भारत को एक आधुनिक रंगमंच निर्देशक मिला।[1]

फिर 1997 में अजीत बंदोपाध्याय ने संस्कृति के सथु सेन अंक में लिखा– ''अमेरिका से लोटने के बाद, उन्होंने (सथु सेन) ने 'बिष्णुप्रिया' नाटक से अपनी शुरुआत की। एक दर्शक के तौर पर मैं उस रोशनी से मुग्ध था। निमाई के घर का दावा, मां–बेटे बात कर रहे हैं। मान लीजिए, समय रात के बारह बजे का था, फिर धीरे–धीरे देर रात का उजाला हुआ। उन्होंने इस पूरे वातावरण को सिर्फ पृष्ठभूमि में साइक्लोरामा के साथ बनाया।

और शंभु मित्रा ने विजेता नाटक के तीसरे अंक की चर्चा के बारे में लिखा है, ''यह निर्विवाद है कि अगर मैंने इस नाटक को नहीं देखा होता तो 'नबन्ना' के पहले दृश्य की कल्पना करना संभव नहीं होता ।'' शिशिर बाबू से मैंने एक और बात सीखी कि नाटक को किस तरह से काटा या लिखा जाता है। उसका प्रमाण 'आलमगीर' नाटक और नाटक के अन्तर में है। लिखित नाटक की तरह अभिनय तो कतई नहीं किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, हमने शिशिर कुमार से सीखा है कि नाटक में नाटक के दृश्यों, अभिनय और शब्दों का एक साथ उपयोग कैसे किया जाता है। वह हमारा पहला मार्गदर्शक है"।

शिशिर कुमार के बारे में उपरोक्त व्याख्या या आकलन बिल्कुल सत्य है। दरअसल, उन्होंने भविष्य के लिए रंगमंच की दिशा को दिखाया है। नाटक निर्माण में एक निर्देशक की भूमिका बंगाली रंगमंच में पूरी तरह से स्थापित हो गई है।

तो निर्देशक की क्या भूमिका है! रंगमंच के व्यक्तित्व अशोक मुखर्जी ने एक दिन एक बातचीत में कहा कि एक रसोइया रसोई में वही करता है जो एक निर्देशक करता है, यानी अगर पांच लोग एक ही सामग्री, एक ही मसाले के साथ–साथ खाना बनाते हैं, तो उनमें से प्रत्येक का अलग–अलग स्वाद होगा। खाना पकाने में स्वाद, क्योंकि उनमें से प्रत्येक का एक अलग अनुभव, भावना, विधि, स्वाद है। अतः निर्देशक की भूमिका की सौन्दर्यात्मक उपलब्धि को व्यक्त नहीं किया जा सकता, फिर भी सिद्धांत की भाषा में संक्षेप में कहा जा सकता है कि निर्देशक की भूमिका होती है–पहले एक निर्देशक को एक नाटक का चयन करना होता है, फिर टीम के सदस्यों को उस नाटक के

महत्व को समझाना होता है। दूसरे, नाटक को प्रोडक्शन, भूमिकाओं के वितरण और अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को अपने पात्रों की व्याख्या करने के लिए संपादित किया जाता है। तीसरा, नाटक की शुरुआत अभ्यास से होती है, धीरे–धीरे नाटक की मनोदशा, चरित्र की मनोदशा, विशेषताओं को पूर्ण करने की ओर बढ़ता है। चौथा, उत्पादन के अन्य तत्वों जैसे मंचन, प्रकाश व्यवस्था, वेशभूषा, श्रृंगार, ध्वनि या संगीत को उन लोगों से चर्चा कर तैयार किया जाना चाहिए जिनके लिए वे जिम्मेदार हैं। पांचवां, जब सब कुछ तैयार हो जाएगा, तो सभी तत्व (मंच की सजावट, वेशभूषा, श्रृंगार, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि संगीत) अभ्यास के माध्यम से अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के साथ इस तरह जुड़ जाएंगे कि तत्व अलग–अलग खुद को पेश नहीं करते बल्कि दर्शकों के मन में एक एकीकृत धारणा बनाते हैं और अंत में दर्शकों के सामने इसका मंचन किया जाता है।

इसलिए एक नाटक का निर्माण करने के लिए एक निर्देशक को ये महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं। इसे थोड़ा अलग तरीके से कहें तो एक नाटक का निर्माण करने के लिए जो विशिष्ट व्यक्ति इन सभी चीजों को करता है उसे उस नाटक का निर्देशक कहा जाता है। शिशिर कुमार भादुड़ी इन सभी कार्यों को बखूबी कर सकते थे, इसलिए उन्हें नाटक का प्रयोगकर्ता कहा जाता है।

लेकिन अगर गिरीश घोष की बात हो! क्या उन्होंने ये काम नहीं किए! या नहीं करना पड़ा! ऐसा तो नहीं, गिरीश घोष को भी नाटकों का चयन करना पड़ता था, (कभी–कभी उनका अपवाद देखा गया था), लेकिन यदि आवश्यक हो तो उन्हें नाटक भी लिखने पड़ते थे। फिर समूह के लड़के–लड़कियों को अपने कौशल के अनुसार पात्रों को व्यवस्थित करना था, बच्चों को पात्रों को समझाना था। रिहर्सल करनी थी। सभी को अभिनय सिखाया जाना था। संगीत, वेशभूषा और सजावट तय करनी थी।

7 दिसंबर, 1872 को दीनबंधु मित्रा के नाटक 'नीलदर्पण' के प्रदर्शन से नेशनल थियेटर का उद्‌घाटन हुआ और प्रदर्शन की शुरुआत पहले टिकटों की बिक्री से हुई। यहाँ– ''नीलदर्पण नाटक अभिनय से चारों ओर प्रशंसा होने लगी। हालांकि, कुछ ने महसूस किया कि प्रोडक्शन की लागत के कारण मंच और दृश्यावली और प्रकाश व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी लेकिन प्रस्तुति की गुणवत्ता और अभिनय कौशल के लिए नाटक को बहुत प्रशंसा मिली।[3]

टिकट बिक्री पर गिरीश घोष से असहमति के कारण उन्होंने दल छोड़ दी। उनके शब्दों में– ''नेशनल थियेटर के नाम पर, उचित नेशनल थियेटर की वेशभूषा के बिना, जनता के सामने टिकट बेचना और प्रदर्शन करना मेरे खिलाफ था।''[4]

तो उस समय भी नाटकों के निर्माण में मंच और दृश्यों को काफी महत्व दिया जाता था, इसलिए चर्चा में आया कि मंच, दृश्य और रोशनी किसी–किसी को पसंद नहीं थी। और दूसरी बात, गिरीश घोष ने टिकट बिक्री पर नाराजगी जताते हुए दल छोड़ दी। यानी वह इसके बारे में काफी सावधान थे, इतना ही नहीं, बाद में उन्होंने खुद टिकट बेचा और नाटक का प्रदर्शन किया, और वह निश्चित रूप से मंचन, दृश्य और प्रकाश–व्यवस्था के बारे में अपने पहले के बयान को नहीं भूले ।

यह फिर से देखा जा सकता है कि नागेंद्र भूषण मुखोपाध्याय ने नए मिनर्वा थियेटर की जिम्मेदारी के साथ नाटक मैकबेथ का अनुवाद किया, उन्होंने उस नाटक में मंचन, श्रृंगार, वेशभूषा, संगीत पर पैनी नजर रखी।

''मैकबेथ अनुवाद समाप्त करने के बाद, उन्होंने अदाजोल को खाया, जैसा कि नागेंद्रबाबू ने कहा था। हर चीज पर उनकी पैनी नजर रहती थी। मंचन में प्रसिद्ध चित्रकार विलियार्ड को जोड़ा गया। श्रृंगार और वेशभूषा श्री शांति ने की थी। संगीतज्ञ गिरीश वेस्टर्न म्यूजिक भी सुनते हैं। उन्होंने इस नाटक में इसका भरपूर उपयोग किया। एक दिन वे स्वयं डलहौजी में हैरोल्ड्स गए। दुनिया में संगीत के सर्वश्रेष्ठ टुकड़ों को एकत्र किए। और यह युवा देवकांत बागची को प्रोडक्शन के हिसाब से बैकग्राउंड म्यूजिक कंपोज करने के लिए दिया गया।[5]

फिर, उप्पल दत्त द्वारा लिखित लेख 'थिएटरएर गिरिश' में, गिरीश घोष के नाटक में सेट या दृश्यों के बारे में, गिरीश घोष ने बनाए गए चित्रपट पर भरोसा नहीं किया, उन्होंने त्रि–आयामी सेट भी बनाया। 'कमले कामिनी' नाटक में दर्शकों की आंखों के सामने एक पूरी समुद्री यात्रा घटित होती थी। मंच के उस पार एक बड़ी तरानी पर धनवान और नाविक थे, और एक–एक करके समुद्र की लहरें, मगरा मुहाना, सेतुबंध, कालीदह आदि चलती पृष्ठभूमि में चले गए।

''समुद्री तूफान मंच पर घटती थी । यहां तक कि अंग्रेज भक्त समीक्षकों ने भी इस प्रोडक्शन की प्रशंसा की। लेकिन जो उन्होंने नहीं देखा वह मंच की सजावट की गतिशीलता, परिवर्तनशीलता है। दृश्य को एक यथार्थवादी सेट में बांधना नहीं, बल्कि श्रीमंत सौदागर के अभियान के साथ मंच सेटिंग को गति देना। गिरीश के विचार में 'कमले कामिनी' का महत्व यही है कि उन्होंने इस नाटक में स्थिर, कठोर दृश्यों को शुरू किया। यह प्रोडक्शन उस समय के वास्तविक चित्रणों की श्रृंखला को तोड़ने वाला पहला काम था यह और भी तथ्य से पता चला– जना गंगा में कूदते हैं, वहां गंगा के ऊंचे किनारे भी बनाए गए थे । जब अलादीन का जिन्न पूरे घर को अपने हथेली पर ले जाता है, वह घर भी कोई पेंटिंग नहीं थी। रावणवध में सीता का अग्नि प्रवेश भी चित्रित अग्नि में नहीं होता। 'मायातरु' में एक पेड़ के तने से पदार्पण करने वाली तीन महिलाएँ भी एक घने पेड़ के पीछे से आती थीं। 'प्रहलाद चरित' में नृसिंह स्तम्भ से पदार्पण करते थे। 'अशोका' नाटक में मायापुरी तक जाने के लिए एक छोटा पुल बनाया गया था जिसपर लोग आना–जाना कर सकते थे और उस नाटक में मंच पर धीरे–धीरे एक स्तूप बन जाता था। इसके अलावा, 'मोहिनी–प्रतिमा' नाटक में निहार पाषाण मूर्ति बन कर कई अन्य मूर्तियों के बीच में छिप जाता था। अतः इस बात को नकारा जा सकता है कि गिरीश के नाटकों में सेटों का प्रयोग नहीं होता था।

दूसरी ओर, यूरोप में 1874 में द्वितीय जॉर्ज ड्यूक ऑफ सकसो– माइनिंगजेन की देखरेख में स्थापित माइनिंगजेन थियेटर, निर्देशक की भूमिका को परिभाषित करने वाला पहला था। हालॉकि, उनकी सोच के केंद्र में यह विचार था कि एक नाटक लिखेगा, दूसरा मंच पर उसका अभिनय करेगा, और वह निर्देशक होगा और वह किसी भी तरह से अभिनेता नहीं होगा।[7]

यह ध्यान रखना चाहिए कि गिरीश ने तब तक लिखना शुरू नहीं किया था, यानी वह अभी नाटककार नहीं थे, शुरू से ही वे एक अभिनेता और एक थिएटर शिक्षक या निर्देशक थे। ऊपर यह भी स्वीकार किया जाता है कि मुख्य अभिनेता ही निर्देशन करता था। और गिरीश घोष ने 1874 में यूरोप में सकसो– माइनिंगजेन द्वारा निर्देशक शब्द स्थापना के बाद भी लगभग 37 वर्षों तक थिएटर करना जारी रखा, और 1893 में उन्होंने यूरोपीय नाटक मैकबेथ का निर्माण किया, जिसमें मैरी सिडेंस जो लेडी मैकबेथ करने के बाद विख्यात हुई थी, उनकी तस्वीर लाकर अपने अभिनेत्रियों को दिखा रहे है कि मौखिक एक्सप्रेशन कैसा हो सकता है, जो आधुनिक दृष्टिकोण का प्रमाण है। और वह इस नाटक के नाटककार भी नहीं थे। इसलिए, यह तर्क भी नहीं दे सकते है कि तब निर्देशक शब्द की उत्पति नहीं हुई थी।

तो आइए हम उनके नाटक लेखन के इतिहास पर आते हैं, "बंगाली रंगमंच में व्यावसायिकता की शुरुआत के बाद नाटक और नाटककारों की कमी हो गई, इसलिए थिएटरों ने बंकिमचंद्र की उपन्यास–श्रृंखला का सहारा लिया लेकिन उनके नाटक भी जल्दी ही फीके पड़ गए। ज्योतिरिंद्रनाथ टैगोर, अमृतलाल बोस और कुछ अन्य लोगों ने नाटक लिखना शुरू किया। हालॉकि, यह भारी मांग से कम तर पाया गया। विज्ञापनों के माध्यम से भी उपयुक्त नाटकों की तलाश की जाती है। वह अपील भी फेल हो गई। उस समय स्वयं गिरीशचन्द्र लगभग मजबूरी में ही नाटक लिखने लगे। उनके पहले नाटक आगमनी का मंचन 6 अक्टूबर 1877 ई. को ग्रेट नेशनल थियेटर में किया गया था।[8]

इस कथन से ही यह सिद्ध होता है कि गिरीश घोष पहले अभिनेता और निर्देशक हैं, बाद में नाटककार हैं और वो भी नाटक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए। इसके विपरीत वहां यह देखा जा सकता है कि एक जिम्मेदार निर्देशक के रूप में उन्होंने उस समय रंगमंच में निर्देशक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए नाटककार गिरीश के साथ इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक नाटक लिखा, जिसका मुख्य आधार देशभक्ति था, पुराण को केंद्र में रख कर लोगों को भक्ति–भाव में प्रवाहित कर पौराणिक नाटक की रचना की । समाज के लिए उन्होंने नाटकों में उत्तरदायित्व से लेकर समाज के अनेक कुसंस्कारो को केंद्रित किया। उन्होंने स्वांग के माध्यम से समाज के प्रति उपहास व्यक्त किया।

एक के बाद एक सफल रंगमंच प्रस्तुतियों के माध्यम से, अंग्रेजों द्वारा लाया गया अनाथ रंगमंच को बंगाल में बाबू लोगो के 'शौख एर थिएटर' के बंधक से बाहर लाकर आम लोगों के सामने स्थापित किया। इसलिए वे बंगाली रंगमंच के जनक हैं, उन्होंने उस समय की परिस्थितियों और यांत्रिक प्रौद्योगिकी प्रणाली के अनुसार

निर्देशन की सभी तकनीकी जिम्मेदारियों का पालन किया। हालॉकि, हम उन्हें एक निर्देशक के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, शायद इसलिए कि रवींद्रनाथ टैगोर ने गिरीश घोष के बारे में ऐसी कोई टिप्पणी नहीं की।

यहां यह उल्लेख करना होगा कि उप्पल दत्त के "गिरीश मानस" किताब में अपने निबंध 'थिएटरएर गिरीश' में कहा है– ''आंगिक और रूपरिति का प्रश्न भी श्रेणीगत प्रश्न है, इसे ध्यान में रखते हुए, हमें रंगमंच में गिरीश के अदभुत प्रयोग के बारे में इच्छुक होना चाहिए। और थोड़ी–सी चर्चा से पता चलेगा कि गिरीश बांग्ला रंगमंच के सर्वश्रेष्ठ 'प्रयोगाचार्य' हैं" ।[9]

निष्कर्ष :

सर्वोपरि हमें यह ध्यान रखना होगा कि उस समय की पर्यावरणीय परिस्थितियाँ, अविकसित यांत्रिक व्यवस्था, सभी सदस्यों का वेतन, मालिक का लाभ भले ही रंगमंच को अपनी इच्छानुसार न बना पाया हो, फिर भी उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि गिरीश घोष बांग्ला रंगमंच में दिशा के बारे में, आधुनिक सोच, परीक्षण और कौशल की गुणवत्ता के बारे में और जिस तरह से उन्होंने थिएटर के नींव को सफलता के साथ सशक्त किया है, वह हमारे लिए एक खजाना है। तो गिरीश घोष नाटक–शिक्षक, मंच–प्रबंधक और निर्देशक की उपमा का दावा करते हैं। अतः बिना किसी झिझक के यह कहा जा सकता है कि गिरीश घोष बांग्ला रंगमंच के 'प्रथम निर्देशक' हैं। और शिशिर कुमार भादुड़ी पहले 'मॉडर्न निर्देशक' हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. देबेश चट्टोपाध्याय द्वारा 'एकजन निर्देशकेर खोंजे', 'शिशिर कथा' 289 पृष्ठा, ब्रात्यो बसु द्वारा संपादित, पहली बार 2019 में प्रकाशित
2. देबेश चट्टोपाध्याय द्वारा 'एकजन निर्देशकेर खोंजे', 'शिशिर कथा' 290 पृष्ठा, ब्रात्यो बसु द्वारा संपादित, पहली बार 2019 में प्रकाशित
3. चौधरी, दर्शन, 'बांग्ला थियेटरेर इतिहास', पुस्तक बिपोनी, पहला संस्करण 1995, 115 पृष्ठा
4. वही, 113 पृष्ठा
5. सत्य भादुड़ी द्वारा लिखित 'मिनर्भाए गिरीशचंद्र', 'गिरीश कथा' 79 पृष्ठा, सत्य भादुड़ी द्वारा संपादित, पहली बार 2018 में प्रकाशित
6. उत्पल दत्त द्वारा 'गिरीश मानस', 261 पृष्ठा, एम सी सरकार एंड संस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित, पहली बार 1983 में प्रकाशित
7. ब्रात्यो बसु द्वारा 'गिरीश चंद्रः नीलकंठ निर्देशकेर खोंजे', 'गिरीश कथा' 290 पृष्ठा, सत्य भादुड़ी द्वारा संपादित, पहली बार 2018 में प्रकाशित
8. 'बागबाजारेर गिरीशचंद्र' विष्णु बसु, 'गिरीश कथा' 19 पृष्ठा, सत्य भादुड़ी द्वारा संपादित, पहली बार 2018 में प्रकाशित
9. उत्पल दत्त द्वारा 'गिरीश मानस', 256 पृष्ठा, एम सी सरकार एंड संस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित, पहली बार 1983 में प्रकाशित

स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

वार्षिक शोध पत्रिका

कुमार प्रिन्टर्स
लाह बाजार, शिल्पी पोखरा, छपरा, सारण (बिहार)
(निबंधित कार्यालय : प्रभुनाथ नगर, छपरा)
Mob. : 9431090666